

गोरखपुर

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशो जगतपते ।
अनुकम्पय मा भवत्या गृहाणार्थी दिवाकर ॥

वर्ष ६६ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, जनवरी १९९२ ई० { संख्या ९
} पूर्ण संख्या ७८२

भगवान् नर-नारायणकी वन्दना

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूमे विश्वाय विश्वगुरवे परदेवताय ।
नारायणाय ऋषये च नरोन्माय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥
यहर्शने निगम आत्मरहःप्रकाशी मुहूर्णि यत्र कवयोऽजपरा यतनः ।
ते सर्ववादविषयप्रतिकृपयशीले वन्दे प्रह्लादपुरुषमात्मनि गृह्णोधम् ॥

(श्रीमद्भगवत् १२।८।४७, ४९)

(महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं—) भगवन् ! आप अन्तर्यामी, सर्वज्ञापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु, परमाराध्य और शुद्धस्वरूप हैं । समस्त लौकिक और कैटिक वाणी आपके अधीन है । आप ही वेदमार्गिक प्रवर्तक हैं । मैं आपके इस युगलस्वरूप नरोन्माय नर और ऋषिवर नारायणको नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! वेदमें आपका साक्षात्कार करानेवाला वह ज्ञान पूर्णरूपसे विद्यमान है, जो आपके स्वरूपका रूप्य प्रकट करता है । वहाँ आदि बड़े-बड़े प्रतिभाशाली मनोर्णी उसे प्राप्त करनेकर यह करते रहनेपर भी मोहमें पड़ जाते हैं । आप भी ऐसे लीलाविहारी हैं कि विभिन्न मतवाले आपके सम्बन्धमें जैसा सोचते-विचारते हैं, वैसा ही शील-स्वभाव और रूप अहण करके आप उनके सामने प्रकट हो जाते हैं । यास्तवमें आप देह आदि समस्त उपाधियोंमें छिपे हुए विशुद्ध विज्ञानवन ही हैं । हे पुरुषोन्माय ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।

वैदिक स्तवन

ईशा वास्तविद् । सर्वं वत्किञ्च जगत्यो जगत् ।

तेन त्वयेन मुहुर्मुहा मा गृष्णः कस्य रिवद् धनम् ॥

अस्त्रिल ब्रह्माष्टमे जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है, यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्वामपर्वक (इसे) भोगते रहो। (इसमें) आसक्त मत होओ, (क्योंकि) वन—भोग्य-पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

‘हो नो मित्रः हो वरणः । हो नो भवत्वर्यमा । हो न इन्हो वृहस्पतिः । हो नो विष्णुरुक्तमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म विदिव्यामि । ब्रह्म विदिव्यामि । सर्वं विदिव्यामि । तत्पामवतु । तद्वातारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

हमारे लिये (दिन और प्राणके अधिष्ठाता) मित्र देवता कल्याणप्रद हों (तथा) (खत्रि और अपानके अधिष्ठाता) वरुण (भी) कल्याणप्रद हों। (चक्षु और सूर्यमण्डलके अधिष्ठाता) अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी हों, (बल और भुजाओंके अधिष्ठाता) इन्द्र (तथा) (वाणी और बुद्धिके अधिष्ठाता) वृहस्पति (दोनों) हमारे लिये शान्तिः प्रदान करनेवाले हों। विविक्तमरूपसे विश्वाल ढगोवाले विष्णु (जो पैरोंके अधिष्ठाता है) हमारे लिये कल्याणकारी हों। (उपर्युक्त सभी देवताओंके आत्मस्वरूप) ब्रह्मके लिये नमस्कार है। हे वायुदेव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है, तुम ही प्रत्यक्ष (प्राणरूपसे प्रतीत होनेवाले) ब्रह्म हो। (इसलिये मैं) तुमको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा, (तुम ऋतके अधिष्ठाता हो, इसलिये मैं तुम्हें) ऋत नामसे पुक्षरहूँगा, (तुम सर्वके अधिष्ठाता हो, अतः मैं तुम्हें) सर्व नामसे कहूँगा, वह (सर्वशक्तिमान् परमेश्वर) मेरी रक्षा करे, वह वक्तारकी अर्थात् आचार्यकी रक्षा करे, रक्षा करे मेरी (और) रक्षा करे, मेरे आचार्यकी। भगवान् शान्तिस्वरूप है, शान्तिस्वरूप है, शान्तिस्वरूप है।

वित्रं देवानामुदगदनीकं चक्षुर्वित्स्य वरुणस्याप्ते । आप्ना आवापुष्यियी अन्तरिक्षं सूर्यं आत्मा जगतस्तस्युपक्ष ॥

जो तेजोमयी किरणोंके पुज्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्वके प्राणियोंके नेत्र हैं और स्वाक्षर तथा जड़म सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाशसे पूर्ण करते हुए आकर्षकरूपसे उद्दित हो रहे हैं।

वेदाङ्गमेतं पुरुषं यज्ञान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्ताम् ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नाम्यः पन्त्या विद्वातेऽप्यनाम्य ॥

मैं आदित्य-स्वरूपवाले सूर्यमण्डलस्थ महान् पुरुषको, जो अन्धकारसे सर्वधा परे, पूर्ण प्रकाश देनेवाले और परमात्मा है, उनको जानता हूँ। उन्हींको जानकर मनुष्य मृत्युके लाभ जाता है। मनुष्यके लिये मोक्ष-प्राप्तिका दूसरा कोई अन्य मार्ग नहीं है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् यद्यं तत्र आ सुव ॥

समस्त संसारको उत्पत्ति करनेवाले—सुहि-पालन-संहार करनेवाले किंवा विश्वमें सर्वाधिक देवीयमान एवं जगत्को शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाले हैं परब्रह्मस्वरूप सविता देव ! आप हमारे सम्मूर्त—आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक—दुरितों (बुद्धियो—पातों) को हमसे दूर—बहुत दूर ले जायें, दूर करें, किंतु जो भद्र (भला) है, कल्याण है, त्रेय है, मङ्गल है, उसे हमारे लिये—विश्वके हम सभी प्राणियोंके लिये—चारों ओरसे (भलीभौति) ले आये, दे—‘यद् यद्यं तत्र आ सुव ।’

असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्मात्रमृतं गमय ॥

हे भगवान् ! आप हमें असत्तसे सत्त्वी और, तमसे ज्योतिकी ओर तथा मृत्युसे अमरताकी ओर ले चलें।

पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्

(आदित्यहृदयसारामृत)

यन्पष्ठलं दीप्तिकरं विशालं रक्षप्रभं तीव्रमनादिरूपम्। दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः सुतं मानवमुक्तिकरोविदम्। ते देवदेवं प्रणामामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं ज्ञानधनं त्वगच्छं ब्रैलोवयपूर्णं विगुणात्मरूपम्। समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं गृहमतिप्रबोधं धर्मस्य बुद्धिं कुर्वते जनानाम्। यत्सर्वपापक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं व्याधिविनाशदक्षं यदुग्यनुःसामस् सम्भागीतम्। प्रकाशितं येन च भूर्षुवः स्वः पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं वेदविदो विदन्ति गायत्रि यज्ञारणसिद्धसंघाः। यद्योगिनो योगमुद्धारं च संघाः पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं सर्वजनेषु पूजितं ज्योतिष्ठा कुर्यादिहं मर्त्यलोके। यत्कालकालादिमनादिरूपं पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं विष्णुचतुर्मुखाख्यं यदक्षरं पापहरं जनानाम्। यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं विष्णुसूजां प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्। यस्मिन्द्वागत् संहरतेऽस्तिलं च पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं सर्वजनस्य विष्णोरात्मा परं धाम विशुद्धतत्त्वम्। सूक्ष्मान्तर्योगिपथानुगच्छं पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥
यन्पष्ठलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगच्छं। तत्सर्ववेदं प्रणामामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुवरीण्यम्॥

जिन भगवान् सूर्यका प्रखर तेजोमय मण्डल विशाल, रत्नोंके समान प्रभासित, अनादिकाल-स्वरूप, समस्त लोकोंका दुःख-दारिद्र्य-संहारक है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका वरेण्य मण्डल देवसमूहोद्भारा अर्चित, विद्वान् ब्राह्मणोद्भारा संस्तुत तथा मानवोंको मुक्ति देनेमें प्रवीण है, वह मुझे पवित्र करे, मैं उसे प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल अखण्ड-अविच्छेद, ज्ञानस्वरूप, तीनों लोकोद्भारा पूज्य, सत्त्व, रज, तम—इन तीनों गुणोंसे युक्त, समस्त तेजों तथा प्रकाश-पुष्टिसे युक्त है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका श्रेष्ठ मण्डल गूढ़ होनेके कारण अत्यन्त कठिनतासे ज्ञानगच्छ है तथा भक्तोंके हृदयमें धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करता है, जिससे समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल समस्त आधि-व्याधियोंका उन्मूलन करनेमें अत्यन्त कुशल है, जो ऋक्, यजुः तथा साम—इन तीनों वेदोंके द्वारा सदा संस्तुत है और जिसके द्वारा भूलोक, अन्तरिक्षलोक तथा स्वर्गलोक सदा प्रकाशित रहता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यके श्रेष्ठ मण्डलको वेदवेत्ता विद्वान् ठीक-ठीक जानते तथा प्राप्त करते हैं, चारणगण तथा सिद्धोंका समूह जिसका गान करते हैं, योग-साधना करनेवाले योगिजन जिसे प्राप्त करते हैं, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सभी प्राणियोद्भारा पूजित है तथा जो इस मनुष्यलोकमें प्रकाशका विस्तार करता है और जो कालका भी काल एवं अनादिकाल-रूप है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यके मण्डलमें ब्रह्मा एवं विष्णुकी आछ्या है, जिनके नामोच्चारणसे भक्तोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, जो क्षण, कला, काष्ठा, संवत्सरसे लेकर कल्पपर्यन्त कालका कारण तथा सूर्यिके प्रलयका भी कारण है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल प्रजापतियोंकी भी उत्तरि, पालन और संहार करनेमें सक्षम एवं प्रसिद्ध है और जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् संहृत होकर लीन हो जाता है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल सम्पूर्ण प्राणिवर्गका तथा विष्णुकी भी आत्मा है, जो सबसे ऊपर श्रेष्ठ लोक है, शुद्धतिशुद्ध सारभूततत्त्व है और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म साधनोंके द्वारा योगियोंके देवव्यानद्वारा प्राप्त है, वह मुझे पवित्र करे। जिन भगवान् सूर्यका मण्डल वेदवादियोद्भारा सदा संस्तुत और योगियोंको योग-साधनासे प्राप्त होता है, मैं तीनों काल और तीनों लोकोंके समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करता हूँ, वह मण्डल मुझे पवित्र करे।

पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म

अद्वा॒धति॒समायुक्ता नान्यकार्येषु लगलसा: । वास्तवा: मुख्योऽव्याप्ता: श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥
 अधक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः । तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्ञानयनि ॥
 पुराणं ये च समूज्य ताम्बूलादीरुपायामैः । शृण्वन्ति च कथां भक्त्यादस्त्रिः सूर्यं संशयः ॥
 कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः । भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराक्षं सम्पदः ॥
 सोष्टीयमसतकं ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम् । ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः ॥
 ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम् । स्विष्टां स्वादयन्तेतान् नयन्ति यमकिंकराः ॥
 ये च तुङ्गासनारुद्धाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः । अक्षय्यनरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ॥
 ये वै वरासनारुद्धाः ये च मध्यासनस्थिताः । शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादाः ॥

असम्ब्रणम्य शृण्वन्ति विषयभक्ता भवन्ति ते । तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः ॥

जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न, अन्य कार्योंकी लालसासे रहित, मौन, पवित्र और शान्तचित्तसे (पुराणकी कथाको) श्रवण करते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं । जो अधम मनुष्य भक्तिहित होकर पुण्यकथाको सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो भिलता नहीं, उलटे प्रत्येक जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है । जो लोग ताम्बूल, पुण्य, चन्दन आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा पुराणकी भलीभाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक कथा सुनते हैं, वे निःसंदेह दरिद्रतारहित अर्थात् धनवान् होते हैं । जो मनुष्य कथा होते समय अन्य कथयोंकी लिये बहासि उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी पली और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है । जो पापी अधम मनुष्य मस्तकपर पगड़ी बाँधकर (या टोपी लगाकर) पवित्र कथा सुनते हैं, वे बगुला होकर उत्पन्न होते हैं । जो लोग पान चबाते हुए पवित्र कथा सुनते हैं, उन्हें कुतेक मल भक्षण करना पड़ता है और यमदूत उन्हें यमपुरीमें ले जाते हैं । जो ढोगी मनुष्य (व्यासासनसे) कैंचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे अक्षय नरकोंका भोग करके कौआ होते हैं । जो लोग (व्यासासनसे) क्षेष्ठ आसनपर अथवा मध्यम आसनपर बैठकर उत्तम कथा श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक यूक्त होते हैं । (जो मनुष्य पुराणकी पुस्तक और व्यासको) बिना प्रणाम किये ही कथा सुनते हैं, वे विषयभक्ती सोते हैं तथा जो लोग सोते हुए कथा सुनते हैं, वे अजगर सौंप होते हैं ।

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः । गुरुल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं ब्रजेत् ॥
 ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वै पापहारिणीम् । ते वै जन्मशतं यर्त्याः सूकराः सम्भवन्ति हि ॥
 कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः । ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः ॥
 ये कथायां कीर्त्यमानायां नरोत्तमाः । अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वते परमं पदम् ॥
 कथायां कीर्त्यमानायां विद्वं कुर्वन्ति ये शाठाः । कोट्यश्वं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥
 ये आवश्यन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम् । कल्पकोटिशतं साप्रे तिषुन्ति ब्रह्मणः पदे ॥
 आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः । कम्बलाजिनवासासंसि मङ्गं फलकम्भेव च ॥
 स्वर्गलोकं समाप्ताद्य भुक्त्वा भोगान् यथेष्टिवान् । स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदे यान्ति निरामयम् ॥

इसी प्रकार जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरु-शृण्य-गमनके समान पापका भागी होकर नरकगामी होता है । जो मनुष्य पुराणके ज्ञाता (व्यास) और पापोंके हरण करनेवाली कथाकी निन्दा करते हैं, वे सौंजन्मोदक सूकर-योनिमें उत्पन्न होते हैं । जो मनुष्य इस पुण्य कथाको कभी भी नहीं सुनते, वे घोर नरकोंका भोग करके बनैले सूअर होते हैं । जो नरक्षेष्ठ कहीं जाती हुई कथाका अनुमोदन करते हैं, वे कथा न सुनेन्पर भी अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं । जो दुष्ट कहीं जाती हुई कथामें विभं पैदा करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकोंका भोग करके अन्तमें ग्रामीण सूअर होते हैं । जो लोग साधारण मनुष्योंको पुराणसम्बन्धीय पुण्य कथा सुनाते हैं, वे सौंकरोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक ब्रह्मलोकमें निवास

करते हैं। जो मनुष्य पुराणके जाता वक्तव्यको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, सिंहासन और चौकी प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर अपीष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास कर अन्तमें निरामय पदको प्राप्त होते हैं।

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनमुत्तमम् । भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे ॥
ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये । पुराणश्चवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम् ॥
एवंविषयविधानेन पुराणं शृण्याद्वारः । भुक्त्वा भोगान् यथाकामं विष्णुलोकं प्रयासि सः ॥
पुस्तकं पूजयेत् पञ्चाद् वस्त्रालंकरणादिभिः । वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रपत्न्यान् ॥
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पञ्चान्पद्मलभूकपायसैः ॥
त्वं व्याससूरी भगवान् बुद्ध्या चाङ्गिरसोपमः । पुण्यवात् शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
प्रसन्नमानसं कुर्याद् दानमानोपचारतः । त्वत्वसादादिमान् धर्मान् सम्पूर्णाभ्युलब्धानहम् ॥
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः । यशस्वी च भवेत्त्रित्यं यः कुर्याद्विषयवादरात् ॥
नारदोक्तानिमान् धर्मान् यः कुर्याद्विषयतेन्द्रियः । कृत्वं फलमवाप्नोति पुराणश्चवणास्य वै ॥

इसी तरह जो लोग पुराणकी पुस्तकके लिये उत्तम श्रेष्ठ आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगोंका उपभोग करनेवाले एवं जानी होते हैं। जो महापातकोंसे युक्त अथवा उपपातकी होते हैं, वे सभी पुराणकी कथा सुननेसे ही परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकारके नियम-विधानसे पुराणकी कथा सुनता है, वह स्वेच्छानुसार भोगोंको भोगकर विष्णुलोकमें चला जाता है। कथाके समाप्त होनेपर श्रोता पुरुष प्रयत्नपूर्वक वस्त्र और अलंकार आदिहार्य पुस्तककी पूजा करे। तत्पश्चात् सहायक ब्राह्मणसहित वाचककी पूजा करे। उस समय वाचकको गौ, पृथ्वी, सोना और वस्त्र देना चाहिये। तदुपर्यन्त ब्राह्मणोंको मलाई, लट्ठ और सीरका भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परमात्मा व्याससे प्रार्थना करे—‘आप व्याससूरी भगवान् बृद्धिमें बृहस्पतिके समान, पुण्यवान्, शीलसम्पन्न, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, आपकी कृपासे मैंने इन सम्पूर्ण धर्मोंको सुना है।’ इस प्रकार प्रार्थना कर दान, मान और सेवासे उनके मनको प्रसन्न करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार आदरपूर्वक करता है, वह सदा यशस्वी रहता है। जो जितेन्द्रिय मनुष्य देवर्षि नारदहारा करे गये इन धर्मोंका धारण करता है, वह पुराण-श्रवणका सम्पूर्ण फल पाता है।

पुराण-महिमा

यज्ञकर्मक्रियावेदः सृतिवेदो गृहाभ्ये ॥

सृतिवेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिहितः । पुराणपुरुषाज्ञाते वयेदं जगद्दुतम् ॥

तयेदं वाङ्मयं जातं पुराणेष्वो न संशयः ।

न वेदे प्रहसंचारो न शुद्धिः कालशोधिनी । तिथिवृद्धिक्षयो वायि पर्वत्प्रहृष्टिनिर्णयः ॥

इतिहासपुराणैसु निष्ठयोऽयं कृतः पुरा । यत्र दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ ॥

उभयोर्यन्त दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते ।

(मातृ पृ० ३०, अ० २४)

यह एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये सृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और सृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मा से यह अद्वृत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेखामात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णयक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब सृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा जात होती हैं।

‘भविष्यपुराण’—एक परिचय

भारतीय वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदके निगृह अर्थोंका स्पष्टीकरण तो है की, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथावैचित्रके द्वाय साधारण जनताको भी गृह-से-गृहतम तत्त्वको हृदयमङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो वल्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृत और साधनाके क्षेत्रमें कर्म, ज्ञान और भक्तिका मूल स्रोत वेद या श्रुतिको ही माना गया है। वेद अपौरुषेय, नित्य और स्वयं भगवान्की शब्दमयी मूर्ति है। स्वरूपतः वे भगवान्के साथ अधिक हैं, परंतु अर्थकी दृष्टिसे वेद अत्यन्त दुरुह भी हैं। जिनका ग्रहण तपस्याके बिना नहीं किया जा सकत। व्यास, वाल्मीकि आदि प्राची तपस्याद्वारा ईश्वरकृपासे ही वेदका प्रकृत अर्थ जान पाये थे। उन्होंने यह भी जाना था कि जगत्के कल्प्याणके लिये वेदके निगृह अर्थका प्रचार करनेकी आवश्यकता है। इसलिये उन्होंने उसी अर्थको सरल भाषामें पुराण, रामायण और महाभारतके द्वारा प्रकट किया। इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि रामायण, महाभारत और पुराणोंकी सहायतासे वेदोंका अर्थ समझना चाहिये—‘इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं सम्पुर्वहयेत्।’ इसके साथ ही इतिहास-पुराणके वेदोंके समकक्ष पञ्चम वेदके रूपमें माना गया है। छान्दो-योपनिषद्में नारदजीने सम्मुक्तमारजीसे कहा है—‘स होवाच ऋष्येदं भगवोऽध्येयि वज्रेदं सामवेदमाश्वरणं चतुर्थ्यमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।’ मैं ऋष्येद, यजुर्वेद, सामवेद तथा चौथे अश्वर्वेद और पांचवें वेद इतिहास-पुराणको जानता हूँ।’ इस प्रकार पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता तथा मङ्गलमयताका सर्वत्र उल्लेख है और वह सर्वथा सिद्ध तथा यथार्थ है। भगवान् व्यासदेवने प्राचीनतम पुराणका प्रकाश और प्रचार किया है। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य हैं।

पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार तथा सकाम एवं निष्कामकर्मको महिमाके साथ-साथ यज्ञ, व्रत, दान, तप,

तीर्थसेवन, देवपूजन, आद्य-तर्पण आदि ज्ञानविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणके प्रवृत्त करनेके लिये उनके लैंकिक एवं पारलैंकिक फलोंका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त पुराणोंमें अन्यान्य कई विषयोंका समावेश पाया जाता है। इसके साथ ही पुराणोंकी कथाओंमें असम्बद्ध-सी दीक्षानेवाली कुछ जातें परस्पर विरोधी-सी भी दिक्षायी देती हैं, जिसे स्वत्य अद्वावाले पुण्य कल्पनिक मानने लगते हैं। परंतु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यह सत्य है कि पुराणोंमें कहीं-कहीं न्यूनाधिकता हुई है एवं विदेशी तथा विधर्मियोंके आक्रमण-अत्याचारसे बहुतसे अंश आज उपलब्ध भी नहीं हैं। इसी तरह कुछ अंश प्रक्रिया भी हो सकते हैं। परंतु इससे पुराणोंकी मूल महत्ता तथा प्राचीनतामें कोई बाधा नहीं आती।

‘भविष्यपुराण’ अठारह महापुराणोंकी अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण सात्त्विक पुराण है, इसमें इतने महत्वके विषय भी हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। यद्यपि इलोक-संख्यामें न्यूनाधिकता प्रतीत होती है। भविष्यपुराणके अनुसार इसमें पचास हजार इलोक होने चाहिये; जबकि वर्तमानमें अद्वाईस सहस्र इलोक ही इस पुराणमें उपलब्ध हैं। कुछ अन्य पुराणोंके अनुसार इसकी इलोक-संख्या साढ़े चौदह सहस्र होनी चाहिये। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे विष्णुपुराणकी इलोक-संख्या विष्णुधर्मोत्तरपुराणको सम्मिलित करनेसे पूर्ण होती है, वैसे ही भविष्यपुराणमें भविष्योत्तरपुराण सम्मिलित कर लिया गया है, जो वर्तमानमें भविष्यपुराणका उत्तरपर्व है। इस पर्वमें मुख्यरूपसे ऋत, दान एवं उत्सवोंका ही वर्णन है।

वस्तुतः भविष्यपुराण सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् सूर्य है, वैसे भी सूर्यनाशयन प्रत्यक्ष देवता है जो पञ्चवेदोंमें परिगणित है और अपने शास्त्रोंके अनुसार पूर्णब्रह्मके रूपमें प्रतिष्ठित है। द्विजात्रके लिये प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालकी संध्यामें सूर्यदिवको अर्घ्य प्रदान करना अनिवार्य है, इसके अतिरिक्त खी तथा अन्य आश्रमोंके लिये भी नियमित सूर्यार्घ्य देनेकी विधि बतलायी गयी है। आधिभौतिक और आधिदैविक गोग-शोक, संताप आदि

सांसारिक दुःखोंकी निवृति भी सूर्योपासनासे सदा होती है। प्रथमः पुराणोमें शैव और वैष्णवपुराण ही अधिक प्राप्त होते हैं, जिनमें शिव और विष्णुकी महिमाका विशेष वर्णन मिलता है, परंतु भगवान् सूर्यदिवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुराणमें उपलब्ध है। यहाँ भगवान् सूर्यनाशयणको जगत्स्थाना, जगत्यास्तक एवं जगत्संहारक पूर्णब्रह्म परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। सूर्यके महनीय स्वरूपके साथ-साथ उनके परिवार, उनकी अद्भुत कथाओं तथा उनकी उपासना-पद्धतिका वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है। उनका प्रिय पुरुष क्या है, उनकी पूजाविधि क्या है, उनके आयुध—व्योमके लक्षण तथा उनका माहात्म्य, सूर्य-नमस्कर और सूर्य-प्रदक्षिणाकी विधि और उनका फल, सूर्यकी दीप-दानकी विधि और महिमा, इसके साथ ही सौरधर्म एवं दीक्षाकी विधि आदिका महत्वपूर्ण वर्णन हुआ है। इसके साथ ही सूर्यके विहार-स्वरूपका वर्णन, द्वादश मूर्तियोंका वर्णन, सूर्यवितार तथा भगवान् सूर्यकी रथयात्रा आदिका विशिष्ट प्रतिपादन हुआ है। सूर्यकी उपासनामें ब्रतोंकी विस्तृत चर्चा मिलती है। सूर्यदिवकी प्रिय तिथि है 'सप्तमी'। अतः विभिन्न फलश्रुतियोंके साथ सप्तमी तिथिके अनेक ब्रतोंवा और उनके उद्यापनोंका यहाँ विस्तारसे वर्णन हुआ है। अनेक सौर तीर्थोंकी भी वर्णन मिलते हैं। सूर्योपासनामें भावशुद्धिकी आवश्यकतापर विशेष बल दिया गया है। यह इसकी मुख्य बात है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, गणेश, कात्तिकेय तथा अग्नि आदि देवोंका भी वर्णन आया है। विभिन्न तिथियों और नक्षत्रोंके अधिष्ठात्-देवताओं तथा उनकी पूजाके फलका भी वर्णन मिलता है। इसके साथ ही ब्राह्मणर्मां ब्रह्मचारिधर्मका निरूपण, गृहस्थधर्मका निरूपण, माता-पिता तथा अन्य गुरुजनोंकी महिमाका वर्णन, उनको अभिवादन करनेकी विधि, उपनयन, विवाह आदि संस्कारोंका वर्णन, स्त्री-पुरुषोंके सामुद्रिक शुभाशुभ-लक्षण, स्त्रियोंके कर्तव्य, धर्म, सदाचार और उत्तम व्यवहारकी बातें, स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहार, पञ्चमहायज्ञोंका वर्णन, बलिवैश्वदेव, अतिथिसत्कर, श्राद्धोंके

विविध भेद, मातृ-पितृ-श्राद्ध आदि उपादेय विषयोंपर विशेषरूपसे विवेचन हुआ है। इस पर्वमें नागपञ्चमी-क्रतकी कथाका भी उल्लेख मिलता है, जिसके साथ नागोंकी उत्पत्ति, सर्पोंकी लक्षण, स्वरूप और विभिन्न जातियाँ, सर्पोंकी काटनेके लक्षण, उनके विकास वेग और उसकी विकितसा आदिका विशिष्ट वर्णन यहाँ उपलब्ध है। इस पर्वकी विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तिके उत्तम आचरणको ही विशेष प्रमुखता दी गयी है। कोई भी व्यक्ति कितना भी विद्वान्, वेदाधारी, संस्कारी तथा उत्तम जातिका क्यों न हो, यदि उसके आचरण श्रेष्ठ, उत्तम नहीं हैं तो वह श्रेष्ठ पुरुष नहीं कहा जा सकता। लोकमें श्रेष्ठ और उत्तम पुरुष के ही हैं जो सदाचारी और सत्यघणामी हैं।

भविष्यपुराणमें ब्राह्मपविके बाद मध्यमपर्वका प्रारम्भ होता है। जिसमें सृष्टि तथा सात ऋब्द एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन हुआ है। ज्योतिष्क्र तथा भूगोलके वर्णन भी मिलते हैं। इस पर्वमें नरकगामी मनुष्योंके २६ दोष बताये गये हैं, जिन्हें त्यागकर मुद्रापूर्वक मनुष्यको इस संसारमें रहना चाहिये। पुराणोंकी श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। पुराणोंको श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि अनेक पापोंसे मुक्ति मिलती है। जो प्रातः, रात्रि तथा सायं पवित्र होकर पुराणोंका श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रसन्न हो जाते हैं। इस पर्वमें इष्टापूर्तकर्मका निरूपण अस्त्वन्त समारोहके साथ किया गया है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है तथा निष्क्रमभावात्पूर्वीक किये गये कर्म और स्वाभाविक रूपसे अनुरागभक्तिके रूपमें किये गये हरिस्मरण आदि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्भृती कर्मोंके अन्तर्गत आते हैं, देवताओंकी स्थापना और उनकी पूजा, कुर्मा, पोखरा, तालम्ब, बावली आदि खुटवाना, वृक्षारोपण, देवालय, धर्मशाला, उद्यान आदि लगावाना तथा गुरुजनोंकी सेवा और उनको संतुष्ट करना—ये सब अन्तर्भृती (पूर्त) कर्म हैं। देवालयोंके निर्माणकी विधि, देवताओंकी प्रतिमाओंके लक्षण और उनकी स्थापना, प्रतिष्ठाकी कर्तव्य-विधि, देवताओंकी पूजापद्धति,

१-अतिहासपुराणनि शुद्ध भक्तव द्विजेत्वमः। मुच्यते सर्वपरेष्यो ब्रह्मत्वक्षते च यत्॥

सायं प्रातस्त्रया रहौ मुच्यन्ते शृणोति च। तस्य विष्णुस्त्रया ब्रह्म तुम्हें शङ्करस्त्रय॥

उनके ध्यान और मन्त्र, मन्त्रोंके ऋषि और छन्द—इन सबोपर पर्याप्त विवेचन किया गया है। पाण्डाण, काष्ठ, मृतिका, ताम्र, रत्न एवं अन्य श्रेष्ठ धातुओंसे बनी उत्तम लक्षणोंसे युक्त प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। घरमें प्रायः आठ अंगुलतक कंची मूर्तिका पूजन करना श्रेयस्कर माना गया है। इसके साथ ही तालव, पुष्करिणी, वाणी तथा भवन आदिकी निर्माण-पद्धति, गृहवास्तु-प्रतिष्ठाकी विधि, गृहवास्तुमें किन देवताओंकी पूजा की जाय, इत्यादि विषयोंपर भी प्रकाश डाला गया है।

वृक्षारोपण, विभिन्न प्रकारके वृक्षोंकी प्रतिष्ठाका विधान तथा गोचरभूमिकी प्रतिष्ठा-सम्बन्धी चर्चाएँ, मिलती हैं। जो व्यक्ति छाया, फूल तथा फल देवतावले वृक्षोंवा रोपण करता है या मार्गमें तथा देवालयमें वृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंके बड़े-से-बड़े पापोंसे तारता है और रोपणकर्ता इस मनुव्यालोकमें महती जीर्णि तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है। जिसे पुत्र नहीं है, उसके लिये वृक्ष ही पुत्र है। वृक्षारोपणकर्तिके लैकिक-पारलैकिक कर्म वृक्ष ही करते रहते हैं तथा उसे उत्तम लोक प्रदान करते हैं। यदि कोई अस्थय वृक्षका आरोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाल पुत्रोंसे भी बढ़कर है। अशोक वृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता। बिल्व-वृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। इसी प्रकार अन्य वृक्षोंके रोपणकी विभिन्न फलशुल्तियाँ आयी हैं। सभी माझलिंक कार्य निर्विज्ञातापूर्वक सम्पन्न हो जायें तथा शान्ति-भङ्ग न हो इसके लिये ग्रह-शान्ति और शान्तिप्रद अनुष्ठानोंका भी इसमें वर्णन मिलता है।

भविष्यपुराणके इस पर्वमें कर्मकाण्डका भी विशद वर्णन प्राप्त होता है। विविध यज्ञोंका विधान, कुण्ड-निर्माणकी योजना, भूमि-पूजन, अग्निसंस्थापन एवं पूजन, यज्ञादि कर्मके मण्डल-निर्माणका विधान, कुशकण्ठिका-विधि, होमद्रव्योंका वर्णन, यज्ञपात्रोंका स्वरूप और पुर्णाहुतिकी विधि, यज्ञादिकर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य और कलश-स्थापन आदि विधि-विधानोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणारहित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये। ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता। जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसीके अनुसार करना

चाहिये।

इस क्रममें क्रौञ्च आदि पक्षियोंके दर्शनका विशेष फल भी वर्णित हुआ है। मधूर, वृषभ, सिंह एवं क्रौञ्च और कपिका घरमें, खेतमें और वृक्षपर भूमिसे भी दर्शन हो जाय तो उसको नमस्कार करना चाहिये। ऐसा करनेसे दर्शकके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, उनके दर्शनमात्रसे भन तथा आयुकी वृद्धि होती है।

कोई भी कर्म देवकर्म या पितृकर्म नियत समयपर किये जानेपर कालके आधारपर ही पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका कोई फल नहीं होता। अतः कालविभाग, मास-विभाजन, तिथि-निर्णय एवं वर्षभरके विशेष पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्योंका विवेचन भी इस पर्वमें साङ्गेपाल्लूपसे सम्पन्न हुआ है। जो सर्वसाधारणके लिये उपयोगी भी है।

अपने यहाँ गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विवरीत फलदायी होता है। समान गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निषेध है। अतः गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक है। अपने-अपने गोत्र-प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये। इन सारी प्रक्रियाओंका विवेचन यहाँ उपलब्ध है।

भविष्यपुराणमें मध्यमपर्वके बाद प्रतिसर्गपर्व चार स्वर्णोंमें है। प्रायः अन्य पुराणोंमें सत्ययुग, त्रेता और द्वापरके प्राचीन राजाओंके इतिहासका वर्णन मिलता है, परंतु भविष्यपुराणमें इन प्राचीन राजाओंके साथ-साथ कलियुगी अर्द्धचीन राजाओंका आधुनिक इतिहास भी मिलता है। बास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। प्रतिसर्गपर्वके प्रथम स्वर्णमें सत्ययुगके राजाओंके बंशका परिचय, त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन, द्वापरयुगके चन्द्रवंशीय राजाओंके वृतान्त वर्णित हैं। इसके बाद म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन है। प्रारम्भमें राजा प्रद्योतने कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करके म्लेच्छोंका विनाश किया था, परंतु कलिने स्वयं म्लेच्छस्त्रपस्तें राज्य किया तथा भगवान् नारायणको अपनी पूजासे प्रसन्नकर वरदान प्राप्त किया। नारायणने कलिने कहा कि ‘कई दृष्टियोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो, अतः

तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।' इस वरदानके प्रभावसे आदम नामके पुरुष और हृष्वती (हौवा) नामकी पलीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि हुई। करियुगके तीन हजार वर्ष व्यतीत होनेपर विक्रमादित्यका आविर्भाव होता है। इसी समय रुद्रकिंवद वैतालका आगम होता है, जो विक्रमादित्यके कुछ कथाएँ सुनाता है और इन कथाओंके व्यासे राजनीतिक और व्यावहारिक शिक्षा भी प्रदान करता है। वैतालद्वारा कही गयी इन कथाओंका संग्रह 'वैतालपञ्चविंशति' अथवा 'वैतालपञ्चीसी'के नामसे लेकर्में प्रसिद्ध है।

इसके बाद श्रीसत्यनारायणवतकी कथाका वर्णन है। भारतवर्षमें सत्यनारायणवत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और इसका प्रसार-प्रचार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माझलिक कार्यक्रम प्रारम्भ भगवान् गणपतिके पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणके कथाश्रवणसे प्राप्त: समझी जाती है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भगवान् सत्यनारायणवत-कथाका उल्लेख छ: अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी प्रचलित कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। वास्तवमें इस मायामय संसारकी वास्तविक सत्ता तो है ही नहीं—'नास्तो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।' परमेश्वर ही विकालबाधित सत्य है और एकमात्र वही ध्येय, ध्येय और उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करने योग्य है। वस्तुतः सत्यनारायणवतका तात्पर्य उन शुद्ध सचिदानन्द परमात्माकी आराधनासे ही है। निष्क्रम उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है। अतः श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन, कथाश्रवण एवं प्रसाद आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।

इस खण्डके अन्तिम अध्यायोंमें पितृशर्मा और उनके बंशमें उत्पन्न होनेवाले व्याडि, मीमांसक, पाणिनि और वरुचि आदिकी रोचक कथाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकरणमें ब्रह्मचारिधर्मकी विभिन्न व्याख्याएँ करते हुए यह कहा गया है कि 'जो गृहस्थधर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रियसंयमपूर्वक

ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही पुरुष ब्रह्मचारी है। पाणिनिकी तपत्यासे प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिष्य शंकरने 'अ ह ड ण्', 'अह लू कृ' इत्यादि चतुर्दश माहेश्वर-सूत्रोंके वरहृष्णमें प्रदान किया। जिसके कारण उन्होंने व्याकरणशास्त्रका निर्माण कर महान् लोकोपकार किया। तदनन्तर बोपदेवके चरित्रका प्रसंग तथा श्रीमद्भागवतके माहात्म्यका वर्णन, श्रीदुर्गासप्तशतीके माहात्म्यमें व्याधकर्माकी कथा, मध्यमचरित्रके माहात्म्यमें करत्यायन तथा मागधके राजा महानन्दकी कथा और उत्तरवरितकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिके चरित्रका रोचक वर्णन हुआ है।

भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वक तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीरगाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जागनिक भाटरचित आल्हाका वीरकाव्य बहुत प्रचलित है। इसके बुन्देलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषा-ओवर थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। प्रायः ये कथाएँ लोकतालानके अनुसार अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी है। इस खण्डमें राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा भी आयी है। एक समय शकाधीश शालिवाहनने हिमशिलारपर गौर-वर्णके एक सुन्दर पुरुषको देखा, जो खेत बस्त धारण किये था। शकराजकी विजासा करनेपर उस पुरुषने अपना परिचय देते हुए अपना नाम ईशामसीहता था। साथ ही अपने सिद्धान्तोंका भी संक्षेपमें वर्णन किया। शालिवाहनके बंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए, जिनके साथ महामदकी कथाका भी वर्णन मिलता है। राजा भोजने महस्तल (मर्दीन) में स्थित महादेवका दर्शन किया तथा भक्तिभावपूर्वक पूजन-स्तुति की। भगवान् शिवने प्रकट होकर म्लेच्छोंसे दूषित उस स्थानको त्यागकर महाकालेश्वर तीर्थमें जानेवाली आज्ञा प्रदान की। तदनन्तर देशराज एवं वस्तराज आदि राजाओंके आविर्भावकी कथा तथा इनके बंशमें होनेवाले कौरवांश एवं पाण्डवांशोंके रूपमें उत्पन्न गुरुवंशोंका विवरण प्राप्त होता है। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय होती है। पृथ्वीराज चौहानकी वीरगति प्राप्त होनेके उपरान्त सहेद्धीन (मुहम्मद

गोरी) के द्वारा कोतुकोहीनको दिल्लीका शासन सौंपकर इस देशसे धन लूटकर ले जानेका विवरण प्राप्त होता है।

प्रतिसर्गपर्वका अन्तिम चतुर्थ संष्ठ इसमें उत्पन्न आश्वर्यशीय राजाओंके बंशका परिचय मिलता है। तदनन्तर राजपूताना तथा दिल्ली नगरके राजवंशोंका इतिहास प्राप्त होता है। राजस्थानके मुख्य नगर अजमेरकी कथा मिलती है। अजम्या (अज) ब्रह्माके द्वारा रचित होने तथा माँ लक्ष्मी (रमा) के शुभागमनसे रथ या रमणीय इस नगरीका नाम अजमेर हुआ। इसी प्रकार राजा जयसिंहने जयपुरको बसाया, जो भारतका सर्वाधिक सुन्दर नगर माना जाता है। कृष्णवर्मकि पुत्र उदयने उदयपुर नामक नगर बसाया, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य आज भी दर्शनीय है। कल्यानकुञ्ज नगरीकी कथा भी अद्भुत है। राजा प्रणयकी तपस्यासे भगवती शारदा प्रसन्न होकर कन्यारूपमें वेणुवादन करती हुई आती है। उस कन्याने वरदानरूपमें यह नगर राजा प्रणयको प्रदान किया, जिस कारण इसका नाम 'कल्यानकुञ्ज' पड़ा। इसी प्रकार चित्रकूटका निर्माण भी भगवतीके प्रसादसे ही हुआ। इस स्थानकी विशेषता यह है कि यह देवताओंका प्रिय नगर है, जहाँ कलिङ्ग प्रवेश नहीं हो सकता। इसीलिये इसका नाम 'कलिङ्ग' भी कहा गया है^१। इसी प्रकार बंगालके राजा भोगवत्मकि पुत्र कालिवर्मनि महाकालीकी उपासना की। भगवती कालीने प्रसन्न होकर पुण्यों और कलियोंकी वर्षी की, जिससे एक सुन्दर नगर उत्पन्न हुआ जो कलिकाशापुरी (कलम्बका) के नामसे प्रसिद्ध हुआ। चारों दर्शकोंके उत्पत्तिकी कथा तथा चारों दुर्गोंमें मनुष्योंकी आयुका निरूपण और फिर आगे चलकर दिल्ली नगरपर पठानोंका शासन, तैमूरलंगके द्वारा भारतपर आक्रमण करने और लूटनेकी क्रियाकार वर्णन भी इसमें प्राप्त होता है।

कलियुगमें अवतीर्ण होनेवाले विभिन्न आचार्यों-संतों और भक्तोंकी कथाएँ भी यहाँ उपलब्ध हैं। श्रीशंकरचार्य, श्रीरामानन्दचार्य, निवादित्य, श्रीधरस्थानी, श्रीविष्णुस्थानी, वाराहमिहिर, भट्टोजि दीक्षित, धन्वन्तरि, कृष्णचैतन्यदेव,

श्रीरामानुज, श्रीमध्य एवं गोरक्षनाथ आदिका विस्तृत चरित्र यहाँ वर्णित है। प्रायः ये सभी सूर्यके तेज एवं अंशसे ही उत्पन्न बताये गये हैं। भविष्यतपुराणमें इन्हें द्वादशादित्यके अवतारके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। कलियुगमें धर्मरक्षार्थ इनका आविर्भाव होता है। विभिन्न सम्प्रदायोंकी स्थापनामें इनका योगदान है। इन प्रसंगोंमें प्रमुखता चैतन्य महाप्रभुको दी गयी है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि श्रीकृष्णचैतन्यने ब्रह्मसूत्र, गीता या उपनिषद् किसीपर भी साम्रादित्यके दृष्टिसे भाव्यकी रचना नहीं की थी और न किसी सम्प्रदायकी ही अपने सम्पर्यमें स्थापना की थी। उदार-भावसे नाम और गुणकीर्तनमें विभेद रहते थे। भगवान् जगत्ताथके द्वारपर ही खड़े होकर उन्होंने अपनी जीवनलीलाको श्रीविष्णुमें लेन कर दिया। साथ ही यहाँ संत सूरदासजी, तुलसीदासजी, कबीर, नरसी, पीपा, नानक, रैदास, नामदेव, रंकण, धन्ना भगत आदिकी कथाएँ भी हैं। आनन्द, गिरी, पुरी, बन, आश्रम, पर्वत, भारती एवं नाथ आदि दस नामी साधुओंकी व्युत्पत्तिका कारण भी लिखा है। भगवती यहाँकाली तथा दुष्टिराजकी उत्पत्तिकी कथा भी मिलती है।

भगवान् गणपतिको यहाँ परब्रह्मरूपमें चित्रित किया गया है। भूतभावन सदाशिवकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती पार्वतीके पुत्ररूपमें जन्म लेनेका उन्हें वर प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने भगवान् शिवके पुत्ररूपमें अवतार शारण किया। इसमें रावण एवं कुमारणकि जन्मकी कथा, रुद्रवतार श्रीहनुमान् जीकी रोचक कथा भी मिलती है। केसरीकी पत्नी अंजनीके गर्भसे श्रीहनुमतलालजी अवतार शारण करते हैं। आकाशमें उगते हुए लाल सूर्यको देख फल समझकर उसे निगलनेका प्रयास करते हैं। सूर्यके अभावमें अन्यकर देखकर इन्हें उनकी हनु (दुही) पर बद्रसे प्रहार किया, जिससे हनुमान् की उड़ी टेढ़ी हो जाती है और वे पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, जिससे उनका नाम हनुमान् पड़ा। इसी बीच रावण उनकी पूछ फकड़कर लूटक जाता है। फिर भी उन्होंने सूर्यको नहीं छोड़ा। एक वर्षतक रावणसे युद्ध होता रहा। अन्तमें रावणके

१-नामे निष्कृत्यादृ चम्भ कलिनिर्बाप्। कलिन्वत् भोद्भद्रो नारेऽस्मिन् सुप्रिये ॥

अतः कलिङ्गे नाम प्रसिद्धोऽप्यनुष्ठीततः ।

(प्रतिसर्गपर्व ४।४।३-४)

पिता विश्रवा मुनि वहाँ आते हैं और वैदिक स्तोत्रोंसे हनुमानजीको प्रसन्नकर रावणका पिण्ड छुड़ाते हैं। उदनन्तर ब्रह्माजीके प्रादुर्भाव तथा सृष्टि और उत्पत्तिकी कथा एवं शिव-पार्वतीके विवाहका वर्णन हुआ है। अन्तिम अध्यायोंमें मुगल बादशाहों तथा अंग्रेज शासकोंकी भी चर्चा हुई है। मुगल बादशाहोंमें बाबर, हुमायूं, अकबर, शाहजहाँ, जहाँगीर, और अंग्रेज आदि प्रमुख शासकोंका वर्णन मिलता है। उत्तरपति शिवाजीकी बीरताका भी वर्णन प्राप्त है। इसके साथ ही विकटोरियाके शासन और उसके पार्लियामेंटका भी उल्लेख है। विकटोरियाको यहाँ विकटाक्तीके नामसे कहा गया है। कलियुगके अन्तिम चरणमें नरकोंके भर जानेकी गाथा भी मिलती है। सभी नरक मनुष्योंसे परिपूर्ण हो जाते हैं तथा नरकोंमें अजीर्णता आ जाती है। अन्तमें कलियुगके सामान्यधर्मके वर्णनके साथ इस पर्वका उपसंहार किया गया है।

इस पुराणका अन्तिम पर्व है उत्तरपर्व। उत्तरपर्वमें मुख्य रूपसे ब्रह्म, दान और उत्तरवोंके वर्णन प्राप्त होते हैं। ब्रह्मोंकी अन्दुत शूद्रलक्षण प्रतिपादन यहाँ हुआ है। प्रत्येक तिथियों, मासों एवं नक्षत्रोंके ब्रह्मों तथा उन तिथियों आदिके अधिष्ठात्-देवताओंका वर्णन, ब्रह्मकी विधि और उसकी फलशूलितयोंका बड़े विस्तारसे प्रतिपादन किया गया है।

उत्तरपर्वके प्रारम्भमें श्रीनारदजीको भगवान् श्रीनारायण विष्णुमायाका दर्शन करते हैं। किसी समय नारदमुनिने खेतद्वीपमें भगवान् नारायणका दर्शनकर उनकी मायाको देखनेकी इच्छा प्रकट की। नारदजीके बार-बार आग्रह करनेपर श्रीनारायण नारदजीके साथ जम्बूद्वीपमें आये और मार्गमें एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। विदिशा नगरीमें घन-धान्यसे समृद्ध, उद्यमी, पशुपालनमें तत्पर, कृषिकर्मीको भलीभांति करनेवाला सीरभद्र नामका एक वैश्य निवास करता था, वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उस वैश्यने उनका यथोचित सत्कारकर भोजनके लिये पूछा। यह सुनकर वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने हँसकर कहा—‘तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों, तुम्हारी खेती और पशुधनकी नित्य वृद्धि हो यह मेरा आशीर्वाद है।’ यह कहकर वे दोनों वहाँसे चल पड़े। मार्गमें गङ्गाके तटपर गाँवमें गोस्वामी नामका एक दरिद्र ब्राह्मण

रहता था। वे दोनों उसके पास पहुँचे, वह अपनी खेती आदिकी चिन्हामें लगा था। भगवान्ने उससे कहा—‘हम तुम्हारे अतिथि हैं और भूखे हैं, अतः भोजन कराओ।’ उस ब्राह्मणने दोनोंको अपने घरपर लाकर खान-भोजन आदि कराया, अनन्तर उसम शव्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान्ने ब्राह्मणसे कहा—‘हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्कल हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो।’ इतना कहकर वे वहाँसे चले गये। यह देखकर नारदजीने आशीर्वादित होकर पूछा—‘भगवन्। वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, परंतु आपने उसे उत्तम वर दिया, किंतु इस ब्राह्मणने अद्वासे आपकी व्युत्त सेवा की, फिर भी उसे आपने आशीर्वादिके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने क्यों किया?’ भगवान्ने कहा—‘नारद! कर्वभर मछली पकड़नेसे जितना पाप होता है, एक दिन हल जोतनेसे उतना ही पाप होता है। वह वैश्य आपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है। हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया, इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया कि जिससे यह जगज्ञालमें न फैसकर मुक्तिको प्राप्त कर सके। इस प्रकार ब्राह्मीत करते हुए वे दोनों आगे बढ़ने लगे। आगे चलकर भगवान्ने नारदजीको क्वान्यकुञ्जके सरोवरमें आपनी मायासे खान कराकर एक सुन्दर स्त्रीका स्वरूप प्रदान किया तथा एक राजासे विवाह कराकर पुत्र-पौत्रोंसे सम्पत्त जगज्ञालकी मायामें लिप्त कर दिया तथा कुछ समय बाद पुनः नारदजीको अपने स्वाभाविक रूपमें लाकर भगवान् अनाहित हो गये। नारदजीने अनुभव किया कि इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो गये तो हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ करते हैं। अतः मनुष्यको इससे सावधान रहना चाहिये।

इसके बाद संसारके दोषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। महाराज युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रश्न करते हैं, यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है? मुमुक्षु और अमुक्षु फलका भोग वह कैसे करता है? इसका उत्तर देते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि उत्तम कर्मसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पापकर्मसे

पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निष्ठायमें क्लीति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है^१। वस्तुतः संसारमें कोई सुखी नहीं है। प्रत्येक प्राणीको एक दूसरेसे भय बना रहता है। यह कर्मपर्याय शरीर जन्मसे लेकर अनन्तक दुःखी ही है। जो पुण्य जितेन्द्रिय है और व्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे ही सदा सुखी रहते हैं। तदनन्तर यहाँ भगवान् श्रीकृष्णके द्वाया विविध प्रकारके पाप एवं पुण्य कर्मोंका फल बताया गया है। अधर्म कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोद्वारा करोड़ों प्रकारके पाप हैं, पर यहाँ बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। परस्तीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकर्त्ता (कुरुकर्म) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलाप, अप्रिय, असत्य, परिनिदा और पिशुनता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अपश्यत्यभक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परथन-हरण—ये चार काण्डिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इसके साथ ही जो पुण्य संसाराल्पी सागरसे उद्भाव करनेवाले भगवान् सदाशिव अथवा भगवान् विष्णुसे द्वेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्रह्महत्या, सुरपान, सुर्यकी चोरी और गुरुप्रतीगमन—ये चार भहासातक हैं। इन पातकोंको करनेवालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला पाँचवाँ महापातकी गिना जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं। इनके अतिरिक्त कई प्रकारके उपातकोंका भी वर्णन प्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पश्ची, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए

इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नक्षर जानकर लेशमात्र भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पृथ्वीपर बृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर-योनियोंमें जन्म प्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पश्ची, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए

अतिदुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाल मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये। जो अपने कल्याणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कौन होगा?

यह देश सभी देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्याणके लिये सत्कर्म करता है वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ बछना की। जबतक यह शरीर साथ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके, कर लेना चाहिये, बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-गतके बहाने नित्य आयुके ही अंश खण्डित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंको बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी और इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चलता जाना पड़ेगा। फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बांट देते? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् गर्हणके लिये भोजन है। जो दान करते हैं वे सुखपूर्वक जाते हैं। दान-हीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं। भूखे मरते जाते हैं, इन सब बातोंको विचारकर पुण्य कर्म ही करना चाहिये। पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। जो सत्पुरुष सर्वात्मभावसे श्रीपरमात्म-भूमीकी शरणमें जाते हैं, वे पदापत्रपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते, इसलिये द्वन्द्वसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं कि यहाँ भीषण नरकोक्ता जो वर्णन किया गया है, उन्हें व्रत-उपवाससूखी नौकासे पार किया जा सकता है। प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पक्षात्ताप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े। जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, व्रत, उपवास

१-शूरीऐक्यमात्रोति मित्रेन्मनुष्टो व्रजेत्। अनुष्टैः कर्मपर्याप्तुसिर्वयोनिपु जापते॥

प्रमाणं शूरिरेवाप्तं पर्याप्त्यर्थिनिष्ठये। पापं पाशेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा॥ (उत्तरपर्व ४। ६-७)

आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मोंके द्वारा सुख भोगता है। ब्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है। इसके विपरीत ब्रत-स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी रहते हैं। इसलिये ब्रत-स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

इस पर्वमें अनेक व्रतोंकी कथा, माहात्म्य, विधान तथा फलश्रुतियोंका वर्णन किया गया है। साथ ही व्रतोंके उद्घापनकी विधि भी बतायी गयी है। एक-एक तिथियोंमें कई व्रतोंका विधान है। जैसे प्रतिपदा तिथिमें तिलकब्रत, अशोकब्रत, कोकिलब्रत, बृहत्सोवत आदिका वर्णन हुआ है। इसी प्रकार जातिस्मर भद्रब्रत, यमद्वितीया, मधुकतृतीया, हरकलीब्रत, ललितात्मतीयाब्रत, अवियोगतृतीयाब्रत, उमामहेश्वरब्रत, सौभाग्यशयन, अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी तृतीयाब्रत तथा अक्षयतृतीया आदि अनेक ब्रत तृतीया तिथियें ही वर्णित हैं। इसी प्रकार गणेशब्रतस्त्री, श्रीपञ्चमीब्रत-कथा, विशोक-घटी, कमलघटी, मन्दार-घटी, विजया-सप्तमी, मुक्ताभरण-सप्तमी, कल्याण-सप्तमी, शर्करा-सप्तमी, शुभ-सप्तमी तथा अचला-सप्तमी आदि अनेक सप्तमी-ब्रतोंका वर्णन हुआ है। तदनन्तर बुधाष्टमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, दूर्घटी उत्तमि एवं दूर्घटमी, अनशाष्टमी, श्रीवृक्षनवमी, ध्वजनवमी, आशादशमी आदि व्रतोंका निरूपण हुआ है। द्वादशी तिथिमें तारकद्वादशी, अरण्यद्वादशी, गोवतसद्वादशी, देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशी, नीराजनद्वादशी, मल्लद्वादशी, विजय-श्रवणद्वादशी, गोविन्दद्वादशी, अस्त्रांगद्वादशी, धरणीब्रत (वाराहद्वादशी), विशोकद्वादशी, विभूतिद्वादशी, मदनद्वादशी आदि अनेक द्वादशी-ब्रतोंका निरूपण हुआ है। ब्रयोदशी तिथिके अन्तर्गत अबाधब्रत, दौर्भाग्य-दौर्गम्यनाशब्रत, धर्मग्रजका समाराधन-ब्रत (यमादर्शन-ब्रयोदशी), अनङ्गब्रयोदशीब्रतका विधान और उसके फलके वर्णन लिखे हैं। चतुर्दशी तिथिमें पालीब्रत एवं रम्या-(कदली-) ब्रत, शिवचतुर्दशीब्रतमें महर्षि अङ्गिराका आल्यान, अनन्त-चतुर्दशीब्रत, श्रवणिका-ब्रत, नक्तब्रत, फलस्त्रिया-चतुर्दशीब्रत आदि विभिन्न व्रतोंका निरूपण हुआ है। तदनन्तर अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमाका वर्णन, पूर्णिमासो-ब्रतोंका वर्णन, जिसमें वैशाखी, कार्तिकी और माघी

पूर्णिमाकी विदेश महिमाका वर्णन, सावित्रीब्रत-कथा, कृतिका-ब्रतके प्रसंगमें रानी कविलेशभद्रब्रत आल्यान, मनोरम-पूर्णिमा तथा अशोक-पूर्णिमाकी ब्रत-विधि आदि विभिन्न ब्रतों और आल्यानोंका वर्णन किया गया है।

तिथियोंके ब्रतोंके निरूपणके अनन्तर नक्षत्रों और मासोंके ब्रतकथाओंका वर्णन हुआ है। अनन्तब्रत-माहात्म्यमें कर्त्तवीयके आविर्भाविका बृतान्त आया है। मास-नक्षत्रब्रतके माहात्म्यमें साप्तशतायीकी कथा, प्रायश्चित्तलूप सम्पूर्ण ब्रतका विधान, बृन्ताक (बैगन)-त्यागब्रत एवं प्रह-नक्षत्रब्रतकी विधि, शनैष्वरमतमें महामुनि पैष्पलादका आल्यान, संकान्तिब्रतके उद्घापनकी विधि, भद्रा (विष्टि)-ब्रत तथा भद्राके आविर्भाविकी कथा, चन्द्र, शुक्र तथा बृहस्पतिको अर्थ देनेकी विधि आदिके वर्णन हुए हैं। इस पर्वके १२१ वें अध्यायमें विविध प्रकीर्ण ब्रतके अन्तर्गत प्रायः ८५ ब्रतोंका उल्लेख आता है, तदनन्तर माघ-स्नानका विधान, स्नान, तर्पणविधि, रुद्र-स्नानकी विधि, सूर्य-चन्द्र-ग्रहणमें स्नानका माहात्म्य आदिके वर्णन प्राप्त होते हैं।

मृत्युसे पूर्व अर्थात् मरणासन्न गृहस्थ पुरुषको शरीरका त्याग किस प्रकार करना चाहिये, इसका बड़ा ही सुन्दर विवेचन यहाँ १२६ वें अध्यायमें हुआ है। जब पुरुषको यह मालूम हो कि मृत्यु समीप आ गयी है तो उसे सब ओरसे मन हटाकर गृहङ्क्षज भगवान् विष्णुका अथवा अपने इष्टदेवका स्मरण करना चाहिये। स्नानसे पवित्र होकर क्षेत्र वस्त्र धारण करके सभी उपचारोंसे नारायणकी पूजाकर स्तोत्रोंसे सुन्ति करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, चरू, अन आदिका दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र, धन-धान्य तथा पशु आदिसे वित हटाकर ममलकत्त सर्वथा परित्याग कर दे। मित्र, शाशु, उदासीन, अपने और पराये लोगोंके उपकार और अपकारके विषयमें विचार न करता हुआ अपने मनको पूर्ण ज्ञान कर ले। जगदुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं है, इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेषां भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण करके निरन्तर वासुदेवके नामका स्मरण-कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अल्यन्त समीप आ जाय तो दक्षिणाम् कुशा विद्युक्कर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे और परमात्म-प्रभुसे यह प्रार्थना करे कि 'हे

जगन्नाथ ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करे, वायु एवं आकाशकी भाँति मुझमें और आपमें कोई अनन्त न रहे। मैं आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।' इस प्रकार भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनका दर्शन करे। जो अपने इष्टदेवका अथवा भगवान् विष्णुका ध्यानकर प्राण त्याग करता है, उसके सब पाप छूट जाते हैं और वह भगवान्‌में लीन हो जाता है। मृत्युकालमें यदि इतना करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राण त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावसे स्मरणकर प्राण त्याग करता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकारसे निवृत होकर बासुदेवका स्मरण और चिन्तन करना ही श्रेयस्कर है। इसी प्रसंगमें भगवान्‌के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपपर भी प्रकाश ढाला गया है। जो साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और जनने योग्य है।

महर्षि मार्कण्डेयजीके द्वारा चार प्रकारके ध्यानका विवेचन किया गया है—(१) रुच्य, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, रुदी, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोहके कारण उसका चिन्तन-स्मरण बना रहता है तो वह मोहजन्य 'आद्य' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानसे तिर्यक्-योनि तथा अषोगतिकी प्राप्ति होती है। (२) दयाके अभावमें यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी इच्छा रहती हो, ऐसी क्रियाओंमें जिसका मन लगा हो, उसे 'रौद्र' ध्यान कहा गया है। इस ध्यानसे नरक प्राप्त होता है। (३) वेदाधिके चिन्तन, इन्द्रियके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि करना 'धर्मी' ध्यान है। 'धर्मी' ध्यानसे स्वर्गकी अथवा दिव्यलोककी प्राप्ति होती है। (४) समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट—किसीका भी चिन्तन नहीं होना और आत्मस्थित होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करते हुए परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्र' ध्यानका स्वरूप है। इस ध्यानसे भोक्षकी प्राप्ति अथवा भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि कल्याणकरी 'शुक्र' ध्यानमें ही चित्त स्थिर हो जाय।

इस प्रकरणके बाद दानकी महिमा एवं विभिन्न उत्सवोंका

वर्णन आया है। सर्वप्रथम दीपदानकी महिमामें रानी ललिताके आलयानका तथा वृषोत्सर्वाकी महिमाका वर्णन हुआ है। अनन्तर कन्यादानके महत्वपर प्रकाश ढाला गया है। आभूषणोंसे अलंकृत कन्याको अपने वर्ण और जातिमें दान करनेकी अत्यधिक महिमा बतायी गयी है। अनाथ कन्याके विवाह करनेका भी विशेष फल कहा गया है। इस पर्वमें धेनुदानका विशद वर्णन प्राप्त होता है। कई प्रकाररकी धेनुओंके दानका प्रकरण आया है। प्रत्यक्ष धेनु, तिलधेनु, जलधेनु धूतधेनु, लवणधेनु, काञ्छनधेनु, रलधेनु आदिके वर्णन मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कपिलदान, महिषीदान, भूमिदान, सौवर्णीपंक्तिदान, गृहदान, अब्रदान, विद्यादान, तुलापुरुषदान, हिरण्यगर्भदान, ब्रह्माप्तदान, कल्पवृक्ष-कल्पलतादान, गजरथाधरथदान, कल्पलपुरुषदान, सप्तसागरदान, महाभूतघटदान, शश्वादान, हेमहस्तिरथदान, विश्वचक्रदान, नक्षत्रदान, तिथिदान, धन्वपर्वतदान, लवणपर्वतदान, गुडाचलदान, हेमाचलदान, तिलाचलदान, कार्पासाचलदान, धूताचलदान, रलाचलदान, रौप्याचलदान तथा शर्कराचलदान आदि दानोंकी विधियाँ विस्तारपूर्वक निरूपित हुई हैं।

भारतीय संस्कृतमें उत्सवोंका विशेष महत्व है। विभिन्न तिथियोंपर तथा पवित्रोंपर विभिन्न प्रकारसे उत्सवोंको मनाया जाता है और सभी उत्सवोंकी अलग-अलग महिमा भी है। यहाँ इन उत्सवोंका भी वर्णन हुआ है। होलिकोत्सव, दीपमालिकोत्सव, रक्षाबन्धन, महानवमी-उत्सव, इन्द्र-ध्यजोत्सव आदि मुख्य रूपसे वर्णित हैं। होलिकोत्सवमें दोषोंकी कथा मिलती है। इन उत्सवोंके अतिरिक्त कोटिहोम, नक्षत्रहोम, गणनाथशत्रांति आदिके विधान भी दिये गये हैं।

भविष्यपुराणमें ब्रत और दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ दी गयी हैं, वे मुख्यतः हल्लोके तथा परलेकमें दुःखोंकी निवृति तथा भोगीधर्य और स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्तिसे ही सम्बन्धित हैं। सामान्यतः मनुष्यको जीवनमें दो बातें प्रभावित करती हैं—एक तो दुःखोंका भय और दूसरा मुख्यका प्रलोभन। इन दोनोंके लिये मनुष्य कुछ भी करनेको तत्पर रहता है। परमात्म-प्रभुमें हमारी आस्था एवं विश्वास जाग्रत् हो और हमारे सम्बन्ध भगवान्से स्थापित हो, इसके लिये अपने शास्त्रों और पुण्योंमें लौकिक तथा पारलौकिक कामनाओंकी

सिद्धिके लिये फलश्रुतियाँ विजेप्रलपसे प्रदर्शित हुई हैं। वास्तवमें दुःखोंके भवसे तथा स्वर्ग आदि सुखोंके प्रलोभनसे जब मानव एक बार ब्रत, दान आदि सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त हो जाता है और उसमें उसे सफलताके साथ आनन्दकी अनुभूति होने लगती है तो आगे चलकर यह सत्कर्म भी उसका स्वभाव और व्यवसन बन जाता है और जब भी भगवत्कृपासे सत्संग आदिके द्वारा उसे वास्तविक तत्त्वका ज्ञान हो जाता है अथवा मानव-जीवनके मुख्य उद्देश्यको वह जान लेता है तो फिर भगवत्प्राप्तिमें देर नहीं लगती। यस्तुतः मानव-जीवनका मुख्य उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है और भगवत्प्राप्ति निष्काम उपासनासे ही सम्भव है। यहाँ ब्रत-दान आदिके प्रकरणमें जो फलश्रुतियाँ आयी हैं, वे लौकिक एवं पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिमें तो समर्थ हैं ही, यदि निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ इनका अनुष्ठान किया जाय तो वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त कर भगवत्प्राप्ति करनेमें भी पूर्ण समर्थ हैं। अतः कल्याणकामी पुरुषोंको ये ब्रत-दान आदि कर्म भगवत्प्रीत्यर्थ निष्कामरूपमें ही करने चाहिये।

एक बात और ध्यान देनेकी है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है—वह यह कि पुराणमें जहाँ जिस देवता, ब्रत, दान और तीर्थका महत्व बतलाया गया है, वहाँ उसीको सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। गहराईसे विचार न करनेपर यह बात विचित्र-सी प्रतीत होती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्का यह लीलाभिनय ऐसा आकृत्यमय है कि इसमें एक ही परिपूर्ण भगवान् विभिन्न विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रूचि, स्वभाव तथा अधिकारसम्बन्ध साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त विचित्र रूपोंमें नित्य प्रकट है। भगवान्के ये सभी रूप नित्य, पूर्णतम और सविदानन्दस्वरूप हैं, अपनी-अपनी रूचि और निष्ठाके अनुसार जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमें समस्त रूपमय भगवान्को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि भगवान्के सभी रूप पूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतों तथा दान आदिके

सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव ब्रह्म एवं निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसको सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्सत्त्वकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों, महात्माओं और भक्तोंमें अपनी कल्याणमयी सत्साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्को अपनी-अपनी रूचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूपशक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें, अनन्त नाम-रूपोंमें प्रतिष्ठित हुए। भगवान्के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो ब्रह्म, निष्ठा और रूचिके अनुसार सेवन करनेवालोंको यथायोग्य फल देते हैं, यहीं तीर्थ-हस्त है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थके सर्वोपरि बतलाना सर्वथा उचित ही है।

सब एक हैं, इसकी पुष्टि तो इसीसे भलीभांति हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णवपुराणमें शिवकी महिमा गायी गयी है तथा दोनोंको एक बताया गया है। इसी प्रकार अन्य पुराण-विशेषके विशिष्ट प्रधान देवने अपने ही श्रीमुखसे अन्य पुराणोंके प्रधान देवताको अपना ही स्वरूप बतलाया है। यह भविष्यपुराण सौरपुराण है, जिसमें भगवान् सूर्यनारायणकी अनन्त महिमाका वर्णन प्राप्त होता है। परंतु इसी पुराणके अनन्तमें अध्याय २०५ में सदाचारका निरूपण हुआ है। इसमें यह बात आयी है—भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं—हमने ब्रतोंमें अनेक देवताओंका पूजन आदि कहा, परंतु वास्तवमें इन देवोंमें कोई भेद नहीं। जो ब्रह्म है, वही विष्णु, जो विष्णु है वही शिव है, जो शिव है वही सूर्य है, जो सूर्य है वही अग्नि, जो अग्नि है वही कार्तिकेय, जो कार्तिकेय है वही गणपति अर्थात् इन देवताओंमें कोई भेद नहीं। इसी प्रकार गौरी, लक्ष्मी, साधित्री आदि शक्तियोंमें भी भेदका लेश नहीं। चाहे जिस देवी-देवताके उद्देश्यसे ब्रत करे, पर भेदबुद्धि न रखे, क्योंकि सब जगत् शिव-शक्तिमय है।

किसी देवताका आश्रय लेकर नियम-ब्रत आदि करे,

परंतु जितने ब्रत-दान आदि बताये गये हैं, वे सब आचारयुक्त पुरुषके सफल होते हैं। आचारहीन पुरुषके वेद पवित्र नहीं करते, चाहे उसने छहों अशुद्धसहित बसों न पढ़ा हो। जिस भाँति पंख जमनेपर पक्षियोंके बचे घोसलेखों छोड़कर उड़ जाते हैं, उसी भाँति आचारहीन पुरुषको वेद भी मृत्युके समय त्याग देते हैं। जैसे अशुद्ध पात्रमें जल अथवा शानके चर्ममें दुग्ध रहनेसे अपवित्र हो जाता है, उसी प्रकार आचारहीनमें विषत शाख भी

व्यर्थ है। आचार ही धर्म और कुलका मूल है—जिन पुरुषोंमें आचार होता है वे ही सत्यरूप कहलाते हैं। सत्यरूपोंका जो आचरण है, उसका नाम सदाचार है। जो पुरुष अपना कल्याण चाहे उसे अवश्य ही सदाचारी होना चाहिये।

भविष्यपुण्यमें इन्हीं सब विषयोंका प्रतिपादन बड़े समारोहसे सम्पन्न हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये पुण्यका एक विहङ्गमावलोकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

—राधेश्याम खेमका

अक्ष्युपनिषद्

(नेत्रोगाहारी विद्या)

हरि: ॐ । अथ ह साकृतिर्भगवानादित्यलोके जगाम । स आदित्यं नत्वा चक्षुष्टीविद्यया तपस्तुवत् । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायाक्षितेजसे नमः । ॐ स्वेच्छाय नमः । ॐ यहासेनाय नमः । ॐ तपसे नमः । ॐ रजसे नमः । ॐ सत्त्वाय नमः । ॐ असत्तो मा सद् गमय । तप्तसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय । हंसो भगवाऽङ्गुचिरूपः अप्रतिस्फूर्यः । विष्वस्त्वय धृणिनं जातवेदसं हिरण्यमर्यं ज्योतीर्त्तमर्यं तपत्तम् । सहस्ररित्यः शतधा वर्तमानः पुरः प्रजानामृद्यत्वेत्वं सूर्यः । ॐ नमो भगवते श्रीसूर्यायादित्यायाक्षितेजसेऽहोऽवाहिनि वाहिनि रुहाहिति ।

एवं चक्षुष्टीविद्याया सुतः श्रीसूर्यनारायणः सुतीतोऽप्यवीच्छक्षुष्टीविद्यां ब्राह्मणो यो नित्यमर्थीते न तत्त्वाङ्किरोगो भवति । न तत्प्र कुरुतेऽन्यो भवति । अहौ ब्राह्मणान् भ्राह्मित्याव विद्यासिद्धिर्भवति । य एवं वेद स महान् भवति ।

* * *

एक समय भगवान् साकृति आदित्यलोकमें गये। वहाँ सूर्यनारायणको प्रणाम करके उन्होंने चक्षुष्टी विद्याके द्वाय उनकी सुति की। चक्षु-इन्द्रियके प्रकाशक भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। आकाशमें विचरण करनेवाले सूर्यनारायणको नमस्कार है। महासेन (सहस्रों किलोंकी भारी सेनावाले) भगवान् श्रीसूर्यनारायणको नमस्कार है। तमोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। रजोगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। सत्त्वगुणरूपमें भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार है। भगवन् ! आप मुझे असत्तो सत्त्वकी ओर ले चलिये, मुझे अन्यकारसे प्रकाशकी ओर ले चलिये, मुझे मृत्युसे अमृतकी ओर ले चलिये। भगवान् सूर्य सुचिरूप है और वे अप्रतिरूप भी हैं—उनके रूपकी कहीं भी तुलना नहीं है। जो अशिल रूपोंके घारण कर रहे हैं तथा रीढ़मालाओंसे मरीज़ हैं, उन जातवेदा (सर्वज्ञ, अप्रतिस्फूर्य) स्वर्णसदृश प्रकाशवाले ज्योतिःस्वरूप और तपनेवाले (भगवान् भास्करको हम स्मरण करते हैं ।) ये सहस्रों किलोंवाले और ज्ञात-ज्ञात प्रकाशरसे सुधोर्पित भगवान् सूर्यनारायण समस्त प्राणियोंके समक्ष (उनकी भलाईके लिये) उटित हो रहे हैं। जो हमारे नेत्रोंके प्रकाश हैं, उन अद्वितीयन्दन भगवान् श्रीसूर्यको नमस्कार है। दिनका भार वहन करनेवाले विषवाहक सूर्यदेवके प्रति हमारा सब कुछ सादर समर्पित है ।

इस प्रकार चक्षुष्टीविद्याके द्वाय सुति किये जानेपर भगवान् सूर्यनारायण अर्थना प्रसन्न होकर बोले—‘जो ब्राह्मण इस चक्षुष्टीविद्याका मित्य पाठ करता है, उसे आँखका रोग नहीं होता, उसके कुलमें कोई अंषा नहीं होता। आठ ब्राह्मणोंके इसका ग्रहण करा देनेपर इस विद्याकी सिद्धि होती है। जो इस प्रकार जानता है, वह महान् हो जाता है।

पाठकः कर्त्तिक्योऽप्तौ कर्त्तिक्यो विनाशकः । गौरी लक्ष्मीष साधित्री इक्षिमेदा: प्रकीर्तिः ॥

देव देवी समुद्दिष्य यः करोति वत्त नः । न भेदस्त्व तन्त्रः विवशकिमयं जगत् ॥ (उत्तरपर्व २०५ । ११—१३)

३० श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

३० नमो भगवते वासुदेवाय

संक्षिप्त भविष्यपुराण ब्राह्मपर्व

व्यास-शिष्य महर्षि सुमन्तु एवं राजा शतानीकका संवाद, भविष्यपुराणकी महिमा एवं परम्परा,
सृष्टि-वर्णन, चारों वेद, पुराण एवं चारों वर्णोंकी उत्पत्ति, चतुर्विंश सृष्टि,
काल-गणना, युगोंकी संख्या, उनके धर्म तथा संस्कार

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं स्वासं ततो जयमुहीरयेत् ॥

'बद्रिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण तथा श्रीनर (अनन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके नित्य-सक्षा नरस्वरूप नरक्षेषु अर्जुन), उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती और उनकी लीलाओंके वक्त्र महर्षि वेदव्यासको नमस्कार कर जय'—आसुरी सम्पत्तियोंका नाश करके अनन्तकरणपर देवी सम्पत्तियोंको विजय प्राप्त करनेवाले वाल्मीकीय रामायण, महाभारत एवं अन्य सभी इतिहास-पुराणादि सद्ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिये।'

जयति पराशरसम्मुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।

यस्यास्यकमलगिरिं वाङ्मयममृतं जगत् पिषति ॥

'पराशरके पुत्र तथा सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत अमृतमयी वाणीका यह सम्पूर्ण विश्व पान करता है।'

यो गोशते कनकशङ्कमयं ददाति

विप्राय वेदविदुये च बहुमुक्ताय ।

पुण्यां भविष्यसुक्यां शृणुयात् समप्राप्तां

पुण्यं सर्वं भवति तत्य च तत्य चैव ॥

'वेदादि शास्त्रोंके जाननेवाले तथा अनेक विषयोंके मर्मज्ञ विद्वान् ब्राह्मणको स्वर्णजटित सींगोवाली सैकड़ों गौओंको दान देनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, ठीक उतना ही पुण्य इस भविष्य-महापुराणकी उत्तम कथाओंके श्रवण करनेसे प्राप्त होता है।'

एक समय व्यासजीके शिष्य महर्षि सुमन्तु तथा वसिष्ठ परशर, जैमिनि, याज्ञवल्य, गौतम, वैशाम्यायन, शौनक, अङ्गिर और भारद्वाजादि महर्षिगण पाण्डववंशमें समृतप्र महाबलशाली राजा शतानीककी सधार्मे गये। राजाने उन ऋषियोंका अर्थादिसे विधिवत् स्वागत-सत्कार किया और उन्हें उत्तम आसनोंपर बैठाया तथा भलीभांति उनका पूजन कर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना की—'हे महात्माओं ! आपलोगोंके आगमनसे मेरा जन्म सफल हो गया। आपलोगोंके स्मरणमात्रसे ही मनुष्य पवित्र हो जाता है, फिर आपलोग मुझे दर्शन देनेके लिये यहाँ पधारे हैं, अतः आज मैं धन्य हो गया। आपलोग कृपा करके मुझे उन पवित्र एवं पुण्यमयी धर्मशास्त्रकी कथाओंको सुनाये, जिनके सुननेसे मुझे परमगतिकी प्राप्ति हो।'

ऋषियोंने कहा—'हे राजन् ! इस विषयमें आप हम सबके गुरु, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् वेदव्याससे निषेद्दन करें। वे कृपालु हैं, सभी प्रकारके शास्त्रोंके और विद्याओंके ज्ञाता हैं। जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है, उस 'महाभारत' प्रथके रचयिता भी यही है।'

राजा शतानीकने ऋषियोंके कथनानुसार सभी शास्त्रोंके जाननेवाले भगवान् वेदव्याससे प्रार्थनापूर्वक जिज्ञासा की—प्रमो ! मुझे आप धर्ममयी पुण्य-कथाओंका श्रवण कराये, जिससे मैं पवित्र हो जाऊं और इस संसार-सागरसे मेरा

१-'जय' शब्दकी व्याख्या प्रायः कई पुण्योंमें आयी है। भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वके चौथे अध्याय (इसके ८६ से ८८) में इसे विस्तारसे समझाया गया है, वहाँ देखना चाहिये।

उद्धार हो जाय।

व्यासजीने कहा— 'राजन् ! यह मेरा शिव्य सुमनु महान् तेजस्वी एवं समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता है, यह आपकी जिज्ञासाको पूर्ण करेगा।' मुनियोंने भी इस बातका अनुमोदन किया। तदनन्तर राजा शतानीकने महापुराण सुमन्तुसे उपदेश करनेके लिये प्रार्थना की—हे द्विजश्रेष्ठ ! आप कृपाकर उन पुण्यमयी कथाओंका वर्णन करें, जिनके सुननेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और शुभ फलोंकी प्राप्ति होती है।

महामुनि सुमन्तु बोले— राजन् ! धर्मशास्त्र सबको पवित्र करनेवाले हैं। उनके सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। बताओ, तुम्हारी कथा सुननेकी इच्छा है ?

राजा शतानीकने कहा— ब्राह्मणदेव ! वे कौनसे धर्मशास्त्र हैं, जिनके सुननेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है।

सुमन्तु मुनि बोले— राजन् ! मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वासिष्ठ, दक्ष, संवर्ती, शतानाप, पराशर, आपस्तम्ब, उत्तरा, काल्याण, बृहस्पति, गौतम, शङ्ख, लिंगित, हारीत तथा अत्रि आदि क्राणियोद्भव रचित मन्त्रादि बहुत-से धर्मशास्त्र हैं। इन धर्मशास्त्रोंको सुनकर एवं उनके रहस्योंको भलीभांति हृदयकूपकर मनुष्य देवलोकमें जाकर परम आनन्दको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शतानीकने कहा— प्रभो ! जिन धर्मशास्त्रोंको आपने कहा है, इन्हें मैं सुना हूँ। अब इन्हें पुनः सुननेकी इच्छा नहीं है। कृपाकर आप चारों वर्णोंका कल्याणके लिये जो उपयुक्त धर्मशास्त्र हो उसे मुझे बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले— हे महाबाहो ! संसारमें निमग्र प्राणियोंके उद्धारके लिये अठारह महापुराण, श्रीरामकथा तथा महाभारत आदि सद्गम्य नौकारुण्यी साधन हैं। अठारह महापुराणों तथा आठ प्रकारके व्याकरणोंको भलीभांति समझकर सत्यवतीके पुत्र वेदव्यासजीने 'महाभारतसंहिता'की रचना की, जिसके सुननेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इनमें आठ प्रकारके व्याकरण ये हैं—ब्राह्म, ऐत्र, यात्र्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्री तथा वैष्णव। ब्रह्म, परा, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य,

ब्रह्मवैवर्ती, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गणड तथा ब्रह्माण्ड—ये अठारह महापुराण हैं। ये सभी चारों वर्णोंके लिये उपकारक हैं। इनमेंसे आप कथा सुनना चाहते हैं ?

राजा शतानीकने कहा— हे विष्ण ! मैंने महाभारत सुना है तथा श्रीरामकथा भी सुनी है, अन्य पुराणोंको भी सुना है, किंतु भविष्यमहापुराण नहीं सुना है। अतः विष्णवेष्ट ! आप भविष्य-पुराणको मुझे सुनाये, इस विषयमें मुझे महत् कैतूहल है।

सुमन्तु मुनि बोले— राजन् ! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है। मैं आपको भविष्यमहापुराणकी कथा सुनाता हूँ, जिसके अवधारण करनेसे ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं और अश्वमेधादि यज्ञोंका पुण्यफल प्राप्त होता है तथा अन्तमें सूर्योलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह उत्तम पुराण पहले ब्रह्मजीवाया कहा गया है। विष्णव, ब्राह्मणको इसका सम्पूर्ण अध्ययनकर अपने शिष्यों तथा चारों वर्णोंके लिये उपदेश करना चाहिये। इस पुराणमें श्रीत एवं स्मार्त सभी धर्मोंका वर्णन हुआ है। यह पुराण परम मङ्गलप्रद, सद्बुद्धिको बढ़ानेवाला, यश एवं कीर्ति प्रदान करनेवाला तथा परमपद—मोक्ष प्राप्त करनेवाला है—

इदं स्वस्त्रवदनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिविवर्धनम् ।

इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेष्ठं परम् ॥

(ब्राह्मर्थ १ : ७९)

इस भविष्यमहापुराणमें सभी धर्मोंका संनिवेश हुआ है तथा सभी वर्णोंके गुणों और दोषोंके फलोंका निरूपण किया गया है। चारों वर्णों तथा आश्रमोंके सदाचारका भी वर्णन किया गया है, क्योंकि 'सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है' ऐसा श्रुतियोंने कहा है, इसलिये ब्राह्मणको नित्य आचारका पालन करना चाहिये, क्योंकि सदाचारसे विहीन ब्राह्मण किसी भी प्रकार वेदके फलोंको प्राप्त नहीं कर सकता। सदा आचारका पालन करनेपर तो वह सम्पूर्ण फलोंका अधिकारी हो जाता है, ऐसा कहा गया है। सदाचारको ही मुनियोंने धर्म तथा तपस्याओंका मूल आधार माना है, मनुष्य भी इसीका आश्रय लेकर धर्माचारण करते हैं। इस प्रकार इस भविष्यमहापुराणमें आचारका वर्णन किया गया है। तीनों लोकोंकी उत्पत्ति,

विवाहादि संस्कार-विधि, ऋषी-पुरुषोंके लक्षण, देवपूजाका विधान, राजाओंके धर्म एवं कर्तव्यका निर्णय, सूर्यनाशयण, विष्णु, रुद्र, दुर्गा तथा सत्यनाशयणका महात्म्य एवं पूजा-विधान, विविध तीर्थोंका वर्णन, आपद्वर्म तथा प्रायशित्त-विधि, संध्याविधि, खान, तर्पण, वैष्णव, भोजनविधि, जातिधर्म, कुलधर्म, वेदधर्म तथा यज्ञ-मण्डलमें अनुष्ठित होनेवाले विविध यज्ञोंका वर्णन हुआ है।

हे कुरुशेष! शतानीक! इस महापुराणको ब्रह्माजीने शंकरको, शंकरने विष्णुको, विष्णुने नारदको, नारदने इन्द्रको, इन्द्रने पराशरको तथा पराशरने व्यासको सुनाया और व्याससे मैंने प्राप्त किया। इस प्रकार परम्परा-प्राप्त इस उत्तम भविष्यमहापुराणको मैं आपसे कहता हूँ, इसे सुनें।

इस भविष्यमहापुराणकी इलोक-संख्या पचास हजार है। इसे भक्तिपूर्वक सुननेवाला प्रसिद्ध, वृद्धि तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। ब्रह्माजीद्वारा प्रोक्त इस महापुराणमें पाँच पर्व कहे गये हैं—(१) आहा, (२) वैष्णव, (३) शैव, (४) त्वाष्ट् तथा (५) प्रतिसर्गपर्व। पुराणके सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—ये पाँच लक्षण बताये गये हैं तथा इसमें चौदह विद्याओंका भी वर्णन है। चौदह विद्याएँ इस प्रकार हैं—चार वेद (ऋग्, यजु., साम, अथर्व), छ: वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गार्व्यवेद तथा अर्थशास्त्र—इन चारोंको मिलानेसे अटारह विद्याएँ होती हैं।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन! अब मैं भूतसर्ग अर्थात् समस्त प्राणियोंकी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पाणीकी निवृत्ति हो जाती है और मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त करता है।

हे तात! पूर्वकालमें यह सारा संसार अन्यकारसे व्याप्त था, कोई पदार्थ दृष्टिगत नहीं होता था, अविज्ञेय था, अतर्क्य था और प्रसुप्त-सा था। उस समय सूक्ष्म अर्तीनिदिय और सर्वभूतमय उस परब्रह्म परमात्मा भगवान् भास्करने अपने शरीरसे नानाविधि सृष्टि करनेकी इच्छा की और सर्वप्रथम परमात्माने जलको उत्पन्न किया तथा उसमें अपने वीर्यरूप शक्तिका आधान किया। इससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ। वह वीर्य जलमें गिरनेसे अस्त्वत् प्रकाशमान सुवर्णका अण्ड हो गया। उस अण्डके मध्यसे सृष्टिकर्ता चतुर्मुख लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए।

नर (भगवान्)से जलकी उत्पत्ति हुई है, इसलिये जलके नार कहते हैं। वह नर जिसका पहले अवन (स्थान) हुआ, उसे नाशयण कहते हैं। ये सदसद्बूप, अव्यक्त एवं नित्यकारण हैं, इनसे जिस पुल्य-विशेषकी सृष्टि हुई, वे लोकमें ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुए। ब्रह्माजीने दीर्घकालतक तपस्या की और उस अण्डके दो भाग कर दिये। एक भागसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की, मध्यमें रूपां, आठों दिशाओं तथा वरुणका निवास-स्थान अर्थात् समुद्र बनाया। फिर महादादि तत्त्वोंकी तथा सभी प्राणियोंकी रचना की।

परमात्माने सर्वप्रथम आकाशको उत्पन्न किया और फिर क्रमसे वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—इन तत्त्वोंकी रचना की। सृष्टिके आदिमें ही ब्रह्माजीने उन सबके नाम और कर्म केदोंके निर्देशानुसार ही नियत कर उनको अलग-अलग संस्थाएँ बना दी। देवताओंके सुपित आदि गण, ज्योतिष्ठोमादि सनातन यज्ञ, ग्रह, नक्षत्र, नदी, समुद्र, पर्वत, सम एवं विषम भूमि आदि उत्पन्न कर कालके विभागों (संवत्सर, दिन, मास आदि)और कहतुओं आदिकी रचना की। काम, द्वोध आदिकी रचनाकर विविध कर्मोंके सदसद्विषेषके लिये धर्म और

आचाराद्विच्युतों विषये न वेदाकलमस्तुते। आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णाकलभावः स्तृतः ॥

एवमाचारातो द्रष्टव्या धर्मेण मुनयो गतिम्। सर्वस्य तत्त्वां मूलमात्मां जगत् ॥ परम् ॥

अन्ये च मात्राः गजवाचारां मंडिताः सदा। एवमस्मिन् पुराणे तु आचारस्तु कर्त्तव्यम् ॥ (ब्राह्मण्य १। ४१-४४)

१-कर्त्तव्यम समयमें भविष्यपुराणका ज्ञ लेनेकरण उपलक्ष्य है, उसमें आहा, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर नामक चार सर्ग विस्तृत हैं और इलोक-संख्या भी पराम तातारके शतानाश लगभग अट्ठाइंस हजार है। इसमें भी कुछ अश विक्षिप्त माने जाते हैं।

२-सर्वाङ्ग प्रतिसर्गाङ्ग वेदों मन्वन्तराणि च ॥

वंशानुचरिते वैष्य पुराणे पश्चात्कलाशम्। चतुर्मुखभिर्विद्याभिर्भूतिं

कुरुनन्दन ॥ (ब्राह्मण्य २। ४१-४)

अधर्मकी रचना की और नानाविध प्राणिजगतकी सृष्टिकर उनको मुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि दून्होंसे संयुक्त किया। जो कर्म जिसने किया था तदनुसार उनकी (इन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि) पदोपर नियुक्ति हुई। हिंसा, अहिंसा, मृतु, कृत, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवोंका जैसा स्वभाव था, वह वैसे ही उनमें प्रविष्ट हुआ, जैसे विभिन्न ऋतुओंमें वृक्षोंमें पुष्प, फल आदि उत्पन्न होते हैं।

इस लोककी अभिवृद्धिके लिये ब्रह्माजीने अपने मुखसे ब्रह्मण, बाहुओंसे शत्रिय, ऊरु अर्थात् जंघासे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माजीके चारों मुखोंसे चार वेद उत्पन्न हुए। पूर्व-मुखसे ऋषियोंके प्रकट हुआ, उसे वसिष्ठ मुनिने ग्रहण किया। दक्षिण-मुखसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, उसे महर्षि याज्ञवल्क्यने ग्रहण किया। पश्चिम-मुखसे सामवेद निःसृत हुआ, उसे गौतमऋषिने धारण किया और उत्तर-मुखसे अथर्ववेद प्रादुर्भूत हुआ, जिसे लोकपूजित महर्षि शौनकने ग्रहण किया। ब्रह्माजीके लोकप्रसिद्ध पञ्चम (ऊर्ध्व) मुखसे अठारह पुण्य, इतिहास और यमादि सृति-शास्त्र उत्पन्न हुए।

इसके बाद ब्रह्माजीने अपने देहके दो भाग किये। दाहिने भागको पुरुष तथा बाये भागको रुपी बनाया और उसमें विराद् पुरुषकी सृष्टि की। उस विराद् पुरुषने नाना प्रकारकी सृष्टि रचनेकी इच्छासे बहुत कालतक तपस्या की और सर्वप्रथम दस ऋषियोंको उत्पन्न किया, जो प्रजापति कहलाये। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) नारद, (२) भृगु, (३) वसिष्ठ, (४) प्रवेता, (५) पुलह, (६) कन्तु, (७) पुलस्य, (८) अत्रि, (९) अङ्गिरा और (१०) मरोचि। इसी प्रकार अन्य महातेजस्वी ऋषि भी उत्पन्न हुए। अनन्तर देवता, ऋषि, दैत्य और राक्षस, पिशाच, गर्वर्ष, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदि योनियोंके अनेक गण उत्पन्न किये और उनके रहनेके स्थानोंको बनाया। विद्युत्, मेघ, वज्र, इन्द्रधनुष,

धूमकेतु (पुच्छल तारे), उल्का, निर्वात (बादलोंकी गडगडाहट) और छोटे-बड़े नक्षत्रोंको उत्पन्न किया। मनुष्य, किंवर, अनेक प्रकारके मत्स्य, बगाह, पक्षी, हाथी, घोड़े, पशु, मृग, कूमि, कोटि, पतंग आदि छोटे-बड़े जीवोंको उत्पन्न किया। इस प्रकार उन भास्तुदेवने विलोकीकी रचना की।

हे राजन्! इस सृष्टिकी रचनाकर सृष्टिमें जिन-जिन जीवोंका जो-जो कर्म और क्रम कहा गया है, उसका मैं वर्णन करता हूँ, आप सुनें।

हाथी, व्याल, मृग और विविध पशु, पिशाच, मनुष्य तथा राक्षस आदि जगतुज (गर्भसे उत्पन्न होनेवाले) प्राणी हैं। मत्स्य, कछुबे, सर्प, मगर तथा अनेक प्रकारके पक्षी आण्डज (अण्डेसे उत्पन्न होनेवाले) हैं। मक्खी, मच्छर, ज़ूँ, खटमल आदि जीव स्नेहज वै अर्थात् पश्चानेकी उष्णासे उत्पन्न होते हैं। भूमिको उद्देश कर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, ओषधियाँ आदि डिन्डगल सृष्टि हैं। जो फलके पक्नेतक रहे और पीछे सूख जाये या नष्ट हो जाये तथा बहुत फूल और फलवाले वृक्ष हैं वे ओषधि कहलाते हैं और जो पुष्पके आये बिना ही फलते हैं, वे बनस्पति हैं तथा जो फूलते हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं। इसी प्रकार गुलम, बल्ली, वितान आदि भी अनेक भेद होते हैं। ये सब बीजसे अथवा काण्डसे अर्थात् वृक्षकी छोटी-सी शास्त्र काटकर भूमिमें गाढ़ देनेसे उत्पन्न होते हैं। ये वृक्ष आदि भी चेतना-शक्तिसम्पन्न हैं और इन्हे मुख-दुःखका ज्ञान रहता है, परंतु पूर्वजन्मके कर्मके कारण तमोगुणसे आच्छ्रुत रहते हैं, इसी कारण मनुष्योंकी भाँति बातचीत आदि करनेमें समर्थ नहीं हो पाते।

इस प्रकार यह अविन्त्य चरणचर-जगत् भगवान् भास्तुरसे उत्पन्न हुआ है। जब वह परमात्मा निद्राका आश्रय ग्रहण कर शयन करता है, तब यह संसार उसमें लीन हो जाता है और जब निद्राका त्वाग करता है अर्थात् जागता है, तब सब सृष्टि उत्पन्न होती है और समस्त जीव पूर्वकर्मानुसार अपने-अपने

१-यत्तन्मयं महावाहो पद्ममें लोकविकृतम्। अष्टवदा पुरुषानि सेतिलासनि भारत ॥

(ब्राह्मण्ड २। ५६-५७)

निर्गतानि तत्सामान्युलात् कुरुकुलेद्दह। तथान्याः सृतायक्षापि यमादा लोकपूजिताः ॥

२-ओषधः फलप्रकृता नानाविधफलतेषाः। अपुष्पा फलत्वन्तो ये ते बनस्पतयः सृताः ॥

पुष्पिनः वर्णितहीन वृक्षालूभयाः सृताः। तपसा बहुरागं शेषिताः कर्महेतुना ॥

(ब्राह्मण्ड २। ५८-५९)

अन्तःसंज्ञा भवन्त्वेऽन्तःसुखदुःखसम्बन्धितः ।

(ब्राह्मण्ड २। ७३-७५)

कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वह अव्यय परमात्मा सम्पूर्ण चराचर संसारको जाग्रत् और शयन दोनों अवस्थाओंद्वारा बार-बार उत्पन्न और विनष्ट करता रहता है।

परमेश्वर कल्पके प्रारम्भमें सृष्टि और कल्पके अन्तमें प्रलय करते हैं। कल्प परमेश्वरका दिन है। इस कारण परमेश्वरके दिनमें सृष्टि और यत्रिमें प्रलय होता है। हे राजा शतानीक ! अब आप काल-गणनाको सुनें—

अठारह निमेय (पलक गिरनेके समयको निमेय कहते हैं) की एक काष्ठा होती है अर्थात् जितने समयमें अठारह बार पलकोंके गिरना हो, उतने कालको काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठाकी एक कल्प, तीस कलाका पक्ष-क्षण, बारह क्षणका एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तका एक दिन-रात, तीस दिन-रातका एक महीना, दो महीनोंकी एक ऋतु, तीन ऋतुका एक अयन तथा दो अयनोंका एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्यभगवान्के द्वारा दिन-यत्रिका काल-विभाग होता है। सम्पूर्ण जीव यत्रिको विश्राम करते हैं और दिनमें अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं।

पितरोंका दिन-रात मनुष्योंके एक महीनेके बराबर होता है अर्थात् शूङ पक्षमें पितरोंकी रात्रि और कृष्ण पक्षमें दिन होता है। देवताओंका एक अहोरात्र (दिन-रात) मनुष्योंके एक वर्षके बराबर होता है अर्थात् उत्तरायण दिन तथा दक्षिणायन यत्रि कही जाती है। हे राजन् ! अब आप ब्रह्माजीके रात-दिन और एक-एक युगके प्रमाणको सुनें—सत्ययुग चार हजार वर्षका है, उसके संध्यांशके चार सौ वर्ष तथा संध्यांशके चार सौ वर्ष मिलकर इस प्रकार चार हजार आठ सौ दिव्य वर्षोंका एक सत्ययुग होता है। इसी प्रकार त्रीतायुग तीन हजार वर्षोंका तथा संध्या और संध्यांशके छः सौ वर्ष कुल तीन हजार छः सौ

वर्ष, द्वापर दो हजार वर्षोंका संध्या तथा संध्यांशके चार सौ वर्ष कुल दो हजार चार सौ वर्ष तथा कलियुग एक हजार वर्ष तथा संध्या और संध्यांशके दो सौ वर्ष मिलकर बारह सौ वर्षोंकी मानका होता है। ये सब दिव्य वर्ष मिलकर बारह हजार दिव्य वर्ष होते हैं। यही देवताओंका एक युग कहलाता है।

देवताओंके हजार युग होनेसे ब्रह्माजीका एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी यत्रिका है। जब ब्रह्माजी अपनी यत्रिके अन्तमें सोकर उठते हैं तब सत्-असत्-रूप मनको उत्पन्न करते हैं। वह मन सृष्टि करनेकी इच्छासे विकारके प्राप्त होता है, तब उससे प्रथम आकाश-तत्त्व उत्पन्न होता है। आकाशका गुण शब्द कहा गया है। विकारयुक्त आकाशसे सब प्रकारके गव्यको बहन करनेवाले पवित्र वायुकी उत्पत्ति होती है, जिसका गुण स्पर्श है। इसी प्रकार विकारवान् वायुसे अव्यक्तारका नाश करनेवाला प्रकाशयुक्त तेज उत्पन्न होता है, जिसका गुण रूप है। विकारवान् तेजसे जल, जिसका गुण रस है और जलसे गन्धगुणवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सृष्टिका क्रम चलता रहता है।

पूर्वमें बारह हजार दिव्य वर्षोंका जो एक दिव्य युग बताया गया है, वैसे ही एकहन्तर युग होनेसे एक मन्त्रहन्तर होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्त्रहन्तर व्यतीत होते हैं।

सत्ययुगमें धर्मके चारों पाद वर्तमान रहते हैं अर्थात् सत्ययुगमें धर्म चारों चरणोंसे (अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण) रहता है। फिर त्रेता आदि युगोंमें धर्मका बल घटनेसे धर्म क्रमसे एक-एक चरण घटता जाता है,— अर्थात् त्रेतामें धर्मके तीन चरण, द्वापरमें दो चरण तथा कलियुगमें धर्मका एक ही चरण बचा रहता है और तीन चरण अधर्मके रहते हैं। सत्ययुगके

१-एक संकलितमें दूसरी सूर्य-संकलितको समयको सौर मास कहते हैं। यारह सौर मासोंका एक सौर वर्ष रुपांतर होता है और मनुष्य-मानका यही एक सौर वर्ष देवताओंका एक अहोरात्र होता है। ऐसे ही तीस अहोरात्रोंका एक मास और बारह मासोंका एक दिव्य वर्ष होता है।

दोनों संध्याओंसहित युगोंका मान	
१-सत्ययुगका मान	५,८००
२-त्रेतायुगका मान	३,६००
३-द्वापरयुगका मान	२,४००
४-कलियुगका मान	१,२००

महायुग या एक चतुर्वर्षी—

दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
५,८००	१३,२८,०००
३,६००	१२,९६,०००
२,४००	८,६४,०००
१,२००	४,३२,०००
१२,०००	४३,२०,०००वर्षी

मनुष्य धर्मलोग, नीरोग, सत्यवादी होते हुए चार सौ वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। फिर ब्रेता आदि युगोंमें इन सभी वर्षोंका एक चतुर्थांश न्यून हो जाता है, यथा ब्रेताके मनुष्य तीन सौ वर्ष, द्वापरके दो सौ वर्ष तथा कलियुगके एक सौ वर्षोंतक जीवन धारण करते हैं। इन चारों युगोंके धर्म भी चित्र-धित्र होते हैं। सत्ययुगमें तपस्या, ब्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और कलियुगमें दान प्रधान धर्म माना गया है।

परम शुतिमान् परमेष्ठाने सृष्टिकी रक्षाके लिये अपने मुख, भुजा, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण, शत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया और उनके लिये अलुग-अलुग कर्मोंकी कल्पना की। ब्राह्मणोंके लिये पढ़ना-पढ़ना, यज्ञ करना यज्ञ करना तथा दान देना और दान लेना—ये छ: कर्म निश्चित किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना तथा प्रजाओंका पालन आदि कर्म क्षत्रियोंके लिये नियत किये गये हैं। पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओंकी रक्षा करना, स्त्री-व्यापारसे धनार्जन करना—ये काम वैश्योंके लिये निर्धारित किये गये और इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना—यह एक मुख्य कर्म शूद्रोंका नियत किया गया है।

पुरुषकी देहमें नाभिसे ऊपरका भाग अल्पतर पवित्र माना गया है। उसमें भी मुख प्रधान है। ब्राह्मण ब्रह्माके मुख (ठत्तमाङ्क) से उत्पन्न हुआ है, इसलिये ब्राह्मण सबसे उत्तम है, यह वेदकी वाणी है। ब्राह्मजीने बहुत कालतक तपस्या करके सबसे पहले देवता और पितरोंके हृत्य तथा कव्य पहुँचानेके लिये और सम्पूर्ण संसारकी रक्षा करने-हेतु ब्रह्मणको उत्पन्न किया। शिरोभागसे उत्पन्न होने और वेदको धारण करनेके कारण सम्पूर्ण संसारका स्वामी धर्महतः ब्रह्मण ही है। सब भूतों (स्थावर-जड़मरुप पदार्थों) में प्राणी (कीट आदि) श्रेष्ठ हैं, प्राणियोंमें बुद्धिसे व्यवहार करनेवाले पशु आदि श्रेष्ठ हैं। बुद्धि रखनेवाले जीवोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्योंमें ब्राह्मण, ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें कृतव्युदि और कृतव्युदियोंमें कर्म करनेवाले तथा इनसे ब्रह्मवेता—ब्रह्मजी श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणका जन्म धर्म-सम्पादन करनेके लिये है और धर्मविरणसे ब्राह्मण ब्रह्मत्व तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

राजा शतानीकने पूछा—हे महामुने! ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ हैं फिर ब्राह्मणमें कौनसे ऐसे गुण होते हैं,

जिनके कारण वह इन्हे प्राप्त करता है। कृपाकर आप इसका वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! आपने बहुत ही उत्तम बात पूछी है, मैं आपको वे बातें बताता हूँ, उन्हें अत्यन्पूर्वक सुनें।

जिस ब्राह्मणके वेदादि शास्त्रोंमें निर्दिष्ट गर्भाधान, पुंसवन आदि अड़तालीस संस्कार विधिपूर्वक हुए हों, वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। संस्कार ही ब्रह्मत्व-प्राप्तिका मुख्य कारण है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजा शतानीकने पूछा—महात्मन्! वे संस्कार कौनसे हैं, इस विषयमें मुझे महान् कैतूहल हो रहा है। कृपाकर आप इन्हें बतायें।

सुमन्तुजी बोले—राजन्! वेदादि शास्त्रोंमें जिन संस्कारोंका निर्देश हुआ है उनका मैं वर्णन करता हूँ—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोत्रयन, जातकर्म, नामकरण, अव्रप्राप्तान, चूडाकर्म, उपनयन, चार प्रकारके वेदव्रत, वेदरूपान, विवाह, पञ्चमहायज्ञ (जिससे देवता, पितरों, मनुष्य, भूत और ब्रह्मकी तृप्ति होती है), सप्तपाक्यज्ञ-संस्था—आष्टकाद्य, पार्वण, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री (शूलगव) तथा आश्युजी, सप्तहीविर्यज्ञ-संस्था—अप्रथाधान, अग्निहोत्र, दर्श-पौर्णिमास, चातुर्मास्य, निरुद्घपशुवृत्य, सौत्रामणी और सप्तसोम-संस्था—अग्रिष्ठोम, अल्पग्रिष्ठोम, उक्त्यथ, घोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्नोर्याम—ये चालीस ब्राह्मणके संस्कार हैं। इनके साथ ही ब्राह्मणमें आठ आत्मगुण भी अवश्य होने चाहिये, जिससे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। ये आठ गुण इस प्रकार हैं—

अनसूया दद्या क्षत्तिरनायासं च मङ्गलम् ।

अकर्पण्यं तथा शौचमप्युहा च कुरुद्धृ ॥

(ब्राह्मणव २। १५५)

‘अनसूया (दूसरोंके गुणोंमें दोष-बुद्धि नहीं रखना), दद्या, क्षत्ति, अनायास (किसी सामान्य बातके पीछे जानकी जाजी न लगाना), मङ्गल (माझलिक वस्तुओंका धारण), अकर्पण्य (दीन बचन नहीं बोलना और अत्यन्त कृपण न बनना), शौच (ब्राह्माभ्यन्तरकी शुद्धि) और अस्पृहा—ये आठ आत्मगुण हैं।’ इनकी पूरी परिभाषा इस प्रकार है—

गुणोंके गुणोंको न छिपाना अर्थात् प्रकट करना, अपने गुणोंको प्रकट न करना तथा दूसरोंके दोषोंके देखकर प्रसन्न न होना अनसूया है। अपने-परोपरमें, मित्र और शत्रुमें अपने समान व्यवहार करना और दूसरोंका दुःख दूर करनेकी इच्छा रखना चाहा है। मन, वचन अथवा शरीरसे कोई दुःख भी पहुँचाये तो उसपर क्रोध और वैर न करना क्षमा है। अभक्ष्य वस्तुका भक्षण न करना, निनित पुरुषोंका सङ्ग न करना और सदाचरणमें स्थित रहना शौच कहा जाता है। जिन शुभ कर्मोंकी करनेसे शरीरको कष्ट होता है, उस कर्मको हठात् नहीं करना चाहिये, यह अनायास है। नित्य अच्छे कार्योंको करना और

बुरे कर्मोंका परित्याग करना—यह मङ्गल-गुण कहलाता है। बड़े कष्ट एवं परिश्रमसे न्यायोपार्जित घनसे उदारतापूर्वक थोड़ा-बहुत नित्य दान करना अकार्यण्य है। इक्षरकी कृपासे प्राप्त थोड़ी-सी सम्पत्तिमें भी संतुष्ट रहना और दूसरोंके घनकी किंचित् भी इच्छा न रखना अस्वृहा है^१। इन आठ गुणों और पूर्वोक्त संस्कारोंसे जो ब्राह्मण संस्कृत हो वह ब्रह्मलेक तथा ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। जिसके गर्भ-शुद्धि हो, सब संस्कार विधिवत् सम्पत्र हुए हों और वह वर्णाश्रम-धर्मका पालन करता हो तो उसे अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

(अध्याय १-२)

गर्भाधानसे यज्ञोपवीतपर्वन्त संस्कारोंकी संक्षिप्त विधि, अन्नप्राशांसा तथा भोजन-विधिके प्रसंगमें धनवर्धनकी कथा, हाथोंके तीर्थ एवं आचमन-विधि

राजा शतानीकने कहा—हे मुने ! आपने मुझे जातकर्मादि संस्कारोंके विषयमें बताया, अब आप इन संस्कारोंके लक्षण तथा चारों वर्ण एवं आश्रमके धर्म बतलानेकी कृपा करें।

सुमनु मुनि बोले—राजन ! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोप्रयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकर्म तथा यज्ञोपवीत आदि संस्कारोंके करनेसे द्विजातियोंके बीज-सम्बन्धी तथा गर्भ-सम्बन्धी सभी दोष निवृत हो जाते हैं। वेदाध्ययन, ब्रत, होम, त्रैविद्य ब्रत, देवार्थ-पितृ-तर्पण, पुत्रोत्पादन, पष्ठ महायज्ञ और ज्योतिष्ठोमादि यज्ञोंके द्वारा यह शरीर अहो-प्राप्तिके योग्य हो जाता है। अब इन संस्कारोंकी विधिको आप संक्षेपमें सुनें—

पुरुषका जातकर्म-संस्कार नालच्छेदनसे पहिले किया जाता है। इसमें वेदमन्त्रोंके उत्थारणपूर्वक बालकको सुवर्ण,

मधु और धूतका प्राशन कराया जाता है। दसवें दिन, बारहवें दिन, अठारहवें दिन अथवा एक मास पूरा होनेपर शुभ तिथि-मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें नामकरण-संस्कार किया जाता है। ब्राह्मणका नाम मङ्गलवाचक रखना चाहिये, जैसे शिवशर्मा। क्षत्रियका बलवाचक जैसे इन्द्रवर्मा। वैश्यका धनवुत्त जैसे धनवर्धन और शुद्धका भी यथाविधि देवदासादि नाम रखना चाहिये। स्त्रियोंका नाम ऐसा रखना चाहिये, जिसके बोलनेमें कष्ट न हो, क्रूर न हो, अर्थ स्पष्ट और अच्छा हो, जिसके सुननेसे मन प्रसन्न हो तथा मङ्गलमूचक एवं आशीर्वादयुक्त हो और जिसके अन्तमें आकार, ईकार आदि दीर्घ स्वर हों। जैसे यज्ञोदादेवी आदि।

जन्मसे बारहवें दिन अथवा चतुर्थ यासमें बालकको घरसे बाहर निकालना चाहिये, इसे निष्क्रमण कहते हैं। छठे यासमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। पहले या

१-२ गुणान् गुणिनो हन्ति न स्तीत्यात्पुण्यानपि । प्राह्यते नान्यदोपैतनमूला प्रकीर्तिः ॥
अप्ये वृक्षुर्वृणे च भित्रे हेष्टुरि च सदा । अत्यपद्वार्ताने यत् स्थात् स्व दद्या परिकीर्तिः ॥
काचा मनीस कल्पे च दुःखेनोत्पादितेन च । च कुर्यात् न चाश्रेति । स्व क्षमा परिकीर्तिः ॥
अभक्ष्यपरिहरश्च संपर्णक्षमायनिनिदृतः । आवारे च व्यवस्थाम इत्यवेतत् प्रकीर्तिः ॥
शरीरे पौष्ट्रज्ञे येन शुभेनपि च कर्मना । अत्यन्ते तत्र कुर्यात् अनायासः स उच्चारः ॥
प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशास्त्रविवर्जनम् । एवंदि मङ्गलं प्राप्तं मुनिभिर्विद्वादिभः ॥
सोकादपि प्रशास्त्रविवर्जनेनान्तरात्मा । अहन्यहीन यत्किञ्चिद्विकार्यं तदुच्चारे ॥
यज्ञोपवीतं संतुष्टः स्वत्येवायथ चन्द्रुना । अहिमया परमेषु साप्तसूरा चाकीर्तिः ॥ (व्याप्तिः २। १५७—१५८)

तीसरे वर्षमें मुण्डन-संस्कार करना चाहिये । गर्भसे आठवें वर्षमें ब्राह्मणका, च्यारहवें वर्षमें क्षत्रियका और चारहवें वर्षमें वैश्यका यजोपवीत-संस्कार करना चाहिये । परंतु ब्रह्मतेजकी इच्छावाला ब्राह्मण पाँचवें वर्षमें, बल्की इच्छावाला क्षत्रिय लटे वर्षमें और धनकी कामनावाला वैश्य आठवें वर्षमें अपने-अपने बालकोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न करे । सोलह वर्षतक ब्राह्मण, वाईस वर्षतक क्षत्रिय और चौबीस वर्षतक वैश्य गायत्री (सावित्री) के अधिकारी रहते हैं, इसके अनन्तर यथासमय संस्कार न होनेसे गायत्रीके अधिकारी नहीं रहते और ये 'आत्म' कहलाते हैं । फिर जबतक ब्रात्यस्तोम नामक यज्ञसे उनकी शुद्धि नहीं की जाती, तबतक उनका शरीर गायत्री-दीक्षाके योग्य नहीं बनता । इन ब्रात्योंके साथ आपत्तिमें भी वेदादि शास्त्रोंका पठन-पाठन अथवा विवाह आदिका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये ।

त्रैवर्णिक ब्रह्मचारियोंको उत्तरीयके रूपमें क्रमशः कृष्ण (कर्मुणी)-मृग-चर्म, रुक्माणक, मृगका चर्म और बकरेका चर्म धारण करना चाहिये । इसी प्रकार क्रमशः सन (टाट), अलसी और खेड़के ऊनका बस्त्र धारण करना चाहिये । ब्राह्मण ब्रह्मचारीके लिये तीन लड्डीवाली सुन्दर चिकनी मैंजकी, क्षत्रियके लिये मूर्खा (मुणा) की और वैश्यके लिये सनकी मेखला कही गयी है । मैंज आदिके प्राप्त न होनेपर क्रमशः कुशा, अशमन्तक और बल्वज नामक तृणकी मेखलाको तीन लड्डीवाली करके एक, तीन अथवा पाँच ग्रन्थियाँ उसमें लगानी चाहिये । ब्राह्मण कपासके मूतका, क्षत्रिय सनके मूतका और वैश्य खेड़के ऊनका यजोपवीत धारण करे । ब्राह्मण बिल्व, पलाश या प्रक्षको दण्ड, जो सिरपर्वत हो उसे धारण करे । क्षत्रिय बड़, खादिर या बेतके काष्ठका मसाकपर्वत ऊंचा और वैश्य पैलव (पीलू वृक्षकी लकड़ी), गूलर अथवा पीपलके काष्ठका दण्ड नासिकापर्वत ऊंचा धारण करे । ये दण्ड सीधे, छिद्ररहित और सुन्दर होने चाहिये । यजोपवीत-संस्कारमें अपना-अपना दण्ड धारणकर भगवान् सूर्यनारायणका उपस्थान करे और गुरुकी

पूजा करे तथा नियमके अनुसार सर्वप्रथम माता, बहिन या मौसीसे भिक्षा मांगी । भिक्षा मांगते समय उपनीत ब्राह्मण बदु भिक्षा देनेवालीसे 'भवति ! भिक्षा मे देहि', क्षत्रिय 'भिक्षा भवति ! मे देहि' तथा वैश्य 'भिक्षा देहि मे भवति !'—इस प्रकारसे 'भवति' शब्दका प्रयोग करे । भिक्षामें वे सुवर्ण, चाँदी अथवा अज्र ब्रह्मचारीको दें । इस प्रकार भिक्षा प्राप्तकर ब्रह्मचारी उसे गुरुको निवेदित कर दे और गुरुकी आङ्ग पाकर पूर्वभिमुख हो आचमनकर भोजन करे । पूर्वकी ओर मुख करके भोजन करनेसे आयु, दक्षिण-मुख करनेसे यश, पश्चिम-मुख करनेसे लक्ष्मी और उत्तर-मुख करके भोजन करनेसे सत्यकी अभिवृद्धि होती है । एकाग्रांचित हो उत्तम अत्रका भोजन करनेके अनन्तर आचमनकर अङ्गों (आँख, कहन, नाक) का जलसे स्पर्श करे । अप्रकी नित्य सुति करनी चाहिये और अप्रकी निन्दा किये बिना भोजन करना चाहिये । उसका दर्शनकर संतुष्ट एवं प्रसन्न होना चाहिये । हर्षसे भोजन करना चाहिये । पूजित अत्रके भोजनसे बल और तेजकी वृद्धि होती है और निन्दित अत्रके भोजनसे बल और तेज दोनोंकी हानि होती है । इसीलिये सर्वदा उत्तम अत्रका भोजन करना चाहिये । उच्छिष्ट (जूटा) किसीको नहीं देना चाहिये तथा स्वयं भी किसीका उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिये । भोजन करके जिस अप्रको छोड़ दे उसे फिर प्रहण न करे अर्थात् बार-बार छोड़-छोड़कर भोजन न करे, एक बार बैठकर तृष्णपूर्वक भोजन कर लेना चाहिये । जो पुरुष बीच-बीचमें विच्छेद करके लोभवश भोजन करता है, उसके दोनों लोक नष्ट हो जाते हैं, जैसे धनवर्धन वैश्यके हुए थे ।

राजा शतानीकने पूछा—महाराज ! आप धनवर्धन वैश्यकी कथा सुनाइये । उसने कैसा भोजन किया और उसका क्या परिणाम हुआ ?

सुमन् मुनिने कहा—राजन् ! सत्ययुगकी बात है, पुक्करक्षेत्रमें धन-धान्यसे सम्पन्न धनवर्धन नामक एक वैश्य रहता था । एक दिन वह ग्रीष्म ऋतुमें पध्याहके समय

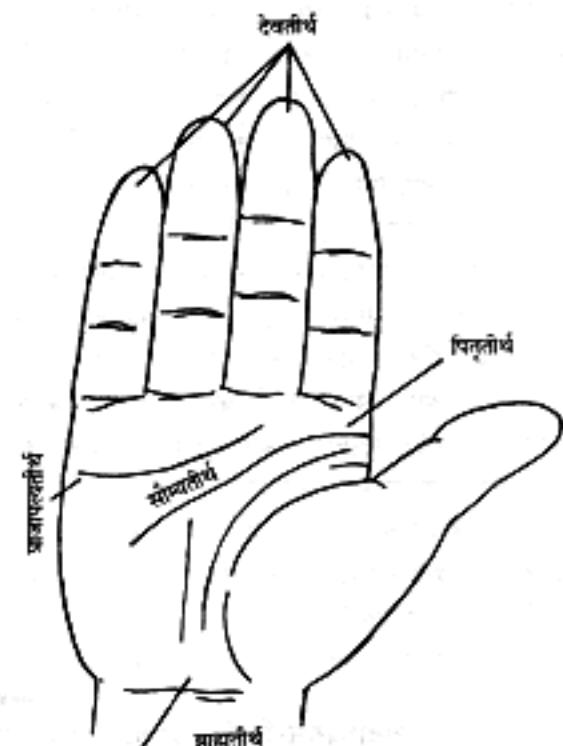
वैश्वदेव-कर्म सम्पन्न कर अपने पुत्र, मित्र तथा बन्धु-बाल्योंके साथ भोजन कर रहा था। इनमें ही अकस्मात् उसे बाहरसे एक कलण शब्द सुनायी पड़ा। उस शब्दको सुनते ही वह दयावश भोजनको छोड़कर बाहरकी ओर दौड़ा। किन्तु जबतक वह बाहर पहुँचा वह आवाज बंद हो गयी। फिर लैटकर उस वैश्यने पात्रमें जो छोड़ा हुआ भोजन था उसे खा लिया। भोजन करते ही उस वैश्यकी मृत्यु हो गयी और इसी अपराधवश परस्तेकमें भी उसकी दुर्गति हुई। इसलिये छोड़े रुए भोजनको फिर कभी नहीं खाना चाहिये। अधिक भोजन भी नहीं करना चाहिये। इससे शरीरमें अत्यधिक इसकी उत्पत्ति होती है, जिससे प्रतिश्याय (जुकाम, मन्दाग्नि, ज्वर) आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अजीर्ण हो जानेसे स्नान, दान, तप, लोम, तर्पण, पूजा आदि कोई भी पुण्य कर्म ठीकसे सम्पन्न नहीं हो पाते। अति भोजन करनेसे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं—आयु घटती है, लोकमें निन्दा होती है तथा अन्तमें सद्गति भी नहीं होती। उच्छिष्ट मुखसे कहीं नहीं जाना चाहिये। सदा पवित्रतासे रहना चाहिये। पवित्र मनुष्य यहाँ सुखसे रहता है और अन्तमें स्वर्णमें जाता है।

राजाने पूछा—मुनीधर ! ब्राह्मण किस कर्मके करनेसे पवित्र होता है ? इसका आप वर्णन करें।

सुपन्नु मुनि बोले—गजन ! जो ब्राह्मण विधिपूर्वक आचमन करता है, वह पवित्र हो जाता है और सत्कर्मोंका अधिकारी हो जाता है। आचमनकी विधि यह है कि हाथ-पाँव धोकर पवित्र स्थानमें आसनके ऊपर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। दाहिने हाथको जानुके भीतर रखकर दोनों चरण बाहर रखे तथा शिखामें ग्रन्थि लगाये और फिर उम्राता एवं फैलने रहित शीताल एवं निर्मल जलसे आचमन करे। खड़े-खड़े, बाल करते, इधर-उधर देखते रुप, शीघ्रतासे और झोपयुक्त होकर आचमन न करे।

हे गजन ! ब्राह्मणके दाहिने हाथमें पाँच तीर्थ कहे गये हैं—(१) देवतीर्थ, (२) पितृतीर्थ, (३) ब्राह्मतीर्थ, (४) प्राजापत्यतीर्थ और (५) सौम्यतीर्थ। अब आप इनके

रुक्षणोंको सुनें—अङ्गूठेके मूलमें ब्राह्मतीर्थ, कनिष्ठाके मूलमें प्राजापत्यतीर्थ, अङ्गुलियोंके अग्रभागमें देवतीर्थ, तर्जनी और अङ्गुष्ठेके बीचमें पितृतीर्थ और हाथके मध्य-भागमें



सौम्यतीर्थ कहा जाता है, जो देवकर्ममें प्रशस्त माना गया है। देवार्चा, ब्राह्मणको दक्षिणा आदि कर्म देवतीर्थसे; तर्पण, पिण्डदानादि कर्म पितृतीर्थसे; आचमन ब्राह्मतीर्थसे; विवाहके समय लज्जाहोमादि और सोम्यपान प्राजापत्यतीर्थसे; कमण्डलु-प्रहण, दधिप्राशनादि कर्म सौम्यतीर्थसे करे। ब्राह्मतीर्थसे उपसर्पन सदा श्रेष्ठ माना गया है।

अङ्गुलियोंको मिलाकर एकाप्रचित ले, पवित्र जलसे बिना शब्द किये तीन बार आचमन करनेसे महान् फल होता है और देवता प्रसन्न होते हैं। प्रथम आचमनसे झर्षेद, द्वितीयसे यजुर्वेद और तृतीयसे सामवेदकी तृष्णि होती है तथा आचमन करके जलयुक्त दाहिने अङ्गूठेसे मुखका स्पर्श करनेसे

अथर्ववेदकी तृष्णि होती है। ओष्ठके मार्जनसे इतिहास और पुण्योंकी तृष्णि होती है। मस्तकमें अधिषेक करनेसे भगवान्, रुद्र प्रसन्न होते हैं। शिखाके स्पर्शसे ऋषिगण, दोनों आँखोंके स्पर्शसे सूर्य, नासिकाके स्पर्शसे वायु, कानोंके स्पर्शसे दिशाएं, भूजाके स्पर्शसे यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र तथा अग्निदेव तृष्णि होते हैं। नाभि और प्राणोंकी ग्रन्थियोंके स्पर्श करनेसे सभी तृष्णि हो जाते हैं। पैर घोनेसे विष्णुभगवान्, भूमिमें जल छोड़नेसे वासुकि आदि नाग तथा चौचरों जो जलविन्दु गिरते हैं, उनसे चार प्रकारके भूतप्राप्तकी तृष्णि होती है।

अङ्गुष्ठ और तर्जनीसे नेत्र, अङ्गुष्ठ तथा अनामिकासे नासिका, अङ्गुष्ठ एवं मध्यमासे मुख, अङ्गुष्ठ और कनिष्ठकासे कठन, सब अङ्गुष्ठियोंसे भूजाओंका, अङ्गुष्ठसे नाभिमण्डल तथा सभी अङ्गुष्ठियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये। अङ्गुष्ठ अग्रिरूप है, तर्जनी वायुरूप, मध्यमा प्रजापतिरूप, अनामिका सूर्यरूप और कनिष्ठिका इन्द्ररूप है।^१

इस विधिसे ब्राह्मणके आचमन करनेपर सम्पूर्ण जगत्, देवता और लोक तृष्णि हो जाते हैं। ब्राह्मण सदा पूजनीय है, वयोकि वह सर्वदेवमय है।

ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ अश्वा देवतीर्थसे आचमन

करे, परंतु पितृतीर्थसे कभी भी आचमन नहीं करना चाहिये। आचमनका जल इदयतक जानेसे ब्राह्मणकी, कण्ठतक जानेसे क्षत्रियकी और वैश्यकी जलके प्राशनसे तथा शूद्रकी जलके स्पर्शमात्रसे शुद्धि हो जाती है।

^१ दाहिने हाथके नीचे और बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रहनेसे द्विज उपवीती (सत्य) कहलाता है, इसके विलोम रहनेसे अर्थात् यज्ञोपवीतके दाहिने कंधेसे बायों और रहनेसे प्राचीनावीती (अपसत्य) तथा गलेमें मालाकी तरह यज्ञोपवीत रहनेसे निवीती कहा जाता है।

येशालग, मृगछालग, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डल—इनमें कोई भी चौज भग्न हो जाय तो उसे जलमें विसर्जित कर मन्त्रोचारणपूर्वक दूसरा धारण करना चाहिये। उपवीती (सत्य) होकर और दाहिने हाथको जानु अर्थात् घुटनेके भीतर रखकर जो ब्राह्मण आचमन करता है वह पवित्र हो जाता है। ब्राह्मणके हाथकी रेखाओंको गङ्गा आदि नदियोंके समान पवित्र समझना चाहिये और अङ्गुष्ठियोंके जो पर्व हैं, वे हिमालय आदि देवपर्वत भाने जाते हैं। इसलिये ब्राह्मणका दाहिना हाथ सर्वदेवमय है और इस विधिसे आचमन करनेवाला अन्तर्में स्वर्गलोककरने प्राप्त करता है। (अध्याय ३)

वेदाध्ययन-विधि, ओंकार तथा गायत्री-माहात्म्य, आचार्यादि-लक्षण, ब्रह्मचारार्थम्-निरूपण, अभिवादन-विधि, स्नातककी महिमामें अङ्गुष्ठरापुत्रका आस्थ्यान, माता-पिता और गुरुकी महिमा

सुपन्तु मुनिने कहा—राजन् ब्राह्मणका केशान्त (समावर्तन) -संस्कार सोलहवें वर्षमें, क्षत्रियका बाईसवें वर्षमें तथा वैश्यका पचासवें वर्षमें करना चाहिये। सिद्धोंके संस्कार अपनकर करने चाहिये। केशान्त-संस्कार होनेके अनन्तर चाहे तो गुरु-गृहमें रहे अथवा अपने घरमें आकर विवाह कर अग्रिहोत्र ग्रहण करे। सिद्धोंके लिये मुख्य संस्कार विवाह है।

राजन् ! यहाँतक मैंने उपनयनका विधान बतलाया। अब

आगेका कर्म बताते हैं, उसे आप सुनें। शिष्यका यज्ञोपवीत कर गुरु पहले उसको शौच, आचार, संघोपासन, अग्निकार्य सिखाये और वेदका अध्ययन कराये। शिष्य भी आचमन कर उत्तराभिमुख हो ब्रह्माङ्गलि बाँधकर एकाग्रचित हो प्रसन्न-मनसे वेदाध्ययनके लिये बैठे। पढ़नेके आरम्भ तथा अन्तमें गुरुके चरणोंकी बन्दना करे। पढ़नेके समय दोनों हाथोंकी जो अङ्गुष्ठ बाँधी जाती है, उसे 'ब्रह्माङ्गलि' कहा जाता है।

अङ्गुष्ठोऽग्रिर्महात्म्यादो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनो ॥

अनामिका तथा मूर्यः कनिष्ठा भवत्वा विभोः प्रजापतिर्महात्म्या शेष्या तस्माद् भरतसत्यम् ॥ (ब्राह्मण ३। ८४-८५)

यासलंतः कर्मण्ये तु रेखा विश्राय भारत ॥

गङ्गात्मा भरितः सर्वा शेषा भरतसत्यम् । वान्यङ्गुष्ठियुः पर्वतिं गिरवस्तानि विद्धि वे ॥ (ब्राह्मण ३। ९२—९४)

सर्वदेवमयो राजन् करो विश्राय दक्षिणः ।

शिष्य गुरुका दाहिना चरण दाहिने हाथसे और बायाँ चरण बाये हाथसे छूकर उनको प्रणाम करे। वेदके पढ़नेके समय आदिमे और अन्तमें ओकारका उच्चारण न करनेसे सब निष्कल हो जाता है। पहलेका पढ़ा हुआ विस्मृत हो जाता है और आगेका विषय याद नहीं होता।

पूर्वीदिशामें अग्रभागवाले कुशके आसनपर बैठकर पवित्री धारण करे तथा तीन बार प्रणायामसे पवित्र होकर ओकारका उच्चारण करे। प्रजापतिने तीनों वेदोंके प्रतिनिधिभूत ओकार, उकार और मकार—इन तीन वर्णोंके तीनों वेदोंसे निकाला है, इनसे ओकार बनता है। भूर्भुवः स्वः—ये तीनों व्याहतियाँ और गायत्रीके तीन पाद तीनों वेदोंसे निकले हैं। इसलिये जो ब्राह्मण ओकार तथा व्याहतिपूर्वक त्रिपदा गायत्रीका दोनों संध्याओंमें जप करता है, वह वेदपाठके पुण्यको प्राप्त करता है। और जो ब्राह्मण, शत्रिय, वैश्य अपनी क्रियासे हीन होते हैं, उनकी साधु पुरुषोंमें निन्दा होती है तथा परलोकमें भी वे कल्पाणके भागी नहीं होते, इसलिये अपने कर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। प्रणव, तीन व्याहतियाँ और त्रिपदा गायत्री—ये सब मिलकर जो मन्त्र (गायत्री-मन्त्र) होता है, वह ब्रह्माका मुख है। जो इस गायत्री-मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिसे तीन वर्षतक नित्य नियमसे विधिपूर्वक जप करता है, वह वायुकी तरह वेगसम्पन्न होकर आकाशके स्वरूपको धारणकर ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त करता है। एकाक्षर ॐ परब्रह्म है, प्रणायाम परम तप है। सावित्री (गायत्री)से बद्धकर कोई मन्त्र नहीं है और मौनसे सत्य ओलमा श्रेष्ठ है। तपस्या, हवन, दान, यज्ञादि क्रियाएँ स्वरूपः नाशवान् हैं, किन्तु प्रणव-स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ओकारका कभी नाश नहीं होता। विधियज्ञों (दर्ज-पौर्णमास आदि) से जपयज्ञ (प्रणवादि-जप) सदा ही श्रेष्ठ है। उपांशु-जप (जिस जपमें केवल ओठ और जीभ चलते हैं, शब्द न सुनायी पड़े) लाल गुना और उपांशु-जपसे मानस-जप हजार गुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो पाकयज्ञ (पितृकर्म, हवन, बलिवैष्टदेव) विधि-यज्ञके बराबर है, वे सभी जप-यज्ञकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। ब्राह्मणको सब सिद्धि जपसे प्राप्त हो जाती है और कुछ करे या न करे, पर ब्राह्मणको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये।

सूर्योदयसे पूर्व जप तारे दिखायी देते रहे तभीसे प्रातः-संध्या आरम्भ कर देनी चाहिये और सूर्योदयपर्यन्त गायत्री-जप करता रहे। इसी प्रकार सूर्यस्तसे पहिले ही सायं-संध्या आरम्भ करे और तारोंके दिखायी देनेतक गायत्री-जप करता रहे। प्रातः-संध्यामें खड़े होकर जप करनेसे शत्रिके पाप नष्ट होते हैं और सायं-संध्याके समय बैठकर गायत्री-जप करनेसे दिनके पाप नष्ट होते हैं। इसलिये दोनों कालोंकी संध्या अवश्य करनी चाहिये। जो दोनों संध्याओंको नहीं करता उसे सम्पूर्ण द्विजातिके विहित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देना चाहिये। यहके बाहर एकान्त-स्थानमें, अरण्य या नदी-सरोवर आदिके तटपर गायत्रीका जप करनेसे बहुत लाभ होता है। मन्त्रोंके जप, संध्याके मन्त्र और जो ऋष-यज्ञादि नित्य-कर्म हैं इनके मन्त्रोंके उच्चारणमें अनध्यायका विचार नहीं करना चाहिये अर्थात् नित्यकर्ममें अनध्याय नहीं होता।

यज्ञोपवीतके अनन्तर समावर्तन-संस्कारतक शिष्य गुरुके घरमें रहे। भूमिपर शायन करे, सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करे और वेदाध्ययन करता रहे। सब कुछ जानते हुए भी जडवत् रहे। आचार्यका पुत्र, सेवा करनेवाला, ज्ञान देनेवाला, धार्मिक, पवित्र, विश्वासी, इक्षिमान् उदार, साधुस्वभाव तथा अपनी जातिवाला—ये दस अध्यापनके योग्य हैं। विना पूछे किसीसे कुछ न कहे, अन्यायसे पूछनेवालेको कुछ न बताये। जो अनुचित हँगसे पूछता है और जो अनुचित हँगसे उत्तर देता है, वे दोनों नरकमें जाते हैं और जगत्में सबके अप्रिय होते हैं। जिसको पढ़ानेसे धर्म या अर्थकी प्राप्ति न हो और वह कुछ सेवा-शुश्रूषा भी न करे, ऐसेको कभी न पढ़ाये, क्योंकि ऐसे विद्यार्थीको दी गयी विद्या ऊरमें बीज-वपनके समान निष्कल होती है। विद्याके अधिष्ठात्-देवताने ब्राह्मणसे कहा—‘मैं तुम्हारी निधि हूँ, मेरी भलीभांति रक्षा करो, मुझे ब्राह्मणों (अध्यापकों) के गुणोंमें दोष-बुद्धि रखनेवालेको और द्वेष करनेवालेको न देना, इससे मैं बलवती रहूँगी। जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय, पवित्र, ब्रह्मचारी और प्रमाणसे रहित हो उसे मुझे देना।’

जो गुरुकी आशाके बिना वेद-शास्त्र आदिको स्वयं प्रहण करता है, वह अति भयंकर रौरव नरकको प्राप्त होता है। जो लौकिक, वैदिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान दे, उसे

सर्वप्रथम प्रणाम करना चाहिये । जो केवल गायत्री जानता हो, पर शास्त्रकी मर्यादामें रहे वह सबसे उत्तम है, किन्तु सभी वेदादि शास्त्रोंके जानते हुए भी मर्यादामें न रहे और भक्ष्याभक्ष्यका कुछ भी विचार न करे तथा सभी वस्तुओंको बेचे, वह अधम है ।

गुरुके आगे, शश्या अथवा आसनपर न थें। यदि पहिलेसे बैठा हो तो गुरुके आते देख नीचे उत्तर जाय और उनका अभिवादन करे । बृद्धजनोंके आने देख छोटोंके प्राण उच्छृङ्खित हो जाते हैं, इसलिये नम्रतापूर्वक खड़े होकर उन्हें प्रणाम करनेसे वे प्राण पुनः अपने स्थानपर आ जाते हैं । प्रतिदिन बड़ोंकी सेवा और उन्हें प्रणाम करनेयाले पुरुषके आयु, विद्या, यश और बल—ये चारों निरन्तर बढ़ते रहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ॥

चत्वारि सम्पर्कार्थन्ते आयुः प्रजा यशो बलम् ॥

(ब्राह्मण्ड ४। ५०)

अभिवादनके समय दूसरेकी खोको और जिससे किसी प्रकारका सम्बन्ध न हो उसे भवती (आप), सुभग अथवा भगिनी (बहन) कहकर सम्बोधित करे । चाचा, मामा, ससुर, क्रतिक और गुरु—इनको अपना नाम लेते हुए प्रणाम करना चाहिये । मासी, मामी, सास, बुआ (पिताकी बहन) और गुरुकी पत्नी—ये सब मान्य एवं पूज्य हैं । वहे भाईको सर्वर्णी खो (भाभी) का जो नित्य आदर करता है और उसे माताके समान समझता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है । पिताकी बहन, माताकी बहन और अपनी बड़ी बहन—ये तीनों माताके समान ही हैं । फिर भी अपनी माता—इन सबकी अपेक्षा श्रेष्ठ है । पुत्र, मित्र और भानजा (बहनका लड़का) इनको अपने समान समझना चाहिये । धन-सम्पत्ति, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँचों महत्वके कारण हैं—इनमें उत्तरोत्तर एकसे दूसरा बढ़ा है अर्थात् विद्या सर्वश्रेष्ठ है ।

वित्तं बन्धुर्वर्यः कर्मं विद्या भवति पञ्चमी ॥

एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुर्मम् ॥

(ब्राह्मण्ड ४। ५०)

१-चक्रियां दशमीस्थव्य गोगियो भारिणः विद्याः । आतकस्य तु राज्ञां पन्था देयो वरस्य च ॥

एवं समागमं तत् पुन्यौ ज्ञातकर्त्तर्याण्यौ । उपर्युक्त समागमे राजन् ज्ञानको नृपमानभावः ॥

रथ आदि यानपर चढ़े हुए, अतिवृद्ध, रोगी, भारवुक, खो, खातक (जिसका समावर्तन-संस्कार हो गया हो), राजा और वर (दूल्हा) यदि सामनेसे आते हों तो इन्हें मार्ग पहले देना चाहिये । ये सभी यदि एक साथ आते हों तो खातक और राजा मान्य हैं । इन दोनोंमेंसे भी खातक विशेष मान्य है ।

जो ब्राह्मण शिव्यका उपनयन करकर रहस्य (यज्ञ, विद्या और उपनिषद) तथा कल्पसाहित वेदाध्ययन करता है, उसे आचार्य कहते हैं । जो जीविकाके निमित वेदका एक भाग अथवा वेदाङ्क पढ़ता है, वह उपाध्याय कहलाता है । जो नियेक अर्थात् गर्भाधानादि संस्कारोंको रीतिसे करता है और अत्रादिसे पोषण करता है, उस ब्राह्मणको गुरु कहते हैं । जो अग्निष्टोम, अग्निहोत्र, पाक-यज्ञादि क्रमोंका वरण लेकर जिसके निमित करता है, वह उसका ऋत्विक् कहलाता है । जो पुरुष वेद-ध्वनिसे दोनों कान भर देता है, उसे माता-पिताके समान समझकर उससे कभी द्वेष नहीं करना चाहिये ।

उपाध्यायसे दस गुना गौरव आचार्यका और आचार्यसे सी गुना पिताका तथा पितासे हजार गुना गौरव माताका होता है—

उपाध्यायान्दशाचार्यं आचार्याणां इति पिता ।

सहस्रेण पितुर्मता गौरवेणातिरिच्छते ॥

(ब्राह्मण्ड ४। ५१)

जप्त देनेवाला और वेद पढ़नेवाला—ये दोनों पिता हैं, किन्तु इनमें भी वेदाध्ययन करनेवाला श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्राह्मणका मुख्य जन्म तो वेद पढ़नेसे ही होता है । इसलिये उपाध्याय आदि जिसने पूज्य है, उनमें सबसे अधिक गौरव महागुरुका ही होता है ।

राजा ज्ञातानीकने पूछा—हे मुने ! आपने उपाध्याय आदिके लक्षण बताये, अब महागुरु किसे कहते हैं ? यह भी बतानेकी कृपा करे ।

सुपन्नु मुनि खोले—गजन ! जो ब्राह्मण ज्योपजीवो हो अर्थात् अष्टादशपुराण, रामायण, विष्णुधर्म, शिवधर्म, महाभारत (भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासद्वारा रचित महाभारत जो पछाम वेदके नामसे भी विस्तार है) तथा श्रीत

(ब्राह्मण्ड ४। ५२-५३)

एवं स्मार्त-धर्म (विद्वान् लोग इन सभीको 'जय' नामसे अधिकृत करते हैं) का जाता हो, वह महागुरु कहलाता है । वह सभी वर्णोंके लिये पूज्य है । जो शास्त्रद्वारा थोड़ा या बहुत उपकार करे, उसको भी उस उपकारके बदले गुरु मानना चाहिये । अवस्थामें चाहे छोटा क्यों न हो, पढ़नेसे वह बालक बृद्धक भी पिता हो सकता है । एजन् ! इस विषयमें एक प्राचीन आश्वान सुनो—

पूर्वकालमें अद्वितीय मुनिके पुत्र वृहस्पति (बालक होनेपर भी) बड़े बृद्धोंके पढ़ाते थे और पढ़ानेके समय 'हे पुत्रो ! पढ़ो !' ऐसा कहते थे । बालकद्वारा 'पुत्र' सम्बोधन सुनकर उनके बड़े क्षेत्रभुआ और वे देवताओंके पास गये तथा उन्होंने सारा वृत्तान्त बालकया । तब देवताओंने कहा— पितृगणो ! उस बालकने न्यायोचित बात ही कही है, क्योंकि जो अज्ञ हो अर्थात् कुछ न जानता हो वही सबे अर्थमें बालक है, किंतु जो मनको देनेवाल है (वेदोंको पढ़ानेवाल है), उपदेशक है, वह युवा आदि होनेपर भी पिता होता है । अवस्था अधिक होनेसे, केवल खेत होनेसे और बहुत वित तथा बन्धु-बान्धवोंके होनेसे कोई बड़ा नहीं होता, बल्कि इस विषयमें ग्राहियोंने यह अवस्था की है कि जो विद्यामें अधिक हो, वही सबसे महान् (बृद्ध) है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें क्रमशः ज्ञान, वर्ग, धन तथा जन्मसे बढ़ाप्त होता है । सिरके बाल खेत हो जानेसे कोई बृद्ध नहीं होता, यदि कोई युवा भी वेदादि शास्त्रोंका भलीभौति ज्ञान प्राप्त कर ले तो उसीको बृद्ध (महान्) समझना चाहिये । जैसे कष्टहसे बना हाथी, चमड़ेसे मक्का मृग किसी कम्पका नहीं, उसी प्रकार वेदसे लौन ब्राह्मणका जन्म निष्फल है । मूर्खोंके दिया हुआ दान जैसे निष्फल होता है, वैसे ही वेदकी ऋचाओंको न जाननेवाले ब्राह्मणका जन्म निष्फल होता है । ऐसा ब्राह्मण नाममात्रका ब्राह्मण होता है । वेदोंका स्वयं कथन है कि जो हमें पढ़कर हमारा अनुष्ठान न करे, वह पढ़नेका अर्थ होता है, इसलिये वेद पढ़कर वेदमें कहे हुए कर्मोंका जो अनुष्ठान करता है अर्थात् तदनुकूल

आचरण करता है, उसीका वेद पढ़ना सफल है । जो वेदादि शास्त्रोंको ज्ञानकर धर्मका उपदेश करते हैं, वही उपदेश ऊँक है, किंतु जो मूर्ख वेदादि शास्त्रोंको जाने विना धर्मका उपदेश करते हैं, वे बड़े पात्रके भागी होते हैं । शौचाहित (अपवित्र), वेदसे रहित तथा नष्टवत् ब्राह्मणके जो अन्न दिया जाता है, वह अन्न रोदन करता है कि 'मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो ऐसे मूर्ख ब्राह्मणके हाथ पड़ा ।' और वही अन्न यदि जयोपजीवीको दिया जाय तो प्रसन्नतासे नाच उठता है और कहता है कि 'मेरा अहोभाव्य है, जो मैं ऐसे पात्रके हाथ आया ।' विद्या और तपके अप्याससे सम्पन्न ब्राह्मणके घरमें आनेपर सभी अन्नादि ओषधियाँ अति प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि अब हमारी भी सद्गति हो जायगी । ब्रत, वेद और जपसे हीन ब्राह्मणको दान नहीं देना चाहिये, क्योंकि पर्यावरणी नाय नदीके पार नहीं उतार सकती । इसलिये श्रोत्रियोंके हृष्य-कृष्य देनेसे देवता और पितरोंकी तृप्ति होती है । घरके समीप रहनेवाले मूर्ख ब्राह्मणसे दूर रहनेवाले विद्वान् ब्राह्मणको ही बुलाकर दान देना चाहिये । परंतु घरके समीप रहनेवाला ब्राह्मण यदि गायत्री भी जानता हो तो उसका परित्याग न करे । परित्याग करनेसे रीत्व नरककी प्राप्ति होती है, क्योंकि ब्राह्मण चाहे निर्गुण हो या गुणवान्, परंतु यदि वह गायत्री जानता है तो वह परमदेव-स्वरूप है । जैसे अन्नसे रहित ग्राम, जलसे रहित कूप केवल नामधारक है, वैसे ही विद्याध्ययनसे रहित ब्राह्मण भी केवल नाममात्रका ब्राह्मण है ।

ग्राहियोंके कल्प्याणके लिये अहिंसा तथा प्रेमसे ही अनुशासन करना चैष्ट है । धर्मकी इच्छा करनेवाले शासकको सदा मधुर तथा नप्र वचनोंका प्रयोग करना चाहिये । जिसके मन, वचन शुद्ध और सत्य है, वह वेदान्तमें कहे गये मोक्ष आदि फलोंको प्राप्त करता है । आर्त होनेपर भी ऐसा वचन कभी न कहे जिससे किसीकी आत्मा दुःखी हो और सुननेवालोंको अच्छा न लगे । दूसरेका अपकार करनेकी बुद्धि नहीं करनी चाहिये । पुरुषोंके जैसा आनन्द मीठी वाणीसे मिलता है,

१-जयोपजीवी ये विषय से महागुरुव्यते । अष्टादशमुण्डनि रापस्य चरितं तथा ॥

विष्णुधर्माद्यो धर्मः विष्वधर्मात्म भरतः काल्ये वेद पढ़ने तु यन्महाभरतं सूतम् ॥

श्रीता धर्मात्म एवेन्द्र नररोक्त महीपते । जयेति नाम एतेवां प्रवदन्ति मन्त्रिणः ॥

वैसा आनन्द न चन्द्रकिरणोंसे मिलता है, न चन्द्रनसे, न शीतल छायासे और न शीतल जलसे^१। ब्राह्मणको चाहिये कि सम्मानकी इच्छाको भयकर विवेक समान समझकर उससे डरता रहे और अपमानको अमृतके समान स्वीकर करे, क्योंकि जिसकी अवमानना होती है, उसकी कुछ हानि नहीं होती, वह सुखी ही रहता है और जो अवमानना करता है, वह विनाशको प्राप्त होता है। इसलिये तपस्या करता हुआ द्विज नित्य वेदका अध्यास करे, क्योंकि वेदाभ्यास ही ब्राह्मणका परम तप है।

ब्राह्मणके तीन जन्म होते हैं—एक तो माताके गर्भसे, दूसरा यज्ञोपवीत होनेसे और तीसरा यज्ञकी दीक्षा होनेसे। यज्ञोपवीतके समय गायत्री माता और आचार्य पिता होता है। वेदकी विकास देनेसे आचार्यको पिता कहते हैं, क्योंकि यज्ञोपवीत होनेके पूर्व किसी भी वैदिक क्रमके करनेका अधिकारी वह नहीं होता। श्राद्धमें पढ़े जानेवाले वेदमन्त्रोंको छोड़कर (अनुपनीत द्विज) वेदमन्त्रका उत्तारण न करे, क्योंकि जबकक वेदार्थ न हो जाय, तबतक वह शुद्धके समान माना गया है। यज्ञोपवीत सम्पन्न हो जानेपर बटुको ब्रतका उपदेश ग्रहण करना चाहिये और तभीसे विधिपूर्वक वेदार्थ्यम करना चाहिये। यज्ञोपवीतके समय जो-जो मेघला-चर्म, दण्ड और यज्ञोपवीत तथा वस्त्र जिसके लिये कहा गया है वह-वह ही भारण करे। अपनी तपस्याकी वृद्धिके लिये ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होकर गुरुके पास रहे और नियमोक्त पालन करता रहे। नित्य खानकर पवित्र हो देवता, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करे। पुण्य, फल, जल, समिधा, मृतिका, कुशा और अनेक प्रकारके क्रांतोंका संप्रग्रह रखे। मद्य, मांस, गन्ध, पुण्यमाला, अनेक प्रकारके रस और खियोंका परित्याग करे। प्राणियोंकी हिंसा, शरीरमें उष्टुन, औंजन लगाना, जूता और छत्र धारण करना, गीत सुनना, नाच देखना, जुआ खेलना, शूठ बोलना, निन्दा करना, खियोंके समीप बैठना और काम, क्रोध तथा लोभादिके वशीभूत होना—इत्यादि बातें ब्रह्मचारीके लिये निषिद्ध हैं। उसे संयमपूर्वक एकाकी रहना

चाहिये। वह जल, पुण्य, गौकरा गोबर, मृतिका और कुशा तथा आवश्यकतानुसार विकास नित्य लाये। जो पुरुष अपने कर्ममें तत्पर हो और वेदादि-शास्त्रोंको पढ़े तथा वजादिमें अदावान् हो, ऐसे गृहस्थोंके घरसे ही ब्रह्मचारीको विकास ग्रहण करनी चाहिये। गुरुके कुलमें और अपने पारिवारिक बन्धु-बाल्यवानोंके घरोंसे विकास न माँगे। यदि विकास अन्यथा न मिले तो इनके घरसे भी विकास ग्रहण करे, किंतु जो महापातकी हों उनकी विकास न ले। नित्य समिधा लाकर सांयंकाल और प्रातःकाल लक्ष्य करे। विकास माँगनेके समय वाणी संवित रखे। ब्रह्मचारीके लिये विकास अब्र मुख्य है। एकका अब्र नित्य न ले। विकासवृत्तिसे रहना उपवासके ब्रह्मवर माना गया है। यह धर्म केवल ब्राह्मणके लिये कहा गया है, क्षत्रिय और वैश्यके धर्ममें कुछ भेद है।

ब्रह्मचारी गुरुके सम्मुख हाथ जोड़कर सदा रहे, जब गुरुकी आज्ञा हो तब बैठे, परंतु आसनपर न बैठे। गुरुके उठनेसे पूर्व उठे, सोनेके पक्षात् सोये, गुरुके सम्मुख अति नप्रतासे बैठे, परोक्षमें गुरुका नाम उत्तारण न करे, किसी भी बातमें गुरुका अनुकरण अर्थात् नकल न करे। गुरुकी निन्दा न करे और जहाँ निन्दा होती हो, आलेचना होती हो वहाँसे उठकर चल्य जाय अथवा काम बंद कर ले—

परीवादसत्त्वा निन्दा गुरुर्वत्र प्रवर्तते ।

कर्णीं तत्र विकासवृत्तौ गमनव्यं वा ततोऽन्यतः ॥

(ब्राह्मण्ड ४। १७१)

वाहनपर चढ़ा हुआ गुरुका अधिवादन न करे, अर्थात् वाहनसे उत्तरकर प्रणाम करे। गुरुके साथ एक वाहन, शिल्प, नौकायान आदिपर बैठ सकता है। गुरुके गुरु तथा श्रेष्ठ सम्बन्धीजनों एवं गुरुपुण्यके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करे। गुरुकी सवर्णी स्त्रीको गुरुके समान ही समझे, परंतु गुरुपुण्यके उष्टुन लगाना, खानादि करना, चरण दबाना अदिक्रियाएं निषिद्ध हैं। माता, बहन या बेटीके साथ एक आसनपर न बैठे, क्योंकि बलवान् इन्द्रियोंका समूह विद्वान्को भी अपनी ओर लौटा लेता है। जिस प्रकार भूमिको

१-न तथा वाणी न सलिले न चन्द्रनसो न प्रीतलच्छन्ना। प्राह्दयति च पुरुषं यथा मधुरभृतिनी वाणी॥ (ब्राह्मण्ड ४। १२८)

२-मात्रा सदा दुहिता वा न विकासप्रस्तो भवेत्। बलवान्विन्द्रियप्राप्ते विद्वान्मपि कर्त्तति॥ (ब्राह्मण्ड ४। १८४)

खोदते-खोदते जल मिल जाता है, उसी प्रकार सेवा-शुश्रूषा करते-करते गुहसे विद्या मिल जाती है। मुष्टन करते हों, जटाधारी हो अथवा शिशी (बड़ी शिशासे युक्त) हो, चाहे जैसा भी ब्रह्मचारी हो उसको गाँवमें रहते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त नहीं होना चाहिये। अर्थात् जलके तट अथवा निर्जन स्थानपर जाकर दोनों संध्याओंमें संध्या-वन्दन करना चाहिये। जिसके साते-साते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो जाय वह महान् पापका भागी होता है और विना प्रायक्षित (कृच्छ्रवत) के शुद्ध नहीं होता।

माता, पिता, भाई और आचार्यका विपत्तिमें भी अनादर न करे। आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति है, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी तथा भाई आत्मपूर्ति है। इसलिये इनका सदा अदर करना चाहिये। प्राणियोंकी उत्पत्तिमें तथा पालन-पोषणमें माता-पिताको जो फ़ेश सहन करना पड़ता है, उस फ़ेशका बदला ये सौ वर्षोंमें भी सेवा करके नहीं चुका पाते^१। इसलिये माता-पिता और गुरुकी सेवा नित्य करनी चाहिये। इन तीनोंके संगुट हो जानेसे सब प्रकारके तपोंका फल प्राप्त हो जाता है, इनकी शुश्रूषा ही परम तप कहा गया है। इन तीनोंकी आज्ञाके विना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्रियाँ हैं। माता गार्हपत्य नामक अग्रि है, पिता दक्षिणाग्रि-स्वरूप है और गुरु आहवनीय अग्रि है। जिसपर ये तीनों प्रसन्न हो जायें, वह तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है और दीप्यमान होते हुए देवलोकमें देवताओंकी भाँति सुख भोग करता है।

त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु प्रील्लोकाद्वयते गृही ।

दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्दिवि मोदते ॥

(ब्राह्मणर्थ ४ । २०३)

१-आपायो ब्रह्मो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापते� । माताप्यधादितेमूर्तिर्भाता स्यामूर्तिरात्मनः ॥
यन्यातपितौ फ़ेश सहेते सम्बवे नृणाम् । न तत्य निकृतिः शक्या कर्त्तुं कर्मशतीर्पि ॥

२-प्रदातानः शुरु विद्यापाददीतावहादपि । अन्यादपि परं धर्मं स्वीक्रमे दुष्कुलादपि ॥
शिष्याद्यप्यप्तं गायं ब्राह्मदीपि सुभाषितम् । अमिश्रादपि सद्गुलपयेष्यादपि कश्चनम् ॥

पिताकी भत्तिसे इहलोक, माताकी भत्तिसे प्रथलोक और गुरुकी सेवासे इन्द्रलोक प्राप्त होता है। जो इन तीनोंकी सेवा करता है, उसके सभी धर्म सफल हो जाते हैं और जो इनका आदर नहीं करता, उसकी सभी डियाएं निष्कल होती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहते हैं, तबतक इनकी नित्य सेवा-शुश्रूषा और इनका हित करना चाहिये। इन तीनोंकी सेवा-शुश्रूषारूपी धर्ममें पुरुषका सम्पूर्ण कर्तव्य पूर्ण हो जाता है, यही साक्षात् धर्म है, अन्य सभी उपधर्म कहे गये हैं।

उत्तम विद्या अधम पुरुषमें हो तो भी उससे ग्रहण कर लेनी चाहिये। इसी प्रकार चाष्टालसे भी घोक्षधर्मकी शिक्षा, नीच कुलसे भी उत्तम रूपी, विषसे भी अमृत, ब्राह्मकसे भी सुन्दर उपदेशात्मक व्यात, शत्रुसे भी सदाचार और अपवित्र स्थानसे भी सुवर्ण प्रहण कर लेना चाहिये^२। उत्तम रूपी, रूप, विद्या, धर्म, दौच, सुभाषित तथा अनेक प्रकारके शिल्प जहाँसे भी प्राप्त हो, ग्रहण कर लेने चाहिये। गुरुके शरीर-स्वागत्यन्त जो गुरुकी सेवा करता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। पढ़नेके समय गुरुको कुछ देनेकी इच्छा न करे, किन्तु पढ़नेके अनन्तर गुरुकी आज्ञा पाकर भूमि, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, छत्र, उपानह, धान्य, शाक तथा वस्त्र आदि अपनी शक्तिके अनुसार गुरु-दक्षिणाके रूपमें देने चाहिये। जब गुरुका देहान्त हो जाय, तब गुणवान् गुरुपुत्र, गुरुकी रूपी और गुरुके भाइयोंके साथ गुरुके समान ही व्यवहार करना चाहिये। इस प्रकार जो अविच्छिन्न-रूपसे ब्रह्मचारि-धर्मका आचरण करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—हे राजन् ! इस प्रकार मैंने ब्रह्मचारिधर्मका वर्णन किया। ब्राह्मणका उपनयन वसन्तमें, शत्रियका धीमामें और वैश्यका शरद् क्रतुमें प्रशस्त माना गया है। अब गुहस्थधर्मका वर्णन सुनें। (अध्याय ४)

(ब्राह्मणर्थ ४ । ११५-११६)

(ब्राह्मणर्थ ४ । २०३-२०८)

विवाह-संस्कारके उपक्रममें स्थियोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन तथा आचरणकी श्रेष्ठता

सुमन्तु मुनि बोले— राजन् ! गुरुके आश्रममें ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए खातकको वेदाध्ययन कर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये । घर आनेपर उस ब्रह्मचारीको पहले पूष्य-माला पहनाकर, शत्र्यापर विठाकर उसका मधुपर्क-विधिसे पूजन करना चाहिये । तब गुरुसे आज्ञा प्राप्तकर उसे शुभ लक्षणोंसे युक्त सजातीय कन्यासे विवाह करना चाहिये ।

राजा शतानीकने पूछा— हे मुनीश्वर ! आप प्रथम स्थियोंके लक्षणोंका वर्णन करें और यह भी बतायें कि किन लक्षणोंसे युक्त कन्या शुभ होती है ।

सुमन्तु मुनि बोले— राजन् ! पूर्वकालमें ऋषियोंके पूछनेपर ब्रह्माजीने स्थियोंके जो उत्तम लक्षण कहे हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें चतुर्गता हैं, आप ध्यान देकर सुनें ।

ब्रह्माजीने कहा— ऋषिगणो ! जिस खींके चरण लग्ज कमलके समान कान्तिवाले अत्यन्त कोमल तथा भूमिपर समर्पण-रूपसे पड़ते हों, अर्थात् खींचमें ऊँचे न रहें, वे चरण उत्तम एवं सुख-भोग प्रदान करनेवाले होते हैं । जिस खींके चरण रुखे, फटे हुए, मांसरहित और नाड़ियोंसे युक्त हों, वह खीं दरिद्रा और दुर्धना होती है । यदि पैरकी औंगुलियाँ परस्पर मिली हों, सीधी, गोल, स्त्रिय और सूक्ष्म नखोंसे युक्त हों तो ऐसी खीं अत्यन्त ऐश्वर्यके प्राप्त करनेवाली और राजमहिनी होती है । छोटी औंगुलियाँ आयुके बढ़ाती हैं, परंतु छोटी और विरल औंगुलियाँ धनका नाश करनेवाली होती हैं ।

जिस खींके हाथकी रेखाएँ गहरी, स्त्रिय और रक्तवर्णकी होती हैं, वह सुख भोगनेवाली होती है, इसके विपरीत टेढ़ी और दृटी हुई हों तो वह दरिद्र होती है । जिसके हाथमें कनिष्ठाके मूल्से तर्जनीतक पूरी रेखा चली जाय तो ऐसी खीं सौ वर्षतक जीवित रहती है और यदि न्यून हो तो आयु कम होती है । जिस खींके हाथकी औंगुलियाँ गोल, लंबी, पतली, मिलानेपर छिक्ररहित, कोमल तथा रक्तवर्णकी हों, वह खीं अनेक सुख-भोगोंको प्राप्त करती है । जिसके नख बन्धुजीव-पूष्यके समान लाल एवं ऊँचे और स्त्रिय हों तो वह ऐश्वर्यके प्राप्त करती है तथा रुखे, टेढ़े, अनेक प्रकारके रंगवाले अथवा छेत या नीले-पीले नखोंवाली खीं दुर्धन्य और दारिद्र्यको प्राप्त होती

है । जिस खींके हाथ फटे हुए, रुखे और विषम अर्थात् ऊँचे-नीचे एवं छोटे-बड़े हों वह कष्ट भोगती है । जिस खींकी औंगुलियोंके पर्वोंमें समान रेखा हो अथवा यवका चिह्न होता है, उसे अपार सुख तथा अक्षय धन-धन्य प्राप्त होता है । जिस खींका मणिवाच्य सुस्थृष्ट तीन रेखाओंसे सुझोभित होता है, वह चिरकालतक अक्षय भोग और दीर्घ आयुके प्राप्त करती है ।

जिस खींकी ग्रीवामें चार अङ्गुलिके परिमापमें स्पष्ट तीन रेखाएँ हों तो वह सदा रलोके आभूषण धारण करनेवाली होती है । दुर्बल ग्रीवावाली खीं निर्धन, दीर्घ ग्रीवावाली बंधकी, हस्तग्रीवावाली मृतवत्सा होती है और स्थूल ग्रीवावाली दुःख-संताप प्राप्त करती है । जिसके दोनों कंधे और कृकाटिका (गरदनका उठा हुआ पिछला भाग) ऊँचे न हों, वह खीं दीर्घ आयुवाली तथा उसका पति भी चिरकालतक जीता है ।

जिस खींकी नासिका न बहुत मोटी, न पतली, न टेढ़ी, न अधिक लंबी और न ऊँची होती है वह श्रेष्ठ होती है । जिस खींकी भीहिं ऊँची, कोमल, सूक्ष्म तथा आपसमें मिली हुई न हों, ऐसी खीं सुख प्राप्त करती है । धनुषके समान भीहिं सौभाग्य प्रदान करनेवाली होती है । स्थियोंके क्षण, स्त्रिय, कोमल और लंबे धूपराले केश उत्तम होते हैं ।

हंस, कोयल, वीणा, भ्रमर, मयूर तथा वेणु (वंशी) के समान स्वरवाली स्थियाँ अपार सुख-सम्पत्ति प्राप्त करती हैं और दास-दासियोंसे युक्त होती हैं । इसके विपरीत फूटे हुए कौसिके स्वरके समान स्वरवाली या गर्दभ और कौवेके सदृश स्वरवाली स्थियाँ रोग, व्याधि, धय, शोक तथा दण्डिताको प्राप्त करती हैं । हंस, गाय, वृषभ, चक्रवाक तथा मदमस्त हाथीके समान चालवाली स्थियाँ अपने कुलके विष्यात बनानेवाली और राजाकी रानी होती हैं । शान, सियार और कौवेके समान गतिवाली खीं निन्दनीय होती है । मृगके समान गतिवाली दासी तथा दुतगामिनी खीं बच्चकी होती है । स्थियोंका फलिनी, गोरेचन, स्वर्ण, कुंकुम अथवा नये-नये निकले हुए दूर्वाकुरके सदृश रंग उत्तम होता है । जिन स्थियोंके शरीर तथा अङ्ग कोमल, रोम और पसीनेसे रहित तथा सुगचित होते हैं, वे स्थियाँ पूज्य होती हैं ।

कपिल-वर्णवाली, अधिकाङ्गी, रोगिणी, रोमोंसे रहित, अस्पत्न छोटी (बौनी), बाचाल तथा पिंगल वर्णवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। नक्षत्र, वृक्ष, नदी, म्लेच्छ, पर्वत, पश्ची, साँप आदि और दासीके नामपर जिसका नाम हो तथा डगराने नामवाली कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। जिसके सब अङ्ग ठीक हो, सुन्दर नाम हो, हंस या हाथीकी-सी गति हो, जो सूक्ष्म रोप, केजा और दाँतोवाली तथा क्षेमलङ्घी हो, ऐसी कन्यासे विवाह करना उत्तम होता है। गौ तथा धन-धान्यादिसे अत्यधिक समृद्ध होनेपर भी इन दस कुलोंमें विवाहका सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहिये—जो संस्कारोंसे रहित हों, जिनमें पुरुष-संतति न होती हों, जो येदके पठन-पाठनसे रहित हों, जिनमें स्त्री-पुरुषोंके शरीरोंपर बहुत लंबे केजा हों, जिनमें अर्थ

(बवासीर), क्षय (गुजयक्षमा), मन्दाग्नि, मिरणी, खेत दाग और कुष्ट-जैसे रोग होते हों।

ब्रह्माजीने ऋषियोंसे पुनः कहा—ये सब उत्तम लक्षण जिस कन्यामें हों और जिसका आचरण भी अच्छा हो उस कन्यासे विवाह करना चाहिये। स्त्रीके लक्षणोंकी अपेक्षा उसके सदाचारको ही अधिक प्रशस्त कहा गया है। जो स्त्री सुन्दर शरीर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त भी है, किंतु यदि वह सदाचारसम्प्र (उत्तम आचरणयुक्त) नहीं है तो वह प्रशस्त नहीं मानी गयी है। अतः खिलोंमें आचरणकी मर्यादाको अवश्य देखना चाहिये^१। ऐसे सल्लक्षणों तथा सदाचारसे सम्बन्ध मुक्तन्यासे विवाह करनेपर ऋद्धि, वृद्धि तथा सत्कौरिति प्राप्त होती है। (अध्याय ५)

गृहस्थाश्रममें धन एवं स्त्रीकी महता, धन-सम्पादन करनेकी आवश्यकता तथा समान कुलमें विवाह-सम्बन्धकी प्रशंसा

राजा शतानीकने सुपन्तु मुनिसे पूछा—भगवन् ! खिलोंके लक्षणोंको तो मैंने सुना, अब उनके सदसूत (सदाचार) को भी मैं सुनना चाहता हूं, उसे आप बतालानेकी कृपा करें।

सुपन्तु मुनि बोले—महाबाहु शतानीक ! ब्रह्माजीने ऋषियोंके खिलोंके सदसूत भी बताये हैं, उन्हें मैं आपको सुनाता हूं, आप ध्यानपूर्वक सुनें। जब ऋषियोंने खिलोंके सदसूतके विषयमें ब्रह्माजीसे प्रश्न किया तब ब्रह्माजी कहने लगे—मुनीक्षणे ! सर्वप्रथम गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेवाला व्यक्ति यथाविधि विद्याध्ययन करके सत्कौरिद्वारा धनका उपार्जन करे, तदनन्तर सुन्दर लक्षणोंसे युक्त और सुशील कन्यासे शास्त्रोक्त विधिसे विवाह करे। धनके बिना गृहस्थाश्रम केवल विडम्बना है। इसलिये धन-सम्पादन करनेके अनन्तर ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। मनुष्यके लिये धोर नरककी यातना सहनी अच्छी है, किंतु धर्मे क्षुधासे तड़पते हुए स्त्री-पुत्रोंके देखना अच्छा नहीं है। फटे और मैले-कुचले वस्त्र पहने, अति दीन और भूखे स्त्री-पुत्रोंको देखकर जिनका हृदय विदीर्ण नहीं होता, वे वज्रके समान अति कठोर हैं।

उनके जीवनको धिक्कार है, उनके लिये तो मृत्यु ही परम उत्सव है अर्थात् ऐसे पुरुषका मर जाना ही क्षेष्ठ है। अतः स्त्रीप्रहण करनेवाले अर्थात् अपूर्वीन पुरुषके विवर्ग- (धर्म, अर्थ, काम-) की सिद्धि कहाँ सम्भव है ? वह स्त्री-सुख न प्राप्त कर यातना ही भोगता है। जैसे स्त्रीके बिना गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता, उसी प्रकार धन-विहीन व्यक्तियोंको भी गृहस्थ बननेका अधिकार नहीं है। कुछ लोग संतानको ही विवर्गका साधन मानते हैं अर्थात् संतानसे ही धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, ऐसा समझते हैं; परंतु नीतिविशारदोंका यह अभिमत है कि धन और उत्तम स्त्री—ये दोनों विवर्ग-साधनके हेतु हैं। धर्म भी दो प्रकारका कहा गया है—इष्ट धर्म और पूर्ति धर्म। यज्ञादि करना इष्ट धर्म है और वापी, कृप, तालव आदि बनवाना पूर्ति धर्म है। ये दोनों धनसे ही सम्बन्ध होते हैं।

दिग्दीके बन्धु भी उससे लज्जा करते हैं और धनकाके अनेक बन्धु हो जाते हैं। धन ही विवर्गका मूल है। धनवान्-में विद्या, कुल, शील अनेक उत्तम गुण आ जाते हैं और निर्भनमें विद्यमान होते हुए भी ये गुण नष्ट हो जाते हैं। शास्त्र, शिल्प, कला और अन्य भी जितने कर्म हैं, उन सबका तथा धर्मका

१-लक्षणोध्यः प्रशस्तो तु स्त्रीलो सन्तुतमुप्यते । सन्तुतमुप्यते या स्त्री सा प्रशस्ता न च लक्षणः ॥ (ब्राह्मणी ५। ११०)

साधन भी धन ही है। धनके बिना पुरुषका जन्म अज्ञागल-
सतनवत् व्यर्थ ही है।

पूर्वजन्ममें किये गये पुण्योंसे ही इस जन्ममें प्रभूत धनकी
प्राप्ति होती है और धनसे पुण्य होता है। इसलिये धन और
पुण्यका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है अर्थात् ये एक दूसरेके कारक
हैं। पुण्यसे धनार्जन होता है और धनसे पुण्यार्जन होता है—

प्राचमुण्यविपुलम् सम्बद्धर्मकामादिहेतुजा ।

भूयो धर्मेण सामृत्र तथा ताविति च क्रमः ॥

(ब्राह्मण ६ । २५)

—इसलिये विद्वान् मनुष्यको इसी रीतिसे विवाह-साधन
करना चाहिये। खीरहित तथा निर्धन पुरुषका विवाह-साधनमें
अधिकार नहीं है। अतः भार्या-ग्रहणसे पूर्व उत्तम रीतिसे
अर्थार्जन अवश्य कर लेना चाहिये। न्यायोपार्जित धनकी प्राप्ति
होनेपर दार-परिग्रह करना चाहिये। अपने कुलके अनुरूप,
धन, किया आदिसे प्रसिद्ध, अनिन्दित, सुन्दर तथा धर्मवर्णी
साधनभूता कन्याको प्राप्त करना चाहिये। जबतक विवाह नहीं
होता है, तबतक पुरुष अर्थ-शरीर ही होता है। इसलिये
यथाक्रम उचित अवसर प्राप्त हो जानेपर विवाह करना चाहिये।
जैसे एक पहियेका रथ अथवा एक पंखवाला पक्षी किसी
कार्यमें सफल नहीं हो पाता, जैसे ही खीरहित पुरुष भी प्राप्त:
सभी धर्मकृतयोंमें असफल ही रहता है—

एकवक्रो रथो यद्युद्देशपक्षो यथा खणः ।

(अथाय ६)

विवाह-सम्बन्धी तत्त्वोंका निरूपण, विवाहयोग्य कन्याके लक्षण, आठ प्रकारके विवाह,

ब्रह्मावर्त, आर्यावर्त आदि उत्तम देशोंका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्वरो! जो कन्या माताकी सपिष्ठ
अर्थात् माताकी सात पीढ़ीके अन्तर्गतकी न हो तथा पिताके
समान गोत्रकी न हो, वह द्विजातियोंके विवाह-सम्बन्ध तथा
संतानोत्पादनके लिये प्रशस्त मानी गयी है। जिस कन्याके
भाई न हो और जिसके पिताके सम्बन्धमें कोई जानकारी न हो
ऐसी कन्यासे पुत्रिका-धर्मको^१ आशंकासे बुद्धिमान् पुरुषको
विवाह नहीं करना चाहिये। धर्मसाधनके लिये चारों वर्णोंको

१-असपिष्ठ वा मातुरसगोत्रा वा या पितुः। या प्रशस्ता द्विजातीनों दातकर्मणि मैथुने। (ब्राह्मण ३ । १, मनु ३ । ५)

२-पिता जिसके पुत्रसे अपने पिष्ठ-पातीकी आशा करता है उसे पुत्रिका कहते हैं।

अभायोऽपि नरः तद्वद्योग्यः सर्वकर्मसु ॥

(ब्राह्मण ६ । ३०)

पली-परिग्रहसे धर्म तथा अर्थ दोनोंमें बहुत लाभ होता
है और इससे आपसमें प्रीति उत्पन्न होती है, सलभीतिसे
कामसूची तृतीय पुरुषार्थी भी प्राप्त हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका
कहना है। विवाह-सम्बन्ध तीन प्रकारका होता है—नीच
कुलमें, समान कुलमें और उत्तम कुलमें। नीच कुलमें विवाह
करनेसे निन्दा होती है। उत्तम कुलवालेके साथ विवाह करनेसे
वे अनादर करते हैं। अपनेसे बड़े लोगोंके साथ बनाया गया
विवाह-सम्बन्ध, नीचके साथ बनाये गये विवाह-सम्बन्धके
प्राप्त: समान ही होता है। इस कारण अपने समान कुलमें ही
विवाह करना चाहिये। मनसी लोग विजातीय सम्बन्ध भी
टीक नहीं मानते। यह वैसा ही सम्बन्ध होता है जैसे कोयल
और शुक्रका। जिस सम्बन्धमें प्रतिदिन स्नेहकी अभिवृद्धि होती
रहती है और विषति-सम्पत्तिके समय भी प्राणतक भी देनेमें
विचार न किया जाय, वह सम्बन्ध उत्तम कहलाता है। परंतु
यह बात उनमें ही होती है जो कुल, शील, विद्या और धन
आदिमें समान होते हैं। मनुष्योंके स्नेह और कृतज्ञताकी परीक्षा
विषतिमें ही होती है। इसलिये विवाह और परामर्श समानके
साथ ही करना चाहिये, अपनेसे बड़े तथा छोटेके साथ नहीं।
इसीमें अच्छी मित्रता रहती है।

(अथाय ६)

अपने-अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना श्रेष्ठ कहा गया है।

चारों वर्णकि इस लोक और परलोकमें हिताहितके
साधन करनेवाले आठ प्रकारके विवाह कहे गये हैं, जो इस
प्रकार हैं—

ब्रह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस
तथा पैशाच। अच्छे शील-स्वभाववाले उत्तम कुलके वरको
स्वयं बुलाकर उसे अलंकृत और पूजित कर कन्या देना 'आत्म-

विवाह' है। यज्ञमें सम्पूर्ण प्रकारसे कर्म करते हुए ऋत्विज्जूको अलंकृत कर कन्या देनेको 'दैव-विवाह' कहते हैं। वरसे एक या दो जोड़े गाय-बैल धर्मार्थ लेकर विधिपूर्वक कन्या देनेको 'आर्य-विवाह' कहते हैं। 'तुम दोनों एक साथ गृहस्थ-धर्मका पालन करो' यह कहकर पूजन करके जो कन्यादान किया जाता है, वह 'प्राजापत्य-विवाह' कहलाता है। कन्याके पिता आदिको और कन्याको भी यथाशक्ति धन, आदि देवता स्वच्छन्दतापूर्वक कन्याका ग्रहण करना 'आसुर-विवाह' है। कन्या और वरकी परस्पर इच्छासे जो विवाह होता है, उसे 'गान्धर्व-विवाह' कहते हैं। मार-पीट करके गोती-चिलशती कन्याका अपहरण करके लग्ना 'राक्षस-विवाह' है। सोची हुई, मदसे मतवाली या जो कन्या पागल हो गयी हो उसे गुप्तरूपसे उठा ले आना यह 'पैशाच' नामक अधम कोटिका विवाह है।

ब्राह्म-विवाहसे उत्पन्न धर्माचारी पुत्र दस पीढ़ी आगे और दस पीढ़ी पीछेके कुलोंका तथा इक्षीसर्वाँ अपना भी उद्धार करता है। दैव-विवाहसे उत्पन्न पुत्र सात पीढ़ी आगे तथा सात पीढ़ी पीछे इस प्रकार चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाल होता है। आर्य-विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन अगले तथा तीन पिछले कुलोंका उद्धार करता है तथा प्राजापत्य-विवाहसे उत्पन्न पुत्र छः पीछेके तथा छः आगेके कुलोंको तारता है। ब्राह्मादि आद्य चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, शीलवान्, रूप, सत्त्वादि गुणोंसे युक्त, धनवान्, पुण्यवान्, यशस्वी, धर्मिष्ठ और दीर्घजीवी होते हैं। शेष चार विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र क्रूर-स्वभाव, धर्मद्विषी और मिथ्यावादी होते हैं। अनिन्दित विवाहोंसे संतान भी अनिच्छ ही होती है और निन्दित विवाहोंकी संतान भी निन्दित होती है। इसलिये आसुर आदि निन्दित विवाह नहीं करना चाहिये। कन्याका पिता वरसे यत्क्रिच्चित् भी धन न ले। वरका धन लेनेसे वह अपत्यविक्रयी अर्थात् संतानका बेचेनेवाल हो जाता है। जो पति या पिता आदि सम्बन्धी वर्ग मोहवश कन्याके धन आदिसे अपना जीवन चलाते हैं, वे अधोगतिको प्राप्त होते हैं। आर्य-विवाहमें जो गो-मिथुन लेनेकी बात कही गयी है, वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि यहे

थोड़ा ले या अधिक, वह कन्याका मूल्य ही गिना जाता है, इसलिये वरसे कुछ भी लेना नहीं चाहिये। जिन कन्याओंके निमित वर-पक्षसे दिया हुआ वस्त्राभूषणादि पिता-प्राता आदि नहीं लेते, प्रस्तुत कन्याको ही देते हैं, वह विक्रय नहीं है। यह कुमारियोंका पूजन है, इसमें कोई हिसादि दोष नहीं है। इस प्रकार उत्तम विवाह करके उत्तम देशमें निवास करना चाहिये, इससे बहुत यशको प्राप्ति होती है।

ऋषियोंने पूछा—**ब्रह्मन्!** वह कौन-सा देश है, जहाँ निवास करनेसे धर्म और यशकी बढ़ि जाती है?

ब्रह्माजी बोले—**मुनीशये!** जिस देशमें धर्म अपने चारों चरणोंके साथ रहे, जहाँ विद्वान्, लोग निवास करते हों और सारे व्यवहार शास्त्रोत्त-सीतिसे सम्पन्न होते हों, वही देश उत्तम और निवास करने योग्य है।

ऋषियोंने पूछा—**महाराज!** जिस शास्त्रोत्त आचरणको ग्रहण करते हैं और धर्मशास्त्रमें जैसी विधि निर्दिष्ट की गयी है उसे हमें बतलायें, हमें इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है।

ब्रह्माजी बोले—**यग-द्वेषसे रहित सज्जन एवं विद्वान्,** जिस धर्मका नित्य अपने शुद्ध अन्तःकरणसे आचरण करते हैं, उसे आप सुनें—

इस संसारमें किसी वस्तुकी कामना करना श्रेष्ठ नहीं है। वेदोंका अध्ययन करना और वेदविहित कर्म करना भी काम्य है। संकल्पसे कामना उत्पन्न होती है। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, व्रत-नियम, धर्म आदि कर्म सब संकल्पमूलक ही हैं। इसलिये सभी यज्ञ, दान आदि कर्म संकल्पपठनपूर्वक किये जाते हैं। ऐसी कोई भी क्रिया नहीं है, जिसमें काम न हो। जो कोई भी जो कुछ करता है वह इच्छासे ही करता है।

श्रुति, सृति, सदाचार और अपने आत्माकी प्रसन्नता— इन चार बातोंसे धर्मका निर्णय होता है। श्रुति तथा सृतिमें कहे गये धर्मके आचरणसे इस लेकरमें बहुत यश प्राप्त होता है और परलेकरमें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। श्रुति वेदको कहते हैं और सृति धर्मशास्त्रका नाम है। इन दोनोंसे सभी बातोंका

१-कठमकी गणना चार पुस्तकोंमें है। भोगकी कामनाके विरुद्ध योग, यज्ञ, जप-तप, धर्मसंस्थापन और गति-मुक्तिकी कामना ही शुभ कामना है। गीता (७।११) में भी भगवान् 'धर्मार्थिकर्मो भूत्यु कामोऽस्मि भरतवर्षम्।' कठकर मनवये इन्हीं सत्कर्मोंकी ओर प्रेरित करनेकी आज्ञा देन है। यह एक प्रकारसे निष्कर्मताकी जननी है। वैदिक कर्मयोगकरे भी भूत्युक्षयपुरुषमें सकृप्त कहनेका यही भाव है।

विचार करें, क्योंकि धर्मकी जड़ ये ही है, जो धर्मके मूल इन दोनोंका तर्क आदिके द्वारा अपमान करता है, उसे सत्युलोकोंने तिरस्कृत कर देना चाहिये, क्योंकि वह वेदनिन्दक होनेसे नालिक ही है ।

जिनके लिये मन्त्रोद्घारा गर्भधानसे उमशानतक संस्कारकी विधि कही गयी है, उन्हीं लोगोंको वेद तथा जपमें अधिकार है । सरस्वती तथा द्रुष्टदी—इन दो देवनदियोंके बीचबीच जो देश है वह देवताओंद्वारा बनाया गया है, उसे ब्रह्मावर्ती कहते हैं । उस देशमें चारों वर्ण और उपवर्णोंमें जो आचार परम्परासे चला आया है, उसका नाम सदाचार है । कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पाञ्चाल और सूरशेमदेश (मधुरा) —ये

ब्रह्मविद्योंके द्वारा सेवित हैं, परंतु ब्रह्मावर्तसे कुछ न्यून है । इन देशोंमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंसे सब देशके मनुष्य अपना-अपना आचार सीखते हैं । हिमालय और विष्णुपर्वतके बीच, विनशनसे पूर्व और प्रवागसे पश्चिम जो देश है उसे मध्यदेश कहते हैं । इन्हीं दोनों पर्वतोंके बीच पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्रतक जो देश है वह आर्यावर्त कहलाता है । जिस देशमें कृष्णसार मृग अपनी इच्छासे नित्य विवरण करें, वह देश यज्ञ करने योग्य होता है । इन शुभ देशोंमें ब्राह्मणको निवास करना चाहिये । इससे भिन्न म्लेच्छ देश है । हे मुनीक्षण ! इस प्रकार मैंने यह देशव्यवस्था आप सबको संक्षेपमें सुनायी है ।

(अध्याय ७)

धन एवं स्त्रीके तीन आश्रय तथा स्त्री-पुरुषोंके पारस्परिक व्यवहारका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—मुनीक्षण ! उत्तम गीतिसे विवाह सम्पन्न कर गृहस्थको जो करना चाहिये, उसका मैं वर्णन करता हूँ ।

सर्वप्रथम गृहस्थको उत्तम देशमें ऐसा आश्रय दूँदना चाहिये, जहाँ वह अपने धन तथा स्त्रीकी भलीभांति रक्षा कर सके । विना आश्रयके इन दोनोंकी रक्षा नहीं हो सकती । मेरे दोनों—धन एवं स्त्री—प्रियगके हेतु हैं, इसलिये इनकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा अवश्य करनी चाहिये । पुरुष, स्थान और धर—ये तीनोंसे धन आदिका रक्षण और अधोपार्जन होता है । कुलीन, नीतिमान, शुद्धिमान, सत्यवादी, विनयी, धर्मात्मा और दृढ़वती पुरुष आश्रयके योग्य होता है । जहाँ धर्मात्मा पुरुष रहते हों, ऐसे नगर अथवा ग्राममें निवास करना चाहिये । ऐसे स्थानमें गुरुजनोंकी अनुमति लेकर अथवा उस ग्राम आदिमें बसनेवाले श्रेष्ठजनोंकी सहमति प्राप्त कर रहनेके लिये अविवादित स्थलमें धर बनाना चाहिये, परंतु

किसी पढ़ोसीको कष्ट नहीं देना चाहिये । नगरके द्वार, चौक, यज्ञशाला, शिल्पियोंके रहनेके स्थान, जुआ खेलने तथा मांस-मद्यादि बेचनेके स्थान, पालघटियों और गजाके नौकरोंके रहनेके स्थान, देवमन्दिरके मार्ग तथा राजमार्ग और गजाके महल—इन स्थानोंसे दूर, रहनेके लिये अपना धर बनाना चाहिये । स्वच्छ, मूल्य मार्गावाला, उत्तम व्यवहारकाले लोगोंसे आवृत तथा दुष्टोंके निवाससे दूर—ऐसे स्थानमें गृहका निर्माण करना चाहिये । गृहके भूमिकी ढाल पूर्व अथवा उत्तरकी ओर हो । रसोईघर, खानागार, गोशाला, अन्तःपुर तथा शयन-कक्ष और पूजाघर आदि सभ अलग-अलग बनाये जायें । अन्तः-पुरकी रक्षाके लिये बृद्ध, जितेन्द्रिय एवं विश्वस्त व्यक्तियोंको नियुक्त करना चाहिये । स्त्रियोंकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं और अनेक प्रकारके दोष भी होते देखे गये हैं । स्त्रियोंको कभी स्वतन्त्रता न दे और न उनपर विश्वास करें ।

१-निश्चो धर्ममूलं स्यात् सृष्टिरीले तर्हेव च । तथाचारशः

श्रुतिस्मृतिर्दित् धर्मसुतिहन् । सदा नः । प्राय चेह परं कीर्ति याति शक्तसलोकताम् ॥

श्रुतिस्तु केदो विक्षेपे धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वाणेषु मीमांसे तात्परा धर्मो हि विर्वची ॥

योज्यमन्येत ते चोपे हेतुशास्त्रप्रयाद् द्विजः । स सार्वधर्मविहितव्यों नालिकों वेदनिन्दकः ॥

वेदः सृतिः सदाचारः । स्वस्य च प्रियमामनः । एतत्सुर्विधं विष्णः साक्षादपर्याप्तः ॥

२-एतदेशप्रयूतत्वं सक्षादशादप्रजन्मः । स्वं स्वं चरिते शिक्षेन् पृथिव्यां सर्वमानानः ॥

२-आसमुदानु वै पूर्वशास्त्रमुदानु पश्चिमान् । तत्त्वोक्तानं गिर्योर्गयति विदुर्बुधः ॥

(ब्राह्मण्ड ७ । ५२, ५४—५७)

(ब्राह्मण्ड ७ । ५३)

(ब्राह्मण्ड ७ । ६५)

किन्तु व्यवहारमें विश्वस्तके समान ही चेष्टा दिखानी चाहिये । विशेषरूपसे उसे पाकादि क्रियाओंमें ही नियुक्त करना चाहिये । स्त्रीको किसी भी समय स्थाली नहीं बैठना चाहिये ।

दरिद्रता, अति-रूपवत्ता, असत्-जनोऽस्त्र सङ्ग, स्वतन्त्रता, पेयादि द्रव्यका पान करना तथा अभक्ष्य-भक्षण करना, कधा, गोष्ठी आदि प्रिय लगना, काम न करना, जादू-टोना करनेवाली, विशुकी, कुटिटनी, दाई, नटी आदि दृष्टि स्त्रियोंके सङ्ग उद्धान, यात्रा, निमन्त्रण आदिमें जाना, अल्पधिक तीर्थयात्रा करना अथवा देवताके दर्शनोंके लिये घूमना, पतिके साथ बहुत वियोग होना, कठोर व्यवहार करना, पुरुषोंसे अल्पधिक वार्तालाप करना, अति झूट, अति सौम्य, अति निंदर होना, ईर्ष्यालु तथा कृपण होना और किसी अन्य स्त्रीके वशीभूत हो जाना—ये सब स्त्रीके दोष उसके विनाशके हेतु हैं । ऐसी स्त्रियोंके अधीन यदि पुरुष हो जाता है तो वह भी निन्दनीय हो जाता है । यह पुरुषकी ही अयोग्यता है कि उसके भूत्य बिगड़ जाते हैं । स्वामी यदि कुशाल न हो तो भूत्य और स्त्री बिगड़ जाते हैं, इसलिये समयके अनुसार यथोचित रीतिसे ताडन और शासनसे जिस भाँति हो इनकी रक्षा करनी चाहिये । नारी पुरुषका आधा शरीर है, उसके बिना धर्म-क्रियाओंकी साधना नहीं हो सकती । इस कारण स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये । उसके प्रतिकूल नहीं करना चाहिये ।

स्त्रीके पतिव्रता भोगेके प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं—(१) पर-पुरुषमें विरक्ति, (२) अपने पतिमें ग्रीति तथा (३) अपनी रक्षामें समर्थता^१ ।

उत्तम स्त्रीको साम तथा दामनीतिसे अपने अधीन रखे ।

पतिव्रता स्त्रियोंके कर्तव्य एवं सदाचारका वर्णन, स्त्रियोंके लिये गृहस्थ-धर्मके उत्तम व्यवहारकी आवश्यक बातें*

ब्रह्माजी बोले—मुनीक्षरो ! गृहस्थ-धर्मका मूल ध्यानपूर्वक सुनें

पतिव्रता स्त्री है, पतिव्रता स्त्री पतिका आराधन किस विधिसे करे, उसका अब मैं वर्णन करता हूँ । आप सब इसे कि उसकी चित्तवृत्तिको भलीभाँति जानकर उसके अनुकूल

१-स्त्रीले प्रथमः स्त्रीणा प्रदृष्टं करत्प्रत्ययम् । परपुंसामस्त्रीतिः प्रिये ग्रीतिः रक्षणे ॥ (ब्राह्मण ८ । ६६)

२-शास्त्राधिकरणे न स्त्रीणा न अन्धानो च धारणे । तप्तादिहाने मन्वन्ते तप्तासननर्थकम् ॥ (ब्राह्मण ९ । ६)

३-इस प्रकारणमें आगेके कुछ अंग—गोरक्षा, व्यापार, कृषि और स्त्रेक-संसाधन आदि विषय प्रायः वार्ताशास्त्रसे सम्बन्धित हैं, जो उत्तराधिग्रन्थमें गढ़े गये हैं । इनका संक्षिप्त विवरण भविष्यपुण्यमें मिलता है, विसके कुछ अंग यहाँ दिये जा रहे हैं ।

मध्यम स्त्रीको दान और भेदसे और अधम स्त्रीको भेद और दण्डनीतिसे वशीभूत करे । परंतु दण्ड देनेके अनन्तर भी साम-दान आदिसे उसको प्रसन्न कर ले । भर्ताका अहित करनेवाली और व्यविचारिणी स्त्री कालकूट विषके समान होती है, इसलिये उसका परित्याग कर देना चाहिये । उत्तम कुलमें उत्पन्न पतिव्रता, विनीत और भर्ताका हित चाहनेवाली स्त्रीका सदा आदर करना चाहिये । इस रीतिसे जो पुरुष चलता है वह विवर्णीकी प्राप्ति करता है और लोकमें सुख पाता है ।

ब्रह्माजी बोले—मुनीक्षरो ! मैंने संक्षेपमें पुरुषोंको स्त्रियोंके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिये, वह बताया । अब पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसे बता रहा हूँ आप सब सुनें—

पतिकी सम्यक् आराधना करनेसे स्त्रियोंको पतिका प्रेम प्राप्त होता है तथा फिर पुत्र तथा स्वर्ग आदि भी उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीको पतिकी सेवा करना आवश्यक है । सम्पूर्ण कार्य विधिपूर्वक किये जानेपर ही उत्तम फल देते हैं और विधि-नियेधका ज्ञान शास्त्रसे जाना जाता है । स्त्रियोंका शास्त्रमें अधिकार नहीं है और न ग्रन्थोंके धारण करनेमें अधिकार है । इसलिये स्त्रीद्वाया शासन अनर्थकारी माना जाता है । स्त्रीको दूसरेसे विधि-नियेध जानेकी अपेक्षा रहती है । पहले तो उसे भर्ता सब धर्मोंका निर्देश करता है और भर्तकी मरनेके अनन्तर पुत्र उसे विधवा एवं पतिव्रताके धर्म बताता है । बुद्धिके विकल्पोंको छोड़कर अपने बड़े पुरुष जिस मार्गपर चले हो उसीपर चलनेमें उसका सब प्रकारसे करत्याण है । पतिव्रता स्त्री ही गृहस्थके धर्मोंका मूल है । (अध्याय ८-९)

चलना और सदा उसका हित चाहते रहना। अर्थात् पतिके चित्तके अनुकूल चलना और यथोचित व्यवहार करना, यह पतिव्रताका मुख्य धर्म है—

आराध्यानो हि सर्वेषामयमाराधने विदिः ।

वित्तज्ञानानुवृत्तिश्च हितैवित्तं च सर्वदा ॥

(आदिपर्व १०।१)

पतिके माता-पिता, बहिन, ज्येष्ठ भाई, चाचा, आचार्य, माघा तथा वृद्ध लियों आदिका उसे आदर करना चाहिये और जो सम्बन्धमें अपनेसे छोटे हों, उनको खेलपूर्वक आज्ञा देनी चाहिये। जहाँ भी अपनेसे बड़े सास-ससुर या गुरु विद्यमान हों या अपना पति उपस्थित हो वहाँ उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिये; क्योंकि यही चरित्र लियोंके लिये प्रशस्त माना गया है। हास-परिहास करनेवाले पतिके मित्र और देवर आदिके साथ भी एकान्तमें बैठकर हास-परिहास नहीं करना चाहिये। किसी पुरुषके साथ एकान्तमें बैठना, स्वच्छन्दता और अत्यधिक हास-परिहास करना प्रायः कुलीन लियोंके पातिव्रत-धर्मको नष्ट करनेके कारण बनते हैं। सहस्रा दृष्टिके संसर्गमें आकर युक्तकोंके साथ हास-परिहास करना उचित नहीं होता, क्योंकि स्वतन्त्र लियोंकी निर्भीकता एकान्तमें बुरे आचरणके लिये सफल हो जाती है। अतः उत्तम खींची ऐसा नहीं करना चाहिये। इस रीतिसे खींका शील नहीं बिगड़ता और कुलको निन्दा भी नहीं होती। बुरे संकेत करनेवाले और बुरे भावोंको प्रकट करनेवाले पुरुषोंको भाई या पिताके समान देखते हुए खींको चाहिये कि उनका सर्वथा परित्याग कर दे। दुष्ट पुरुषोंका अनुचित आग्रह स्वीकार करना, उनके साथ वार्तालाप करना, हासयुक्त संकेत अथवा कुटूष्टिपर ध्यान देना, दूसरे पुरुषके हाथसे कुछ लेना या उसे देना सर्वथा परित्याज्य है। घरके द्वारपर बैठने या खड़ा होने, राजमार्गकी ओर देखने, किसी अपरिचित देश या घरमें जाने, उद्यान और ग्रादर्शीनी आदिये स्थिर रहनेसे खींको बचना चाहिये। बहुत पुरुषोंके मध्यसे निकलना, ऊँचे स्वरसे बोलना, हँसी-मजाक करना एवं अपनी दृष्टि, याणी तथा शरीरसे चापल्य प्रकट करना, सौंकारना तथा सीलकारी भरना, दृष्ट खीं, पिक्खुकी, तानिक, मानिक आदिमें आसक्ति और उनके मण्डलोंमें निवास करनेकी इच्छा—ये सब बातें पतिव्रता खींके लिये

त्याज्य हैं। इस प्रकारके आचरण तो प्रायः दुष्टोंके लिये ही उचित होते हैं, कुलीन लियोंके लिये नहीं। इन निन्दनीय बातोंसे अपनी रक्षा करते हुए लियोंको चाहिये कि वे अपने पतिव्रत-धर्म तथा कुलकी मर्यादाकी रक्षा करें।

उत्तम खींको मन, वचन तथा कर्मसे देवताके समान समझे और उसकी अर्थात् बनकर सदा उसके हित करनेमें तत्पर रहे। देवता और पितरोंके कृत्य तथा पतिके स्थान, भोजन एवं अभ्यागतोंके स्वागत-सत्कार आदिमें बड़ी ही सावधानी और समयका ध्यान रखे। वह पतिके मित्रोंको मित्र तथा शत्रुओंको शत्रुके समझे। अर्थमें और अनर्थसे दूर रहकर पतिको भी उससे बचाये। पतिको क्या प्रिय है और कौन-सा भोजनादि पदार्थ उसके लिये हितकर है तथा कैसे पतिके साथ विचारों आदिमें समानता आये इस बातको सर्वदा उसे ध्यानमें रखना चाहिये, साथ ही उसे सेवकोंको असंतुष्ट नहीं रखना चाहिये।

रहनेका घर और शरीर—ये दो गृहिणियोंके लिये मुख्य हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक वह सर्वप्रथम अपने घर तथा शरीरको सुसंस्कृत (पवित्र) रखे। शरीरसे भी अधिक स्वच्छ और भूषित घरको रखे। तीनों कालोंमें पूजा-अर्चना करे और व्यवहारकी सभी वस्त्रोंको यथाविधि साफ रखे। प्रातः, मध्याह्न और सार्वकालके समय घरका मार्जनकर स्वच्छ करे। गोशाला आदिको स्वच्छ करता ले। दास-दासियोंको भोजन आदिसे संतुष्ट कर उन्हें अपने-अपने कावोंमें लगाये। खींको उचित है कि वह प्रयोगमें आनेवाले शाक, कन्द, मूल, फल आदिके खींजोंका अपने-अपने समयपर संप्रह कर ले और समयपर इन्हें खेत आदिमें बुआ दे। तांबि, कर्जसि, लोहे, काष्ठ और मिट्टीसे बने हुए अनेक प्रकारके वर्तनोंका घरमें संप्रह रखे। जल रखने तथा जल निकालने और जल पीनेके कलशादि पात्र, शङ्क-भाजी आदिसे सम्बद्ध विभिन्न पात्र, घी, तेल, दूध, दही आदिसे सम्बद्ध वर्तन, मूसल, ओखली, झाड़, चलनी, सैंडसी, सिल, लोहा, चाकी, चिमटा, कड़ाही, तवा, तगनू, बाट, पिटार, संदूक, पलंग तथा चौकी आदि गृहस्थीके प्रयोगमें आनेवाले आवश्यक उपकरणोंकी प्रयत्नपूर्वक व्यवस्था करनी चाहिये। उसे चाहिये कि वह हींग, जीरा, पिप्पल, राँड़, मरिच, धनिया तथा सोड आदि अनेक

प्रकारके मसाले, लवण, अनेक प्रकारके क्षार-पदार्थ, सिरका, अचार आदि, अनेक प्रकारकी दालें, सब प्रकारके तेल, सूखा काष्ठ, विविध प्रकारके दूध-दहीसे बने पदार्थ और अनेक प्रकारके कन्द आदि जो-जो भी वस्तु नित्य तथा नैमित्तिक कार्योंमें अपेक्षित हो, उन्हें अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रयत्नपूर्वक पहलेसे ही संग्रह करना चाहिये, जिससे समयपर उन्हें बूढ़ना न पड़े। जिस वस्तुकी भवित्वमें आवश्यकता पड़े, उसे पहलेसे ही संग्रहमें रखना चाहिये। सूखे-गीले, पिसे, बिना पिसे तथा कच्चे और पके अपादि पदार्थोंका अच्छी तरह हानि-लाभ विचारकर ही संग्रह करना चाहिये।

पतिभ्रता नारी गुरु, बालक, वृद्ध, अभ्यागत और पतिकी सेवामें आलद्य न करे। पतिकी शश्या स्वयं बिछाये। देवर आदिके द्वारा पहिने हुए वस्त्र, माला तथा आभूषणोंको वह कभी न तो धारण करे और न इनके शश्या, आसन आदिपर खेटे। गौका इतना दूध निकाले कि जिसमें बछड़े भूखे न रह जायें। दहीसे घी बनाये। वर्षा, शरद् और वसन्त ऋतुमें गायको दो बार दुहना चाहिये, शेष रहनुओंमें एक ही बार दुहे। चरवाहे, खाले आदिको बरवाहीके बदले रूपये अथवा अनाज दे। गोदोहक बछड़ोंका भाग अपने प्रयोगमें न ला सके, यह देखता रहे, साथ ही यह भी ध्यान रखे कि दूध दुहनेवाला समयपर दूध दुह रहा है या नहीं, क्योंकि दोहनके यथोचित समयपर ही गायको दुहना चाहिये। समयका अलिक्रमण अच्छा नहीं होता। जब गाय व्याय जाय, तब एक महीनेतक उसका दूध नहीं निकालना चाहिये, उसे बछड़ोंको ही पाने देना चाहिये। फिर एक महीनेतक एक थनका, तदनन्तर एक महीनेतक दो थनका और फिर तीन थनका दूध निकालना चाहिये। एक या दो थन बछड़ोंके लिये अवश्य छोड़ना चाहिये। यथासमय तिलकी सली, कोमल हरी धास, नमक तथा जल आदिसे बछड़ोंका पालन करना चाहिये। बूढ़ी, गर्भिणी, दूध देनेवाली, बछड़ेवाली तथा अछिष्यावाली—इन पाँचों गायोंका धास आदिके द्वारा समानस्तपसे बराबर पालन-पोषण करते रहना चाहिये। किसीको भी नून तथा अधिक न सप्ताह। गौके गलेमें थंटी अवश्य बांधनी चाहिये। एक तो थंटी बांधनेसे गौकी झोप्पा होती है, दूसरे उसके शब्दोंसे कोई जीव-जन्तु डरकर उसके पास नहीं आते, इससे

उसकी रक्षा भी होती है और गौ कहीं चली जाय तो उसके शब्दसे उसे बूढ़ा भी जा सकता है। हिसक पशुओं और सर्पोंसे रहित, धास और जलसे युक्त, छायादार घने वृक्षोंवाले तथा पशुओंके रोगसे रहित स्थानपर गायोंके रहनेके लिये गोष्ठ या गोशाला बनानी चाहिये। कृषि-कार्यमें लगे सेवकोंके लिये देश-काल और उनके कार्यके अनुरूप भोजन तथा जेतनका प्रबन्ध करना चाहिये। सेव, स्वलिङ्गन अथवा वाटिका आदिमें जहाँ भी सेवक कामपार लगे हों वहाँ बार-बार जाकर उनके कार्य एवं कार्यके प्रति उनके मनोयोगकी जानकारी करनी चाहिये। उनमेंसे जो योग्य हो, अच्छा कार्य करता हो, उसका अधिक सत्कार करे और उसके लिये भोजन, आवास आदिकी औरोंसे विशेष व्यवस्था करे। समय-समयपर सब प्रकारके अत्र और कन्द-मूलके बीजोंका संग्रह करे तथा यथासमय उनकी बुआई कर दे।

घरका मूल है स्त्री और गृहस्थाश्रमका मूल है अत्र। इसलिये भोज्यादि अप्र पदार्थोंमें घरकी स्त्रीको मुक्तहस्त नहीं होना चाहिये अर्थात्, अन्नको वह वृथा नष्ट न करे, सदा सैजोकर रखे। उसे मितव्ययी होना चाहिये। अप्रादिमें मुक्तहस्त होना गृहिणियोंके लिये अच्छा नहीं माना जाता। वह संचय करनेमें और खर्च करनेमें भधुमक्षी, वल्मीक और अञ्जनके समान हानि-लाभ देखकर अत्रको थोड़ा-सा समझकर उसकी अवज्ञा न करे। क्योंकि थोड़ा-थोड़ा ही मधु एकत्र करती रुई मधुमक्षी कितना एकत्र कर लेती है? इसी प्रकार दीमक जगा-जगा-सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा वल्मीक बना लेती है? किन्तु इसके विपरीत बहुत-सा बनाया गया अंजन भी नित्य थोड़ा-थोड़ा औरंगमें डालते रहनेसे कुछ दिनोंमें समाप्त हो जाता है। इसी रीतिसे सभी वस्तुओंका संग्रह और खर्च हो जाता है। इसमें थोड़ी वस्तुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये। घरके सभी कार्य स्त्री-पुरुषके एकमत होनेपर ही अच्छे होते हैं।

जगत्-में ऐसे भी हजारों पुरुष हैं, जिनके सब कार्योंमें स्त्रीकी प्रधानता रहती है। यदि स्त्री बुद्धिमान् और मुश्किल हो तो कुछ हानि नहीं होती, किन्तु इसके विपरीत होनेपर अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। इसलिये स्त्रीकी योग्यता-अयोग्यताके ठीकसे समझकर बुद्धिमान् पुरुषको उसे कार्यमें नियुक्त करना

चाहिये। इस प्रकार योग्यतासे कार्यमें नियुक्त की गयी खोजको चाहिये कि वह सौभाग्यवशा या अपने उद्यम आदिसे अपने पतिको भलीभांति सेवा कर उसे अपने अनुकूल बनाये।

ब्रह्माजी खोले—हे मुनीश्वरो! घरमें खी प्रातःकाल सबसे पहले उठे और अपने कार्यमें प्रवृत्त हो जाय तथा गतिमें सबसे पीछे भोजन करे और सबके बादमें सोये। पति तथा समूर आदिके उपरिथत न रहनेपर खीको घरकी देहलती पार नहीं करनी चाहिये। वह बड़े सबैरे ही जग जाय। खी पतिके समीप बैठकर ही सब सेवकोंके कामकी आज्ञा दे, बाहर न जाय। जब पति भी जग उठे तब वहाँके सभी आवश्यक कार्य करके, घरके अन्य कार्योंको भी प्रभादरहित होकर करे। गतिके पहले ही उत्तम वस्त्राभूषणोंको उतारकर घरके कार्योंको करने योग्य साधारण वस्त्रोंको पहनकर तत्त्व समयमें करने योग्य कार्योंको यथाक्रम करना चाहिये। उसे चाहिये कि सबसे पहले रसोई, चूल्हा आदिको भलीभांति लीप-पोछकर स्वच्छ करे। रसोइके पात्रोंको माँज-धो और पोछकर वहाँ रखे तथा अन्य भी सब रसोईकी सामग्री वहाँ एकत्र करे। रसोई-घर न तो अधिक गुप्त (बंद) हो और न एकदम खुला ही हो। स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमेंसे भुआँ निकल जाय ऐसा होना चाहिये। रसोई-घरके भोजन एकानेवाले पात्रोंको तथा दूध-दहीके पात्रोंको सीधी, रसी अथवा वृक्षकी छालसे खूब रगड़कर अंदर-वाहरसे अच्छी तरह धो लेना चाहिये। गतिमें धुएँ-आणके द्वारा तथा दिनमें धूपमें उन्हें सुखा लेना चाहिये, जिससे उन पात्रोंमें रखा जानेवाला दूध-दही आदि स्वरूप न होने पाये। बिना शोधित पात्रोंमें रखा दूध-दही विकृत हो जाता है। दूध-दही, धी तथा बने हुए पाकादिको सावधानीसे रखना चाहिये और उसका निरीक्षण करते रहना चाहिये।

स्नानादि आवश्यक कृत्य करके उसे अपने हाथसे पतिके लिये भोजन बनाना चाहिये। उसे यह विचार करना चाहिये कि मधुर, क्षार, अम्ल आदि रसोंमें कौन-कौन-सा भोजन पतिको प्रिय है, किस भोजनसे अग्रिमको बृद्ध होती है, क्या पथ्य है और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा, क्या अपथ्य है, उत्तम स्वास्थ्य किस भोजनसे प्राप्त होगा और कौन भोजन कालके अनुरूप होगा आदि बातोंका भलीभांति विचारकर और निर्णयकर उसे वैसा ही भोजन प्रीतिपूर्वक बनाना चाहिये।

रसोई-घरमें सदासे काम करनेवाले, विश्वस्त तथा आहारका परीक्षण करनेवाले व्यक्तिको ही सूपकरके रूपमें नियुक्त करना चाहिये। रसोइके स्थानमें किसी अन्य दुष्ट खी-पुलियोंको न आने दे। इस विधिसे भोजन बनाकर सब पदार्थोंको स्वच्छ पात्रोंसे आच्छादित कर देना चाहिये, फिर रसोई-घरसे बाहर आकर पसीने आदिको पोछकर, स्वच्छ होकर, गन्ध, ताम्बूल, मालू-बख्ल आदिसे अपनेको बोड़ा-सा भूषित करे फिर भोजनके निमित्त यथोचित समयपर विनयपूर्वक पतिको बुलाये। सब प्रकारके व्यञ्जन परोंसे, जो देश-कालके विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो, जैसे दूध और लवणका है। जिस पदार्थमें पतिकी अधिक रुचि देखे उसे और परसे। इस प्रकार पतिको प्रीतिपूर्वक भोजन कराये।

सपत्नियोंको अपनी बहिनके समान तथा उनके संतानोंको अपनी संतानसे भी अधिक प्रिय समझे। उनके भाई-बन्धुओंको अपने भाइयोंके समान ही समझे। भोजन, वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल आदि जबतक सपत्नियोंको न दे दे, तबतक स्वयं भी प्रहण न करे। यदि सपत्नीको अथवा किसी आश्रित जनको कुछ रोग हो जाय तो उसकी चिकित्साके लिये ओषधि आदिकी भलीभांति व्यवस्था कराये। नौकर, बन्धु और सपत्नीके दुःखी देश स्वयं भी उन्हकि समान दुःखी होवे और उनके सुखमें सुख माने। सभी कार्योंसे अवकाश मिलनेपर सो जाय और गतिमें उठकर अनावश्यक धन-व्यय कर रहे पतिको एकान्तमें धीर-धीर समझाये। घरका सब वृत्तान्त पतिको एकान्तमें बताये, परंतु सपत्नियोंके दोषोंको न कहे, किन्तु यदि कोई उनका व्यभिचार आदि बड़ा दोष देखे, जिसे गुप्त रखनेसे कोई अनर्थ हो तो ऐसा दोष पतिको अवश्य बता देना चाहिये। दुर्भग, निःसंतान तथा पतिद्वारा तिरस्कृत सपत्नियोंको सदा आशासन दे। उन्हें भोजन, वस्त्र, आभूषण आदिसे दुःखी न होने दे। यदि किसी नौकर आदिपर पति कोप करे तो उसे भी आश्रस्त करना चाहिये, परंतु यह अवश्य विचार कर लेना चाहिये कि इसे आशासन देनेसे कोई हानि नहीं होनेवाली है।

इस प्रकार खी अपने पतिकी सम्पूर्ण इच्छाओंको पूर्ण करे। अपने सुखके लिये जो अभीष्ट हो, उसका भी परित्याग कर पतिके अनुकूल ही सब कार्य करे। क्योंकि शियोंके देवता

पति, वर्णकि देवता ब्राह्मण हैं तथा ब्राह्मणोंके देवता अग्नि हैं और प्रजाओंका देवता रुदा है।

लियोके विवर्ग-प्राप्तिके दो मुख्य उपाय हैं—प्रथम सब प्रकारसे पतिको प्रसन्न रखना और द्वितीय आचरणकी पवित्रता। पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे जैसी प्रीति पतिकी खींचपर होती है वैसी प्रीति रूपसे, यौवनसे और अलंकारादि आभूषणोंसे नहीं होती^१। क्योंकि प्रायः यह देखा जाता है कि उत्तम रूप और युवावस्थावाली लियाँ भी पतिके विपरीत आचरण करनेसे दौर्भाग्यको प्राप्त करती हैं और अति कुरुप तथा हीन अवस्थावाली लियाँ भी पतिके चित्तके अनुकूल चलनेसे उनकी अत्यन्त प्रिय हो जाती हैं। इसलिये पतिके चित्तका अधिकाय भलीभांति समझना और उसके अनुकूल आचरण करना यही लियोके लिये सब सुखोंका हेतु है और यही समझ श्रेष्ठ योग्यताओंका कारण है। इसके बिना तो खींचके अन्य सभी गुण बन्धत्वको प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् निष्फल हो जाते हैं और अनर्थके कारण बन जाते हैं। इसलिये खींचोंको अपनी योग्यता (परचितज्ञता) सर्वथा बढ़ाते रहना चाहिये।

पतिके आनेका समय जानकर उनके आनेके पूर्व ही वह घरको स्वच्छ कर बैठनेके लिये उत्तम आसन बिला दे तथा पतिदेवके आनेपर स्वयं अपने हाथसे उनके चरण धोकर उन्हें आसनपर बैठाये और पंखा हाथमें लेकर धीर-धीर ढुलाये और सावधान होकर उनकी आशा प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करे। ये सब काम दासी आदिसे न करवाये। पतिके छान, आहार, पानादिमें स्पृहा दिखाये। पतिके संकेतोंको समझकर सावधानीपूर्वक सभी कार्योंको करे और भोजनादि निवेदित करे। अपने बन्धु-बान्धवों तथा पतिके बन्धुओं और सप्तब्रीके साथ स्वागत-सत्कार पतिकी इच्छानुसार करे अर्थात् जिसपर पतिकी रुचि न देखे उससे अधिक शिष्टाचार न करे। लियोके लिये सभी अवस्थाओंमें स्वकुलकी अपेक्षा पतिकुल ही विशेष पूज्य होता है; क्योंकि कोई भी कुलीन पुरुष अपनी कन्यासे उपकारकी आशा भी नहीं रखता और जो रखता है वह

अनुचित ही है। कन्याका विवाह करनेके बाद फिर उससे अपनी आजीविकाकी इच्छा करना यह महात्मा और कुलीन पुरुषोंकी रीत नहीं है, अतः खींचोंके सम्बन्धियोंको चाहिये कि वे केवल मित्रताके लिये, प्रीतिके लिये ही सम्बन्ध बढ़ानेकी इच्छा करे और प्रसंगवश यथाशक्ति उसे कुछ देते भी रहें। उससे कोई वस्तु लेनेकी इच्छा न रखें। कन्याके मायकेवालोंको कन्याके स्वामीकी रक्षाका प्रयत्न सर्वथा करना चाहिये, उनकी परस्पर प्रीति-सम्बन्धकी चर्चा सर्वत्र करनी चाहिये और अपनी मिथ्या प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। साधु-पुरुषोंका व्यवहार अपने सम्बन्धियोंके प्रति ऐसा ही होता है।

जो खींच इस प्रकारके सद्वृत्तको भलीभांति जानकर व्यवहार करती है, वह पति और उसके बन्धु-बान्धवोंको अत्यन्त मान्य होती है। पतिकी प्रिय, साधु वृत्तवाली तथा सम्बन्धियोंमें प्रसिद्धिको प्राप्त होनेपर भी खींचोंको लोकापवादसे सर्वदा डरते रहना चाहिये; क्योंकि सीता आदि उत्तम पतितिवताओंको भी लोकापवादके कारण अनेक कष्ट भोगने पड़े थे। भोग्य होनेके कारण, गुण-दोषोंका ठीक-ठीक निर्णय न कर पानेसे तथा प्रायः अविनयशीलताके कारण लियोके व्यवहारको समझना अत्यन्त दुष्कर है। ठीक प्रकारसे दूसरोंकी मनोवृत्तिको न समझनेके कारण तथा कपट-दृष्टिके कारण एवं स्वच्छन्द ही जानेसे ऐसी बहुत ही कम लियाँ हैं जो कलंपित नहीं हो जाती। दैवयोग अथवा कुर्योगसे अथवा व्यवहारकी अनभिज्ञतासे शुद्ध हृदयवाली खींचोंको प्राप्त हो जाती है। लियोंका यह दौर्भाग्य ही दुःख भोगनेका कारण है। इसका कोई प्रतीकार नहीं, यदि है तो इसकी ओषधि है उत्तम चरित्रका आचरण और लोक-व्यवहारको ठीकसे समझना।

ब्रह्माची खोले—मुनीश्वरे ! उत्तम आचरणवाली खींचोंकी यदि बुरा सङ्क करे या अपनी इच्छासे जहाँ चाहे चलती जाय, तो उसे अवश्य करनेका लगता है और शुद्धा दोष लगानेसे कुल भी करनेकी हो जाता है। उत्तम कुलकी लियोके लिये यह आवश्यक है कि वे किसी भी भाँति अपने कुल—मातृकुल,

१-पतितविदेवता नार्या वर्णा ब्राह्मणदेवता : ब्राह्मणा द्विप्रिदेवस्तु प्रजा यज्ञदेवता : ॥

तासी विवर्गसंस्कृदौ प्रदिष्टं करण्डद्यम् । भर्तुर्यदनुकूलवं यज्ञ शीलमविमुत्तम् ॥

न तथा यौवने लोके नामि रूपे न भूषणम् । यथा विष्णुनुकूलत्रयं लिंदं शश्वदौपयम् ॥ (ब्राह्मणी १३ : ३५—३७)

पितृकूल एवं संततिको कर्त्तव्य न लगाने दे । ऐसी कुलीन स्त्रीमें ही धर्म, अर्थ तथा काम—इस विवरणको सिद्ध हो सकती है । इसके विपरीत युरे आचरणवाली स्त्रियाँ अपने कुलोंको नक्कामें छालती हैं और चरित्रको ही अपना आभूषण माननेवाली स्त्रियाँ नक्कामें गिरे हुओंको भी निकाल लेती हैं । जिन स्त्रियोंका वित्त पति के अनुकूल है और जिनका उत्तम आचरण है, उनके लिये रत्न, सुखर्ण आदिके आभूषण भासवरूप ही हैं । अर्थात् स्त्रियोंके यथार्थ आभूषण ये दो हैं—पति की अनुकूलता और उत्तम आचरण । जो स्त्री पति की और लोककी अपने यथोदित अवधारणादिसे आराधना करती है अर्थात् पति के अनुकूल चलती है और लोकव्यवहारको ठीक-ठीक समझकर तदनुकूल आचरण करती है, वह स्त्री धर्म, अर्थ तथा कामकी अवधारणिदि प्राप्त कर लेती है—

भर्तुचित्तानुकूलस्त्री यासी शीलमविच्छुतम् ।
तासी रत्नसुखर्णादि भार एव न मण्डनम् ॥
स्त्रोक्तज्ञाने परा कोटि॒ पत्नी भक्तिशु शाश्वती॑ ।
शूद्धान्वयानां नारीणां विद्वादेत्कूलमत्तम् ॥
तस्याललोकाण्डु भर्ता च सम्बन्धाराधिती॑ यथा॒ ।
धर्ममर्थं च कामं च सैवाङ्गोति निरत्यया॒ ॥

(छन्दोपर्यं १३ । ६४—६५)

जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया हो, उस स्त्रीको अपने पति की मालूलकामनाके सूचक सौभाग्य-सूत्र आदि स्वल्प आभूषण ही पहनने चाहिये, विशेष शूद्धार नहीं करना चाहिये । उसे पति-द्वारा प्रारम्भ किये कर्त्तव्योक्त प्रयत्नपूर्वक सम्पादन करते रहना चाहिये । वह देहवर अधिक संस्कार न करे । रात्रिको सास आदि पूज्य स्त्रियोंके समीप सोये । बहुत अधिक खर्च न करे । ब्रत, उपवास आदिके नियमोंका पालन करती रहे । दैवज्ञ आदि श्रेष्ठजनोंसे पति के कुशल-क्षेमका वृत्तान्त जाननेकी कोशिश करे और परदेशमें उसके कल्याणकी कामनासे तथा शीघ्र आगमनकी अभिलाषासे नित्य देवताओंका पूजन करे । अल्पतः उज्ज्वल देव न बनाये और

न सुगमित तैलादि द्रव्योंका प्रयोग करे । उसे सम्बन्धियोंके पर नहीं जाना चाहिये । यदि किसी आवश्यक कार्यवश जाना ही पड़ जाय तो अपनेसे बड़ोंकी आज्ञा लेकर पति के विष्वसनीय जनोंके साथ जाय । किन्तु वहाँ अधिक समयतक न रहे, शीघ्र वापस लैट आये । वहाँ स्नान आदि व्यवहारोंको न करे । प्रवाससे पति के लैट आनेपर प्रसन्न-मनसे सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर पतिका यथोचित भोजनादिसे सलकार करे और देवताओंसे पति के लिये माँगी गयी मनौलियोंको पूजादिग्राम यथाविधि सम्पन्न करे ।

इस प्रकार मन, वाणी तथा कर्मोंसे सभी अवस्थाओंमें पतिका हित-चित्तन करती रहे, क्योंकि पति के अनुकूल रहना स्त्रियोंके लिये विशेष धर्म है । अपने सौभाग्यपर अहंकार न करे और उद्धत कार्योंको भी न करे तथा अल्पतः विनम्र भावसे रहे । इस प्रकारारसे पति की सेवा करते हुए जो स्त्री पति के कार्योंमें प्रगत नहीं करती, पूज्यजनोंका सदा आदर करती रहती है, नौकरोंका भरण-पोषण करती है, नित्य सदगुणोंकी अभिगृहिणीके लिये प्रयत्नशील रहती है तथा सब प्रकारारसे अपने शीलकी रक्षा करती रहती है, वह स्त्री इस लोक तथा परलोकमें उत्तम सुख एवं उत्तम कीर्ति प्राप्त करती है^१ ।

जिस स्त्रीपर पति अति क्रोधयुक्त हो और उसका आदर न करे, वह स्त्री दुर्भगा कहलाती है । उसे चाहिये कि वह नित्य ब्रत-उपवासादि क्रियाओंमें संलग्न रहे और पति के बाह्य कार्योंमें विदेशरूपसे सहयोग करे । जातिसे कोई स्त्री दुर्भगा अध्यक्षा सुभगा (सौभाग्यशालिनी) नहीं होती । वह अपने अवधारणारसे ही पति की प्रिय और अप्रिय हो जाती है । उत्तम स्त्री पति के वित्तका अभिशाय न जाननेसे, उसके प्रतिकूल चलनेसे और लोकविरुद्ध आचरण करनेसे दुर्भगा हो जाती है एवं उसके अनुकूल चलनेसे सुभगा हो जाती है । मनोज्ञतिके अनुकूल कार्य करनेसे पाण्य भी प्रिय हो जाता है और मनोज्ञकूल कार्य न करनेसे अपना जन भी शोष शत्रु बन जाता है । इसलिये स्त्रीको मन, वचन तथा अपने कर्त्तव्योद्धार

१-एन्नपूर्णा भर्तु तत्त्वार्थेष्वप्रमादिनोः पूज्यानां पूजने नित्यं भृत्यन्ते भरणेषु च ॥
गुणानामज्जने नित्यं शीलवत्त्वरक्षणे । प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमप्योत्पन्नुत्तमम् ॥

सभी अवस्थाओंमें पतिके अनुसार ही प्रिय आचरण करना चाहिये । इस प्रकार कहे गये स्त्री-वृत्तके भलीभांति समझकर जो स्त्री पतिकी सेवा करती है, वह पतिको अपना बना लेती

है और पतिकी सेवासे सभी सुखों तथा त्रिवर्गको भी प्राप्त कर लेती है ।

(अ० १०—१५)

पञ्चमहायज्ञोक्त वर्णन तथा ब्रत-उपवासोंके प्रकरणमें आहारका निरूपण एवं प्रतिपदा तिथिकी उत्पत्ति, ब्रत-विधि और माहात्म्य

सुमन् मुनिने कहा—राजन् ! इस प्रकार लियोके लक्षण और सदाचारका वर्णन करके ब्रह्माजी अपने लोक, तथा त्रिविगण भी अपने-अपने आश्रमोंकी ओर चले गये । अब गृहस्थोंको कैसा आचरण करना चाहिये, उसे मैं बताता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें—

गृहस्थोंको वैवाहिक अधिमें विधिपूर्वक गृहाक्षणोंको करना चाहिये तथा पञ्चमहायज्ञोक्त भी सम्पादन करना चाहिये । गृहस्थोंके यहाँ जीव-हिंसा होनेके पाँच स्थान हैं—ओखली, चक्की, चूल्हा, झाड़ तथा जल रखनेका स्थान । इस हिंसा-दोषसे मुक्ति पानेके लिये गृहस्थोंको पञ्चमहायज्ञ—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) पितृयज्ञ, (३) दैवयज्ञ, (४) भूतयज्ञ तथा (५) अतिथियज्ञको नित्य अवश्य करना चाहिये । अध्यायन करना तथा अध्यायन करना यह बाह्ययज्ञ है, तर्पणादि कर्म पितृयज्ञ है । देवताओंके लिये हवनादि कर्म दैवयज्ञ है । बलिवैश्वदेव कर्म भूतयज्ञ है तथा अतिथि एवं अभ्यागतोंका स्वागत-सरत्कार करना अतिथियज्ञ है—

अध्यायनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिवैश्वदेवताऽन्योऽतिथिपूजनम् ॥

(ब्राह्मणी १६। १०)

—इन पाँच नियमोंका पालन करनेवाला गृहस्थी घरमें रहता हुआ भी पञ्चमूना-दोषोंसे लिप्त नहीं होता । यदि समर्थ

होते हुए भी वह इन पाँच यज्ञोंके नहीं करता है तो उसका जीवन ही व्यर्थ है ।

राजा सतानीकने पूछा—जिस ब्राह्मणके घरमें अग्रिहोत्र नहीं होता, वह मृतकों समान होता है—यह आपने कहा है, परंतु फिर वह देवपूजा आदि कार्योंको क्यों करे? और यदि ऐसी बात है तो देवता, पितर उससे कैसे संतुष्ट होंगे, इसका आप निराकरण करें ।

सुमन् मुनि बोले—राजन् ! जिन ब्राह्मणोंके घरमें अग्रिहोत्र न हो उनका उद्धार ब्रत, उपवास, नियम, दान तथा देवताकी सुनि, भक्ति आदिसे होता है । जिस देवताकी जो तिथि हो, उसमें उपवास करनेसे वे देवता उसपर विशेषरूपसे प्रसन्न होते हैं—

ब्रतोपवासनियमैनानादानैस्तथा नृप ।

देवादयो भवन्येव प्रीतासेवा न संशयः ॥

विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते ।

प्रीता देवादयसेवा भवन्ति कुरुनन्दन ॥

(ब्राह्मणी १६। १३-१४)

राजाने फिर कहा—महाराज ! अब आप अलग-अलग तिथियोंमें किये जानेवाले ब्रतों, तिथि-ब्रतोंमें किये जानेवाले घोजनों तथा उपवासकी विधियोंका वर्णन करें, जिनके अवधारणसे तथा जिनका आचरण कर संसारसागरमें मैं

१-न कर्त्ति दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातिः । अववहाराद्भवत्येष निर्देशे रिपुमित्रवद् ॥

भृत्यिचार्यादिवानदननुष्ठानोऽपि वा वृत्तीर्णेकविनिर्देश यानि दुर्भगां विषयः ॥

अनुकूल्यादनोऽपि: परोऽपि विषयो ब्रजेत् । प्रतिकूल्यादिवैष्णोऽप्यद्यु विषयः प्रदेवतामित्यवद् ॥

तस्मात् सर्वास्त्वयस्मात् मनोवाकाशायकर्त्तिः । विषये समाचरेत्यित्ये तत्त्वितानुविधायिनी ॥

एवमेव यज्ञोऽहं स्त्रीयुते यानुतिष्ठति । पतिमात्राय सम्पूर्णे त्रिवर्गे स्वाधिगच्छति ॥

(ब्राह्मणी १५। १६—१९, ३२)

[वर्तमान समयमें पाञ्चाश्रय सम्पादनके प्रभावसे देशमें दूषित और उच्चाङ्गलतापूर्ण कालावण बन गया है । लियोंसे सम्बद्ध भविष्यपुण्यका यह उल्लेख रामायण, महाभारत, सूक्तियों तथा अन्य पुराणोंमें भी उपलब्ध है । आजके विषयकी सभी समस्याओंका एकमात्र मुख्य कारण आचारका पतन है, इसका प्रभाव संतीत्योपर भी पड़ता है । अतः सभीको सदाचारनार विद्येष ध्यान देनेकी आवश्यकता है ।]

मुक्त हो जाऊँ तथा मेरे सभी पाप दूर हो जायें । साथ ही संसारके जीवोंका भी कल्याण हो जाय ।

सुपन्नु मुनि बोले— मैं तिथियोंमें विहित कृत्योंका वर्णन करता हूँ, जिनके सुननेसे पाप कट जाते हैं और उपवासके फलोंको प्राप्ति हो जाती है ।

प्रतिपदा तिथिको दूध तथा तृतीयाको लक्षणरहित भोजन करे । तृतीयाके दिन तिलात्र भक्षण करे । इसी प्रकार चतुर्थीको दूध, पश्चमीको फल, षष्ठीको शाक, सप्तमीको विल्वाहार करे । अष्टमीको पिष्ठ, नवमीको अनग्रिपाक, दशमी और एकवर्षीयको घृताहार करे । द्वादशीको सीर, त्रयोदशीको गोमूत्र, चतुर्दशीको यवात्र भक्षण करे । पूर्णिमाको कुशाकाळ जल पीये तथा अमावास्याको हविष्य-भोजन करे । यह सब तिथियोंके भोजनकी विधि है । इस विधिसे जो पूरे एक पक्ष भोजन करता है, वह दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है और मन्वन्तरातक स्वर्गमें आनन्द भोगता है । यदि तीन-चार मासतक इस विधिसे भोजन करे तो वह सौ अश्वमेध और सौ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है तथा स्वर्गमें अनेक मन्वन्तरोंतक सुख भोग करता है । पूरे आठ महीने इस विधिसे भोजन करे तो हजार यज्ञोंका फल पाता है और चाँदह मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्गमें वहाँके सुखोंका उपभोग करता है । इसी प्रकार यदि एक वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक इस भोजन-विधिका पालन करता है तो वह सूर्यलोकमें कई मन्वन्तरोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है । इस उपवास-विधिमें चारों वर्षों तथा सौ-पुरुषों—सभीका अधिकार है । जो इन तिथि-ब्रतोंका आरम्भ अतिथिनकी नवमी, माघकी सप्तमी, वैशाखकी तृतीया तथा कार्तिकी पूर्णिमासे करता है, वह लंबी आयु प्राप्त कर अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त होता है । पूर्वजन्ममें जिन

पुरुषोंने व्रत, उपवास आदि किया, दान दिया, अनेक प्रकारसे ब्राह्मणों, साधु-संतों एवं तपस्वियोंको संतुष्ट किया, माता-पिता और गुरुकी सेवा-शुश्रूषा की, विधिपूर्वक तीर्थयात्रा की, वे पुरुष स्वर्गमें दीर्घ कालतक रहकर जब पृथ्वीपर जन्म लेते हैं, तब उनके चिह्न—पुण्य-फल प्रत्यक्ष ही दिखलायी पड़ते हैं । यहाँ उन्हें हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, सुवर्ण, रत्न, कंकण,

केशू, हार, कुण्डल, मुकुट, उत्तम वस्त्र, श्रेष्ठ सुन्दर स्त्री तथा अच्छे सेवक प्राप्त होते हैं । ये आधि-व्याधिसे मुक्त होकर दीर्घायु होते हैं । पुत्र-पौत्रादिका सुख देखते हैं और बन्दीजनोंके स्तुति-पाठद्वारा जगाये जाते हैं । इसके विपरीत जिसने ब्रत, दान, उपवास आदि सत्कर्म नहीं किया वह कङ्गा, अंथा, लूला, लैंगड़ा, गैंगा, कुबड़ा तथा रोग और दरिद्रात्मे पीड़ित रहता है । संसारमें आज भी इन दोनों प्रकारके पुरुष प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं । यही पुण्य और पापकी प्रत्यक्ष परीक्षा है ।

राजाने कहा—प्रभो ! आपने अभी संक्षेपमें तिथियोंको बताया है । अब यह विस्तारसे बतलानेकी कृपा करे कि किस देवताकी किस तिथिमें पूजा करनी चाहिये और ब्रत आदि किस विधिसे करने चाहिये जिनके करनेसे मैं पवित्र हो जाऊँ और द्वन्द्वरहित होकर यहके फलोंको प्राप्त कर सकूँ ।

सुपन्नु मुनि बोले— राजन् ! तिथियोंका रहस्य, पूजाका विधान, फल, नियम, देवता तथा अधिकारी आदिके विवरणमें मैं बताता हूँ, यह सब आजतक मैंने किसीको नहीं बताया, इसे आप सुने—

सबसे पहले मैं संक्षेपमें सृष्टिका वर्णन करता हूँ । प्रथम परमात्माने जल उत्पन्न कर उसमें तेज प्रविष्ट किया, उससे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए । उन्होंने सृष्टिकी इच्छासे उस अण्डके एक कपालसे भूमि और दूसरेसे आकाशकी रचना की । तदनन्तर दिशा, उपदिशा, देवता, दानव आदि रचे और जिस दिन यह सब काम किया उसका नाम प्रतिपदा तिथि रखा । ब्रह्माजीने इसे सर्वोत्तम माना और सभी तिथियोंके प्रारम्भमें इसका प्रतिपादन किया इसलिये इसका नाम प्रतिपदा हुआ । इसके बाद सभी तिथियाँ उत्पन्न हुईं ।

अब मैं इसके उपवास-विधि और नियमोंका वर्णन करता हूँ । कार्तिक-पूर्णिमा, माघ-सप्तमी तथा वैशाख शुक्ल तृतीयासे इस प्रतिपदा तिथिके नियम एवं उपवासोंको विधिपूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये । यदि प्रतिपदा तिथिसे नियम ग्रहण करना है तो प्रतिपदासे पूर्व चतुर्दशी तिथिको भोजनके अनन्तर ब्रतका संकल्प लेना चाहिये । अमावास्याको त्रिकाल स्थान करे,

१-नित्य, नैतिक और काम्य—ये तीन प्रकारके कर्म होते हैं । यहाँ काम्य-कर्मोंका प्रकरण चल रहा है । इन्हीं कर्मोंके निष्कामप्रकारके भगवत्तीर्थीकरण करनेपर जात्य-मरणके बन्दनसे मुक्त भी मिल जाते हैं ।

भोजन न करे और गायत्रीका जप करता रहे। प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल गम्य-माल्य आदि उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्रह्माजीकी पूजा करे और उन्हें यथाशक्ति दूध दे और बादमें 'ब्रह्माजी मुझपर प्रसन्न हों'—ऐसा कहे। स्वयं भी बादमें गायका दूध पिये। इस विधिसे एक वर्णक ब्रतकर अनन्तमें गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर ब्रत समाप्त करे।

इस विधानसे ब्रत करनेपर ब्रतीके सब पाप दूर हो जाते हैं और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह दिव्य-शरीर धारणकर विमानमें बैठकर देवलोकमें देवताओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है और जब इस पूर्वीपर सत्ययुगमें जन्म लेता है तो दस जन्मतक वेदविद्याका पारगामी विद्वान्, घनवान्, दीर्घ आयुष्य, आरोग्यवान्, अनेक भौगोले सम्पन्न,

यज्ञ करनेवाला, महादानी ब्राह्मण होता है। विश्वामित्रमुनिने ब्राह्मण होनेके लिये बहुत समयतक घोर तपस्या की, किंतु उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं हो सका। अतः उन्होंने नियमसे इसी प्रतिपदाका ब्रत किया। इससे थोड़ेसे समयमें ब्रह्माजीने उन्हें ब्राह्मण बना दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कोई इस तिथिका ब्रत करे तो वह सब पापोंसे मुक्त होकर दूसरे जन्ममें ब्राह्मण होता है। हैह्य, तालजंघ, तुरुच्छ, यवन, इक आदि म्लेच्छ जातिवाले भी इस ब्रतके प्रभावसे ब्राह्मण हो सकते हैं। यह तिथि परम पुण्य और कल्याण करनेवाली है। जो इसके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है वह ऋद्धि, वृद्धि और सत्यर्थीति पाकर अनन्तमें सद्गति प्राप्त करता है।

(अध्याय १६)



प्रतिपत्तकर्त्त्व-निरूपणमें ब्रह्माजीकी पूजा-अचार्की महिमा

राजा शतानीकने कहा—ब्रह्मन्! आप प्रतिपदा तिथिमें किये जानेवाले कृत्य, ब्रह्माजीके पूजनकी विधि और उसके फलवर्ग विस्तारपूर्वक वर्णन करे।

सुमन्तु मुनि बोले—हे राजन्! पूर्वकर्त्त्वमें स्वावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगत्के नष्ट हो जानेपर सर्वज्ञ जल-ही-जल हो गया। उस समय देवताओंमें श्रेष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजी प्रकट हुए और उन्होंने अनेक लोकों, देवगणों तथा विविध प्राणियोंकी सृष्टि की। प्रजापति ब्रह्मा देवताओंके पिता तथा अन्य जीवोंके पितामह है, इसलिये इनकी सदा पूजा करनी चाहिये। ये ही जगत्की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले हैं। इनके मनसे रुद्रका, वक्षःस्थलसे विष्णुका आविर्भाव हुआ। इनके चारों मुखोंसे अपने छः अङ्गोंके साथ चारों देव व्यक्त हुए। सभी देवता, दैत्य, गर्वव, यक्ष, राक्षस, नाग आदि इनकी पूजा करते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है और ब्रह्ममें स्थित है, अतः ब्रह्माजी सबसे पूज्य है। राज्य, स्वर्ग और मोक्ष—ये तीनों पदार्थ इनकी सेवा करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये सदा प्रसन्नतिसे यावज्जीवन नियमसे ब्रह्माजीकी पूजा करनी चाहिये। जो ब्रह्माजीकी सदा भूतिसे

पूजा करता है, वह मनुष्य-स्वरूपमें साक्षात् ब्रह्म ही है। ब्रह्माजीकी पूजासे अधिक पुण्य किसीमें न समझकर सदा ब्रह्माजीका पूजन करते रहना चाहिये। जो ब्रह्माजीका मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक ब्रह्माजीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करता है, वह यज्ञ, तप, तीर्थ, दान आदिके फलोंसे करोड़ों गुना अधिक फल प्राप्त करता है। ऐसे पुरुषके दर्शन और स्वर्णसे इक्षीस पीढ़ीका उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजीकी पूजा करनेवाला पुरुष बहुत कालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वहाँ निवास करनेके पक्षात् वह ज्ञानयोगके माध्यमसे मुक्त हो जाता है अथवा भोग चाहनेपर मनुष्यलोकमें चक्रवर्ती राजा अथवा वेद-वेदाङ्गपाठकृत कुलीन ब्राह्मण होता है। किसी अन्य कठोर तप और यज्ञोंकी आवश्यकता नहीं है, केवल ब्रह्माजीकी पूजासे ही सभी पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। जो ब्रह्माजीके मन्दिरमें छोटे जीवोंकी रक्षा करता हुआ सायदानीपूर्वक धीर-धीर झाड़ देता है तथा उपलेपन करता है, वह चान्द्रयण-ब्रतका फल प्राप्त करता है। एक पक्षतक ब्रह्माजीके मन्दिरमें जो झाड़ लगाता है, वह सौ करोड़ युगसे भी अधिक ब्रह्मलोकमें पूर्वित होता है और अनन्तर सर्वगुणसम्पन्न, चारों

१.—इसका वर्णन टीक इसी प्रकार वराहपुण्यमें इससे भी अधिक विस्तारसे मिलता है और मुहूर्त-विनापनि एवं अन्य ज्योतिषप्रयोगोंमें भी रमणीयतापूर्वक प्रशिक्षित है। ब्रतकर्त्त्वदूसर, ब्रतरत्नाकर, ब्रतराज आदिये भी संगृहीत हैं।

वेदोंका ज्ञाता धर्मात्मा राजाके रूपमें पृथ्वीपर आता है। भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीका पूजन न करनेतक ही मनुष्य संसारमें भटकता है। जिस तरह मानवका मन विषयोंमें मग्न होता है, वैसे ही यदि ब्रह्माजीमें मन निष्प्रग्न रहे तो ऐसा कौन पुरुष होगा जो मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता? ब्रह्माजीके जीर्ण एवं स्वच्छित मन्दिरका उद्घार करनेवाला प्राणी मुक्ति प्राप्त करता है। ब्रह्माजीके समान न कोई देवता है न गुरु, न ज्ञान है और न कोई तप है है।

प्रतिपदा आदि सभी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजाकर पूर्णिमाके दिन विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये तथा शङ्ख, घण्टा, भैरो आदि बाह्य-ध्वनियोंके साथ आरती एवं सूति करनी चाहिये। इस प्रकार व्यक्ति जितने पवित्रोपर आरती करता है, उतने हजार युगतक ब्रह्मलोकमें निवास और आनन्दका उपभोग करता है। कपिल गौके पञ्चग्रन्थ और कुशाके जलसे वेदमन्त्रोंके द्वारा ब्रह्माजीको स्नान करना ब्राह्म-स्नान कहलाता है। अन्य स्नानोंसे सौं गुना पुण्य इसमें अधिक होता है। यज्ञ एवं अग्निहोत्रादिके लिये आहारण, क्षत्रिय और वैश्यको कपिल गौ रखनी चाहिये। ब्रह्माजीकी मूर्तिका कपिल गायके भूतसे अभ्यङ्करना चाहिये, इसमें करोड़ों वर्षोंके किये गये पापोंका विनाश होता है। यदि प्रतिपदाके दिन कोई एक बार भी भींसे स्नान करता है तो उसके इच्छीसे पोदीका उद्घार हो जाता है। सुवर्ण-वस्त्रादिसे अलंकृत दस हजार सवलसा गौ वेदङ्ग ब्राह्मणोंको देनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य ब्रह्माजीको दुर्घटसे स्नान करानेसे प्राप्त होता है। एक बार भी दूधसे ब्रह्माजीको स्नान करनेवाला पुरुष सुवर्णके विमानमें विराजमान हो ब्रह्मलोकमें पहुंच जाता है। दहोनेसे स्नान करानेपर विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। शाहदसे स्नान करानेपर वीरलोक (इन्द्रलोक) की प्राप्ति होती है। ईश्वरके रससे स्नान करानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। शुद्धोदकसे स्नान करानेपर सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। वस्त्रसे छने हुए जलसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर वह सदा तृप्त रहता है और सम्पूर्ण विश्व उसके वशीभूत हो जाता है। सर्वोपाधियोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोक, चन्दनके

जलसे स्नान करानेपर रुद्रलोक, कमलके पुष्प, नीलकमल, पाटला (लोध-लाल), कनेर आदि सुगन्धित पुष्पोंसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कपूर और आगरके जलसे स्नान करानेपर या गायत्रीमन्त्रसे सौ बार जलको अधिमन्त्रित कर उस जलसे स्नान करानेपर ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। शीतल जल या कपिला गायके धारोणा दुर्घटसे स्नान करानेके अनन्तर घृतसे स्नान करानेसे सभी पापोंसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। इन तीनों स्नानोंके सम्प्रब्र कर भक्तिपूर्वक पूजा करानेसे पूजकक्षे अक्षमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मिठ्ठोंके घड़ेंकी अपेक्षा तांबिके घटसे ब्रह्माजीको स्नान करानेपर सौंगुना, चाँदीके घटसे लालगुना फल होता है और सुवर्ण-कलशसे स्नान करानेपर कोटिगुना फल प्राप्त होता है। ब्रह्माजीके दर्शनसे उनका स्वर्ण करना क्षेत्र है, स्पर्शसे पूजन और पूजनसे घृतस्नान अधिक फलदायक है। सभी वाचिक और मानसिक पाप घृतस्नान करानेसे नष्ट हो जाते हैं।

राजन्! इस विधिसे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक ब्रह्माजीकी पूजा इस प्रकार करनी चाहिये—पवित्र वस्त्र पहनकर, आसनपर बैठ सम्पूर्ण न्यास करना चाहिये। प्रथम चार हाथ विस्तृत स्थानमें एक अष्टदल-कषायलक्षण निर्माण करे। उसके मध्य नाना वर्णयुक्त द्वादशदल-वन्त्र लिखे और पाँच रंगोंसे उसको भरे। इस प्रकार यन्त्र-निर्माणकर गायत्रीके वर्णोंसे न्यास करे।

गायत्रीके अक्षरोंद्वारा शरीरमें न्यास कर देवताके शरीरमें भी न्यास करना चाहिये। प्रणवयुक्त गायत्री-मन्त्रके द्वारा अधिमन्त्रित केशर, अगर, चन्दन, कपूर आदिसे समन्वित जलसे सभी पूजाद्रव्योंका मार्जन करना चाहिये। अनन्तर पूजा करनी चाहिये। प्रणवका उत्तारण कर पीठस्थापन और प्रणवसे ही तेज़-स्वरूप ब्रह्माजीका आवाहन करना चाहिये। पदापर विश्वजमान, चार मुखोंसे युक्त चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले श्रीब्रह्माजीका ध्यान कर पूजा करनी चाहिये। जो पुरुष प्रतिपदा तिथिके दिन भक्तिपूर्वक गायत्रीमन्त्रसे ब्रह्माजीका पूजन करता है, वह विरकालतक ब्रह्मलोकमें निवास करता है।

(अध्याय १७)

ब्रह्माजीकी रथयात्राका विधान और कार्तिक शुक्र प्रतिपदाकी महिमा

सुमन् मुनिने कहा—हे राजा शतानोक ! कार्तिक मासमें जो ब्रह्माजीकी रथयात्राका उत्सव करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कार्तिककी पूर्णिमाको मृगचर्मके आसनपर सावित्रीके साथ ब्रह्माजीको रथमें विराजमान करे और विविध वादा-ध्यनिके साथ रथयात्रा निकाले। विशिष्ट उत्सवके साथ ब्रह्माजीको रथपर बैठाये और रथके आगे ब्रह्माजीके परम भक्त ब्राह्मण शार्णिङ्गलीपुत्रको स्थापित कर उनकी पूजा करे। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्ति एवं पुण्याह्याचन कराये। उस गत्रि जागरण करे। नृत्य-गीत आदि उत्सव एवं विविध ब्रीडाएँ ब्रह्माजीके सम्मुख प्रदर्शित करे।

इस प्रकार गत्रिमें जागरण कर प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल ब्रह्माजीका पूजन करना चाहिये। ब्राह्मणोंके भोजन करना चाहिये, अनन्तर पुण्य शब्दोंके साथ रथयात्रा प्रारम्भ करना चाहिये।

चारों खेदोंके ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण उस रथको खींचे और रथके आगे वेद पढ़ते हुए ब्राह्मण चलते रहे। ब्रह्माजीके दक्षिण-भागमें सावित्री तथा वाम-भागमें भोजककी स्थापना करे। रथके आगे शङ्क, भेरी, मृदङ्ग आदि विविध वादा बजते रहे। इस प्रकार सारे नगरमें रथको घुमाना चाहिये और नगरकी

प्रदक्षिणा करनी चाहिये, अनन्तर उसे अपने स्थानपर ले आना चाहिये। आरती करके ब्रह्माजीको उनके मन्दिरमें स्थापित करे। इस रथयात्राको सम्पन्न करनेवाले, रथके खींचेवाले तथा इसका दर्शन करनेवाले सभी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। दीपावलीके दिन ब्रह्माजीके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करनेवाला ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। दूसरे दिन प्रतिपदाको ब्रह्माजीकी पूजा करके स्वयं भी वर्ष-आभूषणसे अलंकृत होना चाहिये। यह प्रतिपदा तिथि ब्रह्माजीको बहुत प्रिय है। इसी तिथिसे बलिके राज्यका आरम्भ हुआ है। इस दिन ब्रह्माजीका पूजनकर ब्राह्मण-भोजन करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। चैत्र मासमें कृष्णप्रतिपदाके दिन (होली जलानेके दूसरे दिन) चाषड़लका स्पर्शकर स्नान करनेसे सभी आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। उस दिन गौ, महिष आदिको अलंकृतकर उन्हें मण्डपके नीचे रखना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। चैत्र, अश्विन और कार्तिक इन तीनों महीनोंकी प्रतिपदा श्रेष्ठ हैं, किन्तु इनमें कार्तिककी प्रतिपदा विशेष श्रेष्ठ है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि सौ गुने फलको देता है। गजा बलिको इसी दिन राज्य मिला था, इसलिये कार्तिककी प्रतिपदा श्रेष्ठ मानी जाती है। (अध्याय १८)

द्वितीया-कल्पमें महर्षि च्यवनकी कथा एवं पुष्पद्वितीया-ब्रतकी महिमा

सुमन् मुनि बोले—द्वितीया तिथिको च्यवनऋषिने इन्द्रके सम्मुख यज्ञमें अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया था।

राजाने पूछा—महाराज ! इन्द्रके सम्मुख किस विधिसे अश्विनीकुमारोंको उन्होंने सोमपान पिलाया ? क्या च्यवन-ऋषिकी तपस्याके प्रभावकी प्रबलतासे इन्द्र कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हुए ?

सुमन् मुनिने कहा—सत्यगुणकी पूर्वसंव्यामें गङ्गाके तटपर समाधिस्थ हो च्यवनमुनि बहुत दिनोंसे तपस्यामें रह थे।

एक समय अपनी सेना और अन्तःपुरके परिजनोंको साथ लेकर महाराज शार्याति गङ्गा-स्नानके लिये बहाँ आये। उन्होंने च्यवनऋषिके आश्रमके समीप आकर गङ्गा-स्नान सम्पन्न किया तथा देवताओंकी आराधना की और पितरोंका तर्पण किया। तदनन्तर जब वे अपने नगरकी ओर जानेको उद्दित हुए तो उसी समय उनकी सभी सेनाएँ व्याकुल हो गयीं और मृत तथा विष्णु उनके अचानक हो बैद रहे गये, और आँखोंसे कुछ भी नहीं दिखायी दिया। सेनाकी यह दशा देखकर राजा च्यवन-

१—अन्य पृणालीमें तथा महाभारतके अनुसार यह आश्रम सोनभद्र और बधुससा नदीके संगमपर था, जो आज देवकुण्डके नामसे प्रसिद्ध है।
प्राप्त: पुण्यालोक यह इस्तेक भी प्राप्त होता है—

मगथे तु गया पुण्या नदी पुण्या पुनः पुनः। च्यवनस्य आश्रमे पुण्ये पुण्या यजगृहं वनम्॥

उठे । राजा शर्याति प्रत्येक व्यक्तिसे पूछने लगे—यह तपस्वी च्यवनमुनिका पवित्र आश्रम है, किसीने कुछ अपराध तो नहीं किया ? उनके इस प्रकार पूछनेपर किसीने कुछ भी नहीं कहा ।

सुकन्याने अपने पितासे कहा—महाराज ! मैंने एक आश्चर्य देखा, जिसका मैं बर्णन कर रही हूँ । अपनी सहेलियोंके साथ मैं वन-विहार कर रही थी कि एक ओरसे मुझे यह शब्द सुनायी पड़ी—‘सुकन्ये ! तुम इधर आओ, तुम इधर आओ ।’ यह सुनकर मैं अपनी सहियोंके साथ उस शब्दकी ओर गयी । वहाँ जाकर मैंने एक बहुत ऊँचा वल्मीकि



देखा । उसके अंदरके छिठ्रोमें दीपकके समान देदीप्यमान दो पदार्थ मुझे दिखलायी पड़े । उन्हें देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये पदार्थगमणिके समान क्या चमक रहे हैं । मैंने अपनी मूर्खता और चबूलतासे कुशकों अग्रभागसे वल्मीकिके प्रकाशयुक्त छिठ्रोंको बींध दिया, जिससे वह तेज शान्त हो गया ।

यह सुनकर राजा बहुत व्याकुल हो गये और अपनी कन्या सुकन्याको लेकर वहाँ गये जहाँ च्यवनमुनि तपस्या में रह थे । च्यवनमृषियों वहाँ समाधिस्थ होकर ढैठे हुए इन्हे दिन व्यतीत हो गये थे कि उनके ऊपर वल्मीकि बन गया था । जिन तेजस्वी छिठ्रोंने सुकन्याने कुशकों अग्रभागसे बींध दिया था,

वे उस महातपस्वीके प्रकाशमान नेत्र थे । राजा वहाँ पहुँचकर अतिशय दीनताके साथ विनती करने लगे ।

राजा बोले—महाराज ! मेरी कन्यासे बहुत बड़ा अपराध हो गया है । कृपाकर क्षमा करें ।

च्यवनमुनिने कहा—अपराध तो मैंने क्षमा किया, परंतु अपनी कन्याका मेरे साथ विवाह कर दो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है । मुनिका वचन सुनकर राजा ने शीघ्र ही सुकन्याका च्यवनमृषियोंसे विवाह कर दिया । सभी सेनाएँ सुखी हो गयीं और मुनिको प्रसन्नकर सुखपूर्वक राजा अपने नगरमें आकर राज्य करने लगे । सुकन्या भी विवाहके बाद भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी । राजवस्त्र, आभूषण उसने उतार दिये और वृक्षकी ढाल तथा मृगचर्य धारण कर लिया । इस प्रकार मुनिकी सेवा करते हुए कुछ समय व्यतीत हो गया और वसन्त झर्तु आयी । किसी दिन मुनिने संतान-प्राप्तिके लिये अपनी पली सुकन्याका आङ्गन किया । इसपर सुकन्याने अतिशय विनयभावसे विनती की ।

सुकन्या बोली—महाराज ! आपकी आज्ञा मैं किसी प्रकार भी ढाल नहीं सकती, किंतु इसके लिये आपको युवावस्था तथा सुन्दर वस्त्र-आभूषणोंसे अलंकृत करनीय लक्ष्य धारण करना चाहिये ।

च्यवनमुनिने उदास होकर कहा—न मेरा उताम रूप है और न तुम्हारे पिताके समान मेरे पास धन है, जिससे सभी भोग-सामग्रियोंको मैं एकत्र कर सकूँ ।

सुकन्या बोली—महाराज ! आप अपने तपके प्रभावसे सब कुछ करनेमें समर्थ हैं । आपके लिये यह कौन-सी बड़ी बात है ?

च्यवनमुनिने कहा—राजपुत्र ! इस कामके लिये मैं अपनी तपस्या व्यर्थ नहीं करूँगा । इतना कहकर वे पहलेकी तरह तपस्या करने लगे । सुकन्या भी उनकी सेवामें तत्पर हो गयी ।

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होनेके बाद अस्तिनीकुमार उसी मार्गसे चले जा रहे थे कि उनकी दृष्टि सुकन्यापर पड़ी ।

अस्तिनीकुमारोंने कहा—भद्रे ! तुम कौन हो ? और इस घोर वनमें अकेली क्यों रहती हो ?

सुकन्याने कहा—मैं राजा शर्यातिकी सुकन्या नामकी

पुत्री हैं। मेरे पति च्यवन ऋषि यहाँ तपस्या कर रहे हैं, उन्होंकी सेवाके लिये मैं यहाँ उनके समीप रहती हूँ। कहिये, आपलोग कौन हैं?

अश्विनीकुमारोंने कहा—हम देवताओंके बैठा अश्विनीकुमार हैं। इस बृद्ध पतिसे तुम्हें क्या सुख मिलेगा? हम दोनोंमें किसी एकका वरण कर लो।

सुकन्याने कहा—देवताओं! आपका ऐसा कहना ठीक नहीं। मैं पतिव्रत हूँ और सब प्रकारसे अनुरक्त होकर दिन-रात अपने पतिकी सेवा करती हूँ।

अश्विनीकुमारोंने कहा—यदि ऐसी बात है तो हम तुम्हारे पतिदेवको अपने उपचारके द्वारा अपने समान स्वस्थ एवं सुन्दर बना देंगे और जब हम तीनों गङ्गामें ऊनकर बाहर निकलें फिर जिसे तुम पतिरूपमें वरण करना चाहो कर लेना।

सुकन्याने कहा—मैं यिना पतिकी आशाके कुछ नहीं कह सकती।

अश्विनीकुमारोंने कहा—तुम अपने पतिसे पूछ आओ, तबतक हम यहीं प्रतीक्षामें रहेंगे। सुकन्याने च्यवनमुनिके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया। अश्विनीकुमारोंकी बात स्वीकार कर च्यवनमुनि सुकन्याको लेकर उनके पास आये।

च्यवनमुनिने कहा—अश्विनीकुमारो! आपकी इस दृष्टि से व्यक्ति नहीं करता। आप हमें उत्तम रूपवान् बना दें, फिर सुकन्या चाहे जिसे वरण करे। च्यवनमुनिके इतना कहनेपर अश्विनीकुमार च्यवनमुनिको लेकर गङ्गाजीके जलमें प्रविष्ट हो गये और कुछ देर बाद तीनों ही बाहर निकले। सुकन्याने देखा कि ये तीनों तो समान रूप, समान अवस्था तथा समान वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हैं, फिर इनमें मेरे पति च्यवनमुनि कौन है? वह कुछ निश्चित न कर सकती और व्याकुल हो अश्विनीकुमारोंकी प्रार्थना करने लगी।

सुकन्या बोली—देवो! अस्यत्तु तुम्हारे पतिदेवका भी मैंने परित्याग नहीं किया था। अब तो आपकी कृपासे उनका रूप आपके समान सुन्दर हो गया है, फिर मैं कैसे उनका परित्याग कर सकती हूँ। मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये।

सुकन्याकी इस प्रार्थनासे अश्विनीकुमार प्रसन्न हो गये और उन्होंने देवताओंके चिह्नोंको धारण कर लिया। सुकन्याने देखा कि तीन पुरुषोंमें से दोकी परत्तेके गिर नहीं रही है और



उनके चरण भूमिको स्पर्श नहीं कर रहे हैं, किंतु जो तीसरा पुरुष है, वह भूमिपर खड़ा है और उसकी पल्लेके भी गिर रही हैं। इन चिह्नोंको देखकर सुकन्याने निश्चित कर लिया कि ये तीसरे पुरुष ही मेरे स्वामी च्यवनमुनि हैं। तब उसने उनका वरण कर लिया। उसी समय आकाशसे उसपर पृथ्वी-वृष्टि होने लगी और देवगण दुन्दुभि बजाने लगे।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंसे कहा—देवो! आप लोगोंने मुझपर बहुत उपकार किया है, जिसके फलस्वरूप मुझे उत्तम रूप और उत्तम पक्षी प्राप्त हुईं। अब मैं आपलोगोंका क्या प्रत्युपकार करूँ, क्योंकि जो उपकार करनेवालेका प्रत्युपकार नहीं करता, वह क्रमसे इक्षीस नरकोंमें जाता है^१, इसलिये आपका मैं क्या प्रिय करूँ, आप लोग कहे।

अश्विनीकुमारोंने उनसे कहा—महामन्! यदि आप हमारा प्रिय करना ही चाहते हैं तो अन्य देवताओंकी तरह हमें भी यज्ञभाग दिलव्याइये। च्यवनमुनिने यह बात स्वीकार कर ली, फिर वे उन्हें विदाकर अपसी भार्या सुकन्याके साथ अपने आश्रममें आ गये।

एजा शार्यातिको जब यह सारा वृत्तान्त शात हुआ तो वे

^१—उपकार बरिंद्र यो न कठेत्युपकारिणः। सहविशत् स गच्छेत् नरकाणि क्रमेण वै। (ब्राह्मण ११। ५०-५१)

भी रानीको साथ लेकर सुन्दर रूप-प्राप्त महातेजस्वी च्यवनप्रसादिको देखने आश्रममें आये। राजा ने च्यवनमुनिको प्रणाम किया और उन्होने भी राजाका स्वागत किया। सुकन्याने अपनी माताका आलिङ्गन किया। राजा शर्याति अपने जामाता महामुनि च्यवनका उत्तम रूप देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

च्यवनमुनिने राजासे कहा—राजन्! एक महायज्ञकी सामग्री एकत्र कीजिये, हम आपसे यज्ञ करेंगे। च्यवन-मुनिकी आज्ञा प्राप्तकर राजा शर्याति अपनी शजधानी लैट आये और यज्ञ-सामग्री एकत्रकर यज्ञकी तैयारी करने लगे। मन्त्री, पुणीहित और आचार्यको बुलाकर यज्ञकार्यके लिये उन्हें नियुक्त किया। च्यवनमुनि भी अपनी पत्नी सुकन्याको लेकर यज्ञ-स्थलमें पधारे।

सभी प्रह्लिदिगणोंको आमन्त्रण देकर यज्ञमें बुलाया गया। विधिपूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हुआ। प्रह्लिदि, अश्विकुण्डमें स्थानाकरके साथ देवताओंको आहुति देने लगे। सभी देवता अपना-अपना यज्ञ-भाग लेनें वहाँ आ पहुँचे। च्यवनमुनिके कहनेसे अश्विनीकुमार भी वहाँ आये। देवराज इन्द्र उनके आनेका प्रयोगन समझ गये।

इन्द्र बोले—मुने ! ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंकी वैद्य हैं, इसलिये ये यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हैं, आप इन्हें आहुतियाँ प्रदान न करवायें।

च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये देवता हैं और इनका मेरे ऊपर बड़ा उपकार है, ये मेरे ही आमन्त्रणपर यहाँ पधारे

हैं, इसलिये मैं इन्हें अवश्य यज्ञभाग देंगा। यह सुनकर इन्द्र कुद्द हो उठे और कठोर रूपमें कहने लगे।

इन्द्र बोले—यदि तुम मेरी बात नहीं मानोगे तो वज्रसे तुमपर मैं प्रहार करूँगा। इन्द्रकी ऐसी बाणी सुनकर च्यवनमुनि शिरित् भी भयभीत नहीं हुए और उन्होने अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग दे ही दिया, तब तो इन्द्र अत्यन्त कुद्द हो उठे और उन्होने ज्यों ही च्यवनमुनिपर प्रहार करनेके लिये अपना यज्ञ उठाया त्यों ही च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे इन्द्रका स्तम्भन कर दिया। इन्द्र हाथमें यज्ञ लिये खड़े ही रह गये।

च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञभाग देकर अपनी प्रतिशा पूरी कर ली और यज्ञको पूर्ण किया। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी उपस्थित हुए।

ब्रह्माजीने च्यवनमुनिसे कहा—महामुने ! आप इन्द्रको स्तम्भन-मुक्त कर दें। अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग दें। इन्द्रने भी स्तम्भनसे मुक्त करनेके लिये प्रार्थना की।

इन्द्रने कहा—मुने ! आपके तपकी प्रसिद्धिके लिये ही मैंने इन अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें भाग लेनेसे रोका था, अब आजसे सब यज्ञमें अन्य देवताओंके साथ अश्विनीकुमारोंको भी यज्ञभाग मिला करेगा और इनको देवत्व भी प्राप्त होगा। आपके इस तपके प्रभावको जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी उत्तम रूप एवं यौवनको प्राप्त करेगा। इतना कहकर देवराज इन्द्र देवलोकको चले गये और च्यवनमुनि सुकन्या तथा राजा शर्यातिके साथ आश्रमपर लैट आये।

वहाँ उन्होने देखा कि बहुत उत्तम-उत्तम महल बन गये हैं, जिनमें सुन्दर उपवन और वापी आदि विहारके लिये बने हुए हैं। भाँति-भाँतिकी शाय्याएँ बिछी हुई हैं, विविध रसोंसे जटित आभूषणों तथा उत्तम-उत्तम वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। यह देखकर सुकन्यासहित च्यवनमुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होने यह सब देवराज इन्द्रद्वारा प्रदत्त समझाकर उनकी प्रशंसा की।

महामुनि सुमन्तु राजा शतानीकसे बोले—राजन् ! इस प्रकार द्वितीया लिथिके दिन अश्विनीकुमारोंको देवत्व तथा यज्ञभाग प्राप्त हुआ था। अब आप इस द्वितीया लिथिके ब्रतका विधान सुनें—

शतानीक बोले—जो पुरुष उत्तम रूपकी इच्छा करे



वह कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीयासे व्रतको आरम्भ करे और वर्षपर्यावर संयमित होकर पुण्य-भोजन करे। जो उत्तम हविष्य-पुण्य उस ऋतुमें हो उनका आहार करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रतकर सोने-चाँदीके पुण्य बनाकर अथवा कमलपुष्पोंको ब्राह्मणोंको देकर व्रत सम्पन्न करे। इससे अधिनीकुमार संतुष्ट होकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं। ब्रती उत्तम विमानोंमें वैठकर स्वर्गमें जाकर कल्पपर्यावर विविध सुखोंका उपभोग करता है। फिर मर्त्यलोकमें जन्म लेकर वेद-वेदाङ्गोंका जाता, महादानी,

आधि-व्याधियोंसे रहित, पुत्र-पौत्रोंसे युक्त, उत्तम पत्नीवाला ब्राह्मण होता है अथवा मध्यदेशके उत्तम नगरमें राजा होता है।

गजन्! इस पुण्यद्वितीया-ब्रतका विधान मैंने आपको बताया। ऐसी ही फलद्वितीया भी होती है, जिसे अशून्यशयना-द्वितीया भी कहते हैं। फलद्वितीयाके जो श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, वह ऋद्धि-सिद्धिको प्राप्तकर अपनी भार्यासहित आनन्द प्राप्त करता है।

(अध्याय १९)

फल-द्वितीया (अशून्यशयन-ब्रत) का ब्रत-विधान और द्वितीया-कल्पकी समाप्ति

राजा शतानीकने कहा—मुने! कृपाकर आप फलद्वितीयाका विधान कहें, जिसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पति-पत्नीका परस्पर वियोग भी नहीं होता।

सुमन्! मुनिने कहा—गजन्! मैं फलद्वितीयाका विधान कहता हूँ, इसीका नाम अशून्यशयना-द्वितीया भी है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और स्त्री-पुण्यका परस्पर वियोग भी नहीं होता। श्रीरसागरमें लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुके शयन करनेके समय यह व्रत होता है। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाके दिन लक्ष्मीके साथ श्रीवत्सस्थारी भगवान् श्रीविष्णुका पूजनकर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

श्रीवत्सस्थारिन् श्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपतेऽव्यय ।

गार्हस्यं मा प्रणश्यां मे यातु अर्मार्दिकामदम् ॥

गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः ॥

जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दास्त्वमेदतः ।

लक्ष्म्या विष्णुन्येऽहं देव न कदाचिद्वाचा भवान् ॥

तथा कलन्त्रसम्बन्धो देव मा मे विष्णुप्रत्याम् ।

लक्ष्म्या न शूद्यं वरद यथा ते शयने सदा ॥

शत्र्या भपाव्यशून्यास्तु तथा तु भयुमूदनै ।

(आद्याप्त २०।३—११)

इस प्रकार विष्णुकी प्रार्थना करके व्रत करना चाहिये। जो किया है।

फल भगवान्को प्रिय है, उन्हे भगवान्की शायापर समर्पित करना चाहिये और स्वयं भी रात्रिके समय उन्हीं फलोंको स्वाकर दूसरे दिन ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये।

राजा शतानीकने पूछा—महामुने! भगवान् विष्णुको कौन-से फल प्रिय हैं, आप उन्हें बतायें। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको क्या दान देना चाहिये? उसे भी कहें।

सुमन्! मुनि बोले—हजन्! उस ऋतुमें जो भी फल हो और पके हों, उन्हींको भगवान् विष्णुके लिये समर्पित करना चाहिये। कडुबे-कस्ते तथा स्वादे फल उनकी सेवामें नहीं चढ़ाने चाहिये। भगवान् विष्णुको स्वादूर, नारिकेल, मातुलुक अर्धात् विजौरा आदि मधुर फलोंको समर्पित करना चाहिये। भगवान् मधुर फलेसे प्रसन्न होते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भी इसी प्रकारके मधुर फल, वस्त्र, अत्र तथा सुवर्णक दान देना चाहिये।

इस प्रकार जो पुण्य चार मासतक व्रत करता है, उसका तीन जन्मोतक गर्भास्थ जीवन नष्ट नहीं होता और न तो ऐश्वर्यकी कमी होती है। जो स्त्री इस व्रतके करती है वह तीन जन्मोतक न विधवा होती है न दुर्घटा और न पतिसे पृथक् ही रहती है।

इस व्रतके दिन अधिनीकुमारोंकी भी पूजा करनी चाहिये। गजन्! इस प्रकार मैंने द्वितीया-कल्पका वर्णन

(अध्याय २०)

१-हे श्रीवत्स-चिह्नके शरण करनेवाले लक्ष्मीके स्त्रामी ऋष्यत भगवान् विष्णु। शर्म, अर्च और कलमन्ते पूर्ण करनेवाले मेय गृहस्थ-आश्रम कपो नह न हो। मेरी गौणै भी नष्ट न हो न कभी मेरे परिवारके लोग कष्टमें पड़े एवं न नह हों। मेरे घरकी लिखाई भी कभी विपत्तिमें न पड़े और हम पति-पत्नीमें भी कभी नतपेद उत्पत्त न हो। हे देव! मैं लक्ष्मीसे कभी विष्णुक न होऊँ और पत्नीसे भी कभी मुझे वियोगकी प्राप्ति न हो। प्रभो! जैसे आपको शत्र्या कपो लक्ष्मीसे शून्य नहीं होती, उसी प्रकार मेरी शत्र्या भी कभी शोभार्थित एवं लक्ष्मी तथा पत्नीमें शून्य न हो।

तृतीया-कल्पका आरम्भ, गौरी-तृतीया-ब्रत-विधान और उसका फल

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! जो स्त्री सब प्रकारका सुख चाहती है, उसे तृतीयाका ब्रत करना चाहिये । उस दिन नमक नहीं खाना चाहिये । इस विधिसे उपकासपूर्वक जीवन-पर्वत इस ब्रतका अनुष्ठान करनेवाली स्त्रीको भगवती गौरी संतुष्ट होकर रूप-सौभाग्य तथा लक्षण्य प्रदान करती है । इस ब्रतका विधान जो स्वयं गौरीने धर्मराजसे कहा है, उसीका वर्णन मैं करता हूँ, उसे आप सुनें—

भगवती गौरीने धर्मराजसे कहा—धर्मराज ! स्त्री-पुरुषोंके कल्प्याणके लिये मैंने इस सौभाग्य प्राप्त करनेवाले ब्रतको बनाया है । जो स्त्री इस ब्रतको नियमपूर्वक करती है, वह सदैव अपने पति के साथ रहकर उसी प्रकार आनन्दका उपभोग करती है, जैसे भगवान् शिवके साथ मैं आनन्दित रहती हूँ । उत्तम पतिकी प्राप्तिके लिये कन्याको यह ब्रत करना चाहिये । ब्रतमें नमक न खाये । सुखर्णकी गौरी-प्रतिमा स्थापित करके भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त हो गौरीका पूजन करे । गौरीके लिये नाना प्रकारके नैवेद्य अर्पित करने चाहिये । गृहिये लक्षणरहित भोजन करके स्थापित गौरी-प्रतिमाके समक्ष ही शयन करे । दूसरे दिन ब्राह्मणोंको भोजन करकर दक्षिणा दे । इस प्रकार जो कन्या ब्रत करती है, वह उत्तम पतिको प्राप्त करती है तथा चिरकालतक श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके साथ उत्तम ल्येकोंको जाती है ।

यदि विधवा इस ब्रतको करती है तो वह स्वर्गमें अपने पतिको प्राप्त करती है और बहुत समयतक वहाँ रहकर पतिके साथ वहाँके सुखोंका उपभोग करती है और पूर्णोंत सभी सुखोंको भी प्राप्त करती है । देवी इन्द्रजीने सुन-प्राप्तिके लिये इस ब्रतका अनुष्ठान किया था, इसके प्रभावसे उन्हें जयन्त नामका पुत्र प्राप्त हुआ । अरुदतीने उत्तम स्थान प्राप्त करनेके लिये इस ब्रतका नियम-पालन किया था, जिसके प्रभावसे वे

पतिसहित सबसे ऊपरका स्थान प्राप्त कर सकी थीं । वे आजतक आकाशमें अपने पति महर्षि वसिष्ठके साथ दिव्यादी देती हैं । चन्द्रमाकी पत्नी रेहिणीने अपनी समस्त सपत्नियोंको जीतनेके लिये बिना लक्षण खाये इस ब्रतको किया तो वे अपनी सभी सपत्नियोंमें प्रधान तथा अपने पति चन्द्रमाकी अस्यन्त प्रिय पत्नी हो गयीं । देवी पार्वतीकी अनुकूल्यासे उन्हें अचल सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

इस प्रकार यह तृतीया तिथि-ब्रत सारे संसारमें पूजित है और उत्तम फल देनेवाला है । वैशाख, भाद्रपद तथा माघ मासकी तृतीया अन्य मासोंकी तृतीयासे अधिक उत्तम है, जिसमें माघ मास तथा भाद्रपद मासकी तृतीया शिरोंके विशेष फल देनेवाली है ।

वैशाख मासकी तृतीया सामान्यरूपसे सबके लिये है । यह साधारण तृतीया है । माघ मासकी तृतीयाको गुड़ तथा लक्षणका दान करना स्त्री-पुरुषोंके लिये अल्पता श्रेयस्कर है । भाद्रपद मासकी तृतीयामें गुड़के बने अपूर्ण (मालघूआ) का दान करना चाहिये । भगवान् शङ्खरकी प्रसन्नताके लिये माघ मासकी तृतीयाको मोटक और जलका दान करना चाहिये । वैशाख मासकी तृतीयाको चन्दनमिश्रित जल तथा मोटकके दानसे ब्रह्मा तथा सभी देवता प्रसन्न होते हैं । देवताओंने वैशाख मासकी तृतीयाको अक्षय तृतीया कहा है । इस दिन अग्र-वस्त्र-भोजन-सुखर्ण और जल आदिका दान करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है । इसी विशेषताके कारण इस तृतीयाका नाम अक्षय तृतीया है । इस तृतीयाके दिन जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय हो जाता है और दान देनेवाला सूर्यलोकको प्राप्त करता है । इस तिथिको जो उपवास करता है वह ऋद्धि-वृद्धि और श्रीसे सम्पन्न हो जाता है ।

(अध्याय २१)

चतुर्थी-ब्रत एवं गणेशजीकी कथा तथा सामुद्रिक शास्त्रका संक्षिप्त परिचय

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! तृतीया-कल्पका वर्णन करनेके अनन्तर अब मैं चतुर्थी-कल्पका वर्णन करता हूँ । चतुर्थी-तिथिमें सदा निराहार रहकर ब्रत करना चाहिये । ब्राह्मणको तिलका दान देकर स्वयं भी तिलक भोजन करना

चाहिये । इस प्रकार ब्रत करते हुए दो वर्ष अवृत्ति होनेपर भगवान् विनायक प्रसन्न होकर ब्रतीको अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । उसका भाष्योदय हो जाता है और वह अपार धन-सम्पत्तिका स्वामी हो जाता है तथा परलोकमें भी अपने

पुण्य-फलोंका उपभोग करता है। पुण्य समाप्त होनेके पश्चात् इस लोकमें पुनः आकर वह दीर्घायु, कान्तिमान, बुद्धिमान, धृतिमान, वक्ता, भाष्यवान्, अधीष्ट कथ्यों तथा असाध्य-कथ्योंको भी शक्ति-भरमें ही सिद्ध कर लेनेवाला और हाथी, घोड़े, रथ, पक्षी-पुत्रसे युक्त हो सात जन्मोंतक राजा होता है।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! गणेशजीने किसके लिये विष्व उत्पन्न किया था, जिसके कारण उन्हें विष्वविनायक कहा गया। आप विष्वेश तथा उनके द्वारा विष्व उत्पन्न करनेके कारणको मुझे बतानेका कष्ट करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! एक बार अपने लक्षण-शास्त्रके अनुसार स्वामिकार्तिकेयने पुरुषों और स्त्रियोंके श्रेष्ठ लक्षणोंकी रचना की, उस समय गणेशजीने विष्व किया। इसपर कार्तिकेय क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गणेशका एक दाँत उत्खाड़ लिया और उन्हें मारनेके लिये उघत हो उठे। उस समय भगवान् शङ्करने उनको रोककर पूछा कि तुम्हारे ब्रोधवत्र क्या कारण है ?

कार्तिकेयने कहा—पिताजी ! मैं पुरुषोंके लक्षण बनाकर स्त्रियोंके लक्षण बना रहा था, उसमें इसने विष्व किया, जिससे स्त्रियोंके लक्षण मैं नहीं बना सका। इस कारण मुझे ब्रोध हो आया। यह सुनकर महादेवजीने कार्तिकेयके ब्रोधको शान्त किया और हँसते हुए उन्होंने पूछा।

शङ्कर बोले—पुत्र ! तुम पुरुषके लक्षण जानते हो तो बताओ, मुझमें पुरुषके कौन-से लक्षण हैं ?

कार्तिकेयने कहा—महाराज ! आपमें ऐसा लक्षण है कि संसारमें आप कपालीके नामसे प्रसिद्ध होगें। पुत्रका यह बचन सुनकर महादेवजीको ब्रोध हो आया और उन्होंने उनके उस लक्षण-प्रन्थको उठाकर समृद्धमें फेंक दिया और स्वयं अन्तर्धन हो गये।

बादमें शिवजीने समृद्धको बुलाकर कहा कि तुम स्त्रियोंके आभूषण-स्वरूप विलक्षण लक्षणोंकी रचना करो और कार्तिकेयने जो पुरुष-लक्षणके विषयमें कहा है उसको कहो।

समृद्धने कहा—जो मेरे द्वारा पुरुष-लक्षणका शास्त्र

कहा जायगा, वह मेरे ही नाम 'सामृद्धिक शास्त्र'से प्रसिद्ध होगा। स्वामिन् ! आपने जो आशा मुझे दी है, वह निश्चित ही पूरी होगी।

शङ्करजीने पुनः कहा—कार्तिकेय ! इस समय तुमने जो गणेशका दाँत उत्खाड़ लिया है उसे दे दो। निश्चय ही जो कुछ यह हुआ है, होना ही था। देवयोगसे यह गणेशके बिना सम्भव नहीं था, इसलिये उनके द्वारा यह विष्व उत्पन्नित किया गया। यदि तुम्हें लक्षणकी अपेक्षा हो तो समृद्धसे ग्रहण कर लो, किन्तु स्त्री-पुरुषोंका यह श्रेष्ठ लक्षण-शास्त्र 'सामृद्ध-शास्त्र' इस नामसे ही प्रसिद्ध होगा। गणेशको तुम दाँत-युक्त कर दो।

कार्तिकेयने भगवान् देवदेवेशरसे कहा—आपके कहनेसे मैं दाँत तो बिनायकके हाथमें दे देता हूँ, किन्तु इन्हें इस दाँतको सदैव धारण करना पड़ेगा। यदि इस दाँतको फेंककर ये इधर-उधर घूमेंगे तो यह फेंका गया दाँत इन्हें भस्म कर देगा। ऐसा कहकर कार्तिकेयने उनके हाथमें दाँत दे दिया। भगवान् देवदेवेशरने गणेशको कार्तिकेयकी इस बातको माननेके लिये सहमत कर लिया।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आज भी भगवान् शङ्करके पुत्र विप्रकर्ता महात्मा विनायककी प्रतिमा हाथमें दाँत लिये देखी जा सकती है। देवताओंकी यह रहस्यपूर्ण चात मैंने आपसे कही। इसको देखता भी नहीं जान पाये थे। पृथ्वीपर इस रहस्यको जानना तो दुर्लभ ही है। प्रसन्न होकर मैंने इस रहस्यको आपसे तो कह दिया है, किन्तु गणेशकी यह अमृतकथा चतुर्थी लिथिक संयोगपर ही कहनी चाहिये। जो विद्वान् हो, उसे चाहिये कि वह इस कथाको वेदपाठसूत्र श्रेष्ठ द्विजों, अपनी सत्रियोचित वृत्तिमें लगे हुए क्षत्रियों, वैश्यों और गुणवान् शूद्रोंको सुनाये। जो इस चतुर्थीकृतका पालन करता है, उसके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। उसकी दुर्गति नहीं होती और न कहीं वह पराजित होता है। भरतश्रेष्ठ ! निविष्व-रूपसे वह सभी कथ्योंके सम्प्रकरण लेता है, इसमें संदेह नहीं है। उसे ऋद्धि-वृद्धि-ऐश्वर्य भी प्राप्त हो जाता है। (अथाय २२)

चतुर्थी-कल्य-वर्णनमें गणेशजीका विष्ण-अधिकार तथा उनकी पजा-विधि

राजा शतानीकने सुमन्तु मुनिसे पूछा—विप्रवर !
गणेशाजीको गणोंका राजा किसने बनाया और बड़े भाई
कार्तिकेयके रहते हुए ये कैसे विष्णुके अधिकारी हो गये ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आपने बहुत अच्छी बात पूछी है। जिस क्रारण ये विष्वकारक हुए हैं और जिन विष्वोंको करनेसे इस पदपर इनकी नियुक्ति हुई, वह मैं कह रहा हूँ, उसे आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। पहले कृतयुगमें प्रजाओंकी जब सुष्टि हुई तो विना विष-वाधाके देखते-ही-देखते सब कार्य सिद्ध हो जाते थे। अतः प्रजाओंको बहुत अहंकार हो गया। हेश-रहित एवं अहंकारसे परिपूर्ण प्रजाओं देखकर ब्रह्माने बहुत सोच-विचार करके प्रजा-समुद्दिके लिये विनायकको विनियोजित किया। अतः ब्रह्माके प्रयाससे भगवान् शङ्करने गणेशको उत्पन्न किया और उन्हें गणोंका अधिपति बनाया।

राजन् ! जो प्राणी गणेशकी बिना पूजा किये ही कार्य आरम्भ करता है, उनके लक्षण मुझसे सुनिये—वह व्यक्ति स्वप्रमें अत्यन्त गहरे जलमें अपनेको ढूबते, स्थान करते हुए या केश मुड़ाये देखता है। काषाय खलसे आच्छादित तथा हिसक व्याघ्रादि पशुओंपर अपनेको चढ़ता हुआ देखता है। अन्यज, गर्दम तथा कैंट आदिपर चढ़वार परिजनोंसे धिरा वह अपनेको जाता हुआ देखता है। जो मानव बैकरड़ेपर बैठकर अपनेको जलकी तरंगोंके बीच गया हुआ देखता है और पैदल चल रहे लोगोंसे धिरकर यमराजके लोकको जाता हुआ अपनेको स्वप्रमें देखता है, वह निश्चित ही अत्यन्त दःखी होता है।

जो राजकुमार स्वप्रमें अपने चित्त तथा आकृतिको विकृत रूपमें अवस्थित, करवीरके फूलेवी मालसेवि विभूषित देखता है, वह उन भगवान् विद्वेशके द्वाय विद्व उत्पन्न कर देनेके कारण पूर्ववंशानुगत प्राप्त राज्यको प्राप्त नहीं कर पाता। कुमारी कन्या अपने अनुरूप पतिको नहीं प्राप्त कर पाती। गर्भिणी स्त्री संतानको नहीं प्राप्त कर पाती है। श्रोत्रिय आह्वाण आचार्यत्वका लाभ नहीं प्राप्त कर पाता और शिष्य अध्ययन नहीं कर पाता। वैश्यको व्यापारमें लाभ नहीं प्राप्त होता है और कृषकको कृषि-कार्यमें पूरी सफलता नहीं मिलती। इसलिये राजन् । ऐसे अद्युभ स्वप्रोंको देखनेपर भगवान् गणपतिकी प्रसन्नताके लिये निर्माणक-शान्ति करनी चाहिये।

शुक्र पक्षकी चतुर्थिकि दिन, बृहस्पतिवार और पूर्ण-
नक्षत्र होनेपर गणेशजीको सर्वोदयि और सुगम्भित द्रव्य-
पदार्थोंसे उपलिम्प करे तथा उन भगवान् विद्रोहके सामने स्वयं
भद्रासनपर बैठकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर
भगवान् शङ्ख, पार्वती और गणेशकी पूजा करके सभी पितरों
तथा प्रह्लेकी पूजा करे। चार कलश स्थापित कर उनमें
सप्तमूर्तिका, गुणुल और गोरोचन आदि द्रव्य तथा सुगम्भित
पदार्थ छोड़े। सिंहासनस्थ गणेशजीको खान कराना चाहिये।
खान करते समय इन मन्त्रोंवाल उच्चारण करे—

साहस्राणं इतिप्राप्तिष्ठिः साहस्रं कृतम् ।

त्रै लाप्तिकावि पावावः पक्षे ते ॥

भर्ग ने चक्रणो राजा भर्ग सभो वाहस्ति।

भगविन्द्र वायन भग्न सपर्वयो द्वः ॥

यते केशोष दौर्भाष्यं सीमनो यस्तु मध्यनि ।

लल्लाटे कर्णयोरवृणोरापस्तदुभ्यम् ते सदा ॥

(अन्तर्गत २३। १९—२१)

इन मन्त्रोंसे स्थान करकर हवन आदि कार्य करे। अनन्तर हाथमें पुष्प, दूर्वा तथा सर्षप (सरसों) लेकर गणेशजीकी माता पार्वतीको तीन बार पुष्पाङ्गालि प्रदान करनी चाहिये। मन्त्र उत्तराण त्वंते त्वं त्वं प्रकृत्या प्राप्तया त्वंती त्वंती—

करते हुए इस प्रकार व्याख्या करना चाहिए—
कि ऐसे सभी जो अवधि तेज़ हैं

प्राप्त देह वशा दाह यत् वगवत् दाह ये।

ପୁରୁଷ ଦାହ କମ ଦାହ ଲକ୍ଷ୍ମୀନ୍ଦ୍ର ଜୀବନାଳ୍ପ ଦାହ ଯା
ଅମ୍ବାନ୍ତି ଗନ୍ଧି ତେ ଦେଖି ପାଞ୍ଚଟାଙ୍ଗ କାନ୍ତିମେଳ ତ ॥

બાળમણ અને

(श्रावणी २३) २८

अर्थात् हे भगवति ! आप मुझे रूप, यश, तेज, पुत्र तथा धन दें, आप मेरी सभी कामनाओंको पूर्ण करें। मुझे अचल बळि प्रदान करें और इस पश्चिपर प्रसिद्धि हों।'

प्रार्थनाके पश्चात् ब्राह्मणोंके तथा गुरुको भोजन कराकर उन्हें वस्त्र-युगल तथा दक्षिणा समर्पित करे। इस प्रकार भगवान् गणेश तथा यहोंकी पूजा करनेसे सभी कर्मोंका फल प्राप्त होता है और अल्पतन श्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। सूर्य, कार्तिकीय और विनायकका पूजन एवं तिलक करनेसे सभी सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है।

पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

राजा शतानीकने पूछा—विप्रेन्द ! स्त्री और पुरुषके जो लक्षण कार्तिकयने बनाये थे और जिस ग्रन्थको क्रोधमें आकर भगवान् शिवने समृद्धमें फेंक दिया था, वह कार्तिकयको पुनः प्राप्त हुआ या नहीं ? इसे आप मुझे बतायें।

सुपन्तु मुनिने कहा—गजेन्द्र ! कार्तिकयने स्त्री-पुरुषका जैसा लक्षण कहा है, वैसा ही मैं कह रहा हूँ। व्योमकेश भगवान्के सुपुत्र कार्तिकयने जब अपनी शक्तिके द्वारा क्रौंचवर्षतको विदीर्ण किया, उस समय ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कार्तिकयसे कहा कि हम तुमपर प्रसन्न हैं, जो चाहो वह वर मुझसे माँग लो। उस तेजस्वी कुमार कार्तिकयने नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और कहा कि विषो ! स्त्री-पुरुषके विषयमें मुझे अल्पाधिक कौतूहल है। जो लक्षण-ग्रन्थ पहले मैंने बनाया था उसे तो पिता देवदेवेशरने क्रोधमें आकर समृद्धमें फेंक दिया। वह मुझे भूल भी गया है। अतः उसको सुननेकी मेरी इच्छा है। आप कृपा करके उसीका वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—तुमने अच्छी बात पूछी है। समृद्धने जिस प्रकारसे उन लक्षणोंको कहा है, उसी प्रकार मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। समृद्धने स्त्री-पुरुषोंके उत्तम, मध्यम तथा अधम—तीन प्रकारके लक्षण बतलाये हैं।

शुभाशुभ लक्षण देखनेवालेको चाहिये कि वह शुभ मुहूर्तमें मध्याहके पूर्व पुरुषके लक्षणोंको देखे। प्रमाणसमूह, छायागति, सम्पूर्ण अङ्ग, दाँत, केश, नख, दाढ़ी-मूँहका लक्षण देखना चाहिये। पहले आयुकी परीक्षा करके ही लक्षण बताने चाहिये। आयु कम हो तो सभी लक्षण व्यर्थ हैं। अपनी अङ्गुलियोंसे जो पुरुष एक सौ आठ यानी चार हाथ बारह अङ्गुलका होता है, वह उत्तम होता है। सौ अङ्गुलका होनेपर मध्यम और नव्वे अङ्गुलका होनेपर अधम माना जाता है—लंगाइके प्रमाणका यही लक्षण आचार्य समृद्धने कहा है।

हे कुमार ! अब मैं पुरुषके अङ्गोंका लक्षण कहता हूँ। जिसका पैर कोमल, मांसल, रक्तवर्ण, शिरण, ठैंचा, पसीनेसे रहित और नाड़ियोंसे व्याप्त न हो अर्थात् नाड़ियाँ दिखायी नहीं पड़ती हों तो वह पुरुष राजा होता है। जिसके पैरके तलवेमें अंकुशका चिह्न हो, वह सदा सुखी रहता है। कद्मुकोंके समान

कैचे चरणवाला, कमलके सदृश कोमल और परस्पर मिली हुई अङ्गुलियोंवाला, सुन्दर पाणि—एङ्गोंसे युक्त, निगूढ टखनेवाला, सदा गर्म रहनेवाला, प्रस्वेदशून्य, रक्तवर्णके नस्तोंसे अलंकृत चरणवाला पुरुष राजा होता है। सूर्पके समान रुखा, सफेद नस्तोंसे युक्त, टेढ़ी-रुखी नाड़ियोंसे व्याप्त, विरल अङ्गुलियोंसे युक्त चरणवाले पुरुष दरिद्र और दुःखी होते हैं। जिसका चरण आगमें पकायी गयी मिट्टीके समान वर्णका होता है, वह ब्रह्माहत्या करनेवाला, पीले चरणवाला अगम्या-गमन करनेवाला, कृष्णवर्णके चरणवाला मदापान करनेवाला तथा क्षेत्रवर्णके चरणवाला अभक्ष्य पदार्थ भक्षण करनेवाला होता है। जिस पुरुषके पैरोंके ऊंगड़े मोटे होते हैं वे भाग्यहीन होते हैं। विकृत ऊंगड़ेवाले सदा पैदल चलनेवाले और दुःखी होते हैं। चिपटे, विकृत तथा टूटे हुए ऊंगड़ेवाले अतिशय निन्दित होते हैं तथा टेढ़े, छोटे और फटे हुए ऊंगड़ेवाले काट भोगते हैं। जिस पुरुषके पैरकी तर्जनी ऊंगड़ेसे बड़ी हो उसको स्त्री-सुख प्राप्त होता है। कनिष्ठा ऊंगड़ीके बड़ी होनेपर स्वर्णकी प्राप्ति होती है। चपटी, विरल, सूखी ऊंगड़ी होनेपर पुरुष भनहीन होता है और सदा दुःख भोगता है। रुक्ष और क्षेत्र नख होनेपर दुःखकी प्राप्ति होती है। खराब नख होनेपर पुरुष शीलरहित और कामभोगरहित होता है। रोमसे युक्त जंघा होनेपर भाग्यहीन होता है। जंघे छोटे होनेपर ऐक्षर्य प्राप्त होता है, किन्तु अन्धनमें रहता है। मूँगके समान जंघा होनेपर राजा होता है। लंबी, मोटी तथा मांसल जंघावाला ऐक्षर्य प्राप्त करता है। सिंह तथा बाघके समान जंघावाला धनवान् होता है। जिसके घुटने मांसरहित होते हैं, वह विदेशमें मरता है, विकट जानु होनेपर दरिद्र होता है। नीचे घुटने होनेपर स्त्री-जित होता है और मांसल जानु होनेपर राजा होता है। हंस, भास पक्षी, शुक्र, वृष, सिंह, हाथी तथा अन्य श्रेष्ठ पशु-पक्षियोंके समान गति होनेपर व्यक्ति राजा अथवा भाग्यवान् होता है। ये आचार्य समृद्धके बचन हैं, इनमें संदेह नहीं है।

जिस पुरुषका रक्त कमलके समान होता है वह धनवान् होता है। कुछ लाल और कुछ काला रुधिरवाला मनुष्य अधम और पापकर्मको करनेवाला होता है। जिस पुरुषका रक्त मूँगेके समान रक्त और शिरण होता है, वह सात द्वीपोंका राजा

होता है। मृग अथवा मोरके समान पेट होनेपर उत्तम पुरुष होता है। बाघ, मेडक और सिंहके समान पेट होनेपर राजा होता है। मांससे पुष्ट, सीधा और गोल पार्श्ववाला व्यक्ति राजा होता है। बाथके समान पीठवाला व्यक्ति सेनापति होता है। सिंहके समान लंबी पीठवाला व्यक्ति बन्धनमें पड़ता है। कछुवेके समान पीठवाला पुरुष धनवान् तथा सौभाग्य-सम्पन्न होता है। चौड़ा, मांससे पुष्ट और रोमयुक्त वक्षःस्थलवाला पुरुष शतार्थ, धनवान् और उत्तम भोगोक्त्रे प्राप्त करता है। सूखी, रुक्षी, विरल हाथकी औंगुलियोवाला पुरुष धनहीन और सदा दुःखी रहता है।

जिसके हाथमें मलसरेखा होती है, उसका कर्य सिद्ध होता है और वह धनवान् तथा पुत्रवान् होता है। जिसके हाथमें तुला अथवा वेदीका चिह्न होता है, वह पुरुष व्यापारमें लाभ करता है। जिसके हाथमें सोमलत्ताका चिह्न होता है, वह धनी होता है और यज्ञ करता है। जिसके हाथमें पर्वत और वृक्षका चिह्न होता है, उसकी लक्ष्मी स्थिर होती है और वह अनेक सेवकोंका स्वामी होता है। जिसके हाथमें बर्छी, आण, तोमर, खड्ग और धनुषका चिह्न होता है, वह युद्धमें विजयी होता है। जिसके हाथमें ध्वजा और शङ्खका चिह्न होता है, वह जहाजसे व्यापार करता है और धनवान् होता है। जिसके हाथमें श्रीवत्स, कमल, वज्र, रथ और कलशका चिह्न होता है, वह शकुरीहित राजा होता है। दक्षिणे हाथके औंगुलीमें यक्षका चिह्न रहनेपर पुरुष सभी विद्याओंका ज्ञाता तथा प्रवक्ता होता है। जिस पुरुषके हाथमें कनिष्ठाके नीचेसे तर्जनीके मध्यतक रेखा चली जाती है और बीचमें अलग नहीं रहती है तो वह पुरुष सौ वर्षोंतक जीवित रहता है। जिसका पेट सौपके समान लंबा होता है वह दरिद्री और अधिक भोजन करनेवाला होता है। विस्तीर्ण, फैली रुई, गम्भीर और गोल नाभिवाला व्यक्ति सुख भोगनेवाला और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है। नीची और छोटी नाभिवाला व्यक्ति विविध रेशोंके भोगनेवाला होता है। बल्किने नीचे नाभि हो और वह विषम हो तो धनकी हानि होती है। दक्षिणाखर्त नाभि चुदि प्रदान करती है और वामाखर्त नाभि शान्ति प्रदान करती है। सौ दलोवाले कमलकी कर्णिकाके समान नाभिवाला पुरुष राजा होता है। पेटमें एक बलि होनेपर शर्कसे मारा जाता है, दो बलि होनेपर खी-भोगी

होता है, तीन बलि होनेपर राजा अथवा आचार्य होता है। चार बलि होनेपर अनेक पुत्र होते हैं, सीधी बलि होनेपर धनका उपभोग करता है।

जिसके स्कन्ध कठोर एवं मांसल तथा समान हो वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं। जिसका वक्षःस्थल बहुवर, उत्तर, मांसल और विस्तृत होता है वह राजाके समान होता है। इसके विपरीत कड़े रोमवाले तथा नसे दिशायी पड़नेवाले वक्षःस्थल प्रायः निर्धनोंके ही होते हैं। दोनों वक्षःस्थल समान होनेपर पुरुष धनवान् होता है, पुष्ट होनेपर शूर्वीर होता है, छोटे होनेपर धनहीन तथा छोटा-बड़ा होनेपर अकिञ्चन होता है और शर्कसे मारा जाता है। विषम हनुवाला धनहीन तथा उत्तर हनु(तुरु)वाला भोगी होता है। चिपटी ग्रीवावाला धनहीन होता है। महिषके समान ग्रीवावाला शूर्वीर होता है। मृगके समान ग्रीवावाला डरपोक होता है। समान ग्रीवावाला राजा होता है। तोता, ऊंट, हाथी और बगुलेके समान लंबी तथा शुष्क ग्रीवावाला धनहीन होता है। छोटी ग्रीवावाला धनवान् और सुखी होता है। पुष्ट, दुर्घट्यहित, सम एवं थोड़े रोमोंसे युक्त कौशवाले धनी होते हैं, जिसकी भुजाएँ ऊपरको लिंगी रहती हैं, वह बन्धनमें पड़ता है। छोटी भुजा रहनेपर दास होता है, छोटी-बड़ी भुजा होनेपर चार होता है, लंबी भुजा होनेपर सभी गुणोंसे युक्त होता है और जानुओंतक लंबी भुजा होनेपर राजा होता है। जिसके हाथका तल गहरा होता है उसे पिताका धन नहीं प्राप्त होता, वह डरपोक होता है। ऊंचे करतलवाला पुरुष दानी, विषम करतलवाला पुरुष मिश्रित फलवाला, लग्जके समान रक्तर्णवाला करतल होनेपर राजा होता है। पीले करतलवाला पुरुष अगम्यागमन करनेवाला, काला और नीला करतलवाला मण्डादि इत्योंका पान करनेवाला होता है। रुख्से करतलवाला पुरुष निर्धन होता है। जिनके हाथकी रेखाएँ गहरी और लिंग होती हैं वे धनवान् होते हैं। इसके विपरीत रेखावाले दरिद्र होते हैं। जिनकी औंगुलियाँ विरल होती हैं, उनके पास धन नहीं ठहरता और गहरी तथा छिद्रहीन औंगुली रहनेपर धनका संचयी रहता है।

ब्रह्माजी पुनः खोले—कार्तिकिय ! चन्द्रमण्डलके समान मुखवाला व्यक्ति धर्मात्मा होता है और जिसका मुख सुङ्कवी आकृतिका होता है वह भाग्यहीन होता है। टेढ़ा, टूटा

हुआ, विकृत और सिंहके समान मुखवाला चोर होता है। सुन्दर और कान्तियुक्त ब्रेष्ट हाथीके समान भरा हुआ सम्पूर्ण मुखवाला व्यक्ति राजा होता है। यकरे अथवा बैटरके समान मुखवाला व्यक्ति धनी होता है। जिसका भुख बड़ा होता है उसका दुर्घाग्य रहता है। छोटा मुखवाला कृपण, लंबा मुखवाला धनहीन और पापी होता है। चौखुटा मुखवाला धूर्त, खींचके मुखके समान मुखवाला और निम्न मुखवाला पुरुष पुराहीन होता है या उसका पुरुष उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। जिसके कपोल कमलके दलके समान कोमल और कान्तिमान होते हैं, वह धनवान् एवं कृपक होता है। सिंह, बाघ और हाथीके समान कपोलवाला व्यक्ति विविध भोग-सम्पत्तियों-वाला और सेनाका स्वामी होता है। जिसका नीचेका ओउ रक्तवर्णका होता है, वह राजा होता है और कमलके समान अधरवाला धनवान् होता है। मोटा और रुखा होड़ होनेपर दुखी होता है।

जिसके कान मांसरहित हो वह संग्राममें मारा जाता है। चिपटा कान होनेपर रोगी, छोटा होनेपर कृपण, शङ्कुके समान कान होनेपर राजा, नाड़ियोंसे व्याप्त होनेपर कूर, कंडोंसे युक्त होनेपर दीर्घजीवी, बड़ा, पुष्ट तथा लंबा कान होनेपर भोगी तथा देवता और ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला एवं राजा होता है। जिसकी नाक शुक्रकी चोंचके समान हो वह सुख भोगनेवाला और शुक्र नाकवाला दीर्घजीवी होता है। पतली नाकवाला राजा, लंबी नाकवाला भोगी, छोटी नाकवाला धर्मशील, हाथी, घोड़ा, सिंह या सुईकी भाँति तीसी नाकवाला व्यापारमें सफल होता है। कुन्द-पृष्ठकी कलीके समान उत्त्वल दाँतवाला राजा तथा हाथीके समान दाँतवाला एवं चिकने दाँतवाला गुणवान् होता है। भालू और बंदरके समान दाँतवाले नित्य भूससे व्याकुल रहते हैं। कराल, रुखे, अलग-अलग और पूर्ण तुए दाँतवाले दुःखसे जीवन व्यतीत करनेवाले होते हैं। बर्सीस दाँतवाले राजा, एकतीस दाँतवाले भोगी, तीस दाँतवाले सुख-दुःख भोगनेवाले तथा उनतीस दाँतवाले पुरुष दुःख ही भोगते हैं। काली या चित्रवर्णकी जीभ होनेपर व्यक्ति दासवृत्तिसे जीवन व्यतीत करता है। रुखी और मोटी जीभवाला ब्रोधी, श्वेतवर्णकी जीभवाला पवित्र आचरणसे सम्पन्न होता है। निम्न, स्त्रिय, अग्रभाग रक्तवर्ण और छोटी संभूषण अंग ३—

जिह्वावाला विद्वान् होता है। कमलके पत्तेके समान पतली, लंबी न बहुत मोटी और न बहुत चौड़ी जिह्वा रहनेपर राजा होता है। बड़ले रंगका तालुवाला अपने कुलका नाशक, पीले तालुवाला सुख-दुःख भोग करनेवाला, सिंह और हाथीके तालुके समान तथा कमलके समान तालुवाला राजा होता है, श्वेत तालुवाला धनवान् होता है। रुखा, फटा हुआ तथा विकृत तालुवाला मनुष्य अच्छा नहीं माना जाता।

हंसके समान स्वरवाले तथा घेघेके समान गाढ़ी स्वरवाले पुरुष धन्य माने गये हैं। क्रौंचके समान स्वरवाले राजा, महान् धनी तथा विविध सुखोंका भोग करनेवाले होते हैं। चक्रवाकके समान जिनका स्वर होता है ऐसे व्यक्ति धन्य तथा धर्मवत्सल राजा होते हैं। घड़े एवं दंदुधिके समान स्वरवाले पुरुष राजा होते हैं। रुखे, कैंचे, कूर, पशुओंके समान तथा घर्घरयुक्त स्वरवाले पुरुष दुःखभागी होते हैं। नील-कण्ठ पक्षीके समान स्वरवाले भाष्यवान् होते हैं। फूटे कर्मसके वर्तनके समान तथा टूटे-फूटे स्वरवाले अधम कहे गये हैं।

दाढ़िमके पुष्पके समान नेत्रवाला राजा, व्याघ्रके समान नेत्रवाला ब्रोधी, केकड़ेके समान आँखवाला झगड़ालू, बिलली और हंसके समान नेत्रवाला पुरुष अधम होता है। मध्यर एवं नकुलके समान आँखवाले मध्यम माने जाते हैं। शहदके समान पिङ्कल वर्णके नेत्रवालेको लक्ष्मी कभी भी त्याग नहीं करती। गोरोचन, गुंजा और हरतालके समान पिङ्कल नेत्रवाला बलवान् और धनेश्वर होता है। अर्धचन्द्रके समान ललाट होनेपर राजा होता है। बड़ा ललाट होनेपर धनवान् होता है। छोटा ललाट होनेपर धर्मात्मा होता है। ललाटके बीच जिस रुपी तथा पुरुषके पांच आड़ी रेखा होती है वह सौ वर्षोंतक जीवित रहता है और ऐस्वर्य भी प्राप्त करता है। चार रेखा होनेपर असरी वर्ष, तीन रेखा होनेपर सत्तर वर्ष, दो रेखा होनेपर साठ वर्ष, एक रेखा होनेपर चालीस वर्ष और एक भी रेखा न होनेपर पचीस वर्षकी आयुवाला होता है। इन रेखाओंके द्वारा हीन, मध्यम और पूर्ण आयुकी परीक्षा करनी चाहिये। छोटी रेखा होनेपर व्याघ्रयुक्त तथा अल्पायु और लंबी-लंबी रेखाएँ होनेपर दीर्घायु होती हैं। जिसके ललाटमें त्रिशूल अथवा पट्टिशका चिह्न होता है, वह बड़ा प्रतापी, कीर्ति-सम्पन्न राजा होता है। छत्रके समान सिर होनेपर राजा,

लंबा सिर होनेपर दुःखी, दरिद्र, विषम होनेपर समान तथा गोल सिर होनेपर सुखी, हाथोंके समान सिर होनेपर राजाके समान होता है। जिनके केश अथवा रोम घोटे, रूखे, कपिल और आगे से फटे हुए होते हैं, वे अनेक प्रकारके दुःख भोगते हैं।

बहुत गहरे और कठोर केश दुःखदायी होते हैं। विरल, लिंग, कोमल, भ्रमर अथवा अंजनके समान अतिशय कृष्ण केशवाल पुरुष अनेक प्रकारके सुखदा भोग करता है और राजा होता है। (अध्याय २४—२६)

—३८—

राजपुरुषोंके लक्षण

कार्तिकेयजीने कहा—ब्रह्मन्! आप राजाओंके शरीरके अङ्गोंके लक्षणोंको बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले— मैं मनुष्योंमें राजाओंके अङ्गोंके लक्षणोंको संक्षेपमें बताता हूँ। यदि ये लक्षण साधारण पुरुषोंमें भी प्रकट होते हों तो वे भी राजाके समान होते हैं, इन्हें आप सुनें—

जिस पुरुषके नाभि, स्वर और संधिस्थान—ये तीन गम्भीर हों, मुख, ललाट और वक्षःस्थल—ये तीन विस्तीर्ण हों, वक्षःस्थल, कक्ष, नासिका, नख, मुख और कृकाटिका—ये छः उत्तर अर्धांत, कैचे हों, उपर्य, पीठ, ग्रीवा और जंघा—ये चार हस्त हों, नेत्रोंके प्रान्त, हाथ, पैर, तालु, ओष्ठ, जिह्वा तथा नख—ये सात रक्त वर्णके हों, हनु, नेत्र, भुजा, नासिका तथा दोनों स्तानोंका अन्तर—ये पाँच दीर्घ हों तथा दन्त, केश, अङ्गुलियोंके पर्व, त्वचा तथा नख—ये पाँच सूक्ष्म हों, वह सप्तशूदीपवती पृथ्वीका राजा होता है। जिसके नेत्र कमलदलके समान और अन्तरे रक्तवर्णके होते हैं, वह लक्ष्मीका स्वामी होता है। शाहदेव समान पिङ्गल नेत्रवाला पुरुष महात्मा होता है। सूखी औंखवाला डरपोक, गोल और चक्रके समान धूमनेवाली औंखवाला चोर, केकड़ेके समान औंखवाला कूर होता है। नील कमलके समान नेत्र होनेपर विद्वान्, श्यामवर्णके नेत्र होनेपर सौभाग्यवशाली, विशाल नेत्र होनेपर भाष्यवान्, स्थूल नेत्र होनेपर राजमन्त्री और दीन नेत्र

होनेपर दरिद्र होता है। भींह विशाल होनेपर सुखी, ऊँची होनेपर अल्पादु और विषम या बहुत लंबी होनेपर दरिद्र और दोनों भींहोंके मिले हुए होनेपर धनहीन होता है। मध्यपागमे नीचेकी ओर झुकी भींहावाले परदारापिगामी होते हैं। बालचन्द्रकलाके समान भींह होनेपर राजा होता है। ऊँचा और निर्मल ललाट होनेपर उत्तम पुरुष होता है, नीचा ललाट होनेपर सूति किया जानेवाला और धनसे युक्त होता है, कहीं ऊँचा और कहीं नीचा ललाट होनेपर दरिद्र तथा सीपके समान ललाट होनेपर आचार्य होता है। लिंग, हास्युक्त और दीनतासे रहित मुख शुभ होता है, दैन्यभावयुक्त तथा आँखोंसे युक्त औंखेवाला एवं रूखे चेहरेवाला श्रेष्ठ नहीं है। उत्तम पुरुषका हास्य कम्पनरहित धीर-धीर होता है। अध्यम व्यक्ति बहुत शब्दके साथ हैसता है। हैसते समय आँखोंको मौननेवाला व्यक्ति पापी होता है। गोल सिरवाला पुरुष अनेक गौओंका स्वामी तथा चिपटा सिरवाला माता-पिताको मारनेवाला होता है। घण्टेकी आँखतिके समान सिरवाला सदा कहीं-न-कहीं यात्रा करता रहता है। निप्र सिरवाला अनेक अनधौंको करनेवाला होता है।

इस प्रकार पुरुषोंके शुभ और अशुभ लक्षणोंको मैंने आपसे कहा। अब स्त्रियोंके लक्षण बतलाता हूँ।

(अध्याय २७)

स्त्रियोंके शुभाशुभ-लक्षण

ब्रह्माजी बोले— कार्तिक ! स्त्रियोंके जो लक्षण मैंने पहले नारदजीको बतलाये थे, उन्हीं शुभाशुभ-लक्षणोंको बताता हूँ। आप सावधान होकर सुनें—शुभ मुहूर्तमें कन्याके हाथ, पैर, औंगुली, नख, हाथकी रेखा, जंघा, कटि, नाभि, ऊँठ, पेट, पीठ, भुजा, कान, जिह्वा, ओठ, दाँत, कपोल, गला, नेत्र, नासिका, ललाट, स्त्री, केश, स्वर, वर्ण और भींही—इन

सबके लक्षण देखे।

जिसकी श्रीवामे रेखा हो और नेत्रोंका प्रान्तभाग कुछ लाल हो, वह सूखी जिस घरमें जाती है, उस घरकी प्रतिदिन बृद्धि होती है। जिसके ललाटमें त्रिशूलका चिह्न होता है, वह कई हजार दासियोंकी स्वामिनी होती है। जिस सूखीकी राजनेत्रसे समान गति, मृगके समान नेत्र, मृगके समान ही शरीरका वर्ण,

दैति वराहर और खेत होते हैं, वह उत्तम रुची होती है। मेदुकके समान कुक्षिवाली एक ही पुत्र उत्पन्न करती है और वह पुत्र राजा होता है। हंसके समान मृदु वचन बोलनेवाली, शहदके समान पिङ्गल वर्णवाली रुची धन-धान्यसे सम्पन्न होती है, उसे आठ पुत्र होते हैं। जिस रुचीके लंबे कदम, सुन्दर नाक और भौंह धनुषके समान टेढ़ी होती है, वह अतिशय सुखका भोग करती है। तन्वी, इयमर्वणी, मधुर भाषणी, शङ्खके समान अतिशय स्वच्छ दौतींवाली, निष्ठ अङ्गोंसे समन्वित रुची अतिशय ऐश्वर्यके प्राप्त करती है। विस्तीर्ण जंघाओंवाली, बैटीके समान मध्यभागवाली, विशाल नेत्रोंवाली रुची गानी होती है। जिस रुचीके लाम स्तनपर, हाथमें, कानके ऊपर या गलेपर तिल अथवा मसा होता है, उस रुचीको प्रथम पुत्र उत्पन्न होता है। जिस रुचीका पैर रक्तवर्ण हो, ठेहुने बहुत ऊंचे न हों, छोटी एड़ी हो, परस्पर मिली हुई सुन्दर अंगुलियाँ हों, ल्वल नेत्र हों—ऐसी रुची अत्यन्त सुख भोग करती है। जिसके पैर बड़े-बड़े हों, सभी अङ्गोंमें रोम हों, छोटे और मोटे हाथ हों, वह दासी होती है। जिस रुचीके पैर उल्कट हों, मुख विकृत हो, ऊपरके ओर्डरके ऊपर रोम हो वह शीघ्र अपने पतिको मार देती है। जो रुची पवित्र, पतिव्रता, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी भक्त होती है, वह मानुषी कहलाती है। नित्य स्नान करनेवाली, सुगन्धित द्रव्य लगानेवाली, मधुर वचन बोलनेवाली, थोड़ा खानेवाली, कम सोनेवाली और सदा पवित्र रहनेवाली रुची

देवता होती है। गुप्तरूपसे पाप करनेवाली, अपने पापको हिष्पानेवाली, अपने हृदयके अभिप्रायको किसीके आगे प्रकट न करनेवाली रुची मार्जारी-संज्ञक होती है। कभी हृसनेवाली, कभी क्रीड़ा करनेवाली, कभी क्रोध करनेवाली, कभी प्रसन्न रहनेवाली तथा पुरुषोंके मध्य रहनेवाली रुची गर्दभी-श्रेणीकी होती है। पति और बास्तवोंके द्वारा कहे गये हितकारी वचनको न माननेवाली, अपनी इच्छाके अनुसार विहार करनेवाली रुची आसुरी कही जाती है। बहुत खानेवाली, बहुत बोलनेवाली, सोटे वचन बोलनेवाली, पतिको मारनेवाली रुची राक्षसी-संज्ञक होती है। शौच, आचार और रूपसे गहित, सदा मलिन रहनेवाली, अतिशय भयंकर रुची पिशाची कहलाती है। अतिशय चञ्चल स्वभाववाली, चपल नेत्रोंवाली, इधर-उधर देखनेवाली, लोभी नारी बानरी-संज्ञक होती है। चन्द्रमुखी, मदमत हाथीके समान चलनेवाली, रक्तवर्णके नखोंवाली, शुभ लक्षणोंसे युक्त हाथ-पैरवाली रुची विद्याधरी-श्रेणीकी होती है। बीणा, मृदङ्ग, वंशी आदि वाद्योंके शब्दोंको सुनने तथा पुष्टों और विविध सुगन्धित द्रव्योंमें अभिरुचि रखनेवाली रुची ग्राम्यी-श्रेणीकी होती है।

सुमन्तु मुनिने कहा— गणन् ! ब्रह्माजी इस प्रकार रुची और पुरुषोंके लक्षणोंको स्वामिकात्मिकयोंको बतलाकर अपने लोकको चले गये।

(अध्याय २८)

विनायक-पूजाका माहात्म्य

शतानीकने कहा—मुने ! अब आप मुझे भगवान् करना चाहिये।

गणेशकी आराधनाके विषयमें बतलायें।

सुमन्तु मुनि बोले— गणन् ! भगवान्, गणेशकी आराधनामें किसी तिथि, नक्षत्र या उपवासादिकी अपेक्षा नहीं होती। जिसके किसी भी दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्, गणेशकी पूजा की जाय तो वह अभीष्ट फलोंको देनेवाली होती है। कामना-भेदसे अलग-अलग वसन्तोंसे गणपतिकी मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करनेसे मनोवाचित फलकी प्राप्ति होती है। 'महाकर्णाय' विद्याहे, वक्रतुण्डाय धीमहि, तत्रो दन्तिः प्रत्योदयात् ।'— यह गणेश-गायत्री है। इसका ज्ञा-

शुलु पक्षकी चतुर्थीको उपवास कर जो भगवान् गणेशका पूजन करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं और सभी अनिष्ट दूर हो जाते हैं। श्रीगणेशजीके अनुकूल होनेसे सभी जगन् अनुकूल हो जाता है। जिसपर एकदन्त भगवान्, गणपति संतुष्ट होते हैं, उसपर देवता, पितर, मनुष्य आदि सभी प्रसन्न रहते हैं। इसलिये सम्पूर्ण विद्वानोंको निवृत्त करनेके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गणेशजीकी आराधना करनी चाहिये।

(अध्याय २९-३०)

१-परम्परामें प्रचलित गणेश-गायत्रीमें 'एकदन्ताय' गाते हैं।

२-एकदन्ते जगत्प्रभे गान्ते। नृष्टिमाते। पिन्देवग्नपूजाता। सर्वे तुष्मिन् भवतः॥ (ब्राह्मणर्थ ३०। ८)

चतुर्थी-कल्पमें शिवा, शान्ता तथा सुखा—तीन प्रकारकी चतुर्थीका फल और उनका ब्रत-विधान

सुपन्तु मुनिने कहा—राजन् ! चतुर्थी तिथि तीन प्रकारकी होती है—शिवा, शान्ता और सुखा । अब मैं इनका लक्षण कहता हूँ, उसे सुने—

भाद्रपद मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम 'शिवा' है, इस दिन जो खान, दान, उपवास, जप आदि सत्कर्म किया जाता है, वह गणपतिके प्रसादसे सौं गुना हो जाता है । इस चतुर्थीको गुड़, स्वर्ण और घृतका दान करना चाहिये, यह शुभकर माना गया है और गुड़के अपूर्णे (मालपूर्णा) से ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये । इस दिन जो स्त्री अपने सास और समुखोंगुड़के पूर् तथा नमकीन पूर् खिलाती है वह गणपतिके अनुग्रहसे सौभाग्यवती होती है । पतिकी कामना करनेवाली कन्या विशेषरूपसे इस चतुर्थीका ब्रत करे और गणेशजीकी पूजा करे । राजन् ! यह शिवा-चतुर्थीका विधान है ।

माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीको 'शान्ता' कहते हैं । यह शान्ता तिथि नित्य शान्ति प्रदान करनेके कारण 'शान्ता' कही गयी है । इस दिन किये हुए खान-दानादि सत्कर्म गणेशजीकी कृपासे हजार गुना फलदायक होते जाते हैं । इस शान्ता नामक चतुर्थी तिथिको उपवास कर गणेशजीका पूजन तथा हवन करे और लवण, गुड़, शाक तथा गुड़के पूर् ब्राह्मणोंको दानमें दे । विशेषरूपसे खियां अपने समूर आदि पूज्य जनोंका पूजन करे एवं उन्हें भोजन करायें । इस ब्रतके करनेसे अशाप्त सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, समस्त विष दूर होते हैं और गणेशजीकी कृपा प्राप्त होती है ।

किसी भी महीनेके भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको 'सुखा' कहते हैं । यह ब्रत खियोंको सौभाग्य, उत्तम रूप और सुख देनेवाला है । भगवान् शङ्कर एवं माता पार्वतीके संयुक्त तेजसे भूमिद्वारा रक्तवर्णके मङ्गलकी उत्तरति हुई । भूमिका पुत्र होनेसे वह भौम कहलाया और कुज, रक्त, चौर, अङ्गुष्ठक आदि नामोंसे प्रसिद्ध हुआ । वह शमीरके अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला तथा सौभाग्य आदि देनेवाला है, इसीलिये अङ्गुष्ठक कहलाया । जो पुरुष अथवा स्त्री भौमवारयुक्त शुक्ला चतुर्थीको उपवास करके भौक्तिपूर्वक प्रथम गणेशजीका, तदनन्तर

रक्त चन्दन, रक्त पुण्य आदिसे भौमका पूजन करते हैं, उन्हें सौभाग्य और उत्तम रूप-सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ।

प्रथम संकल्पकर खान करे, अनन्तर गणेश-स्मरणपूर्वक लाथमें शुद्ध मृतिका लेकर इस मन्त्रको पढ़े—

इह त्वं वन्दिता पूर्वै कृष्णोद्धरता किल ।
तस्मान्मे दह पापानं यन्मया पूर्वसंचितम् ॥

(ब्राह्मपर्व ३१ । २४)

इसके बाद मृतिकालसे गङ्गाजलसे मिश्रितकर सूर्यके सामने करे, तदनन्तर अपने सिर आदि अङ्गोंमें लगाये और फिर जलके मध्य खड़ा होकर इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

त्वापापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्यौकसाम् ।
स्वेदाण्डजोद्दिदां चैव रसानां पतये नमः ॥

(ब्राह्मपर्व ३१ । २७)

अनन्तर सभी तीर्थों, नदियों, सरोवरों, झारों और तालबोंमें मैने खान किया—इस ब्रतकर भावना करता हुआ गोते लगाकर खान करे, फिर पवित्र होकर घरमें आकर दूर्वा, पीपल, शामी तथा गौका स्पर्श करे । इनके स्पर्श करनेके मन्त्र इस प्रकार हैं— दूर्वा स्पर्श करनेका मन्त्र

त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदैव्यस्तु वन्दिता ।
वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया कृतम् ।

(ब्राह्मपर्व ३१ । ३१-३२)

शमी स्पर्श करनेका मन्त्र

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रविता श्रुतौ ।
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराश्वराम् ॥

(ब्राह्मपर्व ३१ । ३३)

पीपल-दूर्वा स्पर्श करनेका मन्त्र

नेत्रस्पन्दनादिजं दुःखं दुःखं दुर्विवित्तनम् ।
शक्तानां च समुद्गोगमधात्य त्वं क्षमस्य मे ॥

(ब्राह्मपर्व ३१ । ३४)

गौक्ने स्पर्श करनेका मन्त्र

सर्वदैव्ययी देवि मुनिभितु सुपूजिता ।
तस्मात् स्पृशामि बन्दे त्वा वन्दिता पापहा भव ॥

(ब्राह्मपर्व ३१ । ३५)

श्रद्धापूर्वक पहले गौको प्रदक्षिणा कर उपर्युक्त मन्त्रको पढ़े और गौका स्पर्श करे। जो गौको प्रदक्षिणा करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार इनको स्पर्शकर, हाथ-पैर, घोकर, आसनपर बैठकर आचमन करे। अनन्तर खटिर (खेर) की समिधाओंसे अग्रि प्रनवलित कर, धूत, दुध, यव, तिल तथा विविध भक्षण पदार्थोंसे मन पढ़ते हुए, हवन करे। आहुति इन मन्त्रोंसे दे—३० शार्वाय स्वाहा, ३० शर्वपुत्राय स्वाहा, ३० क्षेष्णसुत्पत्तभवाय स्वाहा, ३० कुजाय स्वाहा, ३० ललिताङ्गाय स्वाहा तथा ३० लेहिताङ्गाय स्वाहा। इन प्रत्येक मन्त्रोंसे १०८ या अपनी शक्तिके अनुसार आहुति दे। अनन्तर सुर्वण, चाँदी, चन्दन या देवदारके काढ़की मझलकी मूर्ति बनाकर तावि अथवा चाँदीके पात्रमें उसे स्थापित करे। धी, कुंकुम, रक्तचन्दन, रक्त पुष्प, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे अथवा अपनी शक्तिके अनुसार पूजा करे। अथवा ताप्र, मृतिका या बाँससे बने पात्रमें कुंकुम, केसर आदिसे मूर्ति अद्वितकर पूजा करे। 'अग्रिमृद्धि'^१ इत्यादि शैदिक मन्त्रोंसे

सभी उपचारोंको समर्पित कर वह मूर्ति ब्राह्मणको दे दे और यथाशक्ति धी, दूध, चावल, गेहू, गुड आदि वस्तु भी ब्राह्मणको दे। धन रहनेपर कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि केजूसी करनेसे फल नहीं प्राप्त होता।

इस प्रकार चार बार भीमयुक्त चतुर्थीका ब्रतकर श्रद्धा-पूर्वक दस अथवा पाँच तोले सोनेकी मङ्गल और गणपतिकी मूर्ति बनवाये। उसे बीस पल या दस पलके सोने, चाँदी अथवा ताप्र आदिके पात्रमें भक्तिपूर्वक स्थापित करे। सभी उपचारोंसे पूजा करनेके बाद दक्षिणाके साथ सत्पात्र ब्राह्मणको उसे दे, इससे इस ब्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। राजन्! इस प्रकार इस उत्तम तिथिको मैंने कहा। इस दिन जो ब्रत करता है, वह चन्द्रमाके समान कलनिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी एवं प्रभावान् तथा वायुके समान बलवान् होता है और अन्तमे महागणपतिके अनुग्रहसे भीमलोकमें निवास करता है। इस तिथिके माहात्म्यको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक पढ़ता-सुनता है, वह महापातकादिसे मुक्त होकर श्रेष्ठ सम्पत्तियोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ३१)

पञ्चमी-कल्पका आरम्भ, नागपञ्चमीकी कथा, पञ्चमी-ब्रतका विधान और फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! अब मैं पञ्चमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। पञ्चमी तिथि नागोंको अव्यन्त प्रिय है और उन्हें आनन्द देनेवाली है। इस दिन नागलोकमें विशिष्ट उत्सव होता है। पञ्चमी तिथिको जो व्यक्ति नागोंको दूधसे खान करता है, उसके कुलमें वासुकि, तक्षक, क्षत्रिय, मणिभद्र, ऐश्वरत, धूरशाहू, कक्षीटक तथा धनञ्जय—ये सभी बड़े-बड़े नाग अभय दान देते हैं—उसके कुलमें सर्पका भय नहीं रहता। एक बार माताके शापसे नागलोग जलने लग गये थे। इसीलिये उस दाहकी व्यथाको दूर करनेके लिये पञ्चमीको गायके दूधसे नागोंको आज भी लोग खान करते हैं, इससे सर्प-भय नहीं रहता।

राजाने पूछा—महाराज! नागमाताने नागोंको क्यों शाप दिया था और फिर वे कैसे बच गये? इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—एक बार राक्षसों और देवताओंने

मिलकर समुद्रका यन्त्रन किया। उस समय समुद्रसे अतिशय श्रेष्ठ उर्ध्वश्रावा नामका एक अश निकल, उसे देवतकर नागमाता कहने अपनी सपली (सीत) विनतासे कहा कि देखो, यह अश श्वेतवर्णका है, परंतु इसके बाल काले दीख पढ़ते हैं। तब विनताने कहा कि न तो यह अश सर्वश्रेष्ठ है, न काला है और न लाल। यह सुनकर कहने कहा—‘मेरे साथ शर्त करो कि यदि मैं इस अशके बालोंको कृष्णवर्णका दिला दूँ तो तुम मेरी दासी हो जाओगी और यदि नहीं दिला सको तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी।’ विनताने यह शर्त स्वीकार कर ली। दोनों ब्रोध करती हुई अपने-अपने स्थानको छाली गयीं। कहने अपने पुत्र नागोंको बुलाकर सब बृतान्त उन्हें सुना दिया और कहा कि ‘पुत्रो! तुम अशके बालके समान सूक्ष्म होकर उर्ध्वश्रावा के शरीरमें लिपट जाओ, जिससे यह कृष्णवर्णका दिलायी देने लगे। ताकि मैं अपनी सीत विनताको जीतकर उसे अपनी दासी बना सकूँ।’ माताके इस

^१-अग्रिमृद्धि दिवः कक्षुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रता॑ सि लिन्वति ॥ (कम्बुचेद ४। १२)

वचनको सुनकर नागोंने कहा—‘माँ ! यह छल तो हमलेग नहीं करेंगे, चाहे तुम्हारी जीत हो या हार । छलसे जीतना बहुत बड़ा अधर्म है ।’ पुत्रोंका यह वचन सुनकर कद्दूने क्रुद्ध होकर कहा—तुमलोग मेरी आज्ञा नहीं मानते हो, इसलिये मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि ‘पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न राजा जनमेजय जब सर्प-सत्र करेंगे, तब उस यज्ञमें तुम सभी अग्निमें जल जाओगे ।’ इतना कहकर कदू चुप हो गयी । नागगण मालाका शाप सुनकर बहुत बड़ाये और वासुकिको साथमें लेकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे तथा ब्रह्माजीको अपना सारा वृत्तान्त सुनाया । इसपर ब्रह्माजीने कहा कि बासुके ! चिन्ना मत करो । मेरी बात सुनो—यायादर-वंशमें बहुत बड़ा तपसी जरतकान नामक ब्राह्मण उत्पन्न होगा । उसके साथ तुम अपनी जरतकान नामवाली बहिनका विवाह कर देना और वह जो भी कहे, उसका वचन स्वीकार करना । उसे आसीनका नामका विश्वास पुत्र उत्पन्न होगा, वह जनमेजयके सर्पयज्ञको रोकेगा और तुमलोगोंकी रक्षा करेगा । ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर नागगण वासुकि आदि अतिशय प्रसन्न हो, उन्हें प्रणाम कर अपने लोकमें आ गये ।

सुमन्तु मूनिने इस कथाको सुनाकर कहा—राजन् !
यह यज्ञ तुम्हारे पिता राजा जनमेजयने किया था । यही बात श्रीकृष्णभगवान्ने भी युधिष्ठिरसे कही थी कि ‘राजन् ! आजसे सौ वर्षके बाद सर्पयज्ञ होगा, जिसमें बड़े-बड़े विषधर और दृष्ट नाग नष्ट हो जायेंगे । करोड़ों नाग जब अग्निमें दग्ध होने लगेंगे, तब आसीनका नामक ब्राह्मण सर्पयज्ञ रोककर नागोंकी रक्षा करेगा ।’ ब्रह्माजीने पञ्चमीके दिन यह दिया था और आसीनका मूनिने पञ्चमीको ही नागोंकी रक्षा की थी, अतः पञ्चमी तिथि नागोंको बहुत प्रिय है ।

पञ्चमीके दिन नागोंको पूजाकर यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो नाग पृथ्वीमें, आकाशमें, स्वर्णमें, सूर्यकी शिरणोमें, सरोवरोमें, वाष्णी, कूप, तालव आदिमें रहते हैं, वे सब हमपर प्रसन्न हो, हम उनको वार-वार नमस्कार करते हैं ।

सर्वे नागाः प्रीयन्ताः ये ये केचित् पृथिवीतत्त्वे ॥
ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः ।
ये नदीषु महानागाः ये सरस्तिगामिनः ।
ये च वापीतद्वागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥

(ब्राह्मपर्व ३२ । ३३-३४)

इस प्रकार नागोंको विसर्जित कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और स्वयं अपने कुटुम्बव्यक्तिसे साथ भोजन करना चाहिये । प्रथम मीठा भोजन करना चाहिये, अनन्तर अपनी अभिरुचिके अनुसार भोजन करे ।

इस प्रकार नियमानुसार जो पञ्चमीको नागोंका पूजन करता है, वह श्रेष्ठ विमानमें बैठकर नागलोकको जाता है और बादमें द्वाषपर्युगमें बहुत पराक्रमी, रोगरहित तथा प्रतापी राजा होता है । इसलिये थो, स्वीर तथा गुणगुलसे इन नागोंकी पूजा करनी चाहिये ।

राजाने पूछा—महाराज ! क्रुद्ध सर्पके काटनेसे मरनेवाला व्यक्ति किस गतिको प्राप्त होता है और जिसके माता-पिता, भाई, पुत्र आदि सर्पके काटनेसे मरते हैं, वह उनकी सद्गतिके लिये भाद्रपदके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको उपवास कर नागोंकी पूजा करे । यह तिथि महापुण्या कही गयी है । इस प्रकार बाहर महोनेतक चतुर्थी तिथिके दिन एक बार भोजन करना चाहिये और पञ्चमीको ब्रतकर नागोंकी पूजा करनी चाहिये । पृथ्वीपर नागोंका चित्र अङ्गुत कर अथवा सोना, कगड़ा या मिट्टीका नाग बनाकर पञ्चमीके दिन करवार, कमल, चमेली आदि पूज्य, गम्य, धूप और विविध नैवेद्योंसे उनको पूजा कर थो, स्वीर और लड्डू उत्पन्न पाँच ब्राह्मणोंके विलाये । अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, केवल, कक्षींटक,

१-पञ्चम्या तत्र भविता ब्रह्म प्रोक्षाय लेलिहन् । तस्मादिद्यं महावाहो पञ्चमो दृष्टया सदा ।

नागानामान्दकरो दता वै ब्रह्मणा पुरा ॥

(ब्राह्मपर्व ३२ । ३२)

२-वर्तमानमें नागपञ्चमी प्रायः सभी पञ्चमीत तथा ब्रतके निष्ठन्त्र-प्रन्थोंके अनुसार ज्यान शुक्ल पञ्चमीको होती है । यहीं या तो बाठ अमृद है क्षत्यान्तरमें कभी भाद्रपदमें नागपञ्चमी मनायी जाती रही होती ।

अश्वत्तर, धूतराष्ट्र, शंखापाल, कालिय, तक्षक और पिण्डल—इन बारह नागोंकी बारह महीनोंमें क्रमशः पूजा करे।

इस प्रकार वर्णपर्वत व्रत एवं पूजनकर व्रतकी पारणा करनी चाहिये। बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मणको सोनेका नाग बनाकर उसे देना चाहिये। यह उद्यापनकी विधि है। राजन्! आपके पिता जनयेजयने भी अपने पिता परीक्षितके उद्धारके लिये यह व्रत किया था और सोनेका बहुत भारी नाग तथा अनेक गौण ब्राह्मणोंको दी थीं। ऐसा करनेपर वे पितृ-ऋणसे मुक्त हुए थे और परीक्षितने भी

उत्तम लोकको प्राप्त किया था। आप भी इसी प्रकार सोनेका नाग बनाकर उनकी पूजाकर उन्हें ब्राह्मणको दान करें, इससे आप भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जायेंगे। राजन्! जो कोई भी इस नागपञ्चमी-व्रतको करेगा, सौपसे डैंसे जानेपर भी वह शुभलोकको प्राप्त होगा और जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनेगा, उसके कुलमें कभी भी सौपका भय नहीं होगा। इस पञ्चमी-व्रतके करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ३२)

सर्पेकि लक्षण, स्वरूप और जाति^१

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! सर्पेकि कितने सूख हैं, क्या लक्षण हैं, कितने रंग हैं और उनकी कितनी जातियाँ हैं ? इसका आप वर्णन करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस विषयमें सुमेह पर्वतपर महर्षि कश्यप और गौतमका जो संवाद हुआ था, उसका मैं वर्णन करता हूँ। महर्षि कश्यप किसी समय अपने आश्रममें बैठे थे। उस समय वहाँ उपस्थित महर्षि गौतमने उन्हें प्रणामकर विनयपूर्वक पूछा—महाराज ! सर्पेकि लक्षण, जाति, वर्ण और स्वभाव किस प्रकारके हैं, उनका आप वर्णन करें तथा उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है यह भी बतायें। वे विष किस प्रकार छोड़ते हैं, विषके कितने वेग हैं, विषकी कितनी नाड़ियाँ हैं, सौपेके दाँत कितने प्रकारके होते हैं, सर्पिणीको गर्भ कब्ज होता है और वह कितने दिनोंमें प्रसव करती है, स्त्री-पुरुष और नपुंसक सर्पेकि क्या लक्षण है, ये क्यों कटते हैं, इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतायें।

कश्यपजी बोले—मुने ! आप ध्यान देकर सुनें। मैं सर्पेकि सभी भेदोंका वर्णन करता हूँ। ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें सर्पोंको मद होता है। उस समय वे मैथुन करते हैं। वर्षा ऋतुके चार महीनेतक सर्पिणी गर्भ धारण करती है, कार्तिकमें दो सौ चालीस अंडे देती हैं और उनमेंसे कुछको स्वयं प्रतिदिन स्थाने लगती है। प्रकृतिकी कृपासे कुछेक अंडे इधर-उधर दुलककर बच जाते हैं। सोनेकी तरह चमकनेवाले अंडोंमें पुरुष,

उत्तम लोकको प्राप्त किया था। आप भी इसी प्रकार सोनेका नाग बनाकर उनकी पूजाकर उन्हें ब्राह्मणको दान करें, इससे आप भी पितृ-ऋणसे मुक्त हो जायेंगे। राजन्! जो कोई भी इस नागपञ्चमी-व्रतको करेगा, सौपसे डैंसे जानेपर भी वह शुभलोकको प्राप्त होगा और जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस कथाको सुनेगा, उसके कुलमें कभी भी सौपका भय नहीं होगा। इस पञ्चमी-व्रतके करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ३२)

१-शिवतत्त्व-रत्नाकर और अधिरूपितार्थ-चिनामणि तथा आयुर्वेद-प्रब्लॉ—मुकुल, चरक, वाग्मीषके चिकित्सकस्थानोंमें भी इस विषयका वर्णन मिलता है।

और वे पचहत्तर वर्षोंसे अधिक जीते भी नहीं हैं। जिस सौफके दाँत लाल, पीले एवं सफेद हों और विषका वेग भी मंद हो, वे अल्पायु और बहुत डरपोक होते हैं।

सौफके एक मूँह, दो जीभ, बतीस दाँत और विषसे भरी हुई चार दाढ़े होती हैं। उन दाढ़ोंके नाम मकरी, कराली, कालरात्री और यमदूती हैं। इनके क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और यम—ये चार देवता हैं। यमदूती नामकी दाढ़ सबसे छोटी होती है। इससे सौप जिसे काटता है वह तत्क्षण मर जाता है। इसपर मन्त्र, तन्त्र, ओषधि आदिका कुछ भी असर नहीं होता। मकरी दाढ़का चिह्न शाखके समान, करालीका कड़कके पैरके समान तथा कालरात्रीका हाथके समान चिह्न होता है और यमदूती कूपके समान होती है। ये क्रमशः एक, दो, तीन और चार महीनोंमें उत्पन्न होती हैं और क्रमशः बात, पित्त, कफ और संनिधात इनमें होता है। क्रमशः गुड़युक भात, कथाययुक अम, कटु पटार्थ, संनिधातमें दिया जानेवाला यथा इनके द्वारा काटे गये व्यक्तिको देना चाहिये। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण—इन चार दाढ़ोंके क्रमशः रंग हैं। इनके वर्ण क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। सौफोंके दाढ़ोंमें सदा विष नहीं रहता। दाढ़ोंने नेत्रोंके समीप विष रहनेका स्थान है। क्रोध करनेपर वह विष पहले मस्तकमें जाता है, मस्तकसे धमनी और फिर नाड़ीयोंके द्वारा दाढ़ोंमें पहुँच जाता है।

आठ कारणोंसे सौप काटता है—दब्रेनेसे, पहलेनेके

वैरसे, भयसे, मदसे, भूलसे, विषका वेग होनेसे, संतानकी रक्षाके लिये तथा कालकी प्रेरणासे। जब सर्प काटते ही पेटकी ओर उल्ट जाता है और उसकी दाढ़ टेढ़ी हो जाती है, तब उसे दबा हुआ समझना चाहिये। जिसके काटनेसे बहुत बड़ा घाव हो जाय, उसको अत्यन्त द्वेषसे काटा है, ऐसा समझना चाहिये। एक दाढ़का चिह्न हो जाय, किंतु वह भी भलीभाँति दिखायी न पड़े तो भयसे काटा हुआ समझना चाहिये। इसी प्रकार रेखाकी तरह दाढ़ दिखायी दे तो मदसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और बड़ा घाव भर जाय तो भूलसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे और घावमें रक्त हो जाय तो विषके वेगसे काटा हुआ, दो दाढ़ दिखायी दे, किंतु घाव न रहे तो संतानकी रक्षाके लिये काटा हुआ मानना चाहिये। काकके पैरकी तरह तीन दाढ़ गहरे दिखायी दें या चार दाढ़ दिखायी दें तो कालकी प्रेरणासे काटा हुआ जानना चाहिये। यह असाध्य है, इसकी कोई भी चिकित्सा नहीं है।

सर्पके काटनेके दृष्टि, दंशनुपीत और दंषोदत—ये तीन भेद हैं। सर्पके काटनेके बाद प्रीवा यदि इसके तो दृष्टि तथा काटकर पार करे तो दंशनुपीत कहते हैं। इसमें तिहाई विष चढ़ता है और काटकर सब विष डगल दे तथा स्वयं निर्विष होकर उल्ट जाय—पीठके बल उलटा हो जाय, उसका पेट दिखायी दे तो उसे दंषोदत कहते हैं।

(अध्याय ३३)

विभिन्न तिथियों एवं नक्षत्रोंमें कालसर्पसे डँसे हुए पुरुषके लक्षण, नागोंकी उत्पत्तिकी कथा

कश्यप मुनि बोले—गौतम ! अब मैं कालसर्पसे काटे हुए पुरुषका लक्षण कहता हूँ, जिस पुरुषको कालसर्प काटता है, उसकी जिहा भूंग हो जाती है, हृदयमें दर्द होता है, नेत्रोंसे दिखायी नहीं देता, दाँत और शरीर पक्के हुए जामुनके फलके समान काले पड़ जाते हैं, अङ्गोंमें शिथियलता आ जाती है, विषाका परित्याग होने लगता है, कंधे, कमर और प्रीवा झुक-

जाते हैं, मुख नीचेकी ओर लटक जाता है, आँखें चढ़ जाती हैं, शरीरमें दाह और कम्फ होने लगता है, आर-आर आँखें बंद हो जाती हैं, शाखसे शरीरमें काटनेपर खून नहीं निकलता। वेतसे मारनेपर भी शरीरमें रेखा नहीं पड़ती, काटनेका स्थान कटे हुए जामुनके समान नीले रंगका, फूला हुआ, रक्तसे परिपूर्ण और कौपेके पैरके समान हो जाता है, हिचकी आने

१-सभी सौफोंके दाढ़के रूपमें मन्त्र-शास्त्रोंमें विशेषकर गहड़-मन्त्र और सर्वोक्ति मणिर्या उनके विषको अचूक ओषधियाँ हैं। कुछ अन्य ओषधियाँ भी अचूक लानी हैं जो सौफोंके विषिणु गांव मन्त्रित बना देती हैं। बुद्धुभ रूपके काट लेनेपर किसी भी अन्य सर्वकर विष नहीं चढ़ता। नर्मदा नदीका जाम लेनेसे भी सौप भागता है—

नर्मदार्थ नमः प्रातर्नर्मदार्थ नमः निर्दि। नमोऽम् नमदि नर्म जाहि यो विषर्पतः ॥

(विष्णु- ४। ३। १३)

लगती है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, श्वासकी गति बढ़ जाती है, शरीरका रंग पीला पड़ जाता है। ऐसी अवस्थाको क्षालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। उसकी मृत्यु आसन्न समझनी चाहिये।

बाय फूल जाय, नीले रंगका हो जाय, अधिक पसीना आने लगे, नाकसे बोलने लगे, ओढ़ लटक जाय, हृदयमें कम्फन होने लगे तो क्षालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये। दाँत पीसने लगे, नेत्र उल्ट जायें, लंबी श्वास आने लगे, ग्रीवा लटक जाय, नाभि फङ्कने लगे तो क्षालसर्पसे काटा हुआ जानना चाहिये। दर्पण या जलमें अपनी छाया न दीखें, सूर्य तेजहीन दिखायी पड़े, नेत्र लाल हो जायें, सम्पूर्ण शरीर कष्टके कारण काँपने लगे तो उसे क्षालसर्पसे काटा हुआ समझना चाहिये, उसकी शीघ्र ही मृत्यु सम्भाल्य है।

अष्टमी, नवमी, कृष्णा चतुर्दशी और नागपञ्चमीके दिन जिसको साँप काटता है, उसके प्रायः प्राण नहीं बचते। आर्द्ध, आश्वेषा, मध्य, भरणी, कृतिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्थाती और शतभिया नक्षत्रमें जिसको साँप काटता है वह भी नहीं जीता। इन नक्षत्रोंमें विष पीनेवाला व्यक्ति भी तत्काल मर जाता है। पूर्वोत्तर तिथि और नक्षत्र दोनों मिल जायें तथा खण्डहरमें, इमशानमें और सूखे वृक्षके नीचे जिसे साँप काटता है वह नहीं जीता।

मनुष्यके शरीरमें एक सी आठ मर्म-स्थान है, उनमें भी शाल अर्थात् ललाटकी हड्डी, आँख, भ्रूमध्य, बिलि, अण्डकोशका ऊपरी भाग, कक्ष, कंधे, हृदय, बक्षःस्थल,

तालु, ऊँटी और गुदा—ये बारह मर्म-स्थान हैं। इनमें सर्प काटनेसे अथवा शस्त्राभास लोनेपर मनुष्य जीवित नहीं रहता।

अब सर्प काटनेके बाद जो वैद्यको बुलाने जाता है उस दूतका लक्षण कहता है। उत्तम जातिका हीन वर्ण दूत और हीन जातिका उत्तम वर्ण दूत भी अच्छा नहीं होता। वह दूत हाथमें देढ़ लिये हुए हो, दो दूत हो, कृष्ण अथवा रत्नबर्म पहने हों, मुख ढके हों, सिरपर एक वर्ष लपेटे हों, शरीरमें तेल लगाये हों, केश खोले हों, जोरसे बोलना हुआ आये, हाथ-पैर पीटे तो ऐसा दूत अत्यन्त अशुभ है। जिस रोगीका दूत इन लक्षणोंसे युक्त वैद्यक समीप जाता है, वह रोगी अवश्य ही मर जाता है।

कश्यपजी बोले—गौतम ! अब मैं भगवान् शिवके द्वारा कथित नागोंकी उत्पत्तिके विषयमें कहता हूँ। पूर्वकालमें ब्रह्मजीने अनेक नागों एवं ग्रहोंकी सृष्टि की। अनन्त नाग सूर्य, वासुकि चन्द्रमा, तक्षक भौम, कक्षीटक बुध, पद्म वृहस्पति, महापूर्ण शूक्र, कुलिक और शंखपाल शनैक्षर ग्रहके रूप हैं। रविवारके दिन दसवाँ और चौदहवाँ यामर्घ, सोमवारको आठवाँ और बारहवाँ, भौमवारको छठा और दसवाँ, बुधवारको नवाँ, वृहस्पतिको दूसरा और छठा, शुक्रको चौथा, आठवाँ और दसवाँ, शनिवारको पहिला, सोलहवाँ, दूसरा और बारहवाँ प्रहरार्ध अशुभ हैं। इन समयोंमें सर्पके काटनेसे व्यक्ति जीवित नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

सपोकि विषका वेग, फैलाव तथा सात धातुओंमें प्राप्त विषके लक्षण और उनकी चिकित्सा

कश्यपजी बोले—गौतम ! यदि यह जात हो जाय कि सर्पने अपने यमदूती नामक दाढ़से काटा है तो उसकी चिकित्सा न करे। उस व्यक्तिको मरा हुआ ही समझें। दिनमें और रातमें दूसरा और सोलहवाँ प्रहरार्ध साँपोंसे सम्बन्धित नागोदय नामक वेला कही गयी है। उसमें साँप काटे तो कालके द्वारा काटा गया समझना चाहिये और उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। पानीमें बाल डुबोनेपर और उसे उठानेपर

आलके अप्रभागसे जितना जल गिरता है, उतनी ही मात्रामें विष सर्प प्रविष्ट करता है। वह विष सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। जितनी देरमें हाथ पसारना और समेटना होता है, उतने ही सूक्ष्म समयमें काटनेके बाद विष मस्तकमें पहुँच जाता है। हवासे आगकी लप्त फैलनेके समान रक्तमें पहुँचेनेपर विषकी बहुत बृद्धि हो जाती है। जैसे जलमें तेलकी बैंद फैल जाती है, जैसे ही त्वचामें पहुँचकर विष दूना हो जाता है। रक्तमें

१-गारुडोपविषद् एवं ताक्ष्योपनिषद् में यमदूतिके नामसे भी मन्त्र पढ़े गये हैं, यहाँ मध्यम नियमका वर्णन है। जैसे भगवत्कृपासे कुछ भी असाध्य नहीं है।

चौगुना, पितमें आठ गुना, कफमें सोलह गुना, वातमें तीस गुना, मज्जामें साठ गुना और प्राणमें पहुँचकर वही विष अनन्त गुना हो जाता है। इस प्रकार सारे शरीरमें विषके व्याप्त हो जाने तथा श्रवणशक्ति बंद हो जानेपर वह जीव खास नहीं ले पाता और उसका प्राणान्त हो जाता है। यह शरीर पृथ्वी आदि पहुँचभूतोंसे बना है, मूल्युके बाद भूत-पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं और अपने-अपनेमें लौन हो जाते हैं। अतः विषकी चिकित्सा बहुत शीघ्र करनी चाहिये, विलम्ब होनेसे रोग असाध्य हो जाता है। सर्पादि जीवोंका विष जिस प्रकार प्राण हरण करनेवाल होता है, वैसे ही शस्त्रिया आदि विष भी प्राणको हरण करनेवाल होते हैं।

विषके पहले वेगमें रोमाञ्च तथा दूसरे वेगमें पसोना आता है। तीसरे वेगमें शरीर कौपता है तथा चौथेमें अवणशक्ति अवरुद्ध होने लगती है, पाँचवेंमें हिचकी आने लगती है और छठेमें ग्रीवा लटक जाती है तथा सातवें वेगमें प्राण निकल जाते हैं। इन सात वेगोंमें शरीरके सातों धातुओंमें विष व्याप्त हो जाता है। इन धातुओंमें पहुँचे हुए विषका अलग-अलग लक्षण तथा उपचार इस प्रकार है—

आँखोंके आगे अंधेरा छा जाय और शरीरमें बार-बार जलन होने लगे तो यह जानना चाहिये कि विष त्वचामें है। इस अवस्थामें आककी जड़, अपामार्ग, तगर और प्रियंग—इनको जलमें घोटकर पिलानेसे विषकी बाधा शान्त हो सकती है। त्वचासे रक्तमें विष पहुँचनेपर शरीरमें दाह और मूर्च्छा होने लगती है। शीतल पदार्थ अच्छा लगता है। उशीर (स्वस), चन्दन, कूट, तगर, नीलोत्पल, सिंदुवारकी जड़, धनुरकई जड़, हींग और मिरच—इनको पीसकर देना चाहिये। इससे बाधा शान्त न हो तो भटकटैया, इन्द्रायणकी जड़ और सर्पांधाको धोयें पीसकर देना चाहिये। यदि इससे भी शान्त न हो तो सिंदुवार और हींगका नस्य देना चाहिये और पिलाना चाहिये। इसीका अङ्गन और लेप भी करना चाहिये, इससे रक्तमें प्राप्त विषकी बाधा शान्त हो जाती है।

रक्तमें पितमें विष पैहुच जानेपर पुण्य उठ-उठकर गिरने लगता है, शरीर पीला हो जाता है, सभी दिशाएँ पीले वर्णकी दिखायी देती हैं, शरीरमें दाह और प्रबल मूर्च्छा होने लगती है। इस अवस्थामें पीपल, शहद, महुवा, धी, तुम्बेकी जड़,

इन्द्रायणकी जड़—इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य, लेपन तथा अङ्गन करनेसे विषका वेग हट जाता है।

पितसे विषके कफमें प्रवेश कर जानेपर शरीर जकड़ जाता है। शास भलीभांति नहीं आती, कफ्टमें अर्धर शब्द होने लगता है और मुखसे लार गिरने लगती है। यह लक्षण देखकर पीपल, मिरच, सोठ, इलेमातक (बहुवार वृक्ष), लेघ एवं मधुसारको समान भाग करके गोमूत्रमें पीसकर लेपन और अङ्गन लगाना चाहिये और उसे पिलाना भी चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग शान्त हो जाता है।

कफसे वातमें विष प्रवेश करनेपर पेट फूल जाता है, कोई भी पदार्थ दिखायी नहीं पड़ता, दृष्टि-भंग हो जाता है। ऐसा लक्षण होनेपर शोणा (सोनागाढ़)की जड़, प्रियाल, गजपीपल, भारंगी, वचा, पीपल, देवदार, महुआ, मधुसार, सिंदुवार और हींग—इन सबको पीसकर गोली बना ले और रोगीको खिलाये और अङ्गन तथा लेपन करे। यह ओषधि सभी विषोंका हरण करती है।

वातसे मज्जामें विष पहुँच जानेपर दृष्टि नष्ट हो जाती है, सभी अङ्ग बेसुध हो शिथिल हो जाते हैं, ऐसा लक्षण होनेपर धी, शहद, शर्करायुक्त खास और चन्दनको घोटकर पिलाना चाहिये और नस्य आदि भी देना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका वेग हट जाता है।

मज्जासे मर्मस्थानोंमें विष पहुँच जानेपर सभी इन्द्रियाँ निषेष्ट हो जाती हैं और वह जमीनपर गिर जाता है। काटनेसे रक्त नहीं निकलता, केशके ऊखाइनेपर भी कष्ट नहीं होता, उसे मूल्युके ही अधीन समझना चाहिये। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोगीकी साधारण वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकते। जिनके पास सिद्ध मन्त्र और ओषधि होगी वे ही ऐसे रोगियोंके रोगको हटानेमें समर्थ होते हैं। इसके लिये साक्षात् रुद्रने एक ओषधि कही है। मोरका पित तथा मार्जारिका पित और गन्धनाडीकी जड़, कुन्कुम, तगर, कूट, कासमर्दकी छाल तथा उत्पल, कुमुद और कमल—इन तीनोंके केसर—सभीका समान भाग लेकर उसे गोमूत्रमें पीसकर नस्य दे, अङ्गन लगाये। ऐसा करनेसे कालसर्पसे डैसा हुआ भी व्यक्ति शीघ्र विपरहित हो जाता है। यह मृतसंजीवनी ओषधि है अर्थात् मरेको भी जिला देती है। (अध्याय ३५)

सपोंकी भिन्न-भिन्न जातियाँ, सपोंकि काटनेके लक्षण, पञ्चमी तिथिका नागोंसे सम्बन्ध और पञ्चमी-तिथिये नागोंके पूजनका फल एवं विधान

गौतम मुनिने कश्यपजीसे पूछा—महात्मन् ! सर्प, सर्पिणी, बालसर्प, सूतिका, नपुंसक और व्यन्तर नामक सपोंकि काटनेमें क्या भेद होता है, इनके लक्षण आप अलग-अलग बताये ।

कश्यपजी बोले— मैं इन सबको तथा सपोंकि रूप-लक्षणोंको संक्षेपमें बतलाता हूँ, सुनिये—

यदि सर्प काटे तो दृष्टि ऊपरको हो जाती है, सर्पिणीके काटनेसे दृष्टि नीचे, बालसर्पिणीके काटनेसे दाहिनी ओर और बालसर्पिणीके काटनेसे दृष्टि बायीं ओर झुक जाती है । गर्भिणीके काटनेसे पसीना आता है, प्रसूती काटे तो रोषाङ्ग और कम्पन होता है तथा नपुंसकके काटनेसे शरीर टूटने लगता है । सर्प दिनमें, सर्पिणी रात्रिमें और नपुंसक संध्याके समय अधिक विषयुत होता है । यदि अंधेरेमें, जलमें, बनमें सर्प काटे या सोते हुए या प्रमत्तको काटे, सर्प न दिखायी पड़े अथवा दिखायी पड़े, उसकी जाति न पहचानी जाय और पूर्वोत्त लक्षणोंकी जानकारी न हो तो वैष्ण उसकी कैसे चिकित्सा कर सकता है !

सर्प चार प्रकारके होते हैं—दर्वीकर, मण्डली, राजिल और व्यन्तर । इनमें दर्वीकरका विष वात-स्वभाव, मण्डलीका पित-स्वभाव, राजिलका कफ-स्वभाव और व्यन्तर सर्पका संनिपात-स्वभावका होता है अर्थात् उसमें वात, पित और कफ—इन तीनोंकी अधिकता होती है । इन सपोंकि रक्तकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिये । दर्वीकर सर्पमें रक्त कृत्त्वावर्ण और स्वल्प होता है, मण्डलीमें बहुत गाढ़ा और लाल रंगका रक्त निकलता है, राजिल तथा व्यन्तरमें स्त्रिय और थोड़ा-सा रुधिर निकलता है । इन चार जातियोंके अतिरिक्त सपोंकी अन्य कोई पाँचवीं जाति नहीं मिलती । सर्प ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चार खण्डिके होते हैं । ब्राह्मण सर्प काटे तो शरीरमें दाह होता है, प्रबल मूर्छा आ जाती है, मुख काला पड़ जाता है, मज्जा स्तम्भित हो जाती है और चेतना जाती रहती है । ऐसे लक्षणोंके दिखायी देनेपर अश्वगन्धा, अपामार्ग, सिंदुवारको घीमें पीसकर नस्य दे और पिलाये तो विषकी निवृत्ति हो जाती है । क्षत्रिय वर्णके सर्पके काटनेपर शरीरमें

मूर्छा हो जाती है, दृष्टि ऊपरको हो जाती है, अत्यधिक पीड़ा होने लगती है और व्यक्ति अपनेको पहचान नहीं पाता । ऐसे लक्षणोंके होनेपर आककी जड़, अपामार्ग, इन्द्रायण और प्रियंगुको घीमें पीसकर मिला ले तथा इसीका नस्य देनेसे एवं पिलानेसे बाधा मिट जाती है । वैश्य सर्प डैसे तो कफ बहुत आता है, मुखसे लाल बहती है, मूर्छा आ जाती है और वह चेतनाशून्य हो जाता है । ऐसा होनेपर अश्वगन्धा, गृहथूम, गुण्डुल, शिरीष, अर्क, पलाश और शेत गिरिकर्णिका (अपराजिता) —इन सबको गोमूत्रमें पीसकर नस्य देने तथा पिलानेसे वैश्य सर्पकी बाधा लक्षण दूर हो जाती है । जिस व्यक्तिको शूद्र सर्प काटता है, उसे शीत लगाकर ज्वर होता है, सभी अङ्ग चुलचुलाने लगते हैं, इसकी निवृत्तिके लिये कमल, कमलका केसर, लोध, शैद्र, शहद, मधुसार और शेतगिरिकर्णी—इन सबको समान भागमें लेकर शीताल जलके साथ पीसकर नस्य आदि दे और पान कराये । इससे विषका वैण शान्त हो जाता है ।

ब्राह्मण सर्प मध्याह्नके पहले, क्षत्रिय सर्प मध्याह्नमें, वैश्य सर्प मध्याह्नके बाद और शूद्र सर्प संध्याके समय विचरण करता है । ब्राह्मण सर्प वायु एवं पुष्प, क्षत्रिय मूषक, वैश्य मेदक और शूद्र सर्प सभी पदार्थोंका भक्षण करता है । ब्राह्मण सर्प आगे, क्षत्रिय दाहिने, वैश्य बायं और शूद्र सर्प पीछेसे काटता है । मैथुनकी इच्छासे पीड़ित सर्प विषके वेगके बढ़नेसे ल्याकुल होकर बिना समय भी काटता है । ब्राह्मण सर्पमें पुष्पके समान गन्ध होती है, क्षत्रियमें चन्दनके समान, वैश्यमें धूतके समान और शूद्र सर्पमें मल्लवके समान गन्ध होती है । ब्राह्मण सर्प नदी, कृष्ण, तालाब, झरने, बाग-बर्गीचे और पश्चिम स्थानोंमें रहते हैं । क्षत्रिय सर्प ग्राम, नगर आदिके द्वार, तालाब, चतुर्पथ तथा तोरण आदि स्थानोंमें; वैश्य सर्प इमशाम, ऊपर स्थान, भस्म, घास आदिके ढेर तथा बृक्षोंमें; इसी प्रकार शूद्र सर्प अपवित्र स्थान, निर्जन वन, शून्य घर, इमशान आदि बुरे स्थानोंमें निवास करते हैं । ब्राह्मण सर्प शेत एवं कपिल वर्ण, अङ्गिके समान तेजस्वी, मनस्वी और सात्त्विक होते हैं । क्षत्रिय सर्प मैंगेके समान रक्तवर्ण अथवा सुवर्णके तुल्य पीत वर्ण

तथा सूर्यके समान तेजस्वी, वैश्य सर्प अलसी अथवा बाण-पुष्पके समान वर्णवाले एवं अनेक रेखाओंसे युक्त तथा शूद्र सर्प अङ्गुल अथवा काकके समान कृष्णवर्ण और धूम्रवर्णके होते हैं। एक अङ्गुष्ठके अन्तरमें दो दंश हो तो बालसर्पका काटा हुआ जाना चाहिये। दो अङ्गुल अन्तर हो तो तरुण सर्पका, दोई अङ्गुल अन्तर हो तो वृद्ध सर्पका दंश समझना चाहिये।

अनन्तनाग सामने, बासुकि वार्यी और, तक्षक दाहिनी ओर देखता है और कक्षोटककी दृष्टि पीछेकी ओर होती है। अनन्त, बासुकि, तक्षक, कक्षोटक, पद्म, महापद्म, शंखपाल और कुलिक—ये आठ नाग क्रमशः पूर्वादि आठ दिशाओंके खामी हैं। पद्म, उत्पत्त, स्वसितक, विशूल, महापद्म, शूल, क्षव्र और अर्धचन्द्र—ये क्रमशः आठ नागोंके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक—ये दोनों ब्राह्मण नाग-जातियाँ हैं, शंख और बासुकि क्षत्रिय, महापद्म और तक्षक वैश्य तथा पद्म और कक्षोटक शूद्र नाग हैं। अनन्त और कुलिक नाग शुक्रवर्ण तथा ब्रह्माजीसे उत्पन्न हैं, बासुकि और शंखपाल रक्तवर्ण तथा अग्निसे उत्पन्न हैं, तक्षक और महापद्म स्वल्प पांतवर्ण तथा इन्द्रसे उत्पन्न हैं, पद्म और कक्षोटक कृष्णवर्ण तथा यमराजसे उत्पन्न हैं।

सुमन्तु मुनिने पुनः कहा—राजन् ! सर्पोंका ये लक्षण



षष्ठी-कल्प-निरूपणमें स्कन्द-षष्ठी-ब्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! अब मैं षष्ठी तिथि-कल्पका वर्णन करता हूँ। यह तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। कार्तिक मासकी षष्ठी तिथिको फलताहारकर यह तिथिक्रत किया जाता है^१। यदि राज्यव्युत राजा इस ब्रतका अनुष्ठान करे तो वह अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। इसलिये विजयकी अधिलाला रस्तेवाले व्याकुलको इस ब्रतका प्रयत्न-पूर्वक पालन करना चाहिये।

यह तिथि स्वामिकार्तिकयको अत्यन्त प्रिय है। इसी दिन

और चिकित्सा महार्षि कश्यपने महामुनि गौतमको उपदेशके प्रसंगमें कहे थे और यह भी बताया कि सदा भक्तिपूर्वक नागोंकी पूजा करे और पञ्चमीको विशेषरूपसे दूध, सीर आदिसे उनका पूजन करे। श्रावण शुक्ल पञ्चमीको द्वारके दोनों ओर गोबरके द्वारा नाग बनाये। दही, दूध, दूर्वा, पुष्प, कुश, गन्ध, अक्षत और अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे नागोंका पूजनकर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। ऐसा करनेपर उस पुरुषके कुलमें कभी सर्पोंका भय नहीं होता।

भाद्रपदकी पञ्चमीको अनेक रंगोंके नागोंको चित्रितकर घी, सीर, दूध, पुष्प आदिसे पूजनकर गुण्डुलकी धूप दे। ऐसा करनेसे तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं और उस पुरुषकी सात पीढ़ीतकज्ञको सर्पका भय नहीं रहता।

आश्विन मासकी पञ्चमीको कुशका नाग बनाकर, गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। दूध, घी, जलसे ऊन कराये। दूधमें पेके हुए गेहूँ और विविध नैवेद्योंका भोग लगाये। इस पञ्चमीको नागकी पूजा करनेसे बासुकि आदि नाग संतुष्ट होते हैं और वह पुरुष नागलोकमें जाकर बहुत कालतक सुखका भोग करता है। राजन् ! इस पञ्चमी तिथिके कल्पका मैने वर्णन किया। जहाँ ‘ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा’—यह मन्त्र पढ़ा जाता है, वहाँ कोई सर्प नहीं आ सकता।

(अध्याय ३६—३८)

कृतिकाओंके पुरुष कार्तिकेयका आविर्भाव हुआ था। वे भगवान्, शङ्कर, अग्नि तथा गङ्गाके भी पुत्र कहे गये हैं। इसी षष्ठी तिथिको स्वामिकार्तिकय देवसेनाके सेनापति हुए। इस तिथिको ब्रतकर घृत, दही, जल और पुष्पोंसे स्वामिकार्तिकयको दक्षिणकी ओर मुखकर अर्घ्य देना चाहिये।

अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

सप्तर्षिदावज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्दव।
रुद्रार्घ्यमाग्निज विभो गङ्गागर्भं नमोऽसु ते।

१—कश्मीर नागोंका देश माना जाता है। ‘नीलमत्पुरुण’में इसका विस्तृत वर्णन है।

२—पञ्चमीके अनुसार मार्गीशीर्ष शुक्र पञ्चमीको स्कन्द-षष्ठी होती है तथा कार्तिक शुक्र षष्ठीको गणि-षष्ठी मानी जाती है, जिस दिन समृद्धि भारतमें मूर्योऽस्माना होती है। परंतु यहाँ कार्तिक शुक्र पञ्चमीके रूपमें वर्णन आया है, यह गणना अमालनमास (अमाशास्याके पूर्व होनेवाले मास) के अनुसार प्रतीत होती है।

प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हहलम् ॥

(ब्राह्मण ३९। ६)

ब्राह्मणको अन्त्र देवता रात्रिमें फलका भोजन और भूमिपर शयन करना चाहिये । व्रतके दिन पवित्र रहे और ब्रह्मचर्यका पालन करे । शुभ पक्ष तथा कृष्ण पक्ष—दोनों पश्चियोंको यह व्रत करना चाहिये । इस व्रतके करनेसे भगवान् रुक्नदकी कृपासे खिदि, धृति, तुष्टि, राज्य, आयु, आरोग्य और मुक्ति मिलती है । जो पुरुष उपवास न कर सके, वह यत्रि-व्रत ही

करे, तब भी दोनों लोकोंमें उत्तम फल प्राप्त होता है । इस व्रतको करनेवाले पुरुषको देवता भी नमस्कार करते हैं और वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती राजा होता है । राजन् ! जो पुरुष पश्ची-व्रतके भावात्मक भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह भी स्वामिकालिकव्यकी कृपासे विविध उत्तम भोग, सिद्धि, तुष्टि, धृति और लक्ष्मीको प्राप्त करता है । परलोकमें वह उत्तम गतिका भी अधिकारी होता है । (आचरण ३९)

आचरणकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

राजा शतानीकने कहा—मुने ! अब आप ब्राह्मण आदिके आचरणकी श्रेष्ठताके विषयमें बतलानेकी कृपा करें ।

सुमनु मुनि बोले—राजन् ! मैं अत्यन्त संक्षेपमें इस विषयको बताता हूँ, उसे आप सुनें । न्याय-मार्गका अनुसरण करनेवाले शास्त्रकारोंने कहा है कि 'वेद आचारहीनको पवित्र नहीं कर सकते, भले ही वह सभी अङ्गोंके साथ वेदोंका अध्ययन कर ले । वेद पढ़ना तो ब्राह्मणका शिल्पमात्र है, किंतु ब्राह्मणका मुख्य लक्षण तो सदाचरण ही अतलाया गया है*' । चारों वेदोंका अध्ययन करनेपर भी यदि वह आचरणसे हीन है तो उसका अध्ययन वैसे ही निष्कल होता है, जिस प्रकार नपुंसकके लिये ऊरत्व निष्कल होता है ।

जिनके संस्कार उत्तम होते हैं, वे भी दुराचरण कर पाति हो जाते हैं और नरकमें पड़ते हैं तथा संस्कारहीन भी उत्तम आचरणसे अच्छे कहलाते हैं एवं स्वर्ग प्राप्त करते हैं । मनमें दुष्टा भरी रहे, बाहरसे सब संस्कार लुए हों, ऐसे वैदिक संस्कारोंसे संस्कृत कर्तिपय पुरुष आचरणमें शूद्रोंसे भी अधिक मलिन हो जाते हैं । कूर कर्म करनेवाला, ब्रह्महत्या करनेवाला, गुरुदारगामी, चोर, गौओंको मारनेवाला, मदपायी, परस्लीगामी, मिथ्यावादी, नास्तिक, वेदनिनदक, निषिद्ध कर्मोंका आचरण करनेवाला यदि ब्राह्मण है और सभी तरहके संस्कारसे सम्पन्न भी है, वेद-वेदाङ्ग-पारंपरात् भी है, फिर भी उसकी सद्गति नहीं होती । दयाहीन, हिंसक, अतिशय दम्भिक, कपटी, लोभी, पिशुन (चुगलखोर), अतिशय दुष्ट पुरुष वेद पढ़कर भी संसारको उगते हैं और वेदको बेचकर अपना

जीवन-यापन करते हैं, अनेक प्रकारके छल-छिद्रसे प्रजाकी हिसा कर केवल अपना सांसारिक सुख सिद्ध करते हैं । ऐसे ब्राह्मण शुद्रसे भी अधम हैं ।

जो प्राह्य-अप्राह्यके तत्त्वको जाने, अन्याय और कुमार्गका परिचय करे, जितेन्द्रिय, सत्त्ववादी और सदाचारी हो, नियमोंके पालन, आचार तथा सदाचरणमें स्थिर रहे, सबके हितमें तत्पर रहे, वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रका मर्मज हो, समाधिमें स्थित रहे, त्रोध, मत्सर, मद तथा शोक आदिसे रहित हो, वेदके पठन-पाठनमें आसक्त रहे, किसीका अत्यधिक सङ्ग न करे, एकान्त और पवित्र स्थानमें रहे, सुख-दुःखमें समान हो, धर्मनिष्ठ हो, पापाचरणसे डरे, आसक्तिरहित, निरहंकार, दानी, शूर, ब्रह्मवेत्ता, शान्त-स्वभाव और तपस्वी हो तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें परिनिष्ठित हो—इन गुणोंसे युक्त पुरुष ब्राह्मण होते हैं । ब्रह्मके भक्त होनेसे ब्राह्मण, क्षतसे रक्षा करनेके कारण क्षत्रिय, वार्ता (कृष्ण-विद्या आदि) का सेवन करनेसे वैद्य और शब्द-श्रवणमात्रसे जो द्रुतगति हो जायें, वे शूद्र कहलाते हैं । क्षमा, दम, शम, दान, सत्य, शौच, धृति, दया, मृदुता, ऋजुता, संतोष, तप, निरहंकारता, अक्रोध, अनसूया, अतृष्णता, अस्तेय, अमात्सर्य, धर्मज्ञान, ब्रह्मचर्य, ध्यान, आस्तिक्य, वैद्यग्य, पाप-भीरुता, अद्वैष, गुरुशूश्रूषा आदि गुण जिनमें रहते हैं, उनका ब्राह्मणत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है ।

शम, तप, दम, शौच, क्षमा, ऋजुता, ज्ञान-विज्ञान और आस्तिक्य—ये ब्राह्मणोंके सहज कर्म हैं । ज्ञानरूपी शिखा,

* आचरणोन्नत् न पुर्वज्ञ वेद यद्यप्यपीतः सह पद्धिभर्तुः । शिर्ये हि वेदाध्यायने द्विजानो वृते स्मृते ब्राह्मणतःन तु ॥ (ब्राह्मण ४१। ८)

लपोरुपी सूत्र अर्थात् यजोपवीत जिनके रहते हैं, उनको मनुने ब्राह्मण कहा है। पाप-कर्मोंसे निवृत होकर उत्तम आचरण करनेवाला भी ब्राह्मणके समान ही है। शीलसे युक्त शूद्र भी ब्राह्मणसे प्रशस्त हो सकता है और आचाररहित ब्राह्मण भी

शूद्रसे अधम हो जाता है।

जिस तरह दैव और धौरूपके मिलनेपर कार्य मिहू जोते हैं, वैसे ही उत्तम जाति और सत्कर्मका योग होनेपर आचरणकी पूर्णता मिहू जोती है। (अध्याय ४०—४५)

भगवान् कार्तिकेय तथा उनके षष्ठी-ब्रतकी महिमा

सुमनु मुनि बोले—राजन् ! भाद्रपद मासकी षष्ठी तिथि बहुत उत्तम तिथि है, यह सभी पापोंका हरण करनेवाली, पुण्य प्रदान करनेवाली तथा सभी कल्याण-मङ्गलोंको देनेवाली है। यह तिथि कार्तिकेयको अतिशय चिय है। इस दिन किया हुआ रूपान, दान आदि सत्कर्म अक्षय होता है। जो दक्षिण दिशा (कुमारिक-सेत्र) में निवास करनेवाले कुमार कार्तिकेयका इस तिथिको दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, इसलिये इस तिथिमें भगवान् कार्तिकेयका अवश्य दर्शन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका पूजन करनेसे मानव मनोवाचिष्ठत फल प्राप्त करता है और अन्तमें इन्द्रलोकमें निवास करता है। ईट, पत्थर, काष्ठ आदिके द्वारा श्रद्धापूर्वक कार्तिकेयका मन्दिर बननेवाला पुरुष स्वर्णके विमानमें बैठकर कार्तिकेयके लोकमें जाता है। इनके मन्दिरपर ध्वजा चढ़ाने तथा झाड़-पोछ (मार्जन) आदि करनेसे रुद्रलोक प्राप्त होता है। चन्दन, अगर, कपूर आदिसे

कार्तिकेयकी पूजा करनेपर हाथी, घोड़ा आदि बाहनोंका स्वामी होता है और सेनापतिल्ब भी प्राप्त होता है। राजाओंको कार्तिकेयकी अवश्य ही आराधना करनी चाहिये। जो राजा कृतिकाओंके पुत्र भगवान् कार्तिकेयकी आराधना कर सुदूरके लिये प्रस्थान करता है वह देवराज इन्द्रकी तरह अपने शत्रुओंको परास कर देता है। कार्तिकेयकी चंपक आदि विविध पुष्टिसे पूजा करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और शिवलोकको प्राप्त करता है। इस भाद्रपद मासकी षष्ठीको तेलका सेवन नहीं करना चाहिये। षष्ठी तिथिको ब्रत एवं पूजनकर गतिमें भोजन करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। जो व्यक्ति कुमारिकाक्षेत्रमें स्थित भगवान् कार्तिकेयका दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, वह अखण्ड शान्ति प्राप्त करता है।

(अध्याय ४६)

सप्तमी-कल्पमें भगवान् सूर्यके परिवारका निरूपण एवं शाक-सप्तमी-ब्रत

सुमनु मुनिने कहा—राजन् ! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यका आविर्भाव हुआ था। वे अण्डके साथ उत्पन्न हुए और अण्डमें रहते हुए ही उन्होंने वृद्धि प्राप्त की। बहुत दिनोंतक अण्डमें रहनेके कारण ये 'मार्त्तण्ड' के नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये अण्डमें ही स्थित थे तो दक्ष प्रजापतिने अपनी रूपवती कन्या रूपाको भायोंके रूपमें इन्हें अर्पित किया। दक्षको आज्ञामें विश्वकर्मनि इनके शरीरका संस्कार किया, जिससे ये अतिशय तेजस्वी हो गये। अण्डमें स्थित रहते ही इन्हे यमुना एवं यम नामकी दो संताने प्राप्त हुईं। भगवान् सूर्यका तेज सहन न कर स्वक्नेके कारण उनकी स्त्री व्याकुल हो सोचने लगी—इनके

अतिशय तेजके कारण मेरी दृष्टि इनकी ओर उहर नहीं पाती, जिससे इनके अङ्गोंको मैं देख नहीं पा रही हूँ। मेरा सुवर्ण-वर्ण, कमरानीय शरीर इनके तेजसे दग्ध हो इयामवर्णका हो गया है। इनके साथ मेरा निर्वाह होना बहुत कठिन है। यह सोचकर उसने अपनी छायासे एक ऊँचा उत्पन्न कर उससे कहा—'तुम भगवान् सूर्यके समीप मेरी जगह रहना, परंतु यह भेद सुन्नने न पाये।' ऐसा समझाकर उसने उस छाया नामकी ऊँको वहाँ रख दिया तथा अपनी संतान यम और यमुनाको वहाँ छोड़कर वह तपस्या करनेके लिये उत्तरकुरु देशमें चली गयी और वहाँ घोड़ीका रूप धारणकर तपस्यामें रत रहते हुए इधर-उधर अनेक वर्षोंतक धूमती रही।

१-सूर्यकी पत्नी 'रूपा' का दूसरा नाम 'संज्ञा' है। अन्य पुराणोंमें संज्ञाको विश्वकर्मनी पुंजी कहा गया है।

भगवान् सूर्यने छायाको ही अपनी पत्नी समझा। कुछ समयके बाद छायासे शनैश्चर और तपती नामकी दो संताने उत्पत्ति हुईं। छाया अपनी संतानपर यमुना तथा यमसे अधिक रुहेह करती थी। एक दिन यमुना और तपतीमें विवाद हो गया। पारस्परिक शापसे दोनों नदी हो गयीं। एक बार छायाने यमुनाके भाई यमको ताडित किया। इसपर यमने क्रूद्ध होकर छायाको मारनेके लिये पैर उठाया। छायाने क्रूद्ध होकर शाप दे दिया—‘मृढ़! तुमने मेरे ऊपर चरण उठाया है, इसलिये तुम्हारा प्राणियोंका प्राणहिंसक रूपी यह बीभत्स कर्म तबतक रहेगा, जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे। यदि तुम मेरे शापसे कर्तुषित अपने पैरको पृथ्वीपर रखोगे तो कृमिगण उसे खा जायेंगे।’

यम और छायाका इस प्रकार विवाद हो ही रहा था कि उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे। यमने अपने पिता भगवान् सूर्यसे कहा—‘पिताजी! यह हमारी माता कदायि नहीं हो सकती, यह कोई और रुही है। यह हमें नित्य क्रूर भावसे देखती है और हम सभी भाई-बहनोंमें समान दृष्टि तथा समान व्यवहार नहीं रखती। यह सुनकर भगवान् सूर्यने क्रूद्ध होकर छायासे कहा—‘तुम्हें यह उचित नहीं है कि अपनी संतानोंमें ही एकसे प्रेम करो और दूसरेसे देष। जितनी संतानें हों सबको समान हो समझना चाहिये। तुम विष्व-टृष्णसे क्यों देखती हो?’ यह सुनकर छाया तो कुछ न बोली, पर यमने पुनः कहा—‘पिताजी! यह दुष्ट मेरी माता नहीं है, बल्कि मेरी माताकी छाया है। इसीसे इसने मुझे शाप दिया है।’ यह कहकर यमने पूरा वृत्तान्त उन्हें बतला दिया। इसपर भगवान् सूर्यने कहा—‘बेटा! तुम चिन्ता न करो। कृमिगण मास और रुधिर लेकर भूलोकको चले जायेंगे, इससे तुम्हारा पाँव गलेगा नहीं, अच्छा हो जायगा और ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम लोकपाल-पदको भी प्राप्त करोगे। तुम्हारी बहन यमुनाका जल गङ्गाजलके समान पवित्र हो जायगा और तपतीका जल नर्मदाजलके तुल्य पवित्र माना जायगा। आजसे यह छाया सबके देहोंमें अवस्थित होगी।’

ऐसी व्यवस्था और मर्यादा स्थिर कर भगवान् सूर्य दक्ष प्रजापतिके पास गये और उन्हें अपने आगमनका करण बताते हुए सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसपर दक्ष प्रजापतिने

कहा—‘आपके अति प्रचण्ड तेजसे व्याकुल होकर आपकी भार्या उत्तरकुरु देशमें चली गयी है। अब आप विश्वकर्मासे अपना रूप प्रशास्त करवा ले।’ यह कहकर उन्होंने विश्वकर्माके बुलाकर उनसे कहा—‘विश्वकर्मन्! आप इनका सुन्दर रूप प्रकाशित कर दे।’ तब सूर्यकी सम्मति पाकर विश्वकर्माने अपने तक्षण-कर्मसे सूर्यको खण्डना प्रारम्भ किया। अङ्गोंके तराशनेके कारण सूर्यको अतिशय पीड़ा हो रही थी और बार-बार मूँछर्जा आ जाती थी। इसलिये विश्वकर्मनि सब अङ्ग तो ठीक कर लिये, पर जब पैरोंकी अङ्गुलियोंको छोड़ दिया तब सूर्य भगवान्ने कहा—‘विश्वकर्मन्! आपने तो अपना कार्य पूर्ण कर लिया, परंतु हम पीड़ासे व्याकुल हो रहे हैं। इसका कोई उपाय बताइये।’ विश्वकर्मनि कहा—‘भगवन्! आप रक्तचन्दन और करबोरके पुष्पोंका सम्पूर्ण शरीरमें लेप करें, इससे तत्काल यह बेदना शान्त हो जायगी।’ भगवान् सूर्यने विश्वकर्मके कथनानुसार अपने सारे शरीरमें इनका लेप किया, जिससे उनकी सारी बेदना मिट गयी। उसी दिनसे रक्तचन्दन और करबोरके पुष्प भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हो गये और उनकी पूजामें प्रयुक्त होने लगे। सूर्यभगवान्के शरीरके खण्डनेसे जो तेज निकला, उस तेजसे दैत्योंके विनाश करनेवाले बद्रकम निर्माण हुआ। भगवान् सूर्यने भी अपना उत्तम रूप प्राप्तकर प्रसन्न-मनसे अपनी भार्याके दर्शनोंकी उत्कृष्टासे तत्काल उत्तर-कुलकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि वह घोड़ीका रूप धारणकर विचरण कर रही है। भगवान् सूर्य भी अक्षका रूप धारण कर उससे मिले।

पर-पुरुषकी आशंकासे उसने अपने दोनों नासापुटोंसे सूर्यके तेजको एक साथ बाहर फेंक दिया, जिससे अश्वी-कुमारोंकी उत्पत्ति हुई और यही देवताओंके बैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेखन्तकी उत्पत्ति हुई। तपती, शनि और सावर्णि—ये तीन संतानें छायासे और यमुना तथा यम संजासे उत्पन्न हुए। सूर्यको अपनी भार्या उत्तरकुरुमें सप्तमी तिथिके दिन प्राप्त हुई, उन्हें दिव्य रूप सप्तमी तिथिको ही मिला तथा संतानें भी इसी तिथिको प्राप्त हुईं, अतः सप्तमी तिथि भगवान् सूर्यको अतिशय प्रिय है।

जो व्यक्ति पञ्चमी तिथिको एक समय भोजनकर पश्चात्को

उपवास करता है तथा सप्तमीको दिनमें उपवासकर भक्ष्य-भोज्योंके साथ विविध शाक-पदार्थोंको भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर ब्राह्मणोंको देता है तथा रात्रिमें मौन होकर भोजन करता है, वह अनेक प्रकारके सुखोंका भोग करता है तथा सर्वत्र विजय प्राप्त करता एवं अन्तमें उत्तम विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें कई मनवालरीतक निवास कर पृथ्वीपर पुनः-पौत्रोंसे समन्वित चब्रवर्ती राजा होता है तथा दीर्घकालपर्यन्त निष्कण्टक रुज्य करता है।

राजा कुरुने इस सप्तमी-व्रतका बहुत कालतक अनुष्ठान किया और केवल शाकका ही भोजन किया। इसीसे उन्होंने कुरु-क्षेत्र नामक पुण्यक्षेत्र प्राप्त किया और इसका नाम रत्न धर्मक्षेत्र। सप्तमी, नवमी, षष्ठी, तृतीया और पञ्चमी—ये तिथियाँ बहुत उत्तम हैं और स्त्री-पुरुषोंको मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली हैं। माघवी सप्तमी, आश्विनकी नवमी, भाद्रपदकी षष्ठी, वैशाखकी तृतीया और भाद्रपद, मासकी पञ्चमी—ये तिथियाँ इन महीनोंमें विशेष प्रशस्त मानी गयी हैं। कार्तिक शुक्र का सप्तमीसे इस व्रतको ग्रहण करना चाहिये। उत्तम शाकको सिद्ध कर ब्राह्मणोंको देना चाहिये और रात्रिमें स्वयं भी शाक ही ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार चार मासतक व्रत कर व्रतका पहला पारण करना चाहिये। उस दिन पञ्चगव्यसे सूर्य भगवान्-को रूपान करना चाहिये और स्वयं भी पञ्चगव्यका प्राप्त करना चाहिये, अनन्तर केशरका चन्दन, अग्रस

पुण्य, अपराजित नामक धूप और पायसका नैवेद्य सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भी पायसका भोजन कराना चाहिये। दूसरे पारणमें कुशके जलसे भगवान् सूर्यनारायणको रूपान कराकर स्वयं गोमध्यका प्राप्तन करना चाहिये और शेष चन्दन, सुगन्धित पुण्य, अग्रसका धूप तथा गुडके अपूर्ण नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये और वर्षके समाप्त होनेपर तीसरा पारण करना चाहिये। और सर्वपक्ष का उच्चटन लगाकर भगवान् सूर्यको रूपान कराना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर रत्नचन्दन, करबोरके पुण्य, गुणगुलका धूप और अनेक भक्ष्य-भोज्यसहित दही-भात नैवेद्यमें अर्पण करना चाहिये तथा यही ब्राह्मणोंको भी भोजन करना चाहिये। भगवान् सूर्यनारायणके सम्पूर्ण ब्राह्मणसे पुराण-श्रवण करना चाहिये अथवा स्वयं बौचिंचा चाहिये। अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पौराणिकको वस्त्र-आभूषण, दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करना चाहिये। पौराणिकके संतुष्ट होनेपर भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न हो जाते हैं। रत्नचन्दन, करबोरके पुण्य, गुणगुलका धूप, मोटक, पायसका नैवेद्य, धूत, ताम्रपात्र, पुराण-ग्रन्थ और पौराणिक—ये सब भगवान् सूर्यको अल्पतः प्रिय हैं। राजन्! यह शाक-सप्तमी-व्रत भगवान् सूर्यको अति प्रिय है। इस व्रतका करनेवाला पुरुष भाव्यशाली होता है।

(अध्याय ४७)

श्रीकृष्ण-साम्ब-संवाद तथा भगवान् सूर्यनारायणकी पूजन-विधि

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणब्रेष्ट! भगवान् सूर्यनारायणका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तुम्ही नहीं हो रही है, इसलिये सप्तमी-कल्पका आप पुनः कुछ और विस्तारसे वर्णन करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन्! इस विषयमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनके पुत्र साम्बका जो परस्पर संवाद हुआ था, उसीका मैं वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

एक समय साम्बने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—‘पिताजी! मनुष्य संसारमें जन्म-ग्रहणकर कौन-सा कर्म करे, जिससे उसे दुःख न हो और मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर वह स्वर्ग प्राप्त करे तथा मुक्ति भी प्राप्त कर सके। इन

सबका आप वर्णन करें। मेरा मन इस संसारमें अनेक प्रकारकी आधि-व्याधियोंको देखकर अत्यन्त उदास हो रहा है, मुझे क्षणमात्र भी जीनेकी इच्छा नहीं होती, अतः आप कृपाकर ऐसा उपाय बतायें कि जितने दिन भी इस संसारमें रहा जाय, ये आधि-व्याधियाँ पीड़ित न कर सकें और फिर इस संसारमें जन्म न हो अर्थात् मौका प्राप्त हो जाय।’

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! देवताओंके प्रसादसे, उनके अनुग्रहसे तथा उनकी आराधना करनेसे यह सब कुछ प्राप्त हो सकता है। देवताओंकी आराधना ही परम उपाय है। देवता अनुमान और आगम-प्रधाणोंसे सिद्ध होते हैं। विशिष्ट पुण्य विशिष्ट देवताकी आराधना करे तो वह

विशिष्ट फल प्राप्त कर सकता है।

साम्बने कहा—महाराज ! प्रथम तो देवताओंके अस्तित्वमें ही संदेह है, कुछ लोग कहते हैं देवता हैं और कुछ कहते हैं कि देवता नहीं हैं, फिर विशिष्ट देवता किन्हें समझा जाय ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—वत्स ! आगमसे, अनुमानसे और प्रत्यक्षसे देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—यदि देवता प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकते हैं तो फिर उनके साधनके लिये अनुमान और आगम-प्रमाणकी कुछ भी अपेक्षा नहीं है।

श्रीकृष्ण बोले—वत्स ! सभी देवता प्रत्यक्ष नहीं होते। शास्त्र और अनुमानसे ही हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है।

साम्बने कहा—पिताजी ! जो देवता प्रत्यक्ष हैं और विशिष्ट एवं अभीष्ट फलोंको देनेवाले हैं, पहले आप उन्हींका वर्णन करें। अनन्तर शास्त्र तथा अनुमानसे सिद्ध होनेवाले देवताओंका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—प्रत्यक्ष देवता तो संसारके नेत्रस्वरूप भगवान् सूर्यनारायण ही हैं, इनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। सम्पूर्ण जगत् इन्होंसे उत्पन्न हुआ है और अन्यमें इन्हींमें विलोन भी हो जायगा ।

सत्य आदि युगों और कालकी गणना इन्होंसे सिद्ध होती है। ग्रह, नक्षत्र, योग, करण, राशि, आदित्य, वसु, रुद्र, वायु, अग्नि, अधिनीकुमार, इन्द्र, प्रजापति, दिशाएँ, भू, भुवः, स्वः—ये सभी लोक और पर्वत, नदी, समुद्र, नाग तथा सम्पूर्ण भूतग्रामकी उत्पत्तिके एकमात्र हेतु भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। यह सम्पूर्ण चराचर-जगत् इनकी ही इच्छासे उत्पन्न हुआ है। इनकी ही इच्छासे स्थित है और सभी इनकी ही इच्छासे

अपने-अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं। इन्हींकि अनुयाहसे यह सारा संसार प्रयत्नशील दिखायी देता है। सूर्यभगवान्के उदयके साथ जगत् का उदय और उनके अस्त होनेके साथ जगत् अस्त होता है। इनसे अधिक न कोई देवता हुआ और न होगा। वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास-पुराणादिमें इनका परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादन किया गया है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। इनके सम्पूर्ण गुणों और प्रभावोंका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता। इसीलिये दिवाकर, गुणाकर, सबके स्वामी, सबके रूष्टा और सबका संहार करनेवाले भी ये ही कहे गये हैं। ये स्वयं अव्यय हैं।

जो पुरुष सूर्य-मण्डलकी रचनाकर प्रातः, मध्याह्न और सायं उनकी पूजा कर उपस्थान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है। फिर जो प्रत्यक्ष सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, उसके लिये कौन-सा पदार्थ दुर्लभ है और जो अपनी अनन्तगम्भीर ही मण्डलस्थ भगवान् सूर्यको अपनी बुद्धिद्वीप निश्चित कर रहता है तथा ऐसा समझकर वह इनका व्यानपूर्वक पूजन, हवन तथा जप करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त करता है और अन्यमें इनके लोकको प्राप्त होता है। इसलिये हे पुत्र ! यदि तुम संसारमें सुख चाहते हो और भुक्ति तथा मुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विशिष्टपूर्वक प्रत्यक्ष देवता भगवान् सूर्यकी तन्मयतासे आराधना करो। इनसे तुम्हें आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक कोई भी दुर्भ नहीं होगे। जो सूर्यभगवान्की शरणमें जाते हैं, उनको किसी प्रकारका भय नहीं होता और उन्हें इस लोक तथा परलोकमें शाश्वत सुख प्राप्त होता है। स्वयं मैंने भगवान् सूर्यकी बहुत कालतक यथाविधि आराधना की है, उन्हींकी कृपासे यह दिव्य ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है। इनसे बढ़कर मनुष्योंके हितका और कोई उपाय नहीं है।

(अध्याय ४८)

श्रीसूर्यनारायणके नित्यार्चनका विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्ब ! अब हम सूर्यनारायणके पूजनका विधान बताते हैं, जिसके करनेसे सम्पूर्ण पाप और विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा सभी मनोरथोंकी

सिद्ध होती है और पुण्य भी प्राप्त होता है। प्रातःकाल उठकर शैव आदिसे निवृत्त हो नदीके तटपर जाकर आचमन करे तथा सूर्योदयके समय शुद्ध मृतिकाका शशीरपर लेपन कर रूपान

१-प्रत्यक्ष देवता सूर्यो जगत्पूर्दिकाकरः। तत्पादभ्यधिका कर्त्तव्येवता नालि शाश्वती ॥

शस्त्रादिदै जगज्ञाते लये यास्तु यत्र च ।

(आहारपर्व ४८ । २१-२२)

करे। पुनः आचमन कर शुद्ध वस्त्र धारण करे और सप्तशक्ति मन्त्र 'ॐ खल्लोल्काय स्वाहा' से सूर्यभगवान्को अर्चये दे तथा हृदयमें मन्त्रका ध्यान करे एवं सूर्य-मन्दिरमें जाकर सूर्यकी पूजा करे। सर्वप्रथम श्रद्धापूर्वक पूरक, रेचक और कुम्भक नामक प्राणायाम कर बायायी, आप्रेयी, माहेन्द्री और बारुणी धारणा करके भूतशुद्धिकी रैतिसे शशीरका शोषण, दहन, सप्तमन और प्रावन करके अपने शशीरकी शुद्धि कर ले। अपने शुद्ध हृदयमें भगवान् सूर्यकी भावना कर उन्हें प्रणाम करे। स्थूल, सूक्ष्म शशीर तथा इन्द्रियोंको अपने-अपने स्थानोंमें उपन्यस्त करे। 'ॐ खः स्वाहा हृदयाय नमः, ॐ खः स्वाहा शिरसे स्वाहा, ॐ उल्काय स्वाहा शिरसायै वयट, ॐ याय स्वाहा कवचाय हुम्, ॐ स्वां स्वाहा नेत्रप्रयाय वौषट्, ॐ हाँ स्वाहा अस्त्राय फट्।'

—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास कर पूजन-सामग्रीका मूल-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलद्वारा प्रोक्षण करे। फिर सुगच्छित पृथ्वादि उपचारोंसे सूर्यभगवान्का पूजन करे। सूर्यनाशयणकी पूजा दिनके समय सूर्य-मूर्तिमें और रात्रिके समय अग्रिमें करनी चाहिये। प्रभातकालमें पूर्वाभिमुख, साथेकालमें पश्चिमाभिमुख तथा गत्रिमें उत्तराभिमुख होकर पूजन करनेका विधान है। 'ॐ खल्लोल्काय स्वाहा' इस सप्तशक्ति मन्त्रसे सूर्यमण्डलके बीच घट्टल-कमलका ध्यान कर उसके मध्यमें सहस्र किरणोंसे देवीयामान भगवान् सूर्यनाशयणकी मूर्तिका ध्यान करे। फिर रक्तचन्दन, करवीर आदि रक्तपुष्पों, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य, वस्त्राभूषण आदि उपचारोंसे पूजन करे।

अथवा रक्तचन्दनसे ताप्रपात्रमें घट्टल-कमल बनाकर उसके मध्यमें सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यनाशयणका पूजन करे। छहों दलोंमें घड़-पूजन कर उत्तर आदि दिशाओंमें सोमादि आठ श्राहोंका अर्चन करे और अष्टदिव्यालों तथा उनके आयुधोंका भी तत्तद् दिशाओंमें पूजन करे। नामके आदिमें प्रणव लगाकर नामको चतुर्थों-विष्वक्तियुक्त करके अन्तमें नमः कहे— जैसे 'ॐ सोमाय नमः' इत्यादि। इस प्रकार नाममन्त्रोंसे सबका पूजन करे। अनन्तर खोप-मुद्रा, रवि-मुद्रा, पच-मुद्रा, महासेत-मुद्रा और अख-मुद्रा दिखाये। ये पाँच मुद्राएँ पूजा, जप, ध्यान, अर्च आदिके अनन्तर दिखानी चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक भृत्यपूर्वक तन्यताके साथ भगवान् सूर्यनाशयणका पूजन करनेसे अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति होती है और बादमें मुक्ति भी प्राप्त होती है। इस विधिसे पूजन करनेपर योगी योगसे मुक्त हो जाता है, धनहीन धन प्राप्त करता है, राज्यभ्रष्टको राज्य मिल जाता है तथा पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है। सूर्यनाशयणका पूजन करनेवाला पुरुष प्रजा, मेधा तथा सभी समृद्धियोंसे सम्पन्न होता हुआ चिरजीवी होता है। इस विधिसे पूजन करनेपर कन्याको उत्तम वरकी, कुरुपा खोको उत्तम सौभाग्यकी तथा विद्यार्थीको सद्विद्याकी प्राप्ति होती है। ऐसा सूर्यभगवान्ने स्वयं अपने मुखसे कहा है। इस प्रकार सूर्यभगवान्का पूजन करनेसे धन, धान्य, संतान, पशु आदिकी नित्य अभिवृद्धि होती है। मनुष्य निष्काम हो जाता है तथा अन्तमें उसे सद्गति प्राप्त होती है। (अध्याय ४९)

भगवान् सूर्यके पूजन एवं ब्रतोद्यापनका विधान, द्वादश आदित्योंके नाम और रथसम्पी-ब्रतकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—साम्प ! अब मैं सूर्यके विशिष्ट अवसरोंपर होनेवाले व्रत-उत्सव एवं पूजनकी विधियोंका वर्णन करता हूँ, उन्हें सुनो। किसी मासके शुक्रपक्षकी सप्तमी, ग्रहण या संक्रान्तिके एक दिन-पूर्व एक बार हविष्यात्रका भोजन कर सायंकालके समय भलीभांति आचमन आदि करके अरुणदेवको प्रणाम करना चाहिये तथा सभी इन्द्रियोंको संयतकर भगवान् सूर्यका ध्यान कर रात्रिमें जमीनपर कुशकी शाय्यापर शयन करना चाहिये। दूसरे दिन

प्रातःकाल उठकर विशिष्टपूर्वक ऊन सम्पन्न करके संध्या करे तथा पूर्वोक्त मन्त्र 'ॐ खल्लोल्काय स्वाहा' का जप एवं सूर्यभगवान्की पूजा करे। अग्रिमों सूर्यतापके रूपमें समझकर येदी बनाये और संक्षेपमें हवन तथा तर्पण करे। गायत्री-मन्त्रसे प्रोक्षणकर पूर्वाय्र और उत्तराय्र कुशा बिछाये। अनन्तर सभी पात्रोंका शोधन कर दो कुशाओंकी प्रादेशमात्रकी एक पवित्री बनाये। उस पवित्रीसे सभी वस्तुओंका प्रोक्षण करे, योंके अग्रिमपर रखकर पिण्डल ले, उत्तराय्री और पात्रमें उसे रख दे,

अनन्तर जलते हुए उत्कुकसे पर्याप्तिकरण करते हुए घृतका तीन बार उत्पादन करें। सुखा आदिका कुशोंके द्वारा परिष्वार्जन और सम्प्रोक्षण करके अप्रिमे सूर्योदयकी पूजा करे और दाहिने हाथमें सुखा प्राहणकर मूल मन्त्रसे हृष्ण करे। मनोयोगपूर्वक मौन धारण कर सभी क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये। पूर्णहुनिके पश्चात् तर्पण करें। अनन्तर ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करना चाहिये और यथाशक्ति उनको दक्षिणा भी देनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

मात्र मासकी सप्तमीकी वरुण नामक सूर्यकी पूजा करे। इसी प्रकार ब्रह्मशः पञ्चल्युनमें सूर्य, चैत्रमें वैशाखः, वैशाखमें धाता, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें नभ, भाद्रपदमें यम, आश्विनमें पर्वत्य, कार्तिकमें लक्ष्मी, मार्गशीर्षमें मित्र तथा पौष मासमें विष्णुनामक सूर्यका अर्चन करे। इस विधिसे बारहों मासमें अलग-अलग नामोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक एक दिन पूजा करनेसे वर्षपर्वत की गयी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त विधिसे एक वर्षतक ब्रत कर रखजटित सुवर्णिका एक रथ बनवाये और उसमें सात घोड़े बनवाये। रथके मध्यमें सोनेके कम्पलके ऊपर रखोके आभूषणोंसे अलंकृत सूर्य-नारायणकी सोनेकी भूर्ति स्थापित करें। रथके आगे उनके सारथियोंको बैठाये। अनन्तर बारह ब्राह्मणोंमें बारह महीनोंके सूर्योंकी भावना कर तेरहवें मुख्य आचार्यको साक्षात् सूर्यनारायण समझकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें रथ, छत्र, भूमि, गाँ आदि समर्पित करे। इसी प्रकार रखोके आभूषण, वस्त्र, दक्षिणा और एक-एक घोड़ा उन बारह ब्राह्मणोंको देतथा हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करे—‘ब्राह्मण देवताओं ! इस सूर्यब्रतके उत्थापन करनेके बाद यदि असमर्थतावश कभी सूर्यब्रत न कर सकूँ तो मुझे दोष न हो।’ ब्राह्मणोंके साथ आचार्य भी ‘एवमस्तु’ ऐसा कहकर यजमानको आशीर्वाद दें और कहे—‘सूर्यभगवान् तुमपर प्रसन्न हो।’ जिस मनोरथकी पूर्तिके लिये तुमने यह ब्रत किया है और भगवान् सूर्यकी पूजा की है, वह तुम्हारा मनोरथ मिल हो और भगवान् सूर्य उसे पूरा करे। अब ब्रत न करनेपर भी तुम्हको दोष नहीं होगा।’ इस

प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर दीनो, अथों तथा अनाथोंको यथाशक्ति भोजन कराये तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, दक्षिणा देकर ब्रतकी समाप्ति करे।

जो व्यक्ति इस सप्तमी-ब्रतको एक वर्षतक करता है, वह सौ योजन लंबे-चौड़े देशका धार्मिक राजा होता है और इस ब्रतके फलसे सौ वर्षोंसे भी अधिक निष्कटक राज्य करता है। जो रुद्र इस ब्रतको करती है, वह राजपत्री होती है। निर्धन व्यक्ति इस ब्रतको यथाविधि सम्पन्न कर ब्रतलयी हुई विधिके अनुसार तविका रथ ब्राह्मणको देता है तो वह अस्ती योजन लंबा-चौड़ा राज्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार आटेका रथ बनवाकर दान करनेवाला साठ योजन विस्तृत राज्य प्राप्त करता है तथा वह चिरायु, नीरोग और सुखी रहता है। इस ब्रतको करनेसे पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करनेके पश्चात् राजा होता है। यदि कोई व्यक्ति भगवान् सूर्यकी मानसिक आराधना भी करता है तो वह भी समस्त आधि-व्याधियोंसे रोहत होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। जिस प्रकार भगवान् सूर्यको कुहा स्पर्श नहीं कर पाता, उसी प्रकार मानसिक पूजा करनेवाले साधकको किसी प्रकारकी आपत्तियाँ स्पर्श नहीं कर पातीं। यदि किसीने मनोके द्वारा भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे ब्रत सम्पन्न करते हुए भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की तो फिर उसके विषयमें क्या कहना ? इसलिये अपने कल्पाणके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा अवश्य करनी चाहिये।

पुत्र ! सूर्यनारायणने इस विधि-विधानको स्वयं अपने मुखसे मुझसे कहा था। आजतक उसे गुप्त रखकर पहली बार मैंने तुमसे कहा है। मैंने इसी ब्रतके प्रभावसे हजारों पुत्र और पीत्रोंको प्राप्त किया है, दैत्योंको जीता है, देवताओंको वशमें किया है, मेरे इस चक्रमें सदा सूर्यभगवान् निवास करते हैं। नहीं तो इस चक्रमें इतना तेज कैसे होता ? यही कारण है कि सूर्यनारायणका नित्य जप, ध्यान, पूजन आदि करनेसे मैं जगत्का पूज्य हूँ। खत्स ! तुम भी मन, बाणी तथा कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधना करो। ऐसा करनेसे तुम्हें विधिसुख प्राप्त होगे। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इस विधानको सुनता है, वह

१- प्रायः अन्य सभी पूजनोंमें चैत्रादि बारह महीनोंमें सूर्योंके ये नाम मिलते हैं—धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विश्वामीन्, पूषा, पर्वत्य, अंशा, भग, लक्ष्मी और विष्णु। कल्पाभेदके अनुसार नामोंमें भेद है।

भी पुत्र-पौत्र, आरोग्य एवं लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको भी प्राप्त हो जाता है।

भगवान् कृष्णने कहा—साम्ब ! माघ मासके दशूङ पक्षकी पञ्चमी तिथिको एकमुक्त-ब्रत और पठ्ठीको नक्षत्रत करना चाहिये । सुव्रत ! कुछ लोग सामाजीमें उपवास चाहते हैं और कुछ विद्वान् पठ्ठीमें उपवास और सामाजी तिथिमें पारण करनेका विधान कहते हैं (इस प्रकार विविध मत हैं) । वस्तुतः पठ्ठीको उपवासकर भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये । रक्तचन्दन, करबीर-पुण्य, गुण्डुल धूप, पायस आदि नैवेद्योंसे माघ आदि चार महीनोंतक सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये । आत्मशुद्धिके लिये गोमयमिश्रित जलसे स्नान, गोमयका प्राप्ति और वथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये ।

ज्येष्ठ आदि चार महीनोंमें शेष चन्दन, शेष पुण्य, कृष्ण अग्रण धूप और उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पण करना चाहिये । इसमें पञ्चगव्यप्राप्ति कर ब्राह्मणोंको उल्कृष्ट भोजन करना चाहिये ।

सूर्यदिवके रथ एवं उसके साथ भ्रमण करनेवाले देवता-नाग आदिका वर्णन

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! सूर्यनारायणकी रथयात्रा किस विधानसे करनी चाहिये । रथ कैसा बनाना चाहिये ? इस रथयात्राका प्रचलन मूल्योक्तमें किसके हारा हुआ ? इन सब बातोंको आप कृपाकर मुझे बतलायें ।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! किसी समय सुमेह पर्वतपर समाजीन भगवान् रुद्रने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन् ! इस लोकको प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य किस प्रकारके रथमें चैठकर भ्रमण करते हैं, इसे आप बतायें ।’

ब्रह्माजीने कहा—त्रिलोकन ! सूर्यनारायण जिस प्रकारके रथमें बैठकर भ्रमण करते हैं, उसका मैं वर्णन करता

आश्चिन आदि चार मासोंमें आगस्त-पूण्य, अपराजित धूप और गुह्यके पूर्ण आदिका नैवेद्य तथा इक्षुरस भगवान् सूर्यको समर्पित करना चाहिये । यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर आत्मशुद्धिके लिये कुशाके जलसे स्नान करना चाहिये । उस दिन कुञ्जोदकका ही प्राशन करे । व्रतकी समाप्तिमें माघ मासकी शुक्र सापमीको रथका दान करे और सूर्यभगवानकी प्रसन्नताके लिये रथयात्रोत्सवका आयोजन करे । महापुण्यदिवानी इस सप्तमीको रथसप्तमी कहा गया है । यह महासप्तमीके नामसे अभिहित है । रथसप्तमीको जो उपवास करता है, वह कीर्ति, धन, विद्या, पुत्र, आरोग्य, आयु और उत्तमोत्तम कर्मानि प्राप्त करता है । हे पुत्र ! तुम भी इस व्रतको करो, जिससे तुम्हारे सभी अभीष्टोंकी सिद्धि हो । इतना कहकर शङ्ख, चक्र, गदा-पश्चाधारी श्रीकृष्ण अन्तर्भृत हो गये ।

सुमन्तुने कहा—राजन् ! उनकी आज्ञा पाकर साम्बन्धे भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आश्रयनामें तत्पर हो रथसप्तमीका व्रत किया और कुछ ही समयमें गोममुक्त होकर मनोवाज्ज्ञित फल प्राप्त कर लिया । (अध्याय ५०-५१)

है, आप सानन्द सुनें ।

एक चक्र, तीन नाभि, पाँच और तथा स्वर्णमय अति कान्तिमान् आठ बन्धोंसे युक्त एवं एक नैविसे सुसज्जित—इस प्रकारके दस हजार योजन लंबे-चौड़े अतिशय प्रकाशमान स्वर्ण-रथमें विराजमान भगवान् सूर्य विचरण करते रहते हैं । रथके उपस्थिति ईषा-दण्ड तीन-गुना अधिक हैं । यहीं उनके सारथि अरुण बैठते हैं । इनके रथका जुआ सोनेका बना हुआ है । रथमें वायुके समान वेगवान् छन्दरूपी सात घोड़े जुते रहते हैं । संवत्सरमें जितने अवश्यक होते हैं, वे ही रथके अङ्ग हैं । तीनों काल चक्रकी तीन नाभियाँ हैं । पाँच ऋतुएँ और हैं, छठी

१- जिस दिन प्रायः दिनका अधिक अंश विकार साथे चार बजेके लगातार भोजन कर पूरी गत उपवास रुक्त विवरण जाता है, उसे एकमुक्त-ब्रत कहा जाता है और दिनभर उपवासकर यात्रिको भोजन करना ‘नक्षत्रत’ कहलाता है ।

२- रथसप्तमीके विषयमें बताइए, वतवत्याद्यम, वतवत्यात्मादिके अतिरिक्त पद्मासुण्ड एवं वायुसुग्रामके माघ-मासात्म्यमें वायु विलासे व्रत-विधानकम निरूपण हुआ है और कुछ पञ्चाह्नीमें भी इसी दिन भगवान् सूर्यके रथपर चढ़कर आकाशकी प्रथम यात्रा करनेवाले उल्लेख किया गया है । जैसे गमनवर्मीके दिन भगवान् यात्रका, जन्मस्तुत्यमें दिन भगवान् श्रीकृष्णायाम प्राकट्य मानवन उन्नय किया जाता है, वैसे ही रथसप्तमीके दिन भगवान् सूर्यके प्राकट्य मानवन उन्नें लिये व्रत-उपवासके साथ विशेष अन्य मणिय की जानी है ।

ऋतु नेमि है। दक्षिण और उत्तर—ये दो अयन रथके दोनों भाग हैं। मुहूर्त रथके इष्ट, कला, शम्य, काष्ठारै रथके कोण, क्षण अक्षदण्ड, निमेष रथके कर्ण, ईशा-दण्ड लक्ष, रात्रि वरुथ, धर्म रथका घज, अर्थ और काम शूरीका अप्रभाग, गायत्री, शिष्टप, जगती, अनुष्टुप्, पौलि, बृहती तथा उच्चिव—ये सात रुद्र यात्रा अथ हैं। धुरीपर चक्र धूमता है। इस प्रकाराके रथमें बैठकर भगवान् सूर्य निरन्तर आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं।

देव, ऋषि, गन्धर्व अप्सरा, नाग, ग्रामी और राक्षस सूर्यके रथके साथ धूमते रहते हैं और दो-दो मासोंके बाद इनमें परिवर्तन हो जाता है।

धाता और अर्यमा—ये दो आदित्य, पुलस्य तथा पुलह नामक दो ऋषि, सण्डक, जासुक नामक दो नाग, तुम्बुरु और नारद ये दो गन्धर्व, क्रतुस्थला तथा पुङ्गिकस्थला ये अप्सराएँ, रथकृत्तम तथा रथीजा ये दो यक्ष, हेति तथा प्रहेति नामके दो राक्षस ये क्रमशः चैत्र और वैशाख मासमें रथके साथ चला करते हैं।

मित्र तथा वहण नामक दो आदित्य, अवित तथा वसिष्ठ ये दो ऋषि, तक्षक और अनन्त दो नाग, मेनका तथा सहजन्या ये दो अप्सराएँ, हाहा-हृषु दो गन्धर्व, रथस्वान् और रथचित्र ये दो यक्ष, पौरुषेय और वश नामक दो राक्षस क्रमशः ज्येष्ठ तथा आषाढ़ मासमें सूर्यरथके साथ चलते हैं।

आवण तथा भाद्रपदमें इन्द्र तथा विश्वस्वान् नामक दो आदित्य, अङ्गिरा तथा भृगु नामक दो ऋषि, एलापर्ण तथा शङ्खपाल ये दो नाग, प्रम्लोचा और दुंदुका नामक दो अप्सराएँ, भानु और दुर्दर नामक गन्धर्व, सर्प तथा ब्राह्म नामक दो राक्षस, स्त्रोत तथा आपूरण नामके दो यक्ष सूर्यरथके साथ चलते रहते हैं।

आश्विन और कार्तिक मासमें पर्जन्य और पूषा नामके दो आदित्य, भारद्वाज और गौतम नामक दो ऋषि, चित्रसेन तथा वसुलचि नामक दो गन्धर्व, विश्वाची तथा ब्रूताची नामकी दो अप्सराएँ, ऐशवत और धनञ्जय नामक दो नाग और सेनजित् तथा सुषेण नामक दो यक्ष, आप एवं वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें अंशु तथा भग नामक

दो आदित्य, कश्यप और क्रतु नामक दो ऋषि, महापथ और क्वोटक नामक दो नाग, चित्राङ्गुद और अरण्यायु नामक दो गन्धर्व, सहा तथा सहस्या नामक दो अप्सराएँ, ताक्षर्य तथा अरिष्ठनेमि नामक यक्ष, आप तथा वात नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं।

माघ-फाल्गुनमें क्रमशः पूषा तथा जिष्णु नामक दो आदित्य, जगदग्नि और विश्वामित्र नामक दो ऋषि, काशदवेय और कम्बलाश्वतर ये दो नाग, धृतराष्ट्र तथा सूर्यवर्ची नामक दो गन्धर्व, तिलोत्तमा और रम्या ये दो अप्सराएँ तथा सेनजित् और सत्यजित् नामक दो यक्ष, ब्रह्मोपेत तथा यशोपेत नामक दो राक्षस सूर्यरथके साथ चला करते हैं^१।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्रदेव ! सभी देवताओंने अपने अंशरूपसे विविध अख-शस्त्रोंको भगवान् सूर्यकी रक्षाके लिये उन्हे दिया है। इस प्रकार सभी देवता उनके रथके साथ-साथ भ्रमण करते रहते हैं। ऐसा कोई भी देवता नहीं है जो रथके पीछे न चले। इस स्वर्क्रीदिवपर्यं सूर्यनारायणके मण्डलको ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप, यश्चिक यज्ञस्वरूप, भगवन्द्रष्ट विष्णुस्वरूप तथा शैव शिवस्वरूप मानते हैं। ये स्थानाभिमानी देवगण अपने तेजसे भगवान् सूर्यको आप्यायित करते रहते हैं। देवता और ऋषि निरन्तर भगवान् सूर्यकी सूति करते रहते हैं, गन्धर्व-गण गान करते रहते हैं तथा अप्सराएँ रथके आगे नृत्य करती हुई चलती रहती हैं। राक्षस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। साठ हजार ब्लास्तिल्य ऋषिगण रथको चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। दिवस्पति और स्वयम्भू रथके आगे, भर्ग दाहिनी ओर, पश्चात् बायीं ओर, कुबेर दक्षिण दिशामें, वरुण उत्तर दिशामें, वीतिहोत्र और हरि रथके पीछे रहते हैं। रथके पीछे पृथ्वी, मध्यमें आकाश, रथकी कान्तिमें स्वर्ग, ध्वजामें दण्ड, ध्वजाप्रमें धर्म, पताकामें कृष्ण-बृद्ध और श्री निवास करती हैं। ध्वजदण्डके ऊपरी भागमें गरुड तथा उसके ऊपर वरुण स्थित हैं। मैनाक पर्वत छत्रका दण्ड, हिमाचल छत्र होकर सूर्यके साथ रहते हैं। इन देवताओंको बल, तप, तेज, योग और तत्त्व जैसा है वैसे ही सूर्यदेव तपते हैं। ये ही देवगण तपते हैं, वरसते हैं, सृष्टिका पालन-पोषण करते हैं, जीवोंके अनुप-कर्मको निवृत्त करते हैं, प्रजाओंको आनन्द देते हैं और

१—ये नाम विष्णु आदि अन्य पुराणोंमें कुछ भेदमें मिलते हैं।

सभी प्राणियोंके रक्षाके लिये भगवान् सूर्यके साथ भ्रमण करते रहते हैं। अपनी किरणोंसे चन्द्रमाकी वृद्धि ऊरु सूर्य भगवान् देवताओंका पोषण करते हैं। शुक्र पक्षमें सूर्य-किरणोंसे चन्द्रमाकी क्रमशः वृद्धि होती है और कृष्ण पक्षमें देवगण उसका पान करते हैं। अपनी किरणोंसे पृथ्वीका रस-पान कर सूर्यनाशयण बृष्टि करते हैं। इस बृष्टिसे सभी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं तथा अनेक प्रकारके अन्न भी उत्पन्न होते हैं, जिससे पितरों और मनुष्योंको तृप्ति होती है।

एक चक्रवाले रथमें भगवान् सूर्यनाशयण बैठकर एक अहोरात्रमें सातों द्वीप और समुद्रोंसे सुकृ पृथ्वीके चारों ओर भ्रमण करते हैं। एक वर्षमें ३६० बार भ्रमण करते हैं। इन्द्रकी पुरी अमरावतीमें जब मध्याह्न होता है, तब उस समय यमकी संयमनी पुरीमें सूर्योदय, वरुणकी सुखा नामकी नगरीमें अर्धशत्रि और सोमकी विभा नामकी नगरीमें सूर्योस्त होता है। संयमनीमें जब मध्याह्न होता है, तब सुखामें उदय, अमरावतीमें अर्धशत्रि तथा विभामें सूर्योस्त होता है। सुखामें

जब मध्याह्न होता है, उस समय विभामें उदय, अमरावतीमें आधी रात और संयमनीमें सूर्योस्त होता है। विभा नगरीमें जब मध्याह्न होता है, तब अमरावतीमें सूर्योदय, संयमनीमें आधी रात और सुखा नामकी वरुणकी नगरीमें सूर्योस्त होता है। इस प्रकार मेह पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए भगवान् सूर्यका उदय और अस्त होता है। प्रभातसे मध्याह्नतक सूर्य-किरणोंकी वृद्धि और मध्याह्नसे अस्ततक हास होता है। जहाँ सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा और जहाँ अस्त होता है वह पश्चिम दिशा है। एक मुहूर्तमें भूमिका तीसवां भाग सूर्य लंघ जाते हैं। सूर्य-भगवान्के उदय होने ही प्रतिदिन इन्द्र पूजा करते हैं, मध्याह्नमें यमराज, अस्तके समय वरुण और अर्धशत्रिमें सोम पूजन करते हैं।

विष्णु, शिव, रुद्र, ब्रह्मा, अग्नि, वायु, निर्झलि, ईशान आदि सभी देवगण रात्रिकी समाप्तिपर ब्राह्मवेलामें कल्याणके लिये सदा भगवान् सूर्यकी आग्रहना करते रहते हैं।

(अध्याय ५२-५३)

भगवान् सूर्यकी महिमा, विभिन्न ऋतुओंमें उनके अलग-अलग वर्ण तथा उनके फल

भगवान् रुद्रने कहा—ब्रह्मन्! आपने भगवान् सूर्यनाशयणके माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके सुननेसे हमें बहुत अनन्द मिला, कृपाकर आप उनके माहात्म्यका और वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र ! इस सच्चाचर ब्रैंडोवर्सके मूल भगवान् सूर्यनाशयण ही है। देवता, असुर, मानव आदि सभी इन्हींसे उत्पन्न हैं। इन्द्र, चन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि जिन्हें भी देवता हैं, सबमें इन्हींका तेज व्याप्त है। अग्निमें विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्यभगवान्को ही प्राप्त होती है। भगवान् सूर्यसे ही वृश्च होती है, वृश्चिसे अग्नादि उत्पन्न होते हैं और यही अब्र प्राणियोंका जीवन है। इन्हींसे जगत्की उत्पत्ति होती है और अन्तमें इन्हींमें सारी सृष्टि विलीन हो जाती है। ध्यान करनेवाले इन्हींका ध्यान करते हैं तथा ये मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंके लिये मोक्षलब्ध हैं। यदि सूर्यभगवान् न हो तो क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अवन, वर्ष तथा युग आदि काल-विभाग हो ही नहीं और काल-विभाग

न होनेसे जगत्का कोई व्यवहार भी नहीं चल सकता। ऋतुओंका विभाग न हो तो फिर फल-फूल, खेती, ओषधियाँ आदि कैसे उत्पन्न हो सकती हैं ? और इनकी उत्पत्तिके बिना प्राणियोंका जीवन भी कैसे रह सकता है ? इससे यह स्पष्ट है कि इस (चराचरात्मक) विक्षेके मूलभूत कारण भगवान् सूर्य-नाशयण ही है। सूर्यभगवान् वसन्न ऋतुमें कपिल वर्ण, ग्रीष्ममें तम सुवर्णकी समान, वर्षमें शेत, शारद, ऋतुमें पाष्ठु-वर्ण, हेमन्तमें ताप्रवर्ण और शिशिर ऋतुमें रत्नवर्णके होते हैं। इन वर्णोंका अलग-अलग फल है। रुद्र ! उसे आप सुनें।

यदि सूर्यभगवान् (असमयमें) कृष्णवर्णके हो तो संसारमें भय होता है, ताप्रवर्णके हो तो सेनापतिका नाश होता है, योत्वर्णके हो तो राजकुमारकी मृत्यु, शेत वर्णके हो तो राजपुरोहितका ध्वंस और चित्र अथवा शूमवर्णके होनेसे चोर और शस्त्रका भय होता है, परंतु ऐसा वर्ण होनेके अनन्तर यदि वृष्टि हो जाती है तो अनिष्ट फल नहीं होते*।

(अध्याय ५४)

* इस विषयका बहुद वर्णन 'ब्रह्मसंहिता'की भट्टोत्तरी टीका आदिमें है। विशेष जनकारीके लिये उन्हें देखा जा सकता है।

भगवान् सूर्यका अभिषेक एवं उनकी रथयात्रा

सद्गुरु पूछा—ब्रह्मन् ! भगवान् सूर्यकी रथयात्रा क्या और किस विधिसे की जाती है ? रथयात्रा करनेवाले, रथके साथ जानेवाले और रथके आगे नृत्य-गान करनेवाले एवं रात्रि-जागरण करनेवाले पुरुषोंको क्या फल प्राप्त होता है ? इसे आप लोककल्याणके लिये विस्तारपूर्वक बताइये ।

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र ! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । अब मैं इसका वर्णन करता हूँ, आप इसे एकाग्र-मनसे सुनें ।

भगवान् सूर्यकी रथयात्रा और इन्द्रोत्सव—ये दोनों जगत्के कल्याणके लिये मैंने प्रवर्तित किये हैं । जिस देशमें ये दोनों महोत्सव आयोजित किये जाते हैं, वहाँ दुर्धिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते और न चोरी आदिका कोई भय ही रहता है । इसलिये दुर्धिक्ष, अकाल आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये इन उत्सवोंके मनाना चाहिये । मार्गशीर्षके शुक्र पक्षकी सप्तमीको शूतके द्वारा भगवान् सूर्यको श्रद्धापूर्वक स्नान करना चाहिये । ऐसा करनेवाल पुरुष सोनेके विमानमें बैठकर अग्रिलोकको जाता है और वहाँ दिव्य भोग प्राप्त करता है । जो व्यक्ति शर्वराके साथ शालि-चावलका भात, मिठात्र और चिकनरानके भातको भगवान् सूर्यके अर्पित करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है । जो प्रतिदिन भगवान् सूर्यको भक्तिपूर्वक शूतका उठान लगाता है, वह परम गतिके प्राप्त करता है ।

पौष शुक्र सप्तमीको तीर्थोंके जल अथवा पवित्र जलमें वेदमन्त्रोंके द्वारा भगवान् सूर्यको स्नान करना चाहिये । सूर्य-भगवान्के अभिषेकके समय प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैषिंग, पृथुदक (पेहवा), शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, विल्वक, नीलपर्वत, गङ्गाद्वार, गङ्गासागर, कालप्रिय, मित्रवन, भाष्टीरवन, चक्रतीर्थ, रामतीर्थ, गङ्गा, यमुना, सरस्वती,

सिन्धु, चन्द्रभाग, नर्मदा, विपाशा (व्यासनदी) , तापी, शिवा, वेत्रवती (वेतवा), गोदावरी, पयोध्री (मन्दाकिनी), कृष्ण, वेण्या, शतद्रु (सतलज), पुष्करिणी, कौशिकी (कोसी) तथा सरयू आदि सभी तीर्थों, नदियों और समुद्रोंका स्मरण करना चाहिये । दिव्य आश्रमों और देवस्थानोंका भी स्मरण करना चाहिये । इस प्रकार स्नान कराकर तीन दिन, सात दिन, एक पक्ष अथवा मासभर उस अभिषेकके स्थानमें ही भगवान्का अधिवास करे और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करता रहे ।

माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको मङ्गल कलशों तथा वितान आदिसे सुशोभित चौकोर एवं पांडे इटोंसे बनी वेदीपर सूर्यनाशगणको भलीभांति स्थापित कर हवन, ब्राह्मण-भोजन, वेद-पाठ और विभिन्न प्रकारके नृत्य, गौत, वाद्य आदि उत्सवोंको करना चाहिये । अनन्तर माघ शुक्र चतुर्थीको अव्याचित ब्रत करे, पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको गत्रिके समय ही भोजन करे और सप्तमीको उपवास कर हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि सम्पन्न करे । सबको दक्षिणा देकर पौराणिककी भलीभांति पूजा करे । तदनन्तर रजतटित सुखणके रथमें भगवान् सूर्यको विराजित करे । उस रथको उस दिन मन्दिरके आगे ही खड़ा करे । रात्रिमें जागरण करे और नृत्य-गौत चलता रहे । माघ शुक्र अष्टमीको रथयात्रा करनी चाहिये । रथके आगे विविध बाजे बजाते रहें, नृत्य-गौत और मङ्गल वेदध्यनि होती रहे । रथयात्रा प्रथम नगरके उत्तर दिशासे प्रारम्भ करनी चाहिये, पुनः क्रमशः पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशाओंमें भ्रमण करना चाहिये । इस प्रकार रथयात्रा करनेसे राज्यके सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं । राजाको युद्धमें विजय मिलती है तथा उस राज्यमें सभी प्रजाएँ और पशुगण नोरोग एवं सुखी हो जाते हैं । रथयात्रा करनेवाले, रथके

१-यजेदि तीर्थनामानि गनस्त संस्मरन् ब्रुधः । प्रयागे पृष्ठरे देवे कुरुक्षेत्रे च तैमियम् ॥

पृथुदकं चन्द्रभागं शोणं गोकर्णमिव च । ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं विल्वकं बोलपर्वतम् ॥

गङ्गाद्वारं तथा पुष्यं गङ्गासागरमेव च । चक्रतीर्थं विल्वनं शुक्लपर्वतमिने तथा ॥

चक्रतीर्थं तथा पुष्यं गमतीर्थं तथा शिवम् । वित्तम् हांसंवद्यं वै तथा वै देवियं मृत् ॥

गङ्गा सरस्वती सिंधुक्षेत्रभागा सुनर्मदा । विपाशा यमुना नामे शिवा वेत्रवती तथा ॥

गोदावरी पेहवाणी च कृष्णा वेण्या तथा नदी । शतद्रुं पुष्करिणी कौशिकी सरयूसाधा ॥

तथान्ये सागरार्षीव संसिद्धये कल्पवन् वै । तथा श्रमा- पुष्पतमा दिव्यान्यायतनानि च ॥

वहन करनेवाले और रथके साथ जानेवाले सूर्यलोकमें निवास करते हैं।

रुद्रने कहा— हे ब्रह्म ! मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रतिमाको किस प्रकार उठाना चाहिये और किस प्रकार रथमें विराजमान करना चाहिये । इस विषयमें मुझे कुछ संदेह हो रहा है, क्योंकि वह प्रतिमा तो स्थिर अर्थात् अचल प्रतिष्ठित है । अतः उसे कैसे चलाया जा सकता है ? कृपाकर आप मेरे इस संशयको दूर करें ।

ब्रह्माजी बोले— संवत्सरके अवधियोंके रूपमें जिस रथका पूर्वमें मैंने वर्णन किया है, वह रथ सभी रथोंमें पहला रथ है, उसको देखकर ही विश्वकर्मीनि सभी देवताओंके लिये अलग-अलग विविध प्रकारके रथ बनाये हैं । उस प्रथम रथकी पूजाके लिये भगवान् सूर्यने अपने पुत्र मनुको वह रथ प्रदान किया । मनुने गजा इक्ष्वाकुको दिया और तबसे यह रथयात्रा पूर्जित हो गयी और परम्परासे चली आ रही है । इसलिये सूर्यकी रथयात्राका उत्सव मनाना चाहिये । भगवान् सूर्य तो सदा आकाशमें भ्रमण करते रहते हैं, इसलिये उनकी प्रतिमाको चलनेमें कोई भी दोष नहीं है । भगवान् सूर्यके भ्रमण करते हुए उनका रथ एवं मण्डल दिखायी नहीं पड़ता, इसलिये मनुष्योंने रथयात्राके द्वारा ही उनके रथ एवं मण्डलका दर्शन किया है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवोंको प्रतिमाके स्थापित हो जानेके बाद उनको उठाना नहीं चाहिये, किन्तु सूर्य-नारायणकी रथयात्रा प्रजाओंकी शान्तिके लिये प्रतिवर्ष करनी चाहिये । सोने-चाँदी अथवा उत्तम काष्ठका अतिशय रमणीय और बहुत सुदृढ़ रथका निर्माण करना चाहिये । उसके बीचमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको स्थापित कर उत्तम लक्षणोंसे युक्त अतिशय सुशील हरित वर्णके घोड़ोंको रथमें नियोजित करना चाहिये । उन घोड़ोंको केशरसे रैंगकर अनेक आभूषणों, पुण्यमालाओं और चैवर आदिसे अलंकृत करना चाहिये । रथके लिये अर्थी प्रदान करना चाहिये । इस प्रकार रथको तैयार कर सभी देवताओंकी पूजा कर ब्राह्मण-भोजन करना चाहिये । दक्षिणा देकर दीन, अंधे, उपेक्षितों तथा अनाथोंको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये । उत्तम, मध्यम अथवा

अध्यम किसी भी व्यक्तिको विमुख नहीं होने देना चाहिये । रथयात्रा-स्वरूप इस सूर्यमहायागमें भूसे पीड़ित, विना भोजन किये यदि कोई व्यक्ति भग्न आशावाला होकर लैट जाता है तो इस दुष्कृत्यसे उसके स्वर्गस्थ पितरोंका अधःपतन हो जाता है । अतः सूर्य भगवान्के इस यज्ञमें भोजन और दक्षिणासे सबको संतुष्ट करना चाहिये, क्योंकि विना दक्षिणाके यज्ञ प्रशस्त नहीं होता तथा निप्रलिखित घन्त्रोंसे देवताओंको उनका प्रिय पदार्थ समर्पित करना चाहिये—

बलि गृहन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तुथा ॥
मस्तोऽथाश्चिनौ रुद्राः सुपर्णा पश्चगा ग्रहाः ।
असुरा यातुधानाश्च रथस्था यास्तु देवताः ॥
दिव्यपाला लोकपालाश्च ये च विविविनायकाः ।
जगतः स्वस्ति कुर्वन्तु ये च दिव्या महर्यव्यः ॥
मा विघ्नं मा च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तु तुमाश्च देवा भूतगणास्तथा ॥

(ब्राह्मण्ड ५५। ६८—७१)

इन मन्त्रोंसे बलि देकर 'बामदेव्य', 'पवित्रं', 'मानस्तोकं' तथा 'रथन्तरं' इन प्रथाओंका पाठ करे । अनन्तर पुण्याहवाचन और अनेक प्रकारके मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि कर सुन्दर एवं समतल मार्गावर रथको चलाये, जिससे कहींपर धक्का न लगे । घोड़ोंके अभावमें अच्छे बैलोंको रथमें लगाना चाहिये या पुरुषगण ही रथको लगायें । तीस या सोलह ब्राह्मण जो शुद्ध आचरणवाले हों तथा ब्रती हों, वे प्रतिमाको मन्दिरसे उठाकर बड़ी सावधानीसे रथमें स्थापित करें । सूर्य-प्रतिमाके दोनों ओर सूर्यदिव्यकी राजी (संजा) एवं निष्ठुभा (छाया) नामक दोनों पलियोंको स्थापित करे । निष्ठुभाके दाहिनी ओर तथा राजीको बायीं ओर स्थापित करना चाहिये । सदाचारी वेदपाठी दो ब्राह्मण प्रतिमाओंके पीछेकी ओर बैठे और उन्हें सैनामालकर स्थिर रखें । सारथी भी कुशल रहना चाहिये । सुवर्णदण्डसे अलंकृत छत्र रथके ऊपर लगाये, अतिशय सुन्दर रत्नोंसे जटित सुवर्णदण्डसे युक्त ध्वजा रथपर चढ़ाये, जिसमें अनेक रंगोंकी सात पताकाएँ लगी हों । रथके आगेके भागमें सारथिके रूपमें ब्राह्मणको बैठना चाहिये ।

श्रद्धारहित व्यक्तिको रथके ऊपर नहीं चढ़ना चाहिये, बतोंकि जो श्रद्धारहित व्यक्ति रथपर आरुण होता है, उसकी संतुष्टि नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको ही रथके बहन करनेका अधिकार है। अपने स्थानसे चलकर सर्वप्रथम रथको उत्तर द्वारपर ले जाना चाहिये। वहाँ एक दिनतक रथकी पूजा करे, विविध नृत्य-गीतादि-उत्सव, वेदपाठ तथा पुराणोंकी कथा होनी चाहिये। वहाँ ब्राह्मण-भोजन भी करना चाहिये। नवमीके दिन रथ चलकर पूर्वद्वारपर ले जाय, एक दिन वहाँ रहे। तीसरे दिन दक्षिण द्वारपर रथ ले जाय तथा चौथे दिन पश्चिमद्वारपर रथ ले जाय। वहाँसे नगरके मध्यमें रथ ले जाय,

वहाँ पूजन और उत्सव करे, दीपमालिका प्रज्वलित करे, ब्राह्मणोंके दान दे और भोजन कराये। अनन्तर वहाँसे मन्दिरमें रथको लाना चाहिये। वहाँ नगरके सभी लोग मिलकर पूजन और उत्सव करें। एक दिन-एत रथमें ही प्रतिमा रहे। दूसरे दिन भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर बड़ी धूमधामसे मन्दिरमें स्थापित करे। इस प्रकार सप्तमीसे त्रयोदशीतक रथयात्रा होनी चाहिये और चतुर्दशीको प्रतिमा पूर्व स्थानमें स्थापित कर दे। इस रथयात्राके करनेसे सभी विद्व-बाधाएँ निवृत हो जाती हैं।

(अध्याय ५५)

रथयात्रामें विद्व होनेपर एवं गोचरमें दुष्ट घोड़ोंके आ जानेपर शान्तिका विधान और तिलकी महिमा

भगवान् रुद्रने पूछा—ब्रह्मन् ! आप पुनः रथयात्राका वर्णन करें।

ब्रह्माजीने कहा—रुद्र ! रथको धीरे-धीरे समर्माणपर चलाया जाय, जिससे रथको धक्का आदि न लगने पाये। मार्गकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रतीहार और दृष्टनायक उस मार्गमें जायें। पिंगल, रक्षक, द्वारक, दिष्टी तथा लेशक—ये भी रथके साथ-साथ चलें। इन्हीं सतर्कता और कुशलतासे रथको ले जाया जाय कि रथका कोई अङ्ग-भङ्ग न हो। रथका ईशादण्ड दूटनेपर ब्राह्मणोंको, अक्ष दूटनेपर क्षत्रियोंको, तुला दूटनेपर वैश्योंको, शत्र्याके दूटनेपर शूद्रोंको भय होता है। युगके भङ्गसे अनावृष्टि, पीठके भङ्गसे प्रजाको भय, रथका चक्र दूटनेसे शाशुसेनाका आगमन, घजाके गिरनेसे राज-भङ्ग तथा प्रतिमा खण्डित होनेसे राजाकी मृत्यु होती है। छत्रके दूटनेपर युवराजकी मृत्यु होती है। इनमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पात होनेपर उसकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये तथा ब्राह्मणको भोजन और दान देना चाहिये एवं विधिपूर्वक प्रह-शान्ति करनी चाहिये। रथके ईशानकोणमें देवी अथवा कुण्ड बनाकर घृत और समिधाओंसे देवता तथा घोड़ोंकी प्रसन्नताके लिये हवन करना चाहिये और इन नाम-मन्त्रोंसे आहुति देनी चाहिये—'ॐ अप्रये स्वाहा, ॐ सोमाय स्वाहा, ॐ प्रजापतये स्वाहा !'—इत्यादि। अनन्तर शान्ति एवं कल्याणके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

स्वस्यस्त्वह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राजे तथैव च ।

गोप्यः स्वस्ति प्रजाभ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ॥

शो नोऽस्तु द्विष्टे नित्यं शान्तिरस्तु चतुर्ष्टे ।

शो प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शो सदात्पनि चास्तु वै ॥

भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्तथैव च ।

स्वश्वेवास्तु तथा शान्तिः सर्वप्रास्तु तथा रक्षः ॥

त्वं देव जगतः स्वाष्टा पोष्टा चैव त्वयेव हि ।

प्रजापाल ग्रहेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ॥

(ब्राह्मण ५६ । १६—११)

अपनी जन्मशतासे दुष्ट स्थानमें स्थित ग्रहोंकी प्रसन्नता तथा शान्तिके लिये प्रह-समिधाओंसे हवन करना चाहिये। ये समिधाएँ प्रादेशमात्र लंबी होनी चाहिये। सूर्यके लिये अर्ककी, चन्द्रमाके लिये पलाशकी, मङ्गलके लिये स्तंभिकी, वृषभके लिये अपामार्गकी, चृहस्तीके लिये पीपलकी, इङ्गके लिये गूलकी, इनिके लिये शारीकी, राहुके लिये दूर्वाकी और केन्द्रुके लिये कुशाकी समिधा ही हवनके लिये प्रयोग करना चाहिये। उत्तम गौ, शङ्ख, लालू बैल, सुवर्ण, बर्ष युगल, श्वेत अस्त्र, काली गौ, लौहपात्र और छाग—ये क्रमशः नौ ग्रहोंकी दक्षिणा हैं। गुड़ और भात, शी-मिश्रित सीर, हवियात्र, शीरात्र, दही-भात, घृत, तिल और उड्ढदके बने पक्कात्र, गूदोवाला फल, विक्रवर्णका भात एवं कर्जी—ये क्रमशः नवघ्रहोंके भोजन हैं। जैसे शारीरमें कवच पहन लेनेसे बाण नहीं लगते, वैसे ही ग्रहोंकी शान्ति करनेसे किसी प्रकारका उपशात नहीं होता। अहिसक, जितेन्द्रिय, नियममें स्थित और

न्यायसे धनार्जन करनेवाले पुरुषोपर ग्रहोंका सदा अनुग्रह रहता है। यश, धन, संतानकी प्राप्तिके लिये, अनावृष्टि होनेपर, आरोग्य-प्राप्तिके लिये तथा सभी उपद्रवोंकी शान्तिके लिये ग्रहोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। संतानसे रहित, दुष्ट संतानवाली, मृतवस्सा, मात्र कल्या संतानवाली रुचि संतानदोषकी निवृत्तिके लिये, जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्यके लिये, रोगी पुरुष रोगकी शान्तिके लिये अवश्य ग्रहोंकी शान्ति करे, ऐसा मनीषियोने कहा है^१। ग्रहोंकी प्रतिमा ताप्र, सफ्टिक, रक्तचन्दन, सुकर्ण, चाँदी, लोहे और शीशे आदिकी बनवाकर अथवा इनके चित्रका निर्माण करा कर जिस ग्रहका जो वर्ण हो उसी रंगके वस्त्र एवं पुष्प उन्हें समर्पित करे। गुणुलका धूप सभीको अर्पित करना चाहिये।

'आ कृष्णोऽ' (यजु० ३३। ४३), 'इमं देवाम्' (यजु० ९। ४०) इत्यादि नवग्रहोंके अलग-अलग मन्त्रोंसे एक-एक ग्रहके नामसे समिधा, धृत, शहद और दहोंकी एक सौ आठ अथवा अद्वैतस आहुतियाँ दे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराये। उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। जो ग्रह जिसके गोचर अथवा कुण्डलीमें दुष्ट स्थानपर स्थित हो, उसे उस ग्रहकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। महादेव। मैंने इन ग्रहोंको ऐसा बर दिया है कि लोगोंद्वारा तुम सब पूजित होओगे। गजाओंका उत्थान और पतन तथा मनुष्योंका उदय और सम्पत्तियोंका नाश ग्रहोंके अधीन है, इसलिये ग्रहशान्ति अवश्य करनी चाहिये। ग्रह, गाय, गज, गुरुजन तथा ब्राह्मण पूजन करनेवाले व्यक्तिको सब प्रकारका सुख प्रदान करते हैं। इनका अपमान करनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारके दुःख मिलते हैं। यज्ञ करनेवाले,

सत्यवादी, जप, होम, उपवास आदिमें तत्पर धर्मात्मा पुरुषोंकी सभी बाधाएँ शान्त हो जाती हैं^२।

इस प्रकारसे शान्ति कर रथको पुनः चरकरा चाहिये और शेष मार्गोंमें घुमाकर अपने स्थानमें पहुँच जानेपर रथ-स्थित देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। उत्थात होनेपर ग्रहोंकी शान्तिके समान ही रथमें स्थित सभी देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये, ऐसा करनेसे सभी तरहके उत्थातोंकी सब प्रकारसे शान्ति हो जाती है।

दुष्ट ग्रहोंकी शान्तिके लिये ब्राह्मणोंको तिल प्रदान करे अथवा धोके साथ तिलोंका हवन करे और देवताओंको धूप दे। तिल देवताओंके लिये स्वाहारूप अमृत, पितरोंके लिये स्वधारूप अमृत तथा ब्राह्मणोंके लिये आश्रयस्वरूप कहे गये हैं। ये तिल कश्यपके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा देवता एवं पितरोंको अति प्रिय हैं। खान, दान, हवन, तर्पण और भोजनमें परम पवित्र माने गये हैं^३।

इस प्रकार ग्रह और देवताओंका पूजनकर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको रथसे उतारकर मण्डलमें स्थापित करे, फिर विश्व-बाधाओंकी शान्तिके लिये दीप, जल, जौ, अक्षत, कपासके बीज, नमक तथा धानकी भूसीसे आरती कर पत्रियोंसहित सूर्यनाशयणके वेदीके ऊपर स्थापित करे। वहाँ दस दिनतक उनकी विश्वपूर्वक पूजा करे। दस दिनतक होनेवाली यह पूजा दशशङ्किका पूजा कहलाती है। इस प्रकार पूजनकर फिर भगवान् सूर्यनाशयणको पूर्व स्थानपर स्थापित करना चाहिये।

(अध्याय ५६-५७)

१-यथा ब्रह्मप्रहाणां वारणे कवचं सूतम्। तथा दैवोपपातानां शान्तिर्भवति वारणम्॥

अहिंसकर्त्य दानस्य धर्मार्जितश्चनाश च। नित्ये च नियमस्वस्य सदा सानुग्रहा ग्रहः॥

प्रहा: पूज्य सदा रुद्र इक्षुरा विषुलं यशः। श्रीकृष्णः शान्तिकर्त्ता वा ग्रहयङ्गं समाचरेत्॥

वृक्षशयुः पुष्टिकामो वा तर्याचित्तवन् पुनः। यानपत्न्य भवेत्तरी दुष्कराभाष्य या भवेत्॥

वाल्य यस्याः प्रसिद्धियते या च कन्त्याप्नता भवेत्। गज्याभ्रष्टो नुपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत्॥

ग्रहयङ्गः स्मृतस्तोषां मानवानां मनोपिणिः।

(ब्राह्मणर्थ ५६। ३०—३५)

२-ग्रहा गायो नरेन्द्राश्च गुरुयो ब्राह्मणालया। पूजिताः पूर्वयन्त्येते विर्द्धन्त्यपमाविताः॥

यज्ञनां सत्पत्त्वाक्षयानां तथा नित्योपलक्षितानाम्। जपहेत्पराणां च सर्वे दुष्टं प्रशास्यति॥

(ब्राह्मणर्थ ५६। ४३, ५१)

३-देवतानाममृते होते पितॄणां हि स्वधामृतम्। शरणे ब्राह्मणानां च सदा होतान् विदुर्भुषाः॥

कदम्बपरस्ताङ्गजा होते वर्षित्राश्च तथा हर। खाने दाने तथा होमे तर्पणे होतने पराः॥

(ब्राह्मणर्थ ५३। २५-२६)

सूर्यनारायणकी रथयात्राका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे महादेव ! इस प्रकार अमित ओजस्मी भगवान् भास्करकी रथयात्रा करनेवाला और दूसरेसे करनेवाला व्यक्ति परार्थ वर्षों (ब्रह्माजीकी आधी आयु) तक सूर्यलोकमें निवास करता है । उस व्यक्तिके कुलमें न कोई दरिद्र होता है न कोई रोगी । सूर्य भगवान्के अध्यङ्कके लिये ये समर्पण करनेवाले तथा अनेक प्रकारका तिळक करनेवाले व्यक्तिको सूर्यलोक प्राप्त होता है । गङ्गा आदि तीर्थोंसे जल लाकर जो सूर्यनारायणको रूपान करता है, वह बहुगलोकमें निवास करता है । लाल रंगका भात और गुड़का नैवेद्य समर्पित करनेवाला व्यक्ति प्रजापतिलोकको प्राप्त करता है । भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको रूपान कराकर पूजन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकमें निवास करता है । जो व्यक्ति सूर्यदेवको रथपर चढ़ाता है, रथके मार्गिको पवित्र करता और पुण्य, तोरण, पताका आदिसे अलंकृत करता है, वह वायुलोकमें निवास करता है । जो व्यक्ति नृत्य-गीत आदिके द्वारा चृहद् उत्सव मनाता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है । जब सूर्यदेव रथपर विराजमान होते हैं, उस दिन जागरण करनेवाला पुण्यवान् व्यक्ति निरन्तर आनन्द प्राप्त करता है । जो व्यक्ति भगवान् सूर्यकी सेवा आदिके लिये व्यक्तिको नियोजित करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्तकर सूर्यलोकमें निवास करता है । रथरूद्र भगवान् सूर्यका दर्शन करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है । जब रथकी यात्रा उत्तर अथवा दक्षिण दिशाकी ओर होती है, उस समय दर्शन करनेवाला व्यक्ति धन्य है । जिस दिन रथयात्रा हो, उसके सालभर बाद उसी दिन पुनः रथयात्रा करनी चाहिये । यदि वर्षके बाद यात्रा न करा सके तो बारहवें वर्ष अतिशय उत्साहके साथ उत्सव सम्पन्न कर यात्रा सम्पन्न करनी

चाहिये । बोचमें यात्रा नहीं करनी चाहिये ।

इसी प्रकार इन्द्रधनुषके उत्सवमें भी यदि विघ्न हो जाय तो बारहवें वर्षमें ही उसे सम्पन्न करना चाहिये । जो व्यक्ति रथयात्राकी व्यवस्था करता है, वह इन्द्रादि लोकपालके सायुज्यके प्राप्त करता है । यात्रामें विघ्न करनेवाले व्यक्ति मंदेह जातिके राक्षस होते हैं । सूर्यनारायणकी पूजा किये विना जो अन्य देवताओंकी पूजा करता है, वह पूजा निष्कर्त है । रथयात्राके समय जो सूर्यनारायणका दर्शन करता है, वह निष्पाप हो जाता है । घटी, सप्तमी, पूर्णिमा, अमावास्या और रविवारके दिन दर्शन करनेसे बहुत पुण्य होता है । आषाढ़, कार्तिक और माघकी पूर्णिमाको दर्शन करनेसे अनन्त पुण्य होता है । इन तीन मासोंमें भी रथयात्रा करनी चाहिये । इनमें भी कार्तिकी (कार्तिक-पूर्णिमा) को विशेष फलदायक होनेसे महाकार्तिकी कहा गया है । इन समयोंमें उपवासकर जो भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह सद्गतिके प्राप्त करता है । संसारपर अनुग्रह करनेके लिये प्रतिमामें स्थित होकर सूर्यदेव स्वयं पूजन प्रहण करते हैं । जो व्यक्ति मुण्डन कराकर रूपान, जप, होम, दान आदि करता है, वह दीक्षित होता है । सूर्य-भक्तको अवश्य ही मुण्डन कराना चाहिये । जो व्यक्ति इस प्रकार दीक्षित होकर सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है । महादेवजी ! इस रथयात्राके विधानका मैंने वर्णन किया । इसे जो पढ़ता है, सुनता है, वह सभी प्रकारके रोगोंसे मुक्त हो जाता है और विशिष्टपूर्वक रथयात्राका सम्पादन करनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है ।

(अध्याय ५८)

रथसप्तमी तथा भगवान् सूर्यकी महिमाका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे रुद्र ! माघ मासके शुक्र पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास करके गृह्यादि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर यत्रिमें उनके सम्मुख शयन करे । सप्तमीमें प्रातःकाल विशिष्टपूर्वक पूजा करे और उदारतापूर्वक आहारणोंको भोजन कराये । इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीको

ब्रतकर रथयात्रा करे । कृष्णपक्षमें तृतीया तिथिको एकभुक्त, चतुर्थीको नक्षत्रवत्, पञ्चमीको अयाचितवत्^१, षष्ठीको पूर्णिमा उपवास तथा सप्तमीको पारण करे । रथस्य भगवान् सूर्यकी भलीभांति पूजाकर सुर्वण तथा रत्नादिसे अलंकृत तथा तोरण, पताकादिसे सुसज्जित रथमें सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापित कर

१- विना विस्तीर्णमें मार्ग जो भोजन मिल जाय, उसे अयाचित-वत् कहते हैं ।

ब्रह्मणको पूजा करके उसका दान कर दे । स्वर्णके अभावमें लांडी, तांड़, आदि आदिका रथ बनाकर आचार्यको दान करे । महादेव ! यह माघ-सप्तमी बहुत उत्तम तिथि है, पापोंका हरण करनेवाली इस रथसप्तमीको भगवान् सूर्यके निमित्त किया गया स्वान, दान, होम, पूजा आदि सलकर्म हजार गुना फलदायक हो जाता है । जो कोई भी इस व्रतको करता है, वह अपने अभीष्ट मनोरथको प्राप्त करता है । इस सप्तमीके माहात्म्यका भक्तिपूर्वक श्रवण करनेवाल्य व्यक्ति ब्रह्माहत्याके पापसे मुक्ति पा जाता है ।

सुपन्तु मुनिने कहा—गजन ! इस प्रकार रथयात्राका विधान बताकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और उपर्युक्त भी अपने धाम चले गये । अब आप और व्या मुनना चाहते हैं, यह बतायें ।

राजा शतानीकने कहा—हे महाराज ! सूर्यदेवके प्रभावका मैं कहाँतक वर्णन करूँ । उन्होंके अनुग्रहसे युधिष्ठिर



आदि मेरे पितामहोंके सभी प्रकारका दिव्य भोजन प्रदान

करनेवाला अक्षय पात्र मिला था, जिससे वनमें भी वे ब्राह्मणोंको संतुष्ट करते थे । जिन भगवान् सूर्यकी देवता, ऋषि, सिद्ध तथा मनुष्य आदि निरन्तर आराधना करते रहते हैं उन भगवान् भास्करके माहात्म्यको मैंने अनेक बार सुना है, पर उनका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती । जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है तथा जिनके उटद्वय होनेसे ही सारा संसार चेष्टावान् होता है, जिनके हाथोंसे लोकपूजित ब्रह्मा और विष्णु तथा ललाटसे शंकर उत्पन्न हुए हैं, उनके प्रभावका वर्णन कौन कर सकता है ? अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि जिस मन्त्र, स्तोत्र, दान, खान, जप, पूजन, होम, व्रत तथा उपवासादि कर्मकि करनेसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर सभी कष्टोंको निवृत्त करते हैं और संसार-सागरसे मुक्त करते हैं, अब उन्हीं उत्तम मन्त्र, स्तोत्र, रहस्य, विद्या, पाठ, व्रत आदिको बतायें, जिनसे भगवान् सूर्यका कीर्तन हो और जिहा धन्य हो जाय । क्योंकि वही जिहा धन्य है जो भगवान् सूर्यका स्वर्वन करती है । सूर्यकी आराधनाके बिना यह शरीर व्यर्थ है । एक बार भी सूर्यनारायणको प्रणाम करनेसे प्राणीका भवसागरसे उद्धार हो जाता है । रलोका आश्रय मेरुपर्वत, आक्षयोंका आश्रय आकाश, तीर्थोंका आश्रय गङ्गा और सभी देवताओंका आश्रय भगवान् सूर्य है । मुने ! इस प्रकार अनन्त गुणोंवाले भगवान् सूर्यके मैंने बहुत बार सुना है । देवगण भी भगवान् सूर्यकी ही आराधना करते हैं, यह भी मैंने सुना है । अब मेरा यही दृढ़ संकल्प है कि सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा स्मरणमात्रसे समस्त पाप-तापोंको दूर करनेवाले भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक डपासना कर मैं भी संसारसे मुक्त हो जाऊँ ।

(अध्याय ५१-६०)

भगवान् सूर्यद्वारा योगका वर्णन एवं ब्रह्माजीद्वारा दिष्टिको

दिव्या गया क्रियायोगका उपदेश

सुपन्तु मुनिने कहा—गजन ! ऋषियोंको जिस प्रकार ब्रह्माजीने सूर्यनारायणकी आराधनाके विधानका उपदेश दिया था, उसे मैं सुनाता हूँ ।

किसी समय ऋषियोंने ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि महाराज ! सभी प्रकारकी चित्तवृत्तिके निरोधरूपी योगको

आपने कैलत्यपदको देनेवाला कहा है, किंतु यह योग अनेक जन्मोंकी कठिन साधनाके द्वारा प्राप्त हो सकता है । क्योंकि इन्द्रियोंके बलकृत आकृष्ट करनेवाले विषय अत्यन्त दुर्जय हैं, मन किसी प्रकारसे स्थिर नहीं होता, गग-द्वेष आदि दोष नहीं छूटते और पुरुष अल्पायु होते हैं, इसलिये योगसिद्धिका प्राप-

होना अतिशय कठिन है। अतः आप ऐसे किसी साधनका उपदेश करें जिससे बिना परिश्रमके ही निस्तार हो सके।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीश्वरो ! यज्ञ, पूजन, नमस्कार, जप, ब्रतोपचास और ब्राह्मण-भोजन आदिसे सूर्यनारायणकी आराधना करना ही इसका मुख्य उपाय है। यह क्रियायोग है। मन, बुद्धि, कर्म, दृष्टि आदिसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे। ये ही प्रब्रह्म, अशर, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता, अव्यक्त, अचिन्त्य और मोक्षको देनेवाले हैं। अतः आप उनकी आराधना कर अपने मनोवाचित फलको प्राप्त करें और भवसागरसे मुक्त हो जायें। ब्रह्माजीसे यह सुनकर मुनिगण सूर्यनारायणकी उपासना-रूप क्रियायोगमें तत्पर हो गये। हे राजन् ! विषयोंमें डूबे हुए संसारके दुःखी जीवोंको सुख प्रदान करनेवाले सूर्यनारायणके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, इसलिये उठते-बैठते, चलते-सोते, भोजन करते हुए सदा सूर्यनारायणका ही स्मरण करो, भक्तिपूर्वक उनकी आराधनामें प्रवृत्त होओ, जिससे जन्म-मरण, आधि-व्याधिसे युक्त इस संसारसमूद्रसे तुम पार हो जाओगे। जो पुरुष जगत्कर्ता, सदा यरदान देनेवाले, दयालु और ग्रहोंके स्वामी श्रीसूर्यनारायणकी शरणमें जाता है, वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करता है।

सुपन्न मुनिने पुनः कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें दिष्टीको ब्रह्महत्या लग गयी थी। उस ब्रह्महत्याके पापको दूर करनेके लिये उन्होंने बहुत दिनोंतक सूर्यनारायणकी आराधना और स्तुति की। उससे प्रसन्न हो भगवान् सूर्य उनके पास आये। भगवान् सूर्यने कहा—‘दिष्टन् ! तुम्हारी भक्तिपूर्वक की गयी सुनितिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अपना अधीष्ठ बर माँगो।’

दिष्टीने कहा—महाराज ! आपने पधारकर मुझे दर्शन दिया, यह मेरे सौभाग्यकी बात है। यही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ वर है। पुण्यहीनोंके लिये आपका दर्शन सर्वदा दुर्लभ है। आप सबके हृदयमें स्थित हैं, अतः आप सबका अभिप्राय जानते हैं। जिस प्रकार मुझे ब्रह्महत्या लगी है, उसे तो आप जानते ही हैं। भगवान् ! आप मुझपर ऐसा अनुग्रह करें कि मैं इस निनिट ब्रह्महत्यासे तथा अन्य पापोंसे शीघ्र मुक्त हो जाऊँ और मैं सफल-मनोरथ हो जाऊँ। आप संसारसे उद्धारक उपाय

बतलायें, जिसके आचरणसे संसारके प्राणी सुखी हों। दिष्टीके इस वचनको सुनकर योगवेता भगवान् सूर्यने उन्हें निर्वाज-योगका उपदेश दिया, जो दुःखके निवारणके लिये औपचार्य है।

दिष्टीने प्रार्थना करते हुए कहा—महाराज ! यह निष्कल-योग तो बहुत कठिन है, क्योंकि इन्द्रियोंको जीलना, मनको स्थिर करना, अहं-शरीरादिका अभिमान और यमताका त्याग करना, राग-द्वेषसे बचना—ये सब अतिशय कष्टसाध्य हैं। ये बातें कई जन्मोंके अभ्यास करनेसे प्राप्त होती हैं। अतः आप ऐसा साधन बतलायें, जिससे अनायास बिना विशेष परिश्रमके ही फलकी प्राप्ति हो जाय।

भगवान् सूर्यने कहा—गणनाथ ! यदि तुम्हें मूर्तिकी इच्छा है तो समस्त लेशोंको नष्ट करनेवाले क्रियायोगको सुनो। अपने मनको मुझमें लगाओ, भक्तिसे मेरा भजन करो, मेरा यजन करो, मेरे परायण हो जाओ; आत्माको भरेमें लगा दो, मुझे नमस्कार करो, मेरी भक्ति करो, सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें मुझे परिव्याप्त समझो^१, ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण दोषोंका विनाश हो जायगा और तुम मुझे प्राप्त कर लोगे। भलीभीति मुझमें आसक्त हो जानेपर राग-लोभादि दोषोंके नाश हो जानेसे कृतकृत्यता हो जाती है। अपने मनको स्थिर करनेके लिये सोना, चाँदी, ताप्र, पाषाण, काष्ठ आदिसे मेरी प्रतिमाका निर्माण कराकर या चित्र ही लिखकर विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक पूजन करो। सर्वभावसे प्रतिमाका आश्रय ग्रहण करो। चलते-फिलते, भोजन करते, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उसीका ध्यान करो, उसे पवित्र तीर्थोंके जलसे ऊन कराओ। गम्भ, पुष्प, वस्त्र, आभूषण, विविध नैवेद्य और जो पदार्थ स्वर्यको प्रिय हों उन्हें अर्पण करो। इन विविध उपचारोंसे मेरी प्रतिमाको संतुष्ट करो। कभी गानेकी इच्छा हो तो मेरी मूर्तिकी आगे मेरा गुणानुवाद गाओ, सुननेकी इच्छा हो तो हमारी कथा सुनो। इस प्रकार मुझमें अपने मनको अर्पण करनेसे तुम्हें परमपद्मी प्राप्ति हो जायगी। सभी कर्म मुझमें अर्पण करो, डरनेकी कोई बात नहीं। मुझमें मन लगाओ, जो कुछ करो मेरे लिये करो, ऐसा करनेसे तुम ब्रह्महत्या आदि सभी दोष-पापोंसे

१- मनमा भव मद्दतो मधाती यो नमस्कुल। मामेविष्मि

मुस्तैवमात्याने मत्तायजनः ॥

(आत्मापर्व ६२। ११; गीता ५। ३५)

गहित होकर मुक्त हो जाओगे, इसलिये तुम इस क्रियायोगका आश्रय ग्रहण करो ।

दिष्टी बोले—महाराज ! इस अमृतरूप क्रियायोगको आप विस्तारसे कहें, क्योंकि आपके बिना कोई भी इसे बतलानेमें समर्थ नहीं है । यह अत्यन्त गोपनीय और पवित्र है ।

भगवान् सूर्यने कहा—तुम चिन्ता मत करो । इस सम्पूर्ण क्रियायोगका ब्रह्माजी तुमको विस्तारपूर्वक उपदेश करेंगे और मेरी कृपासे तुम इसे ग्रहण करेंगे । इतना कहकर तीनों लोकोंके दीपस्वरूप भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये और दिष्टी भी ब्रह्माजीके धामको चले गये । ब्रह्मलोक पहुँचकर दिष्टी सुरज्येष्ठ चतुर्मुख ब्रह्माजीको प्रणाम कर कहने लगे ।

दिष्टीने प्रार्थनापूर्वक कहा—ब्रह्म ! मुझे भगवान् सूर्यदेवने आपके प्राप्ति भेजा है । आप कृपाकर मुझे क्रियायोगका उपदेश करें, जिसके सहारे मैं शीघ्र ही भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकूँ ।

ब्रह्माजी बोले—गणाधिप ! भगवान् सूर्यका दर्शन करते ही तुम्हारी ब्रह्महत्या तो नष्ट हो गयी । तुम भगवान् सूर्यके कृपापात्र हो । यदि सूर्यनारायणकी आराधना करनेवाली इच्छा है तो प्रथम दीक्षा ग्रहण करो, क्योंकि दीक्षाके बिना उपासना नहीं होती । अनेक जन्मोंके पुण्यसे भगवान् सूर्यमें भक्ति होती है । जो पुरुष भगवान् सूर्यमें द्वेष रखता है, ब्राह्मण तथा वेदकी निन्दा करता है, उसे अवश्य ही अधम पुरुषसे उत्पत्ति समझो । मायाके प्रभावसे ही अधम पुरुषोंकी कुकर्म्मे प्रवृत्ति होती है और उनके स्वल्प शेष रहनेपर सूर्यकी आराधनाके लिये दीक्षाकी इच्छा होती है । इस भवसागरमें धूवनेवाले पुरुषोंका हाथ पकड़कर उद्धार करनेवाले एकमात्र भगवान् सूर्य ही है । इसलिये तुम दीक्षा ग्रहण कर भगवान् सूर्यमें तत्त्व होकर उनकी उपासना करो, इससे शीघ्र ही भगवान् सूर्य तुमपर अनुग्रह करेंगे ।

दिष्टीने पूछा—महाराज ! दीक्षा-क्रियाकी इच्छावाले उत्पत्तिको मन, वचन और कर्मसे हिंसा नहीं करनी चाहिये । कृपया आप इसे बतायें ।

ब्रह्माजीने कहा—दिष्टन् ! दीक्षा-ग्रहणकी इच्छावाले सूर्यभगवान्में भक्ति करनी चाहिये, दीक्षित ब्राह्मणोंको

सदा नमस्कार करना चाहिये, किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये । सभी प्राणियोंको सूर्यके रूपमें समझना चाहिये । देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चीटी, बृक्ष, पाण्डाण आदि जगत्के सभी पदार्थों और आत्माको सूर्यसे भिन्न न समझकर मन, वचन और कर्मसे जीवोंमें पापबुद्धि नहीं करनी चाहिये—ऐसा ही पुरुष दीक्षाका अधिकारी होता है । जो गति सूर्यनारायणकी आराधनासे प्राप्त होती है, वह न तो तपसे मिलती है और न बहुत दक्षिणांतरे यज्ञोंके करनेसे । सभी प्रकाशसे जो भगवान् सूर्यका भक्त है, वह धन्य है । उस सूर्यभक्तके अनेक कुलोंका उद्धार हो जाता है । जो अपने हृदयप्रदेशमें भगवान् सूर्यकी अर्चा करता है, वह निष्पाप होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है । सूर्यका मन्दिर बनानेवाला अपनी सात पीढ़ियोंको सूर्यलोकमें निवास कराता है और जिसने वर्षोंतक मन्दिरमें पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें आनन्दका भोग करता है । निष्पापमायासे सूर्यकी उपासना करनेवाला व्यक्ति मुक्तिको प्राप्त करता है । जो उत्तम लेप, सुन्दर पुण्य, अतिशय सुगमित्र धूप प्रतिदिन सूर्यनारायणको अर्पित करता है, वह यज्ञोंके फलको प्राप्त करता है । यज्ञमें बहुत सामग्रियोंकी अपेक्षा रहती है, इसलिये मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते, परंतु भक्तिपूर्वक दूर्वासे भी सूर्यनारायणकी पूजा करनेसे यज्ञ करनेसे भी अधिक फलकी प्राप्ति हो जाती है—

वस्त्रपक्षरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः ॥

न दिष्टिश्चवाच्यन्ते मनुष्यैरत्यसंचयैः ।

भवस्या तु पुरुषैः पूजा कृता दूर्वासुरैरपि ।

भानोर्दद्वाति हि फले सर्वयज्ञैः सुदुर्लभ्य ॥

(ब्राह्मणव ६३ : ३२-३३)

दिष्टन् ! गन्ध, पुण्य, धूप, वस्त्र, आभूषण तथा विविध प्रकाशके नैवेद्य जो भी प्राप्त हों और तुम्हें जो प्रिय हों, उन्हें भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको निवेदित करो । तीर्थोंके जल, दही, दूध, घृत, शर्करा और शहदसे उन्हें स्नान कराओ । गीत-वाद्य, नृत्य, सुन्ति, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिसे भगवान्को प्रसन्न करो, किंतु सभी पूजाएं भक्तिपूर्वक होनी चाहिये । मैंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके ही सुष्ठि की है । विष्णु उनके अनुग्रहसे ही जगत्का पालन करते हैं और रुद्रेने उनकी प्रसन्नतासे ही

संहारशक्ति प्राप्त की है। ग्रहणगण भी उनके ही कृपाप्रसादको प्राप्तकर मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये तुम भी पूजन, व्रत, उपवास आदिसे वर्षपर्यन्त भगवान् सूर्यकी

आराधना करो, जिससे सभी लेश दूर हो जायेंगे और तुम शान्ति प्राप्त करेंगे।

(अध्याय ६१—६३)

—श्लोक—

भगवान् सूर्यके ब्रतोंके अनुष्ठान तथा उनके मन्दिरोंमें अर्चन-पूजनकी विधि तथा फल-सप्तमी-ब्रतका फल

दिष्ट्हीने ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्मन्! आपने आदिल्प्रक्रियायोगको मुझे बतलाया, अब आप यह बतलानेकी कृपा करें कि भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे प्रसन्न होते हैं? उपवास करनेवालोंके लिये क्या-क्या त्याज्य है? आराधनामें क्या-क्या करना चाहिये, इसका आप विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—दिष्ट्हिन्! भगवान् सूर्य पुष्प आदिद्वारा पूजन करनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं और उत्तम फल देते हैं। पापोंसे रहित होकर सदगुणोंका आश्रय ग्रहण कर, सभी भोगोक्ता परित्याग करना ही उपवास कहलाता है^१। अतः ऐसे उपवाससे क्यों नहीं मनोवाञ्छित फल प्राप्त होगा? एक रात, दो रात, तीन रात या नक्त-ब्रत करनेवाला निष्काम होकर उपवासकर मन, वचन और कर्मसे सूर्यनारायणकी आराधनामें तत्पर रहे तो ब्रह्मलोकको प्राप्त कर सकता है। यदि साधक किसी कामनासे दत्तचित होकर भगवान् सूर्यकी उपासना करता है तो प्रसन्न होकर भगवान् उसकी कामना पूर्ण कर देते हैं। अन्यकारका नाश करनेवाले जगदात्मा सूर्यनारायणकी तन्मयतापूर्वक आराधनाके बिना किसी प्रकार भी सहृदि नहीं मिलती। अतः पुष्प, घृष्ण, चन्दन, नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा और उनकी प्रसन्नताके लिये उपवास करना चाहिये। उत्तम पुष्पके न मिलनेपर वृक्षोंके क्रेमल पते अथवा दूरवृक्षसे पूजन करना चाहिये। पुष्प, पत्र, फल, जल जो भी यथाशक्ति मिले, उसे ही भक्तिके साथ भगवान् सूर्यको अर्पण करना चाहिये। इससे भगवान् सूर्यको अतुल तुष्टि प्राप्त होती है। सूर्यनारायणके मन्दिरमें सदा झाड़ देनेपर घूलिमें जितनों कणिकाएँ झोटी हैं, उतने समयतक सूर्यके समान होकर वह स्वर्णमें रहता है। मन्दिरके छोटे भागका भी मार्जन करनेपर उस

दिनके पापसे व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जो गोमयसे, मृतिका अथवा अन्य शातुओंसे चूर्णोंसे मन्दिरमें उपलेपन करता है, वह विमानपर चढ़कर सूर्यलोकमें जाता है। मन्दिरमें जलसे छिड़काव करनेवाला वरुणलोकमें निवास करता है। जो लेपन किये हुए मन्दिरमें पुष्प विखेरता है, वह कभी दुर्गति नहीं प्राप्त करता। मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला व्यक्ति सभी ऋतुओंमें सुखप्रद सवारी प्राप्त करता है। ध्वजा चढ़ानेवालेके ज्ञात और अज्ञात सभी पाप पताकाके बायुसे हिलनेपर नष्ट हो जाते हैं। गीत, वाद्य और नृत्यके द्वारा मन्दिरमें उत्सव करनेवाला उत्तम विमानमें बैठता है, गन्धर्व और अप्सराएँ उसके आगे गान और नृत्य करती हैं। जो मन्दिरमें पुराणका पाठ करता है, उसे श्रेष्ठ बुद्धिकी प्राप्ति होती है और वह जातिसंघ (सभी जन्मोंकी बात जाननेवाल) हो जाता है। दिष्ट्हिन्! सूर्यकी आराधनासे जो चाहो वह प्राप्त कर सकते हो। इनकी आराधनासे कई लोग गन्धर्व, कतिपय विद्याधर, कतिपय देवता बन गये हैं। इन्हें इनकी आराधनासे ही इन्द्रपद प्राप्त किया है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ एवं स्त्रियोंके ये ही उपास्य हैं। जितेन्द्रिय संन्यासी भी इनके अनुग्रहसे ही मुक्तिको प्राप्त करते हैं, क्योंकि ये ही मोक्षके द्वार हैं। इस तरह सभी वर्ण और आश्रमोंके आश्रय एवं परमगति भगवान् सूर्य ही हैं।

दिष्ट्हिन्! अब मैं काश्य उपवास और फल-सप्तमीका वर्णन करता हूँ। फल-सप्तमीका ब्रत करनेसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भाइपद मासकी शुक्ल चतुर्थीको अयाचित-ब्रत कर पञ्चमीको एक बार भोजन करे, षष्ठीको जितक्रोश, जितेन्द्रिय होकर पूर्ण उपवास करे और

१- किंश्योगवत् वर्णन सभी पुरुषोंमें मिलता है, विशेषणसे पशुपतिका किंश्योगसार-खण्ड द्रष्टव्य है।

२- उपवासस्य पापेभ्यो चक्षु वक्षो गुणः सह । उपवासः स विशेषः सर्वभोगविवरितः ॥ (ब्राह्मपर्व ६४। ४)

भक्तिके साथ सभी सामग्रियोंसे सूर्यनाशयणकी पूजा करे। यहाँमें भगवान् सूर्यके सम्मुख पृथ्वीपर शयन करे। सप्तमीको सूर्य भगवान्का ध्यान करते हुए प्रातः उठकर खान-पूजन करे और खाजूर, नारियल, आम, मातुलंग आदि नैवेद्योंका भोग लगाये और ब्राह्मणको दे तथा स्वयं भी प्रसादके रूपमें उन्हें ग्रहण करे। यदि ये फल न मिलें तो शालि (चावल) का या गेहूँका आटा लेकर उसमें गुड़ मिलाये और घीमें एकाकर उनका ही भगवान् सूर्यको भोग लगाये, अनन्तर हवन कर ब्राह्मण-भोजन कराये। इस प्रकार एक वर्षतक सप्तमीका व्रत कर अन्तमें उत्थापन करे। गोमूत्र, गोमय, गोदुध, दही, घी, कुशका जल, श्वेत मृत्तिका, तिल और सरसोंका उबटन, दूर्वा, गौके सोंगका जल, चमेलीके फूलके रस—इनसे खान करे और इनका ही प्राशन करे। ये सभी पापोंका हरण करनेवाले हैं। सभी प्रकारके फल, संस्यसम्पन्न भूमि, धान्यमुक्त भवन, बछड़के साथ गौ, विदुमके साथ ताप्रपात्र और श्वेत वस्त्र ब्राह्मणोंको दे। जो शक्ति-सम्पन्न हो वह चाँदी अथवा आटोके

पिष्टक, फल तथा दो वस्त्र दे। सोना, रत्न और वस्त्र आचार्यको दे। ब्राह्मणको भोजन कराये। इस प्रकार व्रतको सम्पन्न करे। यह फल-सप्तमीका विधान कहा गया है।

यह अतिशय पुण्यमयी सप्तमी सभी पापोंका नाश करनेवाली है। इस दिन उपवासकर मनुष्य सूर्यीलोकको प्राप्त करता है। वहाँ देव, गन्धर्व और अपासाओंके साथ पूजित होता है। इस व्रतको जो करता है, वह पाप, दण्डिता और सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतके करनेसे ब्राह्मण मुक्ति, शत्रिय इन्द्रलोक, वैश्य कुबेर-लोकमें निवास करता है। शूद्र इस व्रतके करनेसे द्विजत्व प्राप्त कर लेता है। पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है, दुर्भग सौभाग्यशालिनी होती है और विधवा नारी अगले जन्ममें वैधव्य प्राप्त नहीं करती। इस फल-सप्तमीको समस्त वाञ्छित पदार्थोंको प्रदान करनेवाली चिन्तामणिके समान समझना चाहिये। इस फल-सप्तमीकी कथाके अवलोकन अथवा व्रत करनेवालोंकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय ६४)

रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन त्याज्य पदार्थका निवेद तथा व्रतका विधान एवं फल

ब्रह्माजीने कहा—दिष्टिन्! अब मैं रहस्य-सप्तमी-व्रतका विधान कह रहा हूँ। इस व्रतके करनेसे अपनेसे आगे आनेवाली सात पीढ़ी तथा पीछेकी भी सात पीढ़ीके कुलोंका उद्धार हो जाता है। जो इस व्रतका नियमसे पालन करता है, उसे धन, पुत्र, आरोग्य, विद्या, विनय, धर्म तथा अपाप्य वस्तुकी भी प्राप्ति हो जाती है। इस व्रतके नियम इस प्रकार है—सबमें मैत्रीभाव रखते हुए भगवान् सूर्यका चिन्तन करता रहे। मनुष्यको व्रतके दिन न तेलका स्पर्श करना चाहिये, न नील वस्त्र धारण करना चाहिये तथा न आँखेमें झान करना चाहिये। किसीसे कलह तो करे ही नहीं। इस दिन नील वस्त्र धारण करके जो सत्कर्म करता है, वह निष्कल होता है। जो ब्राह्मण इस व्रतके दिन एक बार नील वस्त्र धारण कर ले तो उसे उचित है कि स्वयंकी शुद्धिके लिये उपवास करके पञ्चग्र्य-प्राशन करे, तभी वह शुद्ध होता है। यदि अज्ञानवश नील वृक्षकी लकड़ीसे कोई ब्राह्मण दन्तधावन कर लेता है तो वह दो चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्ध होता है। इस दिन

रोमकूपमें नीले राके प्रवेश करनेमात्रसे ही तीन कृच्छ्र-चान्द्रायण-व्रत करनेसे शुद्ध होती है। जो व्यक्ति प्रमादवश नील वृक्षके उद्धारमें चला जाता है वह पञ्चग्र्य-प्राशनसे ही शुद्ध होता है। जर्ही नील एक बार बोयी जाती है, वह भूमि बारह वर्षतक अपवित्र रहती है।

रहस्य-सप्तमी-व्रतके दिन जो तेलका स्पर्श करता है, उसकी प्रिय भार्या नष्ट हो जाती है, अतः तैलका स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस तिथिको किसीके साथ द्वेष और कूरता भी करना उचित नहीं है। इस दिन गीत गाना, नृत्य करना, वीणादि वाद्ययन्त्र बजाना, शब देखना, व्यर्थमें हैसना, खीके साथ शब्दन करना, चूत-क्रीड़ा, रोना, दिनमें सोना, असत्य बोलना, दूसरेके अनिष्टका चिन्तन करना, किसी भी जीवको कष्ट देना, अत्यधिक भोजन करना, गली-कूचोंमें घूमना, दम्प, शोक, शठता तथा कूरता—इन सबका प्रयत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये।

इस व्रतका आरम्भ चैत्र माससे करना चाहिये। व्रत

करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह चैत्रादि मासोंमें थाता, अर्धमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पर्जन्य, पूर्णा, भग, त्वष्टा, विष्णु तथा भास्कर—इन द्वादश सूर्योक्ता क्रममध्ये पूजन करे। प्रत्येक सप्तमीके दिन भोजक ब्राह्मणको घीके साथ भोजन कराकर उसे शृताशहित पात्र, एक माशा सुवर्ण और दक्षिणा देनी चाहिये। यदि भोजक न मिल सके तो श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही भोजककी भाँति भोजन कराकर वही वसुण्ड दानमें देनी चाहिये।

हे दिष्ठिङ्ग! इस प्रकार मैंने सप्तमीके इस माहात्म्यका वर्णन किया, जिसके श्रवणमात्रसे भी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

सुपन्तु बोले—यज्ञ! इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्घन हो गये और दिष्ठी भी उनके द्वारा बताये गये इस ब्रतके अनुसार सूर्यनाशयणका पूजन करके अपने मनोवाञ्छित फलको प्राप्त करनेमें सफल हुए और भगवान् सूर्यके अनुचर दानमें हो गये। (अथ्याय ६५)

शंख एवं द्विज, वसिष्ठ एवं साम्ब तथा याज्ञवल्क्य और ब्रह्माके संवादमें आदित्यकी आराधनाका माहात्म्य-कथन,

भगवान् सूर्यकी ब्रह्मरूपता

राजा शतानीकने कहा—मुने ! आप भगवान् सूर्यनाशयणके प्रभावका और भी वर्णन करें। आपकी अमृतमयी वाणी सुन-सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

सुपन्तुजीने कहा—यज्ञ! इस विषयमें शंख और द्विजका जो संवाद हुआ है, उसे आप सुनें, जिसे सुनकर मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

एक अत्यन्त रमणीय आश्रम था, जिसमें सभी वृक्ष फलोंके भारसे झुक रहे थे। कहीं पूर्ण अपनी सींगोंसे परस्पर एक-दूसरेके शरीरमें सुजला रहे थे, किसी दिशामें मरुरोका नृत्य और भ्रमरोकी मधुर ध्वनिका गुंजार हो रहा था। ऐसे मनोहरी आश्रममें अनेक तपस्वियोंसे सेवित भगवान् सूर्यके अनन्य भक्त शंख नामके एक मुनि रहते थे। एक बार भोजक-कुमारोंने मुनिके समीप जाकर विनयपूर्वक अभिवादन कर निवेदन किया—महाराज ! बेदोंके विषयमें हमें संदेह है। आप उसका निवारण करें। उन विनयी भोजकोंकी इस प्रार्थनाको सुनकर प्रसन्न हुए शंखमुनि उन सभीको वेदाध्ययन कराने लगे। एक दिन वे सभी कुमार बेदका अध्ययन कर रहे थे, उसी समय परम तपस्वी द्विज नामके एक श्रेष्ठ मुनि वहाँ आये। अमित तेजस्वी उन शंख मुनिने उनकी विधिवत् अर्चना की और उन्हें आसनपर बैठाया। उन कुमारोंने भी उनकी बन्दना की, जिससे द्विज बहुत प्रसन्न हुए।

शंख मुनिने उन भोजक-कुमारोंसे कहा—शिष्ट पुरुषके आगमनसे अनध्याय होता है। अतः तुम सब इस सं० भ० पू० अ० ४—

समय अपना अध्ययन समाप्त करो। यह सुनते ही कुमारोंने अपने-अपने ग्रन्थ बंद कर दिये।

द्विजने शंख मुनिसे पूछा—ये बालक कौन हैं और क्या पढ़ते हैं ?

शंख मुनिने कहा—महाराज ! ये भोजक-कुमार हैं। सूत्र और कल्पके साथ चारों बेद, सूर्यनाशयणके पूजन और हृष्णका विधान, प्रतिष्ठाविधि, रथयात्राकी रीति तथा सप्तमी तिथिके कल्पका ये अध्ययन कर रहे हैं।

द्विजने पूछः पूछा—मुने ! सप्तमी-ब्रतका क्या विधान है और भगवान् सूर्यके अर्चनकी क्या विधि है ? सूर्य-मान्दिरमें ग्रन्थ, पूष्प, दीप आदि देनेसे क्या फल प्राप्त होता है ? किस ब्रत, नियम और दानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं ? उन्हें कौन-से पूष्प-धूप तथा उष्णहर दिये जाते हैं ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ, इसे आप बतायें। सूर्यनाशयणके माहात्म्यकी भी विशेषरूपसे चर्चा करें।

शंख मुनिने कहा—इस प्रसंगमें मैं महाराज साम्ब और महर्षि वसिष्ठके संवादका वर्णन कर रहा हूँ।

एक बार साम्ब महर्षि वसिष्ठके पवित्र आश्रमपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने नियतात्मा वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर विनीत भावसे खड़े हो गये। महर्षि वसिष्ठने भी उनके भक्तिभावको देखकर प्रसन्न-मनसे उनसे पूछा।

वसिष्ठ बोले—साम्ब ! तुम्हारा तो सम्पूर्ण शरीर

भयंकर कुछ-रोगसे विदीर्घ हो गया था, यह सर्वथा रोगमुक्त कैसे हुआ और तुम्हारे शरीरकी दिल्ल कानि एवं शोभा कैसे बढ़ गयी? यह सब मुझे बताओ।

साम्बने कहा—महाराज ! मैंने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना उनके सहस्रनामोद्भारा की है। उसी आराधनाके प्रभावसे उन्होंने प्रसन्न होकर मुझे साक्षात् दर्शन दिया है और उनसे मुझे वरकी भी प्राप्ति हुई है।

वसिष्ठने पुनः पूछा—तुमने किस विधिसे सूर्यकी आराधना की है? तुम्हें किस बत, तप अधवा दानसे उनका साक्षात् दर्शन हुआ? यह सब विस्तारसे बतलाओ।

साम्बने कहा—महाराज ! जिस विधिसे मैंने भगवान् सूर्यको प्रसन्न किया है, वह समस्त वृत्तान्त आप ध्यान-पूर्वक सुनें।

आजसे बहुत पहले मैंने अज्ञानवश दुर्वासा मुनिका उपहास किया था। इसलिये त्रोधर्मे आकर उन्होंने मुझे कुछरोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया, जिससे मैं कुछरोगी हो गया। तब अत्यन्त दुःखी एवं लज्जित होते हुए मैंने अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर निवेदन किया—'तात! मैं दुर्वासा मुनिके शापसे कुछरोगसे ग्रस्त होकर अत्यधिक पीड़ित हो रहा हूँ, मेरा शरीर गलता जा रहा है। कप्टुका स्वर भी बैठता जा रहा है। पीड़ासे प्राण निकल रहे हैं। वैहो आदिके द्वारा उपचार करनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। अब आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं प्राण त्यागना चाहता हूँ। अतः आप मुझे यह आज्ञा देनेकी कृपा करें, जिससे मैं इस कष्टसे मुक्त हो सकूँ।' मेरा यह दीन वचन सुनकर उन्हें बढ़ा दुख हुआ और उन्होंने क्षणभर विचार कर मुझसे कहा—'पुत्र! धैर्य धारण करो, चिन्ता मत करो, क्योंकि जैसे सूखे तिनकेको आग जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही चिन्ता करनेसे रोग और अधिक कष्ट देता है। भक्तिपूर्वक तुम देवाराधन करो। उससे सभी रोग नष्ट हो जायेंगे।' पिता के ऐसे वचन सुनकर मैंने पूछा—'तात! ऐसा कौन देवता है, जिसकी आराधना करनेसे इस भयंकर रोगसे मैं मुक्ति पा सकूँ?'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पुत्र! एक समयकी बात है, योगिश्वेष्ट याज्ञवल्क्य मुनिने ब्रह्मलोकमें जाकर पदायेनि ब्रह्माजीको प्रणाम किया और उनसे पूछा कि महाराज ! मोक्ष

प्राप्त करनेके इच्छुक प्राणीको किस देवताकी आराधना करनी चाहिये? अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति किस देवताकी उपासना करनेसे होती है? यह चराचर विश्व किससे उत्पन्न हुआ है और किसमें लीन होता है? इन सबका आप वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—महर्ये! आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं आपके प्रश्नोंका उत्तर दे रहा हूँ, इसे ध्यानपूर्वक सुनें—जो देवतेषु अपने उदयके साथ ही समस्त जगत्का अन्धकार नष्ट कर तीनों लोकोंको प्रतिभासित कर देते हैं, वे अजर-अमर, अच्युत, शाश्वत, अक्षय, शुभ-अद्वामके जाननेवाले, कर्मसाक्षी, सर्वदेवता और जगत्के स्वामी हैं। उनका मण्डल कभी क्षय नहीं होता। वे पितरोंके पिता, देवताओंके भी देवता, जगत्के आधार, सृष्टि, शिवति तथा संहारकर्ता हैं। योगी पुरुष वायुरुप होकर जिनमें लीन हो जाते हैं, जिनकी सहस्र रुद्रिमोंमें मुनि, सिद्धगण और देवता निवास करते हैं, जनक, व्यास, शूकदेव, बालसिंहल्य, आदि ऋषिगण, पञ्चशिख आदि योगिगण जिनके प्रभामण्डलमें प्रविष्ट हुए हैं, ऐसे वे प्रत्यक्ष देवता सूर्यनारायण ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदिका नाम तो मात्र सुननेमें ही आता है, पर सभीको वे दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु तिमिरनाशक सूर्यनारायण सभीको प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं। इसलिये वे सभी देवताओंमें श्रेष्ठतम हैं। अतः याज्ञवल्क्य! आपको भी सूर्यनारायणके अतिरिक्त अन्य किसी देवताकी उपासना नहीं करनी चाहिये। इन प्रत्यक्ष देवताकी आराधना करनेसे सभी फल प्राप्त हो सकते हैं।

याज्ञवल्क्य मुनिने कहा—महाराज ! आपने मुझे बहुत ही उत्तम उपदेश दिया है, जो ब्रह्मलुल सत्य है, मैंने पहले भी बहुत बार सूर्यनारायणके माहात्म्यको सुना है। जिनके दक्षिण अङ्गसे विष्णु, वाम अङ्गसे स्वयं आप और ललाटसे रुद्र उत्पन्न हुए हैं, उनकी तुलना और कौन देवता कर सकते हैं? उनके गुणोंका वर्णन भला किन शब्दोंमें किया जा सकता है? अब मैं उनकी उस आराधना-विधिको सुनना चाहता हूँ, जिसके द्वारा मैं संसार-सागरको पार कर जाऊँ। वे कौन-से व्रत-उपवास-दान, होम-जप आदि हैं, जिनके करनेसे सूर्यनारायण प्रसन्न होकर समस्त कष्टोंको दूर कर देते हैं? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें, क्योंकि प्राणियोंद्वारा

धर्म, अर्थ तथा करमकी प्राप्तिके लिये जो चेष्टाएँ की जाती हैं, उनमें वही चेष्टा सफल है जो भगवान् सूर्यका आश्रय ग्रहण कर अनुष्ठित हो। अन्यथा वे सभी क्रियाएँ व्यर्थ हैं। इस अपार घोर संसार-सागरमें निमग्र प्राणियोंद्वारा एक बार भी किया गया सूर्यनमस्कार मुक्तिको प्राप्त कर देता है। भक्तिभावसे परिपूर्ण याज्ञवल्क्यके इन वचनोंको सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो उठे और कहने लगे कि याज्ञवल्क्य ! आपने सूर्यनाशयणकी आराधनाका जो उपाय पूछा है, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ, एकाग्रचित् होकर आप सुनें।

ब्रह्माजी बोले—आदि और अन्तसे रहित, सर्वव्याप्त, परब्रह्म अपनी लीलासे प्रकृति-पुरुष-रूप धारण करके संसारको उत्पत्ति करनेवाले, अक्षर, सृष्टि-रचनाके समय ब्रह्मा, पालनके समय विष्णु और संहारकालमें रुद्रकर रूप धारण करनेवाले सर्वदेवमय, पूज्य भगवान् सूर्यनाशयण ही हैं। अब मैं भेदभेदस्वरूप उन भगवान् सूर्यको प्रणाम करके उनकी आराधनाका वर्णन करूँगा, यह अत्यन्त गुप्त है, जिसे प्रसन्न होकर भगवान् भास्करने मुझसे कहा था।

ब्रह्माजी पुनः बोले—याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान् सूर्यनाशयणकी स्फुटि की। उस स्फुटिसे प्रसन्न होकर वे प्रत्यक्ष प्रकट हुए, तब मैंने उनसे पूछा कि महाराज ! वेद-वेदाङ्गोंमें और पुराणोंमें आपका ही प्रतिपादन हुआ है। आप इश्वर, अज तथा परब्रह्मस्वरूप हैं। यह जगत् आपमें ही स्थित है। गृहस्थाश्रम जिनका मूल है, ऐसे वे चारों आश्रमोंवाले रात-दिन आपकी अनेक मूर्तियोंका पूजन करते हैं। आप ही सबके माता-पिता और पूज्य हैं। आप किस देवताका ध्यान एवं पूजन करते हैं ? मैं इसे नहीं समझ पा रहा हूँ, इसे मैं सुनना चाहता हूँ, ऐसे मनमें बड़ा कौतूहल है।

भगवान् सूर्यने कहा—ब्रह्म ! यह अत्यन्त गुप्त बात है, किंतु आप मेरे परम भक्त हैं, इसलिये मैं इसका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ—वे परमात्मा सभी प्राणियोंमें व्याप्त, अचल,

नित्य, सूक्ष्म तथा इन्द्रियातीत हैं, उन्हे क्षेत्रज्ञ, पुरुष, हिरण्यगर्भ, महान्, प्रधान तथा बुद्धि आदि अनेक नामोंसे अभिहित किया जाता है। जो तीनों लोकोंके एकमात्र आधार है, वे निर्णुण होकर भी अपनी इच्छासे संगुण हो जाते हैं, सबके साक्षी हैं, स्वतः कोई कर्म नहीं करते और न तो कर्मफलकी प्राप्तिसे संलिप्त रहते हैं। वे परमात्मा सब ओर सिर, नेत्र, हाथ, पैर, नासिका, कान तथा मुखवाले हैं, वे समस्त जगत्को आच्छादित करके अवस्थित हैं तथा सभी प्राणियोंमें स्वच्छन्द होकर आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं।

शुभाशुभ कर्मरूप बीजवाला शरीर क्षेत्र कहलाता है। इसे जाननेके कारण परमात्मा क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं। वे अल्पक्षुपुरुषे शशन करनेसे पुरुष, बहुत रूप धारण करनेसे विश्वरूप और धारण-पोषण करनेके कारण महापुरुष कहे जाते हैं। वे ही अनेक रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक ही वायु शरीरमें प्राण-अपान आदि अनेक रूप धारण किये हुए हैं और जैसे एक ही अग्नि अनेक स्थान-भेदोंके कारण अनेक नामोंसे अभिहित की जाती है, उसी प्रकार परमात्मा भी अनेक भेदोंके कारण बहुत रूप धारण करते हैं। जिस प्रकार एक दीपसे हजारों दीप प्रज्वलित हो जाते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मासे सम्पूर्ण जगत् उत्पत्ति होता है। जब वह अपनी इच्छासे संसारका संहार करता है, तब फिर एकाकी ही रह जाता है। परमात्माको छोड़कर जगत्में कोई स्थावर या जंगम पदार्थ नित्य नहीं है, क्योंकि वे अक्षय, अप्रमेय और सर्वज्ञ कहे जाते हैं। उनसे बढ़कर कोई अन्य नहीं है, वे ही पिता हैं, वे ही प्रजापति हैं, सभी देवता और असूर आदि उन परमात्मा भास्करदेवकी आराधना करते हैं और वे उन्हें सद्वति प्रदान करते हैं। वे सर्वगत होते हुए भी निर्णुण हैं। उसी आत्मस्वरूप परमेश्वरका मैं ध्यान करता हूँ तथा सूर्यरूप अपने आत्माका ही पूजन करता हूँ। हे याज्ञवल्क्य मुने ! भगवान् सूर्यमें स्वयं ही ये वाते मुझसे कही थीं। (अध्याय ६६-६७)



सूर्यनारायणके प्रिय पुण्य, सूर्यनिदरमें मार्जन-लेपन आदिका फल, दीपदानका फल तथा सिद्धार्थ-सप्तमी-ब्रतका विद्यान और फल

ब्रह्माजी बोले— याज्ञवल्क्य ! एक बार मैंने भगवान् सूर्यनारायणसे उनके प्रिय पुण्योंके विषयमें जिज्ञासा की । तब उन्होंने कहा था कि मलिलक्र- (बेला फूलकी एक जाति) पुण्य मुझे अत्यन्त प्रिय है । जो मुझे इसे अर्पण करता है, वह उत्तम भोगोंको प्राप्त करता है । मुझे शेष कमल अर्पण करनेसे सौभाग्य, सुगन्धित कुट्ठज-पुण्यसे अक्षय ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा मन्दार-पुण्यसे सभी प्रकारके कुष्ठ-रोगोंका नाश होता है और विश्व-पञ्चसे पूजन करनेपर विपुल सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है । मन्दार-पुण्यकी मालासे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, बकुल- (मौलसिरी-) पुण्यकी मालासे रूपवती कन्याका लाभ, पलाशपुण्यसे अरिष्ट-शान्ति, अगस्त्य-पुण्यसे पूजन करनेपर (मेरा) सूर्यनारायणका अनुग्रह तथा करबीर- (कन्तूल-) पुण्य समर्पित करनेसे भी अनुचर होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है । बेलाके पुण्योंसे सूर्यकी (मेरी) पूजा करनेपर भी लेकरकी प्राप्ति होती है । एक हजार कमल-पुण्य चढ़ानेपर भी (सूर्य) लोकमें निवास करनेका फल प्राप्त होता है । बकुल-पुण्य अर्पित करनेसे भानुलोक प्राप्त होता है । कस्तूरी, चन्दन, कुकुर्म तथा कपूरके खोगसे बनाये गये यक्षकर्दम गन्धका लेपन करनेसे सहाति प्राप्त होती है । सूर्यभगवान्के मन्दिरका मार्जन तथा उपलेपन करनेवाला सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है और उसे शीघ्र ही प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है । जो भक्तिपूर्वीक गेलसे मन्दिरका लेपन करता है, उसे सम्पत्ति प्राप्त होती है और वह रोगोंसे मुक्ति प्राप्त करता है और यदि मृतिकासे लेपन करता है तो उसे आठाह फ्रकारके कुष्ठरोगोंसे मुक्ति मिल जाती है ।

सभी पुण्योंमें करबीरका पुण्य और समस्त विलेपनोंमें रक्तचन्दनका विलेपन मुझे अधिक प्रिय है । करबीरके पुण्योंमें जो सूर्यभगवान्की (मेरी) पूजा करता है, वह संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें स्वर्गलोकमें निवास करता है ।

मन्दिरमें लेपन करनेके पक्षात् मण्डल बनानेपर सूर्यलोककी प्राप्ति होती है । एक मण्डल बनानेसे अर्थकी प्राप्ति, दो मण्डल बनानेसे आरोग्य, तीन मण्डलकी रचना करनेसे अविच्छिन्न संतान, चार मण्डल बनानेसे लक्ष्मी, पाँच मण्डल बनानेसे विपुल धन-धार्य, छ: मण्डलोंकी रचना करनेसे

आयु, बल और यश तथा सात मण्डलोंकी रचना करनेसे मण्डलका अधिपति होता है तथा आयु, धन, पुत्र और रुक्षकी प्राप्ति होती है एवं अन्तमें उसे सूर्यलोक मिलता है ।

मन्दिरमें धृतका दीपक प्रज्वलित करनेसे नेत्र-रोग नहीं होता । महुएके तेलका दीपक जलानेसे सौभाग्य प्राप्त होता है, तिलके तेलका दीपक जलानेसे सूर्यलोक तथा कड़आ तेलसे दीपक जलानेपर शशुओंपर विजय प्राप्त होती है ।

सर्वप्रथम गन्ध-पुण्य-धूप-दीप आदि उपचारोंसे सूर्यका पूजन कर नाना प्रकारके नैवेद्य निवेदित करने चाहिये । पुण्योंमें चमेली और कनेरके पुण्य, धूपोंमें विजय-धूप, गर्मोंमें कुकुर्म, लेपोंमें रक्तचन्दन, दीपोंमें धृतदीप तथा नैवेद्योंमें मोटक भगवान् सूर्यनारायणको परम प्रिय है । अतः इन्हीं चत्तुर्वर्षोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये । पूजन करनेके पक्षात् प्रदक्षिणा और नमस्कार करके हाथमें शेष सरसोंका एक दाना और जल लेकर सूर्यभगवान्के सम्मुख लहड़े होकर हृदयमें अधीर कामनाका चिन्नन करते हुए सरसोंसहित जलज्वले पी जाना चाहिये, परंतु दौलोंसे उसका स्पर्श नहीं हो । इसी प्रकार दूसरी सप्तमीको शेष सर्वप (पीली सरसों) के दो दाने जलके साथ पान करना चाहिये और इसी तरह सातवीं सप्तमीतक एक-एक दाना बढ़ाते हुए इस मन्त्रसे उसे अभिमन्त्रित करके पान करना चाहिये—

सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा ।

तथा मापयि सिद्धार्थमर्थतः कुरुता रथः ॥

(ब्राह्मण ६४ । ३६)

तदनन्तर शास्त्रोक्त रोतिसे जप और हवन करना चाहिये । यह भी विधि है कि प्रथम सप्तमीके दिन जलके साथ सिद्धार्थ (सरसों) का पान करे, दूसरी सप्तमीको धृतके साथ और आगे शहद, दही, दूध, गोमय और पञ्चाक्षके साथ क्रमशः एक-एक सिद्धार्थ बढ़ाते हुए सातवीं सप्तमीतक सिद्धार्थका पान करे । इस प्रकार जो सर्वप-सप्तमीका ब्रत करता है, वह बहुत-सा धन, पुत्र और ऐश्वर्य प्राप्त करता है । उसकी सभी मनःकामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और वह सूर्यलोकमें निवास करता है । (अध्याय ३८)

शुभानुभ स्वप्र और उनके फल

ब्रह्माजी बोले— याह्यवल्क्य ! जो व्यक्ति सप्तमीमें उपवास करके विधिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन, जप एवं हवन आदि क्रियाएँ, सम्पत्तिका रात्रिके समय भगवान् सूर्यका ध्यान करते हुए, पायन करता है, तब उसे रात्रिमें जो स्वप्र दिखायी देते हैं, उन स्वप्र-फलोंका मैं अब वर्णन कर रहा हूँ। यदि स्वप्रमें सूर्यका उदय, इन्द्रध्वज और चन्द्रमा दिखायी देते सभी समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। माला पहने व्यक्ति, गाय या वैशीकी आवाज, श्रेत कमल, चामर, दर्पण, सोना, तल्पार, पुत्रकी प्राप्ति, रुधिरका थोड़ा या अधिक मात्रामें निकलना तथा पान करना ऐसा स्वप्र देखनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। घृताकृ प्रजापतिके दर्शनसे पुत्र-प्राप्तिका फल होता है। स्वप्रमें प्रशस्त वृक्षपर चढ़े अथवा अपने मुखमें महियों, गौ या सिंहनीका दोहन करे तो शीघ्र ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सोने या चांदीके पात्रमें अथवा कमल-पत्रमें जो स्वप्रमें खोर जाता है उसे बल्की प्राप्ति होती है। घृत, वाद तथा युद्धमें विजयप्राप्तिका जो स्वप्र देखता है, वह सुख प्राप्त करता है। स्वप्रमें जो अग्नि-पान करता है, उसके जटराजिकी वृद्धि होती है। यदि स्वप्रमें अपने अङ्ग प्रज्वलित होते दिखायी दें और सिरमें पीड़ा हो तो सम्पत्ति मिलती है। श्रेत वर्णके वस्त्र, माला

और प्रशस्त पक्षीका दर्शन शुभ होता है। देवता-ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध तथा तपसी स्वप्रमें जो कुछ कहते हैं, वह सत्य होता है। स्वप्रमें सिरका कटना अथवा फटना, पैरोंमें बेड़ीका पड़ना, राज्य-प्राप्तिका संकेतक है। स्वप्रमें रोनेसे हर्षकी प्राप्ति होती है। घोड़ा, बैल, श्रेत कमल तथा श्रेष्ठ हाथीपर निढ़र होकर चढ़नेसे महान् ऐश्वर्य प्राप्त होता है। यह और ताराओंका ग्रास देखे, पृथ्वीको उलट दे और पर्वतको उत्थान फेंके तो रुद्रका लाभ होता है। पेटसे आंत निकले और उसमें बुश्को लपेटे, पर्वत-समुद्र तथा नदी पार करे तो अल्पाधिक ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। सुन्दर खोके गोदमें बैठे और बहुत-सी खिल्हाँ आशीर्वाद दें, शरीरके कीड़े भक्षण करे, स्वप्रमें स्वप्रका ज्ञान हो, अभीष्ट वात सुनने और कहनेमें आये तथा महालद्वायक क पटाशैवाल दर्शन एवं प्राप्ति हो तो धन और आरोग्यका लाभ होता है। जिन स्वप्रोंका फल राज्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति है, यदि उन स्वप्रोंको रोगी देखता है तो वह रोगसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रात्रिमें स्वप्र देखनेके पक्षात् प्रतःकाल खानकर राजा-ब्राह्मण अथवा भोजको अपना स्वप्र सुनाना चाहिये।

(अध्याय ६९)

सिद्धार्थ-(सर्वप-) सप्तमी-ब्रतके उद्यापनकी विधि

ब्रह्माजी बोले— याह्यवल्क्य ! सिद्धार्थ-सप्तमीके व्रतके अनन्तर, दूसरे दिन ऋषि-पूजन-जप तथा हवन आदि करके भोजक, पुण्यवेता और वेद-पाश्चात्य ब्राह्मणोंको भोजन करकर लाल वस्त्र, दूध देनेवाली गाय, उत्तम भोजन तथा जो-न्जो पदार्थ अपनेके प्रिय हों, वे सब मध्याह्नकालमें भोजकोंके दान देने चाहिये। यदि भोजक न प्राप्त हो सके तो पौराणिकों और पौराणिक न मिल सके तो साम्बद्ध जानेवाले मन्त्रविद् ब्राह्मणको वे सभी वस्तुएँ देनी चाहिये। मुने !

यह सिद्धार्थ-सप्तमीके उद्यापनकी संक्षिप्त विधि है।

इस प्रकार भास्तुपूर्वक सात सप्तमीका व्रत करनेसे अनन्त सुखकी प्राप्ति होती है और दस अक्षमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस व्रतमें सभी कार्य मिल हो जाते हैं। गरुड़को देखकर सर्व आदिकी तरह कुछ आदि सभी रोग इसके अनुष्ठानसे दूर भागते हैं। व्रत-नियम तथा तप करके सात सप्तमीको व्रत करनेसे मनुष्य विद्या, धन, पुत्र, भाग्य, आरोग्य और धर्मकी तथा अन्त समयमें सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

१-देवद्विकजनान्तर्याम्युग्मवृद्धतापरिवर्तनः ॥

यद्युद्धद्विनि तत्त्वस्वी सत्यमेव हि निर्दिष्टेत् । (ब्राह्मणी ६९। १४-१५.)

२-भासत तथा विदेशोंमें भी रीटीनी आदिके 'हिक्केनी आफ हीम' आदि अनेक चतुर हैं। बृहस्पतिवेत्त 'स्वप्रध्याय' मध्य निर्देश देवता है। वाल्मीकीय रामायणमें विजयके स्वप्रका वर्णन देखें हैं। स्वप्रका योगसे भविष्य सम्भव है। सभीके संकुल अध्ययनमें स्वप्रकोंको प्राप्त कर लेता है।

इस सप्तमी-ब्रतकी विधिका जो श्रवण करता है अथवा उसे पढ़ता है, वह भी सूर्यनारायणमें लौटा हो जाता है। देवता और मुनि भी इस ब्रतके माहात्म्यको सुनकर सूर्यनारायणके भक्त हो गये हैं। जो पुण्य इस आश्वानका स्वयं श्रवण करता है अथवा दूसरेको सुनाता है तो वे दोनों सूर्यलोकको जाते हैं। ये गी यदि इसका श्रवण करे तो रोगमुक्त हो जाता है। इस ब्रतकी जिज्ञासा रखनेवाला भक्त अभिलिप्ति इच्छाओंको प्राप्त करता है और सूर्यलोकको जाता है। यदि इस आश्वानको पढ़कर यात्रा की जाय तो मार्यामें विद्र नहीं आते और यात्रा सफल होती है। जो कोई भी जिस पदार्थकी कामना करता है,

वह उसे निश्चित प्राप्त कर लेता है। गर्भिणी खी इस आश्वानको सुने तो वह सुखपूर्वक पुत्रको जन्म देती है, बन्धु दोनों सुने तो संतान प्राप्त करती है। याज्ञवल्क्य ! यह सब कथा सूर्यनारायणने मुझसे कही थी और मैंने आपको सुना दी और अब आप भी भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी आशधना करें, जिससे सभी पातक नष्ट हो जायें। उदित होते ही जो अपनी किरणोंसे संसारका अन्धकार दूरकर प्रकाश फैलाते हैं, वे द्वादशाला सूर्यनारायण ही जगत्के माता-पिता तथा गुरु हैं, अद्विति-पुत्र भगवान् सूर्य आपसर प्रसन्न हों।

(अध्याय ७०)

ब्रह्माद्वारा कहा गया भगवान् सूर्यका नाम-स्तोत्र

ब्रह्माजी बोले—याज्ञवल्क्य ! भगवान् सूर्य जिन सूर्यको नित्य मेरा नमस्कार है।

नमोंके स्वरूपसे प्रसन्न होते हैं, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ—

नमः सूर्याय नित्याय रवयेऽकाय भावये ।

भास्कराय यतङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते ॥

नित्य, रवि, अर्क, धानु, भास्कर, यतङ्ग, मार्तण्ड तथा

विवस्वान् नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।

आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने ।

दिवाकराय दीप्ताय अप्रये विहिराय च ॥

आदिदेव, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि तथा विहिर नामक भगवान् आदित्यको मेरा नमस्कार है।

प्रभाकराय वित्राय नमस्तेऽदितिस्वयम् ।

नमो गोपतये नित्यं दिशो च पतये नमः ॥

हे अदितिके पुत्र भगवान् सूर्य ! आप प्रभाकर, मित्र, गोपति (किरणोंके स्वामी) तथा दिवपति नामवाले हैं, आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

नमो धात्रे विधात्रे च अर्यमो वरुणाय च ।

पूष्णे भगवाय वित्राय पर्जन्यायोश्वरे नमः ॥

धाता, विधाता, अर्यमा, वरुण, पूषा, भग, वित्र, पर्जन्य, अंशुमान् नामवाले भगवान् सूर्यको मेरा प्रणाम है।

नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च ।

हरये हरिताश्चाय विश्वस्य पतये नमः ॥

हितकृत, (संसारका कल्याण करनेवाले), धर्म, तपन, हरि, हरिताश्च (हरे रंगके अशोकवाले), विश्वपति भगवान्,

विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं त्र्यम्बकाय तथात्मने ।

नमस्ते सप्तस्तोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ॥

विष्णु, ब्रह्म, त्र्यम्बक (शिव), आत्मस्वरूप, सप्तसप्ति, हे सप्तस्तोकेश ! आपको मेरा नमस्कार है।

एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्रकरथाय च ।

ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्राणभूते नमः ॥

अद्वितीय, एकचक्रकरथ (जिनके रथमें एक ही चक्र है), ज्योतिष्यति, हे सर्वप्राणभूत, (सभी प्राणियोंका भरण-पोषण करनेवाले) ! आपको मेरा नित्य नमस्कार है।

हिताय सर्वभूतानी शिवायार्तिहराय च ।

नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिमूर्तये ॥

सप्तस्त प्राणिजगत्का हित करनेवाले, शिव (कल्याणकरी) और आर्तिहर (दुःखविनाशी), पद्मप्रबोध (कमलोंको विकसित करनेवाले), वेदादिमूर्ति भगवान् सूर्यको नमस्कार है।

कार्यजाय नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च ।

भीषजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः ॥

प्रजापतियोंके स्वामी महर्षि कश्यपके पुत्र ! आपको नमस्कार है। भीषपुत्र तथा पावक नामवाले तारासुत ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

धिषणाय नमो नित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा ।

नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्माय नित्यदः ॥

चिष्णु, कृष्ण, अदितिपुत्र तथा लक्ष्य नामवाले भगवान् सूर्यको बार-बार नमस्कार है।

ब्रह्माजीने कहा—याज्ञवल्क्य ! जो मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल इन नामोंका पवित्र होकर पाठ करता है, वह मेरे समान ही मनोवाचित फलोंको प्राप्त करता है। इस नाम-स्तोत्रसे सूर्यकी आराधना करनेपर उनके अनुग्रहसे शर्म,

अर्थ, काम, आरोग्य, राज्य तथा विजयकी प्राप्ति होती है। यदि मनुष्य ब्रह्मनमें हो तो इसके पाठसे ब्रह्मनमुक्त हो जाता है। इसके जप करनेसे सभी पापोंसे कुट्टकारा मिल जाता है। यह जो सूर्य-स्तोत्र मैंने कहा है, वह अत्यन्त गहस्यमय है।

(अध्याय ७१)

—अंकुड़—

जम्बूदीपमें सूर्यनारायणकी आराधनाके तीन प्रमुख स्थान, दुर्वासा मुनिका साम्बको शाप देना

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! ब्रह्माजीसे इस प्रकार उपदेश प्राप्तकर याज्ञवल्क्य मुनिने सूर्यभगवान्की आराधना की, जिसके प्रभावसे उन्हें सालोक्य-मुक्ति प्राप्त हुई। अतः भगवान् सूर्यकी उपासना करके आप भी उस देवदुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर सकेंगे।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! जम्बूदीपमें भगवान् सूर्यदेवका आदि स्थान कहाँ है ? जहाँ विधिपूर्वक आराधना करनेसे शीघ्र ही मनोवाचित फलोंकी प्राप्ति हो सके।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस जम्बूदीपमें भगवान् सूर्यनारायणके मुख्य तीन स्थान हैं। प्रथम इन्द्रवन है, दूसरा मुण्डीर तथा तीसरा तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध कालप्रिय (कालपी) नामक स्थान है। इस द्वीपमें इन तीनोंके अतिरिक्त एक अन्य स्थान भी ब्रह्माजीने बताया है, जो चन्द्रभाग नदीके तटपर अवस्थित है, जिसके साम्बपुर भी कहा जाता है, वहाँ भगवान् सूर्यनारायण साम्बकी भक्तिसे प्रसन्न होकर लोककल्याणके लिये अपने द्वादश रूपोंमेंसे मित्र-रूपमें निवास करते हैं। जो भक्तिपूर्वक उनका पूजन करता है, उसको ये स्वीकार करते हैं।

राजा शतानीकने पुनः पूछा—महामुने ! साम्ब कौन है ? किसका पुत्र है ? भगवान् सूर्यने उसके ऊपर अपनी कृपा कर्यों की ? यह भी आप बतानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! संसारमें द्वादश आदित्य प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे विष्णु नामके जो आदित्य है, वे इस जगत्

वासुदेव श्रीकृष्णरूपमें अवतारी हुए। उनकी जात्यवती नामकी पत्नीसे महाबलशाली साम्ब नामक पुत्र हुआ। वह शापवदा कुष्ठ-रोगसे ग्रसा हो गया। उससे मुक्त होनेके लिये उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना की और उसीने अपने नामसे साम्बपुर^१ नामक एक नगर बसाया और यहाँपर भगवान् सूर्यनारायणकी प्रथम प्रतिमा प्रतिष्ठापित की।

राजा शतानीकने पूछा—महाराज ! साम्बके द्वारा ऐसा कौन-सा अपराध हुआ था, जिससे उसे इतना कठोर शाप मिला। थोड़ेसे अपराधपर तो शाप नहीं मिलता।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! इस वृत्तान्तका वर्णन हम संक्षेपमें कर रहे हैं, आप सावधान होकर सुनें। एक समय रुद्रके अवतारभूत दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरण करते हुए द्वारकापुरीमें आये, परंतु पीले-पीले नेत्रोंसे युक्त कृष्ण-शरीर, अत्यन्त विकृत रूपवाले दुर्वासाको देखकर साम्ब अपने सुन्दर स्वरूपके आहंकारमें आकर उनके देशने, चलने आदि चेष्टाओंकी नकार करने लगे। उनके मुखके समान अपना ही विकृत मुख बनाकर उन्हींकी भाँति चलने लगे। यह देखकर और 'साम्बको रूप तथा यौवनका अस्यन्त अधिगमन है' यह समझकर दुर्वासा मुनिको अल्पाधिक क्रोध हो आया। वे क्रोधसे कौरते हुए यह कह उठे—'साम्ब ! मुझे कुरुप और अपनेको अति रूपसम्पन्न मानकर तूने मेरा परिहास किया है। जा, तू शीघ्र ही कुष्ठरोगसे ग्रस्त हो जायगा।'

१-इन तीनों रथालोंकी विद्येय जानकरीके लिये 'कल्पना'के ५३वें चर्चित विशेषाङ्क 'मूर्यदृ'का 'तीन प्रसिद्ध मूर्य-मन्दिर' नामक अनियंत्रित देशन चाहिये।

२-यही नाम आगे चलकर 'भूलभान' पुनः मुस्लिम शासनमें 'मूलाम' नामसे प्रसिद्ध हुआ, जो आज पाकिस्तानमें लाहौरके पक्षिम पारमें स्थित है।

ऐसे ही एक बार पुनः परिहास किये जानेके कारण दुर्वासा मुनिको फिर शाप देना पड़ा और उसी शापके फलस्वरूप साम्बसे लोहेका एक मूसल उत्पत्र हुआ, जो समस्त यदुवंशियोंके विनाशका कारण थाना।

अतः देवता, गुरु और ब्राह्मण आदिकी अवज्ञा चुदिमान् पुरुषको कभी नहीं करनी चाहिये। इन लोगोंके समक्ष सदैव विनप्र ही बना रहा चाहिये और सदा मधुर वाणी ही बोलनी चाहिये। राजन् ! ब्रह्माजीने भगवान् शिवके समक्ष जो दो इलोक पढ़े थे, क्या उनको आपने सुना नहीं है ?

यो धर्मशीले जितमानरोचो विद्याविनीतो न परोपतापी । स्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तत्प लोके भयमस्ति किंचित् ॥ न तथा शशी न सलिले न चन्दनं नैव शीतलक्षणाया । प्रह्लादयति पुरुषं यथा हिता मधुरभाविणी वाणी ॥

(ब्राह्मपर्व ७३। ४७-४८)

—०५२—

सूर्यनारायणकी द्वादश मूर्तियोंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—महामुने ! साम्बके द्वारा चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यनारायणकी जो स्थापना की गयी है, वह स्थान आदिकालसे तो नहीं है, फिर भी आप उस स्थानके माहात्म्यका इतना वर्णन कैसे कर रहे हैं ? इसमें मुझे संदेह है ।

सुमन्तु मुनि बोले—भारत ! यहाँपर सूर्यनारायणका स्थान तो सनातन-कालसे है । साम्बने उस स्थानकी प्रतिष्ठा तो बादमें की है । इसका हम संक्षेपमें वर्णन करते हैं । आप प्रेमपूर्वक उसे सुनें—

इस स्थानपर परमव्यासरूप जगत्स्वामी भगवान् सूर्य-नारायणने अपने मित्ररूपमें तप किया है । ये ही अव्यक्त परमात्मा भगवान् सूर्य सभी देवताओं और प्रजाओंकी सृष्टि करके स्वयं बारह रूप धारण कर अदितिके गर्भसे उत्पत्र हुए । इसीसे उनका नाम आदित्य पड़ा । इन्द्र, धारा, पर्जन्य, पूषा, लक्ष्मी, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण तथा मित्र—ये सूर्य भगवान्की द्वादश मूर्तियाँ हैं । इन सबसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । इनमेंसे प्रथम इन्द्र नामक मूर्ति देवताजमें स्थित है, जो सभी दैत्यों और दानवोंका संहार करती है । दूसरी थांता नामक मूर्ति प्रजापतिमें स्थित होकर सृष्टिकी

'जो धर्मात्मा है तथा जिसने सम्पान एवं द्वोधरपर विजय प्राप्त कर ली है, विद्यासे युक्त और विनप्र है, दूसरोंको संताप नहीं देता, अपनी खीसे संतुष्ट है तथा परायी खीका परित्याग करनेवाला है, ऐसे मनुष्यके लिये संसारमें किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं है ।'

'पुरुषको चन्द्रमा, जल, चन्दन और शीतल छाया वैसा आमन्दित नहीं कर पाते हैं, जैसा आनन्द उसे हितकारी मधुर वाणी सुननेसे प्राप्त होता है ।'

राजन् ! इस प्रकार दुर्वासा मुनिके शापसे साम्बको कुछरोग हुआ था । तदनन्तर उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करके पुनः अपने सुन्दर रूप तथा आरोग्यको प्राप्त किया और अपने नामका साम्बपुर नामक एक नगर बसाकर उसमें भगवान् सूर्यको प्रतिष्ठापित किया ।

(अध्याय ७२-७३)

पूज्यप्रद है। महाबाहो ! यहींपर अमित तेजस्वी साम्बने सूर्यनारायणकी आराधना करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया है।

प्रतिष्ठापित किया। जो पुरुष भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रणाम करता है और श्रद्धा-भक्तिसे उनकी आराधना करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ७४)

देवर्थि नारदद्वारा सूर्यके विराटरूप तथा उनके प्रभावका वर्णन

सुमन्तुजी बोले—हग्न ! भयंकर कुष्ठरोगका शाय प्राप्तकर दुःखित हो साम्बने अपने चिता भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—तात ! मेरा यह कष्ट कैसे दूर होगा ? कृपाकर इसका उपाय आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चत्स ! तुम भगवान् सूर्यकी आराधना करो, उससे तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूर हो जायगा। तुम देवर्थि नारदद्वारा सूर्यनारायणके आराधना-विधानकी शिक्षा प्राप्त करो। वे प्रसन्न होकर तुम्हें विस्तारसे उनकी आग्रहनाका विधान बतायेंगे।

एक दिन नारदजी द्वारकापुरीमें भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। उसी समय साम्बने अत्यन्त विनष्ट भावसे जाकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की। महामुने ! मैं आपकी शरण हूँ, आप मेरे ऊपर कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मेरा शरीर कुष्ठरोगसे मुक्त हो सके और मेरा कष्ट दूर हो जाय।

नारदजीने कहा—साम्ब ! सभी देव जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हींका तुम भी पूजन करो। उन्हींकी कृपासे तुम रोगसे मुक्त हो जाओगे।

साम्बने पूछा—महाराज ! देवगण किसका पूजन और स्तवन करते हैं ? आप ही उसे भी बतायें, जिससे मैं उनकी शरणमें जा सकूँ। यह शापाग्नि मुझे दग्ध कर रही है। ऐसे कौन देवता है, जो कृपा करके मुझे इस विपत्तिसे मुक्त करा सकेंगे ?

नारदजीने कहा—पुत्र ! समस्त देवताओंके पूज्य, नमस्कार करने योग्य और निरन्तर सुख्य भगवान् सूर्यनारायण ही हैं। तुम उनके प्रभावको सुनो—

किसी समय समस्त लोकोंमें विचरण करता हुआ मैं सूर्यलोकमें पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि देवता, गणर्ख, नाग, यक्ष, राक्षस और अप्सराएँ सूर्यनारायणकी सेवायें लगे हुए हैं। गणर्ख गीत गा रहे हैं और अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। राक्षस-यक्ष तथा नाग शास्त्रधारण करके उनकी रक्षाके लिये

सहडे हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर स्वयं स्तुति कर रहे हैं और ऋषिगण भी वेदोंकी झट्टाओंसे उनका स्तवन कर रहे हैं। मूर्तिरूपमें प्रातः, मध्याह्न और सायंकालकी तीनों सुन्दर रूपवाली संभारै हाथमें वज्र तथा वाण धारण किये हुए सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं। प्रातः-संध्या रत्नवर्णकी है, मध्याह्न-संध्या चन्द्रमाके समान धेतर्वर्णकी एवं सायं-संध्या मंगलके समान वर्णवाली है। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत् तथा अस्तिनिकुमार आदि सभी देवगण तीनों संध्याओंमें उन भगवान् सूर्यका पूजन करते हैं। इन्द्र संदैव वहाँ सहडे होकर भगवान् सूर्यकी जय-जयकर करते रहते हैं। गरुड़का ज्येष्ठ भाता अरुण उनका सारथि है। वह कालके अवयवोंसे निर्मित उनके रथका संचालक है। हरे वर्णके छन्दरूप सात अश्व उनके रथमें जुते हुए हैं। यशी तथा निकुञ्जा नामकी दो पत्रियाँ उनके दोनों ओर बैठी हुई हैं। सभी देवता हाथ जोड़कर चारों ओर खड़े हैं। पिंगल, लेखक, दण्डनायक आदिगण तथा कल्पाय नामक दो पक्षी द्वारपालके रूपमें उनकी सेवायें लगे हुए हैं। दिष्टी उनके सामने तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं।

भगवान् सूर्यनारायणका ऐसा प्रभाव देखकर मैंने सोचा कि यही देव है, जो समस्त देवताओंके पूज्य है। साम्ब ! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।

साम्बने पूछा—महाराज ! मैं भलीभांति यह जानना चाहता हूँ कि सूर्यनारायण सर्वगत कैसे है ? उनकी कितनी रश्मियाँ हैं ? कितनी मूर्तियाँ हैं ? यशी तथा निकुञ्जा नामकी ये दोनों भार्याएँ कौन हैं ? पिंगल, लेखक और दण्डनायक वहाँ क्या कार्य करते हैं ? कल्पाय, पक्षी कौन हैं ? उनके आगे स्थित रहनेवाला दिष्टी कौन है ? और वे कौन-कौन देवता हैं, जो उनके चतुर्दिश् सहडे रहते हैं ? आप इन सबका तत्त्वतः अच्छी तरहसे वर्णन करें, जिससे मैं भी सूर्यनारायणके प्रभावको जानकर उनकी शरणमें जा सकूँ।

नारदजीने कहा—साम्ब ! अब मैं सूर्यनाशयणके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ। तुम उसे प्रेमपूर्वक सुनो—

विवस्वान् देव अव्यक्त कारण, नित्य, सत् एवं असत्-स्वरूप हैं। जो तत्त्वचिन्तक पुरुष है, वे उनको प्रधान और प्रकृति कहा करते हैं। वे गन्ध, वर्ण तथा रससे हीन एवं शब्द और स्पर्शसे रहते हैं। वे जगत्की योनि हैं तथा सनातन परब्रह्म हैं। वे सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं। वे अनादि, अनन्त, अज, सूक्ष्म, त्रिगुण, निराकार तथा अविक्षेप हैं, उन्हें परमपुरुष कहा जाता है। उन्हीं महात्मा भगवान् सूर्यसे यह सब जात् परिच्छाप है। उन परमेश्वरकी प्रतिमा ज्ञान एवं वैराग्यलक्षणोंवाली है। उनको बुद्धि धर्म एवं ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाली आही बुद्धि कही जाती है। उन अव्यक्तकी जो भी इच्छा होती है, वही सब उत्पन्न होता है। वे ही सृष्टिके समय चतुर्मुख ब्रह्म बन जाते हैं और प्रलयके समय कालरूप हो जाते हैं। पालनके समय वे ही पुरुष विष्णुरूप ग्रहण कर लेते हैं। स्वयम्भू पुरुषकी ये तीनों अवस्थाएँ, उनके तीन गुणोंके अनुसार हैं। ये आदिदेव होनेके कारण आदित्य तथा अजात होनेके कारण अज कहे गये हैं। देवताओंमें महान् होनेसे वे महादेव कहे गये हैं। समस्त लोकोंके ईश होने तथा अधीश होनेके कारण वे ईश्वर कहे गये हैं। ब्रह्म होनेसे ब्रह्म तथा भवत्व होनेसे भव कहे जाते हैं। वे समस्त प्रजाओंकी रक्षा और पालन करते हैं, इसलिये प्रजापति कहे गये हैं। पुरुषे शयन करनेसे 'पुरुष,' उत्पाद्य न होने और अपूर्व होनेसे 'स्वयम्भू' नामसे प्रसिद्ध हैं। हिरण्याण्डमें रहनेके कारण ये हिरण्यगर्भ कहे जाते हैं। ये दिशाओंके स्थानी, ग्रहोंके ईश, देवताओंके भी देवता होनेसे देवदेव तथा दिवाकर भी कहे जाते हैं। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने अप्तको नार कहा है, यह अप् इनका आश्रय है, इसीलिये 'आप' नाशयण कहे गये हैं। 'अर' यह शीघ्रतावाचक शब्द है। 'आप' ही समुद्र-रूप धारण करनेपर फिर उसमें शीघ्रता नहीं रहती, इसीके कारण उसे नार कहते हैं। प्रलयकालमें सभी स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं। जब सम्पूर्ण जगत् समुद्रके समान एकाकार हो जाता है, तब वे पुरुष नाशयणरूप धारण करके उस समुद्रमें शयन करते हैं। वे पुरुष वेदोंमें सहस्रों सिरों, सहस्रों भुजाओं, सहस्रों नेत्रों तथा सहस्रों चरणोंवाले कहे गये हैं। वे ही देवताओंमें प्रथम देवता

तथा जगत्की रक्षा करनेवाले हैं।

नारदजीने पुनः कहा—साम्ब ! सहस्रयुगके समान अपनी रात्रि विताकर प्रभात होते ही उन पुरुषने जब सृष्टि रचनेकी इच्छा की, तब उन्होंने देखा कि सम्पूर्ण पृथ्वी जलमें डूबी हुई है। तदनन्तर उन्होंने वराहरूप धारण करके महासागरके जलमें निमग्र पृथ्वीका उद्धार किया। उस समय उनका वेदमय शरीर कम्पित हो उठा और रोमोंमें स्थित महर्षिगण उनकी सूति करने लगे। पुनः ब्रह्माका रूप धारण करके वे सृष्टिकी रचना करने लगे। उन्होंने सर्वप्रथम अपने ही समान अपने मनसे मुझ-सहित श्रेष्ठ दस मानसपुत्रोंके उत्पन्न किया। जिनके नाम हैं—भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष एवं वसिष्ठ—इन प्रजापतियोंकी सृष्टि करनेके बाद प्रजाओंकी हित-कामनासे वे ही सूर्यनाशयण देवी अदितिके पुत्र-रूपमें स्वयं प्रादुर्भूत हुए। मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षकी कन्या अदितिका विवाह महर्षि कश्यपके साथ हुआ। उसने 'भूर्भुवः स्वः' से संयुक्त एक अण्ड उत्पन्न किया, जिससे द्वादशात्मा भगवान् सूर्य प्रकट हुए। इस सूर्यमण्डलका व्यास नीं हजार योजन है। सत्ताईस हजार योजन उसकी परिधि है। जिस प्रकार कदम्बका पुष्प चारों ओर केशरोंसे व्याप रहता है, उसी प्रकार सूर्यमण्डल अपनी किरणोंसे परिच्छाप रहता है। वह सहस्रों सिरवाला पुरुष जिसको परमात्मा कहते हैं, इस तेजोमय मण्डलके मध्य स्थित है। वह अपनी सहस्र किरणोंद्वारा नदी, समुद्र, हृद, कूप आदिसे जलको ग्रहण कर लेता है। सूर्यकी प्रभा (तेज) रात्रिके समय अग्रिमे प्रवेश कर जाती है, इसीलिये रात्रिमें अग्रि दूरसे ही दिशायां देने लगती है। सूर्योदयके समय वही प्रभा पुनः सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है। प्रकाशत्व और उष्णत्व—ये दोनों गुण सूर्यमें तथा अग्रिमे भी हैं। इस प्रकार सूर्य और अग्रि एक दूसरेको आप्यायित किया करते हैं।

साम्ब ! हेति, किरण, गौ, रश्मि, गर्भस्ति, अग्नोषु, घन, उरु, वसु, मरीचि, नाडी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तार्चि, सुषष्णि, कर तथा पाद—ये बीस भगवान् सूर्यकी किरणोंके नाम कहे गये हैं, जो संख्यामें एक हजार हैं। इनमेंसे चार सौ किरणें वृष्टि करती हैं, जिनका नाम चन्दन है। इन किरणोंका स्वरूप अमृतमय है। तीन सौ किरणें हिमको वहन

करती है। उनका नाम चन्द्र है और वर्ण गोत है। शेष तीन सौ शुक्र नामवाली किरणे भूस्की सृष्टि करती हैं, ये सभी किरणे ओषधियों, स्वधा तथा अमृतके रूपमें मनुष्यों, पितरों तथा देवताओंके सदा संतुष्ट करती रहती हैं। ये द्वादशात्मा काल-स्वरूप सूर्योदय तीनों लोकोंमें अपने तेजसे तपते रहते हैं। ये ही ब्रह्म-विष्णु तथा शिव हैं। ऋक्, यजुः एवं साम—ये तीनों वेद भी ये ही हैं। प्रातःकालमें ऋचेद, मध्याह्नकालमें यजुर्वेद तथा संध्याकालमें सामवेद इनकी सुनि करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके द्वारा इनका पूजन नित्य होता रहता है। जिस प्रकार वायु सर्वगत है, उसी प्रकार सूर्यकी किरणें भी सर्वव्याप्त हैं। तीन सौ किरणोंके द्वारा भूलोक प्रकाशित होता रहता है। इसके पश्चात् जो शेष किरणें हैं, वे तीन-तीन सौकी संख्यामें शेष अन्य दोनों लोकों (भुवलोक और स्वलोक) को प्रकाशित करती हैं। एक सौ किरणोंसे पाताल प्रकाशित होता है। ये नक्षत्र, प्रह तथा चन्द्रमादि प्राणोंके अधिष्ठान हैं। चन्द्रमा, प्रह, नक्षत्र तथा तारागणोंमें सूर्यनारायणका ही प्रकाश है। इनकी एक सहस्र किरणोंमें प्रहसनशक सात किरणें मुख्य हैं, जिन्हें सुषुम्णा, हरिकेश, विष्णुकर्मा, सूर्य, रुक्मि, विष्णु और सर्वबन्धु कहा जाता है।

सम्पूर्ण जगत्के मूल भगवान् आदित्य ही है। इन्द्र आदि देवता इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। देवताओं तथा जगत्का सम्पूर्ण तेज इन्हींका है। अग्रिमे दी गयी आहुति सूर्यनारायणको ही प्राप्त होती है। इसलिये आदित्यसे ही वृष्टि उत्पन्न होती है। वृष्टिसे अत्र उत्पन्न होता है तथा अत्रसे प्रजाका पालन होता है। ध्यान करनेवाले लोगोंके लिये ध्यान-रूप और मोक्ष प्राप्त करनेवाले इच्छासे आराधना करनेवाले लोगोंके लिये ये मोक्षस्वरूप हैं। क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर तथा युगकी कल्पना सूर्यनारायणके बिना सम्भव नहीं है। काल-नियमके बिना अग्रिहोत्रादि कर्म नहीं हो सकते। ऋतु-विभागके बिना पुष्य-फल तथा मूलकी उत्पत्ति सम्भव

नहीं है। उनके न रहनेसे तो जगत्के सम्पूर्ण व्यवहार ही नष्ट हो जाते हैं। सूर्यनारायणके सामान्य द्वादश नाम इस प्रकार हैं—आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिव्यकर और रवि। विष्णु, धाता, भग, पूरा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य—ये द्वादश आदित्य हैं। चैत्रादि वारह महीनोंमें ये द्वादश आदित्य उत्तित रहते हैं। चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान, आषाढ़में अंशुमान्, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें वरुण, अश्विनमें इन्द्र, कार्तिकमें धाता, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूरा, माघमें भग और फाल्गुनमें त्वष्टा नामके आदित्य तपते हैं।

उत्तरायणमें सूर्य-किरण वृद्धिको प्राप्त करती है और दक्षिणायणमें वह किरण-वृद्धि घटने लगती है। इस प्रकार सूर्य-किरणों लोकोपकारमें प्रवृत्त रहती है। जैसे स्फटिकमें विभिन्न रंगोंके प्रविष्ट होनेसे वह अनेक वर्णका दिखायी देता है, जैसे एक ही मेष आकाशमें अनेक रूपोंका हो जाता है तथा गुण-विशेषसे जैसे आकाशसे गिरा हुआ जल भूमिके रस-वैशिष्ट्यसे अनेक स्वाद और गुणवाला हो जाता है, जिस प्रकार एक ही अग्नि ईघन-भेदके कारण अनेक रूपोंमें विभक्त हो जाती है, जैसे वायु पदार्थोंके संयोगसे सुगम्भित और दुर्गम्भित हो जाती है, जैसे गृहाशिके भी अनेक नाम हो जाते हैं, उसी प्रकार एक सूर्यनारायण ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि अनेक रूप धारण करते हैं, इसलिये इनकी ही भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार जो सूर्यनारायणको जानता है, वह योग तथा पापोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है।

यापि पुरुषकी सूर्यनारायणके प्रति भक्ति नहीं होती। इसलिये साम्ब ! तुम सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे तुम इस भयंकर व्याधिसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको प्राप्त कर लोगे।

(अध्याय ७५—७८)

भगवान् सूर्यका परिवार

सुमन्तु मुनि बोले— गजन् ! साम्बने नारदजीसे पुनः कहा—महामुने ! आपने भगवान् सूर्यनारायणके अत्यन्त आनन्दप्रद माहात्म्यका वर्णन किया, जिससे मेरे हृदयमें उनके प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गयी। अब आप भगवान् सूर्यनारायणकी पल्ली महाभागा राज्ञी एवं निशुभा तथा दिष्टी और पिंगल आदिके विषयमें चतारे ।

नारदजीने कहा— साम्ब ! भगवान् सूर्यनारायणकी राज्ञी और निशुभा नामकी दो पत्नियाँ हैं। इनमेंसे राज्ञीको द्यौ अर्थात् स्वर्ग और निशुभाको पृथ्वी भी कहा जाता है। पौष शुक्ल सप्तमी तिथिको द्यौके साथ और माघ कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिको निशुभा (पृथ्वी)के साथ सूर्यनारायणका संयोग होता है। जिससे राज्ञी—द्यौसे जल और निशुभा—पृथ्वीसे तीनों लोकोंके कल्याणके लिये अनेक प्रकारकी सत्य-सम्पत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सत्य (अन्न)को देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे ब्रह्मण हवन करते हैं। स्वाहाकार तथा स्वधाकारसे देवताओं और पितरोंकी तृप्ति होती है। जिस प्रकार राज्ञी अपने दो रूपोंमें हुई और ये बिनकी पुनः हैं तथा इनकी जो संतानें हुई उनका हम वर्णन करते हैं, इसे आप सुनें—

साम्ब ! ब्रह्माके पुत्र मरीचि, मरीचिके कश्यप, कश्यपसे हिरण्यकशिष्य, हिरण्यकशिष्यपुसे प्रह्लाद, प्रह्लादसे विरोचन नामकका पुत्र हुआ। विरोचनकी बहिनका विवाह विश्वकर्मीके साथ हुआ, जिससे संज्ञा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। मरीचिकी मुरुपा नामकी कन्याका विवाह अंगिरा ऋषिसे हुआ, जिससे वृहस्पति उत्पन्न हुए। वृहस्पतिकी ब्रह्मवादिनी बहिनने आठवें प्रभास नामक वसुसे पाणिप्रहृण किया, जिसका पुत्र विश्वकर्मा सप्तमा शिल्पोंको जानेवाला हुआ। उन्हींका नाम ल्वष्टा भी है। जो देवताओंके बहुई हुए। इन्हींकी कन्या संज्ञाको राज्ञी कहा जाता है। इन्हींको द्यौ, ल्वाश्री, प्रभा तथा सुरेणु भी कहते हैं। इन्हीं संज्ञाकी छायाका नाम निशुभा है। सूर्य भगवान्की संज्ञा नामक भार्या बड़ी ही रूपवती और पतिव्रता थी। किंतु भगवान् सूर्यनारायण मानवरूपमें उसके समीप नहीं जाते थे और अत्यधिक तेजसे परिव्याप्त होनेके कारण सूर्यनारायणका वह स्वरूप सुन्दर मालूम नहीं होता था। अतः वह संज्ञाको भी अच्छा नहीं लगता था। संज्ञासे तीन

संतानें उत्पन्न हुईं, किंतु सूर्यनारायणके तेजसे व्याकुल होकर वह अपने पिताके घर चली गयी और हजारों वर्षतक वहाँ रही। जब पिताने संज्ञासे पतिके घर जानेके लिये अनेक बार कहा, तब वह उत्तर कुरुदेशको चली गयी। वहाँ वह अशिनीका रूप धारण करके तृण आदि चरती हुई समय बिताने लगी।

सूर्यभगवान्के समीप संज्ञाके रूपमें उसकी छाया निवास करती थी। सूर्य उसे संज्ञा ही समझते थे। इससे दो पुत्र हुए और एक कन्या हुई। श्रुतश्रवा तथा श्रुतकर्मा—ये दो पुत्र और अत्यन्त सुन्दर तपती नामकी कन्या छायाकी संतानें हैं। श्रुतश्रवा तो सावर्णि मनुके नामसे प्रसिद्ध होगा और श्रुतकर्मनि शनैष्ठर नामसे प्रसिद्धि प्राप्त की। संज्ञा जिस प्रकारसे अपनी संतानोंसे स्वेच्छ करती थी, वैसा खेल छायाने नहीं किया। इस अपमानको संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णि मनुने तो सहन कर लिया, किंतु उनके छोटे पुत्र यम (धर्मराज) सहन नहीं कर सके। छायाने जब बहुत ही फ़ेशा देना शुरू किया, तब क्रोधमें आकर ब्राल्यन तथा भावी प्रबलताके कारण उन्होंने अपनी विमाता छायाकी भर्तसना की और उसे मारनेके लिये अपना पैर उठाया। यह देखकर कुद्द विमाता छायाने उन्हें कठोर शाप दे दिया—‘दुष्ट ! तुम अपनी माँको पैरसे मारनेके लिये उद्यत हो रहे हो, इसलिये तुम्हारा यह पैर टूटकर गिर जाय।’ छायाके शापसे चिह्नित होकर यम अपने पिताके पास गये और उन्हें साय वृत्तान्त कह सुनाया। पुत्रकी बातें सुनकर सूर्यनारायणने कहा—‘पुत्र ! इसमें कुछ विशेष कारण होगा, क्योंकि अत्यन्त धर्मात्मा तुझ-जैसे पुत्रके ऊपर माताको क्रोध आया है। सभी पापोंका तो निदान है, किंतु माताका शाप कभी अन्यथा नहीं हो सकता। पर मैं तुम्हारे ऊपर अधिक स्वेच्छके कारण एक उपाय कहता हूँ। यदि तुम्हारे पैरके मांसको लेकर कृपि भूमिपर चले जायें तो इससे माताका शाप भी सल्य होगा और तुम्हारे पैरकी रक्षा भी हो जायगी।’

सुमन्तु मुनिने कहा—गजन् ! इस प्रकार पुत्रको आशासन देकर सूर्यनारायण छायाके समीप जाकर बोले—‘छाये ! तुम इनसे खेल क्यों नहीं करती हो ? माताके लिये तो सभी संतानें समान ही होनी चाहिये।’ यह सुनकर

छायाने कोई उत्तर नहीं दिया, जिससे सूर्यनारायणको क्रोध आ गया और वे शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। छाया भगवान् सूर्यको कुद्द देखकर भयभीत हो गयी और उसने अपना समूर्ण वृत्तान्त बतला दिया। तब सूर्य अपने समूर्त विश्वकर्मिकि पास गये। अपने जामाता सूर्यको कुद्द देखकर विश्वकर्मिनि उनका पूजन किया तथा मधुर वचनोंसे शान्त किया और कहा—‘देव ! मेरी पुत्री संज्ञा आपके अत्यन्त तेजको सहन न कर सकनेके कारण वनको चली गयी है और वह आपके उत्तम रूपके लिये बहाँपर महान् तपस्या कर रही है। ब्रह्माजीने मुझे आशा दी है कि यदि उनकी अधिराचि हो तो तुम संसारके कल्याणके लिये सूर्यको तराशकर उत्तम रूप बनाओ।’ विश्वकर्मिकि यह वचन सूर्यनारायणने स्वीकार कर लिया और तब विश्वकर्मिनि शक्तदीपमें सूर्यनारायणको भग्नि (खगाद) पर चढ़ाकर उनके प्रचण्ड तेजको खगाद डाला, जिससे उनका रूप बहुत कुछ सौष्ठु बन गया। सूर्यनारायणने भी अपने योगबलमें इस बातकी जानकारी की कि समूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य हमारी पली संज्ञा अधिनीके रूपको धारण करके उत्तर-कुरुमें निवास कर रही है। अतः सूर्य भी स्वयं अश्वका रूप धारण करके उसके पास आकर घिले। फलतः कालानारम्भे अधिनीसे देवताओंके बैद्य जुड़वा अधिनीकुमारोंका जन्म हुआ। उनके नाम हैं नास्त्य तथा दस। इसके पश्चात् सूर्यनारायणने अपना वास्तविक रूप धारण किया। उस रूपको देखकर संज्ञा अत्यन्त प्रीतिसे प्रसन्न हुई और वह उनके समीप

गयी। तत्पश्चात् संज्ञासे ‘रेवन’ नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भगवान् सूर्यनारायणके समान ही सौन्दर्य-सम्पत्ति था।

इस प्रकार सावर्णि मनु, यम, यमुना, शनि, तपती, दी अधिनीकुमार, बैवस्वत मनु और रेवन—ये सब सूर्यनारायणकी संताने हुई। यमकी भगिनी यमी यमुना नदी बनकर प्रवाहित हुई। सावर्णि आठवें मनु होगे। सावर्णि मनु मेरु पर्वतके पृष्ठप्रदेशपर तपस्या कर रहे हैं। सावर्णिके प्राता शनि एक ग्रह बन गये और उनकी भगिनी तपती नदी बन गयी, जो विश्वगिरिसे निकलकर पश्चिमी समुद्रमें जाकर मिलती है। इस नदीमें स्नान करनेसे बहुत ही पुण्य प्राप्त होता है। सौम्या नदीसे तपतीका संगम और गङ्गा नदीसे बैवस्वती—यमुनाका संगम होता है। दोनों अधिनीकुमार देवताओंके बैद्य हैं, जिनकी विद्यासे ही वैद्युतगण भूमिपर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। सूर्यनारायणने अपने समान रूपवत्ताले रेवन नामक पुत्रको अधिनीका स्वामी बनाया। जो मानव अपने गन्तव्य मार्गिके लिये रेवनकी पूजा करके प्रस्त्रान करता है, उसे मार्गिमें झेला नहीं होता। विश्वकर्मिकि द्वारा सूर्यनारायणको खगादपर चढ़ाकर जो तेज प्राप्त किया गया, उससे उन्होंने भगवान् सूर्यकी पूजा करनेके लिये भोजकोंको उत्पन्न किया। जो अमित तेजस्वी सूर्यनारायणकी संतानोत्पत्तिकी इस कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें दीर्घकालताकर रहनेके पक्षात् पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है। (अध्याय ७९)

सूर्यभगवान्तको नमस्कार एवं प्रदक्षिणा करनेका फल और विजया-सम्मी-ब्रतकी विधि

देवर्षि नारदने कहा—सम्य ! अब मैं आपको भगवान् सूर्यनारायणके पूजन, उनके निमित्त दिये गये दान तथा उनको किये गये प्रणाम एवं प्रदक्षिणाके फलके विषयमें दिष्टी और ब्रह्माजीका संवाद सुना रहा हूँ, आप ध्यानसे सुने—

ब्रह्माजी बोले—दिष्टिन ! सूर्य भगवान्तक पूजन, उनकी स्तुति, जप, प्रदक्षिणा तथा उपवास आदि करनेसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। सूर्यनारायणको नग्न होकर प्रणाम करनेके लिये भूमिपर जैसे ही सिरका स्पर्श होता है,

वैसे ही तत्काल सभी पातक नष्ट हो जाते हैं*। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणकी प्रदक्षिणा करता है, उसे सप्तद्वीपा वसुपतीकी प्रदक्षिणाका फल प्राप्त हो जाता है और वह समस्त रोगोंसे मुक्त होकर अन्त समयमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है, किन्तु प्रदक्षिणामें पवित्रताका ध्यान रखना आवश्यक है। अतएव जूता या खड़ाकें आदि पहनकर प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य जूता या खड़ाकें पहनकर सूर्य-मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह असिष्ट-वन नामक धोर नरकमें जाता

* प्रणिभाय शिरे भूमि नमस्करपरो रहे। तत्काणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥

है। जो प्राणी पष्टी या सप्तमीके दिन एकाहार अथवा उपवास रखकर भक्तिपूर्वक सूर्यनाशयणका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें निवास करता है। कृष्ण पक्षकी सप्तमीको रक्त पुण्योपहारोंसे और शुक्र पक्षकी सप्तमीको खेत कमलपुण्य तथा मोटक आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनाशयणका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे ब्रह्मी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

दिष्ठिन्। जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, महाजया, नन्दा तथा भद्रा नामकी ये सात प्रकारकी सप्तमियाँ कही गयी

हैं। यदि शुक्र पक्षकी सप्तमीको रविवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया ज्ञान, दान, होम, उपवास, पूजन आदि सत्कर्म महापातकोंका विनाश करता है। इस विजया-सप्तमी-ब्रतमें पञ्चमी तिथिको दिनमें एकभूत रहे, पष्टी तिथिको नक्तव्रत करे और सप्तमीको पूर्ण उपवास करे, तदनन्तर आष्टमीके दिन ब्रतकी पारणा करे। इस तिथिके दिन किया गया दान, हृष्ण, देवता तथा पितरोंका पूजन अस्त्रय होता है।

(अध्याय ८०-८१)

द्वादश रविवारोंका वर्णन और नन्दादित्य-ब्रतकी विधि

दिष्ठिने ब्रह्माजीसे पूछा—ब्रह्म! जो मनुष्य आदित्यवारके दिन श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यदेवकर ज्ञान-दानादि कर पूजन करते हैं, उनको कौन-सा फल प्राप्त होता है? और जिस वारके संयोगसे सप्तमी तिथि विजया कहलाती है, उसके माहात्म्यका आप पुनः वर्णन करें।

ब्रह्माजीने कहा—दिष्ठिन्! जो मनुष्य आदित्यवारको श्रद्ध करते हैं, वे सात जन्मतक नीरोग रहते हैं तथा जो नक्त-ब्रत एवं आदित्यहृदयका^१ पाठ करते हैं, वे योगसे मुक्त हो जाते हैं और सूर्यलोकमें निवास करते हैं। उपवास रखकर जो महाश्वेता मन्त्रका^२ जप करते हैं, वे मनोवाज्ञित फलको प्राप्त करते हैं। आदित्यवारके दिन महाश्वेता-मन्त्र तथा घडक्षर-मन्त्र 'खल्लोत्काश स्वाहा' का जप करनेसे निःसंदेह सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

सूर्यनाशयणके द्वादश वार इस प्रकार हैं—नन्द, भद्र, सौम्य, करमद, पुक्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख,

हृदय, रोगहा एवं महाश्वेता-प्रिय। माघ शुक्रपक्षकी पष्टीकी नन्दसंज्ञा है। उस दिन नक्त-ब्रत करके घृतसे सूर्यनाशयणको ज्ञान करना चाहिये तथा खेत चन्दन, अगस्त्यके पुण्य, गुगुल-धूप आदिसे पूजन करके अपूर्ण आदिका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। ब्राह्मणको अपूर्ण देकर स्वर्य भी मौन धारण कर भोजन करना चाहिये। गैरहीके अथवा यक्षके चूर्णमें घृत तथा खड्ड या शङ्कर, निलाकर अपूर्ण बनाना चाहिये और उसीका नैवेद्य सूर्यनाशयणको निवेदित कर निम्र मन्त्र पढ़ते हुए ब्राह्मणको वह नैवेद्य दे देना चाहिये।

आदित्यतेजसोत्पत्रं राज्ञिकरविनिर्मितप्।

श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीक्षापूर्णमुत्तमम्॥

(ब्राह्मण ८२। १८)

ब्राह्मण नैवेद्य ग्रहण कर ले, तदनन्तर उस नैवेद्यको निम्र मन्त्र पढ़ते हुए पूजकरों दे—

कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुक्रदं तथा।

१-भविष्यतपुण्यके नामसे प्राप्त होनेवाले स्तोत्रोंमें 'ओआदित्यहृदय-स्तोत्र'का अत्यधिक प्रचार है और इसकी प्रसिद्धि ब्राह्मी कालमें भी इतनी अधिक थी कि महर्षि परश्वने सूर्यकी दशा-अन्तर्दीपाओंमें तानितके लिये सर्वत्र इसी स्तोत्रके जपका निर्देश दिया है। यह स्तोत्र प्राप्त्यः दो सौ इत्तिकोंमें उपलिपिद्वय है। इसके पाठसे मनुष्य दुःख-दारिद्र्य तथा कुष्ठ आदि असाध्य योगोंसे मुक्त होकर महासिद्धिके प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रमें भगवान् सूर्यकी वाहिनी, अर्जुनान लिपि आदित्य सुन्दर वर्णन है। इसका मण्डलाकृत बद्धा ही मुन्दर है। इसके पाठसे भगवान् सूर्यकी भद्रा उपर्युक्त ही जाती है। सूर्योपासनामें इस 'आदित्यहृदय'का महत्वाकूल स्थान है।

यह स्तोत्र वर्तमान उपलब्ध भविष्यतपुण्यमें प्राप्त नहीं होता, इसमें यह उपलब्ध लिख-भाग प्रतीत होता है। नारदपुण्यमें उपलब्ध भविष्यतपुण्यकी सूर्यकी वर्तमानमें उपलब्ध भविष्यतपुण्यमें नहीं निलिती। उपलब्धमें पुराणोंका प्राचीन रूप न रह जानेसे आज वह सब एकत्र उपलब्ध नहीं हो पाता, परंतु प्राप्त: सभी वृद्ध स्तोत्र-संग्रहोंमें यह 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' संग्रहीत है। वात्सीकीर्ति ग्रामाशयणमें अगस्त्यमुनिक्रिया 'आदित्यहृदय-स्तोत्र' भविष्यतपुण्यके 'आदित्यहृदय-स्तोत्र'से भिन्न है।

२- महाश्वेता-मन्त्र 'गायत्री-मन्त्र'का ही अपर पर्याप्त प्रतीत होता है।

सदा ते प्रतीक्षामि पण्डकं भास्करप्रियम् ॥

(ब्राह्मण ८२। ११)

उपर्युक्त दोनों मन्त्र ग्रहण करने और समर्पित करनेके लिये हैं। नन्दवारका यह विधान कल्याणकारी है। जो इस विधिसे सूर्यदेवकी पूजा करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। उसकी संततिका कभी क्षय नहीं होता अर्थात् उसकी

कुल-परम्परा पृथ्वीपर चलती रहती है तथा उसके बंशमें दारिद्र्य एवं योग भी नहीं होते। सूर्यलोक प्राप्त करनेके पश्चात् पूर्णर्जन्म होनेपर वह पृथ्वीका राजा होता है। इस पूजन-विधानको पढ़ने अर्थात् श्रवण करनेसे भी कल्याण होता है एवं दिव्य अचल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ८२)

भ्राह्मादित्य, सौम्यादित्य और कामदादित्यवार- ब्रतोंकी विधिका निरूपण

ब्रह्माजी बोले—दिष्टिन्! भ्रामपद मासके शुक्र पक्षकी पहिं तिथिको जो वार हो उसका नाम भद्र है। उस दिन जो मनुष्य नक्षत्रत और उपवास करता है, वह हंसयुक्त विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। उस दिन श्वेत चन्दन, मालती-पुष्प, विजय-धूप तथा स्वीकरके नैवेद्यसे मध्याह्नकालमें सूर्यनारायणका पूजन करके ब्राह्मणको भोजन कराकर यथार्थकि दक्षिणा देनी चाहिये।

दिष्टिन्! यदि रोहिणी नक्षत्रसे युक्त आदित्यवार हो तो उसे सौम्यवार कहा जाता है। उस दिन किये जानेवाले स्नान, दान, जय, होम, पितृ-देवादि तर्पण तथा पूजन आदि कृत्य

अक्षय होते हैं।

मार्गशीर्षके शुक्र पक्षकी पहिं तिथिको जो वार हो, वह कामदादित्यवार कहलाता है। यह वार भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन जो भक्ति और श्रद्धासे सूर्यनारायणकी पूजा करता है, वह सभी पातकोंसे विमुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। इस ब्रतको करनेसे विद्यार्थीको विद्या, पुत्रेष्वासे पुत्र, धनार्थीको धन और आरोग्यके अभिलाषीको आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कामदादित्यसे और अन्य सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसीलिये इसका नाम कामद है।

(अध्याय ८३—८५)

पुत्र, जय, जयन्तसंज्ञक आदित्यवार- ब्रतोंकी विधि

ब्रह्माजी बोले—दिष्टिन्! जिस आदित्यवारको हस्त नक्षत्र हो उसे पुत्र (आदित्य) वार कहा जाता है। उस दिन उपवास करना चाहिये और श्राद्ध करके मध्यम पिण्डका प्राशान करना चाहिये। धूप, माल्य, दिव्य गन्ध आदि नाना प्रकारके उपचारोंसे सूर्यनारायणका पूजन कर महाक्षेत्र-मन्त्रको जपते हुए साधकको सूर्यनारायणके समक्ष ही शयन करना चाहिये। प्रातःकालमें ही उठकर स्नान आदिसे निवृत्त हो सूर्यभगवान्को अर्थ देना चाहिये। रक्त-चन्दन तथा करबोरके पुण्योंसे पूजा करनी चाहिये। तत्पक्षात् पाँच ब्राह्मणोंको बुलाकर उनमेंसे दो ब्राह्मणोंको मण-संज्ञक तथा तीन ब्राह्मणोंको भीमसंज्ञक मानकर विधिपूर्वक पार्वण-श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्धके समाप्त होनेपर मध्यम पिण्डको भगवान् सूर्यके सामने रखकर निप्रलिखित मन्त्रसे भक्षण करना चाहिये—

स एव पिण्डो देवेषा योऽभीष्टस्तव सर्वदा ।

अश्रामि पश्यते तुष्यं तेन मे संततिर्भवेत् ॥

(ब्राह्मण ८६। १०)

इस विधानसे पूजा करनेपर सूर्यनारायण निश्चित ही पुत्र प्रदान करते हैं। इस प्रकार उपवासपूर्वक ब्रतको करनेसे धन-धान्य, सुर्क्षा, सुख-आरोग्य तथा सूर्यलोक भी प्राप्त होता है, किन्तु विशेषरूपसे पुत्र-प्राप्तिका ही फल है, इसीसे इस वारको पुत्रद कहते हैं।

ब्रह्माजीने कहा—दिष्टिन्! दक्षिणायनके दिन जो वार हो, वह जयवार कहा जाता है। इस दिन किया गया उपवास, नक्षत्रत, स्नान-दान तथा जय भगवान् सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाला होता है। अतः सूर्यमें सौगुनी प्रीति बढ़ानेवाले इस नक्ष-ब्रतादिको अवश्य करना चाहिये।

यदि उत्तरायणके दिन रविवार हो तो उसे जयन्तवार कहते हैं। इस दिन भगवान् सूर्य स्नान-दानादि कर्म तथा पूजन करनेवालोंको हजार गुना फल प्रदान करते हैं। इस दिन उपवास करके घृत, दूध तथा इक्षुससे सूर्यनारायणको स्नान कराकर चुंकुमका विलेपन करना चाहिये और गुणुलका धूप देकर मोदकका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। इस प्रकार

भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करके तिलसे हवन करना शकुली (पूरी) का भोजन करना चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको मोदक, तिल तथा

(अध्याय ८६-८७)

—१०४—

विजय, आदित्याभिमुख तथा हृदयवार-ब्रतोंकी विधि

ब्रह्माजी बोले— दिष्टिन् ! शुलुपक्षमें रोहिणी नक्षत्रसे

युक्त सप्तमी तिथिको विजय-संक्षेप आदित्यवार कहते हैं। वह सम्पूर्ण पापों और भयोंको नष्ट कर देता है। उस दिन सम्पूर्ण किये गये पुण्यकर्म कोटिगुना फल प्रदान करते हैं।

दिष्टिन् ! माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको जो दिन हो उसे आदित्याभिमुख कहते हैं। उस दिन प्रातःकाल ही ऋान कर गन्ध-पुष्यादि उपचारोंसे सूर्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर रक्तचन्दनके काष्ठसे बने हुए स्तम्भका आश्रय लेकर सूर्यदेवकी ओर मुखकर महाश्वेता-मन्त्र जपते हुए सायंकालतक स्वडा रहना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् मौन होकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। जो मनुष्य इस व्रतका विधिपूर्वक पालन करते हैं, उन्हें भगवान् सूर्यनारायणका

अनुग्रह प्राप्त होता है।

दिष्टिन् ! संक्षिप्तिके दिन यदि गविवार हो तो उसका नाम हृदयवार होता है। वह आदित्यके हृदयको अत्यन्त प्रिय है। उस दिन नक्षत्र करके मन्दिरमें सूर्यनारायणके अभिमुख एक सौ आठ बार आदित्यहृदयका पाठ करना चाहिये अथवा सायंकालतक भगवान् सूर्यका हृदयमें ध्यान करना चाहिये। सूर्यस्त होनेके पश्चात् घर आकर यथाशक्ति ब्राह्मणको भोजन कराये तथा मौनपूर्वक स्वयं भी स्त्रीरका भोजन करके सूर्यदेवका स्मरण करते हुए भूमिपर ही शयन करे। इस प्रकार जो इस दिन ब्रत रहकर श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यनारायणकी पूजा करता है, उसके समाप्त अपीह सिद्ध हो जाते हैं और वह भगवान् सूर्यके समान ही तेज-कान्ति तथा यशको प्राप्त करता है। (अध्याय ८८—९०)

रोगहा एवं महाश्वेतवार-ब्रतकी विधि

ब्रह्माजी बोले— दिष्टिन् ! यदि आदित्यवारको उत्तराफलाल्पनी नक्षत्र पढ़े तो उसे रोगहा वार कहते हैं। यह सम्पूर्ण रोगों एवं भयोंको दूर करनेवाला है। इस दिन जो गन्ध, पुण्य आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करता है, वह सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा सूर्यलोकको प्राप्त होता है। मन्दारके पत्रोंका दोना बनाकर उसीमें उसीके फूल रसकर रात्रिमें भगवान् सूर्यनारायणके सामने रस देना चाहिये तथा प्रातःकाल उड़कर उन्होंने फूलोंसे उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर स्त्रीरका भोजन करके ब्रतकी समाप्ति करनी चाहिये।

दिष्टिन् ! यदि सूर्यग्रहणके दिन गविवार हो तो उसे महाश्वेतवार कहते हैं, वह भगवान् सूर्यको बहुत प्रिय है। उस दिन उपचार करके पवित्रताके साथ गन्ध-पुष्यादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणका पूजन करके महाश्वेता-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर महाश्वेताकी पूजा करके सूर्यनारायणकी पूजा करनेका विधान है। महाश्वेताकी स्थापना करके गन्ध-पुष्य आदिसे उनका पूजन करे तथा उन्हेंकी सम्पूर्ण एक खेदीपर

सूर्यनारायणकी स्थापना कर उनकी पूजा आदि करे। तत्पश्चात् ऋान करके धृतसहित तिलोंका हृवन करे। ग्रहणके समय महाश्वेता-मन्त्रका जप करता रहे और ग्रहणके समाप्त होनेके पश्चात् पुनः ऋान करके महाश्वेता तथा ग्रहाधिपति भगवान् सूर्यका पूजन करे। ब्राह्मणोंसे पुण्य सुनकर उन्हें भोजन कराये तथा यथाशक्ति दक्षिणा दे। उसके बाद स्वयं मौन होकर भोजन करे। इस दिन किये हुए ऋान, दान, जप, होप आदि कर्म अनन्त फल देते हैं।

दिष्टिन् ! सम्पूर्ण पापों और भयोंको दूर करनेवाले सूर्यनारायणके इन द्वादश वारोंका मैने जो वर्णन किया है, इसे जो मनुष्य पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भगवान् सूर्यका प्रिय हो जाता है और जो इन ब्रतोंको नियमपूर्वक करता है, वह धर्म, अर्थ, काम और चन्द्रमाके समान क्वान्ति, सूर्यके समान प्रभा, इन्द्रके समान पराक्रम तथा स्वयं लक्ष्मीको प्राप्त करता है, तदनन्तर अन्तमें वह शिवलोकको चला जाता है।

(अध्याय ९१-९२)

सूर्यदिवकी पूजामें विविध उपचार और फल आदि निवेदन करनेका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—दिण्डन् ! जो प्राणी भगवान् सूर्यनाशयणके निमित्त सभी अर्थकार्य करते हैं, उनके कुलमें रोगी और दरिद्री उत्पन्न नहीं होते । जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक गोवरसे लेपन करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । शेष-रक्त अथवा पीली मिट्टीसे जो मन्दिरमें लेप करता है, वह मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है । जो व्यक्ति उपवासपूर्वक अनेक प्रकारके सुगच्छित फूलोंसे सूर्यनाशयणका पूजन करता है, वह समस्त अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है । घृत या तिल-तैलसे मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला सूर्यलोकके तथा सूर्यनाशयणके प्रीत्यर्थ चौराहे, तीर्थ, देवालम्बादिमें दीपक प्रज्वलित करनेवाला ओजस्वी रूपको प्राप्त करता है । भक्तिभावसे समन्वित होकर जिस मनुष्यके द्वारा सूर्यके लिये दीपक जलवाया जाता है, वह अपनी अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर देवलोकको प्राप्त करता है । जो चन्दन, अगर, बुकुम, कपूर तथा कस्तूरी आदि मिलाकर तैयार किये गये उटबटनसे सूर्यनाशयणके शशीरका लेपन करता है, वह करोड़ों वर्षतक स्वर्गमें विहार कर पुनः पृथ्वीपर सभी इच्छाओंसे संतुष्ट रहता है और समस्त लोकोंका पूज्य बनकर चक्रवर्ती राजा होता है । चन्दन और जलसे मिश्रित पुष्पोंके द्वारा सूर्यको अर्थ्य प्रदान करनेपर पुत्र, पीत्र, पलीसहित स्वर्गलोकमें पूज्य होता है । सुगच्छित पदार्थ तथा पुष्पोंसे युक्त जलके द्वारा सूर्यको अर्थ्य देकर मनुष्य देवलोकमें बहुत समयतक रहकर पुनः पृथ्वीपर राजा होता है । स्वर्णसे युक्त जल अथवा लाल वर्णके जलमें अर्थ्य देनेपर करोड़ों वर्षतक स्वर्गलोकमें पूजित होता है । कमलपुष्पसे सूर्यकी पूजा करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है । श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यनाशयणको गुण्डुल तथा धृतिप्रिण्ठि धूप देनेसे तलकाल ही सभी पापोंसे मुक्त मिल जाती है ।

जो मनुष्य पूर्वाह्नमें भक्ति और श्रद्धासे सूर्यदिवका पूजन करता है, उसे सैकड़ों कपिल गोदान करनेका फल मिलता है । मध्याह्न-कालमें जो जितेन्द्रिय होकर उनकी पूजा करता है उसे भूमिदान और सौ गोदानका फल प्राप्त होता है । सार्वकालकी संध्यामें जो मनुष्य पवित्र होकर शेष वस्त्र तथा

उच्चीष (पगड़ी) धारण करके भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसे हजार गौओंके दानका फल प्राप्त होता है ।

जो मनुष्य अर्धात्रिमें भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे जातिस्मरता प्राप्त होती है और उसके कुलमें धार्मिक व्यक्ति उत्पन्न होते हैं । प्रदोष-वेळामें जो मनुष्य भगवान् सूर्यदिवकी पूजा करता है, वह स्वर्गलोकमें अक्षय-कालकाल आनन्दका उपभोग करता है । प्रभातकालमें भक्ति-पूर्वक सूर्यकी पूजा करनेपर देवलोककी प्राप्ति होती है । इस प्रकार सभी वेळाओंमें अथवा जिस किसी भी समय जो मनुष्य भक्तिपूर्वक मन्दार-पुष्पोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके समान होकर सूर्यलोकमें पूज्य बन जाता है । जो व्यक्ति दोनों अयन-संक्रान्तियोंमें भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकको प्राप्त करता है और वहाँ देवताओंद्वारा पूजित होता है । ग्रहण आदि अवसरोंपर पूजन करनेवाला चिन्तित नहीं होता । जो निद्रासे उठनेपर सूर्यदिवको प्रणाम करता है, उसे प्रसन्न होकर भगवान् अभिलिखित गति प्रदान करते हैं ।

उदयकालमें सूर्यदिवको मात्र एक दिन यदि शूतसे खान करा दिया जाय तो एक लाख गोदानका फल प्राप्त होता है । गायके दूधद्वारा खान करानेसे पुष्परीक-यज्ञका फल मिलता है । इक्षुरससे खान करनेपर अश्वमेध-यज्ञके फलका लाभ होता है । भगवान् सूर्यके लिये पहली बार व्यायी हुई सुपुष्ट गौ तथा शस्य प्रदान करनेवाली पृथ्वीका जो दान करता है, वह अचल लक्ष्मीको प्राप्त कर पुनः सूर्यलोकको चला जाता है और गौके शशीरमें जितने रोये होते हैं, उतने ही करोड़ वर्षतक वह सूर्यलोकमें पूजित होता है । जो मनुष्य भगवान् सूर्यके निमित्त भेरी, शंख, बेणु आदि वायु दान करते हैं, वे सूर्यलोकको जाते हैं । जो मनुष्य भक्तिभावसे सूर्यनाशयणकी पूजा करके उन्हें छत्र, ध्वजा, पताका, विलान, चामर तथा सुवर्णदण्ड आदि समर्पित करता है, वह दिव्य छोटी-छोटी किंविकिणियोंसे युक्त सुन्दर विमानके द्वारा सूर्यलोकमें जाकर आनन्द होता है और चिरकालतक वहाँ रहकर पुनः मनुष्य-जन्म ग्रहण कर सभी राजाओंके द्वारा अभिवन्दित राजा होता है ।

जो मनुष्य विविध सुगन्धित पुण्यों तथा पत्रोंसे सूर्यकी अर्चना करता है और विविध स्लोगोंसे सूर्यका संस्तवन-गान आदि करता है, वह उन्हेंकि लोकको प्राप्त होता है। जो पाठक और चारणगण सदा प्रातःकाल सूर्यसम्बन्धी ऋचाओं एवं विविध स्लोगोंका उपगान करते हैं, वे सभी स्वर्गगामी होते हैं। जो मनुष्य अशोसे युक्त, सुबर्ण, रजत या मणिजटित सुन्दर रथ अथवा दारुमय रथ सूर्यनाशयणके समर्पित करता है, वह सूर्यके वर्णके समान किकिणी-जालमालासे समन्वित विमानमें बैठकर सूर्यलोकको यात्रा करता है।

जो लोग वर्षभर या छः मास नित्य इनकी रथयात्रा करते हैं, वे उस परमगतिके प्राप्त करते हैं, जिसे ध्यानी, योगी तथा सूर्यभक्तिके अनुगामी श्रेष्ठ जन प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य भक्तिभाव-समन्वित होकर भगवान् सूर्यके रथको स्तीचते हैं, वे बार-बार जन्म लेनेपर भी नीरोग तथा दरिद्रतासे रहित होते हैं। जो मनुष्य भास्करदेवकी रथयात्रा करते हैं, वे सूर्यलोकको प्राप्तकर यथाभिलक्षित सुखका आनन्द प्राप्त करते हैं, परंतु जो मोह अथवा द्रोधवद्वा रथयात्रामें बाधा उत्पन्न करते हैं, उन्हें पाप-कर्म करनेवाले मंदेह नामक राक्षस ही समझना चाहिये। सूर्यभगवानके लिये धन-धान्य-हिरण्य अथवा विविध प्रकारके वस्त्रोंका दान करनेवाले परमगतिके प्राप्त होते हैं। गौ, भैंस अथवा हाथी या सुन्दर घोड़ोंका दान करनेवाले लोग अक्षय अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले अक्षमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करते हैं और उन्हें उस दानसे हजार गुना पुण्य-लाभ होता है। जो सूर्यनाशयणके लिये सेती करने योग्य सुन्दर उपजाऊ भूमि-दान देता है, वह अपनी पीढ़ीमें पहलेके दस कुल और पक्षात्मक दस कुलको तार देता है तथा दिव्य विमानसे सूर्यलोकको चला जाता है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भगवान् सूर्यके लिये भक्तिपूर्वक प्राप्त-दान करता है, वह सूर्यके समान वर्णवाले विमानमें आरूढ़ होकर परमगतिको प्राप्त होता है। भक्तिपूर्वक जो लोग फल-पुण्य आदिसे परिपूर्ण

उद्यानका दान सूर्यनाशयणके लिये देते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं। मनसा-याचा-कर्मणा जो भी दुष्कृत होता है, वह सब भगवान् सूर्यकी कृपासे नष्ट हो जाता है। चाहे आर्त हो या रोगी हो अथवा दण्डि या दुःखी हो, यदि वह भगवान् आदित्यकी शरणमें आ जाता है तो उसके सम्पूर्ण कष्ट दूर हो जाते हैं। एक दिनकी सूर्य-पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह अनेक इष्टपूतोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

जो भगवान् सूर्यके मन्दिरके सामने भगवान् सूर्यकी कल्याणकारी लीला करता है, उसे सभी अभीष्ट कामनाओंको सिद्ध करनेवाले राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। गणाधिपि ! जो मनुष्य सूर्यदिवके लिये महाभारत ग्रन्थका दान करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। यमायणकी पुस्तक देवता भनुष्य वाजपेय-यज्ञके फलको प्राप्त कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। सूर्यभगवानके लिये भविष्यपुराण अथवा साम्बपुराणकी पुस्तकका दान करनेपर मानव राजसूय तथा अक्षमेध-यज्ञ करनेवाले फल प्राप्त करता है तथा अपनी सभी मनःकामनाओंको प्राप्त कर सूर्यलोकको पा लेता है और वहाँ चिरकालतक रहकर ब्रह्मलोकमें जाता है। वहाँ सौ कल्पतक रहकर पुनः वहे पृथ्वीपर राजा होता है। जो मनुष्य सूर्य-मन्दिरमें कुआँ तथा तालब्र बनवाता है, वह मनुष्य आनन्दमय दिव्य लोकको प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें शीतकालमें मनुष्योंके शीत-निवारणके योग्य कम्बल आदिका दान करता है, वह अक्षमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य सूर्यमन्दिरमें नित्य पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुण्यका वाचन करता है, वह उस फलको प्राप्त करता है, जो नित्य हजारों अक्षमेधयज्ञको करनेसे भी प्राप्त नहीं होता। अतः सूर्यके मन्दिरमें प्रयत्नपूर्वक पवित्र पुस्तक, इतिहास तथा पुण्यका वाचन करना चाहिये। भगवान् भास्कर पुण्य आरुष्यान-कथासे सदा संतुष्ट होते हैं।

(अध्याय ९३)

एक वैश्य तथा ब्राह्मणकी कथा, सूर्यमन्दिरमें पुराण-वाचन

एवं भगवान् सूर्यको स्नानादि करानेका फल

ब्रह्माजी बोले—दिघिन् ! मैं आपको पितामह और कुमार कार्तिकेयका एक आरुष्यान सुना रहा हूँ, जो पुण्यदायक,

पापनाशक तथा कल्याणकारी है। एक बार सभी लोकोंके रचयिता पितामह सुखपूर्वक बैठे थे, उनके पास श्रद्धा-भक्ति-

समन्वित हो कर्तिकेयने आकर प्रणाम किया और कहा—

विभो ! आज मैं दिवाकर भगवान् सूर्यदिवकर दर्शन करनेके लिये गया था। प्रदक्षिणा करके मैंने उनकी पूजा की तथा परमभक्ति और श्रद्धासे मस्तक शुकाकर उन्हें प्रणाम किया और वहीं बैठ गया। वहाँ मैंने एक महान् आकर्षकी बात देखी—स्वर्णजटित छोटी-छोटी धंटियोंसे युक्त श्रेष्ठ वैद्युतीं मणियों एवं मुक्तज्ञासे सुशोभित विचित्र विमानसे आ रहे एक पुरुषको देखाकर भगवान् दिवाकर सहस्रा आसनसे उठ सड़े हुए। उन्होंने सामने आये हुए उस पुरुषको अपने दाहिने हाथसे पकड़कर अपने सामने बैठाया और उसके सिरको सैंधा तथा उसका पूजन किया, तदनन्तर समीपमें बैठे हुए उस पुरुषसे भगवान् सूर्यने कहा—

हे भद्र ! आपका स्वागत है। आपका हम सबपर बड़ा प्रेम है। आपने बहुत आनन्द दिया। जबतक महाप्रलय नहीं होता, तबतक आप मेरे समीप रहें। उसके पक्षात् उस स्थानको जायें, जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित हैं। इसी बीच भगवान् सूर्यक सामने एक श्रेष्ठ विमानपर आसीन दूसरा पुरुष आया। उसका भी सूर्यभगवान्ने उसी प्रकार आदर किया और उसे भी विनाश भावसे वहीं बैठाया। देवशर्वूल ! भगवान् सूर्यक द्वारा की गयी उन दोनोंकी पूजा देखाकर मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया, अतः मैंने भगवान् भास्तुरसे पूछा—‘देव ! पहले जो यह मनुष्य आपके पास आया है और जिसे आपने अधिक संतुष्ट किया है, इसने कौन-सा ऐसा पुण्यकर्म किया है, जो इसकी आपने स्वयं ही पूजा की है ?’ इस विषयको लेकर मेरे हृदयमें विशेषरूपसे कौतूहल उत्पन्न हो गया है। उसी प्रकारसे आपने दूसरे मनुष्यकी भी पूजा की है। ये दोनों सब प्रकारसे पुण्यकर्म करनेवाले उत्तम जनोंमें भी श्रेष्ठ मनुष्य हैं। आप तो सदा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओंके द्वारा भी अर्चित, पूजित होते हैं, फिर आपके द्वारा ये दोनों किस कारण पूजित हुए ? देवेश ! मुझे आप इसका रहस्य बतायें।’

भगवान् सूर्यने कहा—महापते ! आपने इनके कर्मके विषयमें बहुत अच्छी बात पूछो है, जिस कारणसे ये मेरे पास आये हैं, उसे आप श्रवण करें—पृथ्वीतलपर अयोध्या नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है, जो मेरे अंशमें उत्पन्न राजाओंद्वारा अधिरक्षित है। उस अयोध्या नामक नगरीमें धनपाल नामका

एक श्रेष्ठ वैश्य रहता था। उस पुरीमें उसने एक दिव्य सूर्यमन्दिर बनवाया और बहुत-से श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी पूजा की। इतिहास-पुराणके वाचकोक्ती विशेषरूपसे पूजा की और उनसे पुराण-श्रवण करानेकी प्रार्थना की तथा कहा—द्विजश्रेष्ठ ! इस मन्दिरमें यह चारों वर्णोंका समूह पुराण-श्रवण करनेका इच्छुक है, अतः आप पुराणश्रवण करायें, जिससे भगवान् सूर्य मेरे लिये सात जन्मतक वर देनेवाले हों। आप एक वर्षातक भी रही दी हुई वृत्तिके प्राह्णण करें। उन्होंने वैश्य धनपालके आप्रहको स्वीकार कर लिया। परंतु उस मासमें ही वैश्य धनपाल कालधर्मको प्राप्त हो गया। हे कुमार ! वही यह वैश्य है। मैंने इसीको लानेके लिये विमान भेजा था। पुण्य आख्यानको कहने या सुननेसे जो फल एवं तुष्टि प्राप्त होती है, यह उसीका फल है। गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजन करनेपर मेरे हृदयमें वैसी प्रसन्नता उत्पन्न नहीं होती जैसी पुराण सुननेसे होती है। कुमार ! गौ, सुवर्ण तथा स्वर्णजटित वस्त्रों, ग्रामों तथा नगरोंका दान देनेसे मुझे इतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी प्रसन्नता इतिहास-पुराण सुनने-सुनानेसे होती है। मुझे अनेक खाद्य-पदार्थोंद्वारा किये गये श्राद्धोंसे वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी पुराण-वाचनसे होती है। सुश्रेष्ठ ! इससे अधिक और क्या कहूँ ? इस रहस्यपूर्ण पवित्र आख्यानके वाचनके बिना मुझे अन्य कुछ भी प्रिय नहीं है।

नरोत्तम ! यह जो दूसरा ब्राह्मण यहाँ आया है, यह भी उसी श्रेष्ठ अयोध्या नगरीमें उत्तम कुलका ब्राह्मण था। एक बार यह परम श्रद्धा-भक्तिसे समन्वित होकर धर्मकी उत्तम कथाको सुननेके लिये गया था। वहाँपर उसने भक्तिपूर्वक उत्तम पवित्र आख्यानको सुनकर उन महात्मा वाचककी प्रदक्षिणा की। तत्पश्चात् यह ब्राह्मण उस परम तेजस्वी वाचकको दक्षिणामें एक माशा स्वर्ण दान देकर परम आनन्दित हुआ। यही इसका पुण्य है। जो यह मेरे द्वारा सम्मानित हुआ है यह उसी पुण्यकर्मका परिणाम है। श्रद्धा-भक्तिसमन्वित जो व्यक्ति वाचककी पूजा करता है, उसीसे मैं भी पूजित हो जाता हूँ।

जो मनुष्य अच्छे-से-अच्छे भोज्य पदार्थकि द्वारा वाचकको परित्याकरता है, उसीसे मेरी भी संतुष्टि हो जाती है।

मेरी संताने—यम, यमी, शनि, मनु तथा तपती मुझे उतने प्रिय नहीं हैं, जितना मुझे कथावाचक प्रिय है। वाचकके संतुष्ट होनेपर सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। क्योंकि हे देवसेनापते ! सबसे पहले संसारके द्वाय पूज्य जो मेरा मुख था, उसी मुखसे संसारका कल्याण करनेके निमित्त सभी इतिहास-पुराणादि ग्रन्थ प्रकट हुए। महामते ! मुझे पुराण वेदोंसे भी अधिक प्रिय है। जो श्रद्धाभावसे नित्य इन्हें सुनते हैं और वाचकको वृत्ति प्रदान करते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं। सुव्रत ! धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष—पुण्यार्थचतुष्टयकी उत्तम व्याख्याके लिये मैंने ये इतिहास-पुराण बनाये हैं। वेदोंका अर्थ अत्यन्त दुर्जेय है। अतएव महामते ! इनको जाननेके लिये ही मैंने इतिहास-पुराणोंकी रचना की है। जो मनुष्य प्रतिदिन पुराण-श्रवणका उत्तम कार्य करता है, वह सूर्यदेवसे ज्ञान प्राप्तकर परमपदको प्राप्त करता है। वाचकको जो दक्षिणा देता है, वह सूर्यदेवके लोकको प्राप्त करता है। हे सुश्रेष्ठ ! इसमें आकर्ष्य क्या है ? जैसे देवताओंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, शर्लोमें वज्र श्रेष्ठ है और जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, नदियोंमें सागर श्रेष्ठ माना गया है, वैसे ही सभी ब्राह्मणोंमें

इतिहास-पुराण-वाचक ब्राह्मण श्रेष्ठ है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुराण-वाचकका पूजन करता है, उसके उस पुण्यकर्मद्वाय सम्पूर्ण जगत् पूजित हो जाता है।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—दिष्टिन् ! देवदेवेशर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो मनुष्य धर्मका श्रवण करता है या करता है, उसके पुण्यसे वह परम गतिको प्राप्त करता है।

जो पुरुष भगवान् सूर्यकी तीन बार प्रदक्षिणा करके भूमिपर मस्तक झुकाकर सूर्यनारायणको प्रणाम करता है, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जो मनुष्य जूता पहनकर मन्दिरमें प्रवेश करता है, वह तामिळ नामक भव्यकर नरकमें जाता है। जो सूर्यटिके स्नानार्थ पृथि, दूध, मधु, इक्षुरस अथवा गङ्गादि पवित्र नदियोंका उत्तम जल देते हैं, वे सम्पूर्ण करमनाओंको प्राप्तकर सूर्यमण्डलको प्राप्त करते हैं। अभिषेकके समय जो उनका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हैं, उन्हें अष्टमेघ-यज्ञका फल प्राप्त होता है और उन्हमें वे शिवलमेकको जाते हैं। सूर्यभगवान्को ऐसे स्थानपर ज्ञान करना चाहिये, जहाँ ज्ञानका जल आदि किसीसे रोका न जा सके। जलका लक्ष्मन हो जानेपर अशुभ होता है। (अध्याय १४-१५)

जया-सप्तमी-ब्रतका वर्णन

दिष्टीने कहा—ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो सात सप्तमियोंका वर्णन किया है, उसमें जो पहली सप्तमी है, उसके विषयमें तो आपने विस्तारपूर्वक वर्णन किया, किन्तु शेष छः सप्तमियोंके विषयमें कुछ नहीं कहा। अतः अन्य सभी सप्तमियोंका भी आप वर्णन करें, जिनमें उपवास करके मैं सूर्यलोकको प्राप्त कर सकूँ।

ब्रह्माजी बोले—दिष्टिन् ! शुक्र पक्षकी जिस सप्तमीको हस्त नक्षत्र हो, उसे 'जया' सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया गया दान, हवन, जप, तर्पण तथा देव-पूजन एवं सूर्यदेवका पूजन सौंगुना लाभप्रद होता है। यह सप्तमी भगवान् भास्करको अत्यन्त प्रिय है। यह पापनाशिनी, श्रेष्ठ यश देनेवाली, पुत्र प्राप्त करनेवाली, अभीष्ट इच्छाओंको पूर्ण करनेवाली और लक्ष्मीको प्राप्त करनेवाली है। प्राचीन कालमें इसी तिथिको भगवान् सूर्यने हस्त नक्षत्रपर संक्रमण किया था,

इसलिये इसे शुक्र सप्तमी भी कहते हैं। अपने दोनों हाथोंपे कमल धारण किये हुए भगवान् सूर्यकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक वर्षभर उनका पूजन करना चाहिये। इस ब्रतमें तीन पारणाएं करनी चाहिये। प्रथम पारण चार मासपर करे। उसमें करबोरके पुण्य तथा रत्नचन्दन, गुण्डल-धूप तथा गेहूंके आटेके लड्डूके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। इस विधिसे देवाधिपति मार्तिष्ठ भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंकी पूजा करे। सप्तमी तिथिमें उपवास रखकर अष्टमीको पारण करनी चाहिये। इस पारणमें पीली सरसोंमिश्रित जलसे ज्ञान करे, गोमयका प्राशन करे तथा मदारसे दन्तधावन करे। 'भानुमें ग्रीयताम्'—'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हो'—ऐसा डचारण करते हुए ये क्रियाएं सम्पन्न करे। यह पहली पारणा-विधि है।

दूसरी पारणमें मालतीके पुण्य, श्रीखण्ड-चन्दन,

पायसकर नैवेद्य तथा विजय-धूप देनी चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी वैसा ही भोजन करना चाहिये। 'रत्नमें प्रीयताम्'—'सूर्यदेव ! मुझपर प्रसन्न हो'—ऐसा कहते हुए पञ्चग्रन्थ प्राशनकर खटिरकी लकड़ीसे दन्तधारन करना चाहिये।

तीसरी पारणामें अगस्ति-पूष्यसे भगवान् भास्करका पूजन करना चाहिये। इस ब्रतमें भगवान् सूर्यको श्रीशण्ड, कुसुम, सिंहाङ्क-धूप देने चाहिये, क्योंकि ये भगवान्को अत्यन्त प्रिय हैं।

'विकर्त्तनो मे प्रीयताम्'—'भगवान् विकर्त्तन-सूर्य'

—४४४—

जयन्ती-सप्तमीका विधान और फल

ब्रह्माजी बोले—त्रिलोक ! माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथि जयन्ती-सप्तमी कही जाती है, यह पृथ्यदायिनी, पाषाढिनाशिनी तथा कल्याणकारिणी है। इस तिथिपर जिस विधिसे उपासना करनी चाहिये, उसे आप सुनें। पण्डितोंने इस ब्रतमें चार पारणाओंका उल्लेख किया है। पञ्चमी तिथिमें एकभूत, चतुर्थी नक्षत्रत और सप्तमीमें उपवास करके अष्टमीमें पारणा करनी चाहिये। माघ, फालगुन तथा चैत्र मासमें जब जयन्ती-सप्तमीका ब्रत किया जाय तब भगवान् सूर्यको ब्रह्मलक्ष्मीके सुन्दर पूर्ण चहने चाहिये तथा कुंकुमका विलेपन करना चाहिये, भोदकोंका नैवेद्य और धृतवज्र धूप देना चाहिये। पञ्चग्रन्थ-प्राशन करके पवित्रीकरण करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोदक यथाशक्ति खिलाना चाहिये तथा शालि नामक चावलका भात भी देना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य लोकपूज्य भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह इस ब्रतकी सभी पारणाओंमें अक्षमेथ एवं राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

द्वितीय पारणामें सूर्यभगवान्की पूजा करके राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। वैशाख, ज्येष्ठ और अष्टावृत्त मासमें सूर्यदेवकी पूजा करनेके लिये शतदल कमल तथा श्वेत चन्दन

मुद्रापर प्रसन्न हो'—ऐसी प्रार्थना करते हुए कुशोदकका प्राशन करना चाहिये तथा वेदकी दातून करनी चाहिये। वयकि अन्तमें भगवान् सूर्यकी गन्ध-पूष्य तथा नैवेद्यादि उपचारोंसे विधिवत् पूजा करनी चाहिये, अनन्तर उन्हींके समक्ष अवस्थित होकर परम पवित्र पुराणका वाचन करताना चाहिये।

विषो ! इस विधिसे जो पुल्य इस सप्तमी-तिथिका ब्रत करता है, उसके स्वानादिक समस्त ब्रतोंके कार्य सौगुना फल देनेवाले हो जाते हैं। इस सप्तमीके ब्रतको करनेवाला व्यक्ति यज्ञ, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल तथा लक्ष्मीको प्राप्त कर सूर्यलोकको जाता है। (अध्याय १६)

और गुण्डुके धूपका विधान कहा गया है। इसमें गुण्डुके ब्रत हुए अपूर्वका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और गोमयका प्राशन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको गुण्डुसे ब्रते हुए अपूर्वोंका भोजन करना अच्छा माना गया है। यह पारणा पापनाशिका है।

तृतीय पारणाकी विधि इस प्रकार है—श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासमें रक्त चन्दन, मालारीके पूर्ण और विजय नामक धूपका पूजनमें प्रयोग करना चाहिये। धृतमें बनाये गये अपूर्वोंका नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। ब्राह्मणोंको भोजन भी उसी धृतके अपूर्वोंसे करनेका विधान है। शरीरको परम पवित्र करनेवाले कुशोदकका पान करना चाहिये। यह तृतीय पारणा पापोंका नाश करनेवाली कही गयी है।

अब चौथी पारणा बता रहा है, इसे सुनें—कर्त्तिक, मार्गशीर्ष तथा पौष मासमें सूर्योदयकी पारणा करनेसे अनन्त पृथ्यफल प्राप्त होते हैं। इस पारणामें कनेरके लाल पूर्ण, रक्तचन्दन देने चाहिये। अमृत^१ नामका धूप, पायसका शेष नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। शेष गायके महेंका प्राशन करनेका विधान है।

चारी पारणाओंमें क्रमशः 'चित्रधानुः प्रीयताम्', 'भानुः प्रीयताम्', 'आदित्यः प्रीयताम्' तथा 'भास्करः

१-अग्रह चन्दने मुले सिंहाङ्क त्रूपण तथा। समभागीस्तु

कर्त्तिक्यमिदं चामृतमुच्यते ॥

(ज्ञानपर्व १३। १९)

अग्रह, चन्दन, भोज, सिंहाङ्क (एक गन्ध-द्रव्य) और लिंग (सोठ, पीपर, गिर्व) को समझा लेकर जो धूप बनाया जाता है, उसे अमृत-धूप कहते हैं।

प्रीयताम् ॥—ऐसा उचारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य विश्वासु भगवान् सूर्यनारायणको पूजा करता है, वह फरम पढ़को प्राप्त होता है। इस प्रकार सप्तमी-ब्रत करनेपर ब्रतकर्ताको सभी अर्थीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति हो जाती है। पुण्यार्थी पुत्र तथा धनार्थी धन प्राप्त करता है और रोगी मनुष्य

रोगोंसे मुक्त हो जाता है तथा अन्तमें वह नितान्त कल्याण प्राप्त करता है।

इस प्रकार जो मनुष्य इस सप्तमी-ब्रतका आचरण करता है, वह सर्वत्र विजयी होता है तथा सभी पापोंसे मुक्त होकर वह विशुद्धात्मा सूर्यलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

अपराजिता-सप्तमी एवं महाजया-सप्तमी-ब्रतका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—गणधिप ! भाद्रपद मासके शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथि अपराजिता-सप्तमी नामसे विख्यात है। यह महापातकोका नाश करती है। इस ब्रतमें चतुर्थी तिथिको एकभूक्त और पञ्चमी तिथिमें नक्षत्रत करनेका विधान है। यष्टी तिथिको उपवास करके सप्तमी तिथिमें पारणा करनेका विधान है। विद्वानोंने इसमें भी चार पारणाएं बतायी हैं। सूर्यटिवकी पूजा करवीर-पुण्य, रक्तचन्दन, गुणगुलसे बने हुए धूप, गुडसे बने अपूरपसे करनी चाहिये। भाद्रपद आदि तीन मासोंमें श्वेत पुण्य, श्वेत चन्दन, धूतका धूप तथा पायसके नैवेद्यसे सूर्यटिवका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि तीन महीनोंमें अगस्त्य-पुण्य, कुकुमका विलेपन, सिंहक-धूप, शालि-चालालके नैवेद्य आदिसे पूजा करनी चाहिये। फाल्गुन आदि तीन मासोंमें रक्त कमलके पुण्य, अगस्त, चन्दन, अनन्त नामक धूप, शर्करा या मिश्रीखण्डसे बने हुए अपूरपोंके नैवेद्यसे सूर्यटिवकी पूजा करनी चाहिये। विद्वानोंने ज्येष्ठ आदिके महीनोंमें सूर्यटिवकी पूजा करनेके लिये इसी विधिको कहा है। चारों पारणाओंमें क्रमशः भगवान् सूर्यटिवके नाम इस प्रकार है—सुधांशु, अर्यमा, सविता और विपुलनक। सभी

पारणाओंमें क्रमशः 'सुधांशुः प्रीयताम्' इत्यादि कहे। गोमूत्र, पञ्चगव्य, धृत, गरम दूध—ये ब्रतके क्रमशः प्राशन-पदार्थ हैं।

जो मनुष्य इस विधिसे इस सप्तमी-ब्रतको करता है, वह युद्धमें शत्रुओंसे पराजित नहीं होता। वह शत्रुको जीतकर धर्म, अर्थ तथा कर्म—इस विवरणिके फलको भी निःसंदेह प्राप्त कर लेता है। विवरणको प्राप्त करके वह सूर्य-लोकको प्राप्त होता है।

जो मनुष्य इस प्रकार सदा प्रयत्नपूर्वक सप्तमी-ब्रतको करता है, वह शत्रुको पराजित करके सूर्यलोकको प्राप्त करता है और श्वेत अष्टोंसे युक्त एवं स्वर्णिम धूज-पताकासे समन्वित यानके द्वारा भगवान् वरुणदेवके समीपमें जाकर उनका प्रिय हो जाता है।

ब्रह्माजी बोले—शुक्रपक्षकी सप्तमी तिथिमें जब सूर्य संक्रमण करते हैं, तब वह सप्तमी महाजया कहलाती है, जो भगवान् भास्करको अस्यना प्रिय है। इस अवसरपर किये गये यान, दान, जप, होम और पितृ-देव-पूजन—ये सब कर्त्य कोटि-गुना फल देते हैं—ऐसा भगवान् भास्करने स्वयं कहा है। (अध्याय ९८-९९)

नन्दा-सप्तमी तथा भद्रा-सप्तमी-ब्रतका विधान

ब्रह्माजी बोले—हे वीर ! मार्गशीर्ष मासमें शुक्ल पक्षकी जो सप्तमी होती है, वह नन्दा कहलाती है। वह सभीको आनन्दित करनेवाली तथा कल्याणकारिणी है। इस ब्रतमें पञ्चमी तिथिको एकभूक्त और यष्टी तिथिमें नक्षत्रत कर मनीषीलेप सप्तमी तिथिको उपवास बतलाते हैं। इस ब्रतमें

विद्वानोंने तीन पारणाओंके करनेका उपदेश किया है। इसके पूजनमें मालतीके पुण्य, सुगन्ध, चन्दन, कर्पूर और अगस्त्य मिश्रित धूपका प्रयोग करना चाहिये। खाँड़के सहित दही-भातका नैवेद्य भगवान् भास्करको प्रिय है। उसी खाँड़मिश्रित दही-भातका भोजन ब्राह्मणोंको करवाना चाहिये। तत्प्राप्तान्

१-श्रीखण्ड ग्रन्थसहितमध्य: मिहूक तथा। मुला तथेऽन्तं धूतेश शर्करा गृहाते ज्वलम् ॥
इत्येष धूपोऽनन्तस्तु कथितो देवसत्तम् ।

स्वयं भी उसी भोजनको करना चाहिये। भगवान् भास्करको धूप देनेके लिये प्रथम पारणामें विधि इस प्रकार है— पलाशके पुष्प, पक्षक^१ धूप अथवा यथासामर्थ्य जो भी धूप हो सके, उसी धूपसे पूजा करनी चाहिये।

द्वितीय पारणामें प्रबोध^२ धूप, शर्कराखण्डसे मिश्रित पुएक नैवेद्य सूर्यनारायणको अर्पित करनेका विधान है। स्वाङ्गमिश्रित भोजनसे ब्राह्मणोंके भोजन भी करना चाहिये। निष्ठा-पत्रका प्राशन करनेके पश्चात् स्वयं भी यौन होकर भोजन करना चाहिये।

तृतीय पारणामें भगवान् भास्करको प्रसन्न करनेके लिये नील या श्रेत कमल और गुणुलके धूप तथा पायसका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। प्राशनमें तथा विलेपनमें भी चन्दनके उपयोगकी विधि कही गयी है।

मनुष्योंको सदा पवित्र करनेवाले भगवान् सूर्यनारायणके नामोंको भी सुने—विष्णु, भग तथा धाता ये उनके नाम हैं। प्रलेक पारणामें क्रमशः 'विष्णुः प्रीयताम्' इत्यादि उत्तारण करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य दत्तचित्त होकर भगवान् भास्करको पूजा करता है, वह इस लेकर अपनी कामनाओंको पूर्ण करके अनन्तकालतक आनन्दित रहता है। तत्पश्चात् सूर्यलोकमें जाकर वह वहाँ भी आनन्दको प्राप्त करता है।



तिथियों और नक्षत्रोंके देवता तथा उनके पूजनका फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! यद्यपि भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं, किन्तु सप्तमी तिथि विशेष प्रिय है।

शतानीकने पूछा—जब भगवान् सूर्यको सभी तिथियाँ प्रिय हैं तो सप्तमीमें ही यज्ञ, दान आदि विद्योपरूपसे क्यों अनुष्टुत होते हैं ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें इस

ब्रह्माजी बोले—शुहू पक्षमें सप्तमी तिथिको जब हस्त नक्षत्र हो तो वह भद्रा-सप्तमी कही जाती है। उस दिन भगवान् सूर्यदेवको पहले धोसे, अनन्तर दूधसे तत्पश्चात् इक्षुरससे ऊन कराकर चन्दनका लेप करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें गुणुलका धूप दिखाये। चतुर्थी तिथिको एकभुक्त तथा पञ्चमी तिथिको नक्षत्र करनेका विधान है। पाष्ठी तिथिको अव्याचित रहकर सप्तमी तिथिको उपवास रखना श्रेष्ठ कहा गया है। सप्तमी-व्रतका पालन करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह उस व्रतके दिन पाशाण्डी, सत्कर्मोंसे दूर करनेवाले, विडाल-वृत्तिका आचरण करनेवाले मनुष्योंसे दूर रहे। बुद्धिमान् व्यक्ति सप्तमी-व्रतका पालन करते हुए दिनमें शयन न करे। इस विधिसे जो मनुष्य भद्रा-सप्तमीका व्रत करता है, उसे ऋभु नामक देवता सदा समस्त कल्याणकी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। जो मनुष्य इस तिथिको शालिद्वृण्से भद्र (वृषभ) बनाकर सूर्यदेवको समर्पित करता है, उसको भद्र पुत्र प्राप्त होता है और वह जीवन-पर्यन्त आनन्दित रहता है।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सप्तमी-कल्पके प्रारम्भसे सुनता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलको प्राप्त करनेके पश्चात् परमपद—मोक्षको प्राप्त होता है।

(अध्याय १००-१०१)

१-कर्मी चन्दन कुम्भमालः सिंहकं तथा ॥

सप्तम्य वृक्षं भोम कुम्भम् गृजनं तथा । हरोत्तमी तथा भोम एव पक्षक उच्चले ॥

(ब्राह्मण १०० । ६-३)

कर्मी, चन्दन, कुम्भ (कुटकी), अग्न, विष्णुक, अंथरणी, कम्भी, कुम्भम्, गृजन तथा हरोत्तमीके मेलसे पक्षक धूप बनता है।

२-कृष्णागः सिंह कंजे वालकं वृक्षं तथा ॥

चन्दने तपारे मुसा प्रतोषार्थनान्विता । (ब्राह्मण १०० । ८-९)

कृष्णागः, कंजे कमल, सुगन्धवाल, कल्मी, चन्दन, तपार, नागरनीथा और शर्करा मिलाकर प्रबोध धूप बनता है।

उसका ही स्वामी कहलाया। अतः अपने दिनपर ही अपने मन्त्रोंसे पूजे जानेपर वे देवता अभीष्ट प्रदान करते हैं।

सूर्यने अग्निको प्रतिपदा, ब्रह्माको द्वितीया, यशस्वार्ण कुबेरको तृतीया और गणेशको चतुर्थी तिथि दी है। नागराजको पञ्चमी, कार्तिकेयको षष्ठी, अपने लिये सप्तमी और रुद्रको अष्टमी तिथि प्रदान की है। दुर्गादीवीको नवमी, अपने पुत्र यमराजको दशमी, विश्वेदेवगणोंको एकादशी तिथि दी गयी है। विष्णुको द्वादशी, कामदेवको त्रयोदशी, शङ्खरको चतुर्दशी तथा चन्द्रमाको पूर्णिमाकी तिथि दी है। सूर्यके द्वारा पितरोंको पवित्र, पुण्यशालिनी अमावास्या तिथि दी गयी है। ये कही गयी पंद्रह तिथियाँ चन्द्रमाकी हैं। कृष्ण पक्षमें देवता इन सभी तिथियोंमें शानैः शानैः चन्द्रकल्पओंका पान कर लेते हैं। वे शुलुप्त पक्षमें पुनः सोलहवीं कलाके साथ उद्दित होती हैं। वह अकेली घोड़शी कला सदैव अक्षय रहती है। उसमें साक्षात् सूर्यका निवास रहता है। इस प्रकार तिथियोंका क्षय और वृद्धि स्वयं सूर्यनाशयण ही करते हैं। अतः ये सबके स्वामी माने जाते हैं। ध्यानमात्रसे ही सूर्यटिव अक्षय गति प्रदान करते हैं। दूसरे देवता भी जिस प्रकार उपासकोंकी अभीष्ट कामना पूर्ण करते हैं, उसे मैं संक्षेपमें बताता हूँ, आप सुनें—

प्रतिपदा तिथिये अग्निदेवकी पूजा करके अमृतरूपी घृतका लवण करे तो उस हविसे समस्त धन्य और अपरिमित धनकी प्राप्ति होती है। द्वितीयाको ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मचारी ब्राह्मणको भोजन करनेसे मनुष्य सभी विद्याओंमें पारदृश्य हो जाता है। तृतीया तिथिये धनके स्वामी कुबेरका पूजन करनेसे मनुष्य निष्ठित ही विषुल धनवान् बन जाता है तथा क्रय-विक्रयादि व्यापारिक व्यवहारमें उसे अत्यधिक लाभ होता है। चतुर्थी तिथिये भगवान् गणेशका पूजन करना चाहिये। इससे सभी विद्वानोंका नाश हो जाता है, इसमें संदेह नहीं। पञ्चमी तिथिये नागोंकी पूजा करनेसे विष्वकृ भय नहीं रहता, रुक्षी और पुत्र प्राप्त होते हैं और श्रेष्ठ लक्ष्मी भी प्राप्त होती है। षष्ठी तिथिये कार्तिकेयकी पूजा करनेसे मनुष्य श्रेष्ठ मेधावी, रूप-सम्पन्न, दीर्घायु और कीर्तिको बढ़ानेवाला हो जाता है। सप्तमी तिथियोंचो चित्रभानु नामवाले भगवान् सूर्यनाशयणका पूजन करना चाहिये, ये सबके स्वामी एवं रक्षक हैं। अष्टमी तिथिये वृषभसे सुरोभित भगवान् सदाशिवकी पूजा करनी

चाहिये, वे प्रचुर ज्ञान तथा अत्यधिक कान्ति प्रदान करते हैं। भगवान् शङ्खर मृत्युहरण करनेवाले, ज्ञान देनेवाले और बन्धनमुक्त करनेवाले हैं। नवमी तिथिये दुर्गाकी पूजा करके मनुष्य इच्छापूर्वक संसार-सागरको पार कर लेता है तथा संग्राम और लोकत्रयवाहरमें वह सदा विजय प्राप्त करता है। दशमी तिथिये यमकी पूजा करनी चाहिये, वे निष्ठित ही सभी रोगोंको नष्ट करनेवाले और नरक तथा मृत्युसे मानवका उदार करनेवाले हैं। एकादशी तिथियोंको विश्वेदेवोंकी भली प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। वे भक्तको संतान, धन-धान्य और पृथ्वी प्रदान करते हैं। द्वादशी तिथियोंको भगवान् विष्णुकी पूजा करके मनुष्य सदा विजयी होकर समस्त लोकमें वैसे ही पूज्य हो जाता है, जैसे किरणमाली भगवान् सूर्य पूज्य है। त्रयोदशीमें कामदेवकी पूजा करनेसे मनुष्य उत्तम रूपवान् हो जाता है और मनोवाञ्छित रूपवती भार्या प्राप्त करता है तथा उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। चतुर्दशी तिथिये भगवान् देवदेवेशर सदाशिवकी पूजा करके मनुष्य समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित हो जाता है तथा बहुत-से पुत्रों एवं प्रभुत धनसे सम्पत्र हो जाता है। पौर्णिमासी तिथिये जो भक्तिमान् मनुष्य चन्द्रमाकी पूजा करता है, उसका सम्पूर्ण संसारपर अपना आधिपत्य हो जाता है और वह कभी नष्ट नहीं होता। दिष्ठिण्। अपने दिनमें अर्थात् अमावास्यामें पितृगण पूजित होनेपर सदैव प्रसन्न होकर प्रजावृद्धि, धन-रक्षा, आशु तथा बल-शक्ति प्रदान करते हैं। उपवासके विना भी ये पितृगण उक्त फलको देनेवाले होते हैं। अतः मानवको चाहिये कि पितरोंके भक्तिपूर्वक पूजाके द्वारा सदा प्रसन्न रखे। मूलमन्त्र, नाम-संकीर्तन और अंश मन्त्रोंसे कमलके मध्यमें स्थित तिथियोंके स्वामी देवताओंकी विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक यथाविधि पूजा करनी चाहिये तथा जप-होमादि कार्य सम्पत्र करने चाहिये। इसके प्रभावसे मानव इस लोकमें और परलोकमें सदा सुखी रहता है। उन-उन देवोंके लोकोंको प्राप्त करता है और मनुष्य उस देवताके अनुरूप हो जाता है। उसके सारे अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं तथा वह उत्तम रूपवान्, धार्मिक, शान्तुओंका नाश करनेवाला राजा होता है।

इसी प्रकार सभी नक्षत्र-देवता जो नक्षत्रोंमें ही व्यवस्थित हैं, वे पूजित होनेपर समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्रदान करते

है, अब मैं उनके विषयमें बताता हूँ। अधिनी नक्षत्रमें अधिनीकुमारोंकी पूजा करनेसे मनुष्य दीर्घायु एवं व्याधिमुक्त होता है। भरणी नक्षत्रमें कृष्ण वर्णके सुन्दर पुष्पों तथा शुभ कर्पूरादि गम्भसे पूजित यमदेव अपघट्यसुप्ते मुक्त कर देते हैं। कृत्तिका नक्षत्रमें रक्त पुष्पोंसे बनी हुई माल्यादि और होमके द्वाय पूजा करनेसे अग्रिमेव निश्चित ही यथेष्ट फल देते हैं। रोहिणी नक्षत्रमें प्रजापति—मुख ब्रह्माकी पूजा करनेसे मैं उसकी अभिलाषा पूर्ण कर देता हूँ। मृगशिंह नक्षत्रमें पूजित होनेपर उसके स्वामी चन्द्रदेव उसे ज्ञान और आरोग्य प्रदान करते हैं। आर्ग्र नक्षत्रमें शिवके अर्चनसे विजय प्राप्त होती है। सुन्दर कमल आदि पुष्पोंसे पूजे गये भगवान् शिव सदा कल्याण करते हैं।

पुर्वसु नक्षत्रमें अदितिकी पूजा करनी चाहिये। पूजासे संतुम होकर वे माताके सदृश रक्षा करती हैं। पुर्व नक्षत्रमें उसके स्वामी बृहस्पति अपनी पूजासे प्रसन्न होकर प्रचुर सख्तुदि प्रदान करते हैं। आश्वेषा नक्षत्रमें नारोंकी पूजा करनेसे नागदेव निर्भय कर देते हैं, कठाटे नहीं। भूषा नक्षत्रमें हृष्य-कृष्यके द्वाय पूजे गये सभी पितृगण धन, धान्य, भूत्य, पुत्र तथा पशु प्रदान करते हैं। पूर्वाक्षरल्युनी नक्षत्रमें पूसाकी पूजा करनेपर विजय प्राप्त हो जाती है और उत्तराक्षरल्युनी नक्षत्रमें भग नामक सूर्यदेवकी पुष्पादिसे पूजा करनेपर वे विजय, कन्याको अभीषित पाति और पुरुषको अभीष्ट पत्नी प्रदान करते हैं तथा उन्हें रूप एवं द्रव्य-सम्पदासे सम्पन्न बना देते हैं। हस्त नक्षत्रमें भगवान् सूर्य गन्ध-पुष्पादिसे पूजित होनेपर सभी प्रकारकी धन-सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं। चित्रा नक्षत्रमें पूजे गये भगवान् त्वष्टा शकुरहित राज्य प्रदान करते हैं। स्थाती नक्षत्रमें वायुदेव पूजित होनेपर संतुष्ट हो परमशक्ति प्रदान करते हैं। विशाला नक्षत्रमें लाल पुष्पोंसे इन्द्रामिका पूजन करके मनुष्य इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर सदा तेजस्सी रहता है।

अनुराधा नक्षत्रमें लाल पुष्पोंसे भगवान् मित्रदेवकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह इस लोकमें चिरकालतक जीवित रहता है। ज्येष्ठा नक्षत्रमें

देवराज इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य पुष्टि प्राप्त करता है तथा गुणोंमें, धनमें एवं कर्ममें सबसे श्रेष्ठ हो जाता है। मूल नक्षत्रमें सभी देवताओं और पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे मानव स्वर्गमें अचल-रूपसे निवास करता है और पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करता है। पूर्वायादा नक्षत्रमें अप-देवता (जल) की पूजा और हवन करके मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक संतापोंसे मुक्त हो जाता है। उत्तरायादा नक्षत्रमें विशेषरकी पुष्पादिद्वाय पूजा करनेसे मनुष्य सभी कुछ प्राप्त कर लेता है।

त्रिवण नक्षत्रमें शेत, पीत और नील वर्णके पुष्पोद्वाय भक्तिभावसे भगवान् विष्णुकी पूजा कर मनुष्य उत्तम लक्ष्मी और विजयको प्राप्त करता है। धनिष्ठा नक्षत्रमें गन्ध-पुष्पादिसे वसुओंके पूजनसे मनुष्य बहुत बड़े भयसे भी मुक्त हो जाता है। उसे कहीं कुछ भी भय नहीं रहता। शतभिषा नक्षत्रमें इन्द्रकी पूजा करनेसे मनुष्य व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और आतुर व्यक्ति पुष्टि, स्वास्थ्य और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। पूर्वाभास्रपद नक्षत्रमें शुद्ध सफाटिक मणिके समान कानिमान् अजन्मा प्रभुकी पूजा करनेसे उत्तम भक्ति और विजय प्राप्त होती है। उत्तराभास्रपद नक्षत्रमें अहिर्वृद्ध्यकी पूजा करनेसे परम शान्तिकी प्राप्ति होती है। रेखती नक्षत्रमें शेत पुष्पसे पूजे गये भगवान् पूजा सदैव मङ्गल प्रदान करते हैं और अचल शृति तथा विजय भी देते हैं।

अपनी सामर्थ्यके अनुसार भक्तिसे किये गये पूजनसे ये सभी सदा फल देनेवाले होते हैं। यात्रा करनेकी इच्छा हो अथवा किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी इच्छा हो तो नक्षत्र-देवताकी पूजा आदि करके ही वह सब कर्म करना उचित है। इस प्रकार करनेपर यात्रामें तथा क्रियामें सफलता होती है—ऐसा स्वयं भगवान् सूर्यनि कहा है।

ब्रह्माजीने कहा—मधुसूदन ! आप भक्तिपूर्वक सूर्यकी आराधना करें; क्योंकि भगवान् सूर्यकी नित्य पूजा, नमस्कार, सेवा-ब्रत, उपवास, हृष्णनादि तथा विविध प्रकारसे ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे मनुष्य पापरहित होकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १०२)

सूर्य-पूजाका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—मधुसूदन ! जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवका मन्दिर बनवाता है, वह अपनी सात पीड़ियोंको दिव्य सूर्यलोक प्राप्त करा देता है। सूर्यदेवके मन्दिरमें जितने वर्षपर्वन्त भगवान् सूर्यकी पूजा होती है, उतने हजार वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। जिसके घरमें अर्च, पुण्य, चन्दन, नैवेद्य आदिके द्वाया भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक आराधना होती है, वह चाहे सकाम हो या निष्काम, वह सूर्यकी साम्यता प्राप्त कर लेता है। भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगाकर जो व्यक्ति अत्यन्त सुगन्धित मनोहारी पुण्य, विजय तथा अमृतादि नामक धूप, अत्यधिक सुगन्धित कर्पूरादिके विलेपका लेप, दीपदान, नैवेद्य आदि उपहार भगवान् सूर्यनारायणको प्रतिदिन अर्पण करता है, वह अपनी अभीष्ट इच्छा प्राप्त कर लेता है। यज्ञाधिपति भगवान् भास्कर यज्ञोंसे भी प्रसन्न होते हैं, किन्तु धनवान् तथा लोकसंबंधी मनुष्य ही बहुत-से संसाधनों और नाना प्रकारके सम्पादींसे युक्त एवं विश्वलृत (अश्वेष्य तथा गजसूर्यादि) यज्ञ सम्पन्न कर पाते हैं, इसलिये यदि मनुष्य भगवान् सूर्यकी भक्तिभावसे दूर्वाङ्कुरोंसे भी पूजा करते हैं तो सूर्यदेव उन्हें इन सभी यज्ञोंके करनेसे प्राप्त होनेवाले अति दुर्लभ फलको प्रदान कर देते हैं।

सूर्यदेवको अर्पित करने योग्य पुण्य, भोज्य-पदार्थ—नैवेद्य, धूप, गन्ध और शरीरमें लगानेवाला अनुलेप्य-पदार्थ, भूषण और लाल वस्त्र जो भी उपहार तथा भक्ष्य फल है, वह सब सूर्यदेवके अनुरूप होना चाहिये। उन आदिदेव यज्ञपुरुषकी आप यथाशक्ति आराधना करें। भगवान् सूर्यके मन्दिरमें जो चित्रभानु भगवान् दिवाकरको तीर्थके पवित्र जल, गन्ध, धूत और दूधसे ज्वान करता है, वह स्वर्गलोकके समान मधुर दूध-दहीसे सम्पन्न हो जाता है अथवा इश्वर शान्तिको प्राप्त कर लेता है। अनेक विदेहवंशीय जनक नामसे प्रस्त्यात रुजा और हैह्यवंशी नृपतिगण भगवान् सूर्यकी आराधनासे अमरत्वको प्राप्त हो गये हैं। इसलिये आप भी विधिपूर्वक उपासनासे भगवान् भास्करको संतुष्ट करें, इससे प्रसन्न हुए भगवान् सूर्य शान्ति प्रदान करते हैं।

विष्णुने पूछा—ब्रह्म ! भगवान् सूर्य उपवाससे कैसे संतुष्ट होते हैं ? उपवास करनेवाले भक्तके द्वाया इनकी

आराधना किस प्रकार की जाय ? इसे आप बतायें।

ब्रह्माजीने कहा—जब भोगपरायण व्यक्ति भी धूप, पुण्य आदि उपचारोंसे भगवान् सूर्यकी तन्मयतापूर्वक आराधना कर कल्याण प्राप्त कर लेता है तो फिर उपवास-परायण व्यक्ति यदि आराधना करता है तो उसके कल्याणके विषयमें कहना की क्या है ?

पापोंसे दूर रहना, सद्गुणोंका आचरण करना और सम्पूर्ण भोगोंसे विरत रहना उपवास कहलाता है। जो उपवास-परायण पुरुष भक्तिभावसे एक रात, दो रात अथवा तीन रात भगवान् सूर्यका ध्यान करता है, उनके नामका जप करता है और उनके उद्देश्यसे ही सम्पूर्ण कार्य करता है तथा उन्हींमें अपना मन लगाये हुए हैं ऐसा अनासक्त पुरुष भगवान् सूर्यकी पूजाकर उस परम ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य किसी कामनावश अपने मनको भगवान् सूर्यमें लगाकर ध्यानपूर्वक उनकी उपासना करता है, वह वृषध्वज भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर उस उद्देश्यको प्राप्त कर लेता है।

विष्णुने पूछा—विष्णो ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री आदि सभी सांसारिक पद्धुमें फैसे हुए हैं, उन्हें सुगति कैसे प्राप्त होगी ?

ब्रह्माजीने कहा—मनुष्य निष्कपट-भावसे तिमिरहर भगवान् भास्करकी आराधना करके सद्गुति प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति विषयोंमें आसक्त है तथा भगवान् सूर्यमें मन नहीं लगाता ऐसा पाप-कर्म करनेवाला मनुष्य सद्गुति कैसे प्राप्त कर सकेगा ? संसारके दुःखसे पीड़ित व्यक्ति सद्गुति प्राप्त करना चाहता है तो उस लोकपूज्य सर्वेश्वर भगवान् प्रहाधिपति सूर्यकी पुण्य, सुगन्धित धूप, अग्न, चन्दन, वस्त्र, आभूषण तथा भक्ष्य-नैवेद्यादि उपचारोंसे उपवास-परायण होकर आराधना करे। यदि संसारसे विरत होकर सद्गुति प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो कालके स्वामी सूर्यदेवकी आराधना करे। यदि उनकी आराधनाके लिये पुण्य नहीं है तो शुभ वृक्षोंके कोमल पल्लवों एवं दूर्वाङ्कुरोंसे भी पूजा की जा सकती है। अपनी सामर्थ्यकी अनुसार पुण्य-पत्र-जल तथा धूपसे भक्तिभावपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजाकर वह अतुलनीय संतुष्ट प्राप्त कर सकता है। सूर्यदेवके लिये विधिवत् एक बार

भी किया गया प्रणाम दस अस्थेष्ठ-यज्ञके बगवर होता है। दस अस्थेष्ठ-यज्ञको करनेवाला मनुष्य बार-बार जन्म लेता है, किंतु सूर्यदेवके प्रणाम करनेवाला पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता *।

इस प्रकार भक्तिपूर्वक जिसके द्वारा विधि-विधानसे भगवान् सूर्यकी उपासना की जाती है, वह उत्तम गति प्राप्त करता है। उन्हींको आराधना करके मैंने संसार-पूज्य इस ब्रह्मलक्ष्मी के प्राप्त किया है। आपने भी पहले उन्हीं सूर्यदेवसे अपनी अभीष्ट इच्छाओंको प्राप्त किया। भगवान् शशुर भी उन्हींको आराधनासे ब्रह्महत्यासे मुक्त हुए। भगवान् दिवाकरकी आराधनासे किन्हीं मनुष्योंने देवत्व, किन्हींने गम्भीरत्व और किन्हींने विद्याधरत्व प्राप्त किया है। लेख नामक इन्द्रने एक सौ यज्ञोद्वारा इन्हीं भगवान् सूर्यकी आराधना करके

इन्द्रल प्राप्त किया, इसलिये भगवान् सूर्यके अतिरिक्त अन्य कोई देव पूजनीय नहीं है। ब्रह्मचारीको अन्य देवोंकी अपेक्षा अपने श्रेष्ठ गुरु भगवान् भास्करकी ही आराधना करनी चाहिये, क्योंकि वे यज्ञ-पूज्य विवस्वान् भगवान् सूर्य सर्वदा पूज्य हैं। स्त्रियोंके लिये पतिके अतिरिक्त विभावसु भगवान् सूर्यदेव ही पूज्य हैं। गृहस्थ-पतिके लिये भी गोपति अशून्मान् ही पूजने योग्य है। वैश्योंको भी तमोनाशक सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। संन्यासियोंके लिये भी सर्वदा विभावसु ही ध्यान करने योग्य है।

इस प्रकार सभी वर्णों तथा सभी आश्रमोंके लिये विवेचनानु भगवान् सूर्यनारायण ही उपास्य हैं। उनकी आराधनासे सद्गुरु प्राप्त हो जाती है।

(अध्याय १०३)

त्रिवर्ग-सम्पर्कीकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! जिन-जिन कामनाओंको लेकर अथवा निष्काम होकर भगवान् सूर्यनारायणके उपवास-ब्रतोंको करके व्यक्ति मनोवास्त्रित फल प्राप्त करता है, अब आप उन-उन उपवास-ब्रतोंके विषयमें सुनें।

जो व्यक्ति फाल्गुन मासकी शुक्ल सप्तमी तिथिको भक्तिपूर्वक बार-बार हेलि नामक भगवान् सूर्यका जप एवं पूजन करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। देव-पूजनमें पवित्र होकर १०८ बार जप करना चाहिये। ऋत्वान करते हुए, प्रस्त्वान-कारुणमें, उठते-बैठते अर्थात् सभी समय भगवान् सूर्यका नामोच्चारण करना चाहिये। उपवास करनेवाले व्यक्तिको पारापर्णी, पवित्र और अन्यायी लोगोंसे बातचीत नहीं करनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक सूर्यदेवके प्रति मन एकाग्र करके उनको पूजा करते हुए इस इलोकका पाठ करना चाहिये—

हंस हंस कृपालुस्त्वमगातीनं गतिर्भव ।

संसारार्णवमग्रानां त्राता भव दिवाकर ॥

(अध्याय १०४ । ५)

'हे परमहंस-स्वरूप भगवान् सूर्य ! आप दयालु हैं, मतिहीनोंको सद्गुरु प्रदान करनेवाले हैं, संसार-सागरमें निमग्न

लोगोंके लिये आप रक्षक बने।'

इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर उपवास करते हुए भगवान् सूर्यनारायणका पूजन करना चाहिये। पूर्वाह्नकालमें ऋत्वानकर सूर्यदेवका पूजन करे, तत्पश्चात् 'हंस हंस' इस इलोकका जप करे और भगवान् सूर्यके चरणोंमें तीन बार जलधारा अर्पित करे।

इसी प्रकार चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ मासमें भी भगवान् सूर्यदेवका पूजन करते हुए मनुष्य मूल्यलोकमें ही श्रेष्ठ गतिको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करता है। आश्वास, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन मासमें भी इसी विधिसे उपवास रखकर सूर्यभगवान्का 'मार्त्तिष्ठ' नामसे सम्बद्ध पूजन और जप करना चाहिये। गोमूत्रके प्राशनसे पवित्र मनुष्य धनवान् होकर कुबेरलोकको प्राप्त करता है। संसारके सभी अव्यय आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना एवं अन्तकालमें भगवान् सूर्यका स्मरण करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। क्षतिक आदि चार महीनोंमें दूधका प्राशन करना चाहिये। इन महीनोंमें 'भास्कर' नामसे भगवान् सूर्यका पूजन तथा जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर व्यक्ति भगवान् सूर्यके

* एकोप्ति हेले: सुकृतः प्रणामो दशास्मेपावभूयेन तुल्यः। दशास्मेपी पुनर्नेति जन्म हेलिप्रगामी न पुनर्भवाय ॥

लेकको प्राप्त होता है। प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको यथाभिलक्षित दान देना चाहिये। चातुर्मासकी समाप्तिपर पुण्य-वाचन करना चाहिये और कोर्तनका आयोजन करना चाहिये। विद्वानोंको चाहिये कि कथावाचककी पूजा करके श्राद्धपूर्वक करें, क्योंकि

सिद्ध मालपूजा आदि पक्षात्रोद्ग्राम कथावाचक या ब्राह्मणके सहयोगसे किया गया यथोचित श्राद्ध भगवान् सूर्यनारायणके अभीष्ट है। यह तिथि अभीष्ट धर्म, अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गको संदेश देनेवाली है। (अध्याय १०४)



कामदा एवं पापनाशिनी-सम्पत्ति-ब्रत-वर्णन

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! पाल्यनु मासमें शुक्ल पक्षकी सम्पत्तिको उपवास करके भगवान् सूर्यनारायणकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् दूसरे दिन अष्टमीको प्रातः उठकर स्नानादिसे निवृत हो भक्तिपूर्वक सूर्यटेका सम्पर्क पूजन करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त आहुतियाँ प्रदान कर भगवान् भास्करको प्रणाम कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

यमारात्य पुरा देवी साक्षिकी कामपाप वै ।

स मे ददानु देवेषः सर्वान् कामान् विभावसुः ॥

यमारात्यादितिः प्राप्ता सर्वान् कामान् यथेष्मितान् ।

स ददात्वसिलान् कामान् प्रसत्रो मे दिवस्पतिः ॥

प्रष्टुरात्यश्च देवेन्नो यमभ्यर्थ्य दिवस्पतिः ।

कामान् सम्प्राप्तवान् राज्यं स मे कामं प्रयच्छतु ॥

(ब्राह्मपर्व १०५। ५—७)

'प्राचीन समयमें देवी साक्षिकीने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये जिन आग्रहदेवकी आराधना की थी, वही मेरे आरात्य भगवान् सूर्य मेरी सभी कामनाओंको प्रदान करें। देवों अदितिने जिनकी आराधना करके अपने सभी अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति भगवान् भास्कर प्रसत्र होकर मेरी सभी अभिलाषाओंको पूर्ण करें। (दुर्वासा मुनिके शास्त्रके कारण) राजपदसे च्युत देवराज इन्द्रने जिनकी अर्चना करके अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लिया था, वही दिवस्पति मेरी कामना पूर्ण करें।'

हे गणदध्यज ! इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रार्थना कर पूजा सम्पन्न करें। अनन्तर संयत होकर हविष्यात्रका भोजन

करे। पाल्यनु, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ—इन चार मासोंमें इस प्रकारसे व्रतकी पारणा करनेका विधान है। भक्तिपूर्वक करत्योरके पुण्योंसे चारों महीने सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। कृष्ण अग्रहकी धूप जलानी चाहिये और गो-शुद्धका जल प्राशन करना चाहिये तथा स्वाङ्ग-मिश्रित पक्षात्रका नैवेद्य देकर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये।

आपाह आदि चातुर्मासमें पारणकी किञ्चा इस प्रकार है—इन महीनोंमें चारेलीके पुण्य, गुण्गुलका धूप, कुर्यांका जल और यायसके नैवेद्यका विधान है। स्वयं भी उसी यायसके नैवेद्यको ग्रहण करना चाहिये।

कार्तिक आदि चातुर्मासमें गोमूर्खसे शरीर-शोधन करना चाहिये। दशाङ्क-धूप, रक्त कमल तथा कसारका नैवेद्य भगवान् सूर्यको नैवेदित करना चाहिये। प्रत्येक महीनेमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। प्रत्येक पारणमें भक्तिपूर्वक सूर्यनारायणको प्रसन्न करनेका प्रयास करना चाहिये और यथाशक्ति संचित धनका दान करना चाहिये। विश्वाशान्तयता (कंजूसी) न करे। क्योंकि सद्वावसे पूजा करनेपर तथा दान आदिसे सात घोड़ोंसे युक्त रथपर आरूढ़ होनेवाले भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। पारणके अन्तमें यथाशक्ति जल आदिसे रुदान कराकर पूजा करनेपर भगवान् सूर्य प्रसत्र हो निर्बाधरूपसे घनोवान्धित फल प्रदान करते हैं। यह सप्तमी पुण्यदायिनी, पापविनाशिनी तथा सभी फलोंको देनेवाली है। मनुष्यकी जैसी अभिलाषाएँ होती हैं, वैसे ही फल प्राप्त होते हैं। इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति सूर्यके स्थान ही तेजस्वी बनकर स्वर्णमय विमानपर आरूढ़ हो सूर्यलोकको प्राप्त करता

१- कर्मे चन्दने मुहामग्रं नवै तथा । उपर्णे शर्करा कृष्ण मुण्डे सिंहकं तथा ॥

दशाङ्कोऽप्य सूतो धूपः प्रियो देवस्य सर्वेषाः ॥

(ब्राह्मपर्व १०५। १५-१६)

कर्मै, चन्दन, नाशरमोत्ता, आगू, नागू, कलण, शर्करा, दलवीजी, कल्पी तथा सुगन्ध—इन्हें समभागमें मिलाकर दशाङ्क नामक धूप बनाना है। यह धूप भगवान् सूर्यदेवको मर्यादा प्रिय है।

है तथा वहाँ शाश्वती शान्तिको प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर उन गोपति सूर्यभगवान्को ही कृपासे प्रतापी रुजा होता है।

इसी प्रकार उत्तरायणके सूर्यमें शुक्र पक्षमें भग, अर्चमा,

सूर्य आदिके नक्षत्रोंके पड़नेपर दान-मानसे भगवान् सूर्यकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। इसे पापनाशिनी सप्तमी कहा जाता है।

(अध्याय १०५-१०६)

सूर्यपदद्वय-ब्रत, सर्वार्थि-सप्तमी एवं मार्त्षण्ड-सप्तमीकी विधि

ब्रह्माजी बोले—धर्मज ! अब मैं जगदाता देवदेवेशर भगवान् सूर्यनारायणके पदद्वय-माहात्म्यका वर्णन करता हूँ, इसे आप सुनें।

अंशुमाली सूर्यदिवने संसारके कल्याणकी कामनासे अपने दोनों पादोंको एक पादपीठपर रखा है। उनके वामपादको उत्तरायण और दक्षिणपादको दक्षिणायणके रूपमें जाना चाहिये। सभी इन्द्र आदि देवगण इनके चरणोंवाले बन्दना करते रहते हैं। हम और आप सूर्यदिवके दक्षिणपादकी अर्चना करते हैं। विष्णु तथा शुक्र अद्वापूर्वक उनके वामपादकी पूजा करते हैं। जो मानव प्रत्येक सप्तमीको भगवान् सूर्यदिवकी विधिवत् आराधना करता है, उसपर वे सदा संतुष्ट रहते हैं।

भगवान् विष्णुने पूछा—गोलेक-स्थामी सूर्य-नारायणकी आराधना किस प्रकार की जाती है ? उसका आप वर्णन करें।

ब्रह्माजी बोले—उत्तरायण प्रारम्भ होनेके दिन खान करके संग्रहित मनसे घृत-दुध आदि पदार्थोंके द्वारा भगवान् सूर्यको खान कराना चाहिये। सुन्दर वस्त्रोपहार, पुष्प-धूप तथा अनुलेपनादिसे उनकी विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणादिसे संतुष्ट करना चाहिये। उसके बाद सूर्यभक्ति-परायण व्यक्तिको उनके पदद्वय-ब्रतका विधान ग्रहण करना चाहिये। तदनन्तर खान करके 'चित्रभानु' दिवाकरकी बन्दना करनी चाहिये। खाते-चलते, सोते-जागते, प्रणाम करते, हवन और पूजन करते समय भगवान् चित्रभानुका ही जप करते हुए प्रतिदिन उनके नाम-कीर्तनका ही त्वतक जप करना चाहिये, ज्यतक दक्षिणायणका समय न आ जाय। उनकी प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—

परमात्मपर्यं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम् ।

यमने संस्पर्शिव्यामि स मे भानुः परा गतिः ॥

(अध्याय १०३ । १७)

'चित्रभानु' परमात्मपर परम ब्रह्म हैं, जिनका अन्तक्षरलम्बे मैं भलीपूर्णि स्मरण कर्हना, क्योंकि वे ही सूर्यनारायण पेरो परम गति हैं।'

इस प्रकार सुन्ति करके याण्मासिक भगवान् सूर्यके ब्रतको त्वतक करना चाहिये, ज्यतक दक्षिणायन पूर्ण रूपसे न आ जाय। उसके पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भगवान् मार्त्षण्डके सामने पुण्य-कथा और आख्यानका पाठ करना चाहिये। भक्तिपूर्वक यथाशक्ति वाचक और लेखकका पूजन भी करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य यह ब्रत करता है, उसको इसी जन्ममें सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। यदि इस छः मासके बीचमें ही ब्रतीकी मूल्य हो जाती है तो उसे पूर्ण उपवासका फल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त उसे भगवान् सूर्यनारायणके चरणद्वय-पूजनका फल भी मिलता है।

ब्रह्माजी बोले—माघ मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको सर्वार्थि-सप्तमी कहते हैं। इस ब्रतसे सभी अभीप्सित कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इस ब्रतमें पाषाण्डी आदि दुरुचारियोंसे बार्तालाप न करे और एकाग्र-मनसे विनम्र होकर उहीं भगवान् सूर्यका पूजन करे।

माघ आदि छः मासोंमें प्रत्येक संक्रान्तिको पारणा मानी गयी है। तदनुसार माघ आदि छः मासोंमें क्रमशः 'मार्त्षण्ड', 'क', 'चित्रभानु', 'विभावसु', 'भग' और 'हंस'—ये छः नाम कहे गये हैं। पूरे छः मासोंमें घृत-दुधादि पञ्चग्राम्य पदार्थोंको खान और प्राशनके लिये प्रशस्त एवं पापनाशक माना गया है।

इस ब्रतमें तेल और क्षार पदार्थ ग्रहण न करे, रात्रिमें जागरण करे। संसारमें सब कुछ देवेवाली यह तिथि सर्वार्थीवासि-सप्तमीके नामसे विश्वात है। हे अनव ! अब मैं कल्याण करनेवाली मार्त्षण्ड-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ।

यह ब्रत पौष मासके शुक्र पक्षकी सप्तमीको किया जाता है। इसके सम्यक् अनुष्टानसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है।

इस दिन ब्रत रहकर भगवान् सूर्यका 'मार्तण्ड' नामसे पूजन एवं निरन्तर जप करना चाहिये। ब्राह्मणको भी विशेष श्रद्धा-भक्तिसे पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार पवित्र मनसे सभी मासोंमें उपासना करके प्रत्येक मासमें अपनी जाकिके अनुसार ब्राह्मणोंको गौ आदिक दान देना चाहिये। दूसरे वर्षमें

उपवासपूर्वक यथाशक्ति सूर्यनारायणके निमित्त गौ आदिक दान देनेसे बती साक्षात् भगवान् मार्तण्डके लोकको प्राप्त करता है। इस मार्तण्ड नामक सप्तमीकी नक्षत्रगण उपासना करके ही शुलोकमें प्रकाशित होते हुए अज भी शिथ दृष्ट होते हैं।

(अध्याय १०७—१०९)

अनन्त-सप्तमी तथा अव्यङ्ग-सप्तमीका विधान

ब्रह्माजीने कहा—अच्युत ! भाद्रपद मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको जितेन्द्रिय होकर सप्ताक्षवाहन भगवान् आदित्यके प्रणाम करके पुण्य-धूप आदि सामग्रियोंसे इनका पूजन करना चाहिये। पाखण्डी आदि दुरुचारियोंसे आलाप न करे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर रात्रिमें भौजन होकर भोजन करना चाहिये। इस विधानसे वैठते-बलते, प्रस्थान करते और गिरने-फ़हनेकी स्थितिमें प्रत्येक समय आदित्य नामका स्मरण तथा उच्चारण करते हुए क्रमशः द्वादश मासतक ब्रत और जगदगृह भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ब्रतकी पारणामें पुण्य-पुराणकी कथाका श्रवण करे। सूर्यटिको प्रसन्न करे, इससे पुष्टिलभ होता है। इस सप्तमीमें कथाश्रवणसे अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासकी शुक्ल सप्तमीको अव्यङ्ग-सप्तमी कहा जाता है। इस दिन सप्ताक्षवाहन भगवान् सूर्यकी पुण्य-धूपादिसे

पूजा करे। पाखण्डियोंसे वार्ता न करे, नियतात्मा होकर रहे। ब्राह्मणको दक्षिणा देकर मौन हो रात्रिमें भोजन करे। प्रतिकर्ष अव्यङ्ग बनाकर उन्हें निवेदित करे। अव्यङ्ग-सप्तमीके समय विविध प्रकारके बाजे बजाने चाहिये। ब्राह्मणलोग वेट-मन्त्रोंका उच्चारण करे। जिस प्रकार श्रावण मासमें अन्य देवताओंको पवित्रार्पण किया जाता है, उसी प्रकार सूर्यनारायणको भी प्रत्येक श्रावण मासमें अव्यङ्ग अर्पण करनेका विधान है।

इस प्रकार द्वादश मासपर्वत इस ब्रतको करे। अनन्तमें पारणा करनी चाहिये और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। जो मनुष्य पवित्र होकर ब्रत करके सूर्यनारायणकी आराधना करता है, वह भगवान् बनमाली सूर्यटिके परम दिव्यलोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय ११०-१११)

सूर्यपूजामें भाव-शुद्धिकी आवश्यकता एवं त्रिप्राप्ति-सप्तमी-ब्रत

ब्रह्माजी बोले—गण्डध्वज ! भक्तिपूर्वक शुद्ध हृदयसे मात्र जलपर्णद्वारा भी सूर्यभगवान्की पूजा करनेपर दुर्लभ फलकी प्राप्ति हो जाती है। राग-द्वेषादिसे रहित हृदय, असत्य आदिसे अदूषित वाणी और हिंसावर्जित कर्म—ये भगवान् भास्करकी आराधनाके श्रेष्ठ तीन प्रकार हैं। रागादि दोषोंसे दूषित हृदयमें तिमिरविनाशक सूर्यनारायणकी रक्षितयोका स्पन्दन भी नहीं होता, फिर उनके निवासकी बात कौन कहे ? यहाँतक कि वह तो भगवान् सूर्यके द्वारा संसारपङ्कमें निमग्न कर दिया जाता है।

जिस प्रकार चन्द्रमाकी कला अन्यकारको दूर करनेमें सर्वथा सफल नहीं होती, उसी प्रकार हिंसादिसे दूषित कर्मके

द्वारा सूर्यनारायणकी पूजामें कैसे सफलता प्राप्त हो सकती है? चित्तकी अप्रसन्नताके कारण भी मनुष्य सूर्यटिको प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिये सत्य-स्वभाव, सत्य-वाक्य और अहिंसक कर्मसे ही स्वभावतः भगवान् आदित्य प्रसन्न होते हैं। यदि मनुष्य कलुषित-हृदयसे भगवान् देवेशको सब कुछ दे दे, तो तब भी उन देवदेवेशर भगवान् दिवाकरकी आराधना नहीं होती। अतः आप अपने हृदयको रागादि दोषोंसे रहित बनाकर भगवान् भास्करके लिये अर्पित करे। ऐसा करनेपर दुष्यात्म्य भगवान् भास्करको आप अनायास ही प्राप्त कर लेंगे।

विष्णुने कहा—आपने बताया कि भास्कर हमारे लिये पूजनीय है, अतः उनकी सम्पूर्ण आराधना-विधि आप मुझे

१.—भविष्यपुराणमें अव्यङ्ग शब्द वार-वार आता है। यह सूतमें बनता है, जिसका भोजक ब्राह्मणके हिंये कटिप्रदेशमें वर्धनेवाल विधान है। इसका वर्णन आगे १४२ वें अध्यायमें आया है। इसे यहाँ देखना चाहिये।

बतायें। ब्रह्मन्! श्रेष्ठ कुलमें जन्म, आरोग्य और दुर्लभ धनकी अधिकृदि—ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त होते हैं, उस प्रिप्राप्ति-प्रतको भी हमें बतायें।

ब्रह्माजी बोले—माघ मासमें कृष्ण पक्षकी साप्तमीके दिन हस्त नक्षत्रका योग रहनेपर ब्रतीको चाहिये कि वह जगत्स्थान् सूर्यदेवकी सुगन्ध, धूप, नैवेद्य एवं उपहार आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा पूजा करे। गृहस्थ पुरुष पुष्टेके द्वारा दानादि-युक्त पूजा वर्षपर्यंत सम्पन्न करे और वज्र (बाजरा), तिल, ब्रीहि, यज्ञ, सुखण, यज्ञ, अज्ञ, जल, ओला (ओलेका पानी), उपानह, छत्र और गुड़से बने पदार्थ, (क्रमसे प्रतिमास) मुनियों, ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। इस प्रतमें

आत्मशुद्धिके लिये सूर्यनारायणकी पूजा करके प्रतिमास ब्रह्मशः शाक, गोमूत्र, जल, धूत, दूर्वा, दधि, धान्य, तिल, यज्ञ, सूर्यीकरणोंसे तपा हुआ जल, कमलगट्ठा और दूधका प्राशन करना चाहिये। इस विधिसे इस सप्तमी-प्रतको करनेवाला मनुष्य धन-धान्यसे परिपूर्ण, लक्ष्मीयुक्त तथा समस्त दुःखोंसे रहित होता है और श्रेष्ठ कुलमें जन्म लेकर जितेन्द्रिय, नीरेग, शुद्धिमान् और सुखी रहता है। अतः आप भी बिना प्रमाद किये ही इन प्रभासम्पन्न स्वामी भगवान् दिव्याकरकी आराधना कर कामनाओंके सम्पूर्ण फलको प्राप्त करे।

(अध्याय ११२)

सूर्यमन्दिर-निर्माणका फल तथा यमराजका अपने दूतोंको सूर्यभक्तोंसे

दूर रहनेका आदेश, धृत तथा दूधसे अधिषेकका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे बासुदेव ! जो मनुष्य मिही, लकड़ी अथवा पत्थरसे भगवान् सूर्यकी मन्दिरका निर्माण करताता है, वह प्रतिदिन किये गये यज्ञके फलके प्राप्त करता है। भगवान् सूर्यनारायणका मन्दिर बनवानेपर वह अपने कुलकी सौ आगे और सौ पीछेकी पीढ़ियोंको सूर्यलोक प्राप्त करा देता है। सूर्यदेवके मन्दिरका निर्माण-कार्य प्रारम्भ करते ही सात जन्मोंमें किया गया जो थोड़ा अथवा बहुत पाप है, वह नष्ट हो जाता है। मन्दिरमें सूर्यकी मूर्तिको स्थापित कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और उसे दोष-फलकी प्राप्ति नहीं होती तथा अपने आगे और पीछेके कुलोंका उद्धार कर देता है। इस विषयमें प्रजाओंको अनुशासित करनेवाले यमने पाशदण्डसे युक्त अपने विज्ञानोंसे पहले ही कहा है कि 'मेरे इस आदेशका यथोचित पालन करते हुए तुमलोग संसारमें विचरण करो, कोई भी प्राणी तुमलोगोंकी आजाका उल्लङ्घन नहीं कर सकेगा। संसारके मूलभूत भगवान् सूर्यकी उपासना करनेवाले लोगोंके तुमलोग छोड़ देना, क्योंकि उनके लिये यहाँपर स्थान नहीं है। संसारमें जो सूर्यभक्त है और जिनका हृदय उन्हींमें लगा हुआ है, ऐसे लोग जो सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं, उन्हें दूरसे ही छोड़ देना। बैठते-सोते, चलते-उठते और गिरते-पड़ते जो मनुष्य भगवान् सूर्यदेवका नाम-संकीर्तन करता है, वह भी हमारे लिये बहुत दूरसे ही त्याज्य है। जो

भगवान् भास्करके लिये नित्य-नैमित्तिक यज्ञ करते हैं, उन्हे तुमलोग दृष्टि डाकर भी मत देखना। यदि तुमलोग ऐसा करोगे तो तुमलोगोंकी गति रुक जायगी। जो पुष्प-धूप-सुगन्ध और सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंके द्वारा उनकी पूजा करते हैं, उन्हें भी तुमलोग मत पकड़ना, क्योंकि वे मेरे पिताके मित्र या आश्रितजन हैं। सूर्यनारायणके मन्दिरमें उपलेपन तथा सफाई करनेवाले जो लोग हैं, उनके भी कुलकी तीन पीढ़ियोंको छोड़ देना। जिसने सूर्य-मन्दिरका निर्माण कराया है, उसके कुलमें उपन्थ हुआ पुरुष भी तुमलोगोंके द्वारा बुरी दृष्टिसे देखने योग्य नहीं है। जिन भगवद्भक्तोंने मेरे पिताकी सुन्दर अर्चना की है, उन मनुष्योंको तथा उनके कुलको भी तुम सदा दूरसे ही त्याग देना।'

महात्मा धर्मराज यमके द्वारा ऐसा आदेश दिये जानेपर भी एक बार (भूलसे) यम-विक्रम उनके आदेशका उल्लङ्घन करके राजा सत्राजितके पास चले गये। परंतु उस सूर्यभक्त सत्राजितके तेजसे वे सभी यमके सेवक मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़े, जैसे मूर्च्छित पक्षी पर्वतपरसे भूमिपर गिर पड़ता है। इस प्रकार जो भक्त भगवान् सूर्यके मन्दिरका निर्माण करता-करता है, वह समस्त यज्ञोंको सम्पन्न कर लेता है, क्योंकि भगवान् सूर्य स्वयं ही सम्पूर्ण यज्ञमय है।

ब्रह्माजी बोले—सूर्यकी प्रतिष्ठित प्रतिमाको जो भीसे

ज्ञान करता है, वह अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कृष्णपक्षकी अष्टमीके दिन सूर्यभगवान्को जो धीसे ज्ञान करता है, उसे सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त हो जाता है। सप्तमी अथवा षष्ठीके दिन सूर्यनारायणके गायके धीसे ज्ञान करनेसे सभी पापक दूर हो जाते हैं। संध्याकालमें धीसे ज्ञान करनेपर तो ज्ञात-अज्ञात सम्पूर्ण पाप दूर हो जाते हैं। सूर्यनारायण सर्व-यज्ञरूप हैं और समस्त हव्य-पदार्थोंमें भी ही उत्तम पदार्थ है, इसलिये उन दोनोंका संगम होते ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सूर्यको दूधसे ज्ञान करनेवाल मनुष्य सात जपोंका

सुखी, ऐगरहित और रूपवान् होता है और अन्तमें दिव्यलोकमें निवास करता है। जैसे दूध रूपरूप होता है और रोगादिसे मुक्ति देनेवाल है, वैसे ही दूधसे ज्ञान करनेपर अज्ञान हटकर निर्वल ज्ञान प्राप्त होता है। दूधके ज्ञानसे भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न होकर सभी प्राहोंको अनुकूल करते हैं तथा सभी लोगोंको पुष्टि और प्रीति प्रदान करते हैं। वी और दूधसे तिमिर-विनाशक देवेश सूर्यिको ज्ञान करनेपर उनकी दृष्टिमात्र पड़ते ही मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है।

(अध्याय ११३-११४)

कौसल्या और गौतमीके संवाद-स्वप्नमें भगवान् सूर्यका माहात्म्य- निरूपण तथा भगवान् सूर्यके प्रिय पत्र-पुष्पादिका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—जनार्दन ! देवलोकमें गौतमी और कौसल्याका सूर्यके विषयमें एक पुरातन संवाद प्रसिद्ध है। एक बार गौतमी ब्राह्मणीने स्वर्गमें अपने पतिके साथ अतिशय रमणीय कौसल्याको देखकर आकृत्यचिकित होकर पूछा—'कौसल्ये ? स्वर्गमें निवास करनेवाले सैकड़ों देवता, अनेक देवाङ्गनाएँ हैं, इसी प्रकार सिद्धांग और उनकी पत्नियां आदि भी हैं, किन्तु उनमें न ऐसी गम्य है, न ऐसी कान्ति है, न ऐसा रूप है। भारण किये हुए वस्त्र तथा आभूषण भी ऐसे नहीं सुशोभित हो रहे हैं, जैसे कि आप दोनों रुप-पुरुषोंके हो रहे हैं। आप दोनोंने कैम-सा ऐसा तप, दान अथवा होमकर्म किया है, जिसका यह फल है। आप इसका वर्णन करें।

कौसल्या बोली—गौतमी ! हम दोनोंने यज्ञेश्वर भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना की है। सुगन्धित तीर्थ-जलोंसे तथा घृतसे उन्हें ज्ञान कराया है। उन्हींकी कृपासे हमने स्वर्ग, निर्वल कान्ति, प्रसन्नता, सौम्यता और सुख प्राप्त किया है। हमलोगोंके पास जो भी आभूषण, वस्त्र, रत्न आदि प्रिय वस्तुएँ हैं, उन्हें भगवान् सूर्यको अर्पण करनेके बाद ही हम धारण करते हैं। स्वर्गप्राप्तिकी अभिलाषासे हम दोनोंने भगवान् सूर्यकी आराधना की थी और उस आराधनाके फलस्वरूप ही हमलोग स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। जो निष्काम-भावसे भलीभांति सूर्यकी उपासना करता है, उसे भगवान् सूर्य मुक्ति प्रदान करते हैं। त्रिलोकके सृष्टिकर्ता सविताकी तृप्तिसे ही सब कुछ प्राप्त होता है।

सुखी, ऐगरहित और रूपवान् होता है और अन्तमें दिव्यलोकमें निवास करता है। जैसे दूध रूपरूप होता है और रोगादिसे मुक्ति देनेवाल है, वैसे ही दूधसे ज्ञान करनेपर अज्ञान हटकर निर्वल ज्ञान प्राप्त होता है। दूधके ज्ञानसे भगवान् सूर्यनारायण प्रसन्न होकर सभी प्राहोंको अनुकूल करते हैं तथा सभी लोगोंको पुष्टि और प्रीति प्रदान करते हैं। वी और दूधसे तिमिर-विनाशक देवेश सूर्यिको ज्ञान करनेपर उनकी दृष्टिमात्र पड़ते ही मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है।

(अध्याय ११३-११४)

सूर्यभगवान्स्को चक्राना चाहिये। फल तथा नैवेद्यादि भी जो अपनेको प्रिय हो उन्हें देना चाहिये। सुवर्ण, चाँदी, मणि और मुक्ता आदि जो अपनेको प्रिय हों, उन्हें भी भगवान् सूर्यको

निवेदित करना चाहिये। अपनेको भास्करके रूपमें मानकर सारी यज्ञ-क्रियाएँ अत्यन्तरूप भगवान् सूर्यको निवेदित करनी चाहिये^१। (अध्याय ११५)

सूर्य-भक्त सत्राजितकी कथा तथा त्रिविक्रम-ब्रतकी विधि

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! ग्राचीन कालमें यज्ञ यत्किंतके कुरुमें सत्राजित् नामक एक प्रतापी चक्रवर्ती राजा हुए थे। वे अत्यन्त प्रभावशाली, तेजस्वी, कान्तिमान्, क्षमावान्, गुणवान्, तथा बलशाली राजा थे तथा धीरता, गम्भीरता एवं यशसे सम्पन्न थे। उनके विषयमें पुण्यवेत्ता लोग एक गाथा गाते हैं— महायाह सत्राजितके इस पृथ्वीपर गम्य करते हुए जहाँसे सूर्य उदित होते और जहाँ अस्त होते हैं, जिनमें भ्रमण करते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र सत्राजित्-क्षेत्र कहलाता है^२। राजा सत्राजित् सम्पूर्ण रूपोंसे परिपूर्ण सहस्रीपवती पृथ्वीपर धर्मपूर्वक गम्य करते थे। वे सूर्यदिवके परम भक्त थे। उनके ऐश्वर्यको देखकर सभी लोगोंको बड़ा आक्षर्य होता था। उनके गम्यमें सभी व्यक्ति धर्मनियायी थे। यज्ञ सत्राजितके चार मन्त्री थे, वे सब अप्रतिहत सामर्थ्यवाले और यज्ञाके स्वाभाविक भक्त थे। भगवान् सूर्यके प्रति उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी और उनकी सामर्थ्यको देखकर न केवल उनकी प्रजाको आक्षर्य होता था, बल्कि स्वयं यज्ञ भी अपने ऐश्वर्यपर आक्षर्यचकित थे। एक बार उनके मनमें आया कि अगले जन्ममें भी मेरा ऐसा ही ऐश्वर्य कैसे बना रहे। यह सोचकर उन्होंने शास्त्र और धर्मके तत्त्वको जाननेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उनकी यथोचित भक्तिपूर्वक पूजा कर उन्हें आसनपर बिठलाया और उनसे कहा—'भगवन् ! यदि आपलोगोंकी मुझपर कृपा है तो मेरी जिज्ञासाको शान्त करे।'

ब्राह्मणोंने कहा—'महाराज ! आप अपना संदेह हमलोगोंके सम्मुख प्रस्तुत करें। आपने हमारा पालन-पोषण किया है और सभी प्रकारसे भोजन आदिद्वारा संतुष्ट रखा है। विद्वान् ब्राह्मणका तो कर्तव्य ही है कि वह धर्मके संदेहको दूर

करे, अधर्मसे निवृत्त करे और कल्याणकारी उपदेशको भलीभांति समझायें^३। आप अपनी इच्छाके अनुसार जो पूछना चाहें पूछें।' तभी उनकी महारानी विमलवतीने भी राजा से निवेदन किया कि 'महाराज ! मेरा भी एक संदेह है, आप महात्माओंसे पूछकर निवृत्त करा ले। मैं तो अन्तःपुरमें ही रहती हूँ। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप प्रथम मेरा ही संदेह निवृत्त करा दें, क्योंकि आपके संदेहकी निवृत्तिके अनेक साधन हैं।'

राजा सत्राजितने कहा—'प्रिये ! क्या पूछना चाहती हो, पहले मैं तुम्हारा ही संदेह पूछूँगा।'

विमलवतीने कहा—'महाराज ! मैंने अनेक राजाओंके चरित्र और ऐश्वर्यको सुना है, किंतु आपके समान ऐश्वर्य अन्य लोगोंको सुलभ नहीं है, यह किस कर्मका फल है ? मैंने कौन-सा उत्तम कर्म किया था, जिसके फलस्वरूप मुझे आपकी गानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ? पूर्वजन्ममें हम दोनोंने कौन-सा पुण्यकर्म किया है ? इस विषयमें आप मुनियोंसे पूछें।'

सत्राजित् बोले—'देवि ! तुमने तो मेरे मनकी बात जान ली है। मुनियोंकी बातें सत्य हैं, पलीं पुरुषकी अर्धाङ्गिनी होती है। ऐसी कोई बात नहीं है जो इन महामुनियोंसे छिपी हो। इन महात्माओंसे मैं भी यही पूछना चाहता था। अनन्तर महाराजने महात्माओंसे पूछा—'भगवन् ! मैं पूर्वजन्ममें कौन था, मैंने कौन-से पुण्य कर्म किये थे ? इस सर्वाङ्गसुनुदीरी मेरी पलींने कौन-से उत्तम कर्म सम्पन्न किये थे, जिससे हमें ऐसी दुर्लभ लक्ष्मी प्राप्त हुई है। हमलोगोंमें परस्पर अतिशय प्रीति है। सभी यज्ञ मेरे अधीन हैं, मेरे पास असीम द्रव्य हैं और

१-आत्माने भास्करे मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत्। तत्तद्व्यतरूपाय भास्कराय निवेदयेत्॥ (ब्राह्मणी ११५। ३७)

२- सत्राजिते महायाहो कृप्य धात्रो समाप्तिते॥

३- संतुष्टे ब्रह्मणोऽधीयाच्छिन्दादा धर्मसंशयम्। हिंस चोपदिशोऽर्थं अहिंसा निवृत्तेत्॥ (ब्राह्मणी ११६। ९-१०)

सं० अ० पु० अ० ५— (ब्राह्मणी ११६। २५)

मैं अत्यन्त बलशाली हूँ। मेरा शरीर भी नीरोग है। मेरी पलोंके समान संसारमें कोई स्त्री नहीं है। सभी मेरे असीम तेजको सहन करनेमें असमर्थ हैं। महामुने ! आपलेंग त्रिकालज्ञ हैं। आप मेरी जिज्ञासाको शान्त करें। राजाके इस प्रकार पूछनेपर उन ब्राह्मणोंने सूर्यदेवके परम भक्त परावसुसे प्रार्थना की कि आप ही इनके संदेहको निवृत्त करें। शर्मज्ञ ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिसे महामति परावसुने योग-समाधिके द्वारा राजा तथा रानीके पूर्वजन्मके सभी कर्मोंकी जानकारी प्राप्त कर राजासे कहना आरम्भ किया—

परावसु खोले—महाराज ! आप पूर्वजन्ममें बड़े निर्दिष्टी, हिस्क तथा कठोर हृदयके शूद्र थे, कुष्ठ-रोगसे पीड़ित थे। सुन्दर नेत्रोंशाली ये महारानी उस समय भी आपकी ही भार्या थीं। ये ऐसी पतिव्रता थीं कि आपके द्वारा पीड़ित होनेपर भी आपकी सेवामें निन्तर संलग्न रहती थीं, परंतु आपकी अतिशय कृतताके कारण आपके बन्धु-आन्ध्र आपसे अलग हो गये और आपने भी अपने पूर्वजोद्वारा संचित धनको नष्ट कर डाला। अनन्तर आपने कृषि-कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु दैवेच्छासे वह भी व्यर्थ हो गया। आप अत्यन्त दीन-हीन होकर दूसरोंकी सेवाद्वारा जीवन-यापन करने लगे। आपने अपनी स्त्रीको छोड़नेका बहुत प्रयास किया, किन्तु उसने आपका साथ नहीं छोड़ा। इसके बाद आप दोनों काल्यकुब्ज देशमें चले गये और भगवान् सूर्यके मन्दिरमें सेवा करने लगे। वहाँ प्रतिदिन मन्दिरका मार्जन, लेपन, शोक्षण (जल छिड़कना) आदि कार्य बड़े भक्तिभावसे करते रहे। मन्दिरमें पुण्यकी कथा होती थी। आप दोनोंने उसका भक्तिपूर्वक श्रवण किया। कथा-श्रवण करनेके बाद आपकी पत्नीने पितासे प्राप्त अंगूठीको कथामें चढ़ा दिया। आपके मनमें रात-दिन यही चिन्ता रहती थी कि यह मन्दिर कैसे सच्छ रहे। आप दोनों बहुत दिनोंतक वहाँ रहे। भगवान्के सेवारूपी योगकर्ममें आपका मन अहर्निश लगा रहता था।

इस प्रकार आप दोनों निष्काम-भावसे भगवान् सूर्यकी सेवा करते और जो कुछ मिलता, उसीसे निर्वाह करते थे। गोपति भगवान् सूर्यका आप नित्य चिन्तन करते थे, अतः आपके सभी पाप समाप्त हो गये।

किसी समय अपनी विशाल सेनाके साथ कुवलश

नामका एक राजा वहाँ आया। उसकी अपार सम्पत्ति और हजारों श्रेष्ठ यनियोंको देखकर आप दोनोंको भी राजा-रानी बननेकी इच्छा हुई। कुछ ही समयमें आपका देहान्त हो गया। सूर्यदेवकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक की गयी सेवा तथा पुण्य-श्रवणके प्रभावसे आप राजा हुए और आपकी स्त्री रानी हुई तथा आप दोनोंको जो असीम तेज प्राप्त हुआ है, उसका भी कारण सुनिये—

जब मन्दिरमें दीपक तेल तथा बत्तीके अभावमें बुझने लगता था, तब आप अपने भोजनके लिये रखे तेलसे उसे पूरित करते थे और आपकी रानी अपनी साढ़ी फाड़कर उससे बत्ती बनाकर जलाती थी। यजन ! यदि अन्य जन्ममें भी आपको ऐस्थर्यकी इच्छा है तो भगवान् सूर्यकी श्रद्धापूर्वक आराधना करें। गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदि जो आपको प्रिय हों, वही भगवान् सूर्यको अर्पण करें। उनके मन्दिरमें मार्जन, उपलेपन आदि कार्य करें, जिससे मन्दिर स्वच्छ और निर्मल रहे। उत्तम दिनोंमें उपवास कर रात्रि-जागरण और नृत्य-गीत-वाद्यादिद्वारा महोत्सव जारीये। पुण्य-इतिहास आदिकी कथा श्रद्धापूर्वक सुनें तथा भगवान् सूर्यकी प्रसन्नताके लिये वेद-पाठ करायें। सदा निष्काम-भावसे तन्मय होकर उनकी सेवामें लगे रहें। संतुष्ट होकर भगवान् सूर्य अधीष्ट फल देते हैं। वे पुण्य, नैवेद्य, रल, सुवर्ण आदिसे उतना प्रसन्न नहीं होते, जितना वे भक्तिभावसे प्रसन्न होते हैं। यदि भक्तिभावपूर्वक सूर्यकी आराधना और विविध उपचारोंसे पूजन करेंगे तो इन्द्रसे भी अधिक वैभवकी प्राप्ति कर लेंगे।

राजा सत्राजितने कहा—भगवन् ! इन्द्रत्वकी प्राप्ति या अमरत्वकी प्राप्तिसे जो आनन्द होता है, वह आनन्द आपकी इस वाणीके सुनकर मुझे प्राप्त हुआ। अजानकरणी अन्धकारके लिये आपकी यह वाणी प्रदीप दीपकके समान है। सम्पत्तिके विनाशकी सम्पादनासे हम बहुत व्याकुल थे। आपने सम्पत्ति-प्राप्तिके लिये मूल तत्वका आज उपदेश दिया है। इससे यह सिद्ध हो गया कि मुझे यह सारी सम्पत्ति पूर्वजन्मके सुकृतकर्मके ही फलस्वरूप प्राप्त हुई है। भक्तिमान् दार्ढ्र भी भगवान् सूर्यको प्रसन्न कर सकता है, किन्तु एक ऐस्थर्यशाली धनवान् भक्तिहीन होनेपर उनका अनुप्राप्त नहीं प्राप्त कर

सकता। भगवन्! आप मुझे सूर्यभगवान्‌की आराधनाके उस मार्गको सूचित करें, जिससे शीघ्र ही उनका अनुग्रह प्राप्त हो सके।

परावसु बोले—गजन्! कार्तिक मासमें प्रतिदिन भगवान् सूर्यका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये और स्वयं भी एक ही बार भोजन करना चाहिये। इस आराधनासे बाल्यावस्थामें किये गये ज्ञात-अज्ञात सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। मार्गशीर्षमें पूर्वोक्त रीतिसे ब्रत करनेवाले स्त्री-पुरुषकी, ब्राह्मणको मरकत मणिका दान करनेसे प्रौढ़ावस्थामें किये गये पापोंसे मुक्ति हो जाती है। पौष मासमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार एकभूत हो श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना करनेसे वृद्धावस्थामें किये गये सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

इस त्रैमासिक ब्रतको श्रद्धापूर्वक विधि-विधानसे करनेवाले स्त्री या पुरुष सूर्यभगवान्‌के कृपापात्र हो जाते हैं और लघु पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। दूसरे वर्ष इसी प्रकार त्रैमासिक ब्रत करनेपर सभी उपपातक निवृत्त हो जाते हैं। तीसरे वर्ष भी इस ब्रतको करनेपर महापातक नष्ट हो जाते हैं और मनोवाचित्त फलकी प्राप्ति होती है। यह ब्रत तीन मासमें सम्पन्न होता है और इसे तीन वर्षतक करना चाहिये। सभी अवस्थाओंमें आधिधौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—त्रिविध

पातक इसके द्वारा नष्ट हो जाते हैं। इस सर्वपापहर्ता ब्रतको त्रिविक्रम-ब्रत कहा जाता है।

राजा सत्राजितने कहा—भगवन्! ब्रतका विधान तो मैंने सुना, परंतु भोजन कैसे ब्राह्मणको करना चाहिये, यह भी आप कृपाकर बतायें।

परावसु बोले—पौराणिक ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये। इस प्रसंगमें अरुणको सूर्यदेवने जो निर्देश दिया था, वह मैं आपको बताता हूँ—

किसी समय उदयाचलपर अरुणने भगवान् सूर्यसे पूछा—‘महाराज ! कौन-कौन पुण्य, नैवेद्य, वस्त्र आदि आपको प्रिय हैं और कैसे ब्राह्मणको भोजन करनेसे आप संतुष्ट होते हैं?’ इसे आप कृपाकर बतायें।

भगवान् सूर्यने कहा—अरुण ! करवारेके पुण्य, रक्त-चन्दन, गुण्डलका धूप, धोका दीपक और मोदक आदि नैवेद्य मुझे प्रिय हैं। मेरे भक्त और पौराणिक ब्राह्मणको दान देकर उसके प्रति श्रद्धा समर्पित करनेसे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता गीत, वाद्य और पूजन आदिसे नहीं होती। मैं पुण्य आदिके वाचन-श्रवणसे अतिशय प्रसन्न होता हूँ। इतिहास-पुण्यके वाचक तथा मेरी पूजा करनेवाला भोजक—ये दोनों मुझे विशेष प्रिय हैं। इसलिये पौराणिकज्ञ पूजन करे और इतिहास आदिको सुने। (अध्याय ११६)

भोजकोंकी उत्पत्ति तथा उनके लक्षणोंका वर्णन

अरुणने पूछा—भगवन्! यह भोजक कौन है? किसका पुत्र है? इसने ऐसा कौन-सा उत्तम कर्म किया है, जिस कारण ब्राह्मण आदि वर्णोंको छोड़कर आपका इसपर इतना अनुग्रह हुआ? आप कृपाकर सब मुझे बतायें।

आदित्य बोले—महामति बैठनेतेर! तुमने बहुत सुन्दर बात पूछी है। इसके उत्तरमें मैं जो कहता हूँ, उसे तुम सावधान होकर सुनो। अपनी पूजाके निमित्त ही मैंने अपने तेजसे भोजकोंकी उत्पत्ति की है। ये वर्णतः ब्राह्मण हैं और मेरी पूजाके लिये अनुष्ठानमें तत्पर रहते हैं। ये भोजक मुझे अति प्रिय हैं।

प्राचीन कालमें शाकद्वापके स्वामी राजा प्रियव्रतके पुत्रने विमानके समान एक भव्य सूर्य-मन्दिर बनवाया और उसमें

स्थापित करनेके लिये सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सोनेकी एक दिव्य सूर्यकी प्रतिमा भी बनवायी। अब राजाको यह चिन्ता होने लगी कि मन्दिर तथा प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कैसे कराये? उन्हें कोई योग्य व्यक्ति नहीं दिखायी दिया। अतः वह राजा मेरी शरणमें आया। अपने भक्तको चिन्ताप्रस्तु देखकर मैंने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और पूछा—‘वत्स ! तुम क्या विचार कर रहे हो, तुम क्यों चिन्तित हो, शीघ्र ही अपनी चिन्ताका कारण बताओ। तुम दुःखी मत होओ, मैं तुम्हारे अत्यन्त दुखर कर्मोंको भी सम्पन्न कर दूँगा।’ इसपर राजाने प्रसन्न होकर कहा—‘प्रभो ! मैंने बड़ी भक्ति एवं श्रद्धासे इस द्वापमें आपका एक विशाल मन्दिर बनवाया है तथा एक दिव्य सूर्य-प्रतिमा भी बनवायी है, मुझे यह चिन्ता सता रही है कि

प्रतिष्ठा-कार्य कैसे सम्पन्न हो ?' राजाके इन वचनोंको सुनकर मैंने कहा—'राजन ! मैं अपने तेजसे अपनी पूजा करनेके लिये मगासंज्ञक ब्राह्मणोंकी सृष्टि करता हूँ। मेरे ऐसा कहते ही चन्द्रमाके समान श्वेतर्थवाले आठ बलशाली पुरुष मेरे शरीरसे उत्पन्न हो गये। वे सभी कलाय वस्त्र पहिने हुए थे, हाथोंमें पिटाये और कमलके पुष्प लिये हुए थे तथा साक्षेपाङ्ग चारों बेंदों और उपनिषदोंका पाठ कर रहे थे। इनमेंसे दो पुरुष ललाटसे, दो वक्षःस्थलसे, दो चरणोंसे तथा दो पादोंसे उत्पन्न हुए।' उन महात्माओंने मुझे पिता मानते हुए हाथ जोड़कर मुझसे कहा—'हे पिता ! हे लोकनाथ ! हम आपके पुत्र हैं। आपने किसलिये हमें उत्पन्न किया है ? हमें आज्ञा दीजिये। हम सब आपके आदेशका पालन करेंगे।' पुत्रोंका ऐसा वचन सुनकर मैंने कहा—'तुम सब इस राजाकी बात सुनो और ये जैसा कहें वैसा ही करो।' पुत्रोंसे ऐसा कहनेके बाद मैंने राजासे कहा—'राजन ! ये मेरे पुत्र हैं, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं तथा सर्वथा पूज्य हैं। मेरी प्रतिष्ठा करनेके लिये ये सर्वथा योग्य हैं। इनसे प्रतिष्ठा करवा लो। मन्दिरकी प्रतिष्ठा कराकर मन्दिर इन्हें समर्पित कर दो। ये सदा मेरा पूजन किया करेंगे, परंतु देकर फिर इनसे हरण मत करना। मेरे निमित्त जो कुछ धन-धान्य, गृह, क्षेत्र, बाग, ग्राम, नगर आदि मन्दिरमें अर्पण करो, उन सबके स्वामी ये भोजक ही होंगे। जैसे पिताके द्रव्यका अधिकारी उसका पुत्र होता है, वैसे ही मेरे धनके अधिकारी ये भोजक ही हैं।' मेरी आज्ञा पाकर उस राजाने प्रसन्न हो वैसा ही किया और भोजकोंद्वारा प्रतिष्ठा कराकर वह मन्दिर उन्होंको अर्पित कर दिया।

अरुण ! इस प्रकार अपनी पूजाके लिये मैंने अपने शरीरके तेजसे भोजकोंको उत्पन्न किया। ये मेरे आत्मस्वरूप हैं। मेरी प्रीतिके लिये जो कुछ भी देना हो वह भोजकको देना चाहिये। परंतु भोजकको दिया हुआ धन कभी वापस नहीं लेना चाहिये। भोजक हमारे सम्पूर्ण धनका स्वामी है।

भोजकमें ये लक्षण होने चाहिये—वह पहले वेदाध्ययन कर फिर गृहस्थजीवनमें प्रवेश करे। नित्य शिकाल स्नान करे, दिन-रात्रिमें पञ्चकृत्योऽद्वय मेरा पूजन करे। वेद, ब्राह्मण और

देवताओंकी कभी मिन्दा न करे। नित्य हमारे सम्मुख शङ्ख-ध्वनि करे। छः महीने पुराण सुननेसे जैसी प्रसन्नता मुझे होती है, वैसी प्रीति वेदाल एक बार शङ्ख-ध्वनि श्रवण करनेसे हो जाती है। इसलिये भोजकको पूजनमें नित्य शङ्ख बजाना चाहिये। वे अधोज्य पदार्थ भक्षण नहीं करते हैं, इसलिये भोजक कहलाते हैं और नित्य हमको भोजन करते हैं, इसलिये भी भोजक कहलाते हैं। वे सदा मगका ध्यान करते रहते हैं, इसलिये मगथ कहे जाते हैं। भोजक परम शुद्धिकर अव्यङ्ग धारण किये बिना सदा अपवित्र रहता है। जो अव्यङ्ग धारण किये बिना मेरी पूजा करता है, उसको संतान नहीं होती और मेरी प्रसन्नता भी उसे प्राप्त नहीं होती। भोजकको सिर मुड़ाकर रहना चाहिये, किन्तु शिखा अवश्य रखनी चाहिये। रविवारके दिन तथा पट्टीको नलवत्रत कर सप्तमीको उपवास करना चाहिये तथा संक्रान्तिका व्रत भी करना चाहिये। घेरे समीय शिकाल गायत्रीका जप करे। भक्ति-शद्गापूर्वक मौन होकर मेरा पूजन करे। ऋषि न करे। सदा हमारा नैवेद्य भक्षण करे। वह नैवेद्य भोजकको शुद्ध करनेके लिये पवित्र, हविष्यालके समान है। मुझे चढ़ा हुआ गन्ध, पुष्प, वस्त्राभूषण आदि बेचे नहीं। स्नान कराये गये जल और निर्मात्य (विसर्जनके बाद देवार्पित वस्तु) तथा अविका उल्लङ्घन न करे। सदा पवित्र रहे, एक बार भोजन करे और क्रोध, अमङ्गल-वचन तथा अशुभ कर्मोंको त्वाग दे।

अरुण ! इस प्रकारके लक्षणोंवाला भोजक मुझे बहुत प्रिय है। भोजकवा सदा सत्कर करना चाहिये। तुम्हारे ही समान भोजक भी मुझे बहुत प्रिय है।

महात्मा परावसु बोले—राजन ! इस प्रकार अरुणके उपदेश देकर मूर्यनागाश्रण आकाशमें भ्रमण करने लगे और अरुण भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ।

ब्रह्माजी बोले—महामुनि परावसुके मुखसे यह कथा सुनकर राजा सत्राजित और उसकी गानी विमलवती बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ भगवान् सूर्यके मन्दिर थे, उन सबमें मार्जन और उपलेपन कराया। सब मन्दिरोंमें कथा कहनेके लिये पौराणिकोंको नियुक्त किया और बहुत-सी

* इत्या, अधिगमन, उपादान, स्वाध्याय और योग—ये पांच उपासनाके भेद हैं, जिनमें प्रतिमा-पूजन, संस्कार-तर्पण, हवन-पूजन, ध्यान, जप एवं सूर्यके चतुर्वेद पाठ सम्भिलित है।

दक्षिणा देकर उन्हें संतुष्ट किया। वे विविध उपचारोंसे भक्तिपूर्वक नित्य सूर्यदेवकी पूजा-उपासना करने लगे और

अन्तमें उन दोनोंने उनकी प्रीति प्राप्त कर उत्तम गति प्राप्त की।
(अध्याय ११७)

भद्र ब्राह्मणकी कथा एवं कार्तिक मासमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदानका फल

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! जो कार्तिक मासमें सूर्यदेवके मन्दिरमें दीप प्रज्वलित करता है, उसे सम्पूर्ण व्यज्ञोका फल प्राप्त होता है एवं वह तेजमें सूर्यके समान तेजसी होता है। अब मैं आपको भद्र ब्राह्मणकी कथा सुनाता हूँ, जो समस्त पातोंका नाश करनेवाली है, उसे आप सुनें—

प्राचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक सुन्दर नगरीमें नागशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। भगवान् सूर्यकी प्रसन्नतासे उसके सौ पुत्र हुए। सर्वसे छोटे पुत्रका नाम था भद्र। वह सभी भाइयोंमें अल्पतम विचक्षण विद्वान् था। वह भगवान् सूर्यके मन्दिरमें नित्य दीपक जलाया करता था। एक दिन उसके भाइयोंने उससे बड़े आदरसे पूछा—‘भद्र ! हमलोग देखते हैं कि तुम भगवान् सूर्यको न तो कभी पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि अर्पण करते हो और न कभी ब्राह्मण-भोजन करते हो, केवल दिन-रात मन्दिरमें जलान दीप जलाते रहते हो, इसमें क्या कारण है ? तुम हमें बताओ।’ अपने भाइयोंकी आत सुनकर भद्र बोल—प्रातुराण ! इस विषयमें आपलोग एक आख्यान सुनें—

प्राचीन कालमें राजा इक्ष्वाकुके पुरोहित महर्षि वसिष्ठ थे। उन्होंने राजा इक्ष्वाकुसे सरयू-तटपर सूर्यभगवान्का एक मन्दिर बनवाया। वे वहाँ नित्य गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजा करते और दीपक प्रज्वलित करते थे। विशेषकर कार्तिक मासमें भक्तिपूर्वक दीपोत्सव किया करते थे। तब मैं भी अनेक कुछ आदि रोगोंसे पीड़ित हो उसी मन्दिरके समीप पड़ा रहता और जो कुछ मिल जाता, उसीसे अपना घेट भरता। वहाँके निवासी मुझे रोगी और दीन-हीन जानकर मुझे भोजन दे देते थे। एक दिन मुझमें यह कुसिंहत विचार आया कि मैं यक्षिके अवकाशमें इस मन्दिरमें स्थित सूर्यनारायणके बहुमूल्य आभूषणोंको चुण लूँ। ऐसा निष्पक्षकर मैं उन भोजकोंकी निद्राकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वे भोजक सो गये, तब मैं धीर-धीर मन्दिरमें गया और वहाँ देखा कि दीपक बुझ चुका है। तब मैंने अपि जलाकर दीपक प्रज्वलित किया और उसमें धूत डालकर प्रतिपासे आभूषण

उतारने लगा, उसी समय वे देवपुत्र भोजक जग गये और मुझे हाथमें दीपक लिया देखकर पकड़ लिया। मैं भयभीत हो विलापकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। दयावश उन्होंने मुझे छोड़ दिया, किंतु वहाँ धूमते हुए गुजपुरुषोंने मुझे फिर आध लिया और वे मुझसे पूछने लगे—‘अरे दुष्ट ! तुम दीपक हाथमें लेकर मन्दिरमें क्या कर रहे थे ? जल्दी बताओ,’ मैं अत्यन्त भयभीत हो गया। उन गुजपुरुषोंके भयसे तथा गोगसे आङ्गकान्त होनेके कारण मन्दिरमें ही मेरे प्राण निकल गये। उसी समय सूर्यभगवान्के गण मुझे विमानमें बैठकर सूर्यलोक ले गये और मैंने एक कल्पतक वहाँ सुख भोगा और फिर उत्तम कुलमें जन्म लेकर आप सबका भाई बना। बच्चुओ ! यह कार्तिक मासमें भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक जलानेका फल है। यद्यपि मैंने दुष्टबुद्धिसे आभूषण चुरानेकी दृष्टिसे मन्दिरमें दीपक जलाया था तथापि उसीके फलस्वरूप इस उत्तम ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म हुआ तथा वेद-शास्त्रोंका मैंने अध्ययन किया और मुझे पूर्वजन्मोंकी सृति हुई। इस प्रकार उत्तम फल मुझे प्राप्त हुआ। दुष्टबुद्धिसे भी शीद्धारा दीपक जलानेका ऐसा श्रेष्ठ फल देखकर मैं अब नित्य भगवान् सूर्यके मन्दिरमें दीपक प्रज्वलित करता रहता हूँ। भाइयो ! मैंने कार्तिक मासमें यह दीपदानका संक्षेपमें माहात्म्य आपलोगोंको सुनाया।

इनी कथा सुनाकर ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! दीपक जलानेका फल भद्रने अपने भाइयोंको बताया। जो पुरुष सूर्यके नामोंका जप करता हुआ मन्दिरमें कार्तिकके महीनेमें दीपदान करता है, वह आरोग्य, धन-सम्पत्ति, बुद्धि, उत्तम संतान और जातिस्मरत्वको प्राप्त करता है। घट्टी और साहसी लिंगिको जो प्रयत्नपूर्वक सूर्यमन्दिरमें दीपदान करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। इसलिये भगवान् सूर्यके मन्दिरमें भक्तिपूर्वक दीप प्रज्वलित करना चाहिये। प्रज्वलित दीपको न तो बुझाये और न उसका हरण करे। दीपक हरण करनेवाला पुरुष अन्धमूषक होता है। इस कारण कल्प्याणकी इच्छावाला पुरुष दीप प्रज्वलित करे, हरे नहीं। (अध्याय १८)

यमदूत और नारकीय जीवोंके संवादके प्रसंगमें सूर्य-मन्दिरमें दीपदान करने एवं दीप चुरानेके पथ्य-पापोंका परिणाम

ब्रह्माजी बोले—विष्णो ! एक समय धोर नरकमें पड़े हुए खूबे, आर्त-दुःखी और विलाप करते हुए जीवोंसे यमदूतने कहा—मूढ़जगो ! अब अधिक विलाप करनेसे क्या लाभ होगा, प्रमादवश तुम सबने अपनी आत्माकी उपेक्षा कर रखी है। पहले तुम सबने यह विचार नहीं किया कि इन कर्मोंका फल आगे भोगना पड़ेगा। यह शरीर थोड़े ही दिनोंतक रहनेवाला है, विषय भी नाशवान् है, यह कौन नहीं जानता। हजारों जन्मोंके बाद एक बार मनुष्य-जन्म मिलता है, उसमें क्यों मूढ़जन भोगोंकी ओर दौड़ते हैं। वे पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र आदिके लिये प्रथलशील रहते हैं और उनमें आसक्त होकर अनेक दुष्कर्म करते हैं, वे मूढ़जन अपना हित नहीं जानते, वे यह भी नहीं जानते कि सूर्य, चन्द्र, काल तथा आत्मा—ये सभी मनुष्यके शुभ और अशुभ कर्मोंको देखते रहते हैं अर्थात् साक्षीभूत हैं। न केवल एक जन्म अपितु सैकड़ों जन्मोंमें पुत्र, स्त्री आदिके लिये जो-जो भी कर्म किया जाता है, उसे अच्छी तरहसे ये जानते रहते हैं। मोहकी यह महिमा तो देखो कि नरकमें भी ममता बनी रहती है। इस प्रकार परिणाममें भयंकर विषयोंके द्वारा आकृष्ट चित्तवाले मनुष्योंको बुद्धि परमार्थ-तत्त्वकी ओर नहीं होती। जिहादारा भगवान् सूक्ष्मका नाम लेनेमें कौन-सा श्रम है ? मन्दिरमें दीप जलानेमें भी अधिक परिश्रम नहीं पड़ता, परंतु यदि मनुष्यसे इतना भी नहीं हो सकता तो

अब गोदन और खिलाप करनेसे क्या लाभ है? जैसा कर्म किया जैसा फल पाया। इसलिये पापकर्ममें कभी भी बुद्धि नहीं लगानी चाहिये। यदि कोई अज्ञानसे पापकर्म हो जाय तो सूर्यभगवानकी आराधना करे, जिससे सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्माजी बोले— यमदूतके ऐसे वचनोंको सुनकर तथा भूखसे व्याकुल, प्याससे मूँह काटलाले, दुःखसे पौडित वे नारकीय जीव उससे कहने लगे—‘साधो ! हमने ऐसा कौन-सा कर्म किया, जिससे हमें इस दारूण नारकमें वास करना पड़ा ?’

यमदूतने कहा—पूर्वजन्ममें योवनके उभादसे उन्मादित्
तुम अविवेकियोंने धृतके लोभमें भगवान् सूर्यके मन्दिरसे दीप
चुगया था। उसी कारण इस घोर नरकमें तुम सब दुःख भोग
रहे हो।

ब्रह्माजी बोले—अच्युत ! मैंने सूर्यके मन्दिरमें दीपदान करनेके पुण्य तथा दीप-हरण करनेके दुष्परिणामोंका वर्णन किया । दीपदान करनेका तो सर्वत्र ही उत्तम फल है, परंतु सूर्यनाशयणके मन्दिरमें विशेष फल है । जगतमें जो-जो अंध, मूँक, बधिर, विवेकहीन, निन्दा व्यक्ति दिखायी पड़ते हैं, उन सबने साधुजोंद्वारा प्रञ्चलित किये हुए दीपोंको सूर्यनाशयणके मन्दिरमें हरण किया है ।

(अध्याय ११९)

वैवस्वतके लक्षण और सर्वनारायणकी महिमा

विष्णुभगवानने ब्रह्मजीसे पूछा — ब्रह्म ! संसारमें मनुष्य विष, रोग, घर और अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे पीड़ित होते हैं, यह किन कर्मोंका फल है, कृपाकर आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे जीवोंको रोग आदिकी बाधा न हो ।

ब्रह्माजीने कहा—जिन्होने पूर्वजन्ममें ब्रत-उपवास आदिके द्वारा भगवान् सुर्यको प्रसन्न नहीं किया, वे मनस्य विष,

ज्वर, प्रह, रोग आदिके भागी होते हैं और जो सूर्यनाशयणकी आराधना करते हैं, उन्हें आधि-व्याधियाँ नहीं सतातीं। पूर्वजन्ममें भगवान् सूर्यकी आराधनासे इस जन्ममें आरोग्य, परम बुद्धि और जो-जो भी मनमें इच्छा करता है, निःसंदेह उसे प्राप्त कर लेता है। आधि-व्याधियोंसे पीड़ित नहीं होता है और न विष एवं दृष्ट ग्रहोंके बन्धनमें ही फँसता है तथा कृत्या

१-अहो मोहम्म याहान्यं पपलं नरकेत्यि । क्रन्दते मातरं ताते पौष्टिगानोऽपि यस्तथायम् ॥

एवमाकृष्टचित्तानां विषये स्यादतर्पणैः । नुगा न जायते चक्रिः परमार्थविलोकिनी ॥

तथा च विषयस्ते करोत्यविरते मनः। को हि भासे रत्नेन्द्रियं जिह्वायाः परिकृतेनि॥

वर्तितेष्टुव्यमत्ये च यद्विर्लभ्यते ममा । अतो ये कलारे लाभः क्वालिक्षिता भवेत् तदा ॥

आदिका भी भय उसे नहीं रहता। सूर्यनारायणके भक्तके लिये दुष्ट भी अनुकूल हो जाते हैं और सब यह सौम्य दृष्टि रखते हैं। जिसपर सूर्यदेव संतुष्ट हो जाते हैं, वह देवताओंका भी पूज्य हो जाता है। पांतु भगवान् सूर्यकी अनुग्रह उसी पुरुषपर होता है, जो सब जीवोंके अपने समान ही समझता है और भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करता है। प्रजाओंके स्वामी भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर मनुष्य पूर्णमोरथ हो जाता है।

भगवान् विष्णुने पूछा—ब्रह्मन्! जिन्होंने पहले भगवान् सूर्यकी आराधना नहीं की और रोग-व्याघिसे दुःखी हो गये हैं, वे उन कष्ट एवं पापोंसे कैसे मुक्त हों, कृपाकर बतायें। हम भी भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! यदि आप भगवान् सूर्यकी आराधना करना चाहते हैं तो आप पहले वैवस्वत (सूर्यभक्त) बनें, क्योंकि बिना विशिष्टपूर्वक सौरी दीक्षाके उनकी उपासना पूरी नहीं हो सकती। जब मनुष्योंके पाप क्षीण होने लगते हैं तब भगवान् सूर्य और ब्राह्मणोंमें उनकी नैषिकी श्रद्धा-भक्ति होती है। इस संसार-चक्रमें भ्रमण करते हुए प्राणियोंके लिये भगवान् सूर्यको प्रसन्न करना एकमात्र कल्याणका निष्कण्ठक मार्ग है।

विष्णुभगवान्हने पूछा—ब्रह्मन्! वैवस्वतोंका क्या लक्षण है और उन्हें क्या करना चाहिये? यह आप बतायें।

ब्रह्माजी बोले—वैवस्वत वही है जो भगवान् सूर्यका परम भक्त हो तथा मन, वाणी एवं कर्मसे कभी जीवहिता न करे। ब्राह्मण, देवता और भोजकको नित्य प्रणाय करे, दूसरेके धनका हरण न करे, सभी देवताओं एवं संसारको भगवान्

सूर्यका ही स्वरूप समझे और उनसे अपनेको अभिप्र समझे। देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, रिंगीलिका, वृक्ष, पायाण, काष्ठ, भूमि, जल, आकाश तथा दिशा—सर्वत्र भगवान् सूर्यको व्याप समझे, साथ ही स्वर्यको भी सूर्यसे भिन्न न समझे। जो किसी भी प्राणीमें दुष्ट-भाव नहीं रखता, वही वैवस्वत सूर्योपासक है। जो पुरुष आसक्तिरहित होकर निष्काम-भावसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यके निमित्त क्रियाएं करता है, वह वैवस्वत कहलाता है। जिसका न तो कोई शत्रु हो और न कोई मित्र हो तथा न उसमें भेद-भुद्धि हो, सबको बराबर देखता हो, ऐसा पुरुष वैवस्वत कहलाता है। जिस उत्तम गतिको वैवस्वत पुरुष प्राप्त करता है, वह योगी और बड़े-बड़े तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है। जो सभी प्रकारसे भगवान् सूर्यका दृढ़ भक्त है, वह धन्य है। भक्तिपूर्वक आराधना करनेसे ही सूर्यभगवान्का अनुग्रह प्राप्त होता है।

ब्रह्माजी पुनः बोले—मैं भी उनके दक्षिण किरणसे उत्पन्न हुआ हूँ और उन्होंकी वाय किरणसे भगवान् शिव तथा वक्षःस्थलसे शङ्ख-चक्र-गदाधारी आप उत्पन्न हैं। उन्होंकी इच्छासे आप सृष्टिका पालन तथा शङ्खर संहार करते हैं। इसी प्रकार रुद्र, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, यामु, अग्नि आदि सब देवता सूर्यदेवसे ही प्राप्तुर्भूत हुए हैं और उनकी आज्ञाके अनुसार अपने-अपने कर्मोंमें प्रवृत्त हो रहे हैं। इसलिये भगवन्! आप भी सूर्यभगवान्की आराधना करें, इससे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे।

पितामह ब्रह्माजी एवं विष्णुभगवान्के इस संवादको जो भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर अन्तमें सुवर्णके विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय १२०)

१-वैष्णवादीर्थीर्थान्विजन्यनि

तोषितः ते नरे देवशार्दूल यहोगादिभागिनः ॥

वैष्ण लक्षणं विनं सर्वदैव नैः कृतम् । विष्णवान्वत्ताणां ते मनुष्यः कृत्वा भागिनः ॥

आरोग्यं पापोऽन्तिं यन्मा वरदिव्याति । तत्तदापोलभृदिन्म् । परश्चादित्यतोष्णात् ॥

नार्थीन् प्रानोति न व्याधीन् न विष्णवान्वयनम् । कृत्यासर्वाभ्यं वापि तोषिते तिष्मितानहे ॥

सर्वे दुष्टाः समासात्य सौम्यासात्य सदा प्रहा । देवानामपि पूर्णोद्दीप्ती तुष्टो यस्य दिवाकरः ॥

यः समः सर्वभूतेन् व्याप्तवित तथा विष्टे । उपवासादित्य येव तोषिते तिष्मितप्रहः ॥

तोषितेऽस्मिन् प्रजानाये नरः पूर्णमोरथः । अरोगः सुखिनो नित्यं वहुधर्मसुखानिकाः ॥

न तेषां शश्वतो नैव शरीराभिचारात् । ग्रहोगादिकं चापि शश्वतार्प्तजापते ॥

अव्याहतानि देवस्य धनञ्जलानि ते नरम् । रक्षणं सकलापत्सु येन क्षेत्राधिष्ठिर्वितः ॥

(ब्राह्मणी १२०। ४—१२)

भगवान् सूर्यनारायणके सौम्य रूपकी कथा, उनकी स्तुति और परिवार तथा देवताओंका वर्णन

राजा शतानीकने कहा—मुने ! भगवान् सूर्यकी कथा सुनते-सुनते मुझे तृष्णि नहीं होती, अतः आप पुनः उन्हींके गुणों और चरित्रोंका वर्णन करें।

सुमनु मुनि बोले—एजन् ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भगवान् सूर्यकी जो पवित्र कथा ऋषियोंको सुनायी थी, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। वह कथा पापोंको नष्ट करनेवाली है—*

एक समय भगवान् सूर्यके प्रचण्ड तेजसे संतप्त हो ग्रुषियोंने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन् ! आकाशमें स्थित यह अग्रिके तुल्य दाह करनेवाला तेजःपुञ्ज कौन है ?’

ब्रह्माजी बोले—मुनीश्चरो ! प्रलयके समय जब सारा स्थावर-जड़म जगत् नष्ट हो गया, उस समय सर्वत्र अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त था। उस समय सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न हुई, बुद्धिसे अहंकार तथा अहंकारसे आकाशादि पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति हुई और उनसे एक अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसमें सात लोक और सात समुद्रोंसहित पृथ्वी स्थित है। उसी अण्डमें स्वयं ब्रह्मा तथा विष्णु और शिव भी स्थित थे। अन्धकारसे सभी व्याकुल थे। अनन्तर सब परमेश्वरका ध्यान करने लगे। ध्यान करनेसे अन्धकारको हरण करनेवाला एक तेजःपुञ्ज प्रकट हुआ। उसे देखकर हम सभी उसकी इस प्रकार दिव्य स्तुति करने लगे—

आदिदेवोऽसि देवानामीश्वराणां स्वप्नीश्वरः ।
आदिकर्त्तासि भूतानां देवदेव सनातन ॥
जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम् ।
मुनिक्रिप्तरसिद्धानां तत्त्वीयोरगपक्षिणाम् ॥
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान् वरुणस्तथा ॥
त्वं कालः सुष्ठुकर्ता च हर्ता त्राता प्रभुस्तथा ।

१- स्तुतिका भाव हम प्रकट है—

हे सनातन देवदेव ! आप ही समस्त व्याप्ति प्राणियोंके आदि स्वरूप एवं ईश्वरोंके ईश्वर तथा आदिदेव हैं। देवता, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किंत्र, सिद्ध, नाग तथा निर्वक्ष योगियोंके आदि ही जीवनाधार हैं। आप ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सौम, वरुण तथा कल हैं एवं जगत्के स्थान, संकर्ता, पालनकर्ता और सभके शासक भी आप ही हैं। आप ही स्वाम, नदी, पर्वत, विशुद्धि, इत्यर्थनुव इत्यादि सब कुछ हैं। प्रलय, प्रभव व्यक्त एवं अव्यक्त भी आप ही हैं। ईश्वरसे परे विद्या, विद्यासे परे शिव तथा शिवसे परतर आप परमदेव हैं। हे परमामृण ! आपके पाणि, पाद, अक्षि, सिर, मुख सर्वत्र—चतुर्दिक् व्याप्त हैं। आपकी देवीयमान सहजों कितने सब और व्याप्त हैं। भू, मृदु, रुद्र, मह, जन, तपः तथा सत्य

सरितः सागरः शैला विशुद्धिनदन्तुषि च ।
प्रलयः प्रधवश्चैव व्यत्काव्यक्तः सनातनः ॥
ईश्वरात्परतो विद्या विद्याया परतः शिवः ।
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ॥
सर्वतः पाणियादस्त्वं सर्वलोऽक्षिप्तिरोमुखः ।
सहस्रामुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ॥
भूरादिपूर्धुवःस्वश्च महर्जनस्तपस्तथा ।
प्रदीपं दीपिमश्चित्यं सर्वलोकप्रकाशकम् ।
दुर्विरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्यूपं तस्य ते नमः ॥
सुरसिद्धाणीर्जुं भूविष्णुलहादिपिः ।
शुभं परमप्रव्याप्तं यद्यूपं तस्य ते नमः ॥
पञ्चातीतस्थितं तदै दशैकादश एव च ।
अर्धमासपत्रिकम्यं स्थितं तत्सूर्यपञ्चले ।
तस्मै रूपाय ते देव प्रणाताः सर्वदिवताः ।
विश्वकृष्णिष्वभूतं च विश्वानस्त्रुचिर्तम् ।
विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्यूपं तस्य ते नमः ॥
परं यज्ञात्परं देवात्परं लोकात्परं दिवः ।
दुरितिक्रमेति यः रूपात्परस्माद्यपि परंपरात् ।
परमात्मेति विश्वातं यद्यूपं तस्य ते नमः ॥
अविज्ञेयपञ्चिन्त्यं च अस्यात्परात्मव्ययम् ।
अनादिनिधने देवं यद्यूपं तस्य ते नमः ॥
नमो नमः कारणाकारणाय नमो नमः पापविनाशनाय ।
नमो नमो वन्दितवन्दनाय नमो नमो रोगविनाशनाय ॥
नमो नमः सर्वजरप्रदाय नमो नमः सर्वबलप्रदाय ।
नमो नमो ज्ञाननिधे सदैव नमो नमः पञ्चदशात्मकाय^१ ॥

(ब्रह्मपर्व १२३ । ११—२४)

इस प्रकार हमारी स्तुतिसे प्रसन्न हो वे तैजस-रूप

कल्याणकारी देव मधुर वाणीमें बोले—‘देवगण ! आप क्या चाहते हैं ?’ तब हमने कहा—‘प्रभो ! आपके इस प्रचण्ड तथा रूपको देखनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। अतः संसारके कल्याणके लिये आप सौम्य रूप धारण करें।’ देवताओंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर उन्होंने ‘एवमस्तु’ कहकर सभीको सुख देनेवाल्य उत्तम रूप धारण कर लिया।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! सांख्ययोगका आश्रय प्रहण करनेवाले योगी आदि तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष इनका ही ध्यान करते हैं। इनके ध्यानसे बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं। अग्रिहोत्र, वेदापाठ और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ भी भगवान् सूर्यकी भक्तिके सोलहवीं कलाके तुल्य भी फलदायक नहीं हैं। ये तीर्थोंके भी तीर्थ, मङ्गलोंके भी मङ्गल और पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं। जो इनकी आराधना करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं। वेदादि शास्त्रोंमें भगवान् दिवस्पति उपासना आदिके द्वारा जिस प्रकार सुलभ हो जाते हैं, उसी प्रकार सूर्यदिव समस्त लोकोंके उपास्य हैं।

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! देवता तथा ऋषियोंने किस प्रकार भगवान् सूर्यका सुन्दर रूप बनवाया ? यह आप बतायें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! एक समय सभी ऋषियोंने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे प्रार्थना की कि ‘ब्रह्मन् ! अदितिके पुत्र सूर्यनारायण आकाशमें अति प्रचण्ड तेजसे तप रहे हैं। जिस प्रकार नदीका किनारा सूख जाता है, वैसे ही अस्तिल जगत् किनाशको प्राप्त हो रहा है, हम सब भी अति पीड़ित हैं और आपका आसन कमल-पुष्प भी सूख रहा है, तीनों लोकोंमें कोई सुखी नहीं है, अतः आप ऐसा उपाय करें, जिससे यह तेज शान्त हो जाय।

ब्रह्माजीने कहा—मुनीधरो ! सभी देवताओंके साथ

इत्यादि समस्त लोकोंमें आपका ही प्रचण्ड एवं प्रदीप केव फक्तशित है। इन्द्रादि देवताओंमें भी दुर्मिश्र, भृगु, अवि, पुलह आदि ऋषियों एवं सिद्धोंद्वारा सेवित अत्यन्त कल्याणकारी एवं शान्त रूपवाले आपको नमस्कार है। हे देव ! आपका यह रूप पाँच, दस अष्टवा एवं दस इन्द्रियों अद्वितीय है, उस रूपकी देवता सदा बनदा करते रहते हैं। देव ! विश्वसरा, विश्वमें विश्व तथा विश्वभूत आपके अचिन्त्य रूपकी इन्द्रादि देवता अर्थना करते रहते हैं। आपके उस रूपकी नमस्कार है। नाथ ! आपका रूप यज्ञ, देवता, लोक, आकाश—इन सभीसे परे है, आप दुर्लक्षण नामसे विश्वात हैं, इससे भी परे आपका अनन्त रूप है, इसीलिये आपका रूप परमात्मा नामसे प्रसिद्ध है। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। हे अनन्दिनिघन ज्ञाननिधि ! आपका रूप अविद्येय, अचिन्त्य, अत्यन्त एवं अद्यालयगत है, आपके नमस्कार है। हे करणोंके करण, पाप एवं दोषोंके विनाशक, विनितोंके भी बन्ध, पञ्चदशात्मक, सभीके लिये छेष वस्त्राता तथा सभी प्रकारके बल देनेवाले ! आपके सदा बार-बार नमस्कार है।

आप और हम सब सूर्यनारायणकी शरणमें जायें, उसीमें सबका कल्याण है। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर सभी देवता और ऋषियों उनकी शरणमें गये और उन्होंने भक्तिभावपूर्वक नम्र होकर अनेक प्रकारसे उनकी सुति की। देवताओंकी सुतिसे सूर्यनारायण प्रसन्न हो गये।

सूर्यभगवान् बोले—अपलोग वर मार्गिये। उस समय देवताओंने यही वर मार्गा कि ‘प्रभो ! आपके तेजको विश्वकर्मा कम कर दें, ऐसी आप आज्ञा प्रदान करें।’ इन्होंने देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब विश्वकर्मनि उनके तेजको तयाश कर कम किया। इसी तेजसे भगवान् विष्णुका चक्र और अन्य देवताओंके शूल, शक्ति, गदा, वज्र, बाण, धनुष, दुर्गा आदि देवियोंके आभूषण तथा शिविका (पालकी), परशु आदि आयुध बनाकर विश्वकर्मनि उन्हे देवताओंको दिया।

भगवान् सूर्यका तेज सौम्य हो जानेसे तथा उत्तम-उत्तम आयुध प्राप्त कर देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पुनः उनकी भक्तिपूर्वक सुति की।

देवताओंकी सुतिसे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यनि और भी अनेक वर उन्हे प्रदान किये। अनन्तर देवताओंने परस्पर विचार किया कि देवगण वर पाकर अत्यन्त अभिमानी हो गये हैं। वे अवश्य भगवान् सूर्यको हरण करनेका प्रयत्न करेंगे। इसलिये उन सबको नष्ट करनेके लिये तथा इनकी रक्षाके लिये हमें चाहिये कि हम इनके चारों ओर खड़े हो जायें, जिससे ये दैत्य सूर्यको देख न सकें। ऐसा विचारकर स्फट दण्डनायकका रूप धारणकर भगवान् सूर्यके आर्द्धे और स्थित हो गये। भगवान् सूर्यनि दण्डनायकको जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको लिखनेका निर्देश दिया। दण्डका निर्णय करने तथा दण्डनीतिका निर्धारण करनेसे दण्डनायक नाम पड़ा। अग्रिदेव पिंगलवर्णकि होनेके कारण पिंगल नामसे प्रसिद्ध हुए और

सूर्यभगवानकी दाहिनी ओर स्थित हुए। इसी प्रकार दोनों पासोंमें दो अधिनीकुमार स्थित हुए। वे अश्वरूपसे उत्तम लोनेके कारण अधिनीकुमार कहलाये। महाब्रह्मशाली राजा और श्रीष दो द्वारपाल हुए। राजा कर्तिकियके और श्रीष हरके अवतार कहे गये हैं। लोकपूज्य वे दोनों द्वारपाल धर्म और अर्थके रूपमें प्रथम द्वारपर रहते हैं। दूसरे द्वारपर कल्पाय और पक्षी ये दो द्वारपाल रहते हैं। इनमेंसे कल्पाय यमराजके रूप हैं और पक्षी गणडरूप हैं। ये दोनों दक्षिण दिशामें स्थित हैं।

कुबेर और विनायक उत्तरमें तथा दिष्टी और रेवन दूर्व दिशामें स्थित हैं। दिष्टी दूर्वरूप है और रेवन भगवान् सूर्यके पुत्र हैं। ये सब देवता दैत्योंको मारनेके लिये सूर्यनारायणके चारों ओर स्थित हैं और सुन्दर रूपवाले, विरूप, अन्यरूप और कामरूप हैं तथा अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हैं। चारों देव, भी उत्तम रूप भारणकर भगवान् सूर्यके चारों ओर स्थित हैं।

(आयात १२१—१२४)



श्रीसूर्यनारायणके आयुध—व्योमका लक्षण और माहात्म्य

सुमन् युनिने कहा—राजन्! अब भगवान् सूर्यके मुख्य आयुध व्योमका लक्षण कहता है, उसे आप सुनें।

भगवान् सूर्यका आयुध व्योम सर्वदेवमय है, वह चार शङ्खोंसे युक्त है तथा सुर्यर्णका बना हुआ है। जिस प्रकार बहुणका पाश, अहोकम् हुंकार, विष्णुका चक्र, त्यम्बकका त्रिशूल तथा इन्द्रका आयुध वज्र है, उसी प्रकार भगवान् सूर्यका आयुध व्योम है। उस व्योममें घ्यारह रुद्र, घारह आदित्य, दस विशेषेव*, आठ वसुगण तथा दो अधिनीकुमार—ये सभी अपनी-अपनी कलाओंके साथ स्थित हैं। हर, शर्व, त्यम्बक, वृषाकपि, शम्भु, कपटी, रैवत, अपराजित, ईश्वर, अहिर्वृद्ध्य और भुवन (भव) ये घ्यारह रुद्र हैं। ध्रुव, धर, सोम, अनिल, अनल, अप्, प्रत्युष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। नासात्य और दस—ये दो अधिनीकुमार हैं। क्रन्, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, शंकुमात्र तथा वामन—ये दस विशेषेव हैं। इसी प्रकार साध्य, तुषित, मरुत्, आदि देवता हैं। इनमें आदित्य और मरुत् कश्यपके पुत्र हैं। विशेषेव, वसु और साध्य—ये धर्मके पुत्र हैं। धर्मका तीसरा पुत्र वसु (सोम) है और ब्रह्माजीका पुत्र धर्म है।

स्वायम्भूत, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाशुष—ये छः मनु तो व्यतीत हो गये हैं, वर्तमानमें सामग्री वैवस्त्रत मनु हैं। अर्कसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, धर्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रैवत और भौत्य—ये सब मनु आगे आये। इन चौदहो मन्वत्तरोंमें इन्द्रोंके नाम इस प्रकार

हैं—विष्णुभुक्, विद्युति, विभु, प्रभु, शिखी तथा मनोजव—ये छः इन्द्र व्यतीत हो गये हैं। ओजस्वी नामक इन्द्र वर्तमानमें हैं। चत्ति, अद्वृत, विदिव, सुमात्तिक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्पति—ये सात इन्द्र आगे होगे। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सप्तर्णि हैं। प्रवह, आवह, उद्वह, संवह, विवह, निवह और परिवह—ये सात मरुत् हैं। (प्रत्येकमें सात-सात मरुदग्णोंका समूह है)। ये उनचास मरुत् आकाशमें पृथक्-पृथक् मार्गसे चलते हैं। सूर्याश्रिका नाम शूचि, वैशुत अग्निका नाम पावक और अरणि-मन्त्रनसे उत्पत्र अग्निका नाम पवामान है। ये तीन अग्निर्णी हैं। अग्नियोंके पुत्र-पौत्र उनचास हैं और मरुत् भी उनचास ही हैं। संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर (इडावत्सर), अमवत्सर और वत्सर—ये पाँच संवत्सर हैं—ये ब्रह्माजीके पुत्र हैं। सौम्य, बहिर्वृद्ध और अग्निवात—ये तीन पितर हैं। सूर्य, सोम, धौम, चुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नव ग्रह हैं। ये सदा जगत्का भाव-अभाव सूचित करते हैं। इनमें सूर्य और चन्द्र मण्डलग्रह, भौमादि पाँच ताराग्रह और राहु-केतु छायाग्रह कहलाते हैं। नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमा हैं और प्रहोड़के राजा सूर्य हैं। सूर्य कश्यपके पुत्र हैं, सोम धर्मके, चुध चन्द्रके, गुरु और शुक्र प्रजापति भूगुके, शनि सूर्यके, राहु सिंहिकोंके और केतु ब्रह्माजीके पुत्र हैं।

पृथ्वीको भूलोक कहते हैं। भूलोकके स्वामी अग्नि,

* अन्य सभी पुराणमें विशेषेवोंकी संख्या कहीं दस, कहीं घ्यारह, कहीं तेरह बतलायी गयी है। विशेष जनकरामें लिये 'कल्पवाणि' विशेषाङ्क 'देवताङ्क' देखना चाहिये।

भूवलोकके वायु और स्वलोकके स्वामी सूर्य हैं। मरुदग्नि भूवलोकमें रहते हैं और रुद्र, अश्विनीकुमार, आदित्य, वसुगण तथा देवगण स्वलोकमें निवास करते हैं। चौथा महलोक है, जिसमें प्रजापतियोंसहित कल्पवासी रहते हैं। पाँचवें जनलोकमें भूमिदान करनेवाले तथा छठे तपोलोकमें क्रहु, सनलकुमार तथा वैद्यज आदि क्रहि रहते हैं। सातवें सत्यलोकमें वे पुरुष रहते हैं, जो जन्म-मरणसे मुक्ति पा जाते हैं। इतिहास-पुराणके वक्ता तथा श्रोता भी उस लोकको प्राप्त करते हैं। इसे ब्रह्मलोक भी कहा गया है, इसमें न किसी प्रकारका विघ्न है न किसी प्रकारकी बाधा।

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, भूत और विद्याधर—ये आठ देवयोनियाँ हैं। इस प्रकार इस व्योममें सातों लोक स्थित हैं। मरुत्, पितर, अग्नि, ग्रह और आठों देवयोनियाँ तथा मूर्ति और अमूर्ति सब देवता इसी व्योममें स्थित हैं। इसलिये जो भक्ति और श्रद्धासे व्योमका पूजन करता है, उसे सब देवताओंके पूजनका फल प्राप्त हो जाता है और वह सूर्यलोकको जाता है। अतः अपने कल्पवाणके लिये सदा व्योमका पूजन करना चाहिये।

महीपते ! आकाश, ख, दिक्, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेरु, विपुल, विल, आपोलिद्र, शून्य, तमस्, रोदसी—व्योमके इनने नाम कहे गये हैं। लक्षण, क्षीर, दधि, धूत, मधु, इक्षु तथा मुख्यादु (जलवाला) —ये सात समुद्र हैं। हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शुद्धवान्—ये छः वर्षपर्वत हैं। इनके मध्य महाराजत नामक पर्वत है। माहेन्द्री, आग्रेयी, याम्या, नैर्हिती, वारुणी, वायवी, सौम्या तथा ईशानी—ये देवनगरियाँ ऊपर समाश्रित हैं। पृथ्वीके ऊपर लोकालोक पर्वत है। अनन्तर अण्डकपाल, इससे परे अग्नि, वायु, आकाश आदि भूत कहे गये हैं। इससे परे महान्, अहंकार, अहंकारसे परे प्रकृति, प्रकृतिसे परे पुरुष और इस पुरुषसे परे ईश्वर है, जिससे यह सम्पूर्ण जगत् आवृत है। भगवान्, भास्कर ही ईश्वर हैं, उनसे यह जगत् परिव्याप्त है। ये महात्मों किरणवाले, महान् तेजस्वी, चतुर्वाहु एवं महाबली हैं।

भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक,

तपोलोक और सत्यलोक—ये सात लोक कहे गये हैं। भूमिके नीचे जो सात लोक हैं, वे इस प्रकार हैं—तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और रसातल। काङ्गन में पर्वत भूमण्डलके मध्यमें फैला हुआ चार रमणीय शूलोंसे युक्त तथा सिद्ध-गम्भीरोंसे सुसेवित है। इसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजन भूमिमें नीचे प्रविष्ट है। इस प्रकार सब मिलाकर एक लाख योजन मेरुपर्वतका मान है। उसका सौमनस नामका प्रथम शुद्ध सुवर्णका है, ज्योतिष्क नामका द्वितीय शुद्ध पद्मराग मणिका है। चित्र नामका तृतीय शुद्ध सर्वधातुमय है और चन्द्रीजस्क नामक चतुर्थ शुद्ध चाँदीका है। गाङ्गेय नामक प्रथम सौमनस शुद्धपर भगवान् सूर्यका उदय होता है, सूर्योदयसे ही सब लोग देखते हैं, अतः उसका नाम उदयाचल है। उत्तरायण होनेपर सौमनस शुद्धसे और दक्षिणायण होनेपर ज्योतिष्क शुद्धसे भगवान् सूर्य उदित होते हैं। मेष और तुला-संक्रान्तियोंमें मध्यके दो शूलोंमें सूर्यका उदय होता है। इस पर्वतके ईशानकोणमें ईश और अग्निकोणमें इन्द्र, नैर्हित्यकोणमें अद्रि और वायव्यकोणमें मरुत् तथा मध्यमें साक्षात् ब्रह्मा, ग्रह एवं नक्षत्र स्थित हैं। इसे व्योम कहते हैं। व्योममें सूर्यभगवान् स्वयं निवास करते हैं, अतः यह व्योम सर्वदिवमय और सर्वलोकमय है। राजन् ! पूर्वकोणमें स्थित शुद्धपर शुक्र है, दूसरे शुद्धपर हेलिज (इनि), तीसरेपर कुबेर, चौथे शुद्धपर सोम हैं। मध्यमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्थित हैं। पूर्वोत्तर शुद्धपर पितृगण और लोकपूजित गोपति महादेव निवास करते हैं। पूर्वाग्रेय शुद्धपर शाण्डिल्य निवास करते हैं। अनन्तर महातेजस्वी हेलियुन यम निवास करते हैं। नैर्हित्यकोणके शूलमें महाबलशाली विरुपाक्ष निवास करते हैं। उसके बाद वरुण स्थित है, अनन्तर महातेजस्वी महाबली चौरामित्र निवास करते हैं। सभी देवोंके नमस्कार्य वायव्य शुद्धका आश्रयणकर नरवाहन कुबेर निवास करते हैं, मध्यमें ब्रह्मा, नीचे अनन्त, उपेन्द्र और शंकर अवस्थित हैं। इसीको मेरु, व्योम और धर्म भी कहा जाता है। यह व्योमस्वरूप मेरु वेदमय नामसे प्रसिद्ध है। चारों शुद्ध चारों वेदस्वरूप हैं। (अध्याय १२५-१२६)

साम्बद्धारा भगवान् सूर्यकी आराधना, कुष्ठरोगसे मुक्ति तथा सूर्यस्तवराजका कथन

राजा शतानीकने पूछा—पुने ! साम्बने किस प्रकार भगवान् सूर्यकी आराधना की और उस भवकर रोगसे कैसे मुक्ति पायी ? इसे आप कृपाकर बतायें ।

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! आपने बहुत उत्तम कथा पूछी है । इसका वै विस्तारसे वर्णन करता हूँ, इसके सुननेसे सभी पाप दूर हो जाते हैं । नारदजीके द्वारा सूर्य-भगवान्तका माहात्म्य सुनकर, साम्बने अपने पिता श्रीकृष्ण-चन्द्रके पास जाकर विनयपूर्वक प्रार्थना की—‘भगवन् । मैं अत्यन्त दारुण रोगसे प्रस्त हूँ । वैश्योद्वाग बहुत ओषधियोंका सेवन करनेपर भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है । अब आप आज्ञा दें कि मैं वनमें जाकर तपस्याद्वाग अपने इस भवकर रोगसे मुट्ठकारा प्राप्त करें ।’ पुत्रका वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दे दी और साम्ब अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार सिद्धुके उत्तरमें चन्द्रभागा नदीके तटपर लोकप्रसिद्ध वित्रवन नामके सूर्यक्षेत्रमें जाकर तपस्या करने लगे । वे उपवास करते हुए सूर्यकी आराधनामें तटपर हो गये । उन्होंने इतना कठोर तप किया कि उनका अविद्यमात्र ही शेष रह गया । वे प्रतिदिन इस गुह्य स्तोत्रसे दिव्य, अव्यक्त एवं प्रकाशमान आदित्यमण्डलमें स्थित भगवान् भास्करकी सूति करने लगे—

प्रजापति परमात्मन् ! आप तीनों त्योकोंके नेत्र-स्वरूप हैं, सम्पूर्ण प्राणियोंके आदि हैं, अतः आदित्य नामसे विद्युत हैं । आप इस मण्डलमें महान् पुरुष-रूपमें देवीप्यमान हो रहे हैं । आप ही अविद्य-स्वरूप विष्णु और पितामह ब्रह्म हैं । रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, चन्द्र, मेष, कुवेर,

विभावसु, यमके रूपमें इस मण्डलमें देवीप्यमान पुरुषके रूपसे आप ही प्रकाशित हैं । यह आपका साक्षात् महादेवपर्य वृत्त अण्डके समान है । आप काल एवं उत्पत्तिस्वरूप हैं । आपके मण्डलके तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो रही है । आप सुधाकी वृष्टिसे सभी प्राणियोंको परिपूष्ट करते हैं । विभावसो ! आप ही अन्तःस्थ म्लेच्छजातीय एवं पशु-पक्षीकी योनिमें स्थित प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । गलित कुष्ठ आदि रोगोंसे प्रस्त तथा अन्य और बधियोंको भी आप ही रोगमुक्त करते हैं । देव ! आप शरणागतके रक्षक हैं । संसार-चक्र-मण्डलमें निमग्न निर्धन, अल्पायु व्यक्तियोंकी भी सर्वदा आप रक्षा करते हैं । आप प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं । आप अपनी लीलामात्रसे ही सबका उद्धार कर देते हैं । आर्त और रोगसे पीड़ित मैं सुनियोके द्वारा आपकी सूति करनेमें असमर्थ हूँ । आप तो ब्रह्म, विष्णु और महेश आदिसे सदा सूत होते रहते हैं । महेन्द्र, सिद्ध, गण्डव, अप्यग, गुह्यक आदि सुनियोके द्वारा आपकी सदा आराधना करते रहते हैं । जब कृष्ण यजु और सामवेद तीनों आपके मण्डलमें ही स्थित हैं तो दूसरी कौन-सी पवित्र अन्य सूति आपके गुणोंका पार पा सकती है ? आप ध्यानियोंके परम ध्यान और मोक्षार्थियोंके मोक्षद्वार हैं । अनन्त तेजोराशिसे सम्पन्न आप नित्य अचिन्त्य, अस्तोत्र, अव्यक्त और निष्कल हैं । जगत्पते ! इस स्तोत्रमें जो कुछ भी मैंने कहा है, इसके द्वारा आप मेरी भक्ति तथा दुःखमय परिस्थिति (कुष्ठ रोगकी बात)को जान ले और मेरी विपत्तिको दूर करें* ।

सूर्यभगवान्ने कहा—जाम्बवतीपुत्र ! मैं तुम्हारे

* आदित्य हि भूतानामादित्य इति संक्षिप्तः । कैलोक्षेनश्चतुर्वाच परमात्मा प्रजापतिः ॥
एष वै मण्डले द्वास्मिन् पुरुषो दीप्तये महान् । एष विष्णुर्विद्युत्यात्मा ब्रह्म वैष्ण विष्णामः ॥
सद्गुरुं महेन्द्रो वरुण आकाशं पृथ्वीं जलम् । वायुः शशाङ्कः पर्वतं भगवान्तो विभावसुः ॥
य एष मण्डले द्वास्मिन् पुरुषो दीप्तये महान् । एकः साक्षात्प्रहारेण्यो वृक्षमण्डलिभिः सदा ॥
कुवेरो हेष्य महाबाहुर्मुखो भूतपतिलक्षणः । य एष मण्डले द्वास्मिन्नोभिः पूरुषः महेन् ॥
ध्राम्यते हास्यवच्छिद्वावातैर्योऽभृतलक्षणः । नातः परतं किंवित् तेजसा विद्यते क्वचित् ॥
पुण्यति सर्वभूतानि एष एव सुधामृदैः । अन्तःस्थान् म्लेच्छजातीयादित्यर्घ्योनिगतानपि ॥
करुण्यात् सर्वभूतानि पाप्य लोच च विभावसो । विकृकृष्णमवधिपान् पंगृष्टापि तथा विभो ॥
प्रप्रवक्तव्यातो देव कुरुते वीर्यो भगवान् । चक्रमण्डलमप्राप्तः निर्भनाल्पद्युवसाया ॥

स्तुतिसे प्रसन्न हैं, वर्त्तम ! मुझसे जो तुम चाहते हो वह कहो ।

साम्बने कहा—भगवन् ! आपके चरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो, यही वर चाहता है ।

सूर्यभगवान्ने कहा—ऐसा ही होगा ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, सुवित ! द्वितीय वर माँगो ।

साम्बने कहा—भगवन् ! मेरे शारीरमें रहनेवाला यह मल—कुष्ठ आपकी कृपासे दूर हो जाय, गोपते ! मेरा शरीर सर्वथा शुद्ध निर्मल हो जाय ।

भगवान् सूर्यने कहा—ऐसा ही होगा ।

भगवान् सूर्यके ऐसा कहते ही साम्बके शारीरसे कुष्ठ रोग वैसे ही दूर हो गया जैसे सफेके शारीरमें केचुल । वह दिव्य रूपसम्पन्न हो गया । साम्ब भगवान् सूर्यको प्रणामकर उनके सम्मुख खड़े हो गये ।

सूर्यदेवने कहा—साम्ब ! प्रसन्न होकर मैं और भी वर देता हूँ । आजसे मेरा यह स्थान तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा । लोकमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी । जो व्यक्ति तुम्हारे नामसे मेरा स्थान बनायेगा, उसे स्वानाम लोक प्राप्त होगा । इस चन्द्रभागा नदीके तटपर ऐसी स्थापना करो । मैं तुझे स्वप्रमें दर्शन देता रहूँगा । इतना कहकर सूर्यभगवान् प्रत्यक्ष दर्शन देकर अनश्वन्न हो गये ।

इस साम्बकृत स्तोत्रको जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक तीनों क्षणमें पढ़ता है, अथवा सात दिनोंमें एक सौ इक्षीस बार पाठ और हवन करता है तो राज्यकी कामना करनेवाला राज्य, धनकी कामना करनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और रोगसे पीड़ित व्यक्ति वैसे ही रोगमुक्त हो जाता है, जैसे साम्ब कुष्ठ-रोगसे मुक्त हो गये ।

प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्दरसि लीलया । का ने शक्ति: सार्वैः स्तोत्रात्मोऽहं रोगीहितः ॥

सूर्यते त्वं सदा देवैर्कैलालिप्यशिराविभिः । महेन्द्रसिद्धगच्छैरपरपरोऽपि: समग्राकैः ॥

सुतिभिः किं पवित्रैर्वा त्वं देव समीरितैः । यस्य ते ऋष्यजुःसाङ्गं वित्यं मण्डलस्तिवतम् ॥

ध्यानिना त्वं परं भाने मोक्षद्वारं च भोक्षिणाम् । अनन्ततेजसाकोभ्यो द्युचित्तकामात्मविकलः ॥

यद्यं व्याहतः विचित्रं सोदैरप्रिमङ्गतः पतिः । आति भक्ति च विज्ञाय तत्सर्वं ज्ञानमहितिः ॥

* कैर्कर्त्तो विवरणात् मार्त्ताण्डो भास्त्रो रथः । लोकप्रकाशकः श्रीमात्तेजसाकृष्णहितः ॥
स्तोत्रसाक्षी त्रिलोकेशः वर्ता हर्ता रमित्तह । तपनस्तापनसीव शृणुः सपात्तकामः ॥
गर्भसिंहलो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः ।

सुप्रन्तुमुनि बोले—राजन् ! तपस्याके समय रोगसे दुर्बल साम्बने सूर्यकी स्तुति उनके सहस्रनामसे की थी । उसे दुःसी देखकर स्वप्रमें भगवान् सूर्यने साम्बसे कहा—‘साम्ब ! सहस्रनामसे मेरी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं अपने अतिशय गोपनीय, पवित्र और इक्षीस शुभ नामोंको बताता हूँ । प्रयत्नपूर्वक उन्हें ग्रहण करो, उनके पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठकाफल प्राप्त होगा । मेरे इक्षीस नाम इस प्रकार है—

(१) विकर्त्तन (विपत्तियोंके काटने तथा नष्ट करनेवाले), (२) विवस्वान् (प्रकक्षा-रूप), (३) मार्त्ताण्ड (जिन्होंने अष्टमें बहुत दिन निवास किया), (४) भास्त्र, (५) रथ, (६) लोकप्रकाशक, (७) श्रीमान्, (८) लोकचक्षु, (९) ग्रहेश्वर, (१०) लोकसाक्षी, (११) त्रिलोकेश, (१२) कर्ता, (१३) हर्ता, (१४) तमिलहा (अन्यकारको नष्ट करनेवाले), (१५) तपन, (१६) तापन, (१७) शृणु (पवित्रतम्), (१८) सपात्तकाम, (१९) गर्भसिंहस्त (किरणे ही जिनके हाथस्वरूप हैं), (२०) ब्रह्मा और (२१) सर्वदेवनमस्कृत ।*

साम्ब ! ये इक्षीस नाम मुझे अतिशय प्रिय हैं । यह स्वावराजके नामसे प्रसिद्ध हैं । यह स्वावराज शारीरके नीरोग बनानेवाला, धनकी वृद्धि करनेवाला और यज्ञस्कर है एवं तीनों लोकोंमें विख्यात है । महाबाहो ! इन नामोंसे उदय और अस्त दोनों संध्याओंके समय प्रणात होकर जो मेरी स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है । मानसिक, वाचिक और शारीरिक जो भी दुष्कृत है, वे सभी एक बार मेरे सम्मुख इसका जप करनेसे विनष्ट हो जाते हैं । यही मेरे लिये जपने

योग्य तथा हवन एवं संध्योपासना है। अलिमन्त्र, अर्थमन्त्र, प्रदीक्षणामें यह महामन्त्र प्रतिष्ठित होकर सभी पापोंका हरण करनेवाला और शुभ करनेवाला है। यह कहकर जगत्पति

भगवान् भास्कर कृष्णपुत्र साम्बको उपदेश देकर वही अनार्थीन हो गये। साम्ब भी इस स्वरूपजसे सप्तश्वाहन भास्करकी सुनि कर नीरोग, श्रीमान् और उस भव्यकर इशारीकि रोगसे सर्वथा मुक्त हो गये। (अध्याय १२७-१२८)

साम्बको सूर्य-प्रतिमाकी प्राप्ति

सुमन् मुनि बोले—राजन्! इस प्रकार साम्ब सूर्यनाशयणसे वर प्राप्त कर अतिशय प्रसन्न हुए और वर-प्राप्तिको आक्षर्य मानते हुए अन्य तपस्वियोंके साथ समीपमें स्थित चन्द्रभागा नदीमें खान करनेके लिये गये। वहाँ वे खानकर श्रद्धाके साथ अपने हृदयमें मण्डलाकार भगवान् सूर्यकी भावना कर मनमें यह सोचने लगे कि 'सूर्यनाशयणकी कैसी प्रतिमा हो और उसे किस प्रकार कहाँ स्थापित करें।' इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने देखा—चन्द्रभागा नदीके कुररसे एक अल्यन्त देवीप्रायमान प्रतिमा बहती हुई चलती आ रही है। प्रतिमा देखकर साम्बको यह निश्चय हो गया कि यह भगवान् सूर्यकी ही मूर्ति है। जैसो उन्होंने आज्ञा दी थी, वही यह सूर्य-प्रतिमा है, इसमें किसी प्रकारकड़ संदेह नहीं। यह सोचकर नदीसे उस तेजसे चमकती हुई मूर्तिको निकालकर उन्होंने भित्रबन (मूलतान) में एक स्थानपर तपस्वियोंके साथ विधिपूर्वक उसकी स्थापना की। एक दिन साम्बने सूर्य-प्रतिमाको प्रणामकर पूछा—'नाथ ! आपकी यह प्रतिमा किसने बनायी ? इसकी आकृति बड़ी मुन्दर है।' आप कृपाकर बतायें।

प्रतिमा बोली—साम्ब ! पूर्वकालमें मेरा रूप प्रचण्ड तेजोमय था। उससे व्याकुल होकर सभी देवताओंने प्रार्थना की कि 'आप अपना रूप सभी प्राणियोंके सहन करनेके योग्य बनायें, नहीं तो सभी लोग जल जायेंगे।' मैंने महातपस्वी विश्वकर्माको आदेश दिया कि मेरे तेजको कम कर मेरा निर्घण करो। मेरा आदेश प्राप्त कर उन्होंने शाकद्वीपमें चक्रको धुमाकर मेरे तेजको खगद दिया। उसी विश्वकर्मानि कल्पवृक्षके काष्ठसे यह मेरी सुलक्षणा प्रतिमा बनायी है। तुम्हारा उद्धार करनेके लिये मेरी आज्ञाके अनुसार विश्वकर्मानि ही सिद्धसेवित हिमालयपर इसे निर्मितकर चन्द्रभागा नदीमें प्रवाहित कर दिया है। साम्ब ! यह स्थान बड़ा शुभ है, मुन्दर है। यहाँ सदा मेरा सानिध्य रहेगा। प्रातः मनुष्यण इस चन्द्रभागाके टटपर मेरा सानिध्य प्रतिदिन मेरा दर्शन प्राप्त करेंगे। पूर्वाह्नमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और अपराह्नमें शंकर सदा पूजा करेंगे। महावाहो ! इस प्रकार भगवान् सूर्यके ऐसा कहनेपर साम्ब अल्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान् सूर्य भी अनार्थीन हो गये।

(अध्याय १२९)

मन्दिर-निर्माण-योग्य भूमि एवं मन्दिरमें

प्रतिमाओंके स्थानका निरूपण

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! साम्बने भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की ? किसके कथनानुसार उन्होंने भगवान् आदित्यके प्रासादका निर्माण कराया।

सुमन् मुनि बोले—चन्द्रभागा नदीसे प्रतिमा प्राप्त करनेके बाद साम्बने देवर्षि नाटका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे वहाँ उपस्थित हो गये। साम्बने विधिवत् उनका पूजन-सलकार आदि करके उनसे पूछा—'महाराज ! भगवान्के मन्दिरको जो बनवाता है तथा प्रतिमाकी जो प्रतिष्ठा करता है, उन दोनोंका क्या फल है ?'

नारदजीने कहा—नरशार्दूल ! जो रघुणीय स्थानमें

सूर्य-मन्दिरका निर्माण करता है, वह व्यक्ति सूर्यलोकमें जाता है, इसमें संदेह नहीं।

साम्बने पूछा—सूर्य-मन्दिरका निर्माण किस प्रकार तथा किस स्थानपर कराना चाहिये ? आप इसे बतायें।

नारद बोले—जहाँ जलशयि निरन्तर विद्यमान रहे, वहाँ मन्दिर बनवाना चाहिये अर्थात् सर्वप्रथम एक विशाल जलशयका निर्माण कराना चाहिये। यश और धर्मकी अभिवृद्धिके लिये वहाँ देवमन्दिरका निर्माण कराना चाहिये। उसके समीप उद्यान एवं पुष्पवाटिका भी लगवाने चाहिये। ब्रह्मण आदि वर्णोंके लिये जैसी भूमि वास्तुशास्त्रकी दृष्टिसे

प्रासाद-निर्माणके लिये चार्षित है, वैसी ही भूमि देवप्राप्तादेके लिये भी प्रशस्त मानी गयी है।

सूर्यनारायणका मन्दिर पूर्वभिमुख बनवाना चाहिये, पूर्वकी ओर द्वार रसनेका स्थान न हो तो पक्षिमभिमुख बनवाये। परंतु मुख्य पूर्वभिमुख ही है। स्थानकी इस प्रकारसे कल्पना करे कि मुख्य मन्दिरसे दक्षिणकी ओर भगवान् सूर्यका आन-गृह और उत्तरकी ओर यज्ञशाला रहे। भगवान् शिव और मातृकाका मन्दिर उत्तरभिमुख, ब्रह्माका पक्षिम और विष्णुका उत्तर-मुख बनवाना चाहिये। भगवान् सूर्यके दाहिने पासमें निकुञ्ज तथा बायें पासमें राजीको स्थापित करना चाहिये। सूर्यनारायणके दक्षिणभागमें पिङ्गल, वामभागमें दण्डनायक, सम्मुख श्री और महाक्षेत्राकी स्थापना करनी चाहिये। देवगृहके बाहर अक्षिनीकुमारोंका स्थान बनाना चाहिये। मन्दिरके दूसरे कक्षमें राज और श्री, तीसरे कक्षमें कल्पाण और पक्षी, दक्षिणमें दण्ड और माठर, उत्तरमें लोकपूजित कुबेरको स्थापित करना चाहिये। कुबेरसे उत्तर रेखन एवं विनायककी स्थापना करनी चाहिये या जिस दिशामें

उत्तम स्थान हो वहींपर उनकी स्थापना करे। दाहिनी एवं बायीं ओर अर्च्य प्रदान करनेके लिये दो मण्डल बनवाये। उदयके समय दक्षिण मण्डलमें और अस्तके समय बाम मण्डलमें भगवान्को अर्च्य दे। चक्रवर्कर पीठके ऊपर ऊनगृहमें चार कलशोंसे भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको सविधि ऊन कराये। ऊनके समय शङ्ख आदि मण्डल बाटा बजाने चाहिये। तीसरे मण्डलमें सूर्यनारायणकी पूजा करे। सूर्यनारायणके सामने दिण्डीकी शानक (साढ़ी हुई) प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। सूर्यनारायणके सम्मुख समीपमें ही सर्वदिवमय व्योमकी रचना करनी चाहिये। मध्याह्नके समय बहाँ सूर्यको अर्च्य देना चाहिये अथवा मध्याह्नमें अर्च्य देनेके लिये चन्द्र नामक तृतीय मण्डल बनाये। प्रथम ऊन कराकर आदर्श अर्च्य दे। भगवान् सूर्यके समीप ही उचित स्थानपर पुराणका पाठ करनेके लिये स्थान बनाना चाहिये। यह देवताओंके स्थापनका विधान है। गृहराज और सर्वतोभद्र—ये दो प्रासाद सूर्यनारायणको अतिशय प्रिय हैं।

(अध्याय १३०)

सात प्रकारकी प्रतिमा एवं काष्ठ-प्रतिमाके

निर्माणोपयोगी वृक्षोंके लक्षण

नारदजी बोले—साम्ब ! अब मैं विस्तारके साथ प्रतिमा-निर्माणका विधान बताता हूँ। भक्तोंके कल्पनाणकी अभिवृद्धिके लिये भगवान् सूर्यकी प्रतिमा सात प्रकारकी बनायी जा सकती है। सोना, चाँदी, ताप्र, पाषाण, मूतिका, काष्ठ तथा चित्रलिखित। इनमें काष्ठकी प्रतिमाके निर्माणका विधान इस प्रकार है—

नक्षत्र तथा ग्रहोंकी अनुकूलता एवं शुभ शक्तुन देखकर मण्डलस्मरणपूर्वक काष्ठ-प्रहण करनेके लिये यन्में जाकर प्रतिमोपयोगी वृक्षका चयन करना चाहिये। दूधवाले वृक्ष, कमज़ोर वृक्ष, चौराहे, देवस्थान, वल्मीक, इमशान, चैत्य, आश्रम आदिमें लगे हुए वृक्ष तथा पुत्रके वृक्ष—जिसको किसी बिना पुत्रवाले व्यक्तिने पुत्रके रूपमें लगाया हो अथवा बाल वृक्ष, जिसमें बहुत कोटर हों, अनेक पक्षी रहते हों, शस्त्र, वायु, अग्नि, बिजली तथा हाथी आदिसे दूषित वृक्ष, एक-दो शास्त्रावाले वृक्ष, जिनका अग्रभाग सूख गया हो ऐसे वृक्ष प्रतिमाके योग्य नहीं होते। महुआ, देवदार, वृक्षराज चन्दन,

बिल्व, सूदिर, अंजन, निष्व, श्रीपर्ण (अग्रिमन्थ), पनस (कटहल), सरल, अर्जुन और रक्तचन्दन—ये वृक्ष प्रतिमाके लिये उत्तम हैं। चारों वर्णोंके लिये भिन्न-भिन्न ग्राहा काष्ठोंका विधान है।

अभिमत वृक्षके पास जाकर वृक्षकी पूजा करनी चाहिये। पवित्र स्थान, एकान्त, केश-अङ्गराशन्य, पूर्व और उत्तरकी ओर स्थित, लोगोंको कष्ट न देनेवाला, विस्तृत सुन्दर शास्त्राओं तथा पत्तोंसे समृद्ध, सीधा, ब्रणशन्य तथा त्वचाचाला वृक्ष शुभ होता है। स्वयं गिरे हुए या हाथीसे गिराये गये, शुष्क होकर या अग्रिसे जले हुए और पक्षियोंसे रहित वृक्षोंका प्रतिमा-निर्माणमें उपयोग नहीं करना चाहिये। मधुमक्खीके छातेवाला वृक्ष भी ग्राहा नहीं है। स्त्रिय पत्र-समन्वित, पुष्पित तथा फलित वृक्षोंका कार्तिक आदि आठ मासोंमें उत्तम मुहूर्त देखकर उपवास रहकर अधिवासन-कर्म करना चाहिये। वृक्षके नीचे चारों ओर लीपकर गम्भ, पुष्पमाला, धूप आदिसे यथाविधि वृक्षकी पूजा करे। अनन्तर गायत्रीमन्त्रसे अधिमन्त्रित

जलसे प्रोक्षण करे। दो उग्न्यवल वर्ष धारण कर वृक्षकी गन्ध-माल्यसे पूजा करे तथा उसके सामने कुशासनपर बैठकर देवदारुकी समिथासे अधिमे आहुतियाँ दे, नमस्कार करे।

ॐ प्रजापते सत्यसदाय नित्यं

ओष्ठान्तरात्मन् सच्चराचरात्मन्।

सांनिध्यमस्मिन् कुरु देव वृक्षे

सूर्यावृतं मण्डलमविशेषत्वं नमः ॥

(ब्राह्मपर्व १३१ । २६)

'प्रजापतिसत्यस्वरूप इस वृक्षकी नित्य नमस्कार है। ओष्ठान्तरात्मन्! सच्चराचरात्मन्! देव! इस वृक्षमें आप सांनिध्य करें। सूर्यावृत-मण्डल इसमें प्रविष्ट हो। आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार वृक्षकी पूजा कर उसको सान्त्वना देते हुए कहे—'वृक्षराज! संसारके कल्याणके लिये आप देवालयमें चलें। देव! आप यहाँ छेदन और तापसे रहित होकर स्थित रहेंगे। समयपर धूप आदि प्रदानकर पुण्योंके द्वारा संसार आपकी पूजा करेगा।'

वृक्षके मूलमें धूप-माल्य आदिसे कुठारका पूजन कर उसका सिर पूर्वकी ओर करके सावधानीसे स्थापित करे। अनन्तर मोटक, खीर आदि धक्ष्य द्रव्य तथा सुगम्यत पुण्य,

धूप, गन्ध आदिसे वृक्षकी तथा देवता, पितर, राक्षस, पिशाच, नाग, मुराण, विनायक आदिकी पूजा करके रात्रिमें वृक्षका स्पर्शी कर यह कहे—'देवदेव! आप पूजामें देवोंके द्वारा परिकल्पित हैं। वृक्षराज! आपको नमस्कार है। यह विधिवत् की गयी पूजा आप प्रहण करें। जो-जो प्राणी यहाँ निवास करते हैं, उनको भी मेरा नमस्कार है।'

प्रभातकालमें पुनः उस वृक्षका पूजन करे तथा ब्रह्मांड और भोजकाको दक्षिणा देकर विशेषज्ञोंके द्वारा स्वस्तिवाचन-पूर्वक वृक्षका छेदन करे। पूर्व-ईश्वर और उत्तरकी ओर वृक्ष कट करके गिरे तो अच्छा है। शास्त्राओंके इन दिशाओंमें गिरनेपर ही वृक्षका छेदन करे अन्यथा नहीं। वृक्षका नैऋत्य, आग्रेय और दक्षिण दिशाओंमें गिरना शुभ नहीं है एवं वायव्य और पश्चिममें गिरना भयज्वल है। पहले वृक्षके चारों ओरकी शास्त्राओंके काटनेके बाद वृक्षको कटवाये। वृक्षसे शास्त्राएँ सर्वथा अलग हो जायें तथा गिरकर टूटे नहीं एवं इष्ट भी नहीं हो तो उत्तम है। जिसके कटनेसे दो भाग हो जाय, जिस वृक्षसे मधुर द्रव्य, धी, तेल आदि निकले उसका परित्याग कर दे। इन दोणोंसे रहित अच्छा काल देखकर काष्ठका संग्रह करना चाहिये।

(अध्याय १३१)

सूर्य-प्रतिमाकी निर्माण-विधि

नारदजीने कहा—यदुशार्दूल! मैं सभी देवोंकी प्रतिमाका लक्षण विशेषरूपसे आदित्यकी प्रतिमाका लक्षण कहता हूँ। एक हाथ, दो हाथ, तीन हाथ अथवा साढ़े तीन हाथ लम्बी या देवालयके द्वारके प्रमाणके अनुसार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कराना चाहिये। एक हाथकी प्रतिमा सौम्य होती है, दो हाथकी धन-धान्य देती है, तीन हाथकी प्रतिमासे सभी क्राय सिद्ध होती है, साढ़े तीन हाथकी लम्बी प्रतिमाकी स्थापनासे गाढ़में सुभिक्ष, कल्याण और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। प्रतिमाके अग्रभाग, मध्यभाग और मूलभागमें सौम्य होनेपर उसको गान्धर्वी प्रतिमा कहते हैं। वह धन-धान्य प्रदान करती है। देवालयके द्वारका जितना विस्तार हो, उसके आठवें अंशके समान प्रतिमा बनवानी चाहिये।

धगवान् सूर्यकी प्रतिमा विशाल नेत्र, कमलके समान मुख, रक्तवर्णके विष्वके समान सुन्दर ओढ़, रलजिट मुकुटसे अलंकृत मस्तक, मणि-कुण्डल, कटक, अंगद, हार आदि अलंकारोंसे सुशोभित अव्यङ्ग धारण किये हुए, हाथोंमें प्राकुल्लित कमल और सुवर्णकी माला लिये हुए अतिशय सुन्दर सभी शुभ लक्षणोंसे समन्वित बनवानी चाहिये।

इस प्रकारकी प्रतिमा प्रजाका कल्याण करनेवाली, आरोग्य-प्रदायक तथा अभय प्रदान करनेवाली होती है। हीन या कम अङ्गवाली प्रतिमा अनिष्टकारक होती है। अतः प्रतिमा सीधी और सुडौल बनवानी चाहिये।

ब्रह्मजीकी मूर्ति हाथमें कमण्डल धारण किये कमलासनपर विशालमान तथा चार मुळोंसे संयुक्त बनवानी

चाहिये। कात्तिकेयकी प्रतिमा कुमार-स्थाप, हाथमें शक्ति लियं, अतिशय सुन्दर बनवानी चाहिये। इनकी वजा मध्यूर-मण्डित होनी चाहिये।

इनकी प्रतिमा चार दींगोंसे युक्त सफेद दींगोंवाले ऐश्वर्य गजपर आरुङ्ग तथा हाथमें वज्र धारण किये हुए बनवानी चाहिये। इस प्रकार दींगोंकी प्रतिमा शुभ लक्षणोंसे युक्त और सुन्दर बनवानी चाहिये।

नारदजी बोले— साम्ब! भगवान् सूर्यकी इस प्रकारकी प्रतिमा बनवाकर ईशानकोणमें चार तोरण, पल्लव, पुष्पमाला, पताका आदिसे विभूषित कर फिर अधिवासनके लिये मण्डपका निर्माण करवाना चाहिये। काष्ठकी मूर्ति श्री, विजय, बल, यश, आयु और धन प्रदान करती है, मिट्टीकी प्रतिमा प्रजाका कल्याण करती है। मणिमयी प्रतिमा कल्याण और सुविक्ष प्रदान करती है, सुवर्णकी प्रतिमा पुष्टि, चाँदीकी मूर्ति कीर्ति, ताम्रकी मूर्ति प्रजावृद्धि तथा पाण्याणकी प्रतिमा विषुल भूमि लाभ करती है। लोह, शीशे एवं रंगीकी मूर्तियाँ अनिष्ट करनेवाली होती हैं, इसलिये इन धातुओंकी प्रतिमा नहीं बनवानी चाहिये।

साम्बने पूछा— नारदजी ! भगवान् सूर्य सर्वदैवमय कहे गये हैं, यह उनका सर्वदैवमयत्व कैसा है ? उसे कृपाकर बताइये।

नारदजीने कहा— साम्ब ! तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी

(अध्याय १३२-१३३)

सूर्य-प्रतिष्ठाका मुहूर्त और मण्डप बनानेका विधान

नारदजी बोले— साम्ब ! भगवान् सूर्यकी स्थापनाके लिये प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, दशमी, ब्रह्मोदशी तथा पूर्णिमा—ये तिथियाँ प्रशस्त मानी गयी हैं। चन्द्रमा, बुध, गुरु और शुक्र—इन ग्रहोंके उद्दित एवं अनुकूल होनेपर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। सूर्यकी स्थापनामें तीनों उत्तर, रेती, अक्षिनी, रोहिणी, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण और भरणी—ये नक्षत्र प्रशस्त हैं। प्रतिष्ठाके लिये यज्ञभूमि भूमी, राख, केश आदिसे रहित एवं शुद्ध होनी चाहिये। उसमें वालू, कंकड़ एवं कोयले न हों। दस हाथ लंबा-चौड़ा मण्डप बनवाना चाहिये। उसके चारों ओर वृक्ष, उद्धान, उपवन आदि होने चाहिये। उस मण्डपमें चार हाथ लंबी-चौड़ी वेदीका निर्माण करे। नदीके संगम-स्थानसे मिट्टी

है। अब मैं यह सब बता रहा हूँ। इसे ध्यानसे सुनो— भगवान् सूर्य सर्वदैवमय हैं, उनके नेत्रोंमें बुध और सोम, ललतपर भगवान्, शंकर, सिरमें ब्रह्मा, कपालमें बृहस्पति, कण्ठमें एकादश रुद्र, दींगोंमें नक्षत्र और ग्रहोंका निवास है। ओष्ठोंमें धर्म और अधर्म, जिह्वामें सर्वशास्त्रमयी महादेवी सरस्वती स्थित हैं। कणोंमें दिशाएँ, और विदिशाएँ, तालुदेशमें ब्रह्मा और इन्द्र स्थित हैं। इसी प्रकार भ्रूमध्यमें वारहों आदित्य, रोमकूपोंमें सभी ऋषिगण, पेटमें समुद्र, हृदयमें यक्ष, किंबर, गच्छर्व, पिशाच, दानव और राक्षसगण विराजमान हैं। भूजाओंमें नदियाँ, कहोंमें वृक्ष, पीठके मध्यमें मेघ, दोनों स्तनोंके बीचमें मङ्गल और नाभिमण्डलमें धर्मराजका निवास है। कटिप्रदेशमें पृथ्वी आदि, लिङ्गमें सृष्टि, जानुओंमें अश्विनीकुमार, ऊरुओंमें पर्वत, नखोंके मध्य सातों पाताल, चरणोंके बीच धन और समुद्रसहित भूमण्डल तथा दन्तान्तरोंमें कालाग्नि रुद्र स्थित हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य सर्वदैवमय तथा सभी देवताओंके आत्मा हैं। जैसे वायुसे विश्व व्याप्त है, वैसे ही चक्रचर जगत् इनसे परिव्याप्त है, वैसोंकि वायु भी भगवान् सूर्यके प्रत्येक अङ्गोंमें ही स्थित रहता है। ऐसे ये भगवान् सूर्यके प्रत्येक अङ्गोंमें ही स्थित रहता है। तत्पर रहते हैं।

अथवा वालू लाकर वहाँ बिछाये। भलीभांति मण्डपको गोबर आदिसे उपलिप्त करे, पूर्व दिशामें चतुर्स्र, दक्षिण दिशामें अर्धचन्द्र, पश्चिम दिशामें वर्तुलाकार और उत्तर दिशामें पद्मके आकारवाले चार कुण्डोंका निर्माण करे। बट, पोपल, गूलर, बेल, पलाश, शमी अथवा चन्दनके द्वाग पाँच-पाँच हाथके खंभे लगाये। शुक्र वस्त्र, पुष्पमाला, कुशा आदिके द्वाग प्रत्येक खंभेको अलंकृत करे।

मण्डपके मध्यमें अलंकृत वेदीके ऊपर कुश बिछाकर पुष्योंसे आच्छादित करे या ढककर प्रतिमाको रखे। मण्डपके आठों दिशाओंमें क्रमशः पीत, रक्त, कृष्ण, अङ्गुष्ठके समान नील, खेत, कृष्ण, हरित और विव्रवर्णकी आठ पताकाएँ, आठ दिक्षालोकी प्रसन्नताके लिये लगाये। सफेद और लाल चूर्णसे

वेदीके कृपर कमलकी आकृति बनाये। 'वेदा वेदः' (यजु० १९। १७) इस मन्त्रसे वेदीका स्फर्ण करे। 'योगे योगेन्ति' (यजु० ११। १४) इस मन्त्रसे उसपर पूर्वाय और उत्तराय कुशोंको बिछाये। वहाँ उत्तम बिलावन और दो तकियोंसे युक्त

एक शाव्या एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको मण्डपमें रखे। एक उत्तम शेत छाँ वहाँ स्थापित कर विचित्र दीपमालासे मण्डलको अलंकृत करे।

(अध्याय १३४)

साम्बोपाख्यानके प्रसंगमें सूर्यकी अभिषेक-विधि

नारदजी बोले—साम्य ! अब मैं भगवान् सूर्यके ऋषनकी विधि बताता हूँ। वेदपाठी, पवित्र आचारनिष्ठ, शास्त्रमर्मज्ञ, सूर्यभक्त भोजक अथवा अन्य ब्राह्मणोंके साथ मण्डलके इशानकोणमें एक हाथ लंबा-चौड़ा और ऊंचा भद्रपीठ स्थापित कर देव-प्रतिमाको प्रासादमें लाये और प्रतिमाको उस पीठपर स्थापित करे। मार्गमें 'भद्र कणेभिः' आदि माङ्गलिक मन्त्रोंकी ध्वनि होती रहे तथा भौति-भौतिके वाय बजते रहें। अनन्तर समुद्र, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, चन्द्रभागा, सिंधु, पुष्कर आदि तीर्थों, नदी, सरोवर, पर्वतीय झरनोंके जलसे भगवान् सूर्यको ऊन कराये। आठ ब्राह्मण और आठ भोजक सोनेके कलशोंके जलसे ऊन करायें। ऊनके जलमें रब, सुवर्ण, गन्ध, सर्ववीज, सर्वीविधि, पुष्प, बाह्यी, सुवर्चला (सूर्यमुखी), मुस्ता, विष्णुकान्ता, शतावरी, दूधी, मदार, हल्दी, प्रियंगु, वच आदि सभी ओवधियाँ ढालें। कलशोंके मुखपर वट, पीपल और शिरीषके कोमल पल्लवोंके कुशके साथ रखे। भगवान् सूर्यको अर्च देकर गायत्री-मन्त्रसे अधिष्ठित सोलह कलशोंसे ऊन कराये। सुवर्ण कलशके अभावमें चाँदी, ताँबा, मृतिकाके कलशोंसे ही ऊन कराना चाहिये। इसके अनन्तर पक्ष ईटोंसे बनी हुई वेदीके कृपर कुश विछाकर मूर्तिको दो बल पहनाकर स्थापित करना चाहिये। उस दिन ब्रत रखे। मूर्ति स्थापित करनेके

पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे प्रतिमाका अभिषेक करे—

'देवश्रेष्ठ ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण आकाश-गङ्गासे परिपूर्ण जलद्वारा आपका अभिषेक करें। दिवस्ते ! भक्तिमान् महादण मेघजलसे परिपूर्ण द्वितीय कलशसे आपका अभिषेक करें। सुरोत्तम ! विद्याधर सरस्वतीके जलसे परिपूर्ण तृतीय कलशके द्वारा आपका अभिषेक करें। देवश्रेष्ठ ! इन्द्र आदि लोकपालगण समुद्रके जलसे परिपूर्ण चतुर्थ कलशसे आपका अभिषेक करें। नागगण कमलके परागसे सुगन्धित जलसे परिपूर्ण पञ्चम कलशसे आपका अभिषेक करें। हिमवान् एवं सुवर्णशिशरवाले सुमेरु आदि पर्वतगण दक्षिण-पश्चिममें स्थित छठे कलशके जलसे आपका अभिषेक करें। आकाशचारी सप्तरिंगण पदापरागसे सुगन्धित सम्पूर्ण तीर्थ-जलोंसे परिपूर्ण सप्तम घटके द्वारा आपका अभिषेक करें। आठ प्रकारके मङ्गलसे समन्वित अष्टम कलशसे वसुगण आपका अभिषेक करें। हे देवदेव ! आपको नमस्कर है'।

इसी प्रकार एक ताप्तके पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर ऊन कराये। वैदिक मन्त्रोंसे गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, कुशोदक लेजकर ताप्तके नवीन पात्रमें पञ्चगव्य बनाकर सूर्यनारायणको ऊन कराये। मन्त्रसे गन्धयुक्त जलसे ऊन कराये, अनन्तर शुद्धोदक-ऊन कराये तथा रक्त वस्त्र एवं अलंकारसे अलंकृत कर इस प्रकार आवाहन करे—

१-देवास्त्वाभिपिन्नन् ब्रह्मविष्णुशिवदयः । योगगङ्गाम्बुद्गौणं
मरुतस्त्वाभिपिन्नन् भक्तिमनो दिवस्ते । येषतोयाभिपूर्णं
स्वारस्वान् पूर्णं कलशेन सुरोत्तम । विद्याधराभिपिन्नन्
शक्तिर्दया अभिपिन्नन् लोकपालः सुरोत्तमः । सागरोदक्षयूर्णं
वारिणा परिपूर्णं पदारेण्यसुगन्धिना । पदामेनाभिपिन्नन्
हिमवद्देमकृतादा अभिपिन्नन् चाप्ताः । नैर्होदक्षयूर्णं
सर्वतीर्थाम्बूद्गौणं पदारेण्यसुगन्धिना । सप्तमेनाभिपिन्नन्
वस्त्रवक्षाभिपिन्नन् कलशेनाहमेन वै । अष्टममङ्गलतुकेन

कलशेन सुरोत्तम ॥
द्वितीयकलशेन तु ॥
तृतीयकलशेन तु ॥
चतुर्थकलशेन तु ॥
नागस्त्वा कलशेन तु ॥
षष्ठेन कलशेन तु ॥
ऋष्यः सत्त्व सेवयः ॥
देवदेव नमोऽस्तु ते ॥

(ब्राह्मण १३५ । २१—२८)

एहोहि भगवन् भानो लोकानुग्रहकारक ।

यज्ञभागे गुहाण त्वमप्रिदेव नमोऽसु ते ॥

'भगवन् ! लोकानुग्रहकारक भानो ! आप आये, इस यज्ञभागको ग्रहण करें, भगवान् सूर्यदेव ! आपको नमस्कार है ।'

तदनन्तर सुवर्णपात्रके द्वारा सूर्यदेवको अर्थ्य प्रदान करें । पहले मिट्ठीके कलशसे, अनन्तर तोप्र-कलशसे फिर रजत-कलशसे और अन्तमे सुवर्णके कलशसे मन्त्रोद्घाटा अभियेक करें । सम्पूर्ण तीर्थोदक और सर्वोदयित्वसे युक्त शङ्खको सूर्यदेवके मस्तकपर भ्रमण कराये और उसके जलसे ज्ञान कराये, अनन्तर पुष्प और धूप देकर जल, धूध, शृत, शहद और इश्वरसे स्नान कराये ।

इस प्रकारसे सूर्यदेवको ज्ञान करानेवाला पुरुष अग्रिष्ठोम, ज्योतिष्ठोम, वाजपेय, गणसूय और अष्टमेध-यज्ञके फलको

प्राप्त करता है । जो ज्ञानके समय सूर्यदेवका भक्तिपूर्वक दर्शन करता है, वह भी पूर्वोक्त फल प्राप्त करता है । ऐसे स्थानमें ज्ञान कराना चाहिये जहाँ ज्ञानके जलकम कोई लङ्घन न कर सके और ज्ञानके जल, दही, धूधको कुत्ता, कौआ आदि निनिदित जीव भक्षण न कर सके ।

इस प्रकारके ज्ञानविधिके सम्पादनके लिये जिस प्रकारके ब्राह्मण और भोजककी आवश्यकता होती है, उनका लक्षण सुनें—

वह व्यक्ति विकलाङ्ग अर्थात् न्यूनाधिक अङ्गवाला न हो । वेदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता, सुन्दर, कुलीन और आर्यावर्त देशमें उत्पन्न हो । गुरुभक्त, जितेन्द्रिय, तत्त्वज्ञा और सूर्यसम्बन्धी शास्त्रोंका ज्ञाता हो । ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणसे ज्ञान और प्रतिष्ठा करानी चाहिये । (अध्याय १३५)

भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके अधिवासन और

प्रतिष्ठाका विद्यान तथा फल

नारदजी बोले—साम्ब ! अब मैं अधिवासनविधि कहता हूँ । पवित्र भूमिको लीपकर पाँच रंगोंसे चतुरस्र सुन्दर मण्डलकी रचना करे । पताका, ध्वज, तोरण, छत्र, पुष्पमाला आदिसे उसे अलंकृत कर मण्डलमें कुशा विछाये और सूर्यदेवकी मूर्ति स्थापित करे । भगवान् सूर्यका आवाहन कर उन्हें अर्थ्य दे, मधुपर्क तथा वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे पूजन करे और अव्यङ्ग अर्पण करे । जिस प्रकार देवताओंको पवित्रक अर्पण किया जाता है, वैसे ही प्रतिवर्ष श्रावण मासमें नवीन अव्यङ्गकी रचनाकर सूर्यनारायणको समर्पित करना चाहिये । इनका यह पवित्रक है । नवीन अव्यङ्गके समर्पणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये । भगवान्-की प्रतिमाको सुगचित द्रव्योंसे उपलिप्त कर पुष्पमाला चढ़ाये तथा धूप आदि दिखाये । 'नमः शास्त्रवाय' (यजु. १६। ४१) इस मन्त्रसे भगवान्-की प्रतिमाको शश्याके ऊपर शयन कराये । सम्पूर्ण क्रामनाओंकी पूर्तिके लिये इस प्रकार पाँच दिन, तीन दिन अथवा एक ही रात्रि प्रतिमाका अधिवासन करें ।

देवालयके ईशानकोणमें उत्तम स्थानके मध्यमें कुशा विछाकर वहाँ शुक्र वस्त्रोंसे सुसज्जित शश्या रखें । शश्याका

सिरहाना पूर्वमुख रखा जाय । उसी शश्यापर भगवान् सूर्यकी प्रतिमाको शयन कराये । उनके दाहिने भागमें निक्षुभा, वाम भागमें राज्ञी और चरणोंके समीप दण्डनायक तथा पिङ्गलको स्थापित करे । उस रात्रिमें सूर्यनारायणके समीप जागरण करे, बन्दी-चारणसे सुति, नृत्य, गीत आदि उत्सव कराये । प्रभात होते ही ऋष्येदके विधानसे प्रतिमाका उद्घासन करे और स्वस्तिवाचनपूर्वक भगवान्-की पूजा कर ब्राह्मण तथा भोजकोंको हविष्यात्र भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा देकर प्रसन्न करे । अनन्तर मन्दिरके गर्भगृहमें पिण्डिकाके ऊपर सात अशोंसे युक्त सूर्यनार्का रथ स्थापित कर सूर्यनारायणको अर्थ्य देकर मङ्गल वाद्योंके साथ जलधारा गिराये । फिर उत्तम मुहूर्त और स्थिर लग्नमें प्रतिमाकी स्थापना करे । प्रतिमाका मुख नीचे-ऊपर या अगल-बगल, तिरछा न हो, बरन् सीधा और सम रहे । भगवान् सूर्यकी प्रतिमाके दक्षिण-भागमें और वामभागमें क्रमशः निक्षुभा और राज्ञीकी प्रतिमा स्थापित करे । अनन्तर मोटक, इक्कुली, पायस, कृशर आदिसे इन्द्रादि दस दिव्यालयोंका आवाहन तथा पूजन कर उन्हें बलि समर्पित करे ।

इसके अनन्तर सुतियों तथा विविध उपचारोंरे

सूर्यदिवकरं पूजनकरं ब्राह्मणों और भोजकरोंको भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे। इस प्रकार भक्तोंद्वाग्यं भक्तिपूर्वक प्रतिमाकी स्थापना किये जानेपर, वह उनकी सभी प्रकार कल्याणं, मङ्गलं और सुख-समृद्धिकी वृद्धि करती है और उसमें भगवान् सूर्यका नित्य सांनिध्य रहता है। सूर्यकी स्थापना करनेवाला व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है और उसे सात जन्मोंतक अधिक-व्याधियाँ भी नहीं सततीं। तीन दिनोंतक प्रतिष्ठाके उत्सवोंमें सम्मिलित रहनेवाला व्यक्ति सूर्यलोकको जाता है। सूर्यनारायणकी प्रतिमाकी स्थापना करनेसे दस अश्वमेध तथा सौ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। मन्दिरकी ईट जबतक चूर्ण नहीं हो जाती, तबतक मन्दिर बनवानेवाला पुरुष सर्व-

सुख भोगता है। सूर्य-मन्दिरके जीणोंद्वारा करनेका पुण्य इससे भी अधिक है। जो पुरुष मन्दिरका निर्माण कराकर प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति एवं प्रलयके हेतुभूत सुरक्षेष्ट भगवान् सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करता है, वह संसारके सब सुखोंको भोगकर सौ कल्पोंतक सूर्यलोकमें निवास करता है। मन्दिरमें इतिहास-पुराणका पाठ भी करना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य देवताओंकी प्रतिमाओंका भी शास्त्राधिकार स तथा उद्घोषण करे तथा शुभ मुहूर्तमें उन प्रतिमाओंको यथास्थान पिण्डिकापूर स्थापित कर पूजन करे।

(अध्याय १३६-१३७)

ध्वजारोपणका विधान और फल

नारदजी बोले— साम्य ! अब मैं ब्रह्माजीद्वाग्यं वर्णित ध्वजारोपणकी विधि बतलाता हूँ। पूर्वकालमें देवता और असुरोंमें जो भीषण युद्ध हुआ, उसमें देवताओंने अपने-अपने रथोंपर जिन-जिन विहोकी कल्पना की, वे ही उनके ध्वज कहलाये। उनका लक्षण इस प्रकार है— ध्वजका दण्ड सीधा, ब्रणरहित और प्रासादके व्यासके बराबर लंबा होना चाहिये अथवा चार, आठ, दस, सोलह या बीस हाथ लंबा होना चाहिये। ध्वजका दण्ड बीस हाथसे अधिक लंबा न हो और सम पर्वोंवाला हो। उसकी गोलाई चार अङ्कुर होनी चाहिये।

ध्वजके ऊपर देवताओंसे सूचित करनेवाला चिह्न बनवाना चाहिये। भगवान् विष्णुके ध्वजपर गरुड़, शिवजीकी ध्वजापर वृष, ब्रह्माजीकी ध्वजापर पद्म, सूर्यदिवकी ध्वजापर व्योम, सौमकी पताकापर नर, बालदेवकी पताकापर फालस्वर्णित हल, कामदेवकी पताकापर मकरध्वज, इन्द्रकी ध्वजापर हस्ती, दुर्गाकी ध्वजापर सिंह, उमादेवीकी ध्वजापर गोधा, रेवतीकी ध्वजापर अश्व, वल्लभकी ध्वजापर कच्छुप, वायुकी ध्वजापर हरिण, अग्निकी ध्वजापर मेघ, गणपतिकी ध्वजापर मूषकका तथा ब्रह्मर्पियोंकी पताकापर कुशका चिह्न बनाना चाहिये। जिस देवताका जो वाहन हो, वही ध्वजापर भी अङ्कुर रहता है।

विष्णुकी ध्वजाका दण्ड सोनेका और पताका पीतवर्णकी होनी चाहिये, वह गरुड़के समीप रखनी चाहिये। शिवजीका

ध्वजदण्ड चाँदीका और थेत वर्णकी पताका वृपके समीप स्थापित करे। ब्रह्माका ध्वजदण्ड तविका और पदावर्णकी पताका कमलके समीप रखे। सूर्यनारायणका ध्वजदण्ड सुवर्णका और व्योमके नीचे पैंचरंगी पताका होनी चाहिये, जिसमें किंविणी रुग्णी रहे एवं पुष्पमालाओंसे संयुक्त हो। इन्द्रका ध्वजदण्ड सोनेका और हस्तीके समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। यमका ध्वजदण्ड लोहेका और महियके समीप कृष्णवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कुबेरका ध्वजदण्ड घणिमय और मनुष्य-पादके समीप रक्त वर्णकी पताका रखे। बलदेवका ध्वजदण्ड चाँदीका और तालवृक्षके नीचे थेतवर्णकी पताका रखनी चाहिये। कामदेवका ध्वजदण्ड त्रिलौह (सोना, चाँदी और तीव्रा-मिश्रित) का और मकरके समीप रक्तवर्णकी पताका स्थापित करनी चाहिये। कार्तिकेयका ध्वजदण्ड त्रिलौहका और मयूरके समीप चित्रवर्णकी पताका एवं गणपतिका ध्वजदण्ड ताप्रका अथवा हस्तिनका एवं मूषकके समीप शुक्लवर्णकी पताका और मातृकाओंके ध्वजदण्ड अनेक रूपोंके तथा अनेक वर्णोंकी अनेक पताकाएँ होनी चाहिये। रेवतीकी पताका अश्वके समीप लालवर्णकी, चामुण्डाका ध्वजदण्ड लौहका और मुण्डमालाके समीप नीले वर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। गौरीका ध्वजदण्ड ताप्रका और इन्द्रगोप (बीरबहूटी कीट) के समान अतिशय रक्तवर्णकी ध्वजा होनी चाहिये। अग्निका ध्वजदण्ड सुवर्णका और मेषके

समीप अनेक वर्णकी पताका होनी चाहिये। बायुका ध्वजदण्ड लौहका और हरिणके समीप कृष्णवर्णकी पताका होनी चाहिये। भगवतीका ध्वजदण्ड सर्वधातुमयः^{३५} उसके ऊपर सिंहके समीप तीन रंगकी पताका होनी चाहिये।^{३६}

इस प्रकार ध्वजका पहिले निर्माणकर उसका अधिवासन करे। लक्षणके अनुसार वेदीका निर्माण करे, कलशकी स्थापना कर सर्वार्थिज-जलसे ध्वजको रखना कराये। वेदीके पश्यमे उसे खड़ाकर सभी उपचारोंसे उसकी पूजा करे और उसे पुष्टमाला पहिनाये, दिल्लालोंको बलि देकर एक गततक अधिवासन करे। दूसरे दिन भोजन कराकर शुभ मूर्तीमें स्वस्तिवाचन आदि मङ्गल-कृत्य सम्पन्न कर ध्वजको मन्दिरके ऊपर आरूढ़ करे। ध्वजारोहणके समय अनेक प्रकारके वाद्योंको बजाये, ब्राह्मणगण वेद-ध्वनि करें। इस प्रकार देवालयपर ध्वजारोहण कराना चाहिये। ध्वजारोहण करने-वालेकी सम्पत्तिकी सदा वृद्धि होती रहती है और वह परम गतिको प्राप्त करते हैं। ध्वजरोहित मन्दिरमें असुर निवास करते

हैं, अतः ध्वजरोहित मन्दिर नहीं रखना चाहिये। ध्वजारोहणके समय इन मन्त्रोंको पढ़ना चाहिये—

एहोहि भगवन् देव देववाहन चै खग ॥

श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित ॥

ब्रोपरुप महारूप धर्मात्मस्त्वं च चै गतेः ॥

सानिध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन् साक्षी च भूतां ब्रज ॥

कुरु वृद्धि सदा कर्तुः प्राप्तसदस्यार्कवल्लभम् ॥

ॐ एहोहि भगवत्रीष्वरविनिर्वित उपरिचरवायु-मार्गानुसारिञ्चूनिवास रिपुध्वेस यक्षनिरुप्य सर्वदेवप्रियं कुरु सानिध्यं शान्ते स्वस्त्रयनं च मे । भवेद् सर्वविद्वा व्यप्यसरन् ॥

(ब्राह्मण १३८। ३३—३६)

सच्छ दण्डमें पताकाको प्रतिष्ठित करे तथा पताकाका दर्शन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो शक्तिका ध्वजारोहण करता है, वह श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर सूर्यस्त्रोक्तको प्राप्त करता है।

(अध्याय १३८)

साम्बोधारव्यानमें मगोंका वर्णन

साम्बने कहा—नारदजी ! आपकी कृपासे मुझे सूर्यभगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, उत्तम रूप भी प्राप्त हुआ, किंतु मेरा मन विच्छासे आकुल है, इस मूर्तिका पूजन और रक्षण कौन करेगा ? इसे आप बतानेकी कृपा करे।

नारदजी बोले—साम्ब ! इस कार्यको कोई भी ब्राह्मण स्त्रीकार नहीं करेगा, क्योंकि देवपूजा अर्थात् देवधनसे अपना निर्वाह करनेवाले ब्राह्मण देवलक्ष कहे जाते हैं। जो लोग लोभवश देवधन और ब्राह्मण-धनको ग्रहण करते हैं, वे नरकमें जाते हैं, अतः कोई भी ब्राह्मण देवताका पूजक नहीं बनना चाहता। तुम भगवान् सूर्यकी शरणमें जाओ और उन्होंसे पूछो कि कौन उनका विधि-विधानसे पूजन करेगा ? अथवा यजा उपरसेनके पुरोहितसे कहो, सम्भव है कि वे इस कार्यको स्त्रीकार कर लें।

नारदजीकी इस बातको सुनकर जाम्बवतीपुत्र साम्ब उपरसेनके पुरोहित गौरमुखके पास गये और उन्होंने उन्हें सादर प्रणामकर कहा—‘महाराज ! मैंने सूर्यभगवान्का एक विशाल मन्दिर बनवाया है, उसमें समस्त परिवार तथा परिच्छुर्दों एवं पतियोंसहित उनकी प्रतिमा स्थापित की है और

अपने नामसे वहाँ एक नगर भी बनाया है। आपसे मेंग यह विनाश निवेदन है कि आप उन्हें ग्रहण करें।’

गौरमुखने कहा— साम्ब ! मैं ब्राह्मण हूँ और आप राजा हैं। आपके हाथ दिये गये इस प्रतिप्राहको लेनेपर मेरा ब्राह्मणत्व नष्ट हो जायगा। दान लेना ब्राह्मणका धर्म है, किंतु देवप्रतिप्राह ब्राह्मणको नहीं लेना चाहिये। आप यह दान किसी मगको दे दें, वही सूर्यदेवकी पूजाका अधिकारी है।

साम्बने पूछा— महाराज ! मग कौन है ? कहाँ रहते हैं ? किसके पुत्र हैं ? इनका क्या आचार है ? आप कृपाकर बतायें।

गौरमुख बोले— मग भगवान् सूर्य (अग्नि) तथा निष्ठुभाके पुत्र हैं। पूर्वजन्ममें निष्ठुभा महर्षि ऋग्वेदाहुकी अत्यन्त सुन्दर पुत्री थी। एक बार उससे अग्निका उल्लङ्घन हो गया। फलस्वरूप भगवान् सूर्य (अग्निस्वरूप) रुप हो गये। वादमें अग्निरूप भगवान् सूर्यके हाथ निष्ठुभाका जो पुत्र हुआ, वही मग बहलत्या। भगवान् सूर्यके वरदानसे ये ही अग्निवेशमें उत्पन्न अव्यञ्जकों धारण करनेवाले मग सूर्यके परम भक्त हुए और सूर्यकी पूजाके लिये नियुक्त हुए। भगवान्

सूर्यकी पूजा करनेवाले मग शाकद्वीपमें निवास करते हैं, आप भगवान् सूर्यके पूजकके रूपमें उन्हें प्राप्त करनेके लिये शाकद्वीप जायें ।

अनन्तर साम्बने द्वारका जाकर अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णको सब समाचार सुनाया । फिर वे उनकी आशा प्राप्तकर गरुडपर सवार हो शीघ्र ही शाकद्वीप पहुँच गये । वहाँ जाकर उन्होंने अतिशय तेजस्वी महात्मा मगोंको सूर्य-भगवान्की आराधनामें संलग्न देखा । साम्बने उन्हें सादर प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा की ।

साम्बने कहा—आपलोग धन्य हैं । आप सबका दर्शन सबके लिये कल्याणकरी है, आप लोग सदा भगवान् सूर्यकी आराधनामें रहो हुए हैं । मैं भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है । मैंने चन्द्रभागा नदीके तटपर सूर्यदेवकी मूर्तिकी स्थापना की है । उनकी आशके अनुसार उनकी विधिवत् आराधनाके निमित्त शाकद्वीपसे जन्मद्वीपमें ले जानेके

लिये मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुआ हूँ । मेरी सविनय प्रार्थना है कि आपलोग कृपाकर जन्मद्वीपमें पधारे और भगवान् सूर्यकी पूजा करे ।

मगोंने कहा—‘साम्ब ! इस बातकी जानकारी भगवान् सूर्यने हमें पहले ही दी है ।’

यह सुनकर साम्ब बहुत प्रसन्न हुए और गरुडपर उन्हें बैठाकर वहाँसे नित्रवन (मूलस्थान—मुल्लान) ले आये । सूर्यभगवान् मगोंको वहाँ उपस्थित देखकर बहुत प्रसन्न हुए और साम्बसे बोले—‘साम्ब ! अब तुम चिन्ता छोड़ दो, ये मग मेरी विधिवत् पूजा सम्पन्न करेंगे ।’

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे अव्यङ्ग धारण करनेवाले मगोंको लाकर धन-धान्यसे परिपूर्ण इस साम्बुद्धके उन्हें समर्पित कर दिया । वे सब भगवान् सूर्यकी सेवामें तत्पर हो गये और साम्ब भी सूर्यदेव एवं मगोंको प्रणामकर आनन्द-चित्तसे द्वारका लैंट आये । (अध्याय १३९—१४१)

अव्यङ्गका लक्षण और उसका माहात्म्य

एक बार साम्बने महर्षी व्याससे मगोंद्वारा धारण किये जानेवाले अव्यङ्गके विषयमें जिज्ञासा की ।

व्यासजीने कहा—साम्ब ! मैं तुम्हें अव्यङ्गके विषयमें बताता हूँ, उसे सुनो । देवता, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, यश और रक्षास ऋतु-क्रमसे भगवान् सूर्यके रथके साथ रहते हैं । यह रथ वासुकि नामक नागसे बैधा रहता है । विसी समय वासुकि नागका केचुक (केचुल) उत्तरकर गिर पड़ा । नागराज वासुकिके शरीरसे उत्पन्न उस निर्मोक (केचुल) को भगवान् सूर्यने सुर्वा और रलोमें अलंकृतकर अपने मध्य भागमें धारण कर लिया । इसीलिये भगवान् सूर्यके भक्त अपने देवको प्रसन्नताके लिये अव्यङ्ग धारण करते हैं । उसके धारण करनेमें भोजक पवित्र हो जाते हैं और उसपर सूर्यभगवान्का अनुग्रह भी होता है ।

इस अव्यङ्गको सर्पके केचुलकी तरह मध्यमें पोला अर्थात् स्थाली रखना चाहिये । यह एक वर्णक्र में होना चाहिये ।

किसाके सूतसे बना अव्यङ्ग दो सौ अङ्गुलका उत्तम, एक सौ बीसका मध्यम और एक सौ आठ अङ्गुलका करिष्ठ होता है, अतः इससे छोटा नहीं होना चाहिये । यजोपवीतकी तरह आठवें वर्षमें अव्यङ्ग धारण करना चाहिये । भोजकोंके लिये यह मुख्य संस्कार है । इसके धारण करनेमें वह सभी क्रियाओंका अधिकारी होता है । यह अव्यङ्ग सर्वदेवमय, सर्वविद्मय, सर्वलोकमय और सर्वभूतमय है । इसके मूलमें विष्णु, मध्यमें ब्रह्मा और अन्तमें शशाङ्कमौलि भगवान् शिव निवास करते हैं । इसी तरह ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद क्रमशः मूल, मध्य और अप्रभागमें रहते हैं, अथर्ववेद ग्रन्थमें स्थित रहता है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और भूलौक, भूलौक तथा स्वलौक आदि सातों लोक अव्यङ्गमें निवास करते हैं । सूर्यभक्त भोजकको सभी समय अव्यङ्ग धारण कर भगवान् सूर्यकी उपासना करनी चाहिये ।

(अध्याय १४२)

साम्बोपाख्यानमें भगवान् सूर्यको अर्च्य प्रदान करने और धूप दिखानेकी महिमा

सुमन् मुनि बोले— राजन् ! इस प्रकार ऋषिसंजीके द्वारा अव्याख्यके विषयमें जानकारी प्राप्त कर सम्ब नारदजीके पास वापस लौट आये और उन्होंने उनसे सब वृत्तान्त बताकर पूछा— ‘देवर्णे ! भोजकोंको भगवान् सूर्यको लान, अर्च्य, आचमन, धूप आदि किस प्रकार समर्पित करना चाहिये ?’ इसका आप कृपाकर वर्णन करे।

नारदजी बोले— साम्ब ! संक्षेपमें मैं वह विधि बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। सर्वप्रथम शीतादिसे निवृत्त होकर आचमनपूर्वक नदीमें या जलाशय आदिमें लान करना चाहिये। अनन्तर स्वर्णदान कर तीन बार आचमन करे। शुद्ध वस्त्र पहनकर पवित्री धारणकर पूर्णभिमुख या उत्तराभिमुख हो आचमन करना चाहिये। तदनन्तर दो बार मार्जन और तीन बार अभ्युक्षण करे। आचमनके विना की गयी क्रिया निष्कल होती है एवं इसके बिना पुरुष शुद्ध भी नहीं होता। वेदमें कहा गया है कि देवता पवित्रताको ही चाहते हैं। आचमन करनेके बाद मैंन होकर देवालयमें जाना चाहिये। आसनपर बैठकर प्राणायाम कर सिरको कपड़ेसे आच्छादित करे तथा विविध पुष्पोंसे सूर्यभगवान्की पूजा करे। व्याहतिपूर्वक गायत्री-मन्त्रसे गुणुलका धूप दे। फिर भगवान् सूर्यके मस्तकपर पुष्पाङ्किल अर्पित करे।

सहचन्दन, पदा, करबीर, कुकुम आदिको जलमें मिलाकर ताङ्के पात्रसे भगवान् सूर्यको अर्च्य देना चाहिये।

सूर्यमण्डलस्थ पुरुषका वर्णन

सुमन् मुनि बोले— राजन् ! एक बार ऋषिसंजी शङ्क-चक्र-गदाधारी नारायण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये द्वारका आये। महातेजसी श्रीकृष्णने पाठा, अर्च्य, आचमन आदिसे उनका पूजन कर आसनपर उन्हे बैठाया और प्रणाम कर सम्बद्धारा लाये गये भोजकोंकी महिमा तथा उनकी सूर्यभक्तिके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

भगवान् वेदव्यास बोले— भोजक भगवान् सूर्यके अनन्य उपासक हैं और अन्तमें ये भगवान् सूर्यको दिव्य लेजस्ती कल्पमें प्रविष्ट होते हैं। भगवान् भास्करको तीन कलाएं

अर्च्यपात्रको हाथमें उठाकर भगवान् सूर्यका आवाहन करे तथा दोनों जानुओंपर बैठकर भगवान् सूर्यका अपने हृदयमें ध्यान करते हुए नीचे लिखे मन्त्रसे अर्च्य प्रदान करे—

एहि सूर्य सहस्रांशो लेजोरात्रे जगत्पते ।

अनुकम्पा हि मे कृत्वा गृहणार्थं दिखाकर ॥

तदनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

अर्वितस्वं यथाशक्त्या मया भक्त्या विभावसो ।

ऐहिकामुष्मिकी नाश कार्यसिद्धिं ददत्वं मे ॥

(ब्राह्मण १४३) ४५

तीनों काल लानकर इस प्रकार जो भगवान् सूर्यकी आराधना करता है और धूप देता है, वह अश्वेष्य-यज्ञका फल प्राप्त करता है और उसे धन, पुत्र तथा आरोग्यकी भी प्राप्ति हो जाती है एवं अन्तमें वह भगवान् सूर्यमें लीन हो जाता है। उत्तम पुष्पेके न मिलनेपर पत्रोंसे ही पूजन करे। धूप ही दे या भक्तिपूर्वक जल ही सूर्यको समर्पित करे। यदि यह भी न हो सके तो प्रणाम ही करे। प्रणाम करनेमें असमर्थ हो तो मानसी पूजा करे। यह विधि द्रव्यके अभावमें करनी चाहिये, द्रव्य रहनेपर विधिपूर्वक सभी सामग्रियोंसे पूजन करे। भक्तिपूर्वक सूर्यभगवान्की पूजा देखनेवालेको भी अश्वेष्य-यज्ञका फल मिलता है और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। धूप-दानके समय सूर्यका दर्शन करनेपर उत्तम गति प्राप्त होती है। (अध्याय १४३)

है। सूर्यनारायणकी प्रथम कला अग्निमें स्थित है, उससे सभी कर्मोंकी सिद्धि होती है। दूसरी प्रकाशिका कला आकाशमें स्थित है। तीसरी कला सूर्यमण्डलमें है। सवितादेवका यह मण्डल अजर एवं अव्यय है। इस मण्डलके मध्यमें सदसदात्मक वह परमात्मा पुरुष-रूपमें स्थित है। वह पुरुष क्षर-अश्वरूपमें है, इसको महासूर्य कहते हैं। इसके निष्कल और सकल दो भेद हैं। तत्काले साथ सभी भूतेष्व अविनियत वह परमात्मा सकल कहा जाता है और तन्त्रहीन होनेपर निष्कल। तृण्, गुल्म, लता, यूक्ष, मिंह, बूक, हाथी, पक्षी,

देवता, सिद्ध, मनुष्य, जल-जन्तु आदि सभीको अन्तरात्मामें वह व्याप्त है। जब वह परमात्मा दूसरी कलामें स्थित होता है, तब बृहि आदि करता है। तीसरी तैजस कलामें स्थित होकर अपने भक्तोंको मोक्ष देता है, जिस मोक्षफलको प्राप्तकर वह परम शान्ति प्राप्त करता है।

वह परमात्मा औंकारस्वरूप है, औंकारकी साढ़े तीन

मात्राएँ हैं, इनमें अर्धमात्रा मकारका जो ध्यान करता है, उसको सदसदात्मक ज्ञान होता है। सूर्यनारायणका रूप मकार है, मकारका ध्यान करनेसे ही ये मग कहे जाते हैं। धूप, माल्य आदिसे सूर्यनारायणका पूजन कर वे विविध पदार्थोंका भोजन करते हैं, अतः उनकी भोजक संज्ञा है।

(अध्याय १४४)

भगवान् व्यासद्वारा योग-ज्ञानका वर्णन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महामुने ! कृपाकर आप भोजकोंके सभी ज्ञानोंकी उपलब्धिका वर्णन करें।

व्यासजीने कहा—यह शरीर अस्थियोंपर ही स्थान है, खायुओंसे बैधा, चमड़ेसे ढका एवं रक्त-माससे उपलिख है। मल-मूत्र आदि दुर्गन्ध-युक्त पदार्थोंसे भरा है। यह समस्त रोगोंका भर है और इसमें (भीतर) वृद्धावस्था और शोक छिपे हैं, जो अपने-अपने समयपर प्रकट होते रहते हैं। यह शरीर रजोगुण आदि गुणोंसे भरा है, अनित्य है और इसमें भूतसंबोधोंका आवास बना है। अतः इसमें आसक्तिका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये^१।

वृक्षोंके नीचे निवास करना, भोजनके लिये मिट्टीका भिक्षापात्र रखना, साधारण वस्त्र पहनना और किसीसे सहायता न लेना तथा सभी प्राणियोंमें समभाव रखना—यही जीवनमुक्त पुरुषके लक्षण हैं।

जैसे तिलमें तैल, गायमें दूध, काष्ठमें अग्नि स्थित है, वैसे ही परमात्मा समस्त प्राणियोंमें स्थित है। ऐसा समझकर उनकी प्राप्तिका उपाय करना चाहिये। प्रथम प्रमथन स्वभाववाले तथा

चश्चल मनको प्रयत्नपूर्वक वशमें कर बुद्धि और इन्द्रियोंके बैसे ही रोकना चाहिये जैसे पिजेरेमें भक्षियोंको रोका जाता है। इन संयत इन्द्रियोंके द्वारा इस शरीरको अमृतकी धारणके समान तृप्ति होती है^२। प्राणायामसे शारीरिक दोष, धारणासे पूर्वजन्मार्जित तथा वर्तमानतकके सभी पाप, प्रत्याहारसे संसर्गजनित दोष एवं ध्यानसे जैविक दोषोंका त्यागकर ईश्वरीय गुणोंको प्राप्त करना चाहिये। जैसे आगके तापमें रखनेसे धातुओंके दोष दग्ध हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायामके द्वारा साधकके इन्द्रियजनित दोष दग्ध हो जाते हैं। जैसे एक हाथसे दूसरे हाथको दबाया जाता है, वैसे ही अपनी शुद्ध बुद्धिके द्वारा मनको एवं चित्तको शुद्ध कर पवित्र भावनाओंके द्वारा दुर्व्यस्तोंको शान्तकर मन-बुद्धिको अल्पतर पवित्र कर लेना चाहिये। अतः चित्तकी शुद्ध होनेसे शुभ और अशुभ कर्मोंका ज्ञान होता है। शुभ और अशुभ कर्मोंसे छुटकारा प्राप्त कर साधक निर्द्वन्द्व, निर्मम, निष्परिग्रह और निरहंकार होकर मोक्षको प्राप्त कर लेता है^३।

१- अस्थिस्थूलं खायुमुतं मांसत्रोणितलोपनम् । चर्मक्षनद्वा दुर्गनिधूलीं शृणुपुरीयोः ॥
जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजसात्मनित्यं च भूतवासमित्ये लक्षेत् ॥ (ब्राह्मपर्व १४५। २-३)

२- तिले तैल गति क्षीर कष्ठे पाककर्मतिः । उपाये चित्तयेददृश विषया थीः सम्पहितः ॥
प्रमाणिय च प्रयत्नेन मनः संयम्य चहलम् । बुद्धीनिदयाणि संयम्य शकुनानियं पञ्जे ॥ (ब्राह्मपर्व १४५। ५-६)

३- इन्द्रियैर्मितैर्तेऽही भाग्यरित्य तृप्तते । सततमपृतसौवै जनर्तन महामते ॥
प्राणवायेद्विद्वदोषान् भारताभित्त किलित्तम् । प्रत्याहारेण संसर्गात् ध्यानेनानीच्छन् । गुणम् ॥

ध्यानमसामय दहने चाहे दोष वर्णमिना । तथेन्द्रियकृता दोष दहने ज्ञाननिप्रहात् ॥
वित्तं विलेन लंशोप्य चर्व भावेन शोधयेत् । मनस्तु मनसा शोध्य बुद्धि दुर्दया तु शोधयेत् ॥

चित्तस्यातिप्रसादेन भाति कर्म शुभाशुभम् । शुभाशुभविनिर्मुक्ते निर्द्वन्द्वे निष्परिग्रहः ॥
निर्ममो निरहंकारसतो याति परो गतिम् ॥ (ब्राह्मपर्व १४५। ७-११)

सूर्यका पूर्वाह्नमें रक्तवर्ण, ऋग्वेद-स्वरूप तथा गोजसरूप होता है। मध्याह्नमें शुक्रवर्ण, यजुर्वेद-स्वरूप एवं सात्त्विक रूप होता है। सायंकालमें कृष्णवर्ण, साम्बवेदस्वरूप तथा तामसरूप होता है। इन तीनोंसे भिन्न ज्योतिःस्वरूप, सूक्ष्म और निरञ्जनस्वरूप चतुर्थ स्वरूप है। पश्चासनमें बैठकर सुषुप्त्या नाड़ी-मार्गमें चित्तको स्थिर कर प्रणवसे पूरक, कुम्भक और रेखक-रूप प्राणायाम कर फैरके अंगुठेके अप्रभागसे लेकर मस्तकपर्यन्त न्यास करे। नाभिमें अग्निका, हृदयमें चन्द्रमाका

और मस्तकमें अग्निशिखाका न्यास करना चाहिये। इन सबसे ऊपर सूर्यमण्डलका न्यास करे—यह चतुर्थ स्थान है, इस स्थानको मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषों अवश्य जानना चाहिये। ऋषिगण सूर्यभगवानके इसी तुरीय स्थानमें मनको लीनकर मुक्त हो जाते हैं। मग भी इसी स्थानका ध्यान कर मोक्षके भागी होते हैं। इस ज्ञानको सुनाकर भगवान् वेदव्यास वद्विकाशमकी ओर चर्चे गये।

(अध्याय १४५)

उत्तम एवं अधम भोजकोंके लक्षण

राजा शतानीकने पूछा—मुझे ! भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाले भोजक दिव्य, उनसे उत्पन्न एवं उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये वे पूज्य हुए किंतु वे अभोज्य कैसे कहलाते हैं, इस विषयमें आप बतलायें ?

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! मैं इस विषयमें भगवान् वासुदेव तथा कृतवर्माकि द्वारा हुए संवादको अत्यन्त संक्षेपमें बतला रहा हूँ। किसी समय नारद और पर्वत—ये दोनों मुनि साम्बपुर गये। वहाँ उन्होंने भोजकोंके यहाँ भोजन किया, अनन्तर वे दोनों विषानपर आरुढ़ हो द्वारकापुरीमें आ गये। उनके विषयमें कृतवर्माको शंका हुई कि सूर्यके पूजक होनेसे भोजकोंका अब्र अग्राह्य है, फिर नारद तथा पर्वत—इन दोनोंने उनका अब्र कैसे ग्रहण किया ? इसपर वासुदेवने कृतवर्मासे कहा—जो भोजक अव्यङ्ग धारण नहीं करते और बिना अव्यङ्गके तथा बिना खान किये भगवान् सूर्यकी पूजा करते हैं और शूद्रका अब्र ग्रहण करते हैं तथा देवाचार्यका परित्याग कर कृषि-कार्य करते हैं, जिनके जातकर्मादि संस्कार नहीं हुए हैं, शङ्ख धारण नहीं करते, मुण्डित नहीं रहते—वे भोजकोंमें अधम हैं। ऐसे भोजकद्वारा किये गये देवाचर्ण, हवन, खान, तर्पण, दान तथा आहार-भोजन आदि सलकर्म भी निष्कल होते हैं। इसीसे अशुचि होनेके कारण वे अभोज्य कहे गये हैं। भगवान् सूर्यके नैवेद्य, निर्मल्य, कुंकुम आदि शूद्रोंके हाथ बेवनेवाले, भगवान् सूर्यके धनको अपहृत करनेवाले भोजक उन्हें प्रिय नहीं हैं तथा वे भोजकोंमें अधम हैं। जो भोजक भगवान्को भोग लगाये बिना भोजन कर लेते हैं, उनका वह भोजन उन्हें नरक प्राप्त करानेवाला बन जाता है। अतः भगवान् सूर्यको अर्पण करके ही नैवेद्य भक्षण करना

चाहिये, इससे शरीरकी शुद्धि होती है।

वासुदेवने पुनः बतलाया—कृतवर्मन् ! भोजकोंकी प्रियताके विषयमें भगवान् सूर्यने अरुणको जो बतलाया, उसे आप सुनें—

जो भोजक पर-स्त्री तथा पर-धनका हरण करते हैं, देवताओं तथा देवोंके निन्दक हैं, वे मुझे अप्रिय हैं। उनके द्वारा की गयी पूजा तथा प्रदान किये गये अर्थको मैं झरण नहीं करता। जो भगवतीं महाश्वेताका यजन नहीं करते एवं सूर्य-मुद्राओंको नहीं जानते तथा मेरे पांचोंका नाम नहीं जानते, वे मेरी पूजा करनेके अधिकारी नहीं हैं और न मेरे प्रिय हैं।

इसके विपरीत देव, द्विज, मनुष्य, पितरोंकी पूजा करनेवाले, मुण्डित सिरवाले, अव्यङ्ग धारण करनेवाले, शङ्ख-ध्वनि करनेवाले, क्रोधरहित, तीनों कालमें खान एवं पूजन करनेवाले भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं एवं मेरे पूजनके अधिकारी हैं। जो गविवारके दिन वष्टी तिथि पड़नेपर नक्तवत तथा सप्तमी एवं संक्रान्तिमें उपवास करते हैं एवं मुझमें विशेष भक्ति रखते हुए मेरे भक्त आहारणोंकी पूजा करते हैं तथा देव, ऋषि, पितर, अतिथि और भूत-यज्ञ—इन पाँचोंका अनुष्ठान करते हैं, एकमुक्त होकर सूर्यपूजा करते हैं तथा सांवत्सरिक, पार्वण, एकोद्दिष्ट आदि शारद सम्पत्र करते हैं और उन तिथियोंमें दान देते हैं, वे भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय हैं तथा जो भोजक माघ मासकी सप्तमीको करवाई-पूज्य, रक्तचन्दन, मोदकका नैवेद्य, गुग्गुल धूप, दूध, शङ्खादि वादा-ध्वनि, पताका तथा छत्रादिसे मेरी पूजा करते हैं, घृतकी आहुति देकर हवन करते हैं तथा पुराणाचारक आहारणोंकी पूजा करते हैं, वे मुझे प्रिय हैं। इतना कहकर भगवान् सूर्यदेव सुप्रेरु गिरिकी

ओर बढ़ गये।

सुमनु मुनि बोले—हजन् ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, क्योंकि जैसे वेदसे श्रेष्ठ अन्य कोई शास्त्र नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, असमेघके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-

प्राप्तिके समान कोई सूख नहीं, माताके समान कोई आश्रय नहीं और भगवान् सूर्यके समान कोई देवता नहीं, वैसे ही भोजकोके समान भगवान् सूर्यके अन्य कोई प्रिय नहीं है।

(अध्याय १४६-१४७)

भगवान् सूर्यके कालात्मक चक्रका वर्णन

सुमनु मुनि बोले—हजन् ! एक बार महातेजस्ती साम्बन्धे अपने पिता भगवान् श्रीकृष्णके हाथमें ज्वाला-मालाओंसे प्रदीप सुदर्शनचक्रको देखकर पूछा—‘देव ! आपके हाथमें जो यह सूर्यके समान चक्र दिखलायी दे रहा है, यह आपको कैसे प्राप्त हुआ तथा भगवान् सूर्यके चक्रको कमलकी उपमा कैसे दी गयी है ? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाबाहो ! तुमने अच्छी बात पूछी है, इसे मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ। मैंने अल्पतः श्रद्धापूर्वक दिव्य हजार वर्णोंतक भगवान् सूर्यकी आराधना कर इस चक्रको प्राप्त किया है। भगवान् भास्कर आकाशमें विचरण करते रहते हैं, जिनके रथ-चक्रके नाभिमण्डलमें चन्द्र आदि ग्रह अव्यासित हैं। अरोमें द्वादश आदित्य बतलाये गये हैं, पृथ्वी आदि तत्त्व मार्गमें पड़नेवाले तत्त्व हैं, इन तत्त्वोंसे यह कलात्मक चक्र व्याप्त है। भगवान् सूर्यने अपने इस चक्रके समान ही दूसरा चक्र मुझे प्रदान किया है।

इस कमलरूप चक्रके पट्टदल ही छः छहतुंगे हैं। कमलके मध्यमें जो पुरुष अधिष्ठित है, वे ही भगवान् सूर्य हैं। जो भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीन काल कहे गये हैं, वे चक्रकी तीन

नाभियाँ हैं। बाहर महीने और तथा पक्ष परिधियाँ हैं, नैमित्य दक्षिणायन तथा उत्तरायण दो अयम है, नक्षत्र, ग्रह तथा योग आदि भी इसी चक्रमें अवस्थित हैं। स्थूल और सूक्ष्मके भेदसे यह चक्र सर्वत्र व्याप्त है।

द्वारोंका दमन करनेके लिये मैंने इस चक्रको आराधनाके द्वारा भगवान् सूर्यसे प्राप्त किया है। इसलिये ग्रहों और तत्त्वोंसे समन्वित इस चक्रकी मैं निरन्तर पूजा करता रहता हूँ। जो चक्रमें स्थित भगवान् सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह तेजमें भगवान् सूर्यके समान हो जाता है। सप्तमीको जो भगवान् सूर्यका चक्र अद्वित कर उनकी रक्तचन्दन, करबीर-पुण्य, कुकुम, रत्न कमल, धूप, दीप, नैवेद्य, चामर, छत्र एवं फल आदिसे पूजा करता है तथा विविध नैवेद्योंसे भोग लगाता है, पुण्य कथाओंका श्रवण करता है, वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो संक्रान्ति तथा व्रहण आदिमें चक्रकी पूजा करता है, उसके ऊपर सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं, वह सम्पूर्ण रोगों और दुःखोंसे रहित हो जाता है तथा समस्त ऐक्षयोंसे युक्त होकर चिरजीवी होता है। (अध्याय १४८)

सूर्यचक्रका निर्माण और सूर्य-दीक्षाकी विधि

साम्बने पूछा—भगवन् ! भगवान् सूर्यके चक्रका और उसमें स्थित पदाक्षत्र कितने विस्तारमें किस प्रकार निर्माण करना चाहिये तथा नेमि, अर और नाभिका विभाग किस प्रकार करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—साम्ब ! चक्र चौसठ अकूलका और नेमि आठ अकूलकों बनानी चाहिये। नाभिका विस्तार भी आठ अकूलका होना चाहिये और पदा नाभिका तीन गुना अर्थात् चौबीस अकूलका होना चाहिये। कमलमें नामि, कर्णिका और केतस भी बनाने चाहिये। नाभिसे कमलकी ऊँचाई अधिक होनी चाहिये। वहींपर द्वारके कोणमें

कमल-पुष्पके मुखकी कल्पना करनी चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और इन्द्रके लिये चार द्वारोंकी कल्पना करनी चाहिये। द्वारोंको बनानेके पक्षात् ब्रह्मा आदि देवताओंका उनके नाम-मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक आवाहन कर पूजन करना चाहिये।

अर्क-पण्डलकी पूजाके लिये इस यज्ञ-क्रियाके अनुरूप दीक्षित होना चाहिये, भगवान् सूर्यने इसे मुझसे पूर्वकालमें कहा था।

साम्बने पूछा—भगवन् ! सूर्यचक्र-यज्ञके लिये देवताओंनि किन मन्त्रोंको कहा है ? तथा यज्ञके स्वरूप और क्रमको भी आप बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—सौम्य ! सूर्यनारायणके चक्रमें कमल बनावत् पूर्वकी भाँति हृदयमें स्थित भगवान् सूर्यका 'खल्लोल्लक' नामसे कमलकी कर्णिका-दलोंमें नामगमन-पूर्वक चतुर्थन्त विभक्ति और किया लगाते हुए 'नमः' लगाकर अङ्गन्यास एवं हृदयादि न्यास तथा पूजन करना चाहिये। हृवन करते समय नामके अन्तमें 'खाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। यथा—'ॐ खल्लोल्लकाय खाहा ।' 'ॐ खल्लोल्लकाय विद्यहे दिवाकराय धीमहि । तत्रः सूर्यः प्रचोदयात् ।' इन चौबीस अक्षरोंवाली सूर्यगायत्रीका जप सभी कर्मोंमें करना चाहिये, अन्यथा कर्मोंका फल भ्राम नहीं होता। यह सूर्यगायत्री ब्रह्मगोत्रवाली सर्वतत्त्वमयी तथा परम पवित्र है एवं भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक मन्त्रके ज्ञान और कर्मकी विधिको जानना चाहिये। इससे अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता है।

साप्तवने पूजा—भगवन् ! आदित्य-मण्डलमें विस्तरी, किस कार्यके लिये और कैसी दीक्षा होनी चाहिये ? इसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—ब्राह्मण, शत्रिय, वैश्य और कुलीन शूद्र, पुरुष अथवा स्त्री भी सूर्य-मण्डलमें दीक्षाके अधिकारी हैं। सूर्यशास्त्रके जाननेवाले सत्यवादी, शुचि, वेदवेता ब्राह्मणको गुरु बनाना चाहिये और भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम करना चाहिये। एष्टी तिथिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार अग्नि-स्थापन कर विधिपूर्वक सूर्य तथा अग्निकी पूजा करके हृवन करना चाहिये। तदनन्तर गुरु पवित्र शिष्यको कुशों और अक्षतोंके द्वारा उसके प्रत्येक अङ्गमें सूर्यकी भावना कर उसका स्पर्श करे। शिष्य वस्त्रादिसे अलंकृत होकर पुण्य, अक्षत, गन्ध आदिसे भगवान् सूर्यकी पूजा करे तथा बलि भी दे। आदित्य, वरुण, अग्नि आदिका अपने हृदयमें ध्यान करे। शी, गुड़, दधि, दूध, चावल आदि रसायन तीन बार जलमें अग्निको सिंचितकर अग्निमेपुनः हृवन करे। उसके बाद गुरु शिष्याचार-स्वरूप शिष्यको दातून दे। वह दातून दूधबाले वृक्षका हो और उसकी लंबाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। दातून करनेके पश्चात् उसे पूर्व-दिशामें फेंक देना चाहिये, उस दिशामें देशे नहीं। पूर्व, पश्चिम और ईशान कोणकी ओर मुख करके दातून करना शुभ होता है और अन्य दिशाओंमें दातून करना अशुभ माना गया है।

निन्दित दिशामें दन्तधावनसे जो दोष लगता है, उसकी शान्तिके लिये पूजन-अर्चन करना चाहिये। पुनः गुरु शिष्यके अङ्गोंका स्पर्श करे। सूर्यगायत्रीका जपपूर्वक उसके आँखोंका स्पर्श करे। इन्द्रियसंयमके लिये शिष्यसे संकल्प कराये। तदनन्तर आश्वीर्वाद देकर उसे शयन करनेकी आज्ञा दे। दूसरे दिन आचमनकर सूर्यको प्रातःकाल नमस्कार कर अग्नि-स्थापन करे और हृवन करे। स्वप्रमें कोई शुभ संवाद सुने अथवा दिनमें यदि कोई अशुभ लक्षण दिखायी पड़े तो सूर्यनारायणको एक सौ आहुति दे। स्वप्रमें यदि देवमन्दिर, अग्नि, नदी, सुन्दर उद्यान, उपवन, पत्र, पुष्प, फल, कमल, चाँदी आदि और वेदवेता ब्राह्मण, शौर्यसम्पत्र राजा, धनाढ्य शत्रिय, सेवामें संलग्न कुलीन शूद्र, तत्त्वको जाननेवाला, सुन्दर भाषण देनेवाला अथवा उत्तम वाहनपर सवार, वस्त्र, रत्न आदिकी प्राप्ति, वाहन, गाय, धान्य आदि उपकरण अथवा समृद्धिकी प्राप्ति आदि स्वप्रमें दिखायी दे तो उस स्वप्रके शुभ मानना चाहिये। शुभ कर्म दिखायी पड़े तो सब कार्य शुभ ही होते हैं। अनिष्टकारक स्वप्र दिखायी पड़नेपर सभीको सूर्यचक्र लिखकर सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मणों तथा गुरुको संतुष्ट करना चाहिये। आदित्यमण्डल पवित्र और सभीको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। इसलिये अपने मनमें ही आदित्य-मण्डलका ध्यान कर एक सौ आहुति देनी चाहिये। इसके क्रमसे दीक्षा-विधि और मन्त्रका अनुसरण करते हुए आदित्यमण्डलपर पुष्पाङ्गुलि प्रदान करे। इससे व्यक्तिके कुलका उदाहर हो जाता है। सूर्यप्रोक्त पुण्यादिका अवण करना चाहिये। पूजनके बाद विशर्जन करे। सूर्यका दर्शन करनेके पश्चात् ही भोजन करना चाहिये। प्रतिमाकी छायाका और न ही ग्रह-नक्षत्र-योग और तिथिका लक्ष्मन करना चाहिये। सूर्य अवन, ऋतु, पक्ष, दिन, काल, संवत्सर आदि सभीके अधिपति हैं और वे सभीके पूज्य तथा नमस्कार करने योग्य हैं। सूर्यकी सुति, बन्दा और पूजा सदा करनी चाहिये। मन, वाणी और कर्मसे देवताओंकी निन्दाका परित्याग करना चाहिये। हाथ-पाँव धोकर, सभी प्रसकरके शोकको ल्यागकर शूद्र अन्तःकरणसे सूर्यको नमस्कार करना चाहिये। इस प्रकार संक्षेपसे मैंने सूर्य-दीक्षाकी विधिको कहा है, जो सुखभोग और मुक्तिके प्रदान करनेवाली है। (अध्याय १४९)

भगवान् आदित्यकी सप्तावरण-पूजन-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— वत्स ! अब मैं दिवाकर भगवान् सूर्यनारायणको पूजा-विधि बताऊंगा हूँ। एक वेदीपर अष्टदल-कमलयुक्त मण्डल बनाकर उसमें कालचक्रकी कल्पना करनी चाहिये। उसे बारह अरोसे युक्त होना चाहिये। ये ही सर्वात्मा, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, उन्नज्वल किरणोंसे युक्त स्वस्त्रोल्क नामक भगवान् सूर्यदेव हैं। इसमें हजार किरणोंसे युक्त चतुर्बाहु भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इनके पश्चिममें अरुण, दक्षिणमें निष्पुष्पा देवी, दक्षिणमें ही रेवन्त तथा उत्तरमें विगलकी पूजा करनी चाहिये और वहाँ संज्ञाकी भी पूजा करनी चाहिये। अग्रिकोणमें लेखककी, नैऋत्यमें अधिनीकुमारोंकी और वायव्यकोणमें वैवस्वत मनुकी तथा ईशानकोणमें लेकपाकनी देवी यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। द्वितीय आवरणमें पूर्वमें आकाशकी, दक्षिणमें देवीकी, पश्चिममें गरुडकी और उत्तरमें नागराज ऐशवतकी पूजा शुभ होती है। अग्रिकोणमें हेलि, नैऋत्यकोणमें प्रहेलि, वायव्यमें उर्बशी और ईशानकोणमें विनतादेवीकी पूजा करनी चाहिये। तृतीयावरणमें पूर्वमें शुक्र, पश्चिममें शनि, उत्तरमें बृहस्पति, ईशानमें शुध और मण्डलके अग्रिकोणमें चन्द्रमाकी

पूजा करनी चाहिये। नैऋत्यकोणमें राहु तथा वायव्यकोणमें केतुकी पूजा करनी चाहिये। चौथे आवरणमें लेशक, शाश्वतलैपुत्र, यम, विरुपाक्ष, वरुण, वायुपुत्र, ईशान तथा कुबेर आदिकी उन-उनकी दिशाओंमें पूजा करनी चाहिये। पाँचवें आवरणमें पूर्वांदि क्रमसे महाशेषा, श्री, ऋद्धि, विभूति, धृति, उत्रति, पृथ्वी तथा महाकीर्ति आदि देवियोंकी पूजा करनी चाहिये तथा इन्द्र, विष्णु, अर्यमा, भग, पर्वत्य, विवस्वान, अर्क, त्वष्टा आदि द्वादश आदित्योंकी पूजा छठे आवरणमें करनी चाहिये। सिर, नेत्र, अस्त-शस्त्रसे युक्त रथसहित सूर्यकी सातवें आवरणमें पूजा करनी चाहिये। यक्ष, गन्धर्व, मासाधिपति तथा संवत्सर आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद भगवान् भास्करका पुण्य, गन्ध आदिसे विधिपूर्वक पूजनकर—‘ॐ स्वस्त्रोल्काय नमः’। इस मूल मन्त्रसे अपने अङ्गोंका स्पर्श अर्थात् हृदयादिन्यास करते हुए पूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक इस विधिसे सूर्यकी नित्य अथवा दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन पूजन करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १५०)

सौरधर्मका वर्णन

राजा शतानीकने पूछा—मुने ! भगवान् सूर्यका माहात्म्य कीर्तिवर्धक और सभी पापोंका नाशक है। मैंने भगवान् सूर्यनारायणके समान लोकमें किसी अन्य देवताको नहीं देखा। जो भरण-पोषण और संहार भी करनेवाले हैं वे भगवान् सूर्य किस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उस धर्मको आप अच्छी तरह जानते हैं। मैंने वैष्णव, शैव, पौराणिक आदि धर्मोंका श्रवण किया है। अब मैं सौरधर्मको जानना चाहता हूँ। इसे आप मुझे बतायें।

सुनन् मुनि बोले— एजन्। अब आप सौरधर्मके विषयमें सुनें।

यह सौरधर्म सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ और उत्तम है। किसी समय स्वयं भगवान् सूर्यने अपने सारथि अरुणसे इसे कहा था। सौरधर्म अन्धकाररूपी दोषको दूरकर प्राणियोंको प्रकाशित करता है और यह संसारके लिये महान् कल्याणकरी

है। जो व्यक्ति शान्तचित्त होकर सूर्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह सुख और धन-धान्यसे परिपूर्ण हो जाता है। प्रातः, पश्चात् और सायं—त्रिकाल अथवा एक ही समय सूर्यकी उपासना अवश्य करनी चाहिये। जो व्यक्ति सूर्यनारायणका भक्तिपूर्वक अर्चन, पूजन और स्मरण करता है, वह सात जन्मोंमें किये गये सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान् सूर्यकी सदा सूति, प्रार्थना और आराधना करते हैं, वे प्राकृत मनुष्य न होकर देवस्वरूप ही हैं। ओडशाङ्क-पूजन-विधिको स्वयं सूर्यनारायणने कहा है, वह इस प्रकार है—

प्रातः स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण करना चाहिये जप, हवन, पूजन, अर्चनादिकर सूर्यको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, गाय, पीपल आदिकी पूजा करनी चाहिये। भक्तिपूर्वक इतिहास-पुण्यका श्रवण और ब्राह्मणोंको वेदाभ्यास करना चाहिये। सबसे प्रेम करना चाहिये। स्वयं पूजनकर लेगोंके

पुण्णादि ग्रन्थोंकी व्याख्या सुनानी चाहिये। मेरा नित्य-प्रति समरण करना चाहिये। इस प्रकारके उपचारोंसे जो अर्चन-पूजन-विधि बतायी गयी है, वह सभी प्रकारके लोगोंके लिये उत्तम है। जो कोई इस प्रकारसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है, वही मुनि, श्रीमान्, पण्डित और अच्छे कुलमें उत्पन्न है। जो कोई पत्र, पुण्य, फल, जल आदि जो भी उपलब्ध हो उससे मेरी पूजा करता है उसके लिये न मैं अदृश्य हूँ और न वह मेरे लिये अदृश्य है। मुझे जो व्यक्ति जिस भावानासे देखता है, मैं भी उसे उसी रूपमें दिखायी पड़ता हूँ। जहाँ मैं

स्थित हूँ, वही मेरा भक्त भी स्थित होता है। जो मुझ सर्वव्यापीको सर्वत्र और सम्पूर्ण प्राणियोंमें स्थित देखता है, उसके लिये मैं उसके हृदयमें स्थित हूँ और वह मेरे हृदयमें स्थित है। सूर्यकी पूजा करनेवाला व्यक्ति बड़े-बड़े राजाओंपर विजय प्राप्त कर रहेता है। जो व्यक्ति मनसे मेरा निरन्तर ध्यान करता रहता है, उसकी चिन्ता मुझे बगवर बनी रहती है कि कहाँ उसे कोई दुःख न होने पाये। मेरा भक्त मुझको अन्यन्त प्रिय है। मुझमें अनन्य निष्ठा ही सब धर्मोंका सार है।

(अध्याय १५१)

ब्रह्मादि देवताओंद्वारा भगवान् सूर्यकी सुनि एवं वर-प्राप्ति

सुपन्तु मुनि बोले— राजन्! भगवान् सूर्यकी भक्ति, पूजा और उनके लिये दान करना तथा हवन करना सबके वशकी बात नहीं है तथा उनकी भक्ति और ज्ञान एवं उसका अभ्यास करना भी अत्यन्त दुर्लभ है। फिर भी उनके पूजन-समरणसे इसे प्राप्त किया जा सकता है। सूर्य-मन्दिरमें सूर्यकी प्रदक्षिणा करनेसे वे सदा प्रसन्न रहते हैं। सूर्यचक्र बनाकर पूजन एवं सूर्यनारायणका स्तोत्र-पाठ करनेवाला व्यक्ति इच्छित फल एवं पुण्य तथा विषयोंका परिवारकर भगवान् सूर्यमें अपने मनको लगा देनेवाला मनुष्य निर्भीक होकर उनकी निश्चल भक्ति प्राप्त कर लेता है।

राजा शतानीकने पूछा— द्विजश्रेष्ठ! मुझे भगवान् सूर्यकी पूजन-विधि सुननेकी बड़ी ही अभिलाषा है। मैं आपके ही मुखसे सुनना चाहता हूँ। कृपाकर कहिये कि सूर्यकी प्रतिमा स्थापित करनेसे कौन-सा पुण्य और फल प्राप्त होता है तथा सम्मार्जन करने और गम्य आदिके लेपनसे किस पुण्यकी प्राप्ति होती है। आरती, नूत्य, मङ्गल-गीत आदि कृत्योंके करनेसे कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है। अर्घ्यदान, जल एवं पञ्चमूर्ति आदिसे ऊपर, कुश, रक्त पुण्य, सुवर्ण, रत्न, गम्य, चन्दन, कपूर आदिके द्वारा पूजन, गच्छादि-विलेपन, पुराण-अवण एवं वाचन, अव्यङ्ग-दान और व्योमरूपमें भगवान् सूर्य तथा अहणकी पूजा करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह बतलानेकी कृपा करें।

सुपन्तु मुनि बोले—राजन्! प्रथम आप भगवान् सूर्यके महीनीय तेजके विषयमें सुनें। कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्मादि देवगण अहंकारके वशीभूत हो गये। तमसुपी भोहने उन्हें अपने वशमें कर लिया। उसी समय उनके अहंकारको दूर करनेके लिये एक महीनीय तेज प्रकट हुआ, जिससे यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त हो गया। अन्धकार-नाशक तथा सौ योजन विस्तारयुक्त वह तेजःपूजा आकाशमें भ्रमण कर रहा था। उसका प्रकाश पृथ्वीपर कमलकी कर्णिकाकी भाँति दिखलायी दे रहा था। यह देख ब्रह्मादि देवगण परम्पर इस प्रकार शिचार करने लगे—हमलोगोंका तथा संसारका कल्पाण करनेके लिये ही यह तेजः प्रादुर्भूत हुआ है। यह तेजः कहाँसे प्रादुर्भूत हुआ, इस विषयमें वे कुछ न जान सके और इस तेजःने सभी देवगणोंको आकर्षयेचकित कर दिया। तेजाधिपति उन्हें दिखायी भी नहीं पड़े। ब्रह्मादि देवताओंने उनसे पूछा—देव! आप कौन हैं, कहाँ हैं, यह तेज़की कैसी शक्ति है? हम सभी लोग आपका दर्शन करना चाहते हैं। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न हो भगवान् सूर्यनारायण अपने विराट् रूपमें प्रकट हो गये। उस महीनीय तेजःस्वरूप भगवान् भास्करकी देवगण पृथक्-पृथक् बन्दना करने लगे।

ब्रह्माजीकी सुनिका भाव इस प्रकार है—हे देवदेवेश! आप सहस्रों किरणोंसे प्रकाशमान हैं। कोणवस्त्रभ! आप संसारके लिये दीपक हैं, आपको नमस्कर हैं। अन्तरिक्षमें

स्थित होकर सम्पूर्ण विश्वको प्रकाशित करनेवाले भगवान् भास्कर, विष्णु, कालचक्र, अमित तेजस्वी, सोम, काल, इन्द्र, वसु, अग्नि, सूर्य, लोकनाथ तथा एकचक्रवाले रथसे युक्त—ऐसे नामोंवाले आपको नमस्कार हैं। आप अमित तेजस्वी एवं संसारके कल्पाण तथा मङ्गलकारक हैं, आपका सुन्दर रूप अन्यकारको नष्ट करनेवाला है, आप तेजकी निधि हैं, आपको नमस्कार है। आप धर्मादि चतुर्वर्गस्वरूप हैं तथा अमित तेजस्वी हैं, क्रोध-लोभसे रहित हैं, संसारकी स्थितिमें कारण हैं, आप शुभ एवं मङ्गलस्वरूप हैं तथा शुभ एवं मङ्गलके प्रदाता हैं, आप परम शङ्करस्वरूप हैं तथा ब्राह्मण एवं ब्रह्मरूप हैं, ऐसे हे परब्रह्म परमात्मा जगतपते ! आप मेरे कपर प्रसन्न होइये, आपको नमस्कार है।

ब्रह्माजीके बाद शिवजीने महातेजस्वी सूर्यनाशयणको प्रणामकर उनकी सुनि की—

विश्वकी स्थितिके कारण-स्वरूप भगवान् सूर्यदेव ! आपकी जय हो ! अजेय, हंस, दिवाकर, महावाहु, भूधर, गोचर, भाव, सूर्य, लोकप्रदीप, जगतपति, भानु, काल, अनन्त, संवत्सर तथा शुभानन ! आपकी जय हो ! कश्यपके आनन्दवर्धन, अदितिपुत्र, सप्तसूर्यवाहन, सोमेश, अन्यकारको दूर करनेवाले, ग्रहोंके स्वामी, कालीश, कालेश, शंकर, धर्मादि चतुर्वर्गके स्वामी ! आपकी जय हो ! वेदाङ्गरूप, ग्रहरूप, सत्यरूप, सुरुप, क्रोधादिके विनाशक,

कल्पाण-पक्षिरूप तथा यतिरूप ! आपकी जय हो ! प्रभो ! आप विश्वरूप, विश्वकर्मा, ओकार, वटदक्षर, स्वाहाकार तथा स्वधारूप हैं और आप ही अक्षयधरूप, अग्नि एवं अर्यमारूप हैं, संसारहरणी सागरसे मोक्ष दिलानेवाले हे जगतपते ! मैं संसार-सागरमें दूष रहा हूँ, मुझे अपने हाथका अवलम्बन दीजिये, आपकी जय हो !

भगवान् विष्णुने सूर्यनाशयणको श्रद्धा और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उनकी सुनि की, भाव इस प्रकार है—

भूतभावन देवदेवेश ! आप दिवाकर, रवि, भानु, पार्वण्ड, भास्कर, भग, इन्द्र, विष्णु, हरि, हंस, अर्क—इन रूपोंमें प्रसिद्ध हैं, आपको नमस्कार है। लोकागुरु ! आप विष्णु, विनेश्वरार्थी, व्यक्षगत्यक, अङ्गात्मक, विमूर्ति, विगति हैं, आप छः मुख, चौधीस पाद तथा बाहु हाथवाले हैं, आप समस्त लोकों तथा प्राणियोंके अधिपति हैं, देवताओं तथा वर्णोंकी भी आप ही अधिपति हैं, आपको नमस्कार है। जगत्स्वामिन् ! आप ही ब्रह्मा, रुद्र, प्रजापति, सोम, आदित्य, ओकार, बृहस्पति, ब्रुध, शुक्र, अग्नि, भग, वरुण, कश्यपात्मज हैं। आपसे ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है, देवता, असुर तथा मानव आदि सभी आपसे ही उत्पन्न हैं, अनन्त ! कल्पके आरम्भमें संसारकी उत्पत्ति, पालन एवं संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव उत्पत्र हुए हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! आप ही वेद-रूप, दिवसस्वरूप,

नमस्ते पञ्चकालाय इन्द्राय वसुरेतसे । शान्तय लोकनाथाय एकचक्रत्थाय च ॥

जगदिताय देवाय शिवायामितेजसे । तमोप्राय सुरुपाय तेजस्य निष्ठये नमः ॥

अर्थाय कश्यपाय धर्मोद्दितेजसे । मोक्षाय दोषकर्त्याय सूर्याय च नमो नमः ॥

क्रेष्ठोभिविहीनाय लोकजनो मिलितेजसे । शुभाय शुभरूपाय सूर्यदाय शुभात्मने ॥

शान्ताय शान्तरूपाय शान्तयेऽप्यामु वै नमः । नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्रह्मरूपाय नमो नमः ॥

ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मने परमात्मने । ब्रह्मने च प्रमादं वै नुह देव जगतपते ॥ (ब्राह्मपर्व १५३ । ५०—५३)

१—जय भाव जयजेय जय हंस दिवाकर । जय इष्टो महान्दली खण गोचर भूधर ॥

जय लोकप्रदीपय जय भानु जगतपते । जय कालजयानन संवत्सर शुभानन ॥

जय देवादिः पुत्र कश्यपानन्दवर्धन । तपोष जय सोमेश जय सप्तसूर्यवाहन ॥

ग्रहेश जय कालीश जय कालेश शङ्कु । अर्थकामेश धर्मेश जय मोक्षेश इन्द्र ॥

जय वेदाङ्गरूपाय ग्रहरूपाय वै नमः । सत्याय सत्यरूपाय सुरुपाय शुभाय च ॥

क्रेष्ठोभिविहीनाय कश्यपानशाय वै जय । कल्पाणपञ्चकालाय वर्तिकर्त्याय शम्भवे ॥

विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्मय वै जय । जयोकार वटदक्षर स्वाहाकार स्वधामय ॥

जयाक्षयधरूपाय चाग्रिरूपार्यमाय च । संसारहरणीताय मोक्षद्वारप्रदाय च ॥

संसारार्थवामदस्य मम देव जगतपते । हस्तावलम्बनो देव भव त्वं गोपतेऽप्यभुतु ॥

(ब्राह्मपर्व १५३ । ६०—६४)

यज्ञ एवं ज्ञानरूप हैं। किरणोज्ज्वल ! भूतेश ! गोपते ! संसारमें निमग्न हुए हमपर आप प्रसन्न होइये, आप वेदान्त एवं यज्ञ-कलात्मक रूप हैं, आपकी जय हे, आपको नित्य नमस्कार है।

ब्रह्मादि देवताओंकी सुतिसे भगवान् सूर्य बहुत ही प्रसन्न हुए, और उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवको अपनी अखण्ड भक्ति तथा अपना अनुग्रह प्राप्त करनेका वर प्रदान करते हुए कहा—हे विष्णो ! आप देव, दानव, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि सभीपर विजय प्राप्त कर अजेय रहेगे। सम्पूर्ण संसारका पालन करते हुए, आपकी मेरे ऊपर अचल भक्ति अभी रहेगी। ब्रह्मा भी इस जगत्को सृष्टि करनेमें समर्थ होगे और मेरे प्रसादसे शंकर भी इस संसारका संहार कर सकेगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। मेरी पूजाके फलस्वरूप आपलोग ज्ञानियोंमें उत्कृष्ट स्थान प्राप्त कर लेंगे।

भगवान् सूर्यके इन वचनोंको सुनकर महादेवजी बोले—
भगवन् ! हमलोग आपको आराधना किस प्रकार करें, उसे आप बतायें। हमें आपकी परम पूजनीय मूर्ति तो दिखायी नहीं दे रही है, केवल प्रकाशकी आकृति और मात्र तेज ही दिखायी पड़ रहा है, यह तेज आकार-विहीन होनेके कारण हृदयमें स्थान नहीं पा रहा है। जबतक मन किसी विषय-वस्तुमें नहीं लगता, तबतक किसी भी व्यक्तिकी भक्ति या इच्छा उस विषय-वस्तुको प्राप्त करनेकी नहीं होती। जबतक भक्ति उत्पन्न नहीं होगी, तबतक पूजन आदि करनेमें कोई भी समर्थ नहीं

होगा। इसलिये आप साकार-रूपमें प्रकट हो, जिससे कि हमलोग उस साकार-रूपका पूजन-अर्चन कर सिद्धिको प्राप्त करनेमें समर्थ हो जायें।

भगवान् सूर्यनि कहा—महादेवजी ! आपने बड़ी अच्छी बात पूछी है—आप दत्तचित्त होकर सुनें। इस जगत्में मेरी चार प्रकारकी मूर्तियाँ हैं जो सम्पूर्ण संसारको व्यवस्थित करती हुई सूजन, पालन, पोषण तथा संहार आदिमें प्रत्येक समय संलग्न रहती हैं। मेरी प्रथम मूर्ति राजसी मूर्ति है, जो ब्राह्मी शक्तिके नामसे प्रसिद्ध है, वह कल्पके आदिमें संसारकी सृष्टि करती है। द्वितीय सात्त्विकी मूर्ति विष्णुस्वरूपिणी है, जो संसारका पालन और दुष्टोंका विनाश करती है। तृतीय मूर्ति तामसी है, जो भगवान् शंकरके नामसे विद्यात है, वह लाघमें विशुल धारण किये कल्पके अन्तमें विश्व-सृष्टिका संहार करती है। मेरी चतुर्थ मूर्ति सत्त्वादि गुणोंसे अतीत तथा उत्तम है, वह स्थित रहते हुए भी दिखायी नहीं पड़ती। उस अदृश्य शक्तिके द्वारा यह समस्त संसार विस्तारको प्राप्त हुआ है। ओकर ही मेरा स्वरूप है। यह सकल तथा निष्कल और साकार एवं निराकार दोनों रूपोंमें है। यह सम्पूर्ण संसारमें व्याप्त रहते हुए भी सांसारिक कर्म-फलोंसे लिप्त नहीं रहती, जलमें पदापत्रकी भाँति अलिप्त रहती है। यह प्रकाश आपलोगोंके अङ्गानको दूर करने तथा संसारमें प्रकाश करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। आपलोग मेरे इस अस्पृष्ट (निर्लिप्त) रूपकी आराधना करें।

कल्पके अन्तमें मेरे आकाशरूपमें सभी देवताओंका लय हो जाता है। उस समय केवल आकाशरूप ही रहता

१-नमस्मि देवदेवेषो भूतपात्रवन्मध्यम् । दिवाकरं रघुं भानुं भारीण्ड भास्करं भगवम् ॥
इति विष्णु हरि हंसमके लोकगुहे विभूष् । दिवेषं ऋशं ऋद्वं त्रिपूति त्रिगति शुभम् ॥
कर्ममुख्यं नमो नित्यं त्रिवेत्राय नमो नमः । चतुर्थित्वित्पदाय नमो द्वादशायाय ॥
नमस्ते भूतपात्रे लोकानो पतये नमः । देवानो पतये नित्ये वर्णानो पतये नमः ॥
त्वं ब्रह्म त्वं जगत्पात्रो लक्ष्मीं च प्रसादीते । त्वं सोमस्त्वं तथादित्पदामोकारक एव हि ॥
ब्रह्मस्तिर्विद्युत्पदवे हि त्वं द्वुक्षेत्रं विभावसु । यमद्वं यमाद्वं तद्यपापम् ॥
त्वया तत्पिंदं सर्वे जगत्पात्रवरज्ञामाम् । त्वत् एव समुद्रमें संदेवामृगमानुषम् ॥
ब्रह्मा चाहं च लक्ष्मीं समुद्रपत्रे जगत्पते । कल्पादीं तु पूरा देव विद्वतये जगतोऽन्य ॥
नमस्ते वेदकपाय आहोकपाय वै नमः । नमस्ते जननरूपाय यज्ञाय च नमो नमः ॥
प्रसीदामासु देवेषा भूतेश विश्वेष्वल । संसार्गुर्वमग्रानो प्रसादं कुरु गोपते ।
वेदानाय नमो नित्ये नमो यज्ञकलाय च ॥

है । पुनः मुझसे ही ब्रह्मादि देवगण तथा चराचर उत्पन्न होते हैं । हे त्रिलोकेन ! मैं सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त हूँ । इसलिये मेरे व्योमरूपकी आराधना आपसहित ब्रह्मा, विष्णु भी करें । त्रिलोकेन ! आप गच्छमादनपर दिव्य सहस्र वर्षोंतक तपस्या करके परम पुण्य षड़ज-सिद्धिको प्राप्त करें । जनार्दन ! आप मेरे व्योमरूपकी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक आराधना कलापग्राममें निवास कर करें । जगत्पति ब्रह्मा भी अन्तरिक्षमें जाकर लोकग्रामपुष्करतीर्थमें मेरी आराधना करें । इस प्रकार आराधना करनेके पश्चात् कदम्बके समान गोलाकार, रश्मिमालासे युक्त मेरी मूर्तिका आपलोग दर्शन करेंगे ।

इस प्रकार सूर्यनारायणके बचनको सुनकर भगवान् विष्णुने उन्हें प्रणाम कर कहा—‘देव ! हम सभी लोग उत्तम सिद्धि प्राप्त करनेके लिये आपके परम तेजस्वी व्योमरूपका पूजन-अर्चनकर किस विधिसे आराधना करें । परमपूजित ! कृपया आप उस विधिको बतलाकर मुझसहित ब्रह्मा और शिवपर दया कीजिये, जिससे हमलोगोंको परम सिद्धि प्राप्त होनेमें कोई विवर-बाधा न पहुँच सके ।

भगवान् सूर्य खोले—देवताओंमें श्रेष्ठ वासुदेव ! आप शान्तचित होकर सुनिये । आपका प्रश्न उचित ही है । मेरे अनुपम व्योमरूपकी आपलोग आराधना करें । मेरी पूजा मध्याह्नकालमें भक्तिपूर्वक सदैव करनेसे इच्छित भक्तिकी प्राप्ति हो जाती है । भगवान् सूर्यके इस वाक्यको सुनकर ब्रह्मादि देवताओंने प्रणामकर कहा—‘देव ! आप अन्य हैं, हमलोगोंको आपने अपने तेजसे प्रकाशित किया है, हमलोग कृतकृत्य हो गये । आपके दर्शनमात्रसे ही सभी लोगोंको ज्ञान प्राप्त हुआ है तथा तम, मोह, तन्द्रा आदि सभी क्षणमात्रमें ही दूर हो गये हैं । हमलोग आपके ही तेजके प्रभावसे उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं । अब आप व्योमके पूजन-विधिको बतानेकी कृपा करें ।’

भगवान् आदित्यने कहा—आपलोग सत्य ही कह

रहे हैं, जो मैं हूँ वही आपलोग भी हैं, अर्थात् आपलोगोंके स्वरूपमें मैं ही स्थित हूँ । अहंकारी, विमूढ़, असत्य, कलहसे युक्त लोगोंके कल्याणके लिये तथा आपलोगोंके अन्यकार अर्थात् तम-मोहादिकी निवृत्तिके लिये मैंने तेजोमय स्वरूप प्रकट किया, इसलिये अहंकार, मान, दर्प आदिका परित्याग कर ब्रह्मा-भक्तिपूर्वक निरन्तर आपलोग मेरी आराधना करें । इससे मेरे सकल-निष्कल उत्तम स्वरूपका दर्शन प्राप्त होगा और मेरे दर्शनसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेंगी । इतना कहकर सहस्रकिरण भगवान् सूर्य देवताओंके देशते-देशते अन्तर्धीन हो गये । भगवान् भास्करके तेजस्वी रूपका दर्शनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव सभी आश्वस्यचकित होकर परस्पर कहने लगे—‘ये तो अदिति-पुत्र सूर्यनारायण हैं । ये महातेजस्वी लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्यनारायण हैं, इन्होंने हम सभी लोगोंको महान् अन्यकालरूपी तमसे निवृत किया है । हम अपने-अपने स्थानपर चलकर इनकी पूजा करें, जिससे इनके प्रसादसे हमें सिद्धि प्राप्त हो सके ।’

उस व्योमरूपकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन करनेके लिये ब्रह्माजी पुष्करक्षेत्रमें, भगवान् विष्णु शालग्राममें और वृषभज शंकर गच्छमादन पर्वतपर चले गये । यहाँ मान, दर्प तथा अहंकारका परित्याग कर ब्रह्माजी चार कोणसे युक्त व्योमकी, भगवान् विष्णु चक्रमें अद्वित व्योमकी और शिव अग्रिमरूपी तेजसे अभिभूत व्योमवृत्तकी सदा भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे । ब्रह्मादि देवता गच्छ, माला, नृत्य, गीत आदिसे दिव्य सहस्र वर्षोंतक सूर्यनारायणकी पूजाकर उनकी अचल भक्ति और प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये उत्तम तपस्यामें तत्पर हो गये ।

सुमन् मुनि खोले—महाराज ! देवताओंके पूजनसे प्रसन्न हो वे एक रूपसे ब्रह्माके पास, एक रूपसे शंकरके पास तथा एक रूपसे विष्णुके पास गये एवं अपने चतुर्थ रूपसे रथारूप हो आकाशमें स्थित रहे । भगवान् सूर्यने अपने योगबलसे पृथक्-पृथक् उन्हें दर्शन दिया । दिव्य रथपर

१-अन्य पुरुओं तथा मांसपक्ष, वेदान्त आदि दर्शनोंके अनुसार आकाशका मनसात्मय, मनका अहंतात्मय और अहंका महत्-तत्त्वमें, महतत्त्वका अव्यक्त-तत्त्वमें और अव्यक्तत्वक सत्-तत्त्वमें लूप होता है, जो संकल्प-विकल्पमें लूप होता है और पुनः सूर्यके समय सत्-तत्त्वमें कलनामें साथ अव्यक्त, महत्, मन, अहंकारके बाद आकाशकी उत्पत्ति होती है ।

२-योगवासिन्मृतमें सबको व्योमके ही अवधारित स्थित मानकर हृद-व्योम-उपासना (दहर-उपासना)का निर्देश है और ब्रह्मसूखके ‘आकाशकालिन्द्रवात्’ इस सूखमें आकाश चलकर अर्थं परमात्मा माना गया है ।

आरुढ़ सूर्यदेवने अपने अद्भुत योगबलसे देखा कि चतुर्मुख ब्रह्माजी कमलमुख-छोमकी पूजामें अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे नतमस्तक है। यह देखकर ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यदेवने कहा—‘सुश्रेष्ठ ! देखो, मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ।’ यह सुनकर ब्रह्माजी हृषिसे प्रफुल्लित हो उठे और हाथ जोड़कर उनके कमलमुखको देखकर अति विनय-भावसे प्रणाम वर प्रार्थना करने लगे—

‘देवेश ! आप प्रसन्न हैं तो मेरे ऊपर कृपा कीजिये। देव ! आपके अतिरिक्त मेरे लिये अन्य कोई गति नहीं है।’

भगवान् सूर्य बोले—जैसा आप कह रहे हैं, उसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है। आप कशण-रूपसे मेरे प्रथम पुत्रके रूपमें उत्पन्न हों। अब आप वर माँगये, मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मुझे उत्तम वर दें, जिससे मैं सृष्टि कर सकूँ।

भगवान् आदित्यने कहा—जगत्पाति चतुर्मुख ब्रह्मन् ! आपको मेरे प्रसादसे सिद्धि प्राप्त हो जायगी और आप इस जगत्के सृष्टिकर्ता होंगे।

ब्रह्माजीने कहा—जगत्राथ ! मेरा निवास किस स्थानपर होगा।

भगवान् सूर्य बोले—जिस स्थानपर मेरा महद्-योग-पृष्ठ शंखसे युक्त उत्तम रूप रहेगा, वहीं कदम्ब-रूपमें आप नित्य स्थित रहेंगे। पूर्व दिशामें इन्द्र, अग्निकोणमें शापिणीसुता अग्नि, दक्षिणमें यम, नैऋत्यकोणमें निर्झर्ति, पश्चिममें वरुण और वायव्यकोणमें वायु तथा उत्तर दिशामें कुबेरका निवास रहेगा। ईशानकोणमें शंकर और आपका तथा मध्यमें विष्णुका निवास रहेगा।

ब्रह्माजीने कहा—देव ! आज मैं कृतकृत्य हो गया, जो कुछ भी मुझे चाहिये, वह सब प्राप्त हो गया।

सुपन्न मुनि बोले—राजन् ! इस प्रकार भगवान् आदित्य ब्रह्माजीको वर प्रदानकर उनके साथ गच्छादन पर्वतपर गये, वहाँ उन्होंने देखा—भूत-भावन शिव तीव्र तपस्यामें संलग्न है। वे सेजसे युक्त योगमका पूजन कर रहे हैं। इस प्रकार विवहार्य पूजन-अर्चनको देखकर भगवान् भास्कर प्रसन्न हो गये।

सं० भ० पु० अ० ६—

सूर्यभगवानने कहा—भीम ! मैं तुमसे अति प्रसन्न हूँ। वर माँगो ! मैं वर देनेके लिये उपस्थित हूँ। इसपर महादेवजीने साषाङ्क प्रणाम कर सुनि की और कहा—‘देव ! आप मुझपर कृपा करें। आप जगत्पति हैं। संसारका उद्धार करनेवाले हैं। मैं आपके अंशामें आपके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ, आप वही करें जो एक पिता अपने पुत्रके लिये करता है।’ यह वचन सुनकर भगवान् सूर्य बोले—‘शंकर ! जो तुम कह रहे हो, उसमें कोई भी संदेह नहीं है। मेरे ललाटसे तुम पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए हो। जो तुम्हारे मनमें हो वह वर माँगो।’

महादेवजीने कहा—भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर संतुष्ट हैं तो मुझे अपनी अचल भक्ति प्रदान करें, जिससे यक्ष, गच्छार्दी, देव, दानव आदिपर मैं विजय प्राप्त कर सकूँ और युगके अन्तमें प्रजाका संहार कर सकूँ। देव ! मुझे उत्तम स्थान प्रदान करें। भगवान् सूर्यने ‘ऐसा ही होगा’ कहकर कहा कि इसी प्रकार तुम मेरे परम योगमुखपक्षी पूजा प्रतिदिन करते रहो और यहीं परम तेजस्वी योग तुम्हारा शब्द—त्रिशूल होगा।

सुपन्न मुनि बोले—महाराज ! तदनन्तर भगवान् सूर्य भगवान् विष्णुको वर देने शालग्राम (मुकिनाथ-क्षेत्र) गये। वहाँ उन्होंने देखा कि वे कृष्णाजिन शारणकर शान्तचित हो परम उत्कृष्ट तप कर रहे हैं और हृदयमें भगवान् सूर्यका ध्यान कर रहे हैं। भगवान् भास्करने अति प्रसन्न होकर कहा—‘विष्णो ! मैं आ गया हूँ, मुझे देखो।’ भगवान् विष्णुने उन्हें सिर हुक्काकर प्रणाम किया और कहा—‘जगत्राथ ! आप मेरी रक्षा करें। मेरे ऊपर दया करें। मैं आपका द्वितीय पुत्र हूँ। पिता अपने पुत्रपर जैसी कृपादृष्टि रखता है, उसी प्रकार आप भी मेरे ऊपर दया-दृष्टि बनाये रखें।’

भगवान् सूर्य बोले—महावाहो ! मैं तुम्हारी श्रद्धा-भक्तिसे संतुष्ट हो गया हूँ। जो कुछ भी इच्छा हो, माँग स्ने। मैं वर प्रदान करनेके लिये ही आया हूँ।

विष्णु भगवानने कहा—भगवन् ! मैं आज कृतकृत्य हो गया। मेरे समान कोई भी धन्य नहीं है, क्योंकि आप संतुष्ट होकर मुझे स्वयं वर देने आ गये। आप अपनी अचल भक्ति और शाशुको पराजित करनेका शक्ति मुझे प्रदान करें तथा जैसे मैं संसारका पालन कर सकूँ ऐसा वर प्रदान करें। मुझे इस प्रकारका स्थान दे जिससे कि मैं सभी लोकोंमें यशस्वी, बल,

वीर्य, यशा और सुखसे सम्पन्न हो सकें।

भगवान् सूर्य बोले— 'तथासु' महामाहो ! तुम ब्रह्माके छोटे और शिवके बड़े भाता हो, तुम्हें सभी देवता नमस्कार करेगे। तुम मेरे परम भक्त और परम प्रिय हो, इसलिये तुम्हारी मुझमें अचल भक्ति रहेगी। जिस व्योमरूपका तुमने अर्चन किया है, यह व्योम ही तुम्हारे लिये चक्रवर्त्यमें अख-शखका कर्त्त्य करेगा। यह सभी आनुष्ठानियों उत्तम एवं दुष्टोंका विनाशक है। समस्त लोक इसे नमस्कार करते हैं।

सुमनु मुनि बोले— राजन् ! इस प्रकार भगवान् भास्कर भगवान् विष्णुको वर प्रदानकर अपने लोकको खले गये और ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरने भगवान् सूर्यनारायणकी पूजाकर सृष्टि, पालन और संहार करनेकी शक्ति प्राप्त की। यह

आख्यान अति पवित्र, पुण्य और सभी प्रकारके पापोंका नाशक है। यह तीन देवोंका उपाख्यान है और तीन देवता इस लोकमें पूजित हैं। यह तीन स्तोत्रोंसे युक्त तथा धर्म, अर्थ और कामका साधन है। यह धर्म, स्वर्ग, आरोग्य, धन-धान्यको प्रदान करनेवाला है। जो व्यक्ति इस आख्यानको प्रतिदिन सुनता है अथवा जो इन तीन स्तोत्रोंका पाठ करता है, वह आग्रेय विमानपर आरूढ़ होकर भगवान् सूर्यके परमपदको प्राप्त कर सकता है। पुक्षीन पुत्र, निर्वन धन, विद्यार्थी विद्या प्राप्त कर तेजमें सूर्यके समान, प्रभामें उनके किरणोंके समान हो जाता है और अनन्तकालतक सुख भोग कर ज्ञानियोंमें उत्तम स्थानको प्राप्त करता है।

(अध्याय १५२—१५६)

सूर्य-धर्म-निरूपणमें सूर्यावितारका कथन

शतानीकने पूछा—ब्रह्मन् ! जिन तेजस्मी भगवान् सूर्यनारायणने ब्रह्माजीको वर प्रदान किया, देवताओं और पृथ्वीको उत्पन्न किया, जो ब्रह्मादि देवताओंको प्रकाशित करनेवाले तथा समस्त जगत्के पालक, महाभूतोंसहित चौदह लोकोंके स्थान, पुराणोंमें तेजरूपसे स्थित एवं पुराणोंकी आत्मा हैं तथा अद्विमें स्वयं स्थित हैं, जिनके सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों चरण हैं, जिनके मुखसे लोकप्रितामह ब्रह्मा, वक्षःस्थलसे भगवान् विष्णु और ललाटसे साक्षात् भगवान् शिव उत्पन्न हुए हैं, जो विश्वोंके विनाशक एवं अन्धकार-नाशक, लोककी शान्तिके लिये जो अपि, वेदि, कुशा, सुवा, प्रोक्षणी, व्रत आदिको उत्पन्न कर इनके द्वारा हत्या-भाग ग्रहण करते हैं, जो युगके अनुरूप कर्मोंके विभाजन तथा क्षण, काल, काष्ठ, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, संवत्सर, ऋतु, कालयोग, विविध प्रमाण और आयुके उत्पादक तथा विनाशक हैं एवं परमन्योति और परम तपस्वी हैं, जो अन्धुर तथा परमात्माके नामसे जाने जाते हैं, वे ही महर्षि कश्यपके यहाँ पुत्रके रूपमें कैसे अवतरित हुए ?

ब्रह्मादि जिनकी उपासना करते हैं तथा वेद-वेत्ताओंमें जो उत्तम और देवताओंमें प्रभु विष्णु हैं, जो सौम्योंमें सौम्य और अप्रिमें तेजःस्वरूप हैं, मनुष्योंमें मन-रूपसे तथा तपस्वियोंमें तप-रूपसे विद्यमान हैं, जो विश्वहोंमें विग्रह हैं, जो देवताओं और मनुष्यों-सहित समस्त लोकोंको उत्पन्न करनेवाले हैं, वे

देवोंके देव भगवान् सूर्य किसलिये अदितिके गर्भसे स्वयं उत्पन्न हुए ? ब्रह्मन् ! इस विषयमें मुझे महान् आकृत्य हो रहा है, भगवान् सूर्यकी उत्पत्तिसे आकृत्यचकित होकर ही मैंने आपसे उनके आख्यानको पूछा है। महामुने ! भगवान् सूर्यके बल-वीर्य, पराक्रम, यशा और उज्ज्वलिता तेजकम आप वर्णन करें।

सुमनु मुनि बोले— राजन् ! आपने भगवान् भास्करकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत ही जटिल प्रश्न पूछा है। मैं अपनी सामग्रीके अनुसार कह रहा हूँ। आप उसे ब्रह्म-भक्तिपूर्वक सुनें।

जो भगवान् सूर्य सहस्रों नेत्रोंवाले, सहस्रों किरणोंसे युक्त और सहस्रों सिर तथा सहस्रों हाथवाले हैं, सहस्रों मुकुटोंसे सुशोभित तथा सहस्रों भुजाओंसे युक्त एवं अव्यय हैं, जो सभी लोकोंके कल्याण एवं सभी लोकोंको प्रकाशित करनेके लिये अनेक रूपोंमें अवतरित होते हैं, वही भगवान् सूर्य कश्यपद्वारा अदितिके गर्भसे पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। महाराज ! कश्यप और अदितिसे जो-जो पुत्र उत्पन्न होते थे, वे उसी क्षण मर जाते थे। इस पुत्र-विनाशको देखकर पुत्र-शोकसे दुःख माता अदिति व्याकुल हो अपने पति महर्षि कश्यपके पास गयी। अदितिने देखा कि महर्षि कश्यप अप्रिके समान तेजस्मी, दण्ड धारण किये कृष्ण मृगचार्यपर आसीन तथा बलकल धारण किये हुए भगवान् भास्करके सदृश देवीव्यामान

हो रहे हैं। इस प्रकारसे उन्हें स्थित देखकर अदिति ने प्रार्थना करते हुए कहा—‘देव ! आप इस तरह निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ? मेरे पुत्र उत्पन्न होते ही मूल्युको प्राप्त होते जा रहे हैं।’ अदिति के इस वचनको सुनकर ऋषियोंमें उत्तम कश्यपजी ब्रह्मलोक गये और उन्होंने अदिति की बातें ब्रह्माजीको अत्यल्पीया।

ब्रह्माजीने कहा—पुत्र ! हमें भगवान् भास्करके परम दुर्लभ स्थानपर चलना चाहिये। यह कहकर ब्रह्मा कश्यप और अदिति के साथ विमानपर आरूढ़ होकर सूर्यदेवके भवनको गये। उस समय सूर्यलोककी सभामें कहीं वेद-ध्यानि हो रही थी, कहीं यज्ञ हो रहा था। ब्रह्मण वेदकी शिक्षा दे रहे थे। अठारह पुरुषोंके ज्ञाता, विद्याविशारद, मीमांसक, नैयायिक, वेदान्तविद्, लोकव्यातिक आदि सभी सूर्यकी उपासनामें लगे हुए थे। विद्वान् ब्रह्मण जप, तप, लक्ष्म अदिति में संलग्न थे। उस सभामें रशिमाली भगवान् दिवाकरको महर्षि कश्यप आदिति देखा। देवताओंके गुरु बृहस्पति, असुरोंके गुरु शुक्रचार्य आदि भी वहाँपर भगवान् सूर्यकी उपासना कर रहे थे। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अधि, वसिष्ठ, गौतम, नारद, अन्नरक्ष, तेज, पृथ्वी, इन्द्र, स्पर्श, रूप, रस, गम्य, प्रकृति, किङृति, अङ्ग-उपज्ञानेसहित चारों वेद और ल्व, ऋतु, संकल्प, प्रणव आदि बहुतसे मूर्तिमान् होकर भगवान् भास्करकी सुति-उपासना कर रहे थे। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, द्रेष, हर्ष, मोह, मत्सर, मान, वैष्णव, माहेश्वर, सौर, मारुत, विश्वकर्मा तथा अश्विनीकुमार आदि सुन्दर-सुन्दर वचनोंसे भगवान् सूर्यका गुणगान कर रहे थे।

ब्रह्माजीने भगवान् भास्करसे निवेदन किया— भगवन् ! आप देवमाता अदिति के गर्भसे उत्पन्न होकर लोकका कल्याण कीजिये। इस बैलेक्षको अपने तेजसे प्रकाशित कीजिये। देवताओंको शरण दीजिये। असुरोंका विनाश एवं अदिति-पुत्रोंकी रक्षा कीजिये।

भगवान् सूर्यने कहा—आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा। प्रसन्न होकर महर्षि कश्यप देवी अदिति के साथ

अपने आश्रममें चले आये और ब्रह्माजी भी अपने लोकको चले गये।

सुमनु मुनि बोले—महाराज ! कालान्तरमें भगवान् सूर्य अदिति के गर्भसे उत्पन्न हुए, जिससे तीनों लोकोंमें सुख छा गया और देवताओंका विनाश हो गया देवताओंकी बृद्धि हुई और उनके प्रभावसे सभी लोगोंमें परम आनन्द व्याप्त हो गया।

इस प्रकार देवमाता अदिति के गर्भसे भगवान् सूर्यके जन्म ग्रहण करनेपर आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्वगण गान करने लगे। द्वादशात्मा भगवान् सूर्यकी सभी देवगण, ऋषि-महर्षि तथा दक्ष प्रजापति आदि सुनि करने लगे। उस समय एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार, आटों वसु, महाबली गरुड़, विश्वेदेव, साध्य, नागराज वासुकि तथा अन्य बहुतसे नाग और राक्षस भी हाथ जोड़े रखड़े थे। पितामह ब्रह्मा भी स्वयं पृथ्वीपर आये और सभी देवता एवं ऋषि-महर्षियोंसे बोले—‘देवर्धिगण ! जिस प्रकार ब्राह्मण-रूपमें उत्पन्न होकर ये सभीको देख रहे हैं, उसी प्रकार ये लोकेश्वर श्रीमान् और विवस्वान्-रूपमें विद्युत होंगे। देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व आदिके जो कारण हैं ये ही आदिदेव भगवान् आदित्य हैं।’ इस प्रकार कहकर पितामह ब्रह्माने देवताओं और ऋषियोंसहित उन्हें नमस्कार कर विधिपूर्वक उनकी अर्चना की तत्पक्षात् वे अपने-अपने लोकोंको चले गये।

वेदोद्धारा गेय तथा इन्द्रादि बारह नामोंसे युक्त भगवान् सूर्यको पुत्र-रूपमें प्राप्तकर महर्षि कश्यप अदिति के साथ परम संतुष्ट हो गये एवं साया विश्व हर्षसे व्याप्त हो गया तथा सभी राक्षस भयभीत हो गये।

भगवान् सूर्य बोले—महर्षे ! आपके पुत्र नहीं हो जाते थे, इसलिये गर्भकी सिद्धिके लिये मैं आपके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ हूँ।

सुमनु मुनि बोले—राजन् ! इस प्रकार भगवान् भास्करकी आराधना करके ब्रह्माजीने सृष्टि करनेका वर प्राप्त किया और कश्यपमुनिने भी भगवान् भास्करको प्रसन्न कर उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया। (अध्याय १५७—१५९)



ब्रह्मादि देवताओंहारा सूर्यके विराट-रूपका दर्शन

महाराज शतानीकने कहा—मुने ! आपने भगवान् सूर्यके अद्भुत चत्रिका वर्णन किया है, जिनका पूजन ब्रह्मा आदि देवता प्रतिदिन विधिपूर्वक करते रहते हैं तथा जिस ब्रह्माकी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सभी देवता आराधना करते रहते हैं, उसे आप बताये ।

सुमन्तु मुनि बोले—हजन् ! एक बार भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी हिमाचलपर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शिव सिरपर अर्थवन्द्र धारण किये भगवान् विवर्णानकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मा और विष्णुको वहाँ आये देखकर शिवजीने उन्हें प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की तथा उनसे कहा—‘भगवन् ! आपलोगोंने भगवान् सूर्यकी आराधना कर उनके किस स्वरूपका दर्शन किया है । मुझे उनके परम रूपको जाननेकी बड़ी ही अभिलाषा है, उसे आप बताये ।’

इसपर वे दोनों बोले—हमलोगोंने भी उस परम अद्भुत रूपको नहीं देखा है । हमें उस परम अद्भुत रूपकी आराधनाके लिये सुवर्णके समान उज्ज्वल पवित्र उदयगिरिपर एक साथ चलना चाहिये । अनन्तर तीनों देव तीव्र गतिसे पर्वतश्रेष्ठ उदयाचलपर गये और वहाँ भगवान् सूर्यनारायणकी विधिपूर्वक आराधना करने लगे । सहस्रों दिव्य वर्षतक पदासन लगाकर ब्रह्माजी निश्चल रूपसे स्थिर हो, ऊपर हाथ करके ब्रिलोचन भगवान् इहाँ और सिर नीचे करके पञ्चाङ्गिका सेवन करते हुए भगवान् विष्णु सूर्यदेवका दर्शन प्राप्त करनेके लिये कठोर तप करने लगे । ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीके उत्तम तपसे संतुष्ट हो भगवान् सूर्यनारायणने प्रकट होकर उनसे कहा—‘आपलोग क्या चाहते हैं ? मैं आपलोगोंसे संतुष्ट हूँ और वर देनेके लिये उपस्थित हुआ हूँ ।’

उन्होंने कहा—गोपते ! हमलोग आपके दर्शनसे कृत-कृत्य हो गये हैं । पहले ही आपकी आराधना करके हमलोगोंने शुभ वरोंको प्राप्त कर लिया है । आपकी दयासे हमलोग उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेमें समर्थ हैं, इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है, किन्तु देवदेवेश ! हमलोग आपके परम दुर्लभ रूपका दर्शन करना चाहते हैं ।

उनके वचनोंको सुनकर लेकपूजित भगवान् सूर्यने उन्हें अपना परम दुर्लभ तेजस्वी अद्भुत विराट-रूप दिखलाया । इनके अनेक सिर तथा अनेक मुख हैं, सभी देव तथा सभी लोक उसमें स्थित हैं । पृथ्वी पैर, स्वर्ग सिर, अग्नि नेत्र, पैरकी अंगुलियाँ पिशाच, हाथकी अंगुलियाँ गृहाक, विश्वदेव जंघा, यज्ञ कुक्षि, अप्सरागण केश तथा तारागण ही इनके रोम-रूपमें हैं । दसों दिशाएँ इनके कान और दिक्कपालगण इनकी भुजाएँ हैं । वायु नासिका, प्रसाद ही क्षमा तथा धर्म ही मन है । सत्य इनकी वाणी, देवी सरसती जिहा, ग्रीष्म महादेवी अदिति और तालु वीर्यवान् रुद्र हैं । स्वर्णका द्वार नाभि, वैशानर अग्नि मुख, भगवान् ब्रह्मा हृदय और उदर महर्षि कश्यप हैं, पीठ आठों वासु तथा सभी संघियाँ मरुदेव हैं । समस छन्द दाँत एवं ज्योतिर्याँ निर्मल प्रभा हैं । महादेव रुद्र प्राण, कुक्षिर्याँ समुद्र हैं । इनके उदरमें गम्भीर और नाग हैं । लक्ष्मी, मेधा, धृति, कर्मनि तथा सभी विद्याएँ इनके कटिदेशमें स्थित हैं । इनका लक्ष्मट ही परमात्माका परमपद है । दो स्तन, दो कुक्षि और चार वेद ये आठ ही इनके यज्ञ हैं ।

सुमन्तु मुनि बोले—हजन् ! सर्वदिवमय भगवान् सूर्यके इस विराट रूपको देखकर ब्रह्मा, शिव और भगवान् विष्णु परम विस्मित हो गये । उन्होंने बड़ी श्रद्धासे भगवान् सूर्यको प्रणाम किया ।

भगवान् सूर्यने कहा—देवो ! आप सबकी कठिन तपस्यासे प्रसन्न होकर आप सबके कल्याणके लिये मैंने योगियोंके द्वारा समाधि-गम्य अपने इस विराट रूपके दिखलाया है । इसपर वे बोले—भगवन् ! आपने जो कहा है, उसमें कोई भी संदेह नहीं है । इस विराट रूपका दर्शन पाना योगियोंके लिये भी दुर्लभ है । आपकी आराधना करने तथा आपका दर्शन करनेपर कुछ अप्राप्य नहीं है । आपके समान इस लोकमें दूसरा कोई देव नहीं है ।

हजन् ! ब्रह्मादि देवता परम उल्कट इस रूपका दर्शन कर हर्षित हो गये और उन्होंने भगवान् सूर्यका पूजन-आराधन कर परम सिद्धि प्राप्त की । (अध्याय १६०)

सूर्योपासनाका फल

शतानीकने पूछा—मुने ! आपने भगवान् सूर्यके विषयमें जो कहा, वह सत्य ही है, संसारके मूल कारण तथा परम दैवत भगवान् सूर्य ही है, सभीको यही तेज प्रदान करते हैं। भगवान् सूर्यनाशयणके पूजनसे जो फल प्राप्त होता है, आप उसे बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! जो व्यक्ति सर्वदेवमय भगवान् सूर्यकी प्रतिष्ठा कर पूजन करता है, वह अमरत्व तथा भगवान् सूर्यका सामीय प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति भगवान् सूर्यका तिरस्कार कर सभी देवताओंका पूजन करता है, उस व्यक्तिके साथ भावण करनेवाला व्यक्ति भी नरकगामी होता है। जो व्यक्ति श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी प्रतिष्ठा कर पूजन-अर्चन करता है, उसे यज्ञ, तप, तीर्थ-यात्रा आदिकी अपेक्षा कोटि गुना अधिक फल प्राप्त होता है तथा उसके मातृकुल, पितृकुल एवं ऋकुल—इन तीनोंका उद्धार हो जाता है और वह इन्द्रलोकमें पूजित होता है तथा वहाँ ज्ञानयोगके आश्रयणसे वह मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा जो राज्य चाहता है वह दूसरे जन्ममें सप्तद्वीपवती वसुमतीका राजा होता है। जो व्यक्ति मिट्टीका सर्वदेवमय व्योम बनाकर भगवान् सूर्यका पूजन-अर्चन करता है, वह तीनों लोकोंमें पूजित एवं इस लोकमें धन-धान्यसे परिपूर्ण होकर अन्तमें सूर्यलोकको

प्राप्त कर सकता है।

जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके पिष्टमय व्योमकी रचनाकर गत्य, धूप, पूष्य, माला, चन्दन, फल आदि उपचारोंसे पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और कोई हेश नहीं पाता। वह भगवान् सूर्यके समान प्रतापपूर्ण हो अव्यय पदको प्राप्त करता है। अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यका मन्दिर निर्माण करनेवाला स्वर्णमय विमानपर आरुद्ध होकर भगवान् सूर्यके साथ विहार करता है। यदि साधन-सम्पन्न होनेपर भी श्रद्धा-भक्तिसे शून्य होकर मन्दिर आदिका निर्माण करता है तो उसे कोई फल नहीं होता। इसलिये अपने धनका तीन भाग करना चाहिये, उसमेंसे दो भाग धर्म तथा अर्थोपार्जनमें व्यय करे और एक भागसे जीवनयापन करे। धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न रहनेपर भी यदि कोई विना भक्तिके अपना सर्वस्व भगवान् सूर्यके लिये अर्पण कर दे, तब भी वह धर्मका भागी नहीं होता, योकि इसमें भक्तिकी ही प्रधानता है। मानव संसारमें दुःख और शोकसे न्यायकुल होकर तबतक भटकता है, जबतक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता। संसारमें आसक्त प्राणियोंको भगवान् सूर्यके अतिरिक्त और कौन ऐसा देवता है जो अन्धनसे कुटकारा दिला सके।

(अध्याय १६१-१६२)

विभिन्न पुर्णोद्घारा सूर्य-पूजनका फल

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! अमित तेजस्वी भगवान् सूर्यको स्नान कराते समय 'जय' आदि माझलिक शब्दोंका उद्धारण करना चाहिये तथा शङ्ख, भेरी आदिके द्वारा मङ्गल-ध्वनि करनी चाहिये। तीनों संध्याओंमें वैदिक ध्वनियोंसे श्रेष्ठ फल होता है। शङ्ख आदि माझलिक वायोंके सहारे नीरजन करना चाहिये। जितने शक्तिका भक्त नीरजन करता है, उसने युग सहस्र वर्ष वह दिव्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। भगवान् सूर्यको करिला गौके पञ्चगव्यसे और मन्त्रपूर्त कुशशुक्त जलसे स्नान करानेको ब्रह्मस्नान कहते हैं। वर्षमें एक बार भी ब्रह्मस्नान करानेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

जो पितरोंके उद्देश्यसे शीतल जलसे भगवान् सूर्यको स्नान करता है, उसके पितर नरकोंसे मुक्त होकर स्वर्ण चरणे जाते हैं। मिट्टीके कलशकी अपेक्षा ताप्र-कलशसे स्नान करना सौ गुना श्रेष्ठ होता है। इसी प्रकार चाँदी आदिके कलशद्वारा स्नान करनेसे और अधिक फल प्राप्त होता है। भगवान् सूर्यके दर्शनसे स्पर्श करना श्रेष्ठ है और स्पर्शसे पूजा श्रेष्ठ है और धूत-स्नान करना उससे भी श्रेष्ठ है। इस लोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले पापोंके फल भगवान् सूर्यके धूतस्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं एवं पुराण-श्रवणसे सात जन्मोंके पाप दूर हो जाते हैं।

एक सौ पल (लगभग छः किलो बीस ग्राम) प्रमाणसे

(जल, पञ्चामृत आदिसे) स्नान करना 'स्नान' कहलाता है। पचीस पल (लगभग डेढ़ किलो) से स्नान करना 'अभ्यङ्ग-स्नान' कहलाता है और दो हजार पल (लगभग एक सौ चौबीस किलो) से स्नान करनेको 'महास्नान' कहते हैं।

जो मानव भगवान् सूर्यको पुण्य-फलसे युक्त अर्थ्य प्रदान करता है, वह सभी लोकोंमें पूजित होता है और स्वर्गलोकमें आनन्दित होता है। जो अष्टाङ्ग अर्थ—जल, दूध, कुशका अप्रभाग, श्री, दही, मधु, लाल कनेरका फूल तथा लाल चन्दन—यनाकर भगवान् सूर्यको निवेदित करता है, वह दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें विहार करता है। यह अष्टाङ्ग अर्थ भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है।

बासके पात्रसे अर्थ-दान करनेसे सौ गुना फल मिट्टीके पात्रसे होता है, मिट्टीके पात्रसे सौ गुना फल ताप्त्रके पात्रसे होता है और पलाश एवं कमलके पत्तोंसे अर्थ देनेपर ताप्त्र-पात्रका फल प्राप्त होता है। रजतपात्रके द्वारा अर्थ प्रदान करना लाल गुना फल देता है। सुवर्णपात्रके द्वारा दिया गया अर्थ कोटि गुना फल देनेवास्तव होता है। इसी प्रकार स्नान, अर्थ, नैवेद्य, धूप आदिका क्रमशः विवित्र पात्रोंकी विशेषतामें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है।

धनिक या दौरिद्र दोनोंको समान ही फल मिलता है, किन्तु जो भगवान् सूर्यके प्रति भक्ति-भावनासे सम्पन्न रहता है, उसे अधिक फल मिलता है। वैभव रहनेपर भी मोहवशा जो पूर्व विधि-विधानके साथ पूजन आदि नहीं करता, वह लोभसे आक्रमित-चित्त होनेके कारण उसका फल नहीं प्राप्त कर पाता। इसलिये मन्त्र, फल, जल तथा चन्दन आदिसे विधिपूर्वक सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। इससे वह अनन्त फलको प्राप्त करता है। इस अनन्त फल-प्राप्तिमें भक्ति ही मुख्य हेतु है। भक्तिपूर्वक पूजा करनेसे वह सौ दिव्य कोटि वर्ष सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

राजन् ! सूर्यको भक्तिपूर्वक तालपत्रका पंखा समर्पित करनेवाला दस हजार वर्षतक सूर्यलोकमें निवास करता है।

मयूर-पंखका सुन्दर पंखा सूर्यको समर्पित करनेवाला सौ कोटि वर्षोंतक सूर्यलोकमें निवास करता है।

नरश्रेष्ठ ! हजारों पुष्पोंसे कन्नेकर्प पुण्य श्रेष्ठ है, हजारों विलवपत्रोंसे एक कमल-पुण्य श्रेष्ठ है। हजारों कमल-पुष्पोंसे एक अगस्त्य-पुण्य श्रेष्ठ है, हजारों अगस्त्य-पुष्पोंसे एक मोगरा-पुण्य श्रेष्ठ है, सहस्र कुशाओंसे शमीपत्र श्रेष्ठ है तथा हजार शमी-पत्रोंसे नीलकमल श्रेष्ठ है। सभी पुष्पोंमें नीलकमल ही श्रेष्ठ है। लाल कनेरके द्वारा जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह अनन्त कल्पोंतक सूर्यलोकमें सूर्यके समान श्रीमान् तथा पराक्रमी होकर निवास करता है। चमेली, गुलाब, विजय, शेत मदार तथा अन्य शेत पुण्य भी श्रेष्ठ माने गये हैं। नाग-चम्पक, सदाचाहार-पुण्य, मुद्रर (मोगरा) ये सब समान ही माने गये हैं। गन्धयुक्त किन्तु अपवित्र पुष्पोंको देवताओंपर नहीं चढ़ाना चाहिये। गन्धहीन होते हुए भी पवित्र कुशादिकोंको प्रहण करना चाहिये। पवित्र पुण्य सालिक पुण्य है और अपवित्र पुण्य तामसी है। रात्रिमें मोगरा और कदम्बका पुण्य चढ़ाना चाहिये। अन्य सभी पुष्पोंको दिनमें ही समर्पित करना चाहिये। अधिखिले पुण्य तथा अपक पदार्थ भगवान् सूर्यको नहीं चढ़ाने चाहिये। फलोंके न मिलनेपर पुण्य, पुण्य न मिलनेपर पत्र और इनके अभावमें तृण, गुल्म और औपध भी समर्पित किये जा सकते हैं। इन सबके अभावमें मात्र भक्ति-पूर्वक पूजन-आश्रयनसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। जो मात्र मासके कृष्ण पक्षमें सुगन्धित मुक्त-पुष्पोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता है, उसे अनन्त फल प्राप्त होता है। संयतचित्त होकर करवीर-पुष्पोंसे पूजा करनेवाला सभी पापोंसे रहित हो सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

अगस्त्यके पुष्पोंसे जो एक बार भी भक्तिपूर्वक सूर्यकी पूजा करता है, वह दस लाल गोदानका फल प्राप्त करता है और उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।

मालती, रक्तकमल, चमेली, सुनाग, चम्पक, अशोक, शेत मन्दार, कचनार, अंधुक, करवीर, कलहार, शमी, तगर,

१-आप : श्वीर कुशाप्राणि धूते दधि तथा मधु। रक्तनि करवीराणि तथा रक्त च चन्दनम् ॥

अष्टाङ्ग एव अर्थों वै बहुता परिवर्तितः सतते प्रीतिजननो भास्तुरस्य नराधिप ॥

कनेर, केशर, अगस्त्य, बक तथा कमल-पुष्पोद्घारा यथाशक्ति भगवान् सूर्यकी पूजा करनेवाला कोटि सूर्यके समान देदीश्वर्यमान विमानसे सूर्यलोकको प्राप्त करता है अथवा पृथ्वी

या जलमें उत्पन्न पुष्पोद्घारा श्रद्धापूर्वक पूजन करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १६३)

सूर्यषष्ठी-ब्रतकी महिमा

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! अब आप भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय सूर्यषष्ठी-ब्रतके विषयमें सुनें। सूर्यषष्ठी-ब्रत करनेवालेको जितेन्द्रिय एवं क्रोधघाति होकर अत्याचित-ब्रतका पालन करते हुए भगवान् सूर्यकी पूजामें लत्पर रहना चाहिये। ब्रतीको अल्प और सात्त्विक-भोजी तथा यत्रिभोजी होना चाहिये। ज्ञान एवं अग्रिकार्य करते रहने चाहिये और अथःशायी होना चाहिये। मध्याह्नमें देवताओद्घारा, पूर्वाह्नमें ऋषियोद्घारा, अपराह्नमें पितरोद्घारा और संध्यामें गुह्यकोद्घारा भोजन किया जाता है। अतः इन सभी कालोंका अतिक्रमणकर सूर्यव्रतीके भोजनका समय यत्रि ही माना गया है। मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीसे यह ब्रत आरम्भ करना चाहिये। इस दिन भगवान् सूर्यकी 'अंशुमान्' नामसे पूजा करनी चाहिये तथा रात्रिमें गोमूत्रका प्राशनकर निराहार हो विश्राम करना चाहिये। ऐसा करनेवाला व्यक्ति अतिशय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौष्ट्रमें भगवान् सूर्यकी 'सहस्रोश्' नामसे पूजा करे तथा घृतका प्राशन करे, इससे वाजपेययज्ञका फल प्राप्त होता है। यात्र मासमें कृष्ण पक्षकी षष्ठीको यत्रिमें गोदुष्य-पान करे। सूर्यकी पूजा 'दिवाकर' नामसे करे, इससे महान् फल प्राप्त होता है। फलन्तुन मासमें 'मार्तण्ड' नामसे पूजाकर, गोदुष्यका पान करनेसे अनन्त कालतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वैत्र मासमें भास्करकी 'विवस्वान्' नामसे भक्तिपूर्वक पूजाकर हविष्य-भोजन करनेवाला सूर्यलोकमें अप्सराओंके साथ आनन्द प्राप्त करता है। वैशाख मासमें 'चण्डकिरण' नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे दस हजार वर्षोंका सूर्यलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। इसमें पयोव्रती होकर रहना चाहिये।

ज्येष्ठ मासमें भगवान् भास्करकी 'दिवस्पति' नामसे पूजा कर गो-शुक्रका जल-यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे कोटि गोदानका फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'अक्ष' नामसे सूर्यकी पूजाकर, गोमयका प्राशन करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। श्रावण मासमें 'अर्यमा' नामसे सूर्यका पूजनकर दुष्य-पान करे, ऐसा करनेवाला सूर्यलोकमें दस हजार वर्षोंका आनन्दपूर्वक रहता है। भाद्रपद मासमें 'भास्कर' नामसे सूर्यकी पूजाकर पञ्चगत्य-प्राशन करे, इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। आश्विन मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीमें 'भग' नामसे सूर्यकी पूजा करे, इसमें एक पल गोमूत्रका प्राशन करनेसे अस्तमेष्य यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी षष्ठीको 'शक्र' नामसे सूर्यकी पूजाकर दुर्वाकुरुक्षुका एक बार भोजन करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

कष्टके अन्तमें सूर्य-भक्तियज्ञण आत्मणोंके बशुसंयुक्त पायसका भोजन कराये तथा यथाशक्ति स्वर्ण और वस्त्रादि समर्पित करे। भगवान् सूर्यके लिये काले रंगकी दूध देनेवाली गाय देनी चाहिये। जो इस ब्रतका एक वर्षीयक निरन्तर विधिपूर्वक सम्पादन करता है, वह सभी पापोंसे विनिर्मुक्त हो जाता है एवं सभी कामनाओंसे पूर्ण होकर शाश्वत कालतक सूर्यलोकमें आनन्दित रहता है।

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! इस कृष्ण-षष्ठी-ब्रतको भगवान् सूर्यने अरुणसे कहा था। यह ब्रत सभी पापोंका नाश करनेवाला है। भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनेवाला मनुष्य अमित तेजस्वी भगवान् भास्करके अमित स्थानको प्राप्त करता है। (अध्याय १६४)

उभयसम्मी-ब्रतका वर्णन

सप्तमियोंके जो शालि (शान), गेहूंके आटेसे बने पकाव तथा दूधका यत्रिमें भोजन करता है और जितेन्द्रिय रहता है, सत्य बोलता है तथा दिनभर उपवास करता है, तीनों संध्याओंमें

सुमन्तु मुनिने कहा—राजन् ! अब मैं आपको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्गकी प्राप्ति करनेवाले भगवान् सूर्यके उत्तम ब्रतको बतलाता हूँ। पौष मासके उभयपक्षकी

भगवान् सूर्य तथा अग्निकी उपासना करता है, सभी भोग-पदार्थोंका पारित्याग कर भूमिपर शयन करता है, मास बीतनेपर सप्तमीको घृतादिके द्वारा भगवान् सूर्यको ज्ञान करता है तथा उनकी पूजा करता है, नैवेद्यमें मोटक, पक्का दूध तथा पक्काप्रसाद निवेदित करता है, आठ ब्राह्मणोंको भोजन करता है और भगवान्को कपिला गाय निवेदित करता है, वह कोटि सूर्योंके समान देवीष्यमान उत्तम विमानमें आरूढ़ होकर भगवान् अंशुमालीके परम स्थानको प्राप्त करता है। कपिला गौके तथा उसकी संतानियोंके शरीरमें जितने रोम हैं, उन्हें हजार युग वर्षोंतक वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अपने इक्षीस कुलोंके साथ वह यथेच्छ भोगोक्ता उपभोगकर अन्तमें ज्ञान-योगका समाप्त्यण कर मुक्त हो जाता है।

राजन् ! इस प्रकार मैंने आपको इस संसार-समुद्रसे पार उतारनेवाले सौरधर्ममें मोक्ष-क्रमके उपाय बतलाये। यह

विद्वानोंके लिये समाश्रयणीय है।

इसी प्रकार अन्य महीनोंमें (माससे मार्गशीर्षतक) निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए ब्रत और भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे विभिन्न कामनाओंको पूर्ति होती है तथा सूर्य-लोककी प्राप्ति होती है।

कुरुक्षेत्र ! अहिंसा, सत्य-वचन, असोय, शान्ति, क्षमा, ऋग्जुता, तीनों कालोंमें ज्ञान तथा हवन, पृथ्वी-उत्तर, रात्रिभोजन—इनका पालन सभी ब्रतोंमें करना चाहिये। इन गुणोंका आश्रयणकर उत्तम ब्रतका आचरण करनेवाले व्यक्तिके सभी पाप और भय नष्ट हो जाते हैं एवं रोगोंका नाश हो जाता है और सभी कामनाओंके अनुरूप फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारका सूर्य-ब्रती व्यक्ति अमित तेजस्वी होकर सूर्य-लोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १६५)

निश्चुभार्क-सप्तमी तथा निश्चुभार्क-चतुर्थ्य-ब्रत-माहात्म्य-वर्णन

सुमन् मुनि बोले—राजन् ! जो स्त्री उत्तम पुष्करी आकाशमा रहती है, उसे निश्चुभार्क नामका ब्रत करना चाहिये। यह ब्रत स्त्री एवं पुरुषमें परस्पर प्रीतिवर्धक, अविद्योगकारक और धर्म, अर्थ तथा कामका साधक है। इस ब्रतको पष्टी, सप्तमी, संक्रान्ति या गविवारके दिन करना चाहिये। भगवान् सूर्यके सहित उनकी पत्नी महादेवी निश्चुभार्की दौ-रूपमें काँस्य, रजत तथा स्वर्णकी सुन्दर प्रतिमा बनवाये। उसे घृतादिसे ज्ञान कराकर गन्य-माल्यादि तथा वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर प्रतिमा स्थापित किये उस वितान और छवरसे शोभित पात्रको सिरपर रखकर भगवान् सूर्यके मन्दिरमें ले जाय। उसे प्रतिमाको एक वेदीपर स्थापित करे और प्रदक्षिणापूर्वक उसे नमस्कार कर क्षमा-याचना करे एवं उपवास रहकर हृतिके द्वारा हवन करे। फिर सूर्य-भक्त ब्राह्मणोंको शुक्ल वस्त्र पहनाकर भोजन कराये। इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति देवीष्यमान महायानसे सूर्यलोकमें सूर्यभक्तोंके साथ आनन्द प्राप्त करता है, फिर वह अनन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

सुमन् मुनि बोले—राजन् ! जो स्त्री सौभाग्यकी

आकाशसे संयतेन्द्रिय होकर पष्टी अथवा सप्तमीको एक वर्षतक भोजन नहीं करती और वर्षके अन्तमें निश्चुभा तथा सूर्यकी प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक ज्ञानादि पूर्वोक्त क्रियाएँ करती है, वह पूर्वोक्त फलोंको प्राप्त करती है तथा चारों द्वारोंसे सुशोभित स्वर्णमय यानके द्वारा रमणीय सूर्यलोकमें जाकर सभी फलोंको प्राप्त कर सौर आदि सभी लोकोंमें अभीप्सित फलका उपभोग कर इस लोकमें जन्म ग्रहण करती है तथा राजा को पतिरूपमें प्राप्त करती है।

इसी प्रकार जो नारी कृष्ण पक्षकी सप्तमीको उपवास कर वर्षके अन्तमें शालिके चूर्णसे सुन्दर निश्चुभार्ककी प्रतिमाका निर्माण करके पीत रंगकी मालासे और पीत वस्त्रोंसे उनकी पूजा करती है तथा ये सभी कर्म सूर्यको निवेदित करती है, वह हाथी-दाँतके समान कान्तिवाले महायानसे सातों लोकोंमें गमनकर, सौ करोड़ वर्षोंतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होती है। नरशेष्ठ ! सौर आदि लोकोंमें भोगोक्ता उपभोगकर क्रमशः इस लोकमें जन्म ग्रहण करती तथा अभीप्सित धन-धन्य-समन्वित मनोज्ञुकूल पतिको प्राप्त करती है^३।

जो दृढ़वर्ती नारी मात्र मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको

३-चतुर्थ्यविनामणि (हेमादि)के ब्रत-खण्डमें भविष्यपुराणके नामसे निश्चुभार्क-चतुर्थ्य-नामक इस ब्रतका संवाह हुआ है। उपलब्ध

सभी भोगोक्ता परित्याग कर एक वर्षतक प्रलयेक सप्तमीको उपवास करती और वर्षके अन्तमें गच्छादि पर्दार्थ निशुभार्कको निवेदित करती है तथा मागकी लियोको भोजन करती है, वह गच्छार्वसे सुशोभित विचित्र दिव्य महायानद्वारा सूर्यलोकमें जाकर अनेक सहस्र वर्षोंतक निवास करती है। वहाँ यथेष्ट सभी भोगोक्ता उपधोग कर इस लोकमें आनेपर गजाको पति-रूपमें वरण करती है।

राजन् ! जो स्त्री पाप और भयका नाश करनेवाले इस

निशुभार्क-ब्रतको करती है, वह परमपद प्राप्त करती है। एक वर्षतक परम श्रद्धाके साथ इस ब्रतको सम्पन्न कर वर्षान्तमें भोजक-दम्पतिको भोजन कराये और गच्छ-माल्य, सुन्दर वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करे। ताप्रमय पात्रमें हीरसे अलंकृत निशुभार्ककी सुवर्णामयी प्रतिमा भोजक-दम्पतिको निवेदित करे। देवी निशुभा भोजकी हैं और अर्के भोजक हैं। अतः उन दोनोंकी विधिवत् श्रद्धापूर्वक पूजा करनी चाहिये।

(अध्याय १६६-१६७)

कामप्रद रुदी-ब्रतका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! जो स्त्री कार्तिक मासके दोनों पक्षोंकी पष्ठी एवं सप्तमी तिथियोंमें क्षमा, अहिंसा आदि नियमोंका पालन कर, संयतेन्द्रिय होती हुई एकभुक्त रहती एवं उपवास करती है और गुड़-धीसे युक्त शालि-अन्न श्रद्धाके साथ भगवान् सूर्यको अर्पित करती है तथा कर्वीरके पुण्य और धूतके साथ गुण्गुल निवेदित करती है, वह स्त्री इन्द्रनीलके समान सार्वकालिक विमानपर बैठकर दस लक्ष वर्षोंतक सूर्यलोकमें आनन्दमय जीवन व्यतीत करती है। सभी लोकोंके भोगोक्ता भोगकर क्रमशः इस लोकमें आकर जन्म प्राप्त करती है तथा अभीप्ति पतिको प्राप्त करती है। इस प्रकार वर्षभरके सभी ब्रतोंकी विधि समान कही गयी है। एक समय भोजन

और उपवासका समान ही फल होता है। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, सूर्यपूजा, अग्नि-हवन, संतोष तथा अचौर्यब्रत—ये दस सभी ब्रतोंके लिये सामान्य (आवश्यक) धर्म (अङ्ग) हैं।

इसी तरह मार्गशीर्ष आदि मासोंमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करते हुए सूर्यकी पूजा करनेसे अभ्युदयकी प्राप्ति होती है, साथ ही सहस्रों वर्षोंतक सूर्यलोकका सुख भोगकर वह नारी अन्तमें गजपत्नी बनती है।

जो कोई भी पुण्य या स्त्री अथवा नपुंसक भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं वे सभी अपने मनोउन्नकूल फल प्राप्त करते हैं। (अध्याय १६८)

भगवान् सूर्यके निमित्त गृह एवं रथ आदिके दानका माहात्म्य

सुमन्तु मुनि बोले—राजन् ! अपने वित्तके अनुसार यिही, लकड़ी, पत्थर तथा पक्के हुए ईंटोंसे जो मठ या गृहकम निर्माण कर उसे सभी उपकरणोंसे युक्त करके भगवान् सूर्यके लिये समर्पित करता है वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। माघ मासमें तन्द्रारहित होकर एक-भुक्तव्रत करे और मासके अन्तमें एक रथका निर्माण करे जो विचित्र वस्त्रसे सुशोभित, चार श्वेत अङ्गोंसे अलंकृत, श्वेत ध्वज, पताका एवं छत्र, चापर, दर्पणसे युक्त हो। उस रथपर छाई सेर चावलके चूर्णसे सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण कर उसे संज्ञा देवीके साथ

रथके पिछले भागमें (जहाँ रथी बैठता है) स्थापित कर शहू, भेरी आदि ध्वनियोंके साथ गत्रिमें रगमार्गमें उस रथको धूपाकर क्रमशः धैरि-धैरि सूर्य-मान्दरमें ले जाय। वहाँ जागरण एवं पूजा करे तथा दीपक एवं दर्पण आदिसे अलंकृत कर गत्रि व्यतीत करे। प्रातः मधु, क्षीर और धूतसे उस प्रतिमाको खान कराकर दीन, अन्य एवं अनाथोंको अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराकर दक्षिणा दे और संवाहनसे युक्त रथ भगवान् भास्करको निवेदित करे तथा अपने बन्धुओंके साथ भोजन करे।

प्रतिष्ठापुण्यमें पाठना नुजल अंश कम है, जिसे हेमादिके अधारपर यहाँ दिया जा रहा है—

जो नारी एक वर्षतक सप्तलोकन्द्रिय होकर सप्तमीको नियाहार ब्रत रखती है और जिसकी कर्णिकारैं सूर्यर्णकी हो ऐसे चार्दीके कमलवत्तो, पिण्डमय गजकर निर्माणकर उसकी पीठपर स्थापित कर वर्षान्तमें उसका दान करती है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। शेष पूजन पूर्वोक्त विधिसे ही करना चाहिये। इससे वह पुण्यकृपासे सभी सीरादि लोकोंमें भ्रमण करते हुए पृथ्वीलोकमें आकर कुलीन तथा रूपसम्पन्न महाबली गजाको पतिरूपमें प्राप्त करती है।

मन्त्र और धर्मसे समन्वित अपने सभी ब्रह्मोमें श्रेष्ठ यह सूर्यस्थ-ब्रह्म समस्त कामनाओं तथा अर्थकी सिद्धि करनेवाला है। सभी ब्रह्मोंके पुण्य और सभी यज्ञोंके फल इसी ब्रह्मके

करनेसे प्राप्त हो जाते हैं। जो भगवान् सूर्यके निमित्त एक सखत्सा गौ दान करता है, वह सप्तशूष्टिकी वसुन्धराके दानका फल प्राप्त करता है। (अध्याय १६९-१७०)

सौरधर्ममें सदाचरणका वर्णन

सुमन्तु मुनि बोले—एजन्! अब मैं सौरधर्मसे सम्बद्ध सदाचारोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ। सूर्य-उपासकको भूत्ये-प्यासे, दीन-दुःखी, थके हुए, मलिन तथा रोगी व्यक्तिका अपनी शक्तिके अनुसार पालन और रक्षण करना चाहिये, इससे सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। परित, नीच तथा चाष्टाल और पक्षी आदि सभी प्राणियोंको अपनी शक्तिके अनुसार दी गयी थोड़ी भी वस्तु करुणाके कारण दिये जानेसे अक्षय-फल प्रदान करती है, अतः सभी प्राणियोंपर दया करनी चाहिये। जो मधुर वाणी बोलता है, उसे इस लोके तथा परलोकमें सभी सुख प्राप्त होते हैं। अमृत प्रवाहित करनेवाली प्रिय वाणी चन्दनके स्पर्शकी समान शीतल होती है। धर्मसे युक्त वाणी बोलनेवालेको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।^१ प्रिय वाणी स्वर्गका अचल सोषान है, इसकी तुलनामें दान, पूजन, अध्यापन आदि सब व्यर्थ हैं। अतिथिके आनेपर सादर उससे कुशाल-प्रश्न करना चाहिये और यात्राके समय 'आपका मार्ग मङ्गलमय हो, आपको सभी क्रान्तिके साधक सुख नित्य प्राप्त हो'—ऐसा कहना चाहिये। सभी समय ऐसे आशीर्वादात्मक वचन बोलने चाहिये। नमस्कारात्मक वाक्यमें 'स्वस्ति', मङ्गल-वचन तथा सभी क्रमें 'आपका नित्य कल्याण हो', ऐसा कहना चाहिये। इस प्रकारके आचरणोंका अनुष्ठान करके व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मनुष्योंको जैसी भक्ति भगवान् सूर्यमें हो जैसी ही भक्ति सूर्यभक्तोंके प्रति भी रखनी चाहिये। किसीके द्वारा आक्रोश करने या ताङित होनेपर जो न आक्रोश करता है, न ताङन करता है, वाणीमें अधिकार होनेके कारण ऐसा क्षमाशील एवं शान्त व्यक्ति सदा दुःखसे रहित होता है। सभी तीर्थोंमें क्षमा

सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये सभी क्रियाओंमें क्षमा धारण करना चाहिये। ज्ञान, योग, तप एवं वज्र-दानादि सत्क्रियाएँ, क्रोधी व्यक्तिके लिये व्यर्थ हो जाती हैं, इसलिये क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये^२। अप्रिय वाणी घर्ष, अस्थि, प्राण तथा हृदयको जलानेवाली होती है, इसलिये अप्रिय वाणीका कपी प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्षमा, दान, तेजस्विता, सत्य, शम, अहिंसा—ये सब भगवान् सूर्यकी कृपासे ही प्राप्त होते हैं।

सुमन्तु मुनि पुनः बोले—महाराज! अब आप आदित्यसम्मत सौर-धर्मके पुनः सुनें। यह सौर-धर्म यापनाशक, भगवान् सूर्यको प्रिय तथा परम पवित्र है। यदि मार्गमें कहीं रविकी पूजा-अर्चा होती देखे तो यह समझना चाहिये कि वहाँ भगवान् सूर्यदेव त्वयं प्रत्यक्ष उपस्थित है। भगवान् सूर्यका मन्दिर देखकर वहाँ भगवान् सूर्यको नमस्कार करके ही वहाँसे आगे जाना चाहिये। देव-पर्व, उत्सव, श्राद्ध तथा पुण्य दिनोंमें विविधरूपक भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। देवगण तथा पितृगण सूर्यका आश्रयण करके ही स्थित हैं। भगवान् सूर्यके प्रसन्न होनेपर निःसंदेह सभी प्रसन्न हो जाते हैं। सौर-धर्मके अनुष्ठानसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा उससे वैराग्य। ज्ञान और वैराग्यसे सम्पूर्ण व्यक्तिकी सूर्योगमें प्रवृत्ति होती है। सूर्यके योगसे वह सर्वज्ञ एवं परिपूर्ण हो जाता है तथा अपनी आत्मामें अवस्थित होकर सूर्यके समान स्वर्गमें आनन्द-लाभ करता है।

ब्रह्मचर्य, तप, मौन, क्षमा तथा अल्पाहार—ये तपस्वियोंके पाँच विशिष्ट गुण हैं। भाष्य या अन्य विशिष्ट मार्गमें तथा न्यायपूर्वक प्राप्त धन गुणवान् व्यक्तिको देना ही दान है। हजारों सप्त-राशियोंको उत्पत्र करनेवाली जल-युक्त उर्वरा भूमिका दान भूमिदान कहा जाता है। सभी दोषोंसे रहित,

१-न हीदृक् स्वर्णजनाय यथा लेके प्रिय वचः। इहमुत्र सुखं तेषां कामयोः मधुरा भवेत्॥

अमृतस्यन्दिनीं वाचं चन्दनस्पर्शीतलतम्। धर्माविशेषिनोमुक्त्वा मुखमक्षयमाप्नुयात्॥ (ब्राह्मपर्व १७१। ३८-३९)

२-सर्वेषामेव तीर्थानि परमपूजिता। तस्मात्पूर्वै प्रयत्नेन धानिः कार्यं क्रियासु यै॥

ज्ञानयोगात्मो यस्य यज्ञदानानि सत्क्रिया। क्रोधानस्य वृथा यमात् तस्मात् क्रोधं विवर्तयेत्॥ (ब्राह्मपर्व १७१। ४७-४८)

कुलीन, अलंकृता कन्या निर्धन विद्वान् द्विजको देना कन्यादान कहा जाता है। मध्यम या उत्तम नवीन वस्त्रका दान वस्त्रदान कहा जाता है। एक मासमें दो सौ चालीस ग्रामोंका^१ भक्षण करना चान्द्रायण^२-व्रत कहलाता है। सभी शास्त्रोंके ज्ञाता तथा तपस्यापरायण जितेन्द्रिय ऋषियों एवं देवोंसे सेवित जल-स्थान तीर्थ कहा जाता है। सूर्यसम्बन्धी स्थानोंको पुण्य-क्षेत्र कहा जाता है। उन सूर्यसम्बन्धी क्षेत्रोंमें मरनेवाला व्यक्ति सूर्य-सायुज्यको प्राप्त करता है। तीर्थोंमें दान-देनेसे, उद्घान लगाने एवं देवालय, धर्मशाला आदि बनवानेसे अक्षय फल प्राप्त होता

है। क्षमा एवं निःसृहता, दया, सत्य, दान, शील, तप तथा अध्ययन—इन आठ अङ्गोंसे युक्त व्यक्ति श्रेष्ठ पात्र कहा जाता है। भगवान् सूर्यमें भक्ति, क्षमा, सत्य, दासों इन्द्रियोंका विनिश्चल तथा सभीके प्रति मैत्रीभाव रखना सौर-धर्म है।

जो भक्तिपूर्वक भविष्यपुराण लिखवाता है, वह सौ कोटि युग वर्षोंतक सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो सूर्यमन्दिरका निर्माण करवाता है, उसे उत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १७१-१७२)

सौर-धर्मकी महिमाका वर्णन, ब्रह्माकृत सूर्य-सुति

राजा शतानीकने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आप सौर-धर्मका पुनः विस्तारसे वर्णन कीजिये ।

सुमन्तु मुनि ओले—महाबाहो ! तुम धन्य हो, इस लोकमें सौर-धर्मका प्रेमी तुम्हारे समान अन्य कोई भी राजा नहीं है। इस सम्बन्धमें मैं आपको प्राचीन कालमें गहड़ एवं अरुणके बीच हुए संवादको पुनः प्रस्तुत कर रहा हूँ। आप इसे व्यानपूर्वक सुनें।

अरुणने कहा—खगश्रेष्ठ ! यह सौर-धर्म अज्ञान-सागरमें निमग्न समस्त प्राणियोंका उद्धार करनेवाला है। पश्चिम ! जो लोग भक्तिभावसे भगवान् सूर्यका स्मरण-कीर्तन और भजन करते हैं, वे परमपदको प्राप्त होते हैं। स्वगाधिप ! जिसने इस लोकमें उच्च ग्रहणकर इन देवेश भगवान् भास्करकी उपासना नहीं की, वह संसारके क्षेत्रोंमें ही निमग्न रहता है। मनुष्य-जीवन परम दुर्लभ है, इसे प्राप्त कर जिसने भगवान् सूर्यका पूजन किया, उसीका जन्म लेना सफल है। जो ब्रह्मा-भक्तिसे भगवान् सूर्यका स्मरण करता है, वह कभी किसी प्रकारके दुःखका भागी नहीं होता।

जिन्हे महान् भोगोंके सुख-प्राप्तिकी कामना है तथा जो

गृज्यासन पाना चाहते हैं अथवा स्वर्गीय सौभाग्य-प्राप्तिके इच्छुक हैं एवं जिन्हे अतुल कल्पि, भोग, त्याग, यश, श्री, सौन्दर्य, जगत्की रुचाति, कीर्ति और धर्म आदिकी अभिलापा है, उन्हें सूर्यकी भक्ति करनी चाहिये।

जो परम ब्रह्म-भावसे भगवान् सूर्यकी आराधना करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। विविध आकारवाली डाकिनियाँ, पिशाच और राक्षस अथवा कोई भी उसे कुछ भी पीड़ा नहीं दे सकते। इनके अतिरिक्त कोई भी जीव उसे नहीं सत्ता सकते। सूर्यकी उपासना करनेवाले मनुष्यके शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें संग्राममें विजय प्राप्त होती है। वीर ! वह नीरोग होता है। आपत्तियाँ उसका स्वर्णतक नहीं कर पातीं। सूर्योपासक मनुष्यकी धन, आयु, यश, विद्या और सभी प्रकारके कल्याण-मङ्गलको अभिवृद्धि होती रहती है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

ब्रह्मजीने भगवान् सूर्यकी आराधना कर ब्राह्म-पदकी प्राप्ति की थी। देवोंके हीश भगवान् विष्णुने विष्णुत्व-पदको सूर्यके अर्चनसे ही प्राप्त किया है। भगवान् शंकर भी भगवान् सूर्यकी आराधनासे ही जगत्राथ कहे जाते हैं तथा उनके

१-सूक्ष्म पक्षमें प्रतिदिन एक-एक व्रासकी वृद्धि तथा कृष्ण पक्षमें एक-एक ग्रासकी न्यूनताके नियमका पालन करनेसे दो सौ चालीस ग्रास एक मासमें होते हैं।

२-चान्द्रायणके मुख्य तीन भेद हैं—यव-मध्य, पिण्डीलिङ्ग-मध्य और शिशु-चान्द्रायण। यव-मध्यमें सूक्ष्म पक्षकी प्रतिपत्तिसे उत्तम जर पूर्णिमाको पंद्रह ग्रासमें लेकर क्रमशः घटाते हुए अपासाम्याको समाप्त कर दिया जाता है। पिण्डीलिङ्गमें पूर्णिमाको ग्रासमें क्रमशः एक-एक ग्रास घटाते हुए अपासाम्याको उपकास कर फिर पूर्णिमाको पूरा किया जाता है और शिशु या सामान्य चान्द्रायणमें प्रतिदिन आठ ग्रास लिया जाता है। इस प्रकार तीस दिनोंमें दो सौ चालीस ग्रास हो जाता है।

प्रसादसे ही उन्हें महादेवत्व-पद प्राप्त हुआ है एवं उनकी सी आराधनासे एक सहस्र नेत्रोवाले इन्द्रने भी इन्द्रत्वको प्राप्त किया है। मातृवर्ग, देवगण, गम्भीर, पिशाच, उरग, राक्षस और सभी सुरोंके नायक भगवान् सूर्यकी सदा पूजा किया करते हैं। यह समस्त जगत् भगवान् सूर्यमें ही नित्य प्रतिष्ठित है। जो मनुष्य अन्यकरणनाशक भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता, वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अधिकारी नहीं है। पक्षिश्रेष्ठ ! आपत्तिग्रस्त होनेपर भी भगवान् सूर्यकी पूजा सदा करणीय है। जो मनुष्य भगवान् सूर्यकी पूजा नहीं करता, उसका जीवन व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्तिको देवाधिदेव भगवान् सूर्यकी पूजा-उपासना करके ही भोजन करना चाहिये। जो सूर्यभक्त है, वे समस्त इन्द्रोंके सहन करनेवाले, वीर, नीति-विधि-युक्तचित्, परोपकारपरायण तथा गुरुकी सेवामें अनुरक्त रहते हैं। वे अमानी, चुदिमान्, असक्त, अस्पर्धावाले, त्रिःसूह, शान्त, स्वाधानन्द, भद्र और नित्य स्वागतवादी होते हैं। सूर्यभक्त अल्पभाषी, शूर, शास्त्रमार्मज, प्रसवमनस्क, शौचाचारसम्पन्न और दाक्षिण्ययुक्त होते हैं।

सूर्यके भक्त दध्म, मत्सरता, तृष्णा एवं लोभसे वर्जित हुआ करते हैं। वे शाठ और कुसित नहीं होते। जिस प्रकार कमलका पत्र जलसे निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार सूर्यभक्त मनुष्य विषयोंमें कभी लिप्त नहीं होते। जबतक इन्द्रियोंकी

शक्ति क्षीण नहीं होती, तबतक भगवान् सूर्यकी आराधना सम्पन्न कर लेनी चाहिये; क्योंकि मानव असमर्थ होनेपर इसे नहीं कर सकता और यह मानव-जीवन यो ही व्यर्थ चला जाता है। भगवान् सूर्यकी पूजाके समान इस जगत्में अन्य कोई भी धर्मका कार्य नहीं है। अतः देवदेवेश भगवान् सूर्यका पूजन करे। जो मानव भक्तिपूर्वक शान्त, अज, प्रभु, देवदेवेश सूर्यकी पूजा किया करते हैं, वे इस लोकमें सुख प्राप्त करके परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। सर्वप्रथम ब्रह्माजीने अपने परम प्रह्लाद अन्तर्गतासे भगवान् सूर्यकी पूजा कर अङ्गुलि वाँध कर जो स्तोत्र^३ कहा था, उसका भाव इस प्रकार है—

'पदैश्वर्यसम्पन्न, शान्त-चित्तसे युक्त, देवोंके मार्ग-प्रणेता एवं सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् सूर्यको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। जो देवदेवेश शाश्वत, शोभन, शुद्ध, दिवस्पति, विश्वभानु, दिवाकर और ईशोंकी भी ईश है, उनको मैं प्रणाम करता हूँ। समस्त दुःखोंके हर्ता, प्रसन्नवदन, उत्तमाङ्ग, वरके स्थान, वर-प्रदाता, वरद तथा वरेण्य भगवान् विभावसुको मैं प्रणाम करता हूँ। अर्क, अर्यमा, इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेशर, देवरत और विभावसु नामधारी भगवान् सूर्यको मैं प्रणाम करता हूँ।' इस सुनिका जो नित्य श्रवण करता है, वह परम कीर्तिके प्राप्तकर सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १७३-१७४)

सौर-धर्ममें शान्तिक कर्म एवं अधिषेक-विधि

गरुडजीने पूछा—अरुण ! जो आधि-व्याधिसे पीड़ित एवं रोगी, दुष्ट मह तथा शत्रु आदिसे उत्पीड़ित और विनायकसे गृहीत हैं, उन्हें अपने कल्याणके लिये क्या करना चाहिये ? आप इसे अतलानेकी कृपा करें।

अरुणजी बोले—विधि रोगोंसे पीड़ित, शत्रुओंसे संतप्त व्यक्तियोंके लिये भगवान् सूर्यकी आराधनाके अतिरिक्त अन्य कोई भी कल्याणकारी उपाय नहीं है, अतः प्रह्लादके घात

और उपघातके नाशक, सभी रोगों एवं राज-उपद्रवोंको शमन करनेवाले भगवान् सूर्यकी आराधना करनी चाहिये।

गरुडजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ ! ब्रह्मवादिनीके शापसे मैं पंखविहीन हो गया हूँ, आप मेरे इन अङ्गोंको देखें। मेरे लिये अब कौन-सा कार्य उपयुक्त है ? जिससे मैं पुनः पंखयुक्त हो जाऊँ।

अरुणजी बोले—गरुड ! तुम शुद्ध-चित्तसे अन्यकरणको

१- भगवन्ते भगवते शान्तित्पनुतम् । देवमार्गप्रलेतारे
शाश्वते शोभने शुद्ध विश्वभानुं दिवस्पतिम् । देवदेवेशमोशो
सर्वतु-खहरं देवं सर्वतु-खहरं र्गवम् । वरगने वरगङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥
वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । अर्कमर्यमणं चन्द्रं विष्णुमोशो दिवाकरम् ॥
देवेशरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । य इदं शृणुयामित्य व्रह्मणोक्तं सर्वं परम् ।

यह कीर्ति परी प्राप्य पुनः सूर्यपुणे ब्रजेत् ॥

(ब्रह्मपर्व १७४ । ३६—४०)

दूर करनेवाले जगन्नाथ भगवान् भास्करकी पूजा एवं हवन करो ।

गरुडजीने कहा— मैं विकलङ्घ होनेसे भगवान् सूर्यकी पूजा एवं अग्रिकार्य करनेमें असमर्थ हूँ । इसलिये मेरी शान्तिके लिये अग्रिका कार्य आप सम्पादित करें ।

अरुणजी बोले— विनतानन्दन ! महाव्याधिसे प्रपीडित होनेके कारण तुम इसके सम्पादनमें समर्थ नहीं हो, अतः मैं तुम्हरे रोगकी शान्तिके लिये पावकार्चन (अग्रिहोम) करूँगा । यह लक्ष-होम सभी पापों, विद्वां तथा व्याधियोंका नाशक, महापुण्यजनक, शान्ति प्रदान करनेवाला, अपमृत्यु-निवारक, महान् शुभकारी तथा विजय प्रदान करनेवाला है । यह सभी देवोंको तुमि प्रदान करनेवाल तथा भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय है ।

इस पावकार्चनमें सूर्य-मन्दिरके अग्रिकोणमें गोमयसे भूमिको लीपकर अग्रिकी स्थापना करे और सर्वप्रथम दिक्पालोंको आहुति प्रदान करें ।

खगशेषु ! इस प्रकार विधिपूर्वक आहुतियाँ प्रदान करनेके अनन्तर 'ॐ धूर्मुखः स्वाहा' इसके द्वारा लक्ष हवनका सम्पादन करे । सौर-महाहोममें यही विधि कही गयी है । भगवान् भास्करके उद्देश्यसे इस अग्रिकार्यको करे । यह सभी लोकोंकी सभी प्रकारकी शान्तिके लिये उपयोगी है ।

हवनके अनन्तर शान्तिके लिये निर्दिष्ट मन्त्रोंका पाठ करते हुए अभिवेक करना चाहिये । सर्वप्रथम ग्रहोंके अधिपति भगवान् सूर्य तथा सोमादि ग्रहोंसे शान्तिकी प्रार्थना करें ।

'रक्त कमलके समान नेत्रोंवाले, सहस्रकिरणोंवाले, सात

१- अक्षरदेहरूपाय रत्नक्षय महामने । धराधरय शान्ताय सहस्राक्षिणाय च ॥

'अधोमूलक्षय खेताय स्वाहा'—इससे प्रथम आहुति दे ।

चतुर्मुखाय शान्ताय पद्मासनगताय च ॥ पद्मर्णाय वेदाय कमण्डलुक्षय च ॥

'कुर्वन्मुखाय स्वाहा'—इससे द्वितीय आहुति दे ।

हेमवर्णाय देहाय ऐष्वर्णगताय च । सहस्राक्षशुरीणय पूर्विद्युमुखाय च ॥

'पूर्ववदनाय स्वाहा'—इससे तृतीय आहुति दे ।

दीपाय व्यक्तदेहाय ज्वालामालाकुलाय च । इन्द्रीलोभदेहाय सर्वार्णिण्यक्षय च ॥

यमाय वर्मणाय दक्षिणाशमुखाय च ।

'कृष्णाम्बरधराय स्वाहा'—इससे चौथी आहुति दे ।

नीलजीमूलकर्णाय रत्नाम्बरधराय च । मुख्यकलशरीणय पिङ्गलाय महामने ॥

शुक्रवर्त्ताय पीताय दिव्याशशरूपाय च ।

'पश्चिममुखाय स्वाहा'—इससे पांचवीं आहुति दे ।

कृष्णपिङ्गलनेत्राय वाक्याभिमुखाय च । नीलकर्णाय वीराय तथा चेन्त्राय वेषसे ॥

'पवनाय स्वाहा'—इस मन्त्रसे छठी आहुति दे ।

गण्डाहस्ताय सूर्याय विश्वसराजूषणाय च । महोदयाय शान्ताय स्वाहाधिपतये तथा ॥

'उत्तरमध्युक्षय महादेवश्रियाव स्वाहा'—इससे सातवीं आहुति दे ।

खेताय खेतवर्णाय विज्ञाक्षय महामने । शान्ताय शान्तरूपाय पिङ्गलवरधारिणे ॥

'ईश्वनभिमुखायेशाय स्वाहा'—इससे आठवीं आहुति दे ।

[यह दश दिव्याल-होम प्रतीत होता है, किन्तु पाठको गडबडीमें आप्रेय तथा नैर्वह्यवेळेवरीक आहुतियोंका लक्षण अस्पष्ट है ।]

२- शान्तपूर्वी सर्वदेवकानन्दे ततः शान्तिकमाप्तेत् । सिद्धूत्सनरक्तमः

रत्नवर्त्तामलेवनः ॥

सहस्रकिरणो देवः समाप्तरघवाहनः । गर्भस्त्रिमाली भगवान् सर्वदेवनमस्तुतः ॥

कर्णेतु ते महाशानिं ग्रहीयानिवारिणाम् । विक्रत्रघारुद अप्यो सहमये तु च ॥

दशध्यवाहनो देव आप्रेयक्षमूलशक्तः । शीतोशसमूलक्षय च शयवृद्धिसम्भितः ॥

सोमः सौर्येन भावेन ग्रहपीढी व्यपोहतु ॥

पद्मरागनिभो भौमो मधुसूक्ष्मलेवनः । अङ्गारकोऽग्रिसमदृशो ग्रहपीढी व्यपोहतु ॥

पुष्परागनिभेनो देवः परिपिङ्गलः । पीतमाल्याम्बरधरो सुधः पीडो व्यपोहतु ॥

अस्थोसे युक्त रथपर आरुङ्, सिन्दूरके समान रक्त आभावाले, सभी देवताओंद्वारा नमस्कृत भगवान्, सूर्य ग्रहपीडा निवारण करनेवाली महाशान्ति आपको प्रदान करें। शीतल विरणोंसे युक्त, अमृताला, अत्रिके पुत्र चन्द्रदेव सौम्यभावसे आपकी ग्रहपीडा दूर करें। पद्मशारगके समान वर्णवाले, मधुके समान पिङ्गल नेत्रवाले, अग्निसदृश अङ्गारक, भूमिपुत्र भौम आपकी ग्रहपीडा दूर करें। पुष्परागके समान आभायुक्त, पिङ्गल वर्णवाले, पीत माल्य तथा वस्त्र धारण करनेवाले बुध आपकी पीडा दूर करें। ताप स्वर्णके समान आभायुक्त, सर्वशास्त्र-विशारद, देवताओंके गुरु बृहस्पति आपकी ग्रहपीडा दूर कर आपको शान्ति प्रदान करें। हिम, कुन्दपुष्प तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ वर्णवाले, देव्य तथा दानवोंसे पूजित, सूर्यार्चनमें तत्पर रहनेवाले, महापति, नीतिशास्त्रमें पारद्वय शुक्राचार्य आपकी ग्रहपीडा दूर करें। विविध रूपोंके धारण करनेवाले, अविज्ञात-गति-युक्त, सूर्यपुत्र शनैश्चर, अनेक शिखरोंवाले केन्तु एवं राहु आपकी पीडा दूर करें। सर्वदा कल्याणकी दृष्टिसे देखनेवाले तथा भगवान् सूर्यकी नित्य अर्चना करनेमें तत्पर ये

सभी ग्रह प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें।' तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन त्रिदेवोंसे इस प्रकार शान्तिकी प्रार्थना करें— 'पद्मासनपर आसीन, पदवर्ण, पदापत्रके समान नेत्रवाले, कमण्डलुधारी, देव-गच्छयोंसे पूजित, देवतिरोधणि, महातेजसी, सभी लोकोंके स्थापी, सूर्यार्चनमें तत्पर चतुर्मुख, दिव्य ब्रह्म शब्दसे सुशोभित ब्रह्माजी आपको शान्ति प्रदान करें। पीताम्बर धारण करनेवाले, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाले चतुर्भूज, श्यामवर्णवाले, यज्ञस्वरूप, आत्रेयीके पति तथा सूर्यके ध्यानमें तल्लीन माधव मधुसूदन विष्णु आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। चन्द्रमा एवं कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले, सर्पादि विशिष्ट आभरणोंसे अलंकृत, महातेजसी, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, समस्त विष्णुमें व्याप्त, इमशानमें रहनेवाले, दक्ष-यज्ञ विध्येस करनेवाले, वरणीय, आदित्यके देहसे सम्पूर्त, वरदानी, देवाधिदेव तथा भस्म धारण करनेवाले महेश्वर आपको शान्ति प्रदान करें।'

तस्मैरिकसंकाशः सर्वशस्त्रविशारदः । सर्वदिवगुरुर्विश्रो त्रूपर्वणवर्गे मुनिः ॥
बृहस्पतिर्तीर्ति खात अर्थशास्त्रपत्र यः । शास्त्रे चेतसा सोऽप्त्रि परेण सुममहितः ॥
ग्रहपीडा विनिर्विष्व करेतु तत्र शत्यकम् । सूर्यार्चनयो नित्यं प्रसदाद्भास्त्रस्त्रपत्र तु ॥
हिमकुन्देन्दुवर्णाभो देवदानवपूजितः । महेश्वरातो भीमम् महासौरे महापतिः ॥
सूर्यार्चनयो नित्यं शुक्रः शुक्रनिभस्त्रात् । नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडा व्यपोहतु ॥
नारायणघोरज्यक अविज्ञातगतिश्च यः । नेतृत्वनिर्जयते वस्य लोद्यपीडितैषि ॥
एकचूले द्विचूलष विद्विषः पञ्चचूलकः । सहस्रशिरकपल्ल चन्द्रेन्दुर्लिपि लिपतः ॥
सूर्यपुत्रश्चित्पुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुशिशास्त्रकः । अनेकशिशास्त्रः केन्तु स ते पीडो व्यपोहतु ॥
एष ग्रह महात्मानः सूर्यार्चनयोः सदा । शान्तिं कुर्वन्तु ते हषाः सदाकर्णे हितेक्षणाः ॥

(ब्रह्मपर्व १७५ । ३६—५०)

१-पद्मासनः पदवर्णः पदापत्रनिभेदज्ञः । कमण्डलुधारः श्रीमान् देवगच्छपूजितः ॥
चतुर्भूजो देवपतिः सूर्यार्चनपत्रः सदा ।
सुरज्योऽग्ने महातेजाः सर्वलेकप्रजापतिः । ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्म शान्ति करेतु ते ॥
पीताम्बरधरो देव आत्रेयीदिविषः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्विश्वः ॥
यज्ञदेवः क्रमो देव आत्रेयीदिविषः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्विश्वः श्यामवर्णशत्रुघ्निः ॥
सूर्यार्चनविदाः नित्यं विनिर्विष्वगतिश्च । सूर्यार्चनयो नित्यं विष्णुः शान्ति करेतु ते ॥
शशिकुन्देन्दुवर्णवशो विभुत्वाभस्त्रैर्विषः । चतुर्भूजो महातेजाः पुण्यार्घ्यकाशेश्वरः ॥
चतुर्मुखो भस्मधरः इमशानविलयः सदा । गोत्रातिर्विकल्पस्तथा च क्रमदूषणः ॥
यतो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः । आदित्यदेवसम्पूर्तः स ते शान्ति करेतु तैः ॥

(ब्रह्मपर्व १७६ । १—८)

तदनन्तर सभी मातृकाओंसे शान्तिके लिये प्रार्थना करें—

‘पद्मरागके समान आभावाली, अक्षमाला एवं कमण्डलु धारण करनेवाली, आदित्यकी आराधनामें तथा आशीर्वाद देनेमें तत्पर, सौम्यवदनवाली ब्रह्माणी प्रसन्न होकर तुम्हें शान्ति प्रदान करें। हिम, कुण्ड-पुष्प तथा चन्द्रमाके समान वर्णवाली, महावृषभपर आरूढ़, हाथमें शिशूल धारण करनेवाली, आशुर्यजनक आभरणोंसे विश्रुत, चतुर्मुजा, चतुर्विक्री तथा त्रिनेत्रधारिणी पापोंका नाश करनेवाली, वृषभध्वज शंकरकी अर्चनामें तत्पर, महाश्वेता नामसे विश्वात आदित्यदयिता रुद्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। सिन्दूरके समान अरुण विप्रहवाली,

सभी अलंकारोंसे विभूषित, हाथमें शक्ति धारण करनेवाली, सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, महान् पराक्रमशालिनी, ब्रह्मायिनी, मयूरवाहिनी देवी कौमारी आपको शान्ति प्रदान करें। गदा एवं चक्रको धारण करनेवाली, सीताम्बरधारिणी, सूर्यार्चनमें नित्य तत्पर रहनेवाली, असुरमर्दिनी, देवताओंके द्वारा पूजित चतुर्मुजा देवी वैष्णवी आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। ऐश्वर्तपर आरूढ़, हाथमें ब्रह्म धारण करनेवाली, महावलशालिनी, सिद्ध-गच्छवौंसे सेवित, सभी अलंकारोंसे विभूषित, वित्र-विचित्र अरुणवर्णवाली, सर्वक्रतिलोचना देवी इन्द्राणी आपको शान्ति प्रदान करें। बराहके समान नासिकवाली, ब्रेष्ट वराहपर आरूढ़, विकटा, शंख, चक्र तथा

१-पद्मरागभा देवी चतुर्विदनपूज्ञा । अक्षमालार्पितकर्ता कमण्डलुपय तुम्हा ॥

ब्रह्माणी सौम्यवदना अदित्याग्राधने रता । शान्तिं करोतु सुप्रीता आशीर्वादपता रहग ॥

महाश्वेता विश्वाता आदित्यदयिता सदा । हिमकुण्डेन्दुसदुशा महावृषभवाहिनी ॥

विशूलहस्ताभिना विश्रुताभरणा सती । चतुर्मुजा चतुर्विक्री त्रिनेत्रा पापताशिनी ॥

वृषभध्वजार्चनरता रुद्राणी शान्तिदा भवेत् ॥

महूत्वाहना देवी मिन्दूयुरणविषया । शतिनहसा महाकाया सर्वालंकरभूषिता ॥

सूर्यभत्ता महाकीर्ती सूर्यार्चनता सदा । कौमारी वरदा देवी शान्तिमातु करोतु ते ॥

गदाचक्रधरा इष्टमा पीताम्बरधरा रहग । चतुर्मुजा हि सा देवी वैष्णवी सुरपूजिता ॥

सूर्यार्चनपय नित्य सूर्येकगतमानसा । शान्तिं करोतु ते नित्य सर्वासुरीवर्मर्दिनी ॥

ऐश्वर्तगजारुदा वज्राहसा महावला । सर्वक्रतिलोचना देवी वर्णतः कर्तुरुलना ॥

सिद्धगमर्वीनिमिता सर्वालंकरभूषिता । इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिमातु करोतु वै ॥

बराहघोणा विकटा बराहवरवाहिनी । इयामावदना या देवी वृश्चकगदाधरा ॥

तेजव्यनीति निष्ठिन् फूलयनी सदा रथेत् । बायाहा वरदा देवी तत्र शान्तिं करोतु वै ॥

अर्धवेशा कटीक्षामा निमौता यायुवन्नना । कराणवदना धोया रुद्राघटोदता सती ॥

कवालमालिनी कृता रुद्राङ्गवरथारिणी । आरती पिङ्गलनया गजचक्ररथपुणिता ॥

गोमुक्ताभरणा देवी प्रेतशाननिवासिनी । शिवालयेण धोयेण शिवरूपभयंकरी ॥

चापुड़ा चण्डकपेण सदा शान्तिं करोतु ते ॥

चण्डमुडकर्य देवी मुण्डेहसाला सती । कपालमालिनी कृता रुद्राङ्गवरथारिणी ॥

अक्षकशमालादे देवस्त्रशाना लेकमातरः । भूतानां मातरः सर्वास्तथानाः पितॄमातरः ॥

बृद्धिश्रादेषु पूज्यते यातु देवो मर्त्यार्पितः । मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमूलासत्या ॥

पितॄमही तु तन्माता यृदा या च पितॄमही । इत्येतास्तु पितॄमहाः शान्तिं ते पितॄमातरः ॥

सर्वे मातृमहेत्यः सत्युपा व्यप्रयागयः । जगद्व्याय प्रतिष्ठित्यो वर्णिक्षमा महोदयाः ॥

शान्तिं कुर्वन्तु ता नित्यमादित्याग्राधने रता । शान्तेन चेतसा तत्परः शान्तये तत्र शान्तिदा ॥

सर्वाविवामुख्येन गवेण च सुप्रथमा । पीतश्वामातितौष्येन विश्ववलोनं शोभना ॥

ललटीलकेषेता चद्रेकार्पधरिणी । विक्रमवरधरा देवी सर्वाभरणभूषिता ॥

वह स्त्रीमवलपणा शोभा गुणमुसम्पदाम् । भावनामाप्रसंतुष्टा उपा देवी वरप्रदा ॥

साक्षदागत्य रुपेण शान्तेनामितोजसा । शान्तिं करोतु ते भीता आदित्यराधने रता ॥

गदा धारण करनेवाली, इयामाकदाता, तेजस्विनी, प्रतिक्षण भगवान्, सूर्यकी आराधना करनेवाली, वरदायिनी देवी वाराही आपको शान्ति प्रदान करे।

क्षाम-कटि-प्रदेशवाली, मांसरहित कंकालस्वरूपिणी, कशाल-वदना, भयंकर तलवार, घंटा, सङ्खारु और वरमुद्रा धारण करनेवाली, ब्रूर, लाल-पीले नेत्रोवाली, गजचर्मधारिणी, गोकृताभरणा, प्रेतस्थानमें निवास करनेवाली, देखनमें भयंकर परंतु शिवस्वरूपा, हाथमें चण्ड-मुण्डके कपाल धारण किये हुए तथा कपालकी माला पहने चन्द्ररूपिणी देवी चामुण्डा तुम्हें शान्ति प्रदान करे—

आकाशमातृकाएँ, लोकमातृकाएँ, तथा अन्य लोक-मातृकाएँ, भूतमातृकाएँ, अन्य पितृ-मातृकाएँ, वृद्धि-श्राद्धोंमें जिनकी पूजा होती है वे पितृमातृकाएँ, माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता—ये मातृ-मातृकाएँ, शान्त चित्तसे आपको शान्ति प्रदान करे। ये सभी मातृकाएँ, अपने हाथोंमें आयुध धारण करती हैं और संसारको व्याप करके प्रतिष्ठित रहती हैं तथा भगवान्, सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहती हैं। सुन्दर अङ्ग-

प्रत्यक्ष्याली तथा सुन्दर कटि-प्रदेशवाली, पीत एवं इयाम वर्णवाली, लिंग आभावाली, तिळकसे सुशोभित ललाटवाली, अर्धचन्द्रेशा धारण करनेवाली, सभी आभरणोंसे विभूषित, विश्व-विवित्र वस्त्र धारण करनेवाली, सभी स्त्रीस्वरूपोंमें गुण और सम्पत्तियोंके कारण सर्वश्रेष्ठ शोभावाली, आदित्यकी आराधनामें तत्पर, केवल भावनामात्रसे संतुष्ट होनेवाली वरदायिनी भगवती उमादेवी अपने अमित तेजस्वी एवं शान्त-रूपसे प्रत्यक्ष प्रकट होकर प्रसन्न हो आपको शान्ति प्रदान करे।

अनन्तर कार्तिकीय, नन्दीधर, विनायक, भगवान् शंकर, जगन्माता, पार्वती, चण्डेश्वर, ऐन्द्री आदि दिवाएँ, दिशाओंके अधिष्ठित, लोकपालोंकी नगरियाँ, सभी देवता, देवी सरस्वती तथा भगवती अपगीजितासे इस प्रकार शान्तिकी प्रार्थना करे—

खड़ाक धारण किये हुए, शक्तिसे युक्त, मयूरवाहन, कृतिका और भगवान् रुद्रसे उद्भूत, समस्त देवताओंसे अर्पित तथा आदित्यसे वर-प्राप्त भगवान्, कार्तिकीय अपने तेजसे

१-ये सात विश्वमाताएँ, कही गयी है। शारदातिलकके बहु पटलमें इन सातोंके साथ ही भगवती महालक्ष्मीको भी विश्वमाता कहा गया है।

२-अबले वालकोण खड़ाकृतिवाहनः। पूर्णेण वदनः श्रीमूर्तिविश्वः शक्तिसंयुतः॥

कृतिकामात्र रुद्रसे चाहेन्द्रहुः सुर्यवितः। कार्तिकीयो महालेजा अदित्यवरदर्पणः।

शान्ति करेतु ते नित्यं बलं सौर्यं च तेजसा ॥

आप्रियो वलवान् देव आरोग्यं च खण्डायितः। त्रितावस्थीधानस्त्वयः कनकसुप्रभः॥

शूद्रहस्तो महाशशो नन्दीहस्ते रुद्रिभावितः। शान्ति करेतु ते इन्हों घर्मे च मतिमुतमाम्॥

धर्मेतात्मुत्ती नित्यमचलः सम्ब्रवच्छ्रुः। महोदयो महाकायः विष्णुधानवसप्रभः॥

एकद्रौत्कटो देवो गजवक्षो महावलः। नामवज्रेश्वरोत्तेन नानाभरणभूषितः॥

सर्वार्द्धसम्पूर्णाये गणाध्यक्षो वरप्रदः।

धीमत्य उनयो देवो नायकोऽय विनायकः। करेतु ते महाशृणि भास्वतर्चेनहत्परः॥

इन्द्रीलिनिभस्यक्षो दीपशूलायुधोदातः। रक्षसवरधः श्रीमन् कृष्णास्ते नामभूषणः॥

पाण्यपोदमस्तुलमलक्ष्यो मलवादानः। करेतु ते महाशृणि प्रीतः प्रीतेन चेतसा॥

वरद्वरधरा कन्दा नानालंकवरभूषिता। लिंगानन्दे च जननी पुण्या लोकनमस्तुता॥

सर्वसिद्धिकर्त्ता देवी प्रसादप्रसादस्ता। शान्ति करेतु ते माता भुवनस्य चराणीयः॥

द्विष्पृष्ठवामेन कर्णेन महामहिमपर्विनी। धनुषक्रहरणा रम्भपृष्ठिशाधारिणी॥

आतर्जन्यावतकर्ता सर्वोपदवनाशिनी। शान्ति करेतु ते दुर्गा भवानी च शिवा तथा॥

अक्षिसूख्ये द्वासिकोपस्यक्षो भृत्यिर्दिव्यहनः।

सूर्यावत्ये महावीरः सर्वोपदवनाशः। सूर्यभित्तियो नित्यं विवेदे सम्ब्रवच्छ्रुः॥

प्रचण्डगणसैन्येशो महावल्लासाधारकः। अक्षमहालीर्पतकस्त्राय चण्डेश्वरो वरः॥

चण्डप्राप्तहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशः।

शान्ति करेतु ते नित्यमादित्याध्यने रतः। करेतु च महाशैरी कल्याणान्ते परम्परम्॥

आपको बल, सौच्य एवं शान्ति प्रदान करे। हाथमें शूल एवं क्षेत वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्ण-आभायुक्त, भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले, तीन नेत्रोवाले नन्दीश्वर आपको धर्ममें उत्तम बुद्धि, आरोग्य एवं शान्ति प्रदान करे। चिकने अङ्गनके समान आभायुक्त, महोदर तथा महाकाश्य नित्य अचल आरोग्य प्रदान करे। नाना आभूषणोंसे विभूषित नागको यजोपवीतके रूपमें धारण किये हुए, समस्त अर्द्ध-सम्मानियोंके उद्घारक, एकदलन, उत्कट-स्वरूप, गजवक्ष, महाबलशाली, गणोंके अध्यक्ष, वर-प्रदाता, भगवान्, सूर्यकी अर्चनामें तत्पर, शंकरपुत्र विनायक आपको महाशान्ति प्रदान करे। इन्द्रनीलके समान आभावाले, त्रिनेत्रधारी, प्रदीप त्रिशूल धारण करनेवाले, नागोंसे विभूषित, पाणोंको दूर करनेवाले तथा अलक्ष्य रूपवाले, मलोंके नाशक भगवान् शंकर प्रसन्न चित्तसे आपको महाशान्ति प्रदान करे। नाना अलंकारोंसे विभूषित, सुन्दर वस्त्रोंको धारण करनेवाली, देवताओंकी जननी, सारे संसारसे नमस्कृत, समस्त सिद्धियोंकी प्रदायिनी, प्रसाद-प्रसिद्धीकी एकमात्र स्थान जगन्माता भगवती पार्वती आपको शान्ति प्रदान

करे। स्त्रिय इयामल वर्णवाली, धनुष-चक्र, खद्ग तथा पट्टिश आयुषोंको धारण की हुई, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाली, विशाल बाहुओवाली, महामहिष-मर्दिनी भगवती भवानी दुर्गा आपको शान्ति प्रदान करे। अस्यत्त सूक्ष्म, अतिक्रोधी, तीन नेत्रोवाले, महावीर, सूर्यभक्त भृगुरिति आपका नित्य कल्याण करे। विशाल घण्टा तथा रुद्राक्ष-माला धारण किये हुए, ब्रह्महत्यादि उत्कट पापोंका नाश करनेवाले, प्रचण्डगणोंके सेनापति, आदित्यकी आराधनामें तत्पर महायोगी चण्डेश्वर आपको शान्ति एवं कल्याण प्रदान करे। दिव्य आकाश-मातृकाएं, अन्य देव-मातृकाएं, देवताओंद्वारा पूजित मातृकाएं जो संसारको व्याप्त करते अवस्थित हैं और सूर्यार्चनमें तत्पर रहती हैं, वे आपको शान्ति प्रदान करे। रौद्र कर्म करनेवाले तथा रौद्र स्थानमें निवास करनेवाले रुद्रगण, अन्य समस्त गणाधिप, दिशाओं तथा विदिशाओंमें जो विद्वरुपसे अवस्थित रहते हैं, वे सभी प्रसन्नचित होकर मेरे द्वारा दी गयी इस बलि (नैवेद्य) को ब्रह्मण करे। ये आपको नित्य सिद्धि प्रदान करे और आपकी भयोंसे रक्षा करे।

आकृत्यमातरो दिव्यास्तथान्या देवमातरः ।

सूर्यार्चनपरा देवो जगद्व्याय व्यवस्थितः । शान्ति कुर्वन्तु ते नित्ये मातरः सुपूजिताः ॥
ये रुद्र रौद्रकमणिः रौद्रस्याननिवासिनः । मातरे रुद्रपाल गणान्नामधिष्ठान ये ॥

विप्रभूतासाधा चान्ये दिव्यिदिक्षु सम्प्राप्तिः ।

सर्वे ते प्रीतमनसः प्रतिगृहन्तु मे चर्चेत् । सिद्धि कुर्वन्तु ते नित्ये भवेष्यः पत्नु सर्वतः ॥
ऐश्वर्यो गणा ये तु वज्रहस्त महाबलः । हिममुद्देन्तुद्वृद्गा नीलकृत्याङ्गुलेहितः ॥
दिव्यासारिक्षा भौमाश्च पताललत्यावासिनः । ऐश्वा शान्ति प्रकुर्वन्तु भद्राग्नि च पुनः पुनः ॥
आपेयां ये भूताः सर्वे शुखहत्यानुशिष्याः । सूर्यानुरक्ष रत्नपत्र जपासुपनिषासालया ॥
विरक्तलोहिता दिव्या आपेयो भास्त्रकर्तव्यः । आदित्यारथनप्ता आदित्यगत्यमनसः ॥

शान्ति कुर्वन्तु ते नित्ये प्रवच्छन्तु बलिं मय ।

भवादित्यसमा ये तु सतते दण्डपाणयः । आदित्यारथनप्ता शो प्रवच्छन्तु ते सदा ॥
ऐश्वर्यो सर्विकाल ये तु प्रशान्ताः शुलगणाः । भस्मोद्दूर्लिङ्गदेवाश नीलकृष्णा विलोहितः ॥
दिव्यासारिक्षा भौमाश्च पताललत्यावासिनः सूर्यप्रजाकरा नित्ये पूजयित्वांशुमालिनम् ॥
ततः सुप्रीतमनसो लोकालैः समन्विताः । शान्ति कुर्वन्तु मे नित्ये शो प्रवच्छन्तु पूजिताः ॥
अमगवती पुरी नाम पूर्वभागे व्यवस्थितः । विद्याधरगणावतीर्णा सिद्धाग्रस्वर्णसेविता ॥

रत्नप्रकाररूपया महालोपशोभिता ।

तत्र देवपति श्रीमान् वक्ष्यानिर्वहनवालः । गोपतीर्णसहस्रेण शोभयानेन शोभते ॥
ऐश्वर्यगजारूपो गैरिकभो महादृष्टिः । देवेन्द्रः सतती इह आदित्यारथने रतः ॥
सूर्यज्ञानैकपरमः सूर्यभक्तिसमन्वितः । सूर्यप्रणामः परमं शान्ति तेऽयं प्रवच्छन्तु ॥
आपेयदिव्यभागे तु पुरी तेजसाती शूभा । नानादेवगणाविर्णा नानारलोपशोभिता ॥
तत्र व्यालसमस्तीर्णो दीपाङ्गारसमधृतः । पुरो दहो देवो ज्वलनः पापनाशनः ॥

हाथोमे कब्र लिये हुए, महाबलशाली, सफेद, नीले, काले तथा लाल वर्णवाले, पृथ्वी, आकाश, पाताल तथा अन्तरिक्षमें रहनेवाले ऐन्द्रगण निरन्तर आपका कल्याण करें और शान्ति प्रदान करें। आग्रेयी दिशामें रहनेवाले निरन्तर ज्वलनशील, जपाकुसुमके समान लाल तथा लोहित वर्णवाले, हाथमें निरन्तर दण्ड धारण करनेवाले सूर्यके भक्त भास्कर आदि ऐरे द्वाया दिये गये बलि (नैवेद्य) को ग्रहण करें और आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें। ईशानकोणमें अवस्थित शान्ति-स्वभावयुक्त, त्रिशूलधारी, अङ्गोंमें भस्म धारण किये हुए, नीलकण्ठ, रक्तवर्णवाले, सूर्य-पूजनमें तत्पर, अन्तरिक्ष, आकाश, पृथ्वी तथा सर्वगमें निवास करनेवाले रुद्रगण आपको नित्य शान्ति एवं कल्याण प्रदान करें।

रत्नोंके प्राकारों एवं महारत्नोंसे शोभित, विद्याधर एवं सिद्ध-गव्यवाहीसे सुसेवित पूर्वदिशामें अवस्थित अमरगती नामवाली नगरीमें महाबली, वज्रपाणि, देवताओंके अधिपति इन्द्र निवास करते हैं। वे ऐश्वर्यतपर आरुण एवं स्वर्णकी आभाके समान प्रकाशमान हैं, सूर्यकी आराधनामें तत्पर तथा नित्य प्रसन्न-चित रहनेवाले हैं, वे परम शान्ति प्रदान करें।

विविध देवगणोंसे व्याप्त, भौति-भौतिके रत्नोंसे शोभित, अग्निकोणमें अवस्थित तेजस्वी नामकी पुरी है, उसमें स्थित जलमें हुए अंगारोंके समान प्रकाशवाले, ज्वालमालओंसे व्याप्त, निरन्तर ज्वलन एवं दहनशील, पापनाशक, आदित्यकी आराधनामें तत्पर अग्निदेव आपके पापोंका सर्वथा नाश करें एवं शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें संयमनीपुरी स्थित है, वह नाना रत्नोंसे सुशोभित एवं सैकड़ों सुरासुरोंसे व्याप्त है, उसमें रहनेवाले हरित-पिङ्कल नेत्रोंवाले महामहिषपर आरुण, कृष्ण वस्त्र एवं मालासे विभूषित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर महातेजस्वी यमराज आपको क्षेम एवं आरोग्य प्रदान करें। नैऋत्यकोणमें स्थित कृष्णा नामकी पुरी है, जो महान् रक्षोगण, प्रेत तथा पिशाच आदिसे व्याप्त है, उसमें रहनेवाले रक्त माला और वस्त्रोंसे सुशोभित हाथमें तलवार लिये, करालवदन, सूर्यकी आराधनामें तत्पर गक्षसोंके अधिपति निर्वहितदेव शान्ति एवं धन-धान्य प्रदान करें। पश्चिम दिशामें शुद्धवती नामकी नगरी है, वह अनेक किनरोंसे सेवित तथा भौगिगणोंसे व्याप्त है। वहाँ स्थित हरित तथा पिङ्कल वर्णके नेत्रवाले वरुणदेव प्रसन्न होकर आपको शान्ति प्रदान करें। ईशान-कोणमें स्थित

आदित्याग्राधनरत आदित्यगतमानसः । शान्तिं करोतु ते देवस्थापा पापपरिक्षयम् ॥

वैवस्ती पुरी रक्षा दक्षिणेन महावतः । सुरासुराताकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥

तत्र कुन्देनुरसंवत्तशो हरीपिङ्कलत्वेचनः । महामहिषमारुणः कृष्णसंवद्धभूषणः ॥

अपकोउथ महलेजाः सूर्यधर्मपरायणः । आदित्याग्राधनपरः क्षेमारोग्ये ददातु ते ॥

नैर्वहिते दिव्यधारो तु पुरी कृष्णोति विश्रुता । महारक्षोगणादौपिश्याप्रेतसंकुलः ॥

तत्र कुन्दनिभो देवो रक्तस्वरूपभूषणः । लक्ष्मीपाणिर्महलेजाः करालवदनेभ्यवहः ॥

रक्षेन्द्रो वसते विलमादित्याग्राधने रतः । करोतु मे सदा शान्तिं घने धान्यं प्रयच्छनु ॥

पश्चिमे तु दिनो खगे पुरी शुद्धवती सदा । नानाभौगिगणसमकीर्णा नानाकिञ्चरसेविता ॥

तत्र कुन्देनुरसंवत्तशो हरीपिङ्कलत्वेचनः । शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ॥

यशोवती पुरी रक्षा ऐशार्द्धं दिशमाक्षिता ॥

नानागणसमाकीर्णा नामाकृतशुभालभ्या । तेजःप्रकाशपर्यन्ता अग्नीपम्भा सदोग्म्यलम् ॥

तत्र कुन्देनुरसंवत्तशाशकाम्बुजाशो विभूषितः ॥

प्रिनेत्रः शान्तरक्षमा अक्षमालाग्राधनः । ईशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छनु ॥

भूलोके तु भुयलोके निवर्तनि च ये सदा । देवदेवाः शुभाद्युक्तः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

जनलोके महलेके परलोके गताश्च ये । ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

सरस्वती सूर्यभक्त ईश्वरिणा विभूषितु मे ॥

चारुचामीकरस्या या सरोजकरपल्लव्या । सूर्यभक्तशिक्षिता देवी विभूति ते प्रयच्छनु ॥

हारेण सुविचित्रेण भास्मकनकज्ञेयल । अपराजिता सूर्यभक्त करोतु विभूते तत्र ॥

यशोवती नामकी अनुष्ठम पुरीमें रहनेवाले ब्रिनेवधारी शान्तात्मा रुद्राश-मालाधारी परमदेव ईशान (भगवान् शंकर) आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। भृः, भुवर, महर् एवं जन आदि लोकोमें रहनेवाले प्रसन्नचित देवता आपको शान्ति प्रदान करें।

सूर्यभक्त चरसरस्वती आपको शान्ति प्रदान करें। हाथमें कमल धारण करनेवाली तथा सुन्दर स्वर्ण-सिंहासनपर अवस्थित, सूर्यकी आराधनामें तत्पर भगवती महालक्ष्मी आपको ऐक्षर्य प्रदान करें और आदित्यकी आराधनामें तल्लीन, विचित्र वर्णक सुन्दर हार एवं कनकमेस्वल धारण करनेवाली सूर्यभक्त भगवती अपराजिता आपको विजय प्रदान करें।'

इसके अनन्तर सत्ताईस नक्षत्रों, मेषादि द्वादश राशियों, सप्तर्षियों, महातपस्त्रियों, ऋषियों, सिद्धों, विद्याधरों, दैत्येन्द्रों तथा अष्ट नागोंसे शान्तिकी प्रार्थना करें*।

'परमश्रेष्ठ कृतिका, वरमना गेहिणी, मृगशिख, आर्डी, पुर्ववृष्टि, पूर्व तथा आश्लेषा (पूर्व दिशमें रहनेवाली) ये सभी नक्षत्र-मातृकाएँ सूर्योर्चनमें रहे हैं और प्रभा-मालासे विभूषित हैं। मध्य, पूर्वा तथा उत्तराफलगुनी, हस्त, विश्रा, स्वाती, विशाखा—ये दक्षिण दिशाका आश्रय ग्रहण कर भगवान् सूर्यकी पूजा करती रहती हैं। आकाशमें उदित होनेवाली ये नक्षत्र-मातृकाएँ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशमें रहनेवाली अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वांशादा

* कृतिका परमा देवी गेहिणी च वरुनना। श्रीमत्युग्मशता भद्रा आर्डी चाप्यपरम्पराला ॥

पुर्वसुसुधा पूर्व आश्लेषा च तथाधिप। सूर्योर्चनता नित्यं सूर्यभावानुभविता ॥

अर्द्धयन्ति सदा देवमादित्यं सुरते सदा। नक्षत्रमातृते द्वेषाः प्रथामालाविभूषिता ॥

मध्य सर्वगुणोपेता पूर्वा चैव तु फलगुनी। स्वाती विश्वसा वरदा दक्षिणां दिशमाक्षिता ॥

अर्द्धयन्ति सदा देवमादित्यं सुरपूजितम्। तत्परि शक्तिके द्वारा कुर्वन्तु गणनेतिका ॥

अनुराधा तथा ज्येष्ठा नूलं सूर्यपूर्षःसदा। पूर्वांशादा महावीर्या अवाक्षा चोक्षु तथा ॥

अभिजित्याम नक्षत्रं अवते च बहुकृतम्। एताः पश्चिमते दीपा राजते चानुमूर्त्यः ॥

भास्करे पूज्यवदेताः सर्वकालं सुधाविता । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूति च महर्दिक्षम् ॥

धनिष्ठा शतीभिता तु पूर्वभाद्रपदा तथा ॥

उत्तराभाद्रेवत्सी चक्षिती च महादेवी नित्यमुत्तरतः रित्यतः ॥

सूर्योर्चनता नित्यमादित्यगतमानसा । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूति च महर्दिक्षम् ॥

मेषो मृगाधिपः विंशो चतुर्दशिती च । पूर्वोंग भास्करक्षेते सूर्योगम्पः शूचाः ॥

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूति च । मृगोपदाम्बुजे । वृषः कृन्या च परमा मकरश्चाति कुदिमान् ॥

एहो दक्षिणाभागे तु पूर्वाधिति रुद्धि सदा । भक्तवा परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

विषुने च तुलं कुम्भः पश्चिमे च अवस्थिताः । ज्येष्ठेते सदाक्षेत्रमादित्यं ग्रहनायकम् ॥

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं खलेष्वक्षान्ततत्पराः । सग्रहोदक्षकुम्भाभ्यां ये सूता सतते बुधैः ॥

क्षेत्रः सप्त विश्वाता भूवानाः । परमेष्वक्ष्यातः । भानुप्रसदात् सम्पत्ता । शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

कट्टयो गालयो गाययो विश्वामित्रो महामुखः । मुनिर्देशो वसिष्ठाङ्गं मार्कण्डः पुष्टः क्रन्तः ॥

नारदो पृथुग्रेयो भाद्राजस्त वै मूनः । वाल्मीकिः कौशिक्षयो गालयः शाकस्योऽथ पुनर्वृषः ॥

शालेष्वयन इत्येते ग्रहयोऽथ महातपाः । सूर्यध्यानैकस्तरमः । शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

मुनिकल्या महाभागा श्वसिकन्याः कुम्भरित्वः । सूर्योर्चनता नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

सिद्धः समुद्रतपसो ये चाये वै महातपः । विद्याध्या महातपां गुणदश तप्या सह ॥

आदित्यपत्ना द्वारा अदित्यावधने रहा । सिद्धिं ते सप्तवच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः ॥

नमुचिर्देवतानेनः शंखुकणो महाब्रह्मः । महातपां दैत्यः परमवीर्यवान् ॥

प्रह्लादधिप देवत्य नित्यं पूजापरायणः । ब्रह्म वीर्यं च ते प्रह्लादारोप्य च मूलन्तु ते ॥

महाद्यो यो हवशीवः प्रह्लादः प्रपवनितः । अग्रिमुखो महान् दैत्यः करलेष्विष्वक्षलः ॥

एहो दैत्य भगवान् सूर्यभक्तेन भावितः । गुरुं ग्रहं तप्याऽज्ञेयं प्रवच्छन्तु मुण्डयः ॥

तथा उत्तराधारा, अभिजित् एवं श्रवण—ये नक्षत्र-मातृकाएँ निरन्तर भगवान् भास्त्रकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें। उत्तर दिशामें अवस्थित धनिष्ठा, शतभिष, पूर्व तथा उत्तरभाद्रपद, रेती, अष्टमी एवं भरणी नामकी नक्षत्र-मातृकाएँ नित्य सूर्यकी पूजा करती रहती हैं, ये आपको नित्य वर्धनशील ऐश्वर्य एवं शान्ति प्रदान करें।

पूर्वदिशामें अवस्थित तथा भगवान् सूर्यके चरणकमलोंमें भक्तिपूर्वक आराधना करनेवाली मेष, सिंह तथा धनु राशियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। दक्षिण दिशामें स्थित रहनेवाली, भगवान् सूर्यकी अर्चना करनेवाली वृष, कन्या तथा मकर राशियाँ परमा भक्तिके साथ आपको शान्ति प्रदान करें। पश्चिम दिशामें स्थित एवं निरन्तर ग्रहनायक भगवान् आदित्यकी आराधना करनेवाली मिथुन, तुला तथा कुम्भ राशियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करें। [कर्क, वृक्षिक तथा मीन राशियाँ जो उत्तर दिशामें स्थित रहती हैं तथा भगवान् सूर्यकी भक्ति करती हैं, आपको शान्ति प्रदान करें।]

भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे सम्पन्न ध्रुव-मण्डलमें

रहनेवाले सप्तरिंगण आपको शान्ति प्रदान करें। कश्यप, गात्य, गार्य, विश्वामित्र, दक्ष, वसिष्ठ, मार्कण्डेय, क्रन्तु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज, वाल्मीकि, कौशिक, वात्य, शाकलव्य, पुनर्वसु तथा शङ्खलक्ष्मण—ये सभी सूर्य-ध्यानमें तत्पर रहनेवाले महातपस्वी ऋषिगण आपको शान्ति प्रदान करें। सूर्यकी आराधनामें तत्पर ऋषि तथा मुनिकन्याएँ, जो निरन्तर आशीर्वाद प्रदान करनेमें तत्पर रहती हैं, आपको नित्य सिद्धि प्रदान करें।

भगवान् सूर्यकी पूजामें तत्पर दैत्यराजेन्द्र नमुचि, महाबली शङ्खकर्ण, पराक्रमी महानाथ—ये सभी आपके लिये बल, वीर्य एवं आरोग्यकी प्राप्तिके लिये निरन्तर कामना करें। महान् सम्पत्तिशाली हयग्रीव, अत्यन्त प्रभाशाली प्रह्लाद, अग्रिमुख, कालेश्वरी—ये सभी सूर्यकी आराधना करनेवाले दैत्य आपको पुष्टि, बल और आरोग्य प्रदान करें। वैरोचन, हिरण्याक्ष, तुर्वसु, सुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द तथा रैतक—ये सभी सूर्यभक्त आपको पुष्टि प्रदान करें। दैत्यपतियाँ, दैत्यकन्याएँ तथा दैत्यकुमार—ये सभी आपकी शान्तिके लिये कामना करें।

वैरोचनो हिरण्याक्षसुरुंसुक्ष्म सुलोचनः । मुचकुन्दो भासेन पराक्रमेण यज्ञसे सततं एविष्म । सततं च सुराधानः पुष्टि कुर्वन् ते सदा ॥
दैत्यकन्यो महाभागा दैत्यानां कन्याः सुधा : कुम्हा : कुम्हा ये च दैत्यानां शान्तिं कुर्वन् ते सदा ॥
आरोहेन शशीरेण रत्नमन्तापत्तिलोकनाः । महाभागाः कूलाटोपाः शङ्खादाः कूलतुक्षणाः ॥
अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः । महापविष्टिं हत्वा शान्तिमहान् करोतु ते ॥
अतिरिक्तोन देहेन विश्वपुरुषोगसम्पदः । तेजसा चातिरिक्तोपां कूलस्वसितकलशज्जनः ॥
नागराज तक्षकः श्रीमान् नागकेण्ट्रा समन्वितः । करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविप्रापहाम् ॥
अतिरिक्तोन वैरोचनं स्मृतिरिक्षितमलकः । कण्ठोरेकावयोपेतो घोरदेश्युपोष्यातः ॥
कल्पोटको महानागो विश्वदर्पवलान्वितः । विश्वसूर्याग्निसंतापं हत्वा शान्तिं करोतु ते ॥
पद्मवर्णः पद्मकामिः पुरुषलयावतोक्षणः । लक्षणः पदो महानागो नित्ये भासकरूपः ॥
स ते शान्ते सूर्य श्रीप्रभुचर्ल सम्प्रवच्छन् । श्यामेन देहभारेण श्रीपतकमलोचनः ॥
विश्वदर्पवलोक्तो ग्रीवायां रेखावान्वितः । शङ्खपालश्रिया दीपः सूर्यवादावपूर्वः ॥
महाविष्ट गरबेष्ट हत्वा इति शान्तिं करोतु ते । अतिरिक्तोन देहेन चन्द्रार्पकूलशेषः ॥

दीपयागे कूलाटोनसुभलव्यानस्तीक्ष्णतः ।
कुलिनो नाम नागेन्द्रो नित्ये सूर्यपरायणः । अपाहृत्य विष्ट योरे करोतु तत्वं शान्तिकम् ॥
अनलिशो च दे नागः ये नागाः स्वर्गसंसिद्धताः । गिरिकन्दरदुर्गेषु ये नागा भूषि संस्थिताः ॥
पाताले ये स्थिता नागाः सर्वं यत्र समाप्तिः । सूर्यवादार्चनासक्तः शान्तिं कुर्वन् ते सदा ॥
नागिन्यो नागकन्याः तथा नागकुमारकः । सूर्यभक्तः सूर्यसः शान्तिं कुर्वन् ते सदा ॥
य इदं नागसंस्थानं विश्वविच्छृणुयत् तथा । न तै सर्वो विहितानि न विष्ट ब्रह्मते सदा ॥

नागशजेन्द्र अनन्त, अत्यन्त पीले शरीरवाले, विस्फुरित फणवाले, स्वस्तिक-चिह्नसे युक्त तथा अत्यन्त तेजसे उद्दीप नागराज तक्षक, अत्यन्त कृष्ण वर्णवाले, कण्ठमें तीन रेखाओंसे युक्त, भयंकर आयुधरूपी दृष्टिसे सम्बन्धित तथा विषके दर्पसे बलान्वित महानाग कल्कोटक, पदके समान कश्चित्तवाले, कमलके पुष्पके समान नेत्रवाले, पदावर्णके महानाग पद्म, इयामवर्णवाले, सुन्दर कमलके समान नेत्रवाले, विषरूपी दर्पसे उच्चत तथा ग्रीवामें तीन रेखावाले शेषासम्प्र महानाग शैखपाल, अत्यन्त गौर शरीरवाले, चन्द्रार्धकृत-शेखर, सुन्दर फणोंसे युक्त नागेन्द्र कुलिक (और नागराज वासुकि) सूर्यकी आशाधना करनेवाले—ये सभी अष्टनाग महाविषयके नष्ट करके आपको निरन्तर अचल महाशानि प्रदान करे। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, गिरिकन्दराओं, दुर्गों तथा भूमि एवं पातालमें रहनेवाले, भगवान् सूर्यके अर्चनमें आसक्त समस्त नागण और नागपत्रियाँ, नागकन्याएँ तथा नागकुमार सभी प्रसन्नचित्त होकर आपको सदा शान्ति प्रदान करे।'

जो इस नाग-शान्तिका श्रवण या कीर्तन करता है, उसे

सर्पण कभी भी नहीं करते और विषका प्रभाव भी उनपर नहीं पड़ता।

तदनन्तर गङ्गादि पुण्य नदियों, यक्षेन्द्रों, पर्वतों, सागरों, राक्षसों, प्रेतों, पितृओं, अपस्मारादि ग्रहों, सभी देवताओं तथा भगवान् सूर्यसे शान्तिकी कामनाके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

'ग्रहाधिपति भगवान् सूर्यकी नित्य आशाधना करनेवाली पुण्यतोया गङ्गा, महादेवी यमुना, नर्मदा, गौतमी, काव्यरी, वरुणा, देविका, निरञ्जना तथा मन्दूकिनी आदि नदियाँ और महानद शोण, पृथ्वी, स्वर्ग एवं अन्तरिक्षमें रहनेवाली नदियाँ आपको नित्य शान्ति प्रदान करे। यक्षराज कुबेर, महायश मणिभद्र, यक्षेन्द्र सुचिर, पाञ्चिक, महातेजस्वी शृतशष्टि, यक्षेन्द्र विश्वपात्र, कज्जल तथा अन्तरिक्ष एवं स्वर्गमें रहनेवाले समस्त यक्षगण, यक्षपत्रियाँ, यक्षकुमार तथा यक्ष-कन्याएँ जो सभी सूर्यकी आशाधनामें तत्पर रहते हैं—ये आपको शान्ति प्रदान करे, नित्य करन्याण, बल, सिद्धि भी शीघ्र प्रदान करे एवं महात्म्य बताये।

१-गङ्गा पुण्य महादेवी यमुना नर्मदा नहीं। गौतमी चाहिये काव्येणी वरुणा देविका तथा ॥

सर्वाशहस्रिते देवं लेकेदो लेकेनामकम् ॥

पूजयन्ति सदा नदः सूर्यसदावधारिताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यधानैकमानसाः ॥
निरञ्जना नाम नदी शोषणाधी प्रह्लादः । मन्दूकिनी च परमा तत्त्वं संनिहितं शुभा ॥
एहाशान्यात् बहवो भूति दिव्यवारितिकः । सूर्योर्चर्चरतः नदः कुर्वन्तु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महर्षिकः । यक्षकोटिपरीवारो यक्षासंस्लेषयसंयुतः ॥
महाविभवसम्प्रवः सूर्यसदावधी रतः । सूर्यधानैकपरमः सूर्योपात्रेन भवितः ॥
शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मासागरोदानः । मणिभद्रो महात्म्यो मणिरत्नविभूषितः ॥
मनोहरेण हारेण कण्ठस्त्रेन यजते ।

यक्षणीयक्षकन्यापिः परिवारितविषयः । सूर्योर्चर्चरासामाप्तकः करोतु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
सुचिरो नाम यक्षेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः । ललटे हेमपटलप्रबद्धेन विचुजते ॥
बहुव्यक्षसमाकीर्णो यक्षीनिमित्विषयः । सूर्योपूजापरे युक्तः करोतु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
पाञ्चिको नाम यक्षेन्द्रः कल्पाभरणभूषितः । कुमुकेन विचित्रेण बहुलानिवेन तु ॥
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वयतः । सूर्योर्चरनपरः शीघ्रन् करोतु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
शृतशष्टि प्रह्लादो नानाप्रकाशिष्यः खण । दिव्यपद्मः शृक्षत्यज्ञवो मणिकुम्हनभूषितः ॥
सूर्यभूतः सूर्योर्चरतः सूर्योपात्रावयः । सूर्योप्रसादसम्बन्धः करोतु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
विश्वपात्रस यक्षेन्द्रः शैत्यादा महरूपिः । नानाकर्मणामात्मभिप्रयत्नोपतिकन्धः ॥
सूर्योपूजापरे भक्तः कज्जलः कञ्जरानिषः । तेजसादिव्यसंकल्पः करोतु तत्त्वं शान्तिकम् ॥
अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षाः स्वर्णालभिः । नानारूपधरा यक्षः सूर्यभूतः दुर्ब्रह्मः ॥
तद्वक्षसदादृतमनसः सूर्यफूजासम्मुकुकः । शान्तिं कुर्वन्तु ते हासः शान्तः शान्तिपरायणः ॥

भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले सभी पर्वत, ऋद्धि प्रदान करनेवाले वृक्ष, सभी सागर तथा पवित्रारण्य आपको शान्ति प्रदान करें। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग तथा पातालमें निवास करनेवाले एवं भगवान् सूर्यकी आराधना करनेवाले महाबलशाली और कामरूप सभी राक्षस, प्रेत, पिशाच एवं सभी दिशाओंमें अवस्थित अपस्मारप्रह तथा ज्वरप्रह आदि आपको नित्य शान्ति प्रदान करें।

जिन भगवान् सूर्यके दक्षिण भागमें विष्णु, वाम भागमें शंकर और ललाटमें ब्रह्म सदा रित रहते हैं, ये सभी देवता उन भगवान् सूर्यके तेजसे सम्प्रभ होकर आपको शान्ति प्रदान करें तथा सौरधर्मके जानेवाले समस्त देवगण संसारके सूर्यभक्तों एवं सभी प्राणियोंको सर्वदा शान्ति प्रदान करें।

अन्यकार दूर करनेवाले तथा जय प्रदान करनेवाले विवस्वान् भगवान् भास्करकी सदा जय हो। ग्रहोंमें उत्तम तथा कल्पाण करनेवाले, कमलको विकसित करनेवाले भगवान्

सूर्यकी जय हो, ज्ञानस्वरूप भगवान् सूर्य ! आपको नमस्कार है। शान्ति एवं दीपिका विधान करनेवाले, तमोहन्ता भगवन् अजित ! आपको नमस्कार है, आपकी जय हो। सहस्र-किरणोञ्जल, दीपिलरूप, संसारके निर्माता आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो। गायत्रीस्वरूपवाले, पृथ्वीको धारण करनेवाले सावित्री-प्रिय मार्तण्ड भगवान् सूर्यदेव ! आपको बार-बार नमस्कार है, आपकी जय हो।

सुष्ठनु भूनि बोले—राजन् ! इस विधानसे अरुणके द्वारा वैनतेय गरुडके कल्पाणके लिये शान्ति-विधान करते ही वे सुन्दर पंखोंसे समन्वित हो गये। वे तेजमें बुधके समान देवीप्रमाण और बलमें विष्णुके समान हो गये। राजन् ! देवाधिदेव सूर्यके प्रसादसे सुष्ठने के सभी अवयव पूर्ववत् हो गये।

राजन् ! इसी प्रकार अन्य रोगप्रस भानवगण इस अप्रिकार्यसे (सौरी-शान्तिसे) नीरोग हो जाते हैं। इसलिये इस

यजिष्यां विविधकारासादा यशस्कुमाराः । यक्षकन्दा महाभाणः सूर्याधनतत्त्वः ॥
 शान्ति स्वस्ययनं स्वें वर्णे कल्पाणमुपत्तम् । सिद्धिं चाशु प्रवच्छन्तु नित्यं च सुसमाहिताः ॥
 पर्वतः सर्वतः स्वें वृक्षादीव महर्द्धिकः । सूर्यभक्तः सदा स्वें शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥
 सागरः सर्वतः स्वें गुहारन्यानि कृच्छ्रवः । सूर्यसागरधनवाः कुर्वन्तु तत्र शान्तिकम् ॥
 राक्षसः सर्वतः स्वें शोरक्षा महाबलः । स्वदलवा राक्षसा ये तु अन्तरिक्षागताश्च ये ॥
 पाताले राक्षसा ये तु नित्यं सूर्यादिने रहतः । शान्ति कुर्वन्तु ते स्वें तेजसा नित्यदीपिताः ॥
 प्रेतः प्रेतगणाः स्वें ये प्रेताः सर्वतेमुक्ताः । अतिरिक्षागताः ये प्रेताः ये प्रेता देविग्रहणाः ॥
 अन्तरिक्षे च ये प्रेतलत्त्वा ये स्वर्गवासिनः । पाताले भूतले चापि ये प्रेताः कामरूपिणः ॥
 एकचक्रत्रयो यस्य यस्तु देवो वृषभजः । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥
 ये पिशाचा महावीर्यां वृद्धिमनो महाबलः । नानास्तपथाः स्वें स्वें च गुणवत्त्वः ॥
 अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वें ये च महाबलः । पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजसाः ॥
 यस्यां ह सराधिक्यो यस्य त्वं तुरुणः सदा । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु तेऽङ्गसा ॥
 अपस्मारप्रहाः स्वें स्वें चापि ज्वरप्रहाः । ये च सूर्यादित्याः । स्वें भूमिंगा ये ग्रहोत्तमाः ॥
 पाताले तु ग्रह ये च ये ग्रहः सर्वतो गतः । दक्षिणे विशेषे यस्य सूर्यस्य च स्तिक्ष्णो हरिः ॥
 हये यस्य सदा वामे ललाटे कङ्गजः स्थितः । तेजसा तस्य देवस्य शान्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥
 इति देवादयः स्वें सूर्यप्रज्ञविधायिनः । कुर्वन्तु जगतः शान्ति सूर्यभक्तेषु सर्वदा ॥
 जय सूर्याय देवस्य तमोहन्ते विवस्वते । जयप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोऽस्तु ते ॥
 ग्रहोत्तमय देवाय जय कल्पाणकारिणे । जय पद्मिकाराय सूर्यरूपाय ते नमः ॥
 जय दीपिकाराय जय शान्तिविधायिने । तमोऽश्वय जयादैव अविलय नमो नमः ॥
 जयकं जय दीपीशा महाकिरणोञ्जल । जय निर्विलोक्यस्तस्मजिताय नमो नमः ॥
 ग्राहवृद्धरूपाय स्वाविदीपिताय च । ग्राहवर्णाय सूर्याय मार्तण्डाय नमो नमः ॥

शान्ति-विभानको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। ग्रहोपचात्, दुर्धिक्ष, सभी उत्पातोंमें तथा अनावृष्टि आदिमें लक्ष्य-होमसमन्वित सौरसूक्तसे यज्ञपूर्वक पूजन कर एवं वारण-सूक्तसे प्रसवचित हो श्री, मधु, तिल, यव एवं मधुके साथ पायससे हवन एवं शान्ति करे और सावधान हो बलि (नैवेद्य) प्रदान करे। ऐसा करनेसे देवतागण गन्धोंके कल्याणको कामना करते हैं एवं उनके लिये लक्ष्मीकी वृष्टि करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकरका ध्यान कर इस शान्ति-अध्यायको पढ़ता या सुनता है, वह राममें शकुपर विजयी हो परम सम्मानको प्राप्त कर एकचक्र शासक होकर सदा आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। वह पुत्र-पौत्रोंसे प्रतिष्ठित होकर आदित्यके समान तेजस्वी एवं प्रभासमन्वित व्याधिशूल जीवन-यापन करता है। चीर ! जिसके कल्याणके उद्देश्यसे इस शान्तिकाध्याय (शान्तिकल्प) का पाठ किया जाता है, वह वात-पित्त, कफजन्य रोगोंसे बीड़ित नहीं होता एवं उसकी

न तो सर्वके दंशसे मृत्यु होती है और न अकालमें मृत्यु होती है। उसके शरीरमें विषका प्रभाव भी नहीं होता एवं जड़ता, अन्धत्व, मूकता भी नहीं होती। उत्पत्ति-भव नहीं रहता और न किसीके द्वारा किया गया अधिकार-कर्म सफल होता है। गोण, महान् उत्पात, महाविषेश सर्प आदि सभी इसके श्रवणसे शान्त हो जाते हैं। सभी गङ्गादि तीर्थोंका जो विशेष फल है, उसका कई गुना फल इस शान्तिकाध्यायके श्रवणसे प्राप्त होता है और दस राजसूय एवं अन्य यज्ञोंका फल भी उसे मिलता है। इसे सुनेवाला सौ वर्षतक व्याधिरहित नीरोग होकर जीवन-यापन करता है। गोहत्यारा, कृतज्ञ, ब्रह्मधारी, गुरुत्वगणार्थी और शरणागत, दीन, आर्त, मित्र तथा विश्वासी व्यक्तिके साथ घात करनेवाला, दुष्ट, पापाचारी, पितृघातक तथा मातृघातक सभी इसके श्रवणसे निःसंदेह पापमुक्त हो जाते हैं। यह अग्रिकर्त्त्व अतिशय उत्तम एवं परम पुण्यमय है।

(अध्याय १७५—१८०)



विविध सूति-धर्मों तथा संस्कारोंका वर्णन

राजा शतानीकन्ने कहा—ब्रह्मन् ! पाँच प्रकारके जो सूति आदि धर्म हैं, उन्हें जाननेकी मुझे बढ़ी ही अधिलाला है। कृपापूर्वक आप उनका वर्णन करे।

सुमन्तुजी बोले—महाराज ! भगवान् भास्करने अपने सारथि अरुणसे जिन पाँच प्रकारके धर्मोंको बतलाया था, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, आप उन्हें सुनें।

भगवान् सूर्यने कहा—गृहाग्रज ! सूतिप्रोत्त धर्मका मूल सनातन वेद ही है। पूर्वानुभूत ज्ञानका स्परण करना ही सूति है। सूत्यादि धर्म पाँच प्रकारके होते हैं। इन धर्मोंका पालन करनेसे सर्वा और मोक्षकी प्राप्ति होती है तथा इस लोकमें सुख, यश और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। पाहला वेद-धर्म है। दूसरा है आश्रम-धर्म अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। तीसरा है वर्णश्रीम-धर्म अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चौथा है गुणधर्म और पाँचवाँ है नैमित्तिक धर्म—ये ही सूत्यादि पाँच प्रकारके धर्म कहे गये हैं। वर्ण और आश्रमधर्मके अनुसार अपने कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए कर्मोंको सम्पादित करना ही वर्णश्रीम और आश्रमधर्म कहलाता है। जिस धर्मका प्रवर्तन

गुणके द्वारा होता है, वह गुणधर्म कहलाता है। किसी निमित्तको लेकर जो धर्म प्रवर्तित होता है, उसे नैमित्तिक धर्म कहते हैं। यह नैमित्तिक धर्म जाति, द्रव्य तथा गुणके आधारपर होता है।

निषेध और विधि-रूपमें इसमें दो प्रकारके होते हैं। सूतियाँ पाँच प्रकारकी हैं—दृष्ट-सूति, अदृष्ट-सूति, दृष्टादृष्ट-सूति, अनुवाद-सूति और अदृष्टादृष्ट-सूति। सभी सूतियोंका मूल वेद ही है। सूतिधर्मके साधन-स्थान ब्रह्मावर्त, पश्यक्षेत्र, मध्यदेश, आर्यावर्त तथा यज्ञिय आदि देश हैं। सरस्वती और दुष्टदूती (कुरुक्षेत्रके दक्षिण सीमाकी एक नदी) इन दो देव-नदियोंके बीचका जो देश है वह देव-निर्मित देश ब्रह्मावर्त नामसे कहा जाता है। हिमाचल और विष्वापर्वतके बीचके देशको जो कुरुक्षेत्रके पूर्व और प्रयागके पश्चिममें स्थित है उसे मध्यदेश कहा जाता है। पूर्व-समुद्र तथा पश्चिम-समुद्र, हिमालय तथा विष्वाचल पर्वतके बीचके देशको आर्यावर्त देश कहा जाता है। जहाँ कृष्णसार मृग (कल्सूरी मृग) विचरण करते हैं और स्वभावतः निवास करते हैं, वह यज्ञिय देश है। इनके अतिरिक्त दूसरे अन्य देश मेलछु-देश हैं जो

यज्ञ आदिके योग्य नहीं हैं। द्विजातियोंके चाहिये कि विचारपूर्वक इन देशोंमें निवास करें।

भगवान् आदित्यने पुनः कहा—खगराज ! अब मैं आश्रमधर्म बतला रखा हूँ। ब्रह्मवर्याश्रम-धर्म, गृहस्थाश्रम-धर्म, वानप्रस्थाश्रम-धर्म और संन्यासाश्रम-धर्म—क्रमसे इन चार प्रकारसे जीवनयापन करनेको आश्रमधर्म कहा जाता है। एक ही धर्म चार प्रकारसे विभक्त हो जाता है। ब्रह्मवर्याश्रमके गायत्रीकी डपासना करनी चाहिये। गृहस्थके संतानोत्पत्ति और आहारण, देव आदिकी पूजा करनी चाहिये। वानप्रस्थीको देवब्रत-धर्मका और संन्यासीको नैषिक धर्मका पालन करना चाहिये। इन चारों आश्रमोंके धर्म वेदमूलक हैं। गृहस्थके शतुर्वालमें मन्त्रपूर्वक गर्भाधान-संस्कार करना चाहिये। तीसरे मासमें पुंसवन तथा छठे अथवा सातवें मासमें सीमन्तोत्प्रयान-संस्कार करना चाहिये। जन्मके समय जातकर्म-संस्कार करना चाहिये। जातक (जिन्) को स्वर्ण, धी, मधुका मन्त्रोद्घारा प्राशन करना चाहिये। जन्मसे दसवें, ग्यारहवें या बारहवें दिन शुभ मुहूर्त, तिथि, नक्षत्र, योग आदि देवकर नामकरण-संस्कार करना चाहिये। शास्त्रानुसार छठे मासमें अत्रप्राशन करना चाहिये। सभी द्विजाति बालकोंका चूडाकरण-संस्कार एक वर्ष अथवा तीसरे वर्षमें करना चाहिये। ब्रह्मण-बालकका आठवें वर्षमें, क्षत्रियका ग्यारहवें और वैश्यका

बारहवें वर्षमें यज्ञोपवीत-संस्कार करना उत्तम होता है। गुरुसे गायत्रीकी दीक्षा प्रारूप कर वेदाध्ययन करना चाहिये। विद्याध्ययनके पश्चात् गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये और गुरुको यथेष्ट सुवर्णादि देवत प्रसन्न करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर अपने समान वर्णवाली उत्तम गुणोंसे युक्त कन्यासे विवाह करना चाहिये। जो कन्या माता-पिताके कुलसे सात पीढ़ीतकली न हो और समान गोक्रकी न हो ऐसी अपने वर्णकी कन्यासे विवाह करना चाहिये।

विवाह आठ प्रकारके होते हैं—ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। वर और कन्याके गुण-दोषको भलीभांति परस्परके बाद ही विवाह करना चाहिये। कन्याएँ अवस्था-भेदसे चार प्रकारकी होती हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—गौरी, नगिका, देवकन्या तथा गोहिणी। सात वर्षकी कन्या गौरी, दस वर्षकी नगिका, बारह वर्षकी देवकन्या तथा इससे अधिक आयुकी कन्या गोहिणी (रजस्वला) कहलाती है। निन्दित कन्याओंसे विवाह नहीं करना चाहिये। द्विजातियोंको अप्रिके साक्ष्यमें विवाह करना चाहिये। स्त्री-पुरुषके परस्पर मधुर एवं दृढ़ सम्बन्धोंसे धर्म, अर्थ और क्रमकी उत्पत्ति होती है और वही मोक्षका कारण भी है।

(अध्याय १८१-१८२)

श्राद्धके विधिध भेद तथा वैष्णवेद-कर्मकी महिमा

भगवान् सूर्यनि अनूह (अरुण)से कहा—अहुण ! द्विजमात्रको विधिपूर्वक पञ्च-महायज्ञ—भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, दैवयज्ञ और मनुष्ययज्ञ करना चाहिये। बलिष्ठेष्टदेव करना भूतयज्ञ, तर्पण करना पितृयज्ञ, वेदका अध्ययन और अध्यापन करना ब्रह्मयज्ञ, हवन करना देवयज्ञ तथा घरपर आये हुए अतिथियोंसे सल्वारपूर्वक भोजन आदिसे संतुष्ट करना मनुष्ययज्ञ कहा जाता है।

श्राद्ध बारह प्रकारके होते हैं—नित्य-श्राद्ध, नैषितिक-श्राद्ध, कार्य-श्राद्ध, वृद्धि-श्राद्ध, सपिण्डन-श्राद्ध, पार्वण-श्राद्ध, गोष्ठ-श्राद्ध, शुद्धि-श्राद्ध, कर्मज्ञ-श्राद्ध, दैविक श्राद्ध, औपचारिक श्राद्ध तथा सांख्यतरिक श्राद्ध। तिल, ब्रीहि (धान्य), जल, दूध, फल, मूल, शाक आदिसे पितरोंकी

संतुष्टिके लिये प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, वह नित्य श्राद्ध है। एकोदिष्ट श्राद्धको नैषितिक-श्राद्ध कहते हैं। इस श्राद्धको विधिपूर्वक सम्पन्न कर अयुग्म (विषम संख्या) ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। जो श्राद्ध करनापरक किया जाता है, वह काम्य-श्राद्ध है। इसे पार्वण-श्राद्धकी विधिसे करना चाहिये। वृद्धिके लिये जो श्राद्ध किया जाता है, उसे वृद्धि-श्राद्ध कहते हैं। ये सभी श्राद्धकर्म पूर्वाह्न-कालमें उपवासी होकर करने चाहिये। सपिण्डन-श्राद्धमें चार पात्र बनाने चाहिये। उनमें गन्ध, जल और तिल छोड़ना चाहिये। प्रेत-पात्रका जल पितृ-पात्रमें छोड़े। इसके लिये 'ये समानाः' (यजु० १९। ४५-४६) मन्त्रोन्न वाट करना चाहिये।

स्त्रीका भी एकोद्दिण श्राद्ध करना चाहिये। अमावास्या तथा किसी पर्वपर जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण-श्राद्ध कहते हैं। गौओंके लिये किया जानेवाला श्राद्ध-कर्म गोष्ठ-श्राद्ध कहा जाता है। पितरोंकी तृप्तिके लिये, सम्पत्ति और सुखकी प्राप्ति-हेतु तथा विद्वानोंकी संतुष्टिके निमित्त जो ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है, वह शुद्धयर्थ-श्राद्ध है। गर्भाधान, सीमन्तोत्रयन तथा पुंसवन-संस्कारोंके समय किया गया श्राद्ध कर्मङ्क-श्राद्ध है। यात्रा आदिके दिन देवताके उद्देश्यसे धीके द्वारा किया गया हवनादि कार्य दैविक श्राद्ध कहलाता है। शरीरकी वृद्धि, शरीरकी पूष्टि तथा अश्ववृद्धिके निमित्त किया गया श्राद्ध औपचारिक श्राद्ध कहलाता है। सभी श्राद्धोंमें सांवत्सरिक श्राद्ध सबसे श्रेष्ठ है। इसे मृत व्यक्तिकी तिथिपर करना चाहिये। जो व्यक्ति सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं करता, उसकी पूजा न मैं ग्रहण करता हूँ, न विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र एवं अन्य देवगण ही ग्रहण करते हैं। इसलिये प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक कर्म मृत व्यक्तिकी तिथिपर सांवत्सरिक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति माता-पिताका कार्यक्रम श्राद्ध नहीं करता, वह घोर तमिल नामक नरकको प्राप्त करता है और अन्तमें सूकर-योनिमें उत्पन्न होता है।

अरुणने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति माता-पिताकी मृत्युकी तिथि, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको किस दिन श्राद्ध करना चाहिये? जिससे वह नरकभागी न हो?



मातृ-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

भगवान् आदित्यने कहा—अरुण! रात्रिमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। रात्रिमें किया गया श्राद्ध रात्रसी श्राद्ध कहा जाता है। दोनों संध्याओंमें और सूर्यके अस्त होनेपर भी श्राद्ध करना निषिद्ध है।

अरुणने पूछा—भगवन्! माताका श्राद्ध किस प्रकार करना चाहिये और माता किन्हें माना गया है? नान्दीमुख-पितरोंका पूजन किस प्रकार करना चाहिये, इन्हें मुझे बतानेकी कृपा करे।

भगवान् आदित्यने कहा—खगशार्दूल! मैं मातृ-श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, उसे सुनिये।

मातृश्राद्धमें पूर्वाह्न-कालमें आठ विद्वान् ब्राह्मणोंको

भगवान् आदित्यने कहा—पक्षिग्राज अरुण! जो व्यक्ति माता-पिताके मृत्युके दिन, मास और पक्षको नहीं जानता, उस व्यक्तिको अमावास्याके दिन सांवत्सरिक नामक श्राद्ध करना चाहिये। जो व्यक्ति मार्गशीर्ष और माघमें पितरोंके उद्देश्यसे विशिष्ट भोजनाद्वारा मेरी पूजा-अर्चना करता है, उसपर मैं अति प्रसन्न होता हूँ और उसके पितर भी संतुष्ट हो जाते हैं। पितर, गौ तथा ब्राह्मण—ये मेरे अत्यन्त इष्ट हैं। अतः विशेष भक्तिपूर्वक इनकी पूजा करनी चाहिये।

वेद-विक्रियद्वारा और खोद्वारा प्राप्त किया गया धर्म पितृकार्य और देव-पूजनादिमें नहीं लगाना चाहिये। वैश्वदेव कर्मसे हीन और भगवान् आदित्यके पूजनसे हीन वैश्वदेव ब्राह्मणके भी निन्य समझना चाहिये। जो वैश्वदेव किये विना ही भोजन कर लेता है वह मूर्ख नरकको प्राप्त करता है, उसका अत्र-पाक व्यर्थ है। प्रिय हो या अप्रिय, मूर्ख हो या विद्वान्, वैश्वदेव कर्मके समय आया हुआ व्यक्ति अतिथि होता है और वह अतिथि स्वर्गका सोपानरूप होता है। जो विना तिथिका विचार किये ही आता है उसे अतिथि कहते हैं। वैश्वदेव-कर्मके समय जो न तो पहले कभी आया ही और न ही उसके पुनः आनेकी सम्भावना हो तो उस व्यक्तिको अतिथि जानना चाहिये। उसे साक्षात् विश्वदेवके रूपमें ही समझना चाहिये।

(अध्याय १८३-१८४)

भोजन करना चाहिये तथा एक और अन्य नवम सर्वदैवत्य ब्राह्मणको भी भोजन देना चाहिये। इस प्रकार नीं ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। यज, तिल, दधि, गन्ध-पूष्णादिसे युक्त अर्चद्वारा सबकी पूजा करनी चाहिये तथा सभी ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको मधुर मिष्ठान भोजन करना चाहिये। भोजनमें कटु एवं नहीं होने चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर पिण्डदान देना चाहिये। दही-अक्षतका पिण्ड बनाये। एक चौरस मण्डप बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करे। सब्ज छोकर हाथसे पूर्वांग कुशों तथा पुष्पोंको चढ़ाना चाहिये। माता, प्रमाता, वृद्धप्रमाता, पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही तथा अन्य अपने कुलमें

जो भी माताएँ हों, उन्हें आदरपूर्वक निमन्त्रित करना चाहिये । इस प्रकार माताओंको उद्दिष्ट कर छः पिण्ड बनाकर पूजन करना चाहिये । नान्दीमुखके उद्दिष्ट कर पाँच उत्तम ब्राह्मणोंके पाँच पितरोंके रूपमें भोजन करना चाहिये । नान्दीमुख-आद्वामें ब्राह्मणोंको विधिवत् भोजन कराकर उनको प्रदक्षिणा करनी चाहिये ।

खगपते ! श्राद्धमें दौहित्र अर्थात् नाती, कुतुप वेला (एक

बजे दिनका समय) और तिल—ये तीन पवित्र माने गये हैं तथा तीन प्रशांसा-योग्य कहे गये हैं—शुद्धि, अक्रोध और शीघ्रता न करना । एक बस्त धारण कर देव-पूजन और पितरोंके कर्म नहीं करने चाहिये । बिना उत्तरीय बस्त धारण किये पितर, देवता और मनुष्योंका पूजन, अर्चन तथा भोजन आदि सब कार्य निष्कर्तु होता है ।

(अध्याय १८५)

सौरधर्ममें शुद्धि-प्रकरण

भगवान् भास्करने कहा—खगाधिष ! ब्राह्मणोंके नित्य पवित्र तथा मधुरभाषी होना चाहिये; उन्हें प्रतिदिन खानादिसे पवित्र हो चन्दनादि सुगम्भित द्रव्योंके धारणकर देवताओंका पूजन आदि करना चाहिये । सूर्यको निष्ठयोजन नहीं देखना चाहिये और नग्र स्त्रीको भी नहीं देखना चाहिये । मैथुनसे दूर रहना चाहिये । जलमें मूँग तथा विष्टुक चरित्याग नहीं करना चाहिये । शास्त्रोक्त नियमोंके अनुसार कर्म करने चाहिये । शास्त्र-वर्णित कर्मानुष्ठानके अतिरिक्त कोई भी व्रतादि नहीं करने चाहिये ।

खगाधिषते ! अभक्ष्य-भक्षण सभी वर्णोंकि लिये वर्जित है । द्रव्यकी शुद्धि होनेपर ही कर्मकी शुद्धि होती है अन्यथा कर्मके फलकी प्राप्तिमें संशय ही बना रहता है । जातिसे दुष्ट, क्रियासे दुष्ट, कालसे दुष्ट, संसर्गसे दुष्ट, आश्रयसे दुष्ट तथा सहललेख (स्वभावतः निनित एवं अभक्ष्य) पदार्थमें अथवा दूषित हृदयके एवं कपटी व्यक्तिके स्वभावमें परिवर्तन नहीं होता । लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुता, बैंगन (सफेद) तथा मूँगी (लाल) आदि जात्या दूषित हैं । इनका भक्षण नहीं करना चाहिये । जो वस्तु क्रियाके द्वारा दूषित हो गयी हो अथवा पतितोंके संसर्गसे दूषित हो गयी हो, उसका प्रयोग न करे । अधिक समयतक रखा गया पदार्थ कालदूषित कहलाता है, वह हानिकर होता है, पर दही तथा मधु आदि पदार्थ कालदूषित नहीं होते । सुरा, लहसुन तथा सात दिनके अंदर व्यायी हुई गायके दूधसे युक्त पदार्थ और कुत्तेद्वारा स्पर्श किये गये पदार्थ संसर्ग-दुष्ट कहे जाते हैं । इन पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये । शुद्धसे तथा विकलाङ्क आदिसे स्पृष्ट पदार्थ आश्रय-दूषित कहा जाता है । जिस वस्तुके भक्षण करनेमें

मनमें स्वभावतः घृणा उत्पन्न हो जाती है, जैसे पुरीष (विष्टा)के प्रति स्वभावतः घृणा उत्पन्न होती है—उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये । वह सहललेख दोषयुक्त पदार्थ कहा गया है । खीर, दूध, पाकादिका भक्षण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही करना चाहिये ।

सपिण्डमें दस दिन, बारह दिन अथवा पंद्रह दिन और एक मासमें प्रते-शुद्धि हो जाती है । सूतकशौच तथा मरणाशौचमें दस दिनके भीतर किसी व्यक्तिके यहाँ भोजन नहीं करना चाहिये । दशाग्रात्र एवं एकादशाहके भीतर जानेपर बाहरवे दिन स्नान करनेसे शुद्धि हो जाती है । संवत्सर पूर्ण हो जानेपर स्नान-मात्रसे ही शुद्धि हो जाती है । सपिण्डमें जन्म और मृत्यु होनेपर अशौच लगता है । दौत आनेतकके बालककी मृत्यु हो जानेपर सद्यः शुद्धि हो जाती है । चूडाकरणके पहले बालककी मृत्यु हो जानेपर एक दिन-रातकी अशुद्धि होती है तथा चूडाकरणके बाद और यज्ञोपवीत लेनेके पहले मृत्यु होनेपर त्रिरात्र अशुद्धि होती है और इसके अनन्तर दशाग्रात्रकी अशुद्धि होती है । गर्भ-स्वाव हो जानेपर तीन ग्रन्तिके पश्चात् जलसे स्नान करनेके बाद शुद्धि होती है । असपिण्डी (एवं सगोषी)-की मृत्यु होनेपर तीन अहोग्रात्रके बाद शुद्धि होती है । यदि केवल शब्द - यज्ञा करता है तो स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है ।

द्रव्यकी शुद्धि आगमे तपाने, मिठी और जलसे धोने तथा मल हटाने, प्रक्षालन करने, स्पर्श और प्रोक्षण करनेसे होती है । द्रव्य-शुद्धिके पश्चात् स्नान करनेसे शुद्धि होती है । प्रातःकालका स्नान नित्य-स्नान है, ग्रहणमें स्नान करना काम्य-स्नान है तथा शौच और शौचादिके पश्चात् जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान है, इससे पापादिको निवृत्ति होती है ।

(अध्याय १८६)

श्रद्धाकी महिमा, खस्त्रोल्क-मन्त्रका माहात्म्य तथा गौकी महिमा

अरुणने पूजा—भगवन् अदित्यदेव ! मनुष्य किस पुण्यकर्मका सम्पादन कर स्वर्ग जाते हैं ? कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ और ज्ञानयज्ञ—इन पाँच यज्ञोंमें सर्वोत्तम यज्ञ कौन है ? इन यज्ञोंका यज्ञ फल है और इनसे कौन-सी गति प्राप्त होती है ? धर्म और अधर्मके कितने भेद कहे गये हैं ? उनके साधन क्या हैं और उनसे कौन-सी गति होती है ? नारकी पुरुषोंके पुनः पृथ्वीपर आनेपर भोगसे शेष कर्मके कौन-कौनसे चिह्न उपलब्ध रहते हैं ? इस धर्माधर्मसे व्याप्त भवसागर तथा गर्भमें आगमन-रूपी दुःखसे कैसे मुक्ति प्राप्त होती है ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् सूर्य बोले—अरुण ! स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)के फलत्रयोंदेनेवाले तथा नरकरूपी समद्वये पार कराने-वाले, पापहरी एवं पुण्यप्रद धर्मको सुनो। धर्मके पूर्वमें तथा मध्यमें और उसके अन्तमें श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धानिष्ठ ही धर्म प्रतिष्ठित होता है, अतः धर्म श्रद्धामूलक ही है। वेद-मन्त्रोंके अर्थ अतीत गूढतम हैं। उनमें प्रधान पुरुष परमेश्वर अधिष्ठित हैं, अतः इन्हें श्रद्धाके आश्रयसे ही ग्रहण किया जा सकता है। ये इस बातपर चक्षुसे नहीं देखे जाते। श्रद्धारहित देवता भी भाँति-भाँतिके शारीरको कष्ट देनेपर तथा अल्पाधिक अर्थव्याप्ति करनेपर भी धर्मके सूक्ष्मरूप वेदमय परमात्माको नहीं प्राप्त कर सकते। श्रद्धा परम सूक्ष्म धर्म है, श्रद्धा यज्ञ है, श्रद्धा हवन, श्रद्धा तप, श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह सम्पूर्ण जगत् श्रद्धामय ही है, अश्रद्धासे सर्वस्व जीवन देनेपर भी कुछ फल नहीं होता। बिना श्रद्धाके किया गया कार्य सफल नहीं होता। अतः मानवको श्रद्धा-सम्पन्न होना चाहिये*।

हे खगश्रेष्ठ ! अब मेरे मण्डलके विषयमें सुनो। मेरा कल्याणमय मण्डल खस्त्रोल्क नामसे विस्थात है। यह तीनों देवों एवं तीनों गुणोंसे परे एवं सर्वज्ञ है। यह सर्वशक्तिमान् है। '३०' इस एकाक्षर मन्त्रमें यह मण्डल अवस्थित है। जैसे घोर

संसार-सागर अनादि है वैसे ही खस्त्रोल्क भी अनादि और संसार-सागरका शोधक है। जैसे व्याधियोंके लिये ओषधि होती है वैसे ही यह संसार-सागरके लिये ओषधि है। मोक्ष चाहनेवालोंके लिये मुक्तिका साधन और सभी अर्थोंका साधक है। खस्त्रोल्क नामका यह मेरा मन्त्र सदा उचारण एवं स्मरण करने योग्य है। जिसके हृदयमें यह '३०' नमः खस्त्रोल्काय' मन्त्र स्थित है, उसीने सब कुछ पढ़ा है, सुना है और सब कुछ अनुष्ठित किया है—ऐसा समझना चाहिये।

मनीषियोंने इस खस्त्रोल्कको मार्तिष्ठके नामसे कहा है। उसके प्रति श्रद्धायुक्त होनेपर पुण्य प्राप्त होता है और अश्रद्धासे अधःपतन होता है। सूर्य-सम्बन्धी वचनको कहनेवाले गुरुकी सूर्योंके समान पूजा करनी चाहिये। वह गुरु भवसागरमें निमग्र व्यक्तिका उद्धार कर देता है। सौरधर्मरूपी शौतल जलके द्वारा जो अज्ञानरूपी वहिसे संतास मनुष्यको शान करता है, उसके समान गुरु कौन होगा ? जो भक्तोंको ज्ञानरूपी अमृतसे आश्रित करते हैं, भला उनकी कौन पूजा नहीं करेगा। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)की प्राप्तिके लिये देवाधिदेव सूर्यके द्वारा जो वाक्य कहे गये हैं, वे अतिशय कल्याणकरी हैं। राग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम, तृष्णाका अनुसरण करनेवाले व्यक्तिका कहा हुआ बाल्य नरकका साधन होनेसे दुर्घटित कहा जाता है। अविद्यालमक संसारके फ़ेश-साधक मृदुल आलतापवाले संस्कृत वाक्यमें भी व्या लाभ है ? जिस वाक्यके सुननेसे राग-द्वेष आदिका नाश एवं पुण्य प्राप्त होता है, वह कठोर वाक्य भी अतिशय शोभाजनक है। स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, महान् शास्त्र यदि धर्म-साधक न बन सके तो इनका अध्ययनपात्र अपनी आयुके व्यतीत करनेके लिये ही है। सहस्रों वर्षोंकी आयु प्राप्त करनेपर भी शास्त्रका अन्त नहीं मिलता। अतः सभी शास्त्रोंको छोड़कर अक्षर तन्मात्र (परमात्मा) का ज्ञान कर परलोकके अनुरूप आचरण करना चाहिये। मनुष्योंके समर्थ

* श्रद्धापूर्वः सन्ता धर्मः श्रद्धामध्यानसंस्कृतः। श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठु धर्मः श्रद्धा श्रवणिता ॥

श्रुतिप्रवर्तनः सूक्ष्मः प्रधानपुरुषेभ्यः। श्रद्धामात्रं गृह्णने च परेण च पश्यता ॥

करणहेतीर्ण व्यहुर्भिर्वैकर्त्यव्य गृह्णन्ति। धर्मः सम्पाद्यते सूक्ष्मः श्रद्धालीनः सूर्योऽपि ॥

श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाद्यते तपः। श्रद्धा मोक्षस्व स्वर्गात् श्रद्धा सर्वविद्य जगत् ॥

सर्वेन्म जीविते नामि ददादश्रद्धा च चः। नव्यायात् स फलं विवित् तम्यान्दृद्यापो भवत् ॥ (ब्राह्मणर्थ १८७। ९—१३)

शारीरसे भी क्या लाभ है जो पारलैकिक पुण्य-भास्करे बहन करनेमें असमर्थ है। जो सौरज्ञानके माहात्म्यको उच्चारण करनेमें असमर्थ है, वह शक्तिसम्पन्न और पण्डित होते हुए भी मूर्ख है। इसलिये जो सौर-ज्ञानके सद्व्याक्तिकी महिमामें तत्पर रहता है, वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी और जितेन्द्रिय है। जो नृप गुरुको सम्पूर्ण पृथिवी, धन और सुवर्ण आदि देकर भी अदि अन्यायपूर्वक सौर-ज्ञानकी जिज्ञासा करता है अर्थात् अन्यायाचरण करते हुए पूछता है तो उसे पठक्षर-मन्त्रका उपदेश गुरुको नहीं देना चाहिये। जो भगवान् सूर्यके धर्मको न्यायपूर्वक विनष्ट भावसे सुनता है और कहता है, वह उचित स्थानको प्राप्त करता है, अन्यथा उसके विपरीत नरकको जाता है।

जो भगवान् सूर्यके पठक्षर-मन्त्रसे विद्यानपूर्वक गोदुग्ध-द्वारा सूर्यकी पूजा करता है वह मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। देवासुरोद्वारा मन्त्र करनेपर क्षीरसागरसे सभी लोकोंकी मातृस्वरूपा पाँच गौएँ उत्पन्न हुई—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुमना तथा शोभनावती। गौएँ तेजमें सूर्यके समान हैं। ये सम्पूर्ण संसारका उपकार करनेके लिये एवं देवताओंकी तृप्तिके लिये और मुझे ज्ञान करनेके लिये उत्पन्न हुई हैं। ये मेरा ही आधार लेन्कर स्थित हैं। गौओंके सभी अङ्ग पवित्र हैं। उनमें छहों रस निहित हैं। गायके गोवर, मूत्र, गोरोचन, दूध, दही तथा घृत—ये छः पदार्थ परम पवित्र हैं तथा सभी सिद्धियोंके देवेशाले हैं। सूर्यका परम प्रिय विलवृक्ष गोमयसे ही उत्पन्न हुआ है, उस वृक्षपर कमलहस्ता लक्ष्मी विराजमान रहती है, अतः यह श्रीबृक्ष कहा जाता है। गोमयसे पहुँ उत्पन्न होता है और उससे कमल उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन परम मङ्गलमय, पवित्र और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। गोमूत्रसे सभी देवोंका

आग्नाह-स्वरूप विशेषकर, भास्करके लिये भोग्य एवं प्रियदर्शन सुगम्भित गुणगुल उत्पन्न हुआ है। जगत्के सभी बीज क्षीरसे उत्पन्न हुए हैं। कामनाकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गल्य वस्तु दहीसे उत्पन्न समझें। देवोंका अतिशय प्रिय अमृत ब्रूतसे उत्पन्न है, अतः गौ, दूध, दहीसे भगवान् सूर्यको ज्ञान कराना चाहिये। अनन्तर उषा जल और क्यायसे स्वप्न कराना चाहिये। फिर शीतल जलसे ज्ञान कराकर गोरोचनका लेपन एवं विलवृक्ष, कमल और नीलकमलसे पूजन करना चाहिये। शर्करायुक्त गुणगुलसे भगवान् सूर्यको आप्य प्रदान करे। दूध, दही, भात, मधुके साथ शर्करा एवं विविध भक्ष्य पदार्थोंको निषेद्धित करे। इसके बाद भगवान् भास्करकी प्रदक्षिणा कर उससे क्षमा-याचना करे।

इस विधिसे जो दिनपति भगवान् भास्मुकी पठक्ष-पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्तकर अपने कुलकी इक्षीस पीडियोंके स्वर्गमें ले जाता है तथा उन्हें वहीं प्रतिष्ठित कर स्वयं ज्योतिष्क नामक स्थानको प्राप्त करता है। भगवान् भास्करकी पूजामें पत्र, पूष्प, फल, जल जो भी अपित होता है वह सब तथा सूर्य-सम्बन्धी गौएँ भी सूर्यलोकको प्राप्त करती हैं, इसमें संदेह नहीं है। देश, काल तथा विधिके अनुरूप श्रद्धापूर्वक सुपात्रको दिया गया अल्प भी दान अक्षय होता है। हे बीर ! तिलका अर्धपरिमाणमात्र सत्याक्रोशे दिया गया श्रद्धापूर्वक दान सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। जिसने ज्ञानहस्ती जलसे ज्ञान कर लिया है और शीलसूखी भस्मसे अपनेको शुद्ध कर लिया है, वह सभी पात्रोंमें उत्तम सत्याक्रोश माना गया है। जप, इन्द्रियदमन और संयम मनुष्यको संसार-सागरसे पार उत्तरनेवाले साधन हैं।

(अध्याय १८७)

पञ्चमहायज्ञ एवं अतिथि-माहात्म्य-वर्णन, सौर-धर्मपूर्णे दानकी महत्ता

और पात्रापात्रका निर्णय तथा पञ्च महापातक

सप्ताश्ववाहन (भगवान् सूर्य) ने कहा—हे बीर ! जो प्राणी सूर्य, अग्नि, गुरु तथा ब्राह्मणको निषेद्धन किये विना

गृहस्थ मनुष्योंके कृपिकार्यसे, वाणिज्यसे, क्रोध और असल्य आदिके आचरणसे तथा पञ्चसूना^१-दोषसे पाप होते हैं। सूर्य, गुरु, अग्नि और अतिथि आदिके सेवारूप पञ्चमहायज्ञोंमें ये

१-भोजन पक्ष्यांकन स्थान (चूला), आटा आदि पीसनेका स्थान (चक्की आदि), मरबाला आदि कूटने-पीसनेका स्थान (लोडा, मिल्लट आदि), जल रखनेका स्थान तथा झांडा देनेवाले वस्त्र—इनमें अनन्याने ही हिसाकी मध्यावना रहती है। अतः गृहस्थके लिये इन्हें ही पञ्चमना-दोष करा राय है।

पाप नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य पापोंसे भी वह लिङ्ग नहीं होता, अतः इनकी नित्य पूजा करनी चाहिये। देवाधिदेव दिवाकरके प्रति जो इस प्रकार भक्ति करता है, वह अपने पितरोंको सभी पापोंसे विमुक्त कर स्वर्ग ले जाता है।

हे खग ! भगवान् सूर्यके दर्जनमात्रसे ही गङ्गा-स्नानका फल एवं उन्हें प्रणाम करनेसे सभी तीयोंका फल प्राप्त हो जाता है तथा सभी पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। संध्या-समयमें सूर्यकी सेवा करनेवाला सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक बार भी भगवान् सूर्यकी आराधना करनेसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पितृगण तथा सभी देवगण एक ही साथ पूजित एवं संतुष्ट हो जाते हैं।

आद्यमें भगवान् सूर्यकी पूजा करने तथा सौर-भक्तोंको भोजन करनेसे पितृगण तृप्त हो जाते हैं। पुण्यवेत्ताको आते हुए देखकर सभी ओषधियाँ यह कहकर आनन्दसे नृत्य करने लगती हैं कि आज हमें अक्षय स्वर्गं प्राप्त होगा। पितृगण एवं देवगण अतिथिके रूपमें लोकके अनुग्रह और श्रद्धाके परीक्षणके लिये आते हैं, अतः अतिथिको आया हुआ देखकर साथ जोड़कर उसके सम्मुख जाना चाहिये तथा स्वागत, आसन, पादा, अर्च, स्नान, अब्र आदिद्वारा उसकी सेवा करनी चाहिये। अतिथि रूप-सम्पन्न है या कुरुप, घलिन वस्त्रधारी है अथवा स्वच्छ वस्त्रधारी इसपर विद्वान् पुरुषको विचार नहीं करना चाहिये; उसका यथेष्ट स्वागत करना चाहिये।

अहण ! दान सत्याग्रहको ही देना चाहिये, जैसे कच्चे मिट्टीके पात्रमें रखा हुआ द्रव्य—जल आदि पदार्थ नष्ट हो जाता है, जैसे ऊपर-भूमिमें बोया गया बीज और भस्ममें हवन किया गया हव्य पदार्थ निष्फल हो जाता है वैसे ही अपाग्रहको दिया गया दान भी निष्फल हो जाता है।

खगश्रेष्ठ ! जो दान करुणापूर्वक श्रद्धाके साथ प्राणियोंको दिया जाता है, वह सभी कर्मोंमें उत्तम है। हीन, अन्य, कृपण, बाल, वृद्ध तथा औंतुरुको दिये गये दानका फल अनन्त होता है। साथु पुरुष दाताके दानको अपने स्वार्थका उद्देश्य न

रखकर ग्रहण करते हैं। इससे दाताका उपकार होता है। कोई अर्थी यदि घरपर आये तो कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसका आदर नहीं करेगा। घर-घर याचना करनेवाला याचक पूज्य नहीं होता। कौन दाता है और कौन याचक इसका भेद देने और लेनेवालेके हाथसे ही सूचित हो जाता है। जो दाता व्यक्ति याचकको आया हुआ देखकर दान देनेकी अपेक्षा उसकी पात्रतापर विचार करता है, वह सभी कर्मोंको करता हुआ भी पारमार्थिक दाता नहीं है। संसारमें यदि याचक न हो तो दानधर्म कैसे होगा ? इसलिये याचकको 'स्वागत है, स्वागत है'—यह कहते हुए दान देना चाहिये।

याचकको प्रेमपूर्वक आधा ग्रास भी दिया जाय तो वह श्रेष्ठ है, किन्तु बिना प्रेमका दिया हुआ बहुत-सा दान भी व्यर्थ है, ऐसा घनीभियोंने कहा है। इसलिये अनन्त फल चाहनेवाले व्यक्तिको सत्करणपूर्वक दान देना चाहिये। इससे मरणेपर भी उसकी कीर्ति बनी रहती है। प्रिय एवं मधुर वचनोद्घार दिया गया दान कल्याणकारी है, किन्तु कठोरतासे असत्करणपूर्वक दिया गया दान युक्त दान नहीं है। अन्तरामासे कुरुद्वे देखकर याचकको दान देनेसे न देना अच्छा है। प्रेमसे रहित दान न धर्म है, न धन है, न प्रीति है। दान, प्रदान, नियम, विज्ञ, ध्यान, हवन और तप—ये सभी क्रोधके साथ करनेपर निष्फल हो जाते हैं।

श्रद्धाके साथ आदरपूर्वक ग्रहीताका अर्चन कर दान देनेवाले तथा श्रद्धा एवं आदरपूर्वक दान ग्रहण करनेवाले—दोनों स्वर्गं प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत देना और लेना ये दोनों नरक-प्राप्तिके कारण बन जाते हैं। उदारता, स्वागत, मैत्री, अनुकर्मा, अमत्सर—इन पाँच प्रकारोंसे दिया गया दान महान् फल देनेवाला होता है।

हे खगश्रेष्ठ ! वाराणसी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गङ्गा और समुद्रतट, नैमित्यारण्य, महापुण्य, मूलस्थान, मुण्डीरस्वामी (उड्डीसाका कोणार्कक्षेत्र) कालप्रिय (कालपी), क्षीरिकावास—ये स्थान देवताओं और पितरोंसे सेवित कहे गये हैं। सभी सूर्याश्रम, पर्वतोंसे युक्त सभी नदियाँ, गी, मिढ़

१- न तद्वन्मसात्करणप्रयमालिनीकृत्य् । यरं न दत्तमर्थिष्यः संकुद्देनात्मगत्वा ॥

न तद्वन्म न च प्रीतिर्थम् । प्रियवर्जितः । दानप्रदाननिमयमध्यायाने

यत्वेनपि कृतं सर्वं क्रेष्ठोऽस्य निष्फलं स्वर्ग ॥

हुन् तपः ।

(ब्राह्मपर्व १८९ । १९-२०)

और मुनियोंसे प्रतिष्ठित स्थान पुण्यसेत्र कहे गये हैं। सूर्यमन्दिरसे युक्त स्थानोंमें रहनेवालेको दिया गया थोड़ा भी दान सेवके प्रभावसे अनन्त फलप्रद होता है। सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, उत्तरायण, विषुव, व्यतीपात, संक्रान्ति—ये सब पुण्यकाल कहे गये हैं। इनमें दान देनेसे पुण्यको वृद्धि होती है। भक्तिभाव, परमप्रीति, धर्म, धर्मभावना तथा प्रतिष्ठाति—ये पौर्ण श्रद्धाके पर्याय हैं। श्रद्धापूर्वक विधानके साथ सुप्रब्रह्मो दिया गया दान उत्तम एवं अनन्त फलप्रद कहा गया है, अतः अक्षय पुण्यकी इच्छासे श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। इसके विपरीत दिया गया दान भारस्वरूप ही है। आर्त, दीन और गुणवान्-को श्रद्धाके साथ थोड़ा भी दिया गया दान सभी कामनाओंका पूरक और सभी श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करनेवाला होता है। मनीषियोंने श्रद्धाको ही दान माना है। श्रद्धा ही दान, श्रद्धा ही परम तप तथा श्रद्धा ही यज्ञ और श्रद्धा ही परम उपवास है। अहिंसा, क्षमा, सत्य, नम्रता, श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप तथा ध्यान—ये दस धर्मके साधन हैं।

पर-स्त्री तथा परद्रव्यकी अपेक्षा करनेवाला और गुरु, आर्त, अशक्त, विदेशमें गये हुए तथा शक्तुसे पराभूत व्यक्तियोंको कठु देनेवाला पापकर्मा कहा जाता है। ऐसे व्यक्तियोंका परित्याग कर देना चाहिये, किन्तु उसकी भार्या तथा उसके मित्र

एवं पुत्रका अपमान नहीं करना चाहिये। उनका अवमान करना गुहनिन्दाके समान पातक माना गया है। ब्राह्मणको मारनेवाला, सुर-पान करनेवाला, स्वर्ण-चौर, गुरुकी शव्यापर शयन करनेवाला एवं इनके साथ सम्पर्क रखनेवाला—ये पौर्ण महापातकी कहे गये हैं। जो ब्रजेश, द्वेष, भय एवं लोभसे ब्राह्मणका अपमान करता है, वह ब्रह्महत्यार कहा गया है। जो याचना करनेवालेको और ब्राह्मणको बुलाकर ‘मेरे पास कुछ नहीं है’ ऐसा कहकर यिना कुछ दिये लौटा देता है, वह चाप्डालके समान है। देव, द्विज और गौके लिये पूर्वप्रदत्त भूमिका जो अपहरण करता है, वह ब्रह्मघाती है। जो मूर्ख सौंझानको प्राप्तकर उसका परित्याग कर देता है अर्थात् तदनुकूल आचरण नहीं करता, उसे सुर-पान करनेवालेके समान जानना चाहिये। अश्रियोंके परित्यागी, माता और पिताके परित्यागी, कुकर्मके साक्षी, मित्रके हन्ता, सूर्य-भक्तोंके अप्रियकों और पञ्चवज्रोंके न करनेवाले, अभश्य-भक्षण करनेवाले तथा निरपश्य ऋणियोंको मारनेवालेके सर्वाधित्यको प्राप्ति नहीं होती। सर्वजगत्ति भानुकी आराधनासे आत्मलोकका आधिपत्य प्राप्त होता है। अतः भोक्तामीको भोगकी आसक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। जो विरक्त है, शान्तचित्त है, वे सूर्यसम्बन्धी लोकोंको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १८८-१८९)

पातक, उपपातक, यममार्ग एवं यमयातनाका वर्णन

सप्ताहुतिलक भगवान् सूर्यने कहा—खगश्रेष्ठ !
मानसिक, वाचिक तथा कार्यिक-भेदसे पाप अनेक प्रकारके होते हैं, जो नरक-प्राप्तिके कारण हैं, उन्हें मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ—

गौओंके घार्यमें, घनमें, नगरमें और ज्ञाममें आग लगाना आदि, सुरपानके समान महापातक माने गये हैं। पुरुष, लूटी, हाथी एवं घोड़ोंका हरण करना तथा गोचरभूमिमें उत्तराय फसलोंको नष्ट करना, चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, रेशमी वस्त्र आदिकी चोरी करना और धरोहर (थाती) वस्तुका अपहरण करना—ये सभी सुवर्णसेत्यके समान महापातक माने गये हैं। कन्याका अपहरण, पुत्र एवं मिकड़ी खी तथा भगिनीके प्रति दुराचरण, कुमारी कन्या और अन्त्यजकी खीके साथ सहवास, सवर्णके साथ गमन—ये सभी गुरु-शव्यापर शयन (गुरुपत्नी-गमन)के समान महापातक माने गये हैं।

ब्राह्मणको अर्थ देनेका वचन देकर नहीं देनेवाले, सदाचारिणी पत्नीका परित्याग करनेवाले, साधु, वन्य एवं तपस्वियोंका त्याग करनेवाले, गौ, भूमि, सुवर्णको प्रयत्नपूर्वक चुरानेवाले, भगवद्वद्धतीको उत्पीड़ित करनेवाले, धन, धान्य, कूप तथा पशु आदिकी चोरी करनेवाले तथा अपूज्योंकी पूजा करनेवाले—ये सभी उपपातकी हैं।

नारियोंकी रक्षा न करना, ऋणियोंको दान न देना, देवता, अग्नि, साधु, साध्वी, गौ तथा ब्राह्मणकी निन्दा करना पितर एवं देवताओंका उच्छेष, अपने कर्तव्य-कर्मका परित्याग, दुःखोला, नास्तिकता, पशुके साथ कटाचार, रजःस्वलासे दुराचार, अप्रिय बोलना, फूट डालना आदि उपपातक कहे गये हैं।

जो गौ, ब्राह्मण, सत्य-सम्पदा, तपस्त्री और साधुओंके दूषक हैं, वे नरकगामी हैं। परिश्रमसे तपस्या करनेवालेका

छिद्रान्वेषण करनेवाला, पर्वत, गोशाला, अग्नि, जल, वृक्षोंकी छाया, उद्यान तथा देवायतनमें मल-मूत्रका परित्याग करनेवाला, काम, क्रोध तथा मदसे आविष्ट पराये दोषोंके अन्वेषणमें तत्पर, पाषण्डियोंका अनुगामी, मार्ग रोकनेवाला, दूसरेकी सोमाका अपहरण करनेवाला, नीच कर्म करनेवाला, भूत्योंके प्रति अतिशय निर्देशी, पशुओंका दमन करनेवाला, दूसरेकी गुप्त वालोंको कान लगाकर सुनेवाला, गौंको मारने अथवा उसे बार-बार त्रास देनेवाला, दुर्बलकी सहायता न करनेवाला, अतिशय भारसे प्राणीको कष्ट देनेवाला और असमर्थ पशुको जातनेवाला—ये सभी पातकी कहे गये हैं तथा नरकगामी होते हैं। जो परोक्षमें किसी प्रकार भी सरसोंके बराबर किसीका धन चुहाता है, वह निश्चित ही नरकमें जाता है। ऐसे पापियोंको मृत्युके उपरान्त यमलोकमें यातना-शरीरकी प्राप्ति होती है। यमकी आज्ञासे यमदूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं और वहाँ उसे बहुत दुःख देते हैं। अर्थमें करनेवाले प्राणियोंके शास्त्र धर्मराज कहे गये हैं। इस लोकमें जो पर-स्तीगामी हैं, चोरी करते हैं, किसीके साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार करते हैं तो इस लोकका राजा उन्हें दण्ड देता है। परंतु छिपकर पाप करनेवालोंको धर्मराज दण्ड देते हैं। अतः किये गये पापोंका प्रायश्चित्त करना चाहिये। अनेक प्रकारके शास्त्र-कथित प्रायश्चित्तोंके द्वारा पातक नष्ट हो जाते हैं। शरीरसे, मनसे और वाणीसे किये गये पाप बिना भोगे अन्य किसी प्रकारसे कोटि कर्त्त्वोंमें भी नष्ट नहीं होते। जो व्यक्ति स्वयं अच्छा कर्म करता है, कर्मता है या उसक अनुमोदन करता है, वह उत्तम सुख प्राप्त करता है।

सप्ताष्टुतिलक भगवान् सूर्यने पुनः कहा—हे स्वगत्रेषु ! पाप करनेवालोंको अपने पापके निमित्त धोर संत्रास भोगना पड़ता है। गर्भस्थ, जायमान, बालक, तरुण, मध्यम, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, नरपुंसक सभी शरीरधारियोंके यमलोकमें अपने किये गये शुभ और अशुभ फलोंको भोगना पड़ता है। वहाँ सत्यवादी चित्रगुप्त आदि धर्मराजको जो भी शुभ और अशुभ कर्म बतलाते हैं, उन कर्मोंका फल उस प्राणीको अवश्य ही भोगना पड़ता है। जो सौम्य-हृदय, दया-समन्वित एवं शुभकर्म करनेवाले हैं, वे सौम्य पथसे और जो मनुष्य कूर कर्म करनेवाले एवं पापाचरणमें संलग्न हैं, वे और

दक्षिण-मार्गसे कष्ट सहन करते हुए यमपुरीमें जाते हैं। व्यवस्थापुरी छियासी हजार अस्सी योजनमें है। शुभ कर्म करनेवाले व्यक्तियोंको यह धर्मपुरी समीप ही प्रतीत होती है और रीढ़मार्गसे जानेवाले पापियोंको अतिशय दूर। यमपुरीका मार्ग अत्यन्त भयंकर है, कहीं कटि बिछे हैं और कहीं बालू-ही-बालू है, कहीं तलवारकी धारके समान है, कहीं नुकीले पर्वत हैं, कहीं असहा कड़ी धूप है, कहीं स्वाइयाँ और कहीं लोहेंकी कीले हैं। कहीं वृक्षों तथा पर्वतोंसे गिराया जाता हुआ वह पापी व्यक्ति प्रेतोंसे युक्त मार्गमें दुखित हो यात्रा करता है। कहीं ऊबड़लावड़, कहीं कंकरीले और कहीं तप बालुकामय मार्गोंसे चलना पड़ता है। कहीं अन्यकाराच्छुत्र भयंकर कष्टमय मार्गसे बिना किसी आश्रयके जाना पड़ता है। कहीं सींगसे परिव्याप्त मार्गसे, कहीं दायाग्रिसे परिपूर्ण मार्गसे, कहीं तप पर्वतसे, कहीं हिमाच्छादित मार्गसे और कहीं अध्रिमय मार्गसे गुजरना पड़ता है। उस मार्गमें कहीं सिंह, कहीं ल्याघ, कहीं काटनेवाले भयंकर कीड़े, कहीं भयंकर जोक, कहीं अजगर, कहीं भयंकर मक्खिकाएँ, कहीं विष वमन करनेवाले सर्प, कहीं विशाल बलोनमत प्रमाणी गजसमूह, कहीं भयंकर विच्छृं, कहीं बड़े-बड़े शृंगोंवाले महिष, रीढ़ डाकिनियाँ, कराल राक्षस तथा महान् भयंकर ल्याधियाँ उसे पीड़ित करती हैं, उन्हें भोगता हुआ पापी व्यक्ति यममार्गमें जाता है। उसपर कभी पापाणकी वृष्टि होती है, कभी बिजली गिरती है तथा कभी वायुके झंझाकातेमें वह उलझाया जाता है और कहीं अंगारोंकी वृष्टि होती है। ऐसे भयंकर मार्गोंसे पापाचरण करनेवाले भूख-प्याससे व्याकुल मृद धारीको यमदूत यमलोककी ओर ले जाते हैं।

अतः पाप छोड़कर पुण्य-कर्मका आचरण करना चाहिये। पुण्यसे देवत्व प्राप्त होता है और पापसे नरककी प्राप्ति होती है। जो थोड़े समयके लिये भी मनसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह कभी भी यमपुरी नहीं जाता। जो इस पृथिवीपर सभी प्रकारसे भगवान् भास्करकी पूजा करते हैं, वे पापसे जैसे ही लिप्त नहीं होते, जैसे कम्लपत्र जलसे लिप्त नहीं होता। इसलिये सभी प्रकारसे भूवन-भालुरकी भक्तिपूर्वक आश्रमना करनी चाहिये।

सप्तमी-ब्रतमें दन्तधावन-विधि-वर्णन

भगवान् सूर्यने कहा—विनतानन्दन अरुण ! अयमकाल, विषुवकाल, संक्रान्ति तथा ग्रहणकालमें सदा भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये । सप्तमीमें तो विशेषरूपसे उनकी पूजा करनी चाहिये । सप्तमियाँ सात प्रकारकी कही गयी हैं—अर्कसम्पृष्टिक्र-सप्तमी, मरीचि-सप्तमी, निघ-सप्तमी, फलसप्तमी, अनोदना-सप्तमी, विजय-सप्तमी तथा सातवीं कार्यक्रम-सप्तमी । माघ मास या मार्गशीर्ष मासमें शुक्र पक्षकी सप्तमीको उपवास ग्रहण करना चाहिये । आर्त व्यक्तिके लिये मास और पक्षका नियम नहीं है । यह बीतनेमें जब आथा प्रहर शेष रहे, तब दन्तधावन करना चाहिये । महाएकी दतुवनसे दन्तधावन करनेपर पुत्र-प्राप्ति, भैरवीयासे दुःखनाश, बटरी (वेर) और बृहती (भटकट्ट्या) से शोष ही रोगमुक्ति, विल्वसे ऐश्वर्य-प्राप्ति, खैरसे धन-संचय, कदम्बसे शाश्वताश, अतिमुक्तकसे अर्थप्राप्ति, आटरुपक (अडुसा) से गुरुता प्राप्त होती है । पीपलके दातूनसे यश और जातिमें प्रधानता तथा करवीरसे अचल परिज्ञान प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं ।

शिरीयकी दातूनसे विपुल लक्ष्यी और शिरेण्युके दातूनसे परम

सौभाग्यकी प्राप्ति होती है ।

अभीष्यत अर्थकी सिद्धिके लिये सुखपूर्वक शैठकर बाणीका संयम करके निम्न लिखित मन्त्रसे दातूनके वृक्षकी प्रार्थना कर दातून करे—

वरं त्वामभिजानामि कामदं च वनस्पते ।

सिद्धिं प्रवक्त ये नित्यं दन्तकाष्ठ नमोऽस्तु ते ॥

(ब्राह्मपर्व १९३ । १३)

'वनस्पते ! आप श्रेष्ठ कामनाओंको प्रदान करनेवाले हैं, ऐसा मैं भलीभाँति जानता हूँ । हे दन्तकाष्ठ ! मुझे सिद्धि प्राप्त करायें । आपको नमस्कार है ।'

इस मन्त्रका तीन बार जप करके दन्तधावन करना चाहिये ।

दूसरे दिन पवित्र होकर भगवान् सूर्यको प्रणाम कर यथेष्ट जप करे । तदनन्तर अग्रिमें हवन करे । अपराह्न-कालमें मिठी, गोबर और जलसे स्नानकर विधिपूर्वक नियमके साथ शुक्र वस्त्र धारण कर पवित्र हो, देवाधिदेव दिवाकरकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा और गायत्रीका जप करे । (अध्याय १९३)

स्वप्न-फल-वर्णन तथा उदक-सप्तमी-ब्रत

भगवान् सूर्यने कहा—हे स्वर्णश्रेष्ठ ! त्रीतीको चाहिये कि जप, होम आदि सभी क्रियाओंके विधिपूर्वक सम्प्रभ कर देवाधिदेव भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शायन करे । स्वप्रमें यदि मनुष्य भगवान् सूर्य, इन्द्रध्वज तथा चन्द्रमाको देखे तो उसे सभी समृद्धियाँ सुलभ होती हैं । शुद्धार, चैवर, दर्पण, स्वर्णालंकार, लघिरसाव तथा केशाशातको देखे तो ऐश्वर्यलाभ होता है । स्वप्रमें वृक्षाधिरोपण शोष ऐश्वर्यदायक है । महिली, सिंही तथा गौका अपने हाथसे दोहन और इनका बन्धन करनेपर राज्यका लाभ होता है । नाभिका स्पर्श करनेपर दुर्बुद्धि होती है । भेड़ एवं सिंहको तथा जलमें उत्पन्न जनुको ये मारकर स्वयं खानेसे, अपने अङ्ग, अस्थि, अग्नि-धक्षण, पदिरा-पान, सुवर्ण, चाँदी और पदापत्रके पात्रमें खीर खानेपर उसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है । घृत या युद्धमें विजय देखना

सुखप्रद होता है । अपने शरीरके प्रबंधलन तथा शिरोबन्धन देखनेसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है । माला, शुक्र वस्त्र, अस्थि, पश्च, पक्षीका लाभ और विषाका अनुलेपन प्रशंसनीय माना गया है । अस्थि या रथधर यात्राका स्वप्न देखना शीघ्र ही संततिके आगमनका सूचक है । अनेक सिर और भुजाएँ देखनेपर घरमें लक्ष्यी आती हैं । वेदाध्ययन देखना श्रेष्ठ है । देव, ह्रीज, श्रेष्ठ वीर, गुरु, वृद्ध तपसी स्वप्रमें मनुष्यको जो कुछ कहे उसे सत्य ही मानना चाहिये । इनका दर्शन एवं आशीर्वाद श्रेष्ठ फलदायक है । पर्वत, अस्थि, सिंह, बैल और हाथीपर विशिष्ट पराक्रमके साथ स्वप्रमें जो आगोहन करता है, उसे महान् ऐश्वर्य एवं सुखकी प्राप्ति होती है । ग्रह, तारा, सूर्यका जो स्वप्रमें परिवर्तन करता है और पर्वतका उच्चूलन करता है, उसे पृथ्वीपति होनेका संकेत मिलता है । शरीरसे आंतोंका निकालना, समुद्र

एवं नदियोंका पान करना ऐश्वर्य-प्राप्तिका सूचक है। जो स्वप्रमेय समुद्रको एवं नदीको साहसके साथ पार करता है, उसे चिरजीवी पुत्र होता है। यदि स्वप्रमेय कृष्णका भक्षण करना देखता है, तो उसे अर्थकी प्राप्ति होती है। सुन्दर अङ्गोंके देखनेसे लभ होता है। मङ्गलकारी वस्त्राओंसे योग होनेपर आरोग्य और धनकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवान् भास्कर अज्ञानान्धकरको दूरकर अपनी अचल भक्ति प्रदान करते हैं, उनके विधिपूर्वक पूजन करनेके पक्षात्

सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम कर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो व्यक्ति भगवान् भास्करकी पूजा करता है, वह उत्तम विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाता है। विधिपूर्वक पूजन करनेके पक्षात् उनके यथेष्ट मन्त्रोक्त जप तथा हवन करना चाहिये। सप्तमीके दिन भगवान् सूर्यनारायणका विधिपूर्वक पूजन कर केवल आधी अङ्गुलि जल पीकर व्रत करनेको उदकसप्तमी कहते हैं, यह सदैव सुख देनेवाली है।

(अध्याय १९४—१९७)

—३०-३१—

सूर्यनारायणकी महिमा, अर्थ प्रदान करनेका फल तथा आदित्य-पूजनकी विधियाँ

महाराज शतानीकने कहा—सुमन्तु मुने ! इस लोकमें ऐसे कौन देवता है जिनकी पूजा-सुति करके सभी मनुष्य शुभ-पुण्य और सुखका अनुभव करते हैं। सभी धर्मोंमि श्रेष्ठ धर्म कौन है ? आपके विचारसे कौन पूजनीय है तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता किसकी पूजा-अर्चना करते हैं और आदिदेव किस देवताको कहा जाता है ?

सुमन्तुजी बोले—राजन् ! मैं इस विषयमें भगवान् वेदव्यास और भीष्मपितामहके उस संवादको कह रहा हूँ जो सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है, उसे आप सुनें।

एक समय गङ्गाके किनारे वेदव्यासजी बैठे हुए थे। वे अग्रिके समान जाग्वल्यमान, तेजमें आदित्यके समान, साक्षात् नाराणतुल्य दिखायी दे रहे थे। भगवान् वेदव्यास महाभारतके कर्ता तथा वेदके अर्थोंको प्रकाशित करनेवाले हैं और ऋषियों तथा राजर्षियोंके आचार्य हैं, कुलवंशके स्वामी हैं, साथ ही मेरे परमपूज्य हैं। इन वेदव्यासजीके पास कुरुश्रेष्ठ महातेजस्वी भीष्मजी आये और उन्हें प्रणाम कर कहने लगे।

भीष्मपितामहने पूछा—हे महामते पराशरनन्दन ! आपने सम्पूर्ण वाङ्मयकी व्याख्या मुझसे की है, किन्तु मुझे भगवान् भास्करके सम्बन्धमें संशय उत्पन्न हो गया है। सर्वप्रथम भगवान् आदित्यको नमस्कार करनेके पक्षात् ही अन्य देवताओंको नमस्कार किया जाता है। इसमें क्या कारण है ? ये भगवान् भास्कर कौन है ? कहाँसे उत्पन्न हुए हैं ? हे द्विजश्रेष्ठ ! इस लोकके कल्याणके लिये उस परम तत्त्वको कहिये। मुझे जाननेकी बड़ी ही अभिलक्षणा है।

व्यासजीने कहा—कहा—भीष्म ! आप अवश्य ही किंकरत्वविमूढ हो गये हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि भगवान् भास्करकी सुति, पूजन-अर्चन सभी सिद्ध और ब्रह्मादि देवता करते हैं। सभी देवताओंमें आदिदेव भगवान् भास्करको ही कहा जाता है। ये संसार-सागरके अन्धकारको दूरकर सब लोकों और दिशाओंको प्रकाशित करते हैं। ये सभी धर्मोंमि श्रेष्ठ धर्मस्वरूप हैं। ये पूज्यतम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता आदिदेव भगवान् आदित्यकी ही पूजा करते हैं। आदित्य ही अदिति और कश्यपके पुत्र हैं। ये आदिकर्ता हैं, इसलिये भी आदित्य कहे जाते हैं। भगवान् आदित्यने ही सम्पूर्ण जगतके उत्पन्न किया है। देवता, असुर, गर्ववर्ष, सर्प, राक्षस, पक्षी आदि तथा इन्द्रादि देवता, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप सभीके आदिकरण भगवान् आदित्य ही हैं। भगवान् आदित्य सभी देवताओंमें श्रेष्ठ और पूजित हैं।

व्यासजीने कहा—पिशाच, सर्प, ढाकिनी, दानव आदि जो ब्रोधसे उत्पन्न हो भगवान् सूर्यनारायणपर आक्रमण करते हैं, भगवान् सूर्यनारायण उन्हें प्रताडित करते हैं। यह मुहूर्तादि कालस्वरूप भगवान् सूर्यका ही प्रभाव है। संसारमें धर्म एकमात्र भगवान् सूर्यका आधार लेकर प्रवर्तित होता है। ब्रह्मादि देवता सूर्यमण्डलमें स्थित रहते हैं। भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार

करनेमात्रसे ही सभी देवताओंको नमस्कार प्राप्त हो जाता है। तीनों कबलोंमें संध्या करनेवाले ब्राह्मणजन भगवान् आदित्यको ही प्रणाम करते हैं। भगवान् भास्करके विष्वके नीचे राहु स्थित है। अमृतकी इच्छा करनेवाला राहु विमानस्थ अमृत-घटसे थोड़ा भी अमृत छलकरेपर उस अमृतको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे जब विमानके अति संनिकट पहुँचता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि राहुने सूर्यनारायणको ग्रसित कर लिया है, उसे ही ग्रहण कहा जाता है। आदित्य भगवान्को कोई ग्रसित नहीं कर सकता, क्योंकि वे ही इस चराचर जगत्का विनाश करनेवाले हैं। दिन, रात्रि, मुहूर्त आदि सब आदित्य भगवान्के ही प्रधावसे प्रकाशित होते हैं। दिन, रात्रि, धर्म, अधर्म जो कुछ भी इस संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है, उन सबको भगवान् आदित्य ही उत्पन्न करते हैं। वे ही उसका विनाश भी करते हैं। जो व्यक्ति भगवान् आदित्यकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उस व्यक्तिको भगवान् आदित्य दीप्ति ही संतुष्ट होकर वर प्रदान करते हैं तथा बल, कीर्य, सिद्धि, ओषधि, धन-धान्य, सुवर्ण, रूप, सौभाग्य, आरोग्य, यश, कीर्ति, पुण्य, पौजादि और मोक्ष आदि सब कुछ प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

भीष्मने कहा—महात्मन्! अब आप मुझसे सौरधर्मके खानकी विधि रहस्यसहित बतलायें। जिससे भगवान् आदित्यकी पूजाकर मनुष्य सभी प्रकारके दोषोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

व्यासजी बोले—भीष्म ! मैं सौर-ज्ञानकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ, जो सभी प्रकारके दोषोंके दूर कर देती है। सर्वप्रथम पवित्र स्थानसे मृतिका ग्रहण करे, तदनन्तर उस मृतिकको शरीरमें लगाये। फिर जलको अभिषिन्ति कर ज्ञान करे। शङ्ख, तुरही आदिसे ध्वनि करते हुए सूर्यनारायणका ध्यान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके 'हाँ ही सः' इस मन्त्रराजसे आचमन करना चाहिये। फिर देवताओं एवं ऋषियोंका तर्पण और सुनि करनी चाहिये। अपसत्य होकर पितरोंका तर्पण करे। अनन्तर संध्या-वन्दन करे। उसके बाद भगवान् भास्करको अङ्गालिसे जल देना चाहिये। ज्ञान करनेके बाद ऋषर-मन्त्र 'हाँ ही सः' अथवा षड्कर-मन्त्र 'खस्त्रोत्काय नमः' का जप करना चाहिये। जिस मन्त्रराजको पूर्वमें कहा है उस मन्त्रराजसे हृदयादि न्यास करना चाहिये।

मन्त्रको हृदयङ्गम कर भगवान् सूर्यनारायणको अर्थ प्रदान करना चाहिये। एक ताप्रशात्रमें गच्छ, ल्पाल चन्दन आदिसे सूर्य-मण्डल बनाकर उसमें करवीर (कनेर) आदिके पुष्प, गन्धोदक, रक्तचन्दन, कुश, तिळ, चावल आदि स्थापित कर छुटनेको मोड़ उस ताप्र-पात्रको डाकर सिरसे लगाये और भक्तिपूर्वक 'हाँ ही सः' इस मन्त्रराजसे भगवान् सूर्यनारायणको अर्थ प्रदान करे। जो व्यक्ति इस विधिसे भगवान् आदित्यको अर्थ निशेद्यन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। हजारों संक्रान्तियों, हजारों चन्द्रग्रहणों, हजारों गोदानों तथा पुष्कर एवं कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें ज्ञान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल केवल सूर्यनारायणको अर्थ प्रदान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। सौर-दीक्षा-विहीन व्यक्ति भी यदि भगवान् आदित्यको संवत्सरपर्यन्त अर्थ प्रदान करता है तो उसे भी वही फल प्राप्त होता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। फिर दीक्षाको ग्रहण कर जो विधिपूर्वक अर्थ प्रदान करता है, वह व्यक्ति इस संसार-सागरको पारकर भगवान् भास्करमें विलग्न हो जाता है।

भीष्मने कहा—ब्रह्मन् ! आपने पाप-हरण करनेवाली ज्ञान-विधि तो बता दी, अब कृपाकर उनकी पूजा-विधि बतायें, जिससे मैं भगवान् सूर्यकी पूजा कर सकूँ।

व्यासजी बोले—भीष्म ! अब मैं आदित्य-पूजनकी विधि कह रहा हूँ, आप सुनें। आदित्यपूजकको चाहिये कि ज्ञानादिसे पवित्र होकर किसी शुद्ध एकान्त स्थानमें प्रसन्न होकर भास्करकी पूजा करे। वह श्रेष्ठ सुन्दर आसनपर पूर्वाभिमुख बैठे। सूर्य-मन्त्रोंसे करन्यास एवं हृदयादि-न्यास करे। इस प्रकार आत्मशुद्दिकर न्यासद्वारा भगवान् सूर्यकी अपनेमें भावना करे। अपनेको भास्कर समझकर स्थण्डिलपर भानुकी स्थापना करके विधिवत् पूजा करे। दक्षिण-पार्श्वमें पूष्पकी टोकरी एवं वाम पार्श्वमें जलसे परिपूर्ण ताप्रपात्र स्थापित करे। पूजाके लिये उपकल्पित सभी द्रव्योंका अर्थपात्रके जलसे प्रोक्षण कर पूजन करे, अनन्तर मन्त्रवेत्ता एकाग्रचित होकर सूर्यमन्त्रोंका जप करे।

भीष्मने कहा—भगवान् ! अब आप भगवान् सूर्यकी वैदिक अर्चां-विधि बतलायें।

व्यासजी बोले—भीष्म ! आप इस सम्बन्धमें सुरज्येषु

ब्रह्मा तथा विष्णुके मध्य हुए संवादको सुनें। एक बार ब्रह्माजी मेष्ठपूर्वतपर स्थित अपनी मनोवती नामकी सभामें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय विष्णुभगवानने प्रणाम कर उनसे कहा—‘ब्रह्मन्! आप भगवान् भास्करकी आराधना-विधि बतायें और मण्डलस्थ भगवान् सूर्यनारायणकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये, इसे कहें।’

ब्रह्माने कहा—महाबाहो! आपने बहुत उत्तम बात पूछी है, आप एकाग्रचित्त होकर भगवान् भास्करकी पूजन-विधि सुनिये।

सर्वप्रथम शास्त्रोक्त विधिसे भूमिका विधिवत् शोधनकर केसर आदि गन्धोंसे सात आवरणोंसे युक्त कर्णिकासमन्वित एक अष्टदल्कमल बनाये। उसमें दीपा आदि सूर्यकी दिव्य अष्ट शक्तियोंको पूर्वादि-क्रमसे इशानकोणतक स्थापित करे। शीघ्रमें सर्वतोमुखी देवीकी स्थापना करे। दीपा सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विशुद्धा और सर्वतोमुखी—ये नौ सूर्यशक्तियाँ हैं। इन शक्तियोंका आवाहनकर पदावरी कर्णिकाके ऊपर भगवान् भास्करको स्थापित करना चाहिये। ‘उदु त्वं जातवेदसं’ (यजु०७।४१) तथा ‘अग्नि दूरं’ (यजु० २२।१७) —ये मन्त्र आवाहन और उपस्थानके कहे गये हैं। ‘आ कृच्छन रजसा०’ (यजु० ३३।४३) तथा ‘हा० सः शुचिपद०’ (यजु० १०।२४) इन मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। ‘अपस्तु तारकं०’ मन्त्रसे दीपादेवीकी पूजा करे। ‘अदुआमस्य केतवो०’ (यजु० ८।४०) मन्त्रसे सूक्ष्मादेवीकी, ‘तरणिर्विशुद्धतो०’ (यजु० ३३।३६) से जयाकी, ‘प्रत्यक्षदेवाना०’ इस मन्त्रसे भद्राकी, ‘येना पावक चक्षसा०’ (यजु० ३३।३२) इस मन्त्रसे विभूतिकी, ‘विद्यामेवि०’ इस मन्त्रसे विमलादेवीकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकारसे अमोघा, विशुद्धा तथा सर्वतोमुखी देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे सप्तावरण-पूजन-पूर्वक भृत्यमें भगवान् सूर्यकी पूजा करे। भगवान् सूर्य एक चक्रवाले रथपर बैठकर खेत कमलपर स्थित हैं। उनका लाल वर्ण है। वे सर्वाभरणभूषित तथा सभी लक्षणोंसे समन्वित और महातेजस्वी हैं। उनका विम्ब वर्तुलाकार है। वे अपने हाथोंमें कमल और धनुष लिये हैं। ऐसे उनके स्वरूपका ध्यानकर नित्य श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये।

भगवान् विष्णुने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! मण्डलस्थ भगवान् भास्करकी प्रतिमारूपमें किस प्रकारसे पूजा की जाय, उसे आप बतालगानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—हे सुरत ! आप एकाग्रचित्त-मनसे प्रतिमा-पूजन-विधिको सुनिये। ‘इवं त्वो०’ (यजु० १।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिर-प्रदेशका पूजन करना चाहिये। ‘अग्निमीळे०’ (ऋ० १।१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके दक्षिण हाथकी पूजा करनी चाहिये। ‘अग्न आ याहि०’ (ऋ० ६।१६।१०) इस मन्त्रसे सूर्यभगवान्के दोनों चरणोंकी पूजा करनी चाहिये। ‘आ विद्वा०’ (यजु० ८।४२) इस मन्त्रसे पुष्पमाला समर्पित करनी चाहिये। ‘योगे योगे०’ (यजु० ११।१४) इस मन्त्रसे पुष्पाङ्गालि देनी चाहिये। ‘समुद्रं गच्छ०’ (यजु० ६।२१) तथा ‘इमं मे गम्भे०’ (ऋ० १०।७५।५) तथा ‘समुद्रम्बेष्टा०’ (ऋ० ७।४९।१) इन मन्त्रोंसे उन्हें अंगारण लगाये। ‘आ यायस्व०’ (यजु० १२।११२) इस मन्त्रसे दुष्ट-स्नान, ‘दधिकाव्यो०’ (यजु० २३।३२) इस मन्त्रसे दधिस्नान, ‘तेजोऽसि शुक्रः०’ (यजु० २२।१) इस मन्त्रसे धृत-स्नान तथा ‘या ओषधीः०’ (यजु० १२।७५) इस मन्त्राद्या ओषधि-स्नान कराये। इसके बाद ‘हिपदा०’ (यजु० २३।३४) इस मन्त्रसे भगवान्का उद्दीन करे। फिर ‘या नस्तोके०’ (यजु० १६।१६) इस मन्त्रसे मुनः स्नान कराये। ‘विष्णो रसाट०’ (यजु० ५।२१) इस मन्त्रसे गन्ध तथा जलसे स्नान कराये। ‘स्वर्ण घर्षः०’ (यजु० १८।५०) इस मन्त्रसे पादा देना चाहिये। ‘इदं विष्णुविचक्रमे०’ (यजु० ५।१५) इस मन्त्रसे अर्थ प्रदान करना चाहिये। ‘तेजोऽसि०’ (यजु० २।२१) इस मन्त्रसे यजोपवीत और ‘ब्रह्मस्ते०’ (यजु० २६।२३) इस मन्त्रसे वस्त्र-उपवस्त्र आदि भगवान् सूर्यको चढ़ाना चाहिये। इसके अनन्तर पुष्पमाला चढ़ाये। ‘शूसि शूर्व०’ (यजु० १।८) इस मन्त्रसे गुणुलसहित धूप दिखाना चाहिये। ‘समिद्धो०’ (यजु० २९।१) इस मन्त्रसे रोचना लगाये। ‘दीर्घायुस०’ (यजु० १२।१००) इस मन्त्रसे आलक्ष (आलता) लगाये। ‘सहस्रशीर्षा०’ (यजु० ३१।१) इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यके सिरका पूजन करना चाहिये। ‘संभावया०’ इस मन्त्रसे दोनों नेत्रों और ‘विष्णवश्व०’ (यजु० १७।१९) इस मन्त्रसे

भगवान् सूर्यके सम्पूर्ण शरीरका सर्वा करना चाहिये। 'श्रीकृष्ण ते लक्ष्मींशुः' (यजु० ३१। २२) इस मन्त्रक्रम उत्तराण करते

हुए विधिपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजन- अर्चन करना चाहिये। (आध्याय १९८—२०२)

भगवान् भास्करके व्योम-पूजनकी विधि तथा आदित्य-माहात्म्य

विष्णु भगवान्ने पूछा—हे सुरश्रेष्ठ चतुरुग्न ! अब आप भगवान् आदित्यके व्योम-पूजनकी विधि बतलाये । अष्ट-भूज्ञमुक्त व्योमस्वरूप भगवान् भास्करकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये ।

ब्रह्माजीने कहा—महाबाहो ! सुवर्ण, चाँदी, ताम्र तथा लोहा आदि अष्ट धातुओंसे एक अष्ट भूज्ञमय व्योम बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिये । सर्वप्रथम उसके मध्यमें भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये । 'महिवासो' इस मन्त्रसे अनेक प्रकारके पुण्योंको चढ़ाना चाहिये । 'श्रातारमिन्द्रं' (यजु० २०। ५०) तथा 'उद्दीरतामश्वरं' (यजु० १९। ४९) इत्यादि वैदिक मन्त्रोंसे श्रुतिकी तथा 'नमोऽस्तु सर्वेष्योः' (यजु० १३। ६) इस मन्त्रसे व्योमपीठकी पूजा करनी चाहिये । जो व्यक्ति ग्रहोंके साथ सब पापोंके दूर करनेवाले व्योम-पीठस्थ भगवान् सूर्यको नमस्कार कर उनका पूजन करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

भगवान् भास्करकी पूजा करके गुरुको सुन्दर वस्त्र, जूता, सुवर्णकी औंगूटी, गंध, पुण्य, अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ निवेदित करने चाहिये । जो व्यक्ति इस विधिसे उपवास रखकर भगवान् सूर्यकी पूजा-अर्चना करता है, वह बहुत पुण्यवाला, बहुत धनवान् और कीर्तिमान् हो जाता है । भगवान् सूर्यके उत्तरायण तथा दक्षिणायन होनेपर उपवास रखकर जो व्यक्ति उनकी पूजा करता है, उसे असुरमेघ-यज्ञ करनेका फल, विद्या, कीर्ति और बहुतसे पुण्योंकी प्राप्ति होती है । चन्द्रघ्रहण और सूर्यग्रहणके समय जो व्यक्ति उपवास रखकर भगवान् भास्करकी पूजा-अर्चना आदि करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार भगवान् भास्करके रथमय व्योमकी प्रतिमा

बनाकर उसकी प्रतिष्ठा और वैदिक मन्त्रोंसे विविध उपचारोंद्वारा उसकी पूजा करे । पूजनके अनन्तर ऋग्वेदकी पाँच ऋचाओंसे भगवान् आदित्यकी परास्तुति करें । इसके बाद भास्करको अव्यक्त निवेदित करे । अनन्तर भगवान् सूर्यको दीपा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विद्युता तथा सर्वतोमुखी नामवाली नौ दिव्य शक्तियोंका पूजन करे ।

इस विधिसे जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, वह इस लोक और परलोकमें सभी मनःकामनाओंको पूर्ण कर लेता है । पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा धन चाहनेवालेको धन प्राप्त हो जाता है । कन्यार्थीको कन्या और येदार्थीको येद प्राप्त हो जाता है । जो व्यक्ति निष्कामभावसे भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है । इतना कहकर ब्रह्माजी शान्त हो गये ।

व्यासजीने पुनः कहा—हे भीष्म ! अब आप ध्यान करने योग्य ग्रहोंके स्वरूपका तथा भगवान् आदित्यके माहात्म्यका श्रवण करें । भगवान् सूर्यका वर्ण जपाकुसुमके समान ल्यल है । वे महातेजस्वी श्वेत पदापर शिखत हैं । सभी लक्षणोंसे समन्वित हैं । सभी अलंकारोंसे विभूतित हैं । उनके एक मुख है, दो भुजाएँ हैं । रक्त वस्त्र धारण किये हुए वे ग्रहोंके मध्यमें शिखत हैं । जो व्यक्ति तीनों समय एकाग्रचित होकर उनके इस रूपका ध्यान करता है, वह शीघ्र ही इस लोकमें धन-धान्य प्राप्त कर लेता है और सभी पापोंसे छूटकर तेजस्वी तथा बलवान् हो जाता है । श्वेत वर्णके चन्द्रमा, रक्त वर्णके मंगल, रक्त तथा इयाम-विश्रित वर्णके बुध, पीत वर्णके बृहस्पति, शङ्ख तथा दूधके समान श्वेत वर्णके शुक्र, अङ्गनके समान कृष्ण वर्णके शनि, लालावतीके समान नील वर्णके ग्रह और केतु कोहे गये हैं । इन ग्रहोंके साथ ग्रहोंके अधिष्ठित भगवान्

१-

उक्तणे पृथिव्यपवन्त वीरामानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

कल्परि वाक् परिमिता पद्मनि तानि विदुर्बाह्मणा ये मनीक्षिः । गुहा तीर्णि निलित नेत्रपत्ति तुरीयं जातो मनुष्या वदन्ति ॥
इत्रं विद्यं वस्त्रप्रियमहुयो दिव्यः स सुपर्णो गरुदान् । एकं सद् विद्या बहुता वद्यत्वात् यमे मातृकानमाहुः ॥
कृष्णं विषयं हरयः सुपर्णां अपो वसना दिव्यमुत्तमिः । त अङ्गवृक्ष-सदनानुत्तमस्यादि, पूर्णं पृथिव्यो अमुखः ॥
ये ग्रहाणा वस्त्रपूर्विद् यः सुपूर्णः गरुदानि तप्तिः गरुदानि तप्तिः गरुदानि तप्तिः ।

सूर्यनाशयणका जो व्यक्ति ध्यान एवं पूजन करता है, उसे शीघ्र ही महासिद्ध प्राप्त हो जाती है, सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं तथा महादेवत्वकी प्राप्ति हो जाती है।

सूर्यनाशयणके समान कोई देवता नहीं और न ही उनके समान कोई गति देनेवाला है। सूर्यके समान न तो ब्रह्म है और न अग्नि। सूर्यके धर्मके समान न कोई धर्म है और न उनके समान कोई धन। सूर्यके अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है और न तो कोई शुभचिन्तक ही है। सूर्यके समान कोई माता नहीं और न तो कोई गुरु ही है। सूर्यके समान न तो कोई तीर्थ है और न उनके समान कोई पवित्र ही है। समस्त लोकों, देवताओं तथा पितरोंमें एक भगवान् सूर्य ही व्याप्त है, उनका ही स्वावन, अर्चन तथा पूजन करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक सूर्यनाशयणकी आगष्टना करता है, वह इस भवसागरको पार कर जाता है। भगवान् सूर्यके प्रसन्न हो जानेपर राजा, चोर, ग्रह, सर्प आदि पौड़ा नहीं देते तथा दरिद्रता और सभी दुःखोंसे भी नियुक्ति हो जाती है।

रविवारके दिन श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनाशयणकी पूजाकर नक्त ब्रत करनेवाला व्यक्ति अमरत्वको प्राप्त करता है।

—~~CONTINUE~~—

सप्त-सप्तमी तथा द्वादश मास-सप्तमी-ब्रतोंका वर्णन

शतानीकाने कहा—मुने ! भगवान् भास्करको अतिप्रिय जिन अर्कसम्पूर्णिका आदि सात सप्तमी-ब्रतोंकी आपने पूर्वमें चर्चा की है, उन्हें बतलानेकी कृपा करें।

सुमन्तुजी बोले—महामते ! मैं सात सप्तमियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। पहली सप्तमी अर्कसम्पूर्णिका नामकी है। दूसरी मरिच्चसप्तमी, तीसरी निष्वसप्तमी, चौथी फलसप्तमी पाँचवीं अनोदनासप्तमी, छठी विजयसप्तमी तथा सातवीं कामिका नामकी सप्तमी है। इनकी संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—

उत्तरायण या दक्षिणायनमें, शुक्र पक्षमें, रविवारके दिन ग्रहणमें, पूर्णिमावाची नक्षत्रमें—इन सप्तमी-ब्रतोंको प्रहण करना चाहिये। ब्रतीको जितेन्द्रिय, पवित्रता-सम्पत्र और ब्रह्मचारी होकर सूर्यकी अर्चनामें रत रहना चाहिये तथा जप-होमादिमें तप्तर रहना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि पञ्चमीके दिन एकभुक्त रहकर पश्चीके दिन जितेन्द्रिय रहे एवं निन्दा पटायोंका भक्षण न करे। अर्क-सेवनसे पहली सप्तमी,

भगवान् मार्त्तिष्ठको प्रीतिके लिये जो संक्रान्तिमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। जो व्यक्ति भास्करकी प्रीतिके लिये उपवास रखकर पष्ठी या सप्तमीके दिन विधिवत् श्राद्ध करता है, वह सभी दोषोंसे निवृत्त होकर सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति सप्तमीके दिन विशेषकर रविवार अथवा ग्रहणके दिन भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। ग्रहणके दिन भगवान् भास्करका पूजन करना उन्हें अतिप्रिय है। भगवान् आदित्य परमदेव है और सभी देवताओंमें पूज्य है। उनकी पूजा कर व्यक्ति इच्छित फलको प्राप्त कर लेता है। धन चाहनेवालेको धन, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त हो जाता है और वह अमर हो जाता है।

सुमन्तुजीने कहा—राजन् ! भीष्मसे ऐसा कहकर वेदव्यासजी अपने स्थानको छले गये और भीष्मने भी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यनाशयणकी विधि-विधानसे पूजा की। राजन् ! अल्प भी भगवान् भास्करकी पूजा करें, इससे आपको शाश्वत स्थान प्राप्त होगा। (अध्याय २०३—२०७)

मरिचसे दूसरी सप्तमी तथा निष्वपत्रसे तीसरी सप्तमी व्यक्तिमें चर्चा करें। फलसप्तमीमें फलोंका भक्षण करना चाहिये। अनोदना-सप्तमीके दिन अब्र भक्षण न करके उपवास करें। विजय-सप्तमीके दिन वायु भक्षण कर उपवास करें। कामिका-सप्तमीको भी हविष्य भोजनकर यथाविधि सम्पत्र करना चाहिये। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन सप्तमी-ब्रतोंको करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त कर लेता है।

अर्कसम्पूर्णिका-ब्रतसे सात पीढ़ीतक अचल सम्पत्ति वर्ती रहती है। मरिच-सप्तमीके अनुष्ठानसे प्रिय पुत्रादिका साथ बना रहता है। निष्वसप्तमीके पालनसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है और फल-सप्तमी-ब्रतके करनेसे ब्रती अनेक पुत्र-पौत्रादिसे युक्त हो जाता है। अनोदना-सप्तमीके ब्रतसे धन-धान्य, पशु, मुर्खा, आगोष्य तथा सुख सदा मुलभ्य रहते हैं। विजय-सप्तमीका ब्रत करनेसे शत्रुगण नष्ट हो जाते हैं। कामिका-सप्तमीका विधिवत् अनुष्ठान करनेसे पुत्रकी

कामना करनेवाला पुर, अर्थको कामना करनेवाला अर्थ, विद्या-प्राप्तिको कामना करनेवाला विद्या और राज्यकी कामना करनेवाला राज्य प्राप्त करता है। पुरुष हो या स्त्री इस व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न कर परमगतिको प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उनके कुलमें न कोई अंधा होता है, न कुष्ठी, न नारुसक और न कोई विकलाङ्घ तथा न निर्झन। लोभवश, प्रमादवश या अशानवश यदि व्रत-भङ्ग हो जाय तो तीन दिनतक भोजन न करे और मुण्डन करकर प्राप्तिक्षित करे। पुनः व्रतके नियमोंको ब्रहण करे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन्! चैत्रादि बारह मासोंकी शुक्र सप्तमियोंमें गोमय, यावक, सूखे पते, दूध अथवा पिश्चात्र भक्षण कर अथवा एकभुक्त रहकर उपवास करना

चाहिये। भगवान् सूर्यकी पूजा कम्बल-पूष्य, नाना प्रकारके गम्भ, चन्दन, गुणगुल भूष आदि विविध उपचारोंसे करनी चाहिये तथा इन्हीं उपचारोंसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी भी पूजा कर उन्हें दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये। इससे ब्रतीको अपार दक्षिणावाले यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह सूर्यलोकमें पूजित होता है। चैत्रादि बारह महीनोंमें पूजित होनेवाले भगवान् सूर्यके बारह नाम इस प्रकार हैं—चैत्रमें विष्णु, वैशाखमें अर्यमा, ज्येष्ठमें विवस्वान, आपाढ़में दिवाकर, श्रावणमें पर्जन्य, भाद्रपदमें ब्रह्मण, आश्विनमें मार्त्तिष्ठ, कार्तिकमें भार्गव, मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें पूर्णा, माघमें भग तथा फालग्नुमें त्वष्टा।

(अध्याय २०८-२०९)

अर्कसम्पुटिका-सप्तमीव्रत-विधि, सप्तमी-व्रत-माहात्म्यमें कौथुमिका आस्थान

सुमन्तुजी बोले—राजन्! फालग्नु मासके शुक्र पक्षकी सप्तमीको अर्कसप्तमी कहते हैं। इसमें पृष्ठीको उपवास रहकर खान करके गम्भ, पूष्य, गुणगुल, अर्क-पूष्य, सूत करतीर एवं चन्दनादिसे भगवान् दिवाकरकी पूजा करनी चाहिये। गविकी प्रसन्नताके लिये नैवेद्यमें गुडोटक समर्पित करे। इस प्रकार दिनमें भानुकी पूजा करके गतमें निद्रारहित होकर उनके मन्त्रका जप करे।

शतानीकने पूछा—मूने! भगवान् सूर्यका प्रिय मन्त्र कौन-सा है? उसे बताये और धूप-दीपको भी निर्देश करें जिससे उस मन्त्रका जप करता हुआ मैं दिवाकरकी पूजा कर सकूँ।

सुमन्तुजीने कहा—हे भरतश्रेष्ठ! मैं इस विधिको संक्षेपसे कह रहा हूँ। ब्रतीको चाहिये कि एकार्याचित होकर पठक्षर-मन्त्रका जप, होम तथा पूजा आदि सभी कर्म सम्पादित करे। सर्वप्रथम यथाशक्ति गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। सौंगी गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—‘ॐ भास्कराय विद्यहे सहस्ररसिमं धीषहि। तत्रः सूर्यः प्रचोदयात्।’ इसे भगवान् सूर्यने स्वयं कहा है। यह सौंगी गायत्री-मन्त्र परम श्रेष्ठ है। इसका श्रद्धापूर्वक एक बार जप करनेसे ही मानव पवित्र हो जाता है, इसमें मंदेह नहीं। सप्तमीके दिन प्रातःकाल एकार्याचित हो इस मन्त्रका जप करे।

और भक्तिपूर्वक भास्करकी पूजा करे। राजन्! यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराये। अनकी कंजसी न करे। जो सूर्यके प्रति श्रद्धा-सम्पन्न नहीं है, उन्हें भोजन नहीं कराना चाहिये। शाल्योदन, धूंग, अपूष, गुडसे जैसे पूए, दूध तथा दहोका भोजन कराना चाहिये। इससे भास्कर तूम होते हैं। भोजनके बज्ये पदार्थ इस प्रकार हैं—कुलथी, मसूर, सेम तथा चट्टी। उड्ड आदि, कड़वा तथा दुर्गच्छयुक्त पदार्थ भी नियोजित नहीं करने चाहिये।

अर्कवृक्षकी ‘ॐ खस्त्रोत्काय नमः’ से पूजा कर अर्कपल्लवोंको ब्रहण करे। फिर खानकर अर्क-पूष्यसे गविकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये और ‘अर्कों मे ग्रीयनाम’ सूर्योदय मुख्यपर प्रसन्न हों, ऐसा करो। तदनन्तर देवताके सम्मुख दौत और ओढ़से स्पर्श किये बिना निष्ठालिखित मन्त्रसे अर्कसम्पुटकी प्रार्थना करते हुए जलके साथ पूर्वाभिमुख होकर अर्कपुट निगल जाय।

३५ अर्कसम्पुट भद्रे ते सुभद्रे येऽस्तु वै मदा।

ममापि कुरु भद्रे वै प्राशनाद् वित्तदे भव॥

(ब्राह्मण २१०।३३)

इस मन्त्रका जप करते हुए जो अर्कका ध्यान करता है तथा अर्कसम्पुटका प्राशन करता है, वह श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है।

दौंतसे सर्पने न किये जानेके कारण अर्कपूष्ट अर्कसप्तशिखा कहलाता है। जो इस विधिसे वर्षभर सूर्यनारायणकी प्रसन्नताके लिये श्रद्धापूर्वक संप्रभी-व्रत करता है, उस मनुष्यका धन सात पीढ़ीतक असंग तथा अचल हो जाता है। हे राजन् ! इस व्रतके अनुष्ठानसे सामग्रान करनेवाले महर्षि कौशुमि कुष्ठरोगसे मुक्त हो गये तथा सिद्धि प्राप्त की। साथ ही बृहद्वत्क, रुजा जनक, महर्षि याज्ञवल्क्य तथा कृष्णपूष साम्य—इन सबने भी भगवान् सूर्यकी पूजा करके और इस व्रतके अनुष्ठानसे उनकी साम्यता प्राप्त कर ली। यह अर्क-सप्तमी पवित्र, पापनाशिमी, पुण्यप्रद तथा धन्य है। अपने कल्याणके लिये इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये।

शतानीकने पूछा—मुने ! जनक आदिने भगवान् सूर्यकी पूजा करके जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की, उसे तो मैंने बहुधा सुना है, किंतु महर्षि कौशुमि किस प्रकार अर्ककी आराधना कर सिद्धि प्राप्त की और वे कैसे कुष्ठ-रोगसे मुक्त हुए, इसका मुझे जान नहीं है। वे कौशुमि कौन थे, उन्हें कैसे कुष्ठ हुआ ? हे द्विजश्रेष्ठ ! किस प्रकार उन्होंने देवाधिदेव दिवाकरकी आराधना की ? इन सभी वातोंको मुझे संक्षेपमें सुनाये।

सुमन्तुजीने कहा—राजन् ! आपने बहुत अच्छी विज्ञासा की है। इस विषयको आप श्रवण करें। प्राचीन कालमें हिरण्यनाथ नामके एक विहान् ब्राह्मण थे। वे अपने पुज्जके साथ महाराजा जनकके आश्रमपर गये। वहाँ अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ। क्रोधवशा कौशुमि से एक ब्राह्मणका वध हो गया। पुज्जके द्वारा विप्रको मारा गया देखकर पिताने कौशुमिका परित्याग कर दिया। सज्जनों तथा कुन्तुमिथ्योंने भी उनका बहिष्कार कर दिया। शोक और दुःखसे दुःखी होकर वे दिव्य देवालयोंमें गये और उन्होंने अनेक तीर्थोंकी यात्राएँ की, किंतु ब्रह्महत्यासे मुक्त न मिल सकी। ब्रह्महत्याके कारण उन्हें भवंकर कुष्ठ नामक व्याधिने ग्रस्त कर लिया। नाक, कान आदि अङ्ग गलकर गिर गये। शरीरसे पीछा और रक्त बहने लगा। समस्त पृथ्वीपर घूमते हुए वे पुनः अपने

पिताके घर आये। दुःखसे व्याकुलचित हो उन्होंने अपने पितासे कहा—तात ! मैं पवित्र तीर्थों और अनेक देवालयोंमें गया, किंतु इस क्षुर ब्रह्महत्यासे मुक्त नहीं हो सका। प्रायश्चित्त करनेपर भी मुझे इससे छुटकारा नहीं मिला है। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कैसे मैं रोगसे मुक्ति पाऊँ ? हे अनन्ध ! अल्प परिश्रम-साध्य जिस कर्मके करनेसे इस ब्रह्महत्यासुपी व्याधिसे मुझे छुटकारा मिले, उस उपायको आप शीघ्र बतायें और मेरा कल्याण करें।

हिरण्यनाथने कहा—पुत्र ! पृथ्वीमें घूमते हुए तुमने जो फ्रेश प्राप्त किया है, उसे मैं भलीभांति जानता हूँ। तुम अनेक तीर्थोंमें गये और प्रायश्चित्त भी किये, परंतु ब्रह्महत्यासे मुक्ति न मिली, अब मैं एक उपाय बताता हूँ, उस उपायसे तुम अनायास ही ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाओगे।

कौशुमिने कहा—विभो ! मैं ब्रह्मादि देवोंमें किसकी आराधना करूँ ? मैं तो शरीरसे भी विकल हूँ, अतः सभी कर्मोंका यथावत् सम्बादन मुझसे सम्भव नहीं है, फिर किस प्रकार मैं देवताको संतुष्ट कर सकूँगा।

हिरण्यनाथने कहा—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, बरुण आदि देवताओंने भक्तिपूर्वक भगवान् भास्त्रकरी पूजा की है और इसी कारण वे स्वर्गीलोकमें आनन्दित हो रहे हैं। हे पुत्र ! मैं भगवान् सूर्यके समान किसी भी देवताको नहीं जानता हूँ। वे सभी कामनाओंको देनेवाले और माता-पिता तथा सभीके मान्य हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। इसलिये तुम उनके मन्त्रका जप करते हुए तथा सामवेदके मन्त्रोंका गान करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी आराधना करो और उनसे सम्बन्धित इतिहास-पुराण आदिका श्रवण करो, इससे तुम्हें शीघ्र ही रोगसे मुक्ति मिलेगी और तुम मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

सुमन्तुजीने कहा—राजन् ! सामग्रान करनेवाले महर्षि कौशुमिने श्रद्धा-समन्वित हो अपने पिताद्वारा निर्दिष्ट सूर्योपासनाकी विधिसे भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्यकी आराधना की। भगवान् भास्त्रकरी कृपासे महर्षि कौशुमि दिव्य मूर्तिमान् हो गये और उन्होंने भगवान् भास्त्रके दिव्य मण्डलमें प्रवेश किया। (अध्याय २१०-२११)

१-महर्षि कौशुमि एक वैदिक मन्त्रद्वारा ऋषि हैं। सामग्रेद-संहिताकी कौशुमो शाश्वा अल्पन्त प्रसिद्ध है और इस समय वहाँ प्राप्त है। उसके द्रष्टव्य कही है। ये प्राच्य सम्प्रग भी कहलाते हैं। शैववर्णय चतुरव्युह-प्रथमें सामवेदवारी प्राप्त; एक हजार शाश्वाओंकी विस्तृत वर्णा है।

मरिच-सप्तमी-ब्रत-वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर ! मैंने तुमको अर्कसम्पूर्णिका-ब्रतकी संक्षिप्त विधि बतलायी । अब मरिच-सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, इसमें मरिचका भक्षण किया जाता है । चैत्र मासके शुक्र पक्षकी षष्ठी तिथिको उपवास रहकर सौरधर्मकी विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये । '३० वं फट्ट' यह महाबलशाली मन्त्र साक्षात् सूर्यस्वरूप हो है । इसका बारंबार स्मरण एवं जप करनेसे मानव एक वर्षमें ही देवेश भगवान् भास्करका दर्शन प्राप्त कर लेता है और अन्तमें व्याधि तथा मृत्युसे मुक्त हो सूर्यलोकको प्राप्त करता है । व्रती आत्मशुद्धयर्थ मरिच-सप्तमीके दिन सौर-मन्त्रो एवं मुद्राओंसे हृदयादि अङ्गन्यास कर प्राणायाम आदि करे । भगवान्को अर्थ प्रदान करे । विधिपूर्णको अर्पित करे । खान कराये, नैवेद्य अर्पित करे । संयत होकर सूर्यमन्त्रोक्ता जप करे । व्योममुद्रा दिखाकर प्रदक्षिणा करे, हवन करे और हृदयमुद्रासे भगवान्का विसर्जन करे । भगवान्के पूजन आदि कर्मोंमें तत्तद् मुद्राओंके दिखाये । मुद्राओंके नाम इस प्रकार हैं—किकिणी, छोम, अस, पाचिनी, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तनी, शशिनी, सूर्यवत्रका, सहस्रकरणा, उदया, मध्यमा, अस्तमनी, मालिनी, तर्जनी तथा कुम्भमुद्रा । इन मुद्राओंके साथ जो भगवान् सूर्यकी पूजा करता है, उससे वे

प्रसन्न हो जाते हैं । इस विधिसे ब्रह्माने भगवान् सूर्यकी पूजा की थी । राजन् ! तुम भी इस विधिसे भास्करकी पूजा करो । इस विधिसे जो सदा गविष्टी पूजा करता है, वह भगवान् सूर्यदेवके दिव्य धामको प्राप्त कर लेता है । नृप ! इस विधिसे देवेशकी पूजा कर यथाशक्ति ब्राह्मणको विधिपूर्वक भोजन कराकर सप्तमीके दिन मन्त्रपूर्वक सूर्यका स्मरण करते हुए भौजन होकर भोजन करे और भोजनसे पहले मरिचकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

३० खखोल्काय स्वाहा । प्रीयतां प्रियसङ्कृदो भव स्वाहा ॥

ऐसा करनेसे व्रतीको प्रिय व्यक्तिका समागम उसी क्षण प्राप्त हो जाता है । यह मरिच-सप्तमी प्रियसंगमदायिनी और पुण्यको प्रदान करनेवाली तथा क्षमनाओंकी पूर्ति करनेवाली है । एक वर्षतक इस सप्तमी-ब्रतका पालन करनेसे पुत्रादिकोंसे विद्योग नहीं होता । इसलिये महाबाहो ! इस प्रियदायिनी सप्तमीको तुम भी करो । देवराज इन्द्रने इस मरिच-सप्तमीको उपवास कर महाराजी शाचीका सङ्ग प्राप्त किया था । महाबलशाली यजा नलने भी इस सप्तमीको उपवास कर दमयनीको प्राप्त किया था और श्रीरामने भी इस सप्तमीके दिन उपवास कर भगवती सीताको प्राप्त किया था ।

(अध्याय २१२—२१४)

निष्ठ-सप्तमी तथा फलसप्तमी-ब्रतका वर्णन

सुमन्तुजीने कहा—हे वीर ! अब मैं तृतीय निष्ठ-सप्तमी (वैशाख शुक्र-सप्तमी)की विधि बतला रहा हूँ, आप सुने । इसमें निष्ठ-पत्रकव सेवन किया जाता है । यह सप्तमी सभी तरहके व्याधियोंको हरनेवाली है । इस दिन हाथमें शार्क्खधनुष, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए भगवान् सूर्यका ध्यान कर उनकी पूजा करनी चाहिये । भगवान् सूर्यका मूल मन्त्र है—'३० खखोल्काय नमः' । '३० आदित्याय विद्याहे विश्वभागाय धीमहि । तत्रः सूर्यः प्रत्योदयात् ।' यह सूर्यका गायत्री-मन्त्र है ।

पूजामें सर्वप्रथम समाहित-चित्त होकर प्रयत्नपूर्वक मन्त्रपूत जलसे पूजाके उपचारोंका प्रोक्षण करे । अपनेमें भगवान् सूर्यकी भावना करके उनका ध्यान करते हुए मन्त्रवित् हृदय आदि अङ्गोंमें मन्त्रका विनास करे । समार्जनी मुद्रासे

दिशाओंका प्रतिवोधन करे । भूतोधन करना चाहिये । पूजाकी यह विधि सभीके लिये अपीष्ट फल देनेवाली है ।

पवित्र स्थानमें कर्णिकायुक्त एक अष्टदल-कम्पल बनाये, उसमें आवाहिनी मुद्राके द्वारा भगवान् सूर्यका आवाहन करे । वहांपर यनोहर-स्वरूप खखोल्क भगवान् सूर्यको खान कराये । मन्त्रमूर्ति भगवान् सूर्यकी स्थापना और खान आदि कर्म मन्त्रोद्घारा करने चाहिये । आग्रेय दिशमें भगवान् सूर्यके हृदयकी, ईशानकोणमें सिरकी, नैर्वहृत्यकोणमें शिशाकी एवं पूर्वदिशमें दोनों नेत्रोंकी भावना करे । इसके अनन्तर ईशानकोणमें सोम, पूर्व दिशमें मंगल, आग्रेयमें बुध, दक्षिणमें वृहस्पति, नैर्वहृत्य दिशमें शुक्र, पक्षिममें शनि, वायव्यमें केतु और उत्तरमें राहुकी स्थापना करे । कम्पलकी द्वितीय कक्षामें

भगवान् सूर्यके तेजसे उत्पन्न द्वादश आदित्यो—भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूर्णा, चन्द्र तथा विष्णुको स्थापित करे। पूर्वमें इन्द्र, दक्षिणमें यम, पश्चिममें वरुण, उत्तरमें कुबेर, ईशानमें ईश्वर, अदिकोणमें अग्निदेवता, नैर्हल्यमें पितृदेव, वायव्यमें वायु तथा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महादेवता, राजा, सुवर्चला आदि तथा अन्य देवताओंके समूहोंको यथास्थान स्थापित करना चाहिये। सिद्धि, वृद्धि, सूर्ति, उत्पलमालिनी तथा श्री इनको अपने दक्षिण पार्श्वमें स्थापित करना चाहिये। प्रजावती, विभा, हरीता, बुद्धि, ऋषिदि, विसुष्टि, पौर्णमासी तथा विभावरी आदि देव-शक्तियोंको अपने उत्तर भगवान् सूर्यके समीप स्थापित करना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सूर्य तथा उनके परिकरों एवं देव-शक्तियोंकी स्थापना करनेके अनन्तर मन्त्रपूर्वक धूप, दीप, नैवेद्य, अर्हंकार, वस्त्र, पुष्प आदि उपचारोंको भगवान् सूर्य तथा उनके अनुगामी देवोंको प्रदान करे। इस विधिसे जो भास्करकी सदा अर्चना करता है, वह सभी कामनाओंको पूर्ण कर सूर्यलोकको प्राप्त करता है। निश्चलिखित मन्त्रद्वारा निष्पक्षी प्रार्थनाकर उसे भगवान्को निवेदित करके प्राशन करे—

त्वं निष्प बद्नुकामासि आदित्यनिलभ्यसत्था ।

सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा ॥

ब्राह्मपर्व-श्रवणका माहात्म्य, पुराण-श्रवणकी विधि,

पुराणों तथा पुराणवाचक व्यासकी महिमा

सुमन्तुजीने कहा—एजन्। भविष्यपुराणके इस प्रथम ब्राह्मपर्वके सुननेसे मानव सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा सहस्रों अश्वमेघ, वाजपेय एवं राजसूय यज्ञों, सभी तीर्थ-यात्राओं, वेदाभ्यास तथा पृथ्वीदान करनेका फल प्राप्त कर-

लेता है। इतिहास-पुराणके श्रवणके अतिरिक्त ऐसा कोई साधन नहीं है, जो सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर सके। पुराण-श्रवणका जो फल बतलाया गया है, वही फल पुराणके वाठसे भी होता है, इसमें कोई संदेह नहीं^१।

१-यहीं भविष्यपुराणका पाठ कुछ त्रुटि प्रतीत होता है। सात सप्तमी-व्रतोंमें अवशिष्ट अनोदना, विजय तथा कामिनीसंबंधीत सप्तमीव्रत सूट गये हैं। चतुर्वर्ग-विज्ञामणि (हेमाद्रि)के ब्रतशङ्करमें भविष्यपुराणके नामसे इन व्रतोंका विस्तारसे वर्णन आया है। वैद्याय शुद्ध सप्तमी अनोदना-सप्तमी, यात्र शुद्ध सप्तमी विजया-सप्तमी तथा छालनु शुद्ध सप्तमी कही गयी है। विजया-सप्तमीमें सूर्यसहस्रनाम सोत्र भी पढ़ा गय है। इससे लगता है कि हेमाद्रिके पास भविष्यपुराणकी ग्राहणिक एवं पूर्ण शुद्ध प्रति सुरक्षित थी। पुराणोंकी डेवेशसे ही इस सम्बन्धकी प्रतिमें वह अंग सम्पूर्ण हो गया है।

२-इतिहासपुराणाभ्यां न लक्ष्यत् पापनं नृणाम् । येषां श्रवणवाचेण मुख्यते सर्वकिञ्चित्पैः ॥

विधिना यमशर्दूल शृणतां यत्कलं किल् । यथोत्तं नवं संदेहः पठतो च विशाप्यते ॥ (ब्राह्मपर्व २१६, ३४-३५)

शतानीकने पूजा—भगवन् ! महाभारत, गुमायण एवं पुराणोक्त श्रवण तथा पठन किस विधानसे करना चाहिये ? पुराण-वाचकके क्या लक्षण हैं ? भगवान् खल्लोत्कक्ष क्या स्वरूप है ? वाचककी विधिवत् पूजा करनेसे क्या फल होता है ? पर्वती समाप्तिपर वाचकोंको क्या देना चाहिये ? इसे आप बतानेकी कृपा करें ।

सुमनुजी बोले—राजन् ! आपने इतिहास-पुराणके सम्बन्धमें अच्छी जिजासा की है। महाबाहो ! इस सम्बन्धमें पूर्वकालमें देवगुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माजीके मध्य जो संवाद हुआ था, उसे आप श्रवण करें ।

मानव विशेष भक्तिपूर्वक इतिहास और पुराणका श्रवण कर ब्रह्महत्यादि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पवित्र होकर प्रातः, सायं तथा रात्रिमें जो पुराणका श्रवण करता है, उस व्यक्तिसे ब्रह्म, विष्णु तथा महेश संतुष्ट हो जाते हैं। प्रातःकाल भगवान् ब्रह्म, सायंकाल विष्णु और रात्रिमें महादेव प्रसन्न होते हैं। राजन् ! अब वाचकके विधानको सुनिये। पवित्र वस्त्र पहनकर शुद्ध होकर प्रदक्षिणापूर्वक जब वाचक आसनपर बैठता है तो वह देवस्वरूप हो जाता है। आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा। वाचकके आसनकी सदा बन्दना की जानी चाहिये। वाचकके आसनको व्यासपीठ कहा जाता है। पीठको गुरुका आसन समझना चाहिये। वाचकके आसनपर सुनने-यालेको कभी भी नहीं बैठना चाहिये। देवताओंकी अर्चना करके विशेषरूपसे ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। सभी समाजत व्यक्तियोंको साथमें लेकर पुराण-ग्रन्थ वाचकके लिये प्रदान करें। उस ग्रन्थको नतमस्तक हो प्रणाम करें। तब शान्तचित्त होकर श्रवण करें।

ग्रन्थका सूत्र (धारा) वासुकि कहा गया है। ग्रन्थका पत्र भगवान् ब्रह्म, उसके अक्षर जनार्दन, सूत्र शक्त तथा पंतिल्यां सभी देवता हैं। सूत्रके मध्यमें अग्नि और सूर्य शिथत रहते हैं। इनके आगे सभी ग्रह तथा दिशाएँ अवस्थित रहती हैं। शैकुको

मेह कहा गया है। रित्तस्थानको आकाश कहा गया है। ग्रन्थके ऊपर तथा नीचे रहनेवाले दो काष्ठफलक द्यावा-पूर्धिवीरुपमें सूर्य और चन्द्रमा हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ देवमय है और देवताओंद्वारा पूजित है। इसलिये आपने कल्याणको कामनासे इतिहास-पुराणादि श्रेष्ठ ग्रन्थोंको आपने घरमें रखना चाहिये, उन्हें नमस्कार करना चाहिये तथा उनकी पूजा करनी चाहिये^१ ।

राजन् ! वाचक ग्रन्थके हाथमें ग्रहण कर ब्रह्म, व्यास, बाल्मीकि, विष्णु, शिव, सूर्य आदिको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके श्रद्धासमन्वित होकर ओजस्वी रूपमें अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए तथा सात स्वरोंसे युक्त व्यथासमय यथोचित रस एवं भावोंको प्रकट करते हुए ग्रन्थका पाठ करें। इस प्रकार वाचकके मुखसे जो श्रोता नियमतः श्रद्धापूर्वक इतिहास-पुराण और गमचरितको सुनता है, वह सभी फलोंको प्राप्त कर सभी येंगोंसे मुक्त हो जाता है और विषुल-पुण्यको प्राप्त कर भगवान्‌के उत्तम और अद्भुत स्वानन्दोंप्राप्त करता है।

श्रोताको चाहिये कि वह ज्ञानादिसे पवित्र होकर वाचकको प्रणाम करके उसके सम्मुख आसनपर बैठे और वाणीको संयत कर सुसमाहित हो वाचककी बातोंको सुने।

महाबाहो ! व्यासस्वरूप वाचकको नमस्कार करनेपर संशयके बिना अन्य कुछ भी नहीं बोलना चाहिये। कथा-सम्बन्धी धार्मिक शंका या जिजासा उत्पत्र होनेपर वाचकसे नप्रतापूर्वक पूछना चाहिये, क्योंकि व्यासस्वरूप वत्ता उसका गुरु और धर्मवन्धु है। वाचकको भी भलीभांति उसे समझाना चाहिये, क्योंकि वह गुरु है, इसलिये सबपर अनुग्रह करना उसका धर्म है। उसके अनन्तर 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर पुनः आगेकी कथा सुनानी चाहिये। श्रोताको अपनी वाणीपर नियन्त्रण रखना चाहिये। वाचक ब्राह्मणको ही होना चाहिये। प्रत्येक मासमें पारण करे तथा वाचककी पूजा करे, महीनाको पूर्ण होनेपर वाचकको स्वर्ण प्रदान करे।

१-इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भवत्वं विशेषतः। मुच्यते सर्वज्ञेभ्यो ब्रह्महत्यादिभवित्वम् ॥

सायं प्रातसात्त्वा रात्रौ शुक्लित्वा शून्योति यः। तत्प विष्णुश्च ब्रह्म तुम्हेते शंकरस्तथा ॥

प्रत्यये भगवान् ब्रह्म दिनान्ते तुम्हेते हरिः। महादेवस्तथा रात्रौ शून्यता तुम्हेते विषुः ॥

(ब्राह्मपर्व २१६। ४३—४५)

(ब्राह्मपर्व २१६। ४८)

प्रथम पारणामें वाचकको अपनी शतिनके अनुसार पूजा करनेपर अग्रिष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कार्तिकसे आरम्भकर आश्चिनतक प्रत्येक मासमें एक-एक पारणापर पूजन करनेसे क्रमशः अग्रिष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौक्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्ड्रीक, आदित्य, राजसूय तथा अक्षमेघ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार यज्ञ-फलोंकी प्राप्ति कर वह निःसंदेह उत्तम लोकको प्राप्ति करता है।

पर्वकी समाप्तिपर गत्य, माला, विविध वस्त्र आदिसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। स्वर्ण, रजत, गाय, कौंसेका दोहन-पात्र आदि वाचकको प्रदान कर कथा-श्रवणका फल प्राप्त करना चाहिये। वाचकसे बढ़कर दान देने योग्य सुपात्र और कोई नहीं है, क्योंकि उसकी जिह्वाके अप्रभागपर सभी शास्त्र विग्रहमान रहते हैं। जो श्रद्धापूर्वक वाचकको भोजन करता है, उसके पितर सौ वर्षतक तृप्त रहते हैं। जैसे सभी देवोंमें सूर्य श्रेष्ठ है वैसे ही ब्राह्मणोंमें वाचक श्रेष्ठ है। वाचक

व्यास कहा जाता है। जिस देश, नगर, गाँवमें ऐसा व्यास निवास करता है वह क्षेत्र श्रेष्ठ माना जाता है। वहाँकि निवासी धन्य हैं, कृतार्थ हैं, इसमें संदेह नहीं। वाचकको प्रणामकरनेसे विस फलकी प्राप्ति होती है, उस फलकी प्राप्ति अन्य कर्मोंसे नहीं होती।

जैसे कुरुक्षेत्रके समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं, गङ्गाके समान कोई नदी नहीं, भास्करसे श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, अक्षमेघके समान कोई यज्ञ नहीं, पुत्र-जन्मके तुल्य सुख नहीं, वैसे ही पुराणवाचक व्यासके समान कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता। देवकार्य, पितृकार्य सभी कर्मोंमें यह परम पवित्र है।

रुजन्! इस प्रकार मैंने पुराणश्रवणकी विधि तथा वाचकके माहात्म्यको बताया। विधिके अनुसार ही पुराणादिका श्रवण एवं पाठ करना चाहिये। स्थान, दान, जप, होम, पितृ-पूजन तथा देवपूजन आदि सभी श्रेष्ठ कर्म विधि-पूर्वक अनुष्ठित होनेपर ही उत्तम फल प्रदान करते हैं।

(अध्याय २१६)

॥ भविष्यतपुराणान्तर्गत ब्राह्मपर्व सम्पूर्ण ॥



१-कुरुक्षेत्रसम्म तीर्थं न द्वितीये प्रवक्षते। न नदी गङ्ग्या तुल्या न देवो भास्कराद्वः॥
नाक्षमेघसम्म पुण्ये न पापं ब्रह्महत्या। पुत्रजन्मसुखसुख्यं न सुखं विद्यते यथा॥
तथा व्याससम्म विश्वे न कवचित् प्राप्यते नृपं। दैवे कर्मणि पित्रे च पापानः परमे नृणाम्॥

३० श्रीपरमात्मने नमः

मध्यमपर्व

(प्रथम भाग)

गृहस्थाश्रम एवं धर्मकी महिमा

जयति भुवनदीपो भासको लोककर्ता

जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारि ।

जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो

जयति सकलमौलिर्भानुपांकुष्ठभानुः ॥

‘संसारको सृष्टि करनेवाले भुवनके दीपस्वरूप भगवान् भासकरकी जय हो । इयाम शरीरवाले शार्ङ्गधनुर्धारी भगवान् मुरारिकी जय हो । मस्तकपर चन्द्रमा धारण किये हुए भगवान् रुद्रकी जय हो । सभीके मुकुटमणि तेजोमय भगवान् चित्रभानु (सूर्य) की जय हो ।’

एक बार पौराणिकोंमें श्रेष्ठ गोमाहरण सूतजीसे मुनियोंने प्रणामपूर्वक पुराण-संहिताके विषयमें पूछा । सूतजी मुनियोंके बचन सुनकर अपने गुरु सत्यवती-पत्र महर्षि वेदव्यासको प्रणामकर कहने लगे । मुनियो ! मैं जगतके कारण ब्रह्म-स्वरूपको धारण करनेवाले भगवान् हरिको प्रणामकर पापका सर्वथा नाश करनेवाली पुराणकी दिव्य कथा कहता हूँ, जिसके सुननेसे सभी पापकर्म नष्ट हो जाते हैं और परमगति प्राप्त होती है । द्विजगण ! भगवान् विष्णुके द्वारा कहा गया भविष्यपुराण अत्यन्त पवित्र एवं आयुष्यप्रद है । अब मैं उसके मध्यम-पर्वका वर्णन करता हूँ, जिसमें देव-प्रतिष्ठा आदि इष्टापूर्त-कर्मोंका वर्णन है । उसे आप सुनें—

इस मध्यमपर्वमें धर्म तथा ब्राह्मणादिकी प्रशंसा, आपदार्मका निरूपण, विद्या-माहात्म्य, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिमा-स्थापना, प्रतिमाका लक्षण, क्षाल-व्यवस्था, सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणका लक्षण, भूगोलका निर्णय, तिथियोंका निरूपण, श्राद्ध, संकरन्य, मन्वन्तर, मुमूर्षु, मरणासप्तके कर्म, दानका माहात्म्य, भूत, भविष्य, युग-धर्मानुशासन, उत्त-नीच-निर्णय, प्रायश्चित्त आदि विषयोंका भी समावेश है ।

मुनियो ! तीनों आश्रमोंका मूल एवं उत्पत्तिका स्थान गृहस्थाश्रम ही है । अन्य आश्रम इसीसे जीवित रहते हैं, अतः गृहस्थाश्रम सबसे श्रेष्ठ है । गार्हस्थ्य-जीवन ही धर्मानुशासित

जीवन है । धर्मरहित होनेपर अर्थ और काम उसका परित्याग कर देते हैं । धर्मसे ही अर्थ और काम उत्पन्न होते हैं, मोक्ष भी धर्मसे ही प्राप्त होता है, अतः धर्मका ही आश्रयण करना चाहिये । धर्म, अर्थ और काम यही विवर्ग हैं । प्रकारान्तरसे ये क्रमशः विगुण अर्थात् सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक हैं । सात्त्विक अथवा धार्मिक व्यक्ति ही सच्ची उत्तरता करते हैं, रजस व्यवहारवाले प्राप्त करते हैं । जगन्यगुण अर्थात् तामस व्यवहारवाले निम्न भूमिको प्राप्त करते हैं । जिस पुरुषमें धर्मसे समन्वित अर्थ और काम व्यवस्थित रहते हैं, वे इस लोकमें सुख भोगकर मरनेके अनन्तर मोक्षको प्राप्त करते हैं, इसलिये अर्थ और कामको समन्वित कर धर्मका आश्रय प्राप्त हो । ब्रह्मादियोंने कहा है कि धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है । स्थावर-जड़म अर्थात् सम्पूर्ण चराचर विश्वको धर्म ही धारण करता है । धर्ममें धारण करनेकी जो शक्ति है, वह ब्राह्मी शक्ति है, वह आद्यन्तरहित है । कर्म और ज्ञानसे धर्म प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं । अतः ज्ञानपूर्वक कर्मयोगका आचरण करना चाहिये । प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलकके भेदसे वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं । ज्ञानपूर्वक त्याग संन्यास है, संन्यासियों एवं योगियोंके कर्म निवृत्तिपरक हैं और गृहस्थोंके वेद-शास्त्रानुकूल कर्म प्रवृत्तिपरक हैं । अतः प्रवृत्तिके सिद्ध हो जानेपर मोक्षकामीको निवृत्तिका आश्रय लेना चाहिये, नहीं तो पुनः-पुनः संसारमें आना पड़ता है । शम, दम, दया, दान, अलोप, विषयोंका त्याग, मरणता या निश्चलता, निष्क्रोध, अनसूया, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रियनियन्त्रण, देवपूजन, विशेषरूपसे ब्राह्मणपूजा, अहिंसा, सत्यवादिता, निन्दाका परित्याग, शुभानुष्ठान, शौचाचार, प्राणियोंपर दया—ये श्रेष्ठ आचरण सभी वर्णोंकी लिये सामान्य रूपसे कहे गये हैं । अद्यानुष्ठान कर्म ही धर्म कहे गये हैं, धर्म श्रद्धाभावमें ही स्थित है, श्रद्धा ही निष्ठा है, श्रद्धा ही प्रतिष्ठा है और श्रद्धा ही धर्मकी जड़ है । विधिपूर्वक गृहस्थधर्मका

पालन करनेवाले ब्राह्मणोंको प्रजापतिलोक, शत्रियोंको इन्द्रलोक, वैश्योंको अमृतलोक और तीनों वर्णोंकी परिचर्या-

पूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाले शूद्रोंको गन्धर्वलोककी प्राप्ति होती है। (अध्याय १)

—४३५—

सृष्टि तथा सात ऊर्ध्वं एवं सात पाताल लोकोंका वर्णन

श्रीमुकुटी बोले— मुनियो ! अब मैं कल्पके अनुसार सैकड़ों मन्वन्तरोंके अनुगत ईश्वर-सम्बन्धी कालचक्रकाल वर्णन करता हूँ।

सृष्टिके पूर्व यह सब परम अन्धकार-निष्ठा एवं सर्वधा अप्रतिज्ञात-स्वरूप था। उस समय परम कालण, व्यापक एकमात्र रुद्र ही अवस्थित थे। सर्वव्यापक भगवान्ने आत्मस्वरूपमें स्थित होकर सर्वप्रथम मनकी सृष्टि की। फिर अहंकारकी सृष्टि की। उससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध नामक पञ्चतमात्रा तथा पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति की। इनमेंसे आठ प्रकृति हैं (अर्थात् दूसरेको उत्पन्न करनेवाली हैं) — प्रकृति, बुद्धि, अहंकार, रूप, रस, गन्ध, शब्द और सार्वशक्ति तन्मात्राएँ। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन — ये सोलह इनकी विकृतियाँ हैं। ये किसीकी भी प्रकृति नहीं हैं, क्योंकि इनसे किसीकी उत्पत्ति नहीं होती। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध — ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं। कानका शब्द, त्वक्का स्पर्श, चक्षुका रूप, जिह्वाका रस, नासिकाका गन्ध है। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यामके भेदमें वायुके पाँच प्रकार हैं। सत्त्व, रज और तम — ये तीन गुण कहे गये हैं। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है और उससे उत्पन्न सात चक्रचर विश्व भी त्रिगुणात्मक हैं। उस भगवान् वासुदेवके तेजसे ब्रह्मा, विष्णु और शम्भुका आविर्भाय हुआ है। वासुदेव अशरीरी, अजन्मा तथा अयोनिज हैं। उनसे परे कुछ भी नहीं है। वे प्रत्येक कल्पमें जगत् और प्राणियोंकी सृष्टि एवं उपसंहार भी करते हैं।

बहतर युगोंका एक मन्वन्तर तथा चौदह मन्वन्तरका एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्माकाल एक दिन और रात है। भूलोक, भूवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक और ब्रह्मलोक — ये सात लोक कहे गये हैं। पाताल, वितल, अतल, तल, तालतल, सुतल और रसातल — ये सात पाताल हैं। इनके आदि, मध्य और अन्तमें रुद्र रहते हैं। महेश्वर लीलाके लिये संसारको उत्पन्न करते हैं और संहार भी करते

है। ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छा करनेवालेकी ऊर्ध्वगति कही गयी है।

ऋषि सर्वदशी (परमात्मा) ने सर्वप्रथम प्रकृतिकी सृष्टि की। उस प्रकृतिसे विष्णुके साथ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। द्वितीयोंहो ! इसके बाद बुद्धिसे नैमित्तिकी सृष्टि उत्पन्न हुई। इस सृष्टिक्रममें स्वयमभूत ब्रह्माने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। अनन्तर शत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी सृष्टि की। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशाओंकी कल्पना की। लोकालोक, द्वापों, नदियों, सागरों, तीर्थों, देवस्थानों, मेघार्जनों, इन्द्रधनुओं, उत्काषातों, केतुओं तथा विद्युत् आदिको उत्पन्न किया। यथासमय ये सभी उसी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। ध्रुवसे ऊपर एक करोड़ योजन विस्तृत महलोंक हैं। ब्राह्मण-श्रेष्ठ वहाँ कल्पान्तपर्यन्त रहते हैं। महलोंकसे ऊपर दो करोड़ योजन विस्तृत जनलोक है, वहाँ ब्रह्माके पुत्र सनकादि रहते हैं। जनलोकसे ऊपर तीन करोड़ योजनवाला तपोलोक है, वहाँ तापव्याहारित देवगण रहते हैं। तपोलोकसे ऊपर छः करोड़ योजन विस्तृत सत्यलोक है, जहाँ भूगृ, वसिष्ठ, अत्रि, दक्ष, मरीचि आदि प्रजापतियोंका निवास है। जहाँ सनत्कुमार आदि सिद्ध योगिगण निवास करते हैं, वह ब्रह्मलोक कहा जाता है। उस लोकमें विश्वात्मा विश्वतोमुख गुरु ब्रह्मा रहते हैं। आस्तिक ब्रह्मवादी, यतिगण, योगी, तापस, सिद्ध तथा जापक उन परमेष्ठी ब्रह्माजीकी गाथाका गान इस प्रकार करते हैं — ‘परमपदकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले योगियोंका द्वार यही परमपद लोक है। वहाँ जाकर किसी शकारक शोक नहीं होता। वहाँ जानेवाला विष्णु एवं शंकरस्वरूप हो जाता है। करोड़ों सूर्यके समान देवीप्रायमान यह स्थान बड़े कष्टसे प्राप्त होता है। ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त इस पुरुका वर्णन नहीं किया जा सकता।’ इस ब्रह्माभाष्यमें नारायणका भी भवन है। माया-सहचर परात्पर श्रीमान् हरि यहाँ शयन करते हैं। इसे ही पुनरावृत्तिसे रहित विष्णुलोक भी कहा जाता है। वहाँ आनेपर कोई भी लौटकर नहीं आता। भगवान्के प्रपत्र महात्मागण ही जनार्दनको प्राप्त करते हैं। ब्रह्मासनमें ऊर्ध्वं परम ज्योतिर्मय शुभ स्थान है। उसके ऊपर

वहाँ परिच्छास है, वहाँ पार्वतीके साथ भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। सैकड़ों-हजारों विद्वान् और मनीषियोंद्वाग वे चिन्त्यमान होकर प्रतिष्ठित रहते हैं। वहाँ नियत ब्रह्मवादी द्विजगण ही जाते हैं। महादेवमें सतत ध्यानरत, तापस, ब्रह्मवादी, अहंता-ममताके अध्याससे रहित, काम-क्रोधसे शून्य, ब्रह्मत्व-समन्वित ब्रह्मण ही उनको देख सकते हैं—वहाँ रुद्रलोक है। ये सातों महालोक कहे गये हैं।

द्विजगणो ! पृथ्वीके नीचे महातल आदि पाताललोक हैं। महातल नामक पाताल स्वर्णमय तथा सभी वर्णोंसे अलंकृत है। वह विविध प्रासादों और शुभ देवालयोंसे समन्वित है।

बहाँपर भगवान् अनन्त, बुद्धिमान् मुचुकुन्द तथा बलि भी निवास करते हैं। भगवान् शक्तरसे सुशोभित रसातल शैलमय है। सुताल पीतवर्ण और विताल यैरेकी कञ्जिताला है। विताल श्वेत और तल कृष्णवर्ण है। वहाँ वासुकि रहते हैं। कशलनेमि, वैनतेय, नमुचि, शङ्कुकर्ण तथा विविध नाग भी यहाँ निवास करते हैं। इनके नीचे गौरव आदि अनेकों नरक हैं, उनमें पापियोंको गिराया जाता है। पातालोंके नीचे शेष नामक वैष्णवी शरीर है। वहाँ कालायि रुद्रस्वरूप नरसिंह भगवान् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु नागरूपी अनन्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। (अध्याय २-३)

भूगोल एवं ज्योतिश्चक्रका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—मुनियो ! अब मैं भूलोकका वर्णन करता हूँ। भूलोकमें जम्बू, पूर्व, शालमलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर नामके सात महाद्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे आकृत हैं। एक द्वीपसे दूसरे द्वीप ब्रह्म-ब्रह्मसे ठीक दूने-दूने आकार एवं विस्तारवाले हैं और एक सागरसे दूसरे सागर भी दूने आकारके हैं। क्षीरोद, इक्षुसोद, क्षारोद, घृतोद, दध्योद, क्षीरसलिल तथा जलोद—ये सात महासागर हैं। यह पृथ्वी पत्तास करोड़ योजन विसूत, समुद्रसे चारों ओरसे घिरे हुई तथा सात द्वीपोंसे समन्वित है। जम्बूद्वीप सभी द्वीपोंके मध्यमें सुशोभित हो रहा है। उसके मध्यमें सोनेकी कञ्जिताला महामेन पर्वत है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह महामेन पर्वत नीचेकी ओर सोलह हजार योजन पृथ्वीमें प्रविष्ट है और ऊपरी भागमें इसका विस्तार बत्तीस हजार योजन है। नीचे (तलहटी)में इसका विस्तार सोलह हजार योजन है। इस प्रकार यह पर्वत पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिका (कोष)के समान है। इस में पर्वतके दक्षिणमें हिमवान्, हिमकूट और नियध नामके पर्वत हैं। उत्तरमें नील, श्वेत तथा शूणी नामके वर्ष-पर्वत हैं। मध्यमें लक्ष्मीयोजन प्रमाणवाले दो (नियध और नील) पर्वत हैं। उनसे दूसरे-दूसरे दस-दस हजार योजन कम हैं। (अर्थात् हेमकूट और श्वेत नव्ये हजार योजन तथा हिमवान् और शूणी अस्सी-अस्सी हजार योजनक फैले हुए हैं।) वे सभी दो-दो हजार योजन लंबे और इनमें ही चौड़े हैं।

द्विजो ! मेरुके दक्षिण भागमें भारतवर्ष है, अनन्तर

किंपुरुषवर्ष और हरिवर्ष ये मेरु पर्वतके दक्षिणमें हैं। उत्तरमें चम्पक, अष्ट, हिरण्यमय तथा उत्तरकुरुवर्ष हैं। ये सब भारतवर्षके समान होते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका विस्तार नौ सहस्र योजन है, इनके मध्यमें इलावृतवर्ष है और उसके मध्यमें उत्तर मेरु स्थित है। मेरुके चारों ओर नौ सहस्र योजन विस्तृत इलावृतवर्ष है। महाभाग ! इसके चारों ओर चार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत मेरुकी कीरण हैं, जो दस सहस्र योजन परिमाणमें कीर्ती हैं। इनमेंसे पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुपार्श हैं। इनपर कट्टव, जम्बू, पीपल और बट-बृक्ष हैं। महर्षिगण ! जम्बूद्वीप नाम होनेका कारण महाजम्बू बृक्ष भी यहाँ है, उसके फल महान् गजराजके समान बड़े होते हैं। जब ये पर्वतपर गिरते हैं तो फटकर सब ओर फैल जाते हैं। उसीके रससे जम्बू नामकी प्रसिद्ध नदी वहाँ बहती है, जिसका जल वहाँके गहनेवाले पीते हैं। उस नदीके जलका पान करनेसे वहाँके निवासियोंको पसीना, दुर्गम्य, बुद्धापा और इन्द्रिय-क्षय नहीं होता। वहाँके निवासी शुद्ध हृदयवाले होते हैं। उस नदीके किनारेकी मिट्टी उस रससे घिलकर मन्द-मन्द बायुके द्वारा सुखाये जानेपर 'जाम्बूनद' नामक सुवर्ण बन जाती है, जो सिद्ध पुरुषोंका भूषण है।

मेरुके पास (पूर्वमें) भद्राश्वर्ष और पश्चिममें केन्त्रुमालवर्ष हैं। इन दो वर्षोंकी मध्यमें इलावृतवर्ष है। विप्रशेष्ठ ! मेरुके ऊपर ब्रह्मका उत्तम स्थान है। उसके ऊपर इन्द्रका स्थान है और उसके ऊपर शंकरका स्थान है। उसके

ऊपर वैष्णवलोक तथा उससे ऊपर दुर्गालोक है। इसके ऊपर सुवर्णमय, निरक्षर, दिव्य ज्योतिर्मय स्थान है। उसके भी ऊपर भक्तोंका स्थान है, वहाँ भगवान् सूर्य रहते हैं। ये परमेश्वर भगवान् सूर्य ज्योतिर्मय चक्रके मध्यमें निश्चल रूपसे स्थित हैं। ये मेरुके ऊपर राशिचक्रमें भ्रमण करते हैं। भगवान् सूर्यका रथ-चक्र मेरु पर्वतकी नाभिमें रुद्र-दिन वायुके द्वारा भ्रमण कराया जाता हुआ ध्रुवका आश्रय लेकर प्रतिष्ठित है। दिव्याल आदि तथा ग्रह यहाँ दक्षिणसे उत्तर मार्गकी ओर प्रतिमास चलते रहते हैं। हास और वृद्धिके क्रमसे रविके द्वारा जब

चान्द्रमास लहित होता है, तब उसे मलमास कहा जाता है। सूर्य, सोम, चुध, चन्द्र और शुक्र शीघ्रगामी ग्रह हैं। दक्षिणायन मार्गसे सूर्य गतिमान् होनेपर सभी ग्रहोंके नीचे चलते हैं। विस्तीर्ण मण्डल कर उसके ऊपर चन्द्रमा गतिशील रहता है। सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल सोमसे ऊपर चलता है। नक्षत्रोंके ऊपर चुध और चुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल और उससे ऊपर बृहस्पति तथा बृहस्पतिसे ऊपर शनि, शनिके ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डलके ऊपर ध्रुव स्थित हैं। (आध्याय ४)

ब्राह्मणोंकी महिमा तथा छब्बीस दोषोंका वर्णन

श्रीसूतजी बोले—हे द्विजोत्तम ! तीनों वर्णोंमें ब्राह्मण जन्मसे प्रभु हैं। हृष्य और कल्य सभीकी रक्षाके लिये तपस्याके द्वारा ब्राह्मणकी प्रथम सृष्टि की गयी है। देवगण इन्हींके मुखसे हृष्य और पितृगण कल्य स्वीकार करते हैं। अतः इनसे श्रेष्ठ कौन हो सकता है। ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ हैं और सभीसे पूजनीय हैं। जिसके गर्भधान आदि अड़तालीम संस्कार शास्त्रविधिसे सम्पन्न होते हैं, वही सच्चा ब्राह्मण है। द्विजकी पूजाकर देवगण स्वर्गफल भोगनेका लाभ प्राप्त करते हैं। अन्य मनुष्य भी ब्राह्मणकी पूजाकर देवत्वके प्राप्त करते हैं। जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। वेद भी ब्राह्मणोंके मुखमें संनिहित रहते हैं। सभी विषयोंका ज्ञान होनेके कारण ब्राह्मण ही देवताओंकी पूजा, पितृकार्य, यज्ञ, विवाह, विहिकार्य, शान्तिकर्म, स्वस्वयम आदिके सम्पादनमें प्रशस्त है। ब्राह्मणके विना देवकार्य, पितृकार्य तथा यज्ञ-कर्मोंमें दान, होष और वलि ये सभी निष्कर्तु होते हैं।

ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक अभिवादन करना चाहिये, उसके द्वारा कहे गये 'दीर्घायुर्भव' शब्दसे मनुष्य चिरजीवी होता है। द्विजश्रेष्ठ ! ब्राह्मणको पूजासे आयु, कीर्ति, विद्या और धनकी वृद्धि होती है। जहाँ जलसे विश्रोक्त पाद-प्रक्षालन

नहीं किया जाता, वेद-शास्त्रोंका उच्चारण नहीं होता और जहाँ स्वाहा, स्वधा और स्वस्त्रिकी ध्वनि नहीं होती ऐसा गृह इमशानके समान है।

विद्वानोंने नक्षत्रगामी मनुष्योंके छब्बीस दोष बतलाये हैं, जिन्हें त्यागकर शुद्धतापूर्वक निवास करना चाहिये—
 (१) अश्रम, (२) विष्म, (३) पशु, (४) पिशु, (५) कृषण, (६) पापिष्ठ, (७) नष्ट, (८) रुष्ट, (९) दुष्ट, (१०) पुष्ट, (११) हष्ट, (१२) कण, (१३) अच्य, (१४) खण्ड, (१५) चण्ड, (१६) कुष्ट, (१७) दत्ता-पहारक, (१८) जत्ता, (१९) कटर्य, (२०) दण्ड, (२१) नीच, (२२) खल, (२३) वाचाल, (२४) चपल, (२५) मलीमस तथा (२६) सोयी।

उपर्युक्त छब्बीस दोषोंके भी अनेक भेद-प्रभेद बतलाये गये हैं। विशेष ! इन (छब्बीस) दोषोंका विवरण संक्षेपमें इस प्रकार है—

१. गुरु तथा देवताके समुख जूता और छाता धारण कर जानेवाले, गुरुके सम्मुख उत्त आसनपर बैठनेवाले, यानपर चढ़कर तीर्थ-यात्रा करनेवाले तथा तीर्थमें ग्राम्य धर्मका आचरण करनेवाले—ये सभी अश्रम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे गये हैं। २. प्रकटमें प्रिय और मधुर वाणी बोलनेवाले पर-

१-विष्णु लक्ष्मी भास्तुऽन्तः रथातो मैलिन्दुवः। (मध्यमपर्व ४। २७)

प्रकरणान्तरमें यह शब्दोंके ज्योतिषके 'संक्रान्तिरहितो महो मलमास उद्धातः' इसी वचनके भावका छोतक है।

२-३ विष्णवादेवकर्त्तव्यानि न वेदवास्तवप्रतिगर्जितानि। स्वाहास्वात्मस्तिविवर्जितानि इमशानतुल्यानि गृहणि तानि॥

(मध्यमपर्व १। ५। २२)

हदयमें हालाहल विष धारण करनेवाले, कहते कुछ और हैं तथा आचरण कुछ और ही करते हैं—ये दोनों विषम-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति कहे जाते हैं। ३. मोक्षकी चिन्ता छोड़कर सांसारिक चिन्ताओंमें श्रम करनेवाले, हरिकी सेवासे रहित, प्रयागमें रहते हुए भी अन्यत्र खान करनेवाले, प्रत्यक्ष देवको छोड़कर अदृष्टकी सेवा करनेवाले तथा शास्त्रोंके सार-तत्त्वको न जानेवाले—ये सभी पशु-संज्ञक दोषयुक्त व्यक्ति हैं। ४. बलसे अथवा छल-छद्मसे या मिथ्या प्रेमका प्रदर्शन कर ठगनेवाले व्यक्तिको पिशुन दोषयुक्त कहा गया है। ५. देव-सम्बन्धी और पितृ-सम्बन्धी कर्मोंमें मधुर अवकाश व्यवस्था रहते हुए भी म्लान और तिक्त अवकाश भोजन करनेवाला दुर्विद्ध मानव कृपण है, उसे न तो स्वर्ग मिलता है और न मोक्ष ही। जो अप्रसन्न मनसे कुत्सित वस्तुका दान करता एवं क्रोधके साथ देवता आदिकी पूजा करता है, वह सभी धर्मोंसे बहिष्कृत कृपण कहा जाता है। निरुद्ध होते हुए भी शुभका परित्याग तथा शुभ शरीरका विक्रय करनेवाला कृपण कहलाता है। ६. माता-पिता और गुरुका ल्याग करनेवाला, पवित्राचार-रहित, पिताके सम्मुख निःसंकोच भोजन करनेवाला, जीवित पिता-माताका परित्याग करनेवाला, उनकी कभी भी सेवा न करनेवाला तथा होम-यज्ञादिका ल्योप करनेवाला पापिष्ठ कहलाता है। ७. साधु आचरणका परित्याग कर झूठी सेवाका प्रदर्शन करनेवाले, वेश्यागामी, देव-धनके द्वारा जीवन-यापन करनेवाले, भायकि व्यभिचारद्वारा प्राप्त धनसे जीवन-यापन करनेवाले या कन्याको बेचकर अथवा खीके धनसे जीवन-यापन करनेवाले—ये सब नष्ट-संज्ञक व्यक्ति हैं—ये स्वर्ग एवं मोक्षके अधिकारी नहीं हैं। ८. जिसका मन सदा कुदूर रहता है, अपनी हीनता देखकर जो क्रोध करता है, जिसकी भौंह कुटिल हैं तथा जो कुदूर और रुष स्वभाववाला है—ऐसे ये पाँच प्रकारके व्यक्ति रुष कहे गये हैं। ९. अकार्यमें या निन्दित आचारमें ही जीवन व्यतीत करनेवाला, धर्मकार्यमें अस्थिर, निद्रालु, दुर्व्यसनमें आसक्त, मद्यपायी, खी-सेवी, सदैव दुष्टोंके साथ वार्तालाप करनेवाला—ऐसे सात प्रकारके व्यक्ति दुष्ट कहे गये हैं। १०. अकेले ही मधुर-मिष्ठान भक्षण करनेवाले, वज्रक, सज्जनोंके निन्दक, शूकरके समान वृत्तिवाले—ये सब

पुष्ट संज्ञक व्यक्ति कहे जाते हैं। ११. जो निगम (वेद), आगम (तन्त्र) का अध्ययन नहीं करता है और न इन्हें सुनता ही है, वह पापात्मा हष्ट कहा जाता है। १२-१३. श्रुति और स्मृति ब्राह्मणोंके ये दो नेत्र हैं। एकसे रहित व्यक्ति काना और दोनोंसे हीन अन्धा कहा जाता है। १४. अपने सहोदरसे विवाद करनेवाला, माता-पिताके हिते अत्रिय वचन बोलनेवाला खण्ड कहा जाता है। १५. शास्त्रकी निन्दा करनेवाला, चुगलस्त्रोर, राजगामी, शूद्रसेवक, शूद्रकी पलीसे अनाचरण करनेवाला, शूद्रके घरपर पके हुए अब्रको एक बार भी खानेवाला या शूद्रके घरपर पाँच दिनोंतक निवास करनेवाला व्यक्ति चण्ड दोषवाला कहा जाता है। १६. आठ प्रकारके कुष्ठोंसे समन्वित, त्रिकुष्ठी, शास्त्रमें निन्दित व्यक्तियोंके साथ वार्तालाप करनेवाला अधम व्यक्ति कुष्ठ-दोषयुक्त कहा जाता है। १७. कोटि के समान भ्रमण करनेवाला, कुत्सित-दोषसे युक्त व्यापार करनेवाला दत्तापहारक कहा गया है। १८. कुपण्डित एवं अज्ञानी होते हुए भी धर्मका उपदेश देनेवाला वक्ता है। १९. गुरुजनोंकी वृत्तिको हरण करनेवाली चेष्टा करनेवाला तथा काशी-निवासी व्यक्ति यदि बहुत दिन काशीको छोड़कर अन्यत्र निवास करता है, वह कर्दर्य (कैनूस) है। २०. मिथ्या क्रोधका प्रदर्शन करनेवाला तथा राजा न होते हुए भी दण्ड-विधान करनेवाला व्यक्ति दण्ड (उदण्ड) कहा जाता है। २१. ब्राह्मण, राजा और देव-सम्बन्धी धनका हरण कर, उस धनसे अन्य देवता या ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेवाला या उस धनका भोजन या अब्रको देनेवाला व्यक्ति खरके समान नीच है, जो अक्षर-अभ्यासमें तत्पर व्यक्ति केवल पढ़ता है, किन्तु समझता नहीं, व्याकरण-शास्त्रशूल व्यक्ति पशु है, जो गुरु और देवताके आगे कहता कुछ है और करता कुछ और है, अनाचारी-दुराचारी है वह नीच कहा जाता है। २२. गुणवान् एवं सज्जनोंमें जो दोषका अन्वेषण करता है वह व्यक्ति खल कहलाता है। २३. भाग्यहीन व्यक्तिसे परिहासयुक्त वचन बोलनेवाला तथा चाप्डालोंके साथ निर्लज्ज होकर वार्तालाप करनेवाला वाचाल कहा जाता है। २४. पक्षियोंके पालनेमें तत्पर, बिल्लीके द्वारा आनीत भक्षणको बैट्टनेके बहाने बंदरकी भाँति स्वयं भक्षण

करनेवाला, व्यर्थमें तृणका छेदक, मिट्टीके डेलेको व्यर्थमें भेदन करनेवाला, मांस भक्षण करनेवाला और अन्यको खीमें आसक्त रहनेवाला व्यक्ति चपल कहलाता है। २५. तैल, उबटन आदि न लगानेवाला, गंभी और चन्दनसे शून्य, नित्यकर्मको न करनेवाला व्यक्ति मलीमस कहलाता है। २६. अन्यायसे अन्यके घरका धन ले लेनेवाला तथा अन्यायसे धन कमानेवाला, शास्त्र-निषिद्ध धनोंको ग्रहण करनेवाला, देव-पुस्तक, रत्न, मणि-मुक्ता, अश्व, गौ, भूमि

तथा स्वर्णका हरण करनेवाला सेयी (चोर) कहा जाता है। साथ ही देव-चिन्तन तथा परस्पर कल्याण-चिन्तन न करनेवाले, गुरु तथा माता-पिताका पौष्ट्रण न करनेवाले और उनके प्रति पालनीय कर्तव्यका आचरण न करनेवाले एवं उपकारी व्यक्तिके साथ समुचित व्यवहार न करनेवाले—ये सभी सेयी हैं। इन सभी दोषोंसे युक्त व्यक्ति रक्तपूर्ण नरकमें निवास करते हैं। इनका सम्पूर्ण ज्ञान सम्पन्न हो जानेपर मनुष्य देवतवक्त्रे प्राप्त कर लेता है। (अध्याय ५)

माता, पिता एवं गुरुकी महिमा

श्रीसूतजी बोले—द्विजश्रेष्ठ ! चारों वर्णोंकि लिये पिता ही सबसे बड़ा अपना सहायक है। पिताके समान अन्य कोई अपना बन्धु नहीं है, ऐसा बेदोंका कथन है। माता-पिता और गुरु—ये तीनों पश्चप्रदर्शक हैं, पर इनमें माता ही सबोंपरि है। भाइयोंमें जो क्रमशः बड़े हैं, वे क्रम-क्रमसे ही विदेश आदरके पात्र हैं। इन्हें द्वादशी, अमावास्या तथा संक्रान्तिके दिन यथाहृति मणियुक्त वस्त्र दक्षिणाके रूपमें देना चाहिये, दक्षिणायन और उत्तरायणमें, विषुव संक्रान्तिमें तथा चन्द्र-सूर्य-ग्रहणके समय यथाशक्ति इन्हें भोजन कराना चाहिये। अनन्तर इन यन्त्रोंसे^१ इनकी चरण-वन्दना करनी चाहिये, क्योंकि विधिपूर्वक वन्दन करनेसे ही सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। स्वर्ग और अपर्वर्ग-रूपी फलको प्रदान करनेवाले एक आद्य ब्रह्मस्वरूप पिताको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनकी प्रसन्नतासे संसार सुन्दर रूपमें दिखायी देता है, उन पिताका मैं तिलयुक्त जालसे तर्पण करता हूँ। पिता ही जन्म देता है, पिता ही पालन करता है, पितृगण ब्रह्मस्वरूप हैं, उन्हें नित्य पुनः-पुनः-

नमस्कार है। हे पितः ! आपके अनुग्रहसे लोकधर्म प्रवर्तित होता है, आप साक्षात् ब्रह्मरूप हैं, आपको नमस्कार है।

जो अपने उद्दरूपी विवरमें रखकर स्वयं उसकी सभी प्रकारसे रक्षा करती है, तन परा प्रकृतिस्वरूपा जननीदेवीको नमस्कार है। मातः ! आपने बड़े कष्टसे मुझे अपने उद्दर-प्रदेशमें धारण किया, आपके अनुग्रहसे मुझे यह संसार देखनेको मिला, आपको बार-बार नमस्कार है। पृथिवीपर जितने तीर्थ और सागर आदि हैं उन सबकी स्वरूपभूता आपको अपनी कल्याण-प्राप्तिके लिये मैं नमस्कार करता हूँ। जिन गुरुदेवके प्रसादसे मैंने यशस्वी विद्या प्राप्त की है, उन भवसागरके सेतु-स्वरूप शिवरूप गुरुदेवको मेरा नमस्कार है। अप्रजन्मन् ! वेद और वेदाङ्ग-शास्त्रोंके तत्त्व आपमें प्रतिष्ठित हैं। आप सभी प्राणियोंकि आधार हैं, आपको मेरा नमस्कार है। ब्राह्मण सम्पूर्ण संसारके चलते-फिरते परम पावन तीर्थस्वरूप हैं। अतः हे विष्णुरूपी भूदेव ! आप मेरा पाप नष्ट करें, आपको मेरा नमस्कार है।

१-स्वर्णीपर्वग्रन्थमें ब्रह्मस्वरूप पितरं नमामि । यतो जगत् पश्यति चाहकं ते तर्पयामः स्वर्णिलैलैस्तर्णिलैलैः ॥

पितरो जगत्यनीह पितरः पालयनि च । पितरो ब्रह्मरूपा हि तेष्यो निष्य नमो नमः ॥

यस्माद्विजयो लोकलालाद्वर्णः प्रवर्तते । नमस्तुष्य पितः साक्षात् ब्रह्मरूप नमोऽप्स्तु ते ॥

या कुरुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननी देवीं परो प्रकृतिरूपीणीम् ॥

कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे । तत्त्वसादाजगद्गुदुषं यातार्वित्यं नमोऽप्स्तु ते ॥

पृथिव्या यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः । वसन्ति यत्र तां नैमि यातरै भूतिहेतये ॥

गुरुदेवप्रसादेन लक्ष्या विद्या यशस्वीती । विवरूप नमस्तास्मै संसारार्पित्येत्येवे ॥

वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामप्रजन्मन् नमोऽप्स्तु ते ॥

ब्राह्मणो जगतो तीर्थे पावनं परमं यतः । भूदेव हरे मे पापं विष्णुरूपिन् नमोऽप्स्तु ते ॥

द्विजो ! जैसे पिता श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पिताके बड़े-छोटे भाई और अपने बड़े भाई भी पिताके समान ही मान्य एवं पूज्य हैं। आचार्य ब्रह्माकी, पिता प्रजापतिकी, माता पृथ्वीकी और भाई अपनी ही मूर्ति हैं। पिता मेलस्वरूप एवं वसिष्ठ-स्वरूप सनातन धर्ममूर्ति हैं। ये ही प्रत्यक्ष देवता हैं, अतः इनकी

आशाका पालन करना चाहिये। इसी प्रकार पितामह एवं पितामही (दादा-दादी) के भी पूजन-बन्दन, रक्षण, पालन और सेवनकी अत्यन्त महिमा है। इनकी सेवाके पुण्योक्ते तुलनामें कोई नहीं है, क्योंकि ये माता-पिताके भी परम पूज्य हैं। (अध्याय ६)

पुराण-श्रवणकी विधि तथा पुराण-वाचककी महिमा

श्रीसूतजी बोले—ब्रह्मणो ! पूर्वकालमें महातेजस्ती ब्रह्माजीने पुराण-श्रवणकी जिस विधिको मुझसे कहा था, उसे मैं आपको सुना रहा हूँ, आप सुनें।

इतिहास-पुराणके भक्तिपूर्वक सुननेसे ब्रह्महत्या आदि सभी यापोंसे मुक्ति हो जाती है, जो प्रातः-सायं तथा रात्रिमें पवित्र होकर पुराणोक्त श्रवण करता है, उसपर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर संतुष्ट हो जाते हैं^१। प्रातःकाल इसके पढ़ने और सुननेवालेसे ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं तथा सायंकालमें भगवान् विष्णु और रातमें भगवान् शंकर संतुष्ट होते हैं। पुराण-श्रवण करनेवालेको शुक्र वस्तु धारण कर कृष्ण-मृगचर्म तथा कुशके आसनपर बैठना चाहिये। आसन न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा। पहले देवता और गुरुकी तीन प्रदक्षिणा करे, तदनन्तर दिक्षालोको नमस्कार करे। फिर ओंकारमें अधिष्ठित देवताओंको नमस्कार करे एवं शाश्वत धर्ममें अधिष्ठित धर्मशास्त्र-ग्रन्थोंको भी नमस्कार करे।

ओताका मुख दक्षिण दिशाकी ओर और वाचकका मुख उत्तरकी ओर हो। पुराण और महाभारत कथाकी यही विधि कही गयी है। हरिवंश, रामायण और धर्मशास्त्रके श्रवणकी इससे विवरित विधि कही गयी है। अतः निर्दिष्ट विधिसे सुनना या पढ़ना चाहिये। देवालय या तीर्थमें इतिहास-पुराणके वाचनके समय सर्वप्रथम उस स्थान और उस तीर्थके माहात्म्यका चर्णन करना चाहिये। अनन्तर पुराणादिका वाचन करना चाहिये। माहात्म्यके श्रवणसे गोदानका फल मिलता है। गुरुकी आज्ञासे माता-पिताका अधिवादन करना चाहिये। ये वेदके सधान, सर्वधर्मय तथा सर्वज्ञानमय हैं। अतः हिंजश्रेष्ठ ! माता-पिताकी सेवासे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।

पुराणादि पुस्तकोंका हरण करनेवाला नरकको प्राप्त होता है। वेदादि ग्रन्थों तथा तात्त्विक मन्त्रोंको स्वयं लिखकर उनका वाचन न करे। वाचकोंको चाहिये कि वेदमन्त्रोंका विपरीत अर्थ न बतलायें और न वेदमन्त्रोंका अशुद्ध पाठ करें। क्योंकि ये दोनों अत्यन्त पवित्र हैं, ऐसा करनेपर उन्हें पावरानी झड़ाओंका सौ बार जप करना चाहिये। पुराणादिके प्रारम्भ, मध्य और अवसानमें तथा मन्त्रमें प्रणवका उच्चारण करना चाहिये।

देवर्विर्मित पुस्तकको त्रिदेव-स्वरूप समझकर गम्भ-पुष्यादिसे उसको पूजा करनी चाहिये। ग्रन्थके बाधनेवाले (धागा) सूक्तके नागशाज वासुकिका स्वरूप समझना चाहिये। इनका सम्मान न करनेपर दोष होता है। अतः उसका कभी भी परित्याग नहीं करना चाहिये। ग्रन्थके पत्रोंको भगवान् ब्रह्मा, अक्षरोंको जनार्दन, अक्षरोंमें लगी मात्राओंको अव्यय प्रकृति, लिपिको महेश तथा लिपिकी मात्राओंको सरस्वती समझना चाहिये।

पुराण-वाचकको चाहिये कि पुराण-संहिताओंमें परिगणित सभी व्यास, जैमिनि आदि महर्षियों तथा शंकर, विष्णु आदि देवताओंको आदि, मध्य और अवसानमें नमस्कार करे। इनका स्मरण कर धर्मशास्त्रार्थवेत्ता विप्रको पुराणादिका एकाध्याचित हो पाठ करना चाहिये। वाचकको स्पष्टाक्षरोंमें उच्चारण करते हुए सुन्दर ध्वनिमें सभी प्रकरणोंके तात्त्विक अश्रूओंको स्पष्ट बताना चाहिये। पुराणादि-धर्मसंहिताके श्रवणसे ब्रह्माण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विशेषतः अश्रमेष्ट-वज्रका फल प्राप्त करते हैं एवं सभी कामनाओंको भी प्राप्त कर लेते हैं तथा सभी गात्रोंमें मुक्त

१-इतिहासपुराणनि भूत्वा भवत्या द्विजोत्तमः। मृत्युते सर्वयोग्यो ब्रह्महत्याशते च यत्॥

स्वयं प्रातस्तथा यज्ञे द्वृष्टिर्भूता भूयोति यः। तत्य विष्णुलक्ष्मा ब्रह्मा तुप्यने शङ्कुगमनम्॥ (मध्यमर्त्य, १.३७।३-४)

होकर बहुत-से पुण्योंकी प्राप्ति कर लेते हैं।

जो वाचक सदा सम्पूर्ण ग्रन्थके अर्थ एवं तात्पर्यको सम्यक् रूपसे जानता है, वही उपदेश करनेके योग्य है और वही विप्र व्यास कहा जाता है। ऐसे वाचक विप्र जिस नगर या ग्राममें रहते हैं, वह पुण्यक्षेत्र कहा जाता है। वहाँकी निवासी धन्य तथा सफल-आत्मा हैं, कृतार्थ हैं एवं उनके समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

जैसे सूर्यरहित दिन, चन्द्रशून्य रात्रि, बाल्कोंसे शून्य गृह तथा सूर्यक विना ग्रहोंकी शोभा नहीं होती, वैसे ही व्याससे रहित सभाकी भी शोभा नहीं होती।

श्रीसूतजी बोले— द्विजोत्तम ! गुरुको चाहिये कि अध्यात्मविषयक पुण्यका अध्यापन ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शान्त, वैष्णव, क्रोधरहित तथा जितेन्द्रिय शिष्यको कराये। अन्यायसे धनार्जन करनेवाले, निर्भय, दार्ढिक, द्वेषी, निरर्थक और मन्त्र गतिवाले एवं सेवारहित, यज्ञ न करनेवाले, पुरुषत्वहीन, कठोर, क्रुद्ध, कृपण, व्यसनी तथा निन्दक शिष्यको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पुरुष-पौत्र

—OKHOKH—

पूर्ति-कर्म-निरुपण

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो ! युगान्तरमें ब्रह्माने जिस अन्तर्वेदि और बहिर्वेदिकी बात बतायी है, वह द्वापर और कलियुगके लिये अत्यन्त उत्तम मानी गयी है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है, उसे अन्तर्वेदिकर्म कहते हैं। देवताओंकी स्थापना और पूजा बहिर्वेदि (पूर्ति) कर्म है। वह बहिर्वेदि-कर्म दो प्रकारका है—कुओं, पोखरा, तालब आदि खुदवाना और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करना तथा गुरुजनोंकी सेवा।

निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म तथा व्यसनपूर्वक किया गया हरिस्मरणादि श्रेष्ठ कर्म अन्तर्वेदि-कर्मके अन्तर्गत आते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कर्म बहिर्वेदि-कर्म कहलाते हैं। धर्मका कारण राजा होता है, इमर्हिये राजाको धर्मका पालन करना चाहिये और राजाका आश्रय लेकर प्रजाको भी बहिर्वेदि (पूर्ति) कर्मोंका पालन करना चाहिये। यों तो बहिर्वेदि (पूर्ति) कर्म सतासी प्रकारके कहे गये हैं, फिर भी इनमें तीन प्रधान हैं—देवताओंका स्थापन, प्रासाद और तडाग आदिका निर्माण। इसके अतिरिक्त गुरुजनोंकी पूजापूर्वक पितृपूजा,

आदिके अतिरिक्त नम्र व्यक्तिको भी विद्या देनो चाहिये। विद्याको अपने साथ लेकर मर जाना अच्छा है, किन्तु अनधिकारी व्यक्तिको विद्या नहीं देनी चाहिये। विद्या कहती है कि मुझे भक्तिहीन, दुर्जन तथा दुष्टात्मा व्यक्तिको प्रदान मत करो, मुझे अप्रमादी, पवित्र, ब्रह्मचारी, सार्थक तथा विधिज्ञ सज्जनको ही दो। यदि निषिद्ध व्यक्तिको श्रेष्ठ विद्याधन दिया जाता है तो दात और ग्रहणकर्ता—इन दोनोंमेंसे एक स्वत्प्य समयमें ही यमपुरी चल जाता है। पढ़नेवालेको चाहिये कि वह आध्यात्मिक, वैदिक, अलौकिक विद्या पढ़नेवालेको प्रथम सादर प्रणाम कर अध्ययन करे। कर्मकाण्डका अध्ययन विना ज्योतिषज्ञानके नहीं करना चाहिये। जो विषय शास्त्रोंमें नहीं कहे गये हैं और जो म्लेच्छोंहास्त कथित हैं, उनका कभी भी अभ्यास नहीं करना चाहिये। जो स्वयं धर्माचरण कर धर्मका उपदेश करता है, वही ज्ञान देनेवाला पिता एवं गुरु-स्वरूप है तथा ऐसे ज्ञानदाताका ही धर्म प्रवर्तित होता है।

(अध्याय ७-८)

देवताओंका अधिवासन और उनकी प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि भी पूर्ति-कर्म हैं।

देवताओंकी प्रतिष्ठा उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ-भेदसे तीन प्रकारकी होती है। प्रतिष्ठामें पूजा, हवन तथा दान आदि ये तीन कर्म प्रधान हैं। तीन दिनोंमें सम्पन्न होनेवाले प्रतिष्ठा-विधानोंमें अद्वाईस देवताओंकी पूजा तथा जापकरूपमें सोलह ब्राह्मण रखकर प्रतिष्ठा करनी चाहिये। प्रतिष्ठाकी यह उत्तम विधि कही गयी है। ऐसा करनेसे असुमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। मध्यम प्रतिष्ठा-विधिमें यजन करनेवाले चार विद्वान् ब्राह्मण तथा तेईस देवता होते हैं। इसमें नवग्रह, दिक्षापाल, वरुण, पूर्वी, शिव आदि देवताओंकी एक दिनमें ही पूजा सम्पन्न कर देवताओंकी प्रतिष्ठा की जाती है। जो मात्र गणपति, ग्रह-दिक्षापाल-वरुण और शिवकी अर्चना कर प्रतिष्ठा-विधान किया जाता है, वह कनिष्ठ विधि है। क्षुद्र देवताओंको भी प्रतिमाएँ नाना प्रकारके वृक्षोंकी लकड़ियोंसे बनायी जाती हैं।

तीव्र तालब, बावली, कुण्ड और जल-पौसरा आदिका

निर्माण कर संस्कार-कार्यके लिये गणेशादि-देवपूजन तथा हवनादि कार्य करने चाहिये। तदनन्तर उनमें वापी, पुष्करिणी (नदी) आदिका पवित्र जल तथा गङ्गाजल डालना चाहिये।

एकसठ हाथका प्रासाद उत्तम तथा इससे आधे प्रमाणका मध्यम और इसके आधे प्रमाणसे निर्मित प्रासाद कनिष्ठ माना जाता है। ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवालेको देवताओंके प्रतिमाके मानसे प्रासादका निर्माण करना चाहिये। नूतन तड़ागका निर्माण करनेवाला अथवा जीर्ण तड़ागका नवीन रूपमें निर्माण करनेवाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुलका उद्धार कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वापी, कृष्ण, तालपत्र, बगीचा तथा जलके निर्गम-स्थानको जो व्यक्ति बास-बास सच्छ या संस्कृत करता है, वह मुक्तिरूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जहाँ विप्रों एवं देवताओंको निवास हो, उनके मध्यवर्ती स्थानमें वापी, तालपत्र आदिका निर्माण मानवोंको करना चाहिये। नदीके टटपर और इमशानके समीप उनका निर्माण न करे। जो मनुष्य वापी, मन्दिर आदिकी प्रतिष्ठा नहीं करता, उसे अनिष्टका भय होता है तथा वह प्राप्तका भागी भी होता है। अतः जनसंकुल गाँवोंके समीप वहे तालपत्र, मन्दिर, कृष्ण आदिका निर्माण कर उनकी प्रतिष्ठा शास्त्रविधिसे करनी चाहिये। उनके शास्त्रीय विधिसे प्रतिष्ठित होनेपर उत्तम फल प्राप्त होते हैं। अतएव प्रयत्नपूर्वक मनुष्य न्यायोपार्जित धनसे शुभ मूहूर्तमें शक्तिके अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठा करे। भगवान्के कनिष्ठ, मध्यम या श्रेष्ठ मन्दिरको बनानेवालम व्यक्ति विष्णुलोकको प्राप्त होता है और क्रमिक मुक्तिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति गिरे हुए या गिर रहे अर्थात् जीर्ण मन्दिरका रक्षण करता है, वह समस्त पुण्योंका फल प्राप्त करता है। जो

व्यक्ति विष्णु, शिव, सूर्य, ब्रह्मा, दुर्गा तथा लक्ष्मीनारायण आदिके मन्दिरोंका निर्माण करता है, वह अपने कुलका उद्धार कर कोटि कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद वहाँसे मूल्युलोकमें आकर राजा या पूज्यम् भनी होता है। जो भगवती विष्णुसुन्दरीके मन्दिरमें अनेक देवताओंकी स्थापना करता है, वह सम्पूर्ण विश्वमें स्मरणीय हो जाता है और स्वर्गलोकमें सदा पूजित होता है। जलकी महिमा अपरभ्यार है। परोपकार या देव-कार्यमें एक दिन भी किया गया जलका उपयोग मात्रकुल, पितृकुल, भार्याकुल तथा आचार्यकुलकी अनेक पीढ़ियोंको तार देता है। उसका स्वर्यका भी उद्धार हो जाता है। अधिमुक्त दशार्थी तीर्थमें देवार्चन करनेसे अपना उद्धार होता है तथा अपने पितृ-मातृ आदि कुलोंको भी वह तार देता है। जलके ऊपर तथा प्रासाद (देवालय) के ऊपर रहनेके लिये घर नहीं बनवाना चाहिये। प्रतिष्ठित अथवा अप्रतिष्ठित शिवलिङ्गको कभी उखाड़ना नहीं चाहिये। इसी प्रकार अन्य देव-प्रतिमाओं और पूजित देववृक्षोंको चालित नहीं करना चाहिये। उसे चालित करनेवाले व्यक्तिको गैरव नरककी प्राप्ति होती है, परंतु यदि नगर या आम उजड़ गये हों, अपना स्थान किसी करण छोड़ना पड़े या विप्रव मचा हो तो उसकी पुनः प्रतिष्ठा बिना विचारके करनी चाहिये।

शुभ मूहूर्तके अभावमें देवमन्दिर तथा देववृक्ष आदि स्थापित नहीं करने चाहिये। बादमें उन्हें हटानेपर ब्रह्महत्याका दोष लगता है। देवताओंके मन्दिरके सामने पुष्करिणी आदि बनाने चाहिये। पुष्करिणी बनानेवाला अनन्त फल प्राप्तकर ब्रह्मलोकसे पुनः नीचे नहीं आता।

(अध्याय ९)

प्रासाद, उद्यान आदिके निर्माणमें भूमि-परीक्षण तथा वृक्षारोपणकी महिमा

सुलजी बोले— ब्राह्मणो ! देवमन्दिर, तड़ाग आदिके निर्माण करनेमें स्वयंसे पहले प्रमाणानुसार गृहीत की गयी भूमिका संशोधन कर दस हाथ अथवा पाँच हाथके प्रमाणमें बैलोंसे उसे जुतवाना चाहिये। देवमन्दिरके लिये गृहीत भूमिको सफेद बैलोंसे तथा कृष्ण, बगीचे आदिके लिये काले बैलोंसे जुतवाये। यदि वह भूमि मह-यागके लिये हो तो उसे जुतवानेकी आवश्यकता नहीं, मात्र उसे सच्छ कर लेना

चाहिये। उस पूर्वोक्त स्थानको तीन दिन जुतवाना चाहिये। फिर उसमें पाँच प्रकारके धान्य बोने चाहिये। देवपत्रके तथा उद्यानके लिये सात प्रकारके धान्य बपन करने चाहिये। मौग, उड्ढ, धान, तिल, सौंवा—ये पाँच ब्रीहिगण हैं। मसूर और मटर या चना यिलानेसे सात ब्रीहिगण होते हैं। (यदि ये बीज तीन, पाँच या सात रातोंमें अद्भुत हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये—तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच

गतवाली भूमि मध्यम तथा सात गतवाली भूमि कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमिको सर्वथा ल्याग देना चाहिये ।) खेत, लाल, पीली और काली—इन चार बर्णोंवाली पृथ्वी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णको लिये प्रशंसित मानी गयी है। प्रासाद आदिके निर्माणमें पहले भूमिकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसकी एक विधि इस प्रकार है—अरणिमात्र (लगभग एक हाथ लंबा) विल्वकाशुको बारह अंगुलके गड्ढों में गाड़कर, उसके भूमिसे ऊपरत्वाले भागमें चारों ओर चारों लकड़ियाँ लगाकर उन्हें कनसे लपेटकर तेलसे भिंगो ले। इन्हें चार बत्तियोंके रूपमें दीपककी भाँति प्रज्वलित करे। पूर्व तथा पश्चिमकी ओर बर्ती जलती रहे तो शुभ तथा दक्षिण एवं उत्तरकी ओरकी जलती रहे तो अशुभ माना गया है। यदि चारों बत्तियाँ चुप्पा जावें या मन्द हो जावें तो विपत्तिकारक हैं। इस प्रकार सम्यक्-रूपसे भूमिकी परीक्षाकर उस भूमिको सूत्रसे आवेषित तथा कीलित कर बासुका पूजन करे। तदनन्तर बासुवल देकर भूमि खोदनेवाले स्वनिवारी भी पूजा करे। बासुके मध्यमें एक हाथके पैमानेमें भूमिको धी, मधु, स्वर्णमिश्रित जल तथा रलमिश्रित जलसे ईशानाभिमुख होकर लैप दे, फिर खोदते समय 'आ ब्रह्मन्'^१ इस मन्त्रका उचारण करे। जो बासुदेवताका विना पूजन किये प्रासाद, तड़ाग आदिका निर्माण करता है, यमराज उसका आधा पुण्य नष्ट कर देते हैं।

अतः प्रासाद, आगम, उद्यान, महाकृप, गृहनिर्माणमें पहले बासुदेवताका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। जहाँ स्तम्भकी आवश्यकता हो वहाँ साल, सैंव, पलास, केसर, ऐल तथा बाकुल—इन बृक्षोंसे निर्मित यूप कलियुगमें प्रयासत माने गये हैं। यदि बापी, कृप आदिका विधिहीन स्वन एवं आम आदि बृक्षोंका विधिहीन गोपण करे, तो उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता, अपितु केवल अधोगति ही मिलती है। नदीके किनारे, इमशान तथा अपने घरसे दक्षिणकी ओर तुलसीबृक्षका

गोपण न करे, अन्यथा यम-यातना भोगनी पड़ती है। विधि-पूर्वक बृक्षोंका गोपण करनेसे उसके पत्र, पुष्प तथा फलके रज-रेणुओं आदिका समागम उसके पितरोंके प्रतिदिन तृप्त करता है।

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देनेवाले बृक्षोंका गोपण करता है या मार्गमें तथा देवतालयमें बृक्षोंको लगाता है, वह अपने पितरोंके बड़े-बड़े पापोंसे तारता है और गोपणकर्ता इस मनुष्य-लोकमें यहाँ जीती तथा शुभ परिणामको प्राप्त करता है तथा अतीत और अनागत पितरोंको स्वर्गमें जाकर भी तारता ही रहता है। अतः द्विजगण ! बृक्ष लगाना अत्यन्त शुभ-दायक है। जिसको पुत्र नहीं है, उसके लिये बृक्ष ही पुत्र है, बृक्षगोपणकर्ताकी लैंगिक-पारलैंगिक कर्म बृक्ष ही करते रहते हैं तथा स्वर्ग प्रदान करते हैं। यदि कोई अश्रुत्य बृक्षका आगोपण करता है तो वही उसके लिये एक लाल पुत्रसे भी बढ़कर है। अतः एवं अपनी सद्वितीयके लिये क्रम-से-क्रम एक या दो या तीन अश्रुत्य-बृक्ष लगाना ही चाहिये। हजार, लाख, करोड़ जो भी मुकिके साधन हैं, उनमें एक अश्रुत्य-बृक्ष लगानेकी बराबरी नहीं कर सकते।

अशोक-बृक्ष लगानेसे कभी शोक नहीं होता, ग्रस्त (पाकड़) बृक्ष उत्तम स्त्री-प्रदान करता है, ज्ञानरूपी फल भी देता है। विल्वबृक्ष दीर्घ आयुष्य प्रदान करता है। जामुनका बृक्ष धन देता है, तेंदुका बृक्ष कुलयुद्धि करता है। दाढ़िम (अनार) का बृक्ष स्त्री-सुख प्राप्त करता है। बकुल पाप-नाशक, बैजुल (तिनिश) बल-बुद्धिप्रद है। धातकी (धव) स्वर्ग प्रदान करता है। वटवृक्ष योक्षप्रद, आपवृक्ष अभीष्ट कामनाप्रद और गुवाक (सुपारी) का बृक्ष सिद्धिप्रद है। बल्वल, मधुक (महुआ) तथा अर्जुन-बृक्ष सब प्रकारका अप्र प्रदान करता है। कटम्ब-बृक्षसे विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। तितिङी (इमली) का बृक्ष धर्मदूषक माना गया है।

१-भूमि-परीक्षा, बासु-विधान तथा प्रासाद आदिको प्रतिक्रिया आदिपर विश्वात विचार सम्बन्धितमुख्यार, बासुप्रजवल्लभ, बृहस्पतिता, शिल्पराज, गृहलभूषण आदि फलोंमें हुआ है। मत्स्य, अग्नि तथा विष्णुपर्वतपुराणमें भी इसकी चर्चा आयी है। इस विचारका संक्षेप उल्लेख श्रेष्ठ, शतपथ वाय्वाण, श्रीतस्मृति एवं मनुस्मृति ३। ८९ आदिमें भी है। यामुविहारके मूल्य प्रवर्कं एवं इत्यात्मकर्मां और मय दानव हैं।

२-आ ब्रह्मन् ब्रह्मणो ब्रह्मनन्मो जायतामा राष्ट्रे राजन्यः श्रु इष्टव्योऽनित्यामी महारथो जायतो दोष्पी भेदुवौदानश्चयानशः; नसि: पूर्णियोऽन्याः सर्वेषां युवाय यजमानस्य वीरो जायतो विकामे-निकामे नः पर्वन्यो वर्षतु फलव्याप्तो न ओषधयः पञ्चन्यां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

शमी-वृक्ष रोग-नाशक है। केशरसे शत्रुओंका विनाश होता है। श्वेत बट अनप्रदाता, पनस (कटहल) वृक्ष मन्द बुद्धिकारक है। मर्कटी (केवाच) एवं कटम-वृक्षके लगानेसे संततिका क्षय होता है।

शीशम, अर्जुन, जयन्ती, करवीर, बेल तथा पलशाश-वृक्षोंके आरोपणसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। विधिपूर्वक वृक्षका रोपण करनेसे स्वर्ग-सुख प्राप्त होता है और रोपणकर्ताके तीन जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ वृक्षोंका रोपण करनेवाला ब्रह्मा-रूप और हजार वृक्षोंका रोपण करनेवाला विष्णुरूप बन जाता है। वृक्षके आरोपणमें वैशाख मास श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ अशुभ है। आषाढ़, आवण तथा भाद्रपद ये भी श्रेष्ठ हैं। आश्विन, कार्तिकमें वृक्ष लगानेसे विनाश या क्षय होता है। श्वेत तुलसी प्रशस्त मानी गयी है। असूत्य, घटवृक्ष और श्रीवृक्षका छेदन करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मधाती कहलता है। वृक्षच्छेदी व्यक्ति मूक और सैकड़ों व्याधियोंसे युक्त होता है। तितिङ्गीके बीजोंको इशुदण्डसे पीसकर उसे जलमें भिलाकर सौंचनेसे अशोककी तथा नारियलके जल एवं शाहद-जलमें सौंचनेसे आग्रवृक्षकी वृद्धि होती है। असूत्य-वृक्षके मूलसे

दस हाथ चारों ओरका क्षेत्र पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र माना गया है और उसकी छाया जहाँतक पहुँचती है तथा असूत्य-वृक्षके संसर्गसे बहनेवाला जल जहाँतक पहुँचता है, वह क्षेत्र गङ्गाके समान पवित्र माना गया है।

सूतजी पुनः बोले—विप्रश्रेष्ठ ! तात्रिक पद्धतिके अनुसार सभी प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुद्ध दिन ही लेना चाहिये। वृक्षोंके उद्यानमें कुर्मी अवश्य बनवाना चाहिये। तुलसी-बनमें कोई याग नहीं करना चाहिये। तालब, बड़े बाग तथा देवस्थानके मध्य सेतु नहीं बनवाना चाहिये। परंतु देवस्थानमें तडाग बनवाना चाहिये। शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें अन्य देवोंकी स्थापना नहीं करनी चाहिये। इसमें देश-काल (और शैवागमों) की मर्यादाके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके विपरीत आचरण करनेपर आयुका हास होता है। हिंजगण ! तालब, पुष्करिणी तथा उद्यान आदिका जो परिमाण बताया गया हो, यदि उससे कम पैमानेपर ये बनाये जायें तो दोष है, किन्तु दस हाथके परिणाममें हों तो कोई दोष नहीं है। यदि ये दो हजार हाथोंसे अधिक प्रमाणमें बनाये गये हों तो उनकी प्रतिष्ठा विधिपूर्वक अवश्य करनी चाहिये। (अध्याय १०-११)

देव-प्रतिमा-निर्माण-विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं प्रतिमाका शास्त्रसम्मत लक्षण कहता हूँ। उत्तम लक्षणोंसे गहित प्रतिमाका पूजन नहीं करना चाहिये। पाण्याण, काष्ठ, मूर्तिक, रज, ताप्र एवं अन्य धातु—इनमेंसे किसीकी भी प्रतिमा बनायी जा सकती है^१। उनके पूजनसे सभी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं। मन्दिरके मापके अनुसार शुभ लक्षणोंसे सम्पत्र प्रतिमा बनवानी चाहिये। घरमें आठ अङ्गुलसे अधिक ऊँची मूर्तिका पूजन नहीं करना चाहिये। देवालयके द्वारकी जो ऊँचाई हो उसे आठ भागोंमें विभक्त कर तीन भागके मापमें शिष्ठिका तथा दो भागके मापमें देव-प्रतिमा बनाये। चौरासी अङ्गुल (साढ़े तीन हाथ) की प्रतिमा वृद्धि करनेवाली होती है। प्रतिमाके मुखकी

लंबाई बारह अङ्गुल होनी चाहिये। मुखके तीन भागके प्रमाणमें चिदुक, ललाट तथा नासिका होनी चाहिये। नासिकाके बायावर ही कान और ग्रीवा बनानी चाहिये। नेत्र दो अङ्गुल-प्रमाणके बनाने चाहिये। नेत्रके मानके तीसरे भागमें आँखकी तारिका बनानी चाहिये। तारिकाके तृतीय भागमें सुन्दर दृष्टि बनानी चाहिये। ललाट, मस्तक तथा ग्रीवा—ये तीने बायावर आपके हों। सिरका विस्तार बत्तीस अङ्गुल होना चाहिये। नासिका, मुख और ग्रीवासे हृदय एक सीधमें होना चाहिये। मूर्तिकी जितनी ऊँचाई हो उसके आधे में कटि-प्रदेश बनाना चाहिये। दोनों बाहु, जैंघा तथा ऊँठ परस्पर समान हों। टखने वार अङ्गुल ऊँचे बनाने चाहिये। पैरके ऊँगूठे तीन

१. मत्स्यपुराणमें प्रतिमा-निर्माणके लिये निम्न वस्तुओंके योग्य बताया है—

सौकर्णी यज्ञी वापि ताङ्गी रसमयी तथा। शैली दासमयी चापि लौहसीसमयी तथा ॥

रेतिकवचात्युत्तम वा ताप्रक्षेत्रमयी तथा। शुभदासमयी चापि देवताचां प्रशास्ते ॥ (२५८। २०-२१)

मुखर्ण, चौटी, सौंक, रज, पत्थर, देवदार, लोहा-सीरा, पीतल और कौसा-मिश्रत अथवा शुभ काष्ठोंकी जिनी हुई देवप्रतिमा प्रशास्त मानी गयी है।

अङ्गुलिके हों और उसका विस्तार छः अङ्गुलिका हो। अङ्गुठेके बगवर ही तर्जनी होनी चाहिये। शोष अङ्गुलियाँ क्रमशः छोटी हों तथा सभी अङ्गुलियाँ नखयुक्त बनाये। पैरको लंबाई चौदह अङ्गुलमें बनानी चाहिये। अधर, ओष्ठ, वक्षः स्थल, भू, ललट, गण्डस्थल तथा कपोल भेर-पूरे सुडौल सुन्दर तथा मासल बनाने चाहिये, जिससे प्रतिमा देखनेमें सुन्दर मालूम हो। नेत्र विशाल, फैले हुए तथा लालिमा लिये हुए बनाने चाहिये।

इस प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पूर्ण प्रतिमा शुभ और पूज्य मानी गयी है। प्रतिमाके मस्तकमें मुकुट, कल्पउमे हार, बाहुओंमें कटक और अंगद फहनाने चाहिये। मूर्ति सर्वाङ्ग-सुन्दर, आकर्षक तथा तत्त्व अङ्गोंके आभूषणोंसे अलंकृत होनी चाहिये। भावान्तकी प्रतिमामें देवकल्पओंका आधान होनेपर भगवत्प्रतिमा प्रत्येकको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेती है और अभीष्ट वस्तुका लाभ कराती है।

जिसका मुख्यमण्डल दिव्य प्रभासे जगमगा रहा हो, कर्णोंमें चित्र-चित्र मणियोंके सुन्दर कुण्डल तथा हाथोंमें कनक-मालाएँ और मस्तकपर सुन्दर केश सुशोभित हो, ऐसी

भक्तोंको वर देनेवाली, जोहसे परिपूर्ण, भगवतीकी सौम्य कैशोरी प्रतिमाका निर्माण कराये। भगवती विधिपूर्वक अर्चना करनेपर प्रसन्न होती है और उपासकोंके मनोरथोंको पूर्ण करती है।

नव ताल (साढ़े चार हाथ) की विष्णुकी प्रतिमा बनवानी चाहिये। तीन तालकी वासुदेवकी, पाँच तालकी नृसिंह तथा हयग्रीवकी, आठ तालकी नारदवणकी, पाँच तालकी महेशकी, नव तालकी भगवती दुर्गाकी, तीन-तीन तालकी लक्ष्मी और सरस्वतीकी तथा सात तालकी भगवान् सूर्यकी प्रतिमा बनवानेका विधान है।

भगवान्की मूर्तिकी स्थापना तीर्थ, पर्वत, तालघर आदिके समीप करनी चाहिये अथवा नगरके मध्यभागमें या जहाँ ब्राह्मणोंका समूह हो, वहाँ करनी चाहिये। इनमें भी अविमुक्त आदि विद्वद् क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठा करनेवालेके पूर्वापर अनन्त कुलोंका उद्घार हो जाता है। कलियुगमें चन्दन, अगर, विल्व, श्रीषणिक तथा पचकाष्ठ आदि काष्ठोंके अभावमें मृण्मयी मूर्ति बनवानी चाहिये। (अध्याय १२)

कुण्ड-निर्माण एवं उनके संस्कारकी विधि और ग्रह-शान्तिका माहात्म्य

सूतजी बोले— द्विजश्रेष्ठ ! अब मैं यज्ञकुण्डोंके निर्माण एवं उनके संस्कारकी संक्षिप्त विधि बतला रहा हूँ। कुण्ड दस प्रकारके होते हैं—(१) चौकोर, (२) वृत्त, (३) पदा, (४) अर्धचन्द्र, (५) योनिकी आकृतिका, (६) चन्द्राकार, (७) पञ्चकोण, (८) सप्तकोण (९) अष्टकोण और (१०) नौ कोणोंवाला।

सबसे पहले भूमिका संशोधन कर भूमिपर पड़े हुए तृण, केश आदि हटा देने चाहिये। फिर उस भूमिपर भस्म और अंगारे घूमाकर भूमि-शुद्धि करनी चाहिये, तदनन्तर उस भूमिपर जल-सिंचनकर बीजारोपण करे और सात दिनके बाद कुण्ड-निर्माणके लिये स्थान करना चाहिये। तत्पश्चात् अभीष्ट उपर्युक्त दस कुण्डोंमें से किसीका निर्माण करना चाहिये। कुण्ड-निर्माणार्थ विधिवत् नाप-जोखके लिये सूत्रका उपयोग करे। कामना-भेदसे कुण्ड भी अनेक आकारके होते हैं। कुण्डके अनुरूप ही मेखला भी बनायी जाती है। यज्ञोंमें आहुतियोंकी संख्याका भी अलग-अलग विधान है। विधि-

प्रमाणके अनुसार आहुति देनी चाहिये। मानरहित हवन करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः युद्धिमान् मनुष्यको मानवा पूर्ण ज्ञान रखकर ही कुण्डका विधिवत् निर्माण कर यज्ञानुष्ठान करना चाहिये।

जिस यज्ञका जितना मान होता है, उसी मानकी ही योजना करनी चाहिये। पचास आहुतियोंका मान सामान्य है, इसके बाद सौ, हजार, अयुत, लक्ष और कोटि होम भी होते हैं। बड़े-बड़े यज्ञ सम्पूर्ण रहनेपर हो सकते हैं या गुजार-महागुजा कर सकते हैं। मनुष्य अपने-अपने प्राकृत कर्मके अनुसार सुख-दुःखका उपयोग करता है तथा शुभाशुभ-फल ग्रहोंके अनुसार भोगता है। अतः शान्ति-पुष्टि-कर्मये ग्रहोंकी शान्ति प्रयत्नपूर्वक परम भक्तिसे करनी चाहिये। दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथिवी-सम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उत्तातोंके स्थानपर शुभाशुभ फल देनेवाली ग्रह-शान्ति करनी चाहिये। इन अवसरोंपर अयुत होम करना चाहिये। काष्ठ-कर्म या शान्ति-पुष्टि के लिये ग्रहोंका भक्तिपूर्वक निय

पूजन एवं हवन करना चाहिये। कलिमें ग्रहोंके लिये लक्ष एवं कठेटि होमका विधान है। गृहस्थको आभिचारिक कर्म नहीं करना चाहिये।

कुण्डोंका शास्त्रानुसार संस्कार करना चाहिये। बिना संस्कार किये होम करनेपर अर्थ-हानि होती है। अतः संस्कार करके होमादि क्रियाएँ करनी चाहिये।

कुण्डोंके स्थानका ओकारपूर्वक आवेक्षण, कुशके जलसे प्रोक्षण, तिशूलीकरण तथा सूत्रसे आवेष्टित करना, कीलित करना, अग्निजिह्वाकी भावना करना एवं अग्न्याहण आदि अठारह संस्कार होते हैं। शूद्रके घरसे अग्नि कभी न लाये। स्त्रीके द्वारा भी अग्नि नहीं मैगवानी चाहिये। शूद्र एवं पवित्र व्यक्तिज्ञान अग्नि प्रहण करना चाहिये। तदनन्तर अग्निका संस्कार करे और उसे अपने अभिमुख रखे। अग्नि-बीज (३) और शिव-बीज (३) से उसका प्रोक्षण करे और शिव-शत्क्रम ध्यान करे, इससे अभीष्ट सिद्धिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद वायुके सहाये अग्नि प्रज्वलित करे। देवी भगवतीका और भगवान्का अर्थ, पादा, आचमनीय आदिसे पूजन करे। अग्नि-पूजनमें इस मन्त्रका उपयोग करे—

'पितृपिञ्जलं दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा'

यज्ञदत्तमुनिने अग्निकी तीन जिह्वाएँ बतलायी हैं—हिरण्या, कनक तथा कृष्णा^१। समिधा-भेदसे जिन जिह्वा-भेदोंका वर्णन है, उनका उन्हींमें विनियोग करना चाहिये। बहुरूपा, अतिरूपा और सात्त्विका—इनका योग-कर्ममें विनियोग होता है। आज्ञ्यहोममें हिरण्या, त्रिमधु (दूध, चीनी और मधु—इन तीनोंके समाहार) से हवन करनेपर कर्णिका,

शूद्र क्षीरसे हवन करनेपर रक्ता, नैतिक कर्ममें प्रभा, पुष्पहोममें बहुरूपा, अत्र और पायससे हवन करनेमें कृष्णा, इक्षुहोममें पद्मरागा, पवित्रहोममें सुवर्णा और लोहिता, विल्वपत्रसे हवन करनेपर शेता, तिल-होममें धूमिनी, काष्ठ होमये कचालिका, पितृहोमये लोहितास्या, देवहोमये मनोजवा नामकी अग्निज्ञाला कही गयी है। जिन-जिन समिधाओंसे हवन किया जाता है, उन-उन समिधाओंमें 'वैश्वानर' नामक अग्निदेव स्थित रहते हैं।

अग्निके मुखमें मन्त्रोषांरणपूर्वक आहुति पढ़नेपर अग्नि देवता सभी प्रकारका अभ्युदय करते हैं। मुखके अतिरिक्त इष्य स्थानोंपर आहुति देनेसे अनिष्ट फल होता है। अग्निकी जिह्वाएँ विशेषरूपसे चृताहुतिमें हिरण्या एवं अन्यान्य आहुतियोंमें गणना, वक्ता, कृष्णाभा, सुप्रभा, बहुरूपा तथा अति-रूपिका नामसे प्रसिद्ध हैं। कुण्डके उदरमें अर्थात् मध्यमें आहुतियों देनी चाहिये। इधर-उधर नहीं देनी चाहिये। चन्दन, अगर, कपूर, पाटला तथा यूथिका (जूही) के समान अग्निसे प्रादुर्भूत गम्य सभी प्रकारका कल्याणकारक होता है।

यदि अग्निकी ज्वाला छिन्न-बूत-रूपमें उठती हो तो मृत्युभय होता है और घनका क्षय होता है। अग्नि बुझ जाने तथा अत्यधिक धुआँ होनेपर भी यहान् अनिष्ट होता है। ऐसी स्थितियोंमें प्रायः क्षित करना चाहिये। पहले अद्वैतस आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। अनन्तर धीसे मूल मन्त्रद्वारा पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। तीनों कालोंमें महास्नान करे तथा श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक भगवान् विष्णुकी पूजा करे। (अध्याय १३—१५)

अग्नि-पूजन-विधि

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! नित्य-नैतिक यागादिकी समाप्तिमें हवन हो जानेपर भगवान् अग्निदेवकी बोडश उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। अग्निको वायुद्वारा प्रदीप कर पीठस्थ देवताओंकी पूजा कर हाथमें लाल फूल ले निन्न मन्त्र पढ़कर ध्यान करे—

इष्टं शक्तिस्वसितकाभीतिमुख्यैर्दिव्येऽर्धिरथयन्ते वरान्तम् ।
हेषाकल्पं पद्मसंसर्वं विनेत्रं ध्यायेद्वक्षिं बद्धपौसिं जटापिः ॥

(प्रथमपर्व १। १६। ३)

'भगवान् अग्निदेवता अपने हाथोंमें उत्तम इष्ट (यज्ञपत्र), शक्ति, स्वस्तिक और अभ्य-मुद्रा धारण किये हैं, देवीप्रयामन सुवर्ण-सदृश उनका स्वरूप है, कम्बलके ऊपर विराजमान है, तीन नेत्र हैं तथा ये जटाओं और मुकुटसे सुशोभित हैं।'

मण्डपके पूर्व आदि द्वारदेशोंमें कामदेव, इन्द्र, वराह तथा कर्त्तिकेयको आवाहित कर स्थापित करे। तदनन्तर आसन, पाद, अर्थ, आचमनीय तथा गम्यादि उपचारोंसे पूजन कर आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करे। फिर सुवर्ण-वर्णवाले निर्मल, प्रज्वलिता,

१—प्रकाशनात्मसे विष्णुर्भूति, मूर्तिज्ञी, धूपवर्णा, मनोजवा, लोहितास्या, कर्णलप्रसा तथा काली—ये भी सात प्रकारकी अग्निजिह्वाएँ कही गयी हैं।

सर्वतोमुख, महाजिह्वा तथा महोदर भगवान् अग्निदेवकी इसके बाद भगवान् अग्निदेवका विविध उपचारोंसे पूजन करे । आकाश-रूपमें पूजा करे । अग्निकी जिह्वाओंका भी ध्यान करे । (अध्याय १६)

१-सर्वश्रद्धम निष्प्रलिङ्गित मन्त्रसे तीन पुष्पाच्छोदाएँ अग्निदेवको आसन प्रदान करे—

आसन-मन्त्र—त्वमदि! सर्वभूतानां संसारार्थकतातः । परमज्योतीरुपस्त्वमासनं सफलीकृतुः ॥

संसार-रूपी सागरसे डगडग करनेवाले, सम्पूर्ण प्राणियोंमें आदि, परम ज्योति:-स्वरूप है अग्निदेव ! आप इस आसनको प्रहण कर मुझे सफल बनाये । अनन्तर करबद्ध प्रार्थना करे—

प्रार्थना-मन्त्र—वैशानर नमस्तेऽस्तु नमस्ते हृष्टवाहन । स्वागते ते सुरत्रेषु शान्तिं ब्रुह नमोऽस्तु ते ॥

हे हृष्टवाहन वैशानर देव ! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, आपका स्वागत है, आपको नमस्कार है, आप शान्ति प्रदान करे ।

यज्ञ-मन्त्र—नमस्ते भगवन् देव आपोनारायणात्मक । सर्वलोकहितार्थार्थं पापे च प्रतिगृहाताम् ॥

नर-नारायणस्वरूप है भगवान् वैशानदेव ! आपको नमस्कार है । आप सप्तसंसारके हितके लिये इस पाप-जलको प्रहण करे ।

अर्पण-मन्त्र—नारायण परं धाम ज्योतीकृप सनातन । गृहणार्थं भया दर्ते विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥

हे विश्वरूप ! आप ज्योतीकृप हैं, आप ही सनातन, परम धाम एवं नरायण हैं, आपको नमस्कार है, आप मेरे द्वारा दिये गये इस अर्पणको प्रहण करे ।

आवश्यकीय मन्त्र—जगद्दीदित्यरपेण प्रकाशशर्यति यः सदा । तत्त्वे प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥

जो आदित्यकपसे सम्पूर्ण संसारको नित्य प्रकाशित करते रहते हैं, ऐसे उन जातवेदा तथा प्रकाशरूप भगवान् वैशानरको नमस्कार है । हे अग्निदेव ! इस आवश्यकीय जलको आप प्रहण करे ।

ज्ञानीय मन्त्र—घनञ्जय नमस्तेऽस्तु सर्ववाप्नयणाशन । ज्ञानीय ते भया दर्ते सर्वकामार्थीसिद्धये ॥

सभी पापोंका नाश करनेवाले हैं घनञ्जयदेव ! आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण करमनाओंकी सिद्धिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस ज्ञानीय जलको आप प्रहण करे ।

अङ्गजोक्षण एवं वज्र-मन्त्र—हुताशन महामाहो देवदेव सनातन । शरणे ते प्राच्छामि देहि ये परम पदम् ॥

हे देवदेव सनातन महामाहु हुताशन ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे आप परम पद प्रदान करे (मेरे द्वारा प्रदत्त इस अङ्गजोक्षण एवं वज्रको आप स्वीकार करे) ।

अर्पण-मन्त्र—ज्योतिः ज्योतीरुपस्त्वमनादिनिभ्याच्युत । भया दक्षपलंकरपलंकृत नमोऽस्तु ते ॥

अपने स्थानसे कभी चून न होनेवाले हैं अग्निदेव ! आपका न आदि है न अन्त । आप ज्योतियोंके परमज्योतीकृप हैं, आपको मेरा नमस्कार है । मेरे दिये गये इस अर्पणकरके आप अलंकृत करे ।

गम्भ-मन्त्र—देवीदेवा मुद्द यान्ति यथा सम्प्रक्षसमागमात् । सर्वदेवोपत्तस्यर्थं गम्भोऽयं प्रतिगृहाताम् ॥

हे देवी ! आपके सम्प्रक्ष संनिधानसे सभी देवी-देवता प्रसन्न हो जाते हैं । सम्पूर्ण देवोंकी शक्तिके लिये मेरे द्वारा दिये गये इस गम्भको आप प्रहण करे ।

पुष्प-मन्त्र—विष्णुस्त्वे हि ब्रह्मा च ज्योतिः गतिर्विश्व । गृहणं पुर्यं देवेश सामुद्रेण जगद् पर्वत् ॥

हे देवदेवेश ब्रह्म ! आप देवताओं और पितरोंके सुख प्राप्त करनेमें एकमात्र सनातन आधार हैं । आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस पुष्पको प्रहण करे ।

दीप-मन्त्र—त्वयेकः सर्वभूतेषु स्वारेषु चरेषु च । परमात्मा पराकरः प्रदीपः प्रतिगृहाताम् ॥

परमात्म ! अहम सम्पूर्ण चक्रवर्ण प्रणियोंमें ज्याम है । आपको आकृति परम उत्कृष्ट है । आप इस दीपकरके प्रहण करे ।

नैवेद्य-मन्त्र—नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रपत्वे जातवेदसे । सर्वलोकहितार्थार्थं नैवेद्यं प्रतिगृहाताम् ॥

हे यज्ञपति जलवेद ! आप शक्तिजली हैं तथा समस्त संसारक करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है । मेरे द्वारा प्रदत्त इस नैवेद्यके आप प्रहण करे । परम अर्पणकरप मधु भी नैवेद्यके रूपमें निवेदित करे तथा यज्ञस्त्रू भी अर्पित करे । अन्त्ये समस्त कर्म भगवान् अग्निदेवको निवेदित कर दे—

हुताशन नमस्तु यसे नमस्ते रूपमवाहन । लोकनाथ नमस्तेऽस्तु नमस्ते जातवेदसे ॥

हे हुताशनदेव ! आपको नमस्कार है, रूपमवाहन लोकनाथ ! आपको नमस्कार है, हे जलवेद ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है ।

विविध कर्मोंमें अग्रिके नाम तथा होम-द्रव्योंका वर्णन

सूतजी बोले— ब्राह्मणो ! अब मैं शास्त्रसम्मत विधिके अनुसार किये गये विविध यज्ञोंमें अग्रिके नामोंका वर्णन करता हूँ । शतार्थ-होममें, पाँच सौ संस्कारकर्त्ता आहुतिवाले यज्ञोंमें अग्रिको काशयप कहा गया है । इसी प्रकार आज्य-होममें विष्णु, तिल-यागमें बनस्पति, सहस्र-यागमें ब्राह्मण, अवृत-यागमें हरि, लक्ष्मी-होममें वहि, कोटि-होममें हुताशन, शान्तिक कर्मोंमें वरुण, मारण-कर्मोंमें अरुण, नित्य-होममें अनल, प्रायश्चित्तमें हुताशन तथा अब्र-यज्ञमें लोहित नाम कहा गया है । देवप्रतिष्ठामें लोहित, वासुदेव, मण्डप तथा पद्मक-यागमें प्रजापति, प्रपा-यागमें नाग, महादानमें हविर्भुक्, गोदानमें रुद्र, कन्यादानमें योजक तथा तुल-पुरुष-दानमें धातारूपसे अग्रिदेव स्थित रहते हैं । इसी प्रकार वृत्तोत्तर्माणे अग्रिका सूर्य, वैश्वदेव-कर्ममें पावक, दीक्षा-ग्रहणमें जनार्दन, उत्तीडनमें काल, शबदाहमें कल्य, पर्णदाहमें यम, अस्थदाहमें शिल्पिण्डि, गर्भधानमें मरुत्, सीमनामें पिङ्गल, पुंसवनमें इन्द्र, नामकरणमें पर्विति, निक्रमणमें हाटक, प्राशनमें शूचि, चूडाकरणमें घडानन, व्रतोपदेशमें समुद्रव, उपनयनमें खींदिहोत्र, समावर्तनमें धनञ्जय, उदरमें जटर, समुद्रमें बड़वानल, शिखामें विष्णु तथा स्वरादि शब्दोंमें सरीरसृप नाम

है । अध्यात्मिका मन्त्र, रथाग्रिका जातवेदस्, गजाग्रिका मन्द्र, सूर्याग्रिका विन्यय, तोयाग्रिका वरुण, ब्राह्मणाग्रिका हविर्भुक्, पर्वताग्रिका नाम क्रतुभुक् है । दावाग्रिको सूर्य कहा जाता है । दीपाग्रिका नाम पावक, गृह्णाग्रिका धरणीपति, धृताग्रिका नल और सूतिकाग्रिका नाम राक्षस है ।

जिन द्रव्योंका होममें उपयोग किया जाता है, उनका निश्चित प्रमाण होता है । प्रमाणके बिना किया गया द्रव्योंका होम फलदायक नहीं होता । अतः शास्त्रके अनुसार प्रमाणका परिज्ञान कर लेना चाहिये । शी, दूध, पञ्चगव्य, दधि, मधु, लज्जा, गुड़, ईख, पत्र-पुण्य, सुपारी, समिध, ब्रीहि, ठंडलके साथ जपापूज्य और केसर, कमल, जीवनी, मातुलुक (विजौय नीचू), नारियल, कूम्पाण्ड, ककड़ी, गुरुच, तिंदुक, तीन पतोवाली दूब आदि अनेक होम-द्रव्य कहे गये हैं । भूर्जपत्र, शमी तथा समिधा प्रादेशमात्रके होने चाहिये । विल्वपत्र तीन पत्रबुक्त, किंतु छित्र-भित्र नहीं होना चाहिये । इनमें शास्त्र-निर्दिष्ट प्रमाणसे न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिये । अभीष्ट-प्राप्तिके निपति किये जानेवाले जान्तिकर्म शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न होने चाहिये ।

(अध्याय १७-१८)

यज्ञ-पात्रोंका स्वरूप और पूर्णाहुतिकी विधि

सूतजी बोले— ब्राह्मणो ! यज्ञक्रियाके उपयोगमें आनेवाली सुखाके निर्माणमें—श्रीपर्णी, शिंशापा, श्रीरु (दूधवाले वृक्ष) विल्व और स्वदिरके काष्ठ प्रशस्त माने गये हैं । याग-क्रियामें इनसे बने सुखाके उपयोगसे सिद्धि प्राप्त होती है । देव-प्रतिष्ठामें आँखल, खदिर और केसरके वृक्षके भी सुखाके लिये शास्त्रज्ञाने उत्तम कहा है । सुखा प्रतिष्ठाकार्यमें, संसाशन तथा संस्कार-कर्ममें और यज्ञादिकार्योंमें प्रयुक्त होता है । सुखाके निर्माणमें विल्व-काष्ठ ग्रहण करना चाहिये, परंतु उसके ग्रहणके समय रित्ता आदि तिथियाँ न हों । उस काष्ठको ग्रहण करनेवाला व्यक्ति पहले उपवास करे और मद्य, मांस आदि सभी वस्तुओंका परित्याग कर दे, स्त्री-सम्पर्कसे भी दूर रहे । एक काष्ठसे सुखा और सुक् दोनोंका निर्माण किया जा सकता है । इनका निर्माण शास्त्रोक्त विधिके अनुसार करना

चाहिये । दर्वा अर्थात् करछुलका निर्माण स्वर्ण या तांबिसे किया जाना चाहिये । यदि काष्ठसे करछुल बनानी हो तो गंभारी वृक्ष, तेंदुका वृक्ष और दूधवाले वृक्षके काष्ठसे बारह अक्षुलकी बनानी चाहिये । उसका नीचेका मण्डल दो अक्षुलका होना चाहिये । यज्ञ-साधनमें यह उपयोगी है । तांबिकी करछुल चालीस तोले, प्रायः आधा किलोकी होती है और उसका मण्डल पाँच अंगुलका तथा लंबाई आठ हाथकी होती है । यही दर्वा (करछुल) पायस-निर्माणमें उपयोगी है । आज्य-शोधनके लिये दस तोलेकी तांब्रमधी करछुल होती है । इसके अभावमें पीपलके काष्ठसे सोलह अक्षुलके मापमें दर्वा (करछुल) बनाये । आज्य-स्थाली तांबिकी या मिट्टीकी भी हो सकती है ।

सूतजी बोले— ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णाहुतिकी विधि

बतला रहा है, इसके अनुष्ठानसे यज्ञ पूर्ण होता है। अतएव पूर्णाहुति विधिपूर्वक करनी चाहिये। पूर्णाहुतिके बाद यज्ञमें आवाहित किये गये देवताओंको अर्घ्य देना चाहिये।

यदि यज्ञ अपूर्ण रहे तो यजमान श्रीविहीन हो जाता है और यज्ञ पूर्ण फलप्रद नहीं होता। सुखामें चरु रखकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये। यज्ञ सम्पन्न हो जानेपर आहुणोंको भोजन करना चाहिये। तदनन्तर यजमान घरमें प्रवेश कर कुल-देवताओंकी प्रार्थना करे। प्रतिष्ठा-यागमें पूर्णाहुतिके समय 'सप्त ते' (यजु० १७। ७९), 'देहि मे' (यजु० ३। ५०), 'पूर्णा दर्शि' (यजु० ३। ४९) तथा 'पुनन्तु' (यजु० १९। ३९) इन मन्त्रोंका पाठ करे तथा नित्य-नैमित्तिक यागमें 'पुनन्तु' 'पूर्णा दर्शि', 'सप्त ते' तथा 'देहि मे'—का पाठ करे। विद्वानोंको इनमें अपने कुल-परम्पराका भी विचार करना चाहिये। पूर्णाहुति खड़ा होकर सम्पन्न करना चाहिये, बैठकर नहीं। ग्रहहोम तथा शतहोममें एक पूर्णाहुति देनी चाहिये। सहस्रयागमें दो, अयुत-होममें चार, सहस्र पुष्पहोममें एक, मृदु पुष्प-होममें एक, शत इक्षु-होममें दो, गर्भाधान, अङ्गप्राप्तन, सीमन्तोत्रयन संस्कारोंमें और प्रायश्चित्तादि कर्म तथा नैमित्तिक वैश्वदेव-यागमें एक पूर्णाहुति देनेका विधान है।

मन्त्रोच्चारणमें ऋषि-छन्द, विनियोगादिका प्रयोग करना चाहिये। यदि इनका प्रयोग न किया जाय तो फल-प्राप्तिमें न्यूनता होती है। 'सप्त ते' इस आहुण-मन्त्रके कौण्डिन्य ऋषि, जगती छन्द और अग्नि देवता हैं। 'देहि मे' इस मन्त्रके प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और प्रजापति देवता हैं। 'पूर्णा दर्शि' इस मन्त्रके शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं अग्नि देवता हैं। 'पुनन्तु' इस मन्त्रके पञ्चन ऋषि, जगती छन्द तथा देवता अग्नि हैं।

इस रीतिसे तत्-तत् मन्त्रोंके उच्चारणके समय ऋषि, छन्द एवं देवताका स्मरण करना चाहिये। जप-कालमें मन्त्रोंकी संख्या अवश्य पूरी करनी चाहिये। निर्दिष्ट संख्याके बिना किया गया जप फलदायी नहीं होता। अयुत-होम, लक्ष-होम और कोटि-होममें जिन ऋत्तिकृ आहुणोंका वरण किया जाय, वे जान्त एवं काम-ब्रोधरहित हों। ऋत्तिजोकी संख्या अभीष्ट होमानुसार करनी चाहिये। प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजाकर एवं दक्षिणा प्रदान कर उन्हें संतुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक याग-कर्म करनेवाला व्यक्ति वसु, आदित्य और मरुदगणोंके द्वारा शिवलोकमें पूजित होता है तथा अनेक कल्पोतक वहाँ निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो किसी कामनाके बिना अर्थात् निष्काम-भावपूर्वक ईश्वरार्पण-बुद्धिसे लक्ष-होम करता है, वह अपने अभीष्टको प्राप्त कर परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रार्थी पुत्र, धनार्थी धन, भार्यार्थी भार्या और कुमारी शुभ पतिको प्राप्त करती है। गण्यध्रष्ट राज्य तथा लक्ष्मीकी कामनावाला व्यक्ति अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करता है। जो व्यक्ति निष्कामभावपूर्वक कोटि-होम करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। ब्रह्माने स्वयं बतलाया है कि कोटि-होम लक्ष-होमसे सौ गुना श्रेष्ठ है। ऋत्तिजू आहुणोंके अभावमें आचार्य भी होता बन सकता है। आसनोंमें कुशासन प्रशस्त माना गया है।

देवता पद्मासनपर स्थित रहते हैं और वास भी करते हैं, अतः पद्मासनस्थ होकर ही अर्चना करनी चाहिये। 'देवो भूत्वा देवान् यजेत्' इस न्यायके अनुसार पद्मासनस्थ देवताओंका अर्चन पद्मासनस्थ होकर ही करना चाहिये। यदि ऐसा न किया जाय तो सम्पूर्ण फल यक्षिणी हरण कर लेती है।

(अध्याय १९—२१)

॥ प्रथम भाग सम्पूर्ण ॥



मध्यमपर्व

(द्वितीय भाग)

यज्ञादि कर्मके मण्डल-निर्माणका विधान तथा क्रौञ्चादि पक्षियोंके दर्शनका फल

सूतजीने कहा—ब्राह्मणगण ! अब मैं आपलोगोंसे पुण्योंमें वर्णित मण्डल-निर्माणके विषयमें कहूँगा । बुद्धिमान् व्यक्ति हाथसे नापकर मण्डलवश पाप निक्षित करे । फिर उसे तत्-स्थानोंमें विधि-विहित लाल आदि रंग भरे । उनमें देवताओंके अख-विशेष बाहर, मध्य और कोणमें लिखकर प्रदर्शित करे । शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम और कृष्ण आदिका अनुक्रमसे निर्देश करे । फिर सीमा-रेस्ताको एक अङ्गुल ऊंचा उन-उन अर्ध-भागोंसे युक्त करे । शिव और विष्णुके महायागमें शम्भुसे प्रारम्भ कर देवताओंकी परिकल्पना—ध्यान करे । प्रतिष्ठामें ग्रमपर्यन्त, जलाशयमें कृष्णपर्यन्त और दुर्गायागमें ब्रह्मादिकी परिकल्पना करे । मण्डलका निर्माण अधम ब्राह्मण एवं शूद्र न करे । सूतजीने पुनः कहा—अब मैं क्रौञ्चका स्वरूप बतलाता हूँ । सभी शास्त्रोंमें उसका उल्लेख मिलता है जो गोपनीय है । यह क्रौञ्च (पक्षी-विशेष)-महाक्रौञ्च, मध्य-क्रौञ्च और कनिष्ठ-क्रौञ्च-भेदसे तीन प्रकारका

बर्णित है । इसका दर्शन सैकड़ों जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट करता है । मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपिको घरमें, सेतमें और वृक्षपर भूलसे भी देख ले तो उसको नमस्कार करे, ऐसा करनेसे दर्शकके सैकड़ों ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाते हैं । उनके पोषणसे कीर्ति मिलती है और दर्शनसे धन तथा आशु बढ़ती है । मयूर ब्रह्माका, वृषभ सदाशिवका, सिंह दुर्गाका, क्रौञ्च नारायणका, बाघ त्रिपुरसुन्दरी-लक्ष्मीका रूप है । स्थानकर यदि प्रतिदिन इनका दर्शन किया जाय तो ग्रहदोष मिट जाता है । इसलिये प्रयत्नपूर्वक इनका पोषण करना चाहिये । सभी यज्ञोंमें सर्वतोभद्रमण्डल सभी प्रकारकी पुष्टि प्रदान करता है । सर्वशक्तिमान् ईश्वरने साधकोंके हितके लिये उसका प्रकाश किया है । सम्पूर्ण स्मार्त-यागोंमें सर्वतोभद्रमण्डलका विशेष रूपसे निर्माण किया जाता है और तत्-तत् स्थानोंमें तत्-तत् रंगोंसे पूरित किया जाता है ।

(अध्याय १-२)

यज्ञादि कर्ममें दक्षिणाका माहात्म्य, विभिन्न कर्मोंमें पारिश्रमिक व्यवस्था और कलश-स्थापनका वर्णन

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! शास्त्रविहित यज्ञादि कार्य दक्षिणार्हित एवं परिमाणविहीन कभी नहीं करना चाहिये । ऐसा यज्ञ कभी सफल नहीं होता । जिस यज्ञका जो माप बतलाया गया है, उसके अनुसार विधान करना चाहिये । मानरहित यज्ञ करनेवाले व्यक्ति नरकमें जाते हैं । आचार्य, होता, ब्रह्मा तथा जितने भी सहयोगी हों, वे सभी विधिज्ञ हों ।

अस्ती वराटों (कौदियों) का एक पण होता है । सोलह पणोंका एक पुण्य कहा जाता है, सात पुण्योंकी एक रजतमुद्रा तथा आठ रजतमुद्राओंकी एक स्वर्णमुद्रा कही जाती है, जो यज्ञ आदिमें दक्षिणा दी जाती है । वडे उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-यज्ञमें दो स्वर्णमुद्राएँ, कूपोस्तरामें आधी स्वर्णमुद्रा (निष्क), तुलसी एवं आमलकी-यागमें एक स्वर्णमुद्रा (निष्क) दक्षिणा-रूपमें विहित है । लक्ष-होममें चार स्वर्ण-मुद्रा, कोटि-होम, सुवर्ण, चांदी आदि दक्षिणारूपमें देना चाहिये । वस्त्र एवं

देव-प्रतिष्ठा तथा प्रासादके उत्सर्गमें अठारह स्वर्ण-मुद्राएँ दक्षिणारूपमें देनेका विधान है । तड़ाग तथा पुकरिणी-यागमें आधी-आधी स्वर्णमुद्रा देनी चाहिये । महादान, दीक्षा, वृक्षोत्सर्ग तथा गया-श्राद्धमें अपने विभवके अनुसार दक्षिणा देनी चाहिये । महाभास्तुके श्रवणमें अस्ती रसी तथा ग्रहयाग, प्रतिष्ठाकर्म, लक्षहोम, अयुत-होम तथा कोटिहोममें सौ-सौ रसी सुवर्ण देना चाहिये । इसी प्रकार शास्त्रोंमें निर्दिष्ट सत्पाप्र व्यक्तियों ही दान देना चाहिये, अपात्रको नहीं । यज्ञ, होममें द्रव्य, कवच, धृत आदिके लिये शास्त्र-निर्दिष्ट विभिन्न का अनुसरण करना चाहिये । यज्ञ, दान तथा ब्रतादि कर्मोंमें दक्षिणा (तत्कर्त्ता) देनी चाहिये । जिना दक्षिणाके ये कार्य नहीं करने चाहिये । ब्राह्मणोंका जब वरण किया जाय तब उन्हें रस, सुवर्ण, चांदी आदि दक्षिणारूपमें देना चाहिये । वस्त्र एवं

भूमि-दान भी विहित है। अन्यान्य दानों एवं यज्ञोंमें दक्षिणा एवं द्रव्योंका अलग-अलग विधान है। विधानके अनुसार नियत दक्षिणा देनेमें असमर्थ होनेपर यज्ञ-कार्यकी सिद्धिके लिये देव-प्रतिमा, पुस्तक, रत्न, गाय, धन्य, तिल, रुद्राक्ष, फल एवं पुष्प आदि भी दिये जा सकते हैं। सूतजी पुनः बोले—
ब्राह्मणो ! अब मैं पूर्णपात्रका स्वरूप बतलाता हूँ। उसे सुनें। काम्य-होममें एक मुट्ठिके पूर्णपात्रका विधान है। आठ मुट्ठी अलगको एक कुञ्जिका कहते हैं। इसी प्रथाणसे पूर्णपात्रोंका निर्माण करना चाहिये। उन पात्रोंको अलग कर द्वार-प्रदेशमें स्थापित करें।

कुण्ड और कुद्दमलोंके निर्माणके पारिश्रमिक इस प्रकार है—चौकोर कुण्डके लिये गैप्यादि, सर्वतोभद्रकुण्डके लिये दो गैप्य, महासिंहासनके लिये पाँच गैप्य, सहस्रार तथा मेरुपृष्ठ-कुण्डके लिये एक बैल तथा चार गैप्य, महाकुण्डके निर्माणमें द्विगुणित स्वर्णपाद, वृत्तकुण्डके लिये एक गैप्य, पदाकुण्डके लिये त्रृष्ण, अर्धचन्द्र-कुण्डके लिये एक गैप्य, योनिकुण्डके निर्माणमें एक थेनु तथा चार माझा स्वर्ण, शैवयागमें तथा उद्घापनमें एक माझा स्वर्ण, इष्टिकाकरणमें प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना चाहिये। खण्ड-कुण्ड-(अर्ध गोलाकार-) निर्माणको दस बरट (एक बरट बराबर असो कीड़ी), इसमें बड़े कुण्डके निर्माणमें एक काकिणी (माशेका चौथाई भाग), सात हाथके कुण्ड-निर्माणमें एक पण, बृहत्कृपके निर्माणमें प्रतिदिन दो पण, गृह-निर्माणमें प्रतिदिन एक रत्नी सोना, कोष्ठ बनवाना हो तो आधा पण, रंगसे रंगानेमें एक पण, वृक्षोंके रोपणमें प्रतिदिन डेढ़ पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसी तरह पृथक् कर्मोंमें अनेक रीतिसे पारिश्रमिकका विधान किया गया है। यदि नापित सिरसे मुण्डन करे तो उसे दस काकिणी देनी चाहिये। स्त्रियोंके नस आदिके रुक्नके लिये काकिणीके साथ पण भी देना चाहिये। धानके रोपणमें एक दिनका एक पण

पारिश्रमिक होता है। तैल और धारसे वर्जित वस्तुकी भुलाईके लिये एक पण पारिश्रमिक देना चाहिये। इसमें वस्तुकी लेखाईके अनुसार कुछ वृद्धि भी की जा सकती है। मिट्टीके खोदनेमें, कुदाल चलानेमें, इक्षु-दण्डके निर्वाडन तथा सहस्र पुष्प-चयनमें दस-दस काकिणी पारिश्रमिक देना चाहिये। छोटी माला बनानेमें एक काकिणी, बड़ी माला बनानेमें दो काकिणी देना चाहिये। दीपकका आधार कर्मसे या पीतलका होना चाहिये। इन दोनोंके अभावमें मिट्टीका भी आधार बनाया जा सकता है।

सूतजी पुनः बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं कलशोंके विषयमें निश्चित मत प्रकट करता हूँ, जिसका उपयोग करनेसे मह्नल होता है और यात्रामें सिद्धि प्राप्त होती है। कलशमें सात अङ्ग अथवा पाँच अङ्ग होते हैं। कलशमें केवल जल भरनेसे ही सिद्धि नहीं होती, इसमें अक्षत और पुष्पोंमें देवताओंका आवाहन कर उनका पूजन भी करना चाहिये—ऐसा न करनेसे पूजन निष्कल हो जाता है। बट, अश्वत्य, धन्व-वृक्ष और विल्व-वृक्षके पल्लवोंको कलशके ऊपर रखें। कलश सोना, चाँदी, ताँबा या मृत्तिकाके बनाये जाते हैं। कलशका निर्माण अपनी सामग्रीके अनुसार करे। कलश अभेद, निश्चिद, नवीन, सुन्दर एवं जलसे पूरित होना चाहिये। कलशके निर्माणके विषयमें भी निश्चित प्रमाण बतलाया गया है। बिना मानके बना हुआ कलश उपयुक्त नहीं माना गया है। जहाँ देवताओंका आवाहन-पूजन किया जाय, उन्हींकी संनिधियें कलशकी स्थापना करनी चाहिये। व्यतिक्रम करनेपर फलका अपहरण राक्षस कर लेते हैं। रूसिक बनाकर उसके ऊपर निर्दिष्ट विधिसे कलश स्थापित कर बरुणादि देवताओंका आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये।

(अध्याय ३—५)

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय इतिहासकी दृष्टिसे बड़े महत्वका है। केवल कौटिल्य अर्थशास्त्र और शुक्रनीतिसे ही भारतकी प्राचीन मुद्राओं एवं पारिश्रमिकका पता चलता है। अन्य किसी पुराण या धार्मिक ग्रन्थोंमें इनकर कोई संकेत नहीं किया गया है। गीताप्रेससे प्रकाशित 'महर्षवाद' और 'रामायण' पुस्तकोंपरे पारिश्रमिकलाले प्रकरणमें इसपर पूछ विचार किया गया है तथा 'कल्याण' सन् १९६५ ईंके अनुसूते भी इसपर विचार प्रकट किया गया है।

२-प्रकल्पित परम्परामें आप, पीपल, बरगद, प्रस्तु (पाकड़) तथा उदुबर (गूद) —ये पञ्च-पल्लव कहे गये हैं।

चतुर्विध मास-व्यवस्था एवं मलमास-वर्णनं

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! अब मैं (विभिन्न प्रकारके) मासोंका वर्णन करता हूँ। मास चार प्रकारके होते हैं—चान्द्र, सौर, सावन तथा नक्षत्र। शुक्र प्रतिष्ठासे लेकर अमावास्या-तकन्तका मास चान्द्र-मास कहा जाता है। सूर्यकी एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तिमें प्रवेश करनेका समय सौर-मास कहलाता है। पूरे तीस दिनोंका सावन-मास होता है। अश्विनीसे लेकर रेखतीर्पर्यन्त नक्षत्र-मास होता है। सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयतक जो दिन होता है, उसे सावन-दिन कहते हैं। एक तिथिमें चन्द्रमा जितना भोग करता है, वह चान्द्र-दिवस कहलाता है। राशिके तीसरवें भागको सौर-दिन कहते हैं। दिन-रातको मिलाकर अहोगत्र होता है। किसी भी तिथिको लेकर तीस दिन बाद आनेवाली तिथितकका समय सावन-मास होता है। प्रायश्चित्त, अत्रप्राशन तथा मन्त्रोपासनामें, राजाके कर-ग्रहणमें, व्यवहारमें, यज्ञमें तथा दिनकी गणना आदिमें सावन-मास ग्राहा है। सौर-मास विवाहादि-संस्कार, यज्ञ-ब्रत आदि सलकर्म तथा स्नानादिमें ग्राहा है। चान्द्र-मास पार्वण, अष्टकाश्राद, साधारण श्राद, धार्मिक कार्यों आदिके लिये उपयुक्त है। चैत्र आदि मासोंमें तिथिको लेकर जो कर्म विहित है, वे चान्द्र-माससे करने चाहिये। सोम या पितृगणोंके कर्त्त्य आदिमें नाक्षत्र-मास प्रशास्त माना गया है। चित्रा नक्षत्रके योगसे चैत्री पूर्णिमा होती है, उससे उपलक्षित मास चैत्र कहा जाता है। चैत्र आदि जो बारह चान्द्र-मास हैं, वे तत्-तत् नक्षत्रके योगसे तत्-तत् नामवाले होते हैं।

जिस महीनेमें पूर्णिमाका योग न हो, वह प्रजा, पशु आदिके लिये अहितकर होता है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों नित्य तिथिका भोग करते हैं। जिन तीस दिनोंमें संक्रमण न हो, वह मलिम्लुच, मलमास या अधिक मास (पुरुषोत्तम मास) कहलाता है, उसमें सूर्यकी कोई संक्रान्ति नहीं होती। प्रायः अद्वैत वर्ष (ब्रह्मोस मास) के बाद यह मास आता है। इस महीनेमें सभी तरहकी प्रेत-क्रियाएँ तथा सणिष्ठन-क्रियाएँ की जा सकती हैं। परंतु यज्ञ, विवाहादि कार्य नहीं होते। इसमें तीर्थस्नान, देव-दर्शन, ब्रत-उपवास आदि, सीमन्तोत्तरयन, शृगुप्तान्ति, पुंसवन और पूर्ण आदिका मुख-दर्शन किया जा सकता है। इसी तरह शुक्रास्तमें भी ये क्रियाएँ की जा सकती हैं। यज्ञाभियेक भी मलमासमें हो सकता है। ब्रतारम्भ, प्रतिष्ठा, चूडाकर्म, उपनयन, मन्त्रोपासना, विवाह, नूतन-गृह-निर्माण, गृह-प्रवेश, गौ आदिका ग्रहण, आश्रमान्तरमें प्रवेश, तीर्थ-यात्रा, अभियोक-कर्म, वृत्तोत्सर्ग, कन्याका द्विरागमन तथा यज्ञ-यागादि—इन सबका मलमासमें निषेध है। इसी तरह शुक्रास्तम एवं उसके वार्षिक्य और बाल्यत्वमें भी इनका निषेध है। गुरुके अस्त एवं सूर्यके सिंह राशिमें स्थित होनेपर अधिक मासमें जो निषिद्ध कर्म हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। कर्क राशिमें सूर्यके आनेपर भगवान् शश्यन करते हैं और उनके तुलराशिमें आनेपर निद्राका स्नान करते हैं। (आध्याय ६)

काल-विभाग, तिथि-निर्णय एवं वर्षधरके विशेष

पर्वों तथा तिथियोंके पुण्यप्रद कृत्य

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! देव-कर्म या पैतृक-कर्म कालके आधारपर ही सम्प्र होते हैं और कर्म भी नियत समयपर किये जानेपर पूर्णरूपेण फलप्रद होते हैं। समयके बिना की गयी क्रियाओंका फल तीनों कालों तथा लोकोंमें भी प्राप्त नहीं होता। अतः मैं कालके विभागोंका वर्णन करता हूँ।

यद्यपि काल अमूर्तलपमें एक तथा भगवान्का ही अन्यतम स्वरूप है तथापि उपाधियोंके भेदसे वह दीर्घ, लघु आदि अनेक रूपोंमें विभक्त है। तिथि, नक्षत्र, बार तथा रात्रिका सम्बन्ध आदि जो कुछ है, वे सभी कालके ही अन्त हैं और पश्च,

मास आदि रूपसे वर्णितरोंमें भी आते-जाते रहते हैं तथा वे ही सब कर्मोंके साधन हैं। समयके बिना कोई भी स्वतन्त्ररूपसे कर्म करनेमें समर्थ नहीं। धर्म या अधर्मका मुख्य द्वार काल ही है। तिथि आदि काल-विशेषोंमें निषिद्ध और विहित कर्म बताये गये हैं। विहित कर्मोंका पालन करनेवाला स्वर्ग प्राप्त करता है और विहितका त्यागकर निषिद्ध कर्म करनेसे अधोगति प्राप्त करता है। पूर्वाह्न्यापिनी तिथिमें वैदिक क्रियाएँ करनी चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्न्यापिनी तिथिमें और पार्वण-श्राद्ध अपराह्न-व्यापिनी तिथिमें करना चाहिये। वृद्धश्राद्ध आदि

प्रातःकालमें करने चाहिये। ब्रह्माजीने देवताओंके लिये तिथियोंके साथ पूर्वाह्नकाल दिया है और पितरोंको अपशङ्का पूर्वाह्नमें देवताओंका अर्चन करनी चाहिये।

तिथियाँ तीन प्रकारकी होती हैं—खर्चा, दर्पा और हिंसा। लहूल होनेवाली खर्चा, तिथिवृद्धि दर्पा तथा तिथिहानि हिंसा कही जाती है। इनमें खर्चा और दर्पा आगेकी लेनी चाहिये और हिंसा (अय-तिथि) पूर्वमें लेनी चाहिये। शुक्ल पक्षमें परा लेनी चाहिये और कृष्ण पक्षमें पूर्वा। भगवान् सूर्य जिस तिथिको प्राप्त कर उदित होते हैं, वह तिथि ज्ञान-दान आदि कृत्योंमें उचित है। यदि अस्त-समयमें भगवान् सूर्य दस घटीपर्यन्त रहते हैं तो वह तिथि रात-दिन समझनी चाहिये। शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्षमें खर्चा या दर्पा तिथिके अस्तपर्यन्त सूर्य रहे तो पितृकर्त्यमें वही तिथि प्राप्त है। दो दिनमें मध्याह्नकालव्यापिनी तिथि होनेपर अस्तपर्यन्त रहनेवाली प्रथम तिथि श्राद्ध आदिमें विहित है। द्वितीया तृतीयासे तथा चतुर्थी पञ्चमीसे युक्त हो तो ये तिथियाँ पुण्यप्रद मानी गयी हैं और उसके विपरीत होनेपर पुण्यका हास करती है। षष्ठी पञ्चमीसे एवं अष्टमी सप्तमीसे विद्व हो तथा दशमी से एकादशी, द्वयोदशीसे चतुर्दशी और चतुर्दशीसे अमावास्या विद्व हो तो उनमें उपवास नहीं करना चाहिये, अन्यथा पुण्य, कलत्र और धनका हास होता है। पुण्य-भार्यादिसे रुक्षित व्यक्तिका यज्ञमें अधिकार नहीं है। जिस तिथिको लेकर सूर्य उदित होते हैं, वह तिथि ज्ञान, अछयन और दानके लिये श्रेष्ठ समझनी चाहिये। कृष्ण पक्षमें जिस तिथिमें सूर्य अस्त होते हैं, वह ज्ञान, दान आदि कर्मोंमें पितरोंके लिये उत्तम मानी जाती है।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मण ! अब मैं ब्रह्माजीद्वारा बतलायी गयी श्रेष्ठ तिथियोंका वर्णन करता हूँ। आश्चिन, कार्तिक, माघ और चैत्र इन महीनोंमें ज्ञान, दान और भगवान् शिव तथा विष्णुका पूजन दस गुना फलप्रद होता है। प्रतिपदा तिथियें अग्रिदेवका यज्ञ और हवन करनेसे सभी तरहके धान्य और ईंस्प्रित धन प्राप्त होते हैं। यदि शुक्ल पक्षमें द्वितीया तिथि बृहस्पतिवारसे युक्त हो तो उस तिथिमें विधिपूर्वक भगवान् अग्रिदेवका पूजन और नक्तवत करनेसे इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त होता है। मिथुन (आषाढ़) और कर्क (श्रावण) याशिके सूर्यमें जो द्वितीया आये, उसमें उपवास करके भगवान् विष्णुका पूजन करनेवाली रूपी कभी विधवा नहीं होती।

अशून्य-शयन द्वितीया (श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीया तिथि) को गन्ध, पुण्य, वस्त्र तथा विविध नैवेद्योंसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करनी चाहिये। (इस व्रतसे पति-पत्नीका परस्पर विवोग नहीं होता।) वैशाख शुक्ल पक्षकी तृतीयामें गङ्गाजीमें स्नान करनेवाला सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वैशाख मासकी तृतीया स्वाती नक्षत्र और माघकी तृतीया रोहिणीयुक्त हो तथा आश्चिन-तृतीया वृषभाश्वसे युक्त हो तो उसमें जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय होता है। विशेषरूपसे इनमें हविष्यात्र एवं मोदक देनेसे अधिक लाभ होता है तथा गुड़ और कर्पूरसे युक्त जलदान करनेवालेकी विद्वान् पुण्य अधिक प्रशंसा करते हैं, वह मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। यदि वृथत्वार और श्रवणसे युक्त तृतीया हो तो उसमें ज्ञान और उपवास करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है। भरणी नक्षत्रयुक्त चतुर्थीमें यमदेवताकी उपासना करनेसे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिलती है। भाद्रपदकी शुक्ल चतुर्थी विश्वलोकमें पूजित है। कार्तिक और माघ मासके ग्रहणोंमें ज्ञान, जप, तप, दान, उपवास और श्राद्ध करनेसे अनन्त फल मिलता है। चतुर्थीमें सम्पूर्ण विप्रोंकी नाश तथा इच्छा-पूर्तिके लिये भगवान् गणेशकी पूजा मोदक आदिसे भक्तिपूर्वक करनी चाहिये।

श्रावण मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीमें द्वार-देशके दोनों ओर गोमयसे नागोंकी रचनाकर दूध, दही, सिंदूर, चन्दन, गङ्गाजल एवं सुणायित इव्योंसे नागोंका पूजन करना चाहिये। नागोंका पूजन करनेवालेके कुलमें निर्भयता रहती है एवं प्राणोंकी रक्षा भी होती है। श्रावण कृष्ण पञ्चमीको घरके आँगनमें नीमके पत्तोंसे मनसा देवीकी पूजा करनेसे कभी सर्पभय नहीं होता। भाद्रपदकी षष्ठीमें ज्ञान, दान आदि करनेसे अनन्त पुण्य होता है। विप्रगणो ! माघ और कार्तिककी षष्ठीमें ब्रत करनेसे इहलोक और परलोकमें असीम कीर्ति प्राप्त होती है। शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें यदि संक्रान्ति पड़े तो उसका नाम महाजया या सूर्यप्रिया होती है। भाद्रपदकी सप्तमी अपराजिता है। शुक्ल या कृष्ण पक्षकी षष्ठी या सप्तमी रुक्मिवारसे युक्त हो तो वह ललिता नामकी तिथि पुण्य-पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाली और महान् पुण्यदातिनी है।

आश्चिन एवं कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमीमें

अष्टादशभुजाका पूजन करना चाहिये । आपाद्व और श्रावण मासके शुक्र पक्षकी अष्टमीमें चण्डिकादेवीका प्रातःकाल राम करके अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन कर गतिमें अधिकक करना चाहिये । चैत्र मासके शुक्र पक्षकी अष्टमीमें अशोक-पुष्पसे मृग्यमयी भगवती देवीका अर्चन करनेसे सम्पूर्ण शोक निवृत हो जाते हैं । श्रावण मासमें अथवा सिंह-संक्रान्तिमें योहिणीयुक्त अष्टमी हो तो उसकी अत्यन्त प्रशंसा की गयी है । प्रतिमासकी नवमीमें देवीकी पूजा करनी चाहिये । कार्तिक मासके शुक्र पक्षकी दशमीको शुद्ध आहारपूर्वक रहनेवाले ब्रह्मद्वालेकमें जाते हैं । ज्येष्ठ मासके शुक्र पक्षकी दशमी गङ्गादशहरा कहलाती है । आक्षिनीकी दशमी विजया और कार्तिकी दशमी महापुण्या कहलाती है ।

एकादशी-व्रत करनेसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं । इस व्रतमें दशमीको जितेन्द्रिय होकर एक ही बार भोजन करना चाहिये । दूसरे दिन एकादशीमें उपवास कर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये । द्वादशी तिथि द्वादश पाँचोक्त हरण करती है । चैत्र मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीमें अनेक पुण्यादि सामग्रियोंसे कामदेवकी पूजा करे । इसे अनङ्ग-त्रयोदशी कहा जाता है । चैत्र मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमी शनिवार या शतभिषा नक्षत्रसे युक्त हो तो गङ्गामें राम करनेसे सैकड़ों सूर्यग्रहणका फल प्राप्त होता है । इसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी यदि शनिवार या शतभिषासे युक्त हो तो वह महावारुणी-पर्व कहलाता है । इसमें किया गया राम, दान एवं श्राद्ध अक्षय होता है । चैत्र मासके शुक्र पक्षकी चतुर्दशी दम्पत्तिजी कही जाती है । इस दिन धत्तूरेकी जड़में कामदेवका अर्चन करना चाहिये, इससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है । अनन्त-चतुर्दशीका व्रत सम्पूर्ण पाँचोक्त नाश करनेवाला है । इसे भक्तिपूर्वक

करनेसे मनुष्य अनन्त सुख प्राप्त करता है । भ्रेत-चतुर्दशी (यम-चतुर्दशी) को तपसी ग्रामणोंके भोजन और दान देनेसे मनुष्य यमलोकमें नहीं जाता । फलगुन मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी शिवरात्रिके नामसे प्रसिद्ध है और वह सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाली है । इस दिन चारों पहरोंमें राम करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी आराधना करनी चाहिये । चैत्र मासकी पूर्णिमा चित्र नक्षत्र तथा गुरुवारसे युक्त हो तो वह महाचैत्री कही जाती है । वह अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली है । इसी प्रकार विशाखादि नक्षत्रसे युक्त बैशाखी, महाज्येष्ठी आदि बाहर पूर्णिमाएं होती हैं । इनमें किये गये राम, दान, जप, नियम आदि सत्कर्म अक्षय होते हैं और व्रतीके पितर संतुष्ट होकर अक्षय विष्णुलेकको प्राप्त करते हैं । हरिद्वारमें महाचैत्रसीका पर्व विशेष पुण्य प्रदान करता है । इसी प्रकार शालग्राम-क्षेत्रमें महाचैत्री, पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाज्येष्ठी, शुक्रल-क्षेत्रमें महायादी, केदारमें महाश्रावणी, बदरिकाक्षेत्रमें महाभाद्री, पुष्कर तथा कान्यकुञ्जमें महाकार्तिकी, अयोध्यामें महामार्गशीर्षी तथा महापौष्णी, प्रयागमें महामाघी तथा नैमित्यरथ्यमें महाफलगुनी पूर्णिमा विशेष फल देनेवाली है । इन पर्वोंमें जो भी शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, वे अक्षय हो जाते हैं । आक्षिनीकी पूर्णिमा कौमुदी कही गयी है, इसमें चन्द्रोदय-कालमें विधिपूर्वक लक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये । प्रत्येक अमावास्याको तर्पण और श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिये । कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें प्रदोषके समय लक्ष्मीका सविधि पूजन कर उनकी प्रीतिके लिये दीपोंके प्रज्वलित करना चाहिये एवं नदीतीर, पर्वत, गोदू, शमशान, वृक्षमूल, चौराहा, अपने घरमें और चत्वरमें दीपोंको सजाना चाहिये । (अथ्याय ७-८)

गोत्र-प्रवर आदिके ज्ञानकी आवश्यकता

सूतजी कहते हैं—ग्रामणों । गोत्र-प्रवरकी परम्पराको जानना अत्यन्त आवश्यक होता है, इसलिये अपने-अपने गोत्र या प्रवरको पिता, आचार्य तथा शास्त्रद्वारा जानना चाहिये । गोत्र-प्रवरको जाने बिना किया गया कर्म विपरीत फलदायी होता है । कद्यप, वासिष्ठ, विश्वामित्र, आङ्गिरस, च्यवन,

मौकुन्य, वत्स, काल्यायन, अगस्त्य आदि अनेक गोत्रप्रवर्तक ऋषि हैं । गोत्रोंमें एक, दो, तीन, पाँच आदि प्रवर होते हैं । समान गोत्रमें विवाहादि सम्बन्धोंका निवेद्य है । अपने गोत्र-प्रवरादिका ज्ञान शास्त्रान्तरोंसे कर लेना चाहिये ।

वास्तवमें देखा जाय तो सारा जगत् महामुनि कङ्गपते

१-गोत्र-प्रवर-निर्णयपर 'गोत्र-प्रवर-निवास-कटम' आदि कई सतत विवरण द्वय हैं । मत्स्यवृणके अध्याय १९५-२०५ तकमें विस्तारसे यह विवरण आया है । तथा स्कन्दपुण्डिके माहेश्वर-स्तुत एवं ब्रह्मद्वारामें भी इसपर विचार किया गया है ।

उत्पत्र हुआ है। अतः जिन्हें अपने गोत्र और प्रवरका ज्ञान नहीं है, उन्हें अपने पिताजीसे ज्ञान कर लेना चाहिये। यदि उन्हें

मालूम न हो तो स्वयंको काश्यप 'गोत्रीय मानकर उनका प्रवर लगाकर शास्त्रानुसार कर्म करना चाहिये। (अध्याय ९)

वासु-मण्डलके निर्माण एवं वासु-पूजनकी

संक्षिप्त विधि^२

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मणो ! अब मैं वासु-मण्डलका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। पहले भूमिपर अङ्गोंका रोपण करके भूमिकी परीक्षा कर ले। तदनन्तर उत्तम भूमिके मध्यमें वासु-मण्डलका निर्माण करे। वासु-मण्डलके देवता पैतालीस है, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) शिखी, (२) पर्वत्य, (३) जयन्त, (४) कुलिशायुध, (५) सूर्य, (६) सत्य, (७) वृष, (८) आकाश, (९) वायु, (१०) पूरा, (११) वित्य, (१२) गुहा, (१३) यम, (१४) गच्छर्व, (१५) मृगाराज, (१६) मृग, (१७) पितृगण, (१८) दीक्षारिक, (१९) सुग्रीव, (२०) पुष्पदन्त, (२१) वरुण, (२२) असुर, (२३) पशु, (२४) पाशा, (२५) रोग, (२६) अहि, (२७) मोक्ष, (२८) भल्लाट, (२९) सोम, (३०) सर्प, (३१) अदिति, (३२) दिति, (३३) अप, (३४) सावित्र, (३५) जय, (३६) रुद्र, (३७) अर्यमा, (३८) सविता, (३९) विवस्वान्, (४०) विवृथाधिप, (४१) मित्र, (४२) राजयक्षमा, (४३) पृथ्वीधर, (४४) आपवत्स तथा (४५) ब्रह्म।

इन पैतालीस देवताओंके साथ ही वासु-मण्डलके बाहर ईशानकोणमें चरकी, अधिकोणमें विदारी, नैऋत्यकोणमें पूतना तथा वायव्यकोणमें पापराजसीकी स्थापना करनी चाहिये। मण्डलके पूर्व दिशामें स्कन्द, दक्षिणमें अर्यमा, पश्चिममें जूष्मक तथा उत्तरमें पिलिपिच्छुकी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार वासु-मण्डलमें तिरपन देवी-देवताओंकी स्थापना होती है। इन सभीका अलग-अलग मन्त्रोंसे पूजन करना चाहिये। मण्डलके बाहर ही पूर्वादि दस दिशाओंमें दस दिव्याल देवताओं—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्वृति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्म तथा अनन्तकी भी यथास्थान पूजा कर उन्हें बलि (नैवेद्य) निवेदित करनी चाहिये। वासु-मण्डलकी रेखाएँ खेत वर्णसे तथा मध्यमें कमल लाल वर्णसे अनुरुजित करना चाहिये। शिखी आदि पैतालीस देवताओंके कोषट्कोंको रत्नादि रंगोंसे अनुरुजित करना चाहिये। गृह, देवमन्दिर, महाकूप आदिके निर्माणमें तथा देव-प्रतिष्ठा आदिमें वासु-मण्डलका निर्माणकर वासुमण्डलस्थ देवताओंका आवाहनकर उनका पूजन आदि करना चाहिये। पवित्र स्थानपर लिंगी-पुती डेढ़

१-सबके लिये एकमात्र परमात्मा ही परमसत्त्वापार्थ ज्यो-ज्येष्ठ है और कश्यपनन्दन सूर्यके रूपमें वे प्रत्यक्षरूपसे संसारका गालन, संचलन—उपा तथा प्रवर्षके रूपमें, पिर वायु—प्राणके रूपमें समस्त प्राणियोंके जीवन बने हैं। इसलिये सभी जैविक और संव्याप्त अपनेवो अन्युत्-गोद्वीय ही मानते हैं। प्राचीन परम्पराके अनुसार वेदाध्ययनमें वैदिक राजा, सूर, ऋषि, गोत्र और प्रवरका ज्ञान आवश्यक था। यह विषय आश्वलायन गुहासूक्ष्मी भी निर्दिष्ट है।

२-किस भूमिपर मनुष्यादि प्राणी निवास करते हैं, उसे वासु कहा जाता है। इसके गृह, देवप्रासाद, ग्राम, नगर, युर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। इसपर वासुदेवकल्प, समर्पणमूर्त्युधार, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण, हयशीर्षपाङ्कुरात्र तथा कपिल-पाङ्कुरात्र आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार किया गया है। पुण्यांगोंमें परत्य, अधित तथा विष्णुप्रमोत्तरपुण्यांगोंमें भी यह महत्वपूर्ण विषय आया है। 'कल्याण' के देवताङ्गमें भी वासु-यक्षादिके विषयमें सामग्री संकलित की गयी है। वासुके आविर्भावके विषयमें मरणपूर्णांगमें आया है कि अन्यकामामुक्ते वषषके समय भगवान् यक्षके ललाटमें जो स्वेदिन्द्रि गिरे उनमें एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ। जब वह विलोक्येन भक्षण करनेके लिये उत्तर हुआ, तब शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुखाकर वासुदेवता (वासुपुरुष) के रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके झीलमें सभी देवताओंने यास किया। इसीलिये वह वासुदेवता कहलाया। देवताओंने उसे पूजित होनेका बार भी प्रदान किया। वासुदेवताकी पूजाके लिये वासुप्रतिमा तथा वासुचक्र बनाया जाता है। वासुचक्र प्रायः ४९, से लेकर एक सहस्र पदार्थक होता है। पित्र-भित्र अवसरोपर पित्र-भित्र वासुचक्रका निर्माणकर उनमें देवताओंका आवाहन, स्थापन एवं पूजन किया जाता है। चौसठ पदार्थक तथा इकास्ती पदार्थक वासुचक्रके पूजनकी प्रसंगपूर्वक विशेषकार्यसे प्रबलित है। इन सभी वासुचक्रके भेदोंमें प्रायः इन्द्रादि दस दिव्यालोकेके साथ विश्वी आदि पैतालीस देवताओंका पूजन किया जाता है तथा उन्हें पापवत्स ब्रह्म प्रसादमें जाती है। वासुचक्रशम्भूके वासुदेवता (वासोविति) की पूजाकर उनसे सर्वीकृप शान्ति एवं कल्याणकी प्रार्थना की जाती है।

हाथके प्रमाणकी भूमिपर पूर्वसे पश्चिम तथा उत्तरसे दक्षिण दस-दस रेस्टाएं स्थाने। इससे इक्यासी कोषुकके वास्तुपद-चक्रका निर्माण होगा। इसी प्रकार १-१ रेस्टाएं स्थानेसे चौमूल पटका वास्तुचक बनता है।

वासुमण्डलमें जिन देवताओंका उल्लेख किया गया है, उनका ध्यान और पूजन अलग-अलग मन्त्रसे किया जाता है। उल्लिखित देवताओंकी तुलिके लिये विधिके अनुसार स्थापना तथा पूजा करके हवन-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको सूखणी आदि दक्षिणा देकर संतुष्ट करना चाहिये।

वासु-यागादिमें एक विस्तृत मण्डलके अन्तर्गत योगितथा मेषलालओंसे समन्वित एक कुण्ड तथा वासु-वैदीकाविधिके अनुसार निर्माण करना चाहिये। मण्डलके इश्वानकोणमें कलश स्थापित कर गणेशाजीका एवं कुण्डके मध्यमें विष्णु, दिक्पाल और ब्रह्मा आदिका तत्त्व मनोंसे पूजन करना चाहिये। प्राणायाम करके भूतशुद्धि करे। तदनन्तर वासुपुरुषका ध्यान इस प्रकार करे—वासुदेवता शेष वर्णके चार भूजाओंले शान्तस्वरूप और कुण्डलोंसे अलंकृत हैं। हाथमें पुस्तक, अक्षमाला, घरद एवं अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। पितरों और वैष्णवनरसे युक्त हैं तथा कुटिल भूसे सुशोभित हैं। उनका मुख भयंकर है। हाथ जानुपर्यन्त लंबे हैं।^१ ऐसे वासुपुरुषका विधिके अनुसार पूजनकर उन्हें स्नान कराये। 'वासुतोष्यते' यह वासुदेवताके पूजनका मुख्य मन्त्र है^२। पूजाकी जितनी सामग्री है, उसे प्रोक्षणद्वारा शुद्ध कर ले। आसनकी शुद्धि कर गणेश, सूर्य, इन्द्र और आधारशक्तिरूप पश्ची तथा ब्रह्माका पूजन करे। तदनन्तर हाथमें शेष

चन्दनयुक्त शेष पुष्प लेकर विष्णुरूप वास्तुपुरुषका ध्यान कर उन्हे आसन, पाद, अर्ध, मधुरपक्ष आदि प्रदान करे और विविध उपचारोंमें उत्तमी प्रज्ञा करे।

विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि कुण्ड और वास्तुवेदीके मध्यमें कलशकी स्थापना करे। कलशमें पर्वतके शिखर, गंगजाला, वर्त्मोक, नदीसंगम, रुजद्वार, चौराहे तथा कुशके मूलकी—यह सात प्रकारकी भिट्ठी छोड़े। साथ ही उसमें इन्द्रवल्ली (पारिजात), विष्णुकन्ता (कृष्ण शङ्खपुष्पी), अमृती (आमलकी), अपुष (खीरा), मालकी, चंपक तथा ऊर्ध्वारुक (ककड़ी) —इन बनस्पतियोंको छोड़े। पारिघट (नीम)के पत्रोंसे कलशके कण्ठका परिवेष्टन करे और कलशके मुखमें फणकारारूपमें पञ्चपल्लवोंकी स्थापना करे। उसके ऊपर श्रीफल, बीजपूर, नारिकेल, दाढ़िम, धात्री तथा जम्बूफल रखे। कलशमें सुवर्णादि पञ्चरत्न छोड़े। गम्भ-पुष्पादि पञ्चोषधारोंसे कलशका पूजन करे। कलशमें खण्डका आवाहन करे। कलशका स्वर्णी करते हुए उसमें समस्त समुद्रो, तीर्थों, गङ्गादि नदियों तथा पवित्र जलाशयों आदिके पवित्र जलकी भावना कर, उनका आवाहन करे। कलश-स्थापनके अनन्तर तिल, चावल, मध्याह्न तथा दही, दूध आदिसे यथाविधि वास्तु-होम करे। वास्तु-हवनके समय वास्तु-देवताके मन्त्रका जप करे। अनन्तर वास्तु-मण्डलके समस्त देवताओंको पायसात्र, कृशरात्र आदि पृथक-पृथक् क्रमशः बलि निवेदित करे। सभी देवताओंको उन्होंकि अनुरूप पताका भी प्रदान करे। अपनी सामर्थ्यके अनुसार मन्त्र-जप और वास्तुप्रस्तुतवक्त्र प्राप्त करे। प्रपात्र शंखसे भ्रातावत

१-सेते चतुर्पुंजे प्रह्लाद कुषलाहैरलक्ष्मिः। पुस्तके चाक्षमालां च वाराभवकरं परम्॥
पितॄवैक्षनयोरेतेऽपि कुटिलाभ्यग्रोभिष्ठिः। कण्ठलक्ष्मद्वये चैव आजानकरलक्ष्मिः॥

२-पूरा भव्य इस प्रकार है—

યાસોષ્ટે પ્રતિ જાનીએ સાત રૂખાદેવો અનસીઓ ભાગાં। જાત લોમાંને પ્રતી તો જાત તો તે ચા હિંદે તે ચાલદે।

(Page 15 of 15)

हे यासुदेव ! हम आपके सचे उपासक हैं, इसपर आप पूर्ण विश्वास करे और हमारी सुन्ति-प्रार्थनाओंको सुनकर हम सभी उपासकोंको आधि-व्याधिमुक्त कर दें और जो हम अपने घन-ऐश्वर्यको कहमना करते हैं, आप उसे भी परिपूर्ण कर दें, साथ ही हम यासुदेव या गुहये निवास करनेवाले हमारे भी-पुण्डित-परिवार-परिजनोंके लिये कल्याणकारक हों तथा हमारे अपीनस्थ गौ, उमादि सभी चतुष्पट प्रगिणयोक्त भी कल्याण करें।

३-प्रगतिशील उद्योगों के द्वारा की गयी 'प्रगतिशील' उत्पादनी विकास सभी इस लक्ष्य है—

विष्णुविष्णुविष्णुधर्मो यज्ञो यज्ञालक्ष्मीनाथस्त्रो त्वं हमो विष्णुविष्णु

योगः पद्मरीक्षणः कलः सर्वः सप्तरिंश्च। आदित्यो द्वादशर्णुं सप्तलेखो सप्तम्।

विष्णुस्वरूप वास्तोषतिकी इस स्तुतिको कहा है। इसका जो प्रयत्नपूर्वक निरन्तर पाठ करता है, उसे अमरता प्राप्त हो जाती है और जो हत्कमलके मध्य निवास करनेवाले भगवान् अच्युत-विष्णुका ध्यान करता है, वह वैष्णवी सिद्धि प्राप्त करता है। यज्ञकर्मकी पूर्णतामें आचार्यको पर्यावरणी गी तथा सुवर्ण दक्षिणामें दे, अन्य ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण प्रदान करे। प्राजापत्य और स्त्रियकृत् हवन करे। आचार्य और ऋत्विज् भिलकर यजमानपर कलशके जलसे अधिष्ठेकरे। पूर्णहृति देकर भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करे। ब्राह्मणोंकी आशा लेकर

यजमान घरमें प्रवेश करे, अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराये। दीन, अन्य और कृपणोंका अपनी शक्तिके अनुसार सम्मान करे। फिर अपने बन्धु-बाल्योंके साथ स्वयं भोजन करे। उस दिन भोजनमें दूध, कसैले पदार्थ, भूमे हुए शक्त तथा कोलेश आदि निषिद्ध पदार्थोंका उपयोग न करे। शाल्यज, मूली, कटहल, आम, मधु, बी, गुड़, सेथा नमकके साथ मातुलुक (विजौरा नींबू), बदरीफल, धात्रीफल एवं तिल और मरिच आदिसे बने पदार्थ भोजनमें प्रशस्त कहे गये हैं।

(अध्याय १०—१३)

कुशकण्डका-विधान तथा अग्नि-जिह्वाओंके नाम

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं याग-विशेषोंमें स्वगृहाग्रि-विधि कह रहा हूँ। अपनी वेदादि शाखाके अनुकूल ही गृहाग्रि-विधि करनी चाहिये। दूसरेकी शाखाके विधानमें याग-विशेषोंका अनुष्ठान करनेपर भयकी प्राप्ति होती है और कीर्तिका नाश होता है। पुत्र, कन्या और आगे उत्पन्न होनेवाले पुत्रादि गृहानामसे कहे जाते हैं। यजमानके वितने दायाद होते हैं, वे सब गृहानामसे कहे जाते हैं। उनके संस्कार, याग और शान्तिकर्म-क्रियाओंमें अपने गृहाग्रिसे ही अनुष्ठान करना चाहिये। आचार्यद्वारा विहित कल्पको दक्षस्मृतिमें कहा गया है। आचार्य इन कर्मोंपरि तीन कुशाओंका परिग्रहण करता है। जिस मन्त्रसे कुशा ग्रहण करता है, उसके ऋषि दक्ष, जगती छन्द और विष्णु देवता हैं। पृथ्वीके शोधनमें 'धूरसिं' (यजु० १३। १८) इस मन्त्रका विनियोग करे। इस मन्त्रके ऋषि सुवर्ण हैं, गायत्री और जगती छन्द तथा सूर्य देवता हैं। अनन्तर उन तीन कुशाओंको तर्जीनी तथा औंगुलेसे पकड़कर ईशानकोणसे लेकर दक्षिण होते हुए ईशानकोणतक वल्ल्याकृतिमें धुमाये तथा उनसे भूमिका मार्जन करे। यही

परिसमूहन-क्रिया है। 'मा नस्तोके' (यजु० १६। १६) इस मन्त्रके द्वारा गोमयसे भूमिका उपलेपन करे। तदनन्तर (खैरकी लकड़ीसे बने स्पष्टके द्वारा) रेखाकरण करे। पूरबसे पश्चिमकी ओर तीन रेखाएं खोचे। पहली रेखा दक्षिणकी ओर अनन्तर उत्तरकी ओर बढ़े। इसके विपरीत करनेपर अमङ्गल होता है। इसके बाद अनुष्ठ तथा अनामिकासे उन तीनों रेखाओंसे मिट्टी निकाले, इसे उद्धरण कहा जाता है। इस समय 'मित्रावल्लाभ्यां' (यजु० ७। २३) इत्यादि मन्त्रोंका समरण करे। अनन्तर कुशपुष्पोदक अथवा पञ्चग्रन्थ या पञ्चरत्नोदक अथवा पञ्चपल्लवोंके जलसे अभ्युक्त्वा (अभिसिङ्गन) करे। अनन्तर कर्मसाधनभूत लौकिक स्मार्त अथवा श्रौताग्रिका आनन्दन करे और अपने सामने स्थापित करे। इस क्रियामें 'मे गृहाग्रि' इस मन्त्रका पाठ करे। 'क्रव्यादाग्रिं' (यजु० ३५। १९) इस मन्त्रका उदारण करते हुए लायी गयी अग्निमेसे कुछ आग दक्षिण दिशाकी ओर फेंक दे, यह 'क्रव्यादाग्रि' कही गयी है। क्रव्यादाग्रिका ग्रहण न करे। 'संसरक्ष' इस मन्त्रसे उस अग्निका आवाहन करे। तदनन्तर

पद्मनाभो हर्षीकेशो दाता दामोदरो हरि। विश्विकमस्तिष्ठेकेशो ब्रह्मणः प्रतिवर्णः ॥

भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो भूषः भूषिः। संन्यवसी दामतलङ्गिपद्मवाश्वगुणालकः ॥

विद्वारी विनयः शशनसापही वैषुतप्रभः। यशस्वं हि वषट्कारस्त्वमोक्तरस्त्वमव्रयः ॥

त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरोषोऽमः ।

नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाक्षताय च। अनन्तायाप्रभेदय ॥ नमस्ते गङ्गाभजः ॥

ब्रह्मसाविमें प्रोक्तं महादेवेन भाषितम्। प्रयत्नाद् यः पठेत्विश्वममृतं स गच्छति ॥

ध्यायनि ये नित्यमनन्तप्रभुं हृत्यसमये स्वप्नमात्मविद्वितय् ।

उद्दस्तक्षनो भ्रष्टमेकमीष्टो ते याति लिद्धि परमो तु वैष्णवोऽमः ॥

(मध्यमपर्व २। १२। १५६—१६३)

‘वैश्वानर’ (यजु० २६।७) इस मन्त्रसे कुष्ठ आदिमे अग्नि-स्थापन करे। ‘ब्रह्मासि’ इस मन्त्रसे अग्निकी प्रदक्षिणा करे तथा अग्निदेवको नमस्कार करे। अग्निके दक्षिणमें वरण किये गये ब्रह्माको कुशके आसनपर ‘ब्रह्मन् इह उपविश्यताम्’ कहकर बैठाये। उस समय ‘ब्रह्म जडानं’ (यजु० १३।३) तथा ‘स्त्रेष्वी धेनुः’ इन दो मन्त्रोंका पाठ करे। अग्निके उत्तरभागमें प्रणीता-पात्रको स्थापित करे। ‘इमं मे चक्रणं’ (यजु० २१।१) इस मन्त्रसे प्रणीता-पात्रको जलसे भर दे। इसके अनन्तर कुष्ठके चारों ओर कुश-परिस्तरण करे और काष्ठ (समिधा), ब्रीहि, अत्र, तिल, अपूप, भूङ्गराज, फल, दही, दूध, पनस, नारिकेल, मोदक आदि यज्ञ-सम्बन्धी प्रयोज्य पदार्थोंको यथास्थान स्थापित करे। विकंकतवृक्षकी लकड़ीसे बनी सुवा तथा शमी, शमीपत्र, चरूस्थाली आदि भी स्थापित करे। प्रणीता-पात्रका स्पर्श होम-कालमें नहीं करना चाहिये। स्नान-कुष्ठको यज्ञपर्यन्त शिथर रखना चाहिये। प्रादेशमात्रके दो पवित्रक बनाकर प्रोक्षणी-पात्रमें स्थापित करे। प्रणीता-पात्रके जलसे प्रोक्षणी-पात्रमें तीन बार जल डाले। प्रोक्षणी-पात्रको बायें हाथमें रखकर मध्यमा तथा अकुम्भसे पवित्रक प्रहण कर ‘पवित्रं ते’ (ऋ० ९।८३।१) इस मन्त्रसे तीन बार जल छिड़के, स्थापित पदार्थोंका प्रोक्षण करे और प्रोक्षणी-पात्रको प्रणीता-पात्रके दक्षिण-भागमें यथास्थान रख दे। प्रादेशमात्रके अन्तरमें आज्ञस्थाली रखे। धीको अग्निमें तपाये, धीमेंसे अपद्रव्योंका निरसन करे। इसके बाद पर्यग्रिकरण करे। एक जलते हुए आगके अंगोंको लेकर आज्ञस्थाली और चरूस्थालीके ऊपर भ्रष्टण कराये। इस समय ‘कुलायिनीं’ (यजु० १४।२) इस मन्त्रका पाठ करे। अनन्तर सुब्रांह्मिको दाये

हाथमें ग्रहण कर अग्निपर तपाये। सम्पार्जन-कुशाओंसे सुब्रांह्मिको मूलसे आश्रमागकी ओर सम्पार्जित करे। इसके बाद प्रणीताके जलसे तीन बार प्रोक्षण करे। पुनः सुब्रांह्मिको आगपर तपाये और प्रोक्षणीके उत्तरकी ओर रख दे। आज्ञपात्रको सामने रख ले। पवित्रीसे धीका तीन बार उत्सूचन कर ले। पवित्रीसे ईशानसे आरम्भकर दक्षिणावर्ती होते हुए ईशानपर्यन्त पर्वुक्षण करे। अनन्तर अग्निदेवका इस प्रकार ध्यान करे—‘अग्नि देवताका रक्त वर्ण है, उनके तीन मुख हैं, वे अपने बायें हाथमें कमण्डलु तथा दाहिने हाथमें सुब्रांह्मि किये हुए हैं।’ ध्यानके अनन्तर सुब्रांह्मि लेकर हवन करे।

इस प्रकार स्वगुहोक विधिके द्वारा ब्रह्मा तथा ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये। कुशकण्ठिका-कर्म करके अग्निका पूजन करे। आघार, आज्ञयभाग, महाव्याहृति, प्रायश्चित्त, प्राजापत्य तथा स्थिष्टकृत् हवन करे। प्रजापति और इन्द्रके निमित्त दी गयी आहुतियाँ आपारसंज्ञक हैं। अग्नि और सोमके निमित्त दी जानेवाली आहुतियाँ आज्ञयभाग कहलाती हैं। ‘भूर्मुखः स्वः’—ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं। ‘अयाङ्गाङ्गे’ इत्यादि पौच मन्त्र प्रायश्चित्त-संज्ञक हैं। एक प्राजापत्य आहुति तथा एक स्थिष्टकृत् आहुति—इस प्रकार होममें चौदह आहुतियाँ नित्य-संज्ञक हैं। इस प्रकार चतुर्दश आहुत्यात्मक हवन कर कर्म-निमित्तक देवताको उद्देश्यकर प्रधान हवन करना चाहिये। अग्निकी सात जिह्वाएँ कही गयी हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) हिरण्या, (२) कनका, (३) रत्न, (४) आरक्षा, (५) सुप्रभा, (६) बहुरूपा तथा (७) सती। इन जिह्वा-देवियोंके ध्यान करनेसे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है।

(अथाय १४—१६)

अधिवासनकर्म एवं यज्ञकर्ममें उपयोज्य उत्तम ब्राह्मण तथा धर्मदेवताका स्वरूप

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! देव-प्रतिष्ठाके पहले दिन देवताओंका अधिवासन करना चाहिये और विधिके अनुसार अधिवासनके पदार्थ—धान्य आदिकी प्रतिष्ठाकर यूप आदिको भी स्थापित कर लेना चाहिये। कलशके ऊपर गणेशजीकी स्थापना कर दिक्षापाल और ग्रहोंका पूजन करना चाहिये। तडाग तथा उद्यानकी प्रतिष्ठामें प्रधानरूपसे ब्रह्माकी, शान्ति-यागमें तथा प्रपायागमें वरणकी, शैव-प्रतिष्ठामें शिवकी और सोम,

सूर्य तथा विष्णु एवं अन्य देवताओंका भी पादा-अर्च्य आदिसे अर्चन करना चाहिये। ‘बूफदादिव्यं’ (यजु० २०।२०) इस मन्त्रसे पहले प्रतिमाको स्नान कराये। स्नानके अनन्तर मन्त्रोद्घारा गन्ध, फूल, फल, दूर्वा, सिंटूर, चन्दन, सुगन्धित तैल, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, वस्त्र आदि उपचारोंसे पूजन करे। मण्डपके अंदर प्रधान देवताका आवाहन करे और उसीमें अधिवासन करे। सुरशा-कर्मियोद्घारा उस स्थानकी

सुरक्षा करत्वाये। तदनन्तर आचार्य, यजमान और ऋत्विक् मधुर पदार्थोंका भोजन करें। विना अधिवासन-कर्म सम्प्रक्रिये देवताप्रतिष्ठाका कोई फल नहीं होता। नित्य, नैमित्तिक अथवा काम्य कर्मोंमें विधिके अनुसार कुण्ड-मण्डपकी रचनाकर हवन-कर्त्य करना चाहिये।

ब्राह्मणो ! यजकार्यमें अनुष्टुप्नके प्रमाणसे आठ होता, आठ द्वारपाल और आठ याजक ब्राह्मण होने चाहिये। ये सभी ब्राह्मण शुद्ध, पवित्र तथा उत्तम लक्षणोंसे सम्प्रक्रियेदमन्त्रोंमें पारद्वारा होने चाहिये। एक जप करनेवाले जापकका भी वरण करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी गम्य, माल्य, वस्त्र तथा दक्षिणा आदिके द्वारा विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। उत्तम सर्वलक्षणसम्प्रक्रिया तथा विद्वान् ब्राह्मण न मिलनेपर किये गये यजका उत्तम फल प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण वरणके समय गोत्र और नामका निर्देश करे। तुलापुरुषके दानमें, स्वर्ण-पर्वतके दानमें, कृतोत्सर्वमें एवं कन्दादानमें गोत्रके साथ प्रवरका भी उत्तम वरण करना चाहिये। मृत भार्यावाल, कृपण, शूद्रके घरमें निवास करनेवाला, बौना, वृषभलोपति, बन्धुदेवी, गुरुदेवी, स्त्रीदेवी, हीनाङ्ग, अधिकशङ्क, भगवन्त, दायिक, प्रतिग्राही, कुन्तसी, व्यभिचारी, कुषी, निद्रालु, व्यसनी, अदीक्षित, महावर्णी, अपुत्र तथा केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाला—ये सब यज्ञके पात्र नहीं हैं। ब्राह्मणोंके वरण एवं पूजनके मन्त्रोंके भाव इस प्रकार हैं— आचार्येव ! आप ब्रह्मकी मृति हैं। इस संसारसे मेरी रक्षा करें। गुणे ! आपके प्रसादसे ही यह यज्ञ करनेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है। चिरकालतक मेरी कीर्ति बनी रहे। आप मुझपर प्रसन्न होवें, जिससे मैं यह कर्त्य सिद्ध कर सकूँ। आप सब भूतोंके आदि हैं, संसाररूपी समुद्रसे पार करनेवाले हैं। ज्ञानरूपी अमृतके

आप आचार्य हैं। आप यजुर्वेदस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। ऋत्विजगणो ! आप षड्ङु वेदोंके ज्ञाता हैं, आप हमारे लिये मोक्षप्रद हों। मण्डलमें प्रवेश करके उन ब्राह्मणोंके अपने-अपने स्थानोंपर क्रमशः आदरसे बैठाये। वेदोंके पश्चिम भागमें आचार्यको बैठाये, कुण्डके अग्र-भागमें ब्रह्माको बैठाये। होता, द्वारपाल आदिको भी यथास्थान आसन दे। यजमान उन आचार्य आदिको सम्बोधित कर प्रार्थना करे कि आप सब नाशयणस्वरूप हैं। मेरे यज्ञको सफल बनावें। यजुर्वेदके तत्त्वार्थको जाननेवाले ब्रह्मरूप आचार्य ! आपको प्रणाम है। आप सम्पूर्ण यज्ञकर्मके साक्षीभूत हैं। ऋत्वेदार्थको जाननेवाले इन्द्ररूप ब्रह्मन् ! आपको नमस्कार है। इस यज्ञकर्मकी सिद्धिके लिये ज्ञानरूपी मण्डलमूर्ति भगवान् शिवको नमस्कार है। आप सभी दिशाओं-विदिशाओंसे इस यज्ञकी रक्षा करें। दिव्यपालरूपी ब्राह्मणोंके नमस्कार है।

ब्रत, देवार्चन तथा यागादि कर्म संकल्परूपक करने चाहिये। काम संकल्पमूलक और यज्ञ संकल्पसम्भूत है। संकल्पके विना जो धर्माचरण करता है, वह कोई फल नहीं प्राप्त कर सकता। गङ्गा, सूर्य, चन्द्र, दी, भूमि, रात्रि, दिन, सूर्य, सोम, यम, काल, पञ्च महाभूत—ये सब ज्ञानशुभ-कर्मके साक्षी हैं। अतएव विचारावान् मनुष्यको अशुभ कर्मोंसे विरत हो धर्मका आचरण करना चाहिये। धर्मदेव शुभ शारीरवाले एवं शेतवस्त्र धारण करते हैं। वृषत्पुरुष ये धर्मदेव अपने दोनों हाथोंमें वरद और अभय-मुद्रा धारण किये हैं। ये सभी प्राणियोंके सुख देते हैं और सज्जनोंके लिये एकमात्र मोक्षके करण हैं। इस प्रकारके स्वरूपवाले भगवान् धर्मदेव सत्पुरुषोंके लिये कल्पाणकरी हों तथा सदा सबकी रक्षा करें। (अध्याय १७-१८)

प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! ऋषियोंने देवता आदिकी प्रतिष्ठामें याघ, फलन्तुम आदि छः मास नियत किये हैं।

जग्यतक भगवान् विष्णु शयन नहीं करते, तबतक प्रतिष्ठा आदि कार्य करने चाहिये। शुक्र, गुरु, चुध, सोम—ये चार वार शुभ

१-गङ्गा चादिवचन्त्री च शौर्भूमी यज्ञिवासरी ॥

सूर्यः योगे यमः काले महाभूतानि पञ्च च। एते शुभशुभस्वेह कर्मणो नव साक्षिणः॥ (मध्यमपर्व २। १८। ४३-४४)

२-धर्मः शुभ्रवसुः सिताम्बधः कर्मणोऽधिदिशो कृषी हस्तायामपर्य चरं च सतते रूपं परं ये दधत्।

सर्वशशिग्निसुखवाहः कृत्यपिण्डे योग्यकहेतुः सदा सोऽप्यपातु यज्ञित चैव सतते भूयात् सती भूयात्॥ (मध्यमपर्व २। १८। ४५)

है। जिस लग्नमें शुभ ग्रह स्थित हो एवं शुभ ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, उस लग्नमें प्रतिष्ठा करनी चाहिये। तिथियोंमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, प्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलाशय आदि कर्त्य प्रशस्त शुभ मुहूर्तमें ही करने चाहिये। देवप्रतिष्ठा और बड़े याणोंमें सोलह हाथका एवं चार द्वारोंसे युक्त मण्डपका निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओंमें शुभ ध्वजाएँ फहरानी चाहिये। पाकड़, गूल्म, पीपल तथा बरगदके तोरण चारों द्वारोंपर पूर्वादि क्रमसे लगाये। मण्डपके मालाओं आदिसे अलंकृत करे। दिक्षालाभोंकी पताकाएँ उनके बाणोंकी अनुसार बनायानी चाहिये। मध्यमें नीलवर्णकी पताका लगानी चाहिये। ध्वज-टण्ड यदि दस हाथका हो तो पताका पाँच हाथकी बनवानी चाहिये। मण्डपके द्वारोंपर कदली-स्तम्भ रखना चाहिये तथा मण्डपको सुसज्जित करना चाहिये। मण्डपके मध्यमें एवं कोणोंमें वेदियोंकी रचना करनी चाहिये। योनि और मेघला-मण्डित कुण्डका तथा बेदीपर सर्वतोभद्र-चक्रका निर्माण करना चाहिये। कुण्डके ईशान-भागमें कलशकी स्थापना कर उसे माला आदिसे अलंकृत करना चाहिये।

यजमान पञ्चदेव एवं यज्ञेभ्य नारायणको नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रियाका संकल्प करके ब्राह्मणोंसे इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करे—‘मैं इस पुण्य देशमें शास्त्रोक्त-विधिसे जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा करूँगा। आप सभी मुझे इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।’ ऐसा कहकर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि-श्राद्ध सम्पन्न करे। ऐसी आदिके मङ्गलमय बाणोंकी साथ मण्डपमें शोडशाक्षर ‘हुरे राम हुरे राम राम हुरे हुरे।’ आदि मन्त्र लिखे एवं इन्द्रादि दिक्षाल देवताओं तथा उनके आयुधों आदिका भी यथास्थान चित्रण करे। फिर आचार्य और ब्रह्माका वरण करे। वरणके अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमानसे प्रसन्न हो उसके सर्वविध करन्याणकी कामना करके ‘स्वस्ति’ ऐसा कहे। अनन्तर सप्तलीक यजमानको सर्वीषधियोंसे ‘आपो हि द्वा।’ (यजु० ११। ५०) इस मन्त्रद्वाय ब्रह्मा, ऋत्विक् आदि ऊन करायें। यत्र, गोधूम,

नीवार, तिल, सौंबा, शालि, शिंगु और बीहि—ये आठ सर्वीषधि कहे गये हैं। आचार्यादिहार अनुज्ञात सप्तलीक यजमान शुक्र वर्ष तथा चन्द्रन आदि धारणकर पुरोहितको आगेकर मङ्गल-धोयके साथ पुनर्पौत्रादिसहित पक्षिमद्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। वहाँ बेदीकी प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे। ब्राह्मणकी आज्ञाके अनुसार यजमान निश्चित आसनपर बैठे। ब्राह्मणलोग स्वस्तिवाचन करें। अनन्तर यजमान पाँच देवोंका पूजन करे। फिर सरसों आदिसे विद्रकर्ता भूतोंका अपसरण कराये। यजमान अपने बैठनेके आसनका पुण्य-चन्दनसे अर्चन करे। अनन्तर भूमिका हाथसे स्वर्णकर इस प्रकार कहे—‘पृथ्वीमाता ! तुमने लोकोंको धारण किया है और तुम्हें विष्णुने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मेरे आसनको पवित्र करो।’ फिर सूर्यको अर्च देकर गुरुको हाथ जोड़कर प्रणाम करे। हृदयकमलमें इष्ट देवताका श्यामकर तीन प्राणायाम करे। ईशान दिशामें कलशके ऊपर विद्रिराज गणेशजीकी गम्भ, पुण्य, वर्ष तथा विविध नैवेद्य आदिसे ‘गणानां त्वा।’ (यजु० २३। १९) मन्त्रसे पूजन करे। अनन्तर ‘आ ब्रह्मन्’ (यजु० २२। २२) इस मन्त्रसे ब्रह्माजीकी, ‘तद्विष्णुःऽः’ (यजु० ६। ५) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। फिर बेदीके चारों ओर सभी देवताओंको स्व-स्व स्थानपर स्थापित कर उनका पूजन करे। इसके बाद ‘राजाधिराजाय प्रसहा।’ इस मन्त्रसे भूशुदि कर क्षेत्र पश्चासनपर विराजमान, शुद्धस्फटिक तथा शङ्ख, कुन्द एवं इन्दुके समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलभारी, क्षेत्र कमल, क्षेत्र माला और क्षेत्र वस्त्रसे अलंकृत, क्षेत्र गम्भसे अनुलिप, हाथमें पाणि लिये हुए, सिद्ध, गम्भयों तथा देवताओंसे स्तूपमान, नागलोककी शोभारूप, मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरोंसे आवृत, जलशायी भगवान् वरुणदेवका ध्यान करे। ध्यानके अनन्तर पञ्चमन्यास करे। अर्धस्थापन कर मूलमन्त्रका जप करे तथा उस जलसे आसन, यज्ञ-सामग्री आदिका प्रोक्षण करे। फिर भगवान् सूर्यको अर्च दे। अनन्तर ईशानकोणमें भगवान् गणेश, अग्निकोणमें गुरुपादुका तथा

१-पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि स्वं विष्णुना धृता ॥

त्वं च धारय मा नित्यं पश्चिमासने कुरु ।

(मध्यमण्ड २। २०। २४-२४)

अन्य देवताओंका यथाक्रम पूजन करे। मण्डलके मध्यमें शक्ति, सागर, अमन्त्र, पृथ्वी, आधारशक्ति, कूर्म, सुमेरु तथा मन्दर और पञ्चतत्त्वोंका साङ्घोषाङ्ग पूजन करे। पूर्व दिशामें कलशके ऊपर खेत अक्षत और पुष्प लेन्कर भगवान् वरुणदेवका आवाहन करे। वरुणको आठ मुद्रा दिखाये। गायत्रीसे ज्ञान कराये तथा पाण्ड, अर्च, पुष्पाङ्गलि आदि उपचारोंसे वरुणका पूजन करे। ग्रहों, लोकपालों, दस दिवालों तथा पौष्ट्रपर ब्रह्मा, शिव, गणेश और पृथ्वीका गन्ध, चन्दन आदिसे पूजन करे। पीठके ईशानादि कोणोंमें कमल, अग्निका, विश्वकर्मा, सरस्वती तथा पूर्वादि द्वारोंमें उनचास मरुदूणोंका पूजन करे। पीठके बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, बेताल आदिकी पूजा करे। कलशपर सूर्यादि नवग्रहोंका आवाहन एवं ध्यानकर पाण्ड, अर्च, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य एवं बलि आदिद्वारा मन्त्रपूर्वक उनको पूजा करे और उनकी पताकाएँ उन्हें निवेदित करे। विश्वपूर्वक सभी देवताओंवा पूजनकर शतरुद्रियका पाठ करना चाहिये। हवन करनेके समय वारुणसूक्त, ग्रीवसूक्त, रौद्रसूक्त, पवधामानसूक्त, पुष्पसूक्त, शक्तसूक्त, अग्निसूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठसाम, वामदेवसाम, रथन्तरसाम तथा रक्षोप्रभ आदि सूक्तोंका पाठ करना चाहिये। अपने गृह्योक्त-विधिसे कुण्डोंमें अग्नि प्रदान कर हवन करना चाहिये। जिस देवका यज्ञ होता है अथवा जिस देवताकी प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियाँ देनी चाहिये। अनन्तर तिल, आज्ञा, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदिसे अन्य देवताओंके मन्त्रोंसे उन्हें आहुतियाँ देनी चाहिये।

पञ्चदिवसालक प्रतिष्ठायागमें प्रथम दिन देवताओंका आवाहन एवं स्थापन करना चाहिये। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पांचवें दिन नीराजन करना चाहिये। नित्यकर्म करनेके अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। इसीसे कर्मफलकी प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम प्रतिष्ठाय देवताका सर्वोपरिधिमिश्रित जलसे ब्राह्मणोंद्वारा वेदमन्त्रोंके पाठपूर्वक महारूपन तथा मन्त्राभिवेक कराये, तदनन्तर चन्दन आदिसे उसे

अनुलिपि करे। तत्पश्चात् आचार्य आदिकी पूजाकर उन्हें अलंकृत कर गोदान करे। फिर मङ्गल-घोषपूर्वक तालाबमें जल छोड़नेके लिये संकल्प करे। इसके बाद उस तालाबके जलमें नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदिकी अलंकृत प्रतिमाएँ छोड़े। वरुणदेवकी विशेषरूपसे पूजा कर उन्हें अर्घ्य निवेदित करे। पुनः उसी तालाबके जल, सप्तमूतिका-मिश्रित जल, तीर्थ-जल, पञ्चामृत, कुशोदक तथा पुष्पजल आदिसे वरुणदेवको ज्ञान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करे। सभी देवताओंके बलि प्रदान करे। मङ्गलस्त्रोपके साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करे। एक वेदोपर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणीदेवीकी यथाशक्ति स्वर्ण आदिकी प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुणदेवके साथ देवी पुष्करिणीका विवाह कराकर उन्हें वरुणदेवके लिये निवेदित कर दे। एक काष्ठका धूप जो यजमानकी कैचाईके बगवर हो, उसे अलंकृत कर तडागके ईशान दिशामें मन्त्रपूर्वक गाढ़कर स्थिर कर दे। प्रासादके ईशानकोणमें, प्रपाके दक्षिण भागमें तथा आवासके मध्यमें धूप गाढ़ना चाहिये। इसके अनन्तर दिवालोंको बलि प्रदान करे। ब्राह्मणोंको भोजन एवं दक्षिणा प्रदान करे।

उस तडागके जलके मध्यमें 'जलमातृत्वो नमः' ऐसा कहकर जलमातृकाओंका पूजन करे और मातृकाओंसे प्रार्थना करे कि मातृका देवियो ! तीनों लोकोंके चराचर प्राणियोंकी संहृष्टिके लिये यह जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है, यह जल संसारके लिये आनन्ददायक हो। इस जलाशयकी आपलोग रक्षा करे। ऐसी ही मङ्गल-प्रार्थना भगवान् वरुणदेवसे भी करे। अनन्तर वरुणदेवको विष्व, पथ तथा नागमुद्राएँ दिखाये। ब्राह्मणोंको उस जलाशयका जल भी दक्षिणाके रूपमें प्रदान करे। अनन्तर तर्पण कर अग्निकी प्रार्थना करे। स्वयं भी उस जलका पान करे। पितरोंके अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर पुनः वरुणदेवकी प्रार्थना कर, जलाशयकी प्रदक्षिणा करे। फिर ब्राह्मणोंद्वारा वेद-ध्यनियोंके उचारणपूर्वक यजमान अपने घरमें प्रवेश करे और ब्राह्मणों, दीनों, अभ्यों, कृपणों तथा कुमारिकाओंको भोजन कराकर संतुष्ट करे तथा भगवान् सूर्यके अर्घ्य प्रदान करे। (अथाय १९—२१)

३० श्रीपरमात्मने नमः

मध्यमपर्व

(तृतीय भाग)

उद्घान-प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्रह्मणो ! उद्घान आदिकी प्रतिष्ठामें जो कुछ विशेष विधि है, अब उसे बता रहा हूँ, आपलोग सुनें। सर्वप्रथम एक चौकोर मण्डलकी रचना कर उसपर अष्टदल कमल बनाये। मण्डलकी ईशानकोणमें कलशकी स्थापनाकर उसपर भगवान् गणनाथ और वरुणदेवकी पूजा करे। तदनन्तर मध्यम कलशमें सूर्यादि प्रग्रहोंका पूजन करे। फिर पक्षिमादि द्वारदेशोंमें ब्रह्मा और अनन्त तथा मध्यमें वरुणकी पूजा करे। जलशूरित कलशमें भगवान् वरुणका आवाहन करते हुए कहे—‘वरुणदेव ! मैं आपका आवाहन करता हूँ। विषो ! आप हमें स्वर्ग प्रदान करें।’ तदनन्तर पूर्वभागमें मन्दरगिरिकी स्थापना कर तोरणपर विष्वकर्मनकी पूजा करे और कर्णिका-देशमें भगवान् वासुदेवका पूजन करे। भगवान् वासुदेव शुद्ध स्फटिकके सदृश हैं। वे अपने चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनके वक्षः स्थलमपर श्रीवत्स-विहृ और कौस्तुभमणि सुशोभित हैं तथा मस्तक सुन्दर मुकुटसे अलंकृत हैं। उनके दक्षिण भागमें भगवती कमला, वाम भागमें पुष्टिदेवी विराजमान हैं। सुर, असुर, सिद्ध, किंत्र, यक्ष आदि उनकी सुन्ति करते हैं। ‘विष्णो रराट’ (यजु० ५। २१) इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुकी पूजा करे। उनके साथमें संकर्णिणी-व्यूह और विष्वला आदि शक्तियोंकी धूप, दीप आदि उपवासोंमें अर्चना कर प्रार्थना करे। उनके सामने धीका दीप जलाये और गुण्डुलका धूप प्रदान कर धूतमित्रित स्त्रीरका नैवेद्य लगाये। कर्णिकाके दक्षिणकी ओर कमलके ऊपर स्थित सोमका ध्यान करे। उनका वर्ण शुक्र है, वे ज्ञान-स्वरूप हैं, वे अपने हाथोंमें वरद और अभ्य-मुद्रा धारण किये हैं एवं केन्द्रादि धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभित हैं। ‘इमं देवाऽ’ (यजु० ९। ४०) इस मन्त्रसे इनकी पूजा कर इन्हें धूतमित्रित भातका नैवेद्य अर्पण करे। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष तथा वायुकी पूजा करे। कर्णिकाके वाम भागमें शुक्र वर्णवाले महादेवका

‘त्र्यम्बकं’ (यजु० ३। ६०) इस मन्त्रसे पूजन कर नैवेद्य आदि प्रदान करे। भगवान् वासुदेवके लिये हृविष्यसे आठ, सोमके लिये अङ्गार्इस तथा शिवके लिये दो शीरकी आहुतियाँ दे। गणेशजीको धीकी एक आहुति दे। ब्रह्म एवं वरुणके लिये एक-एक आहुति और ग्रहों एवं दिक्पालोंके लिये विहित समिधाओं तथा धीसे एक-एक आहुतियाँ दे।

अग्निकी सात जिह्वाओं—कराली, धूपली, खेता, लोहिता, स्वर्णप्रधा, अतिरिता और पद्मगांगों भी मन्त्रोंसे धूत एवं मधुमित्रित हृविष्यहारा एक-एक आहुति प्रदान करे। इसी प्रकार अग्नि, सोम, इन्द्र, पृथ्वी और अन्तरिक्षके निमित्त मधु और शीर-युक्त यवोंसे एक-एक आहुतियाँ प्रदान करे। फिर गच्छ-पृष्ठादिसे उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करके रुद्रसूक्त तथा सौरसूक्तका जप करे। अनन्तर यूपको भलीभांति ऊन कराकर और उसका मार्जनकर उसे उद्घानके मध्य भागमें गाढ़ दे। यूपके प्रान्त-भागमें सोम तथा वनस्पतिके लिये ध्वजाओंको लगा दे। ‘कोऽद्वात्कस्या’ (यजु० ७। ४८) इस मन्त्रसे वृक्षोंका कर्णविध संस्कार करे। एक तीखी सुईसे वृक्षके दक्षिण तथा वाम भागके दो पतोका छेदन करे। नवघ्रहोंकी तृप्तिके लिये लड्ढ आदिका भोग लगाये तथा बालक और कुमारियोंको मालपूआ खिलाये। रंजित सूर्योंसे उद्घानके वृक्षोंको आवेषित करे। उन वृक्षोंको जलादिका प्राशान कराये और यह प्रार्थना-मन्त्र पढ़े—

कृक्षाप्रात् पवित्रस्यापि आरोहात् पवित्रस्य च ॥

मरणे वास्ति भड्डे या कर्ता पार्षेन लिप्यते ॥

(मध्यमपर्व ३। १। ३१)

तात्पर्य यह कि विधिपूर्वक उद्घान आदिमें लगाये गये वृक्षके ऊपरसे वटि कोई गिर जाय, गिरकर मर जाय या अस्थि टूट जाय तो उस पापका भागी वृक्ष लगानेवाला नहीं होता।

उद्घानके निमित्त पूजा आदि कर्म करनेवाले आचार्यको स्वर्ण, धान, गाय तथा दक्षिणा प्रदान कर उनकी प्रदक्षिणा करे। क्रृत्यवक्त्वको भी स्वर्ण, रजत आदि दक्षिणामें दे। ब्रह्माको

भी दक्षिणा देकर संतुष्ट करे एवं अन्य सदस्योंको भी प्रसन्न करे। अनन्तर यजमान स्थापित अधिकलशके जलसे रान करे। सूर्यास्तसे पूर्व ही पूर्णाहुति सम्पन्न करे। सम्पूर्ण कार्य पूर्णकर अपने घर जाय और विश्रोक्ते द्वारा वहाँ बल, काम, हयग्रीव, माधव, पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाध्यक्ष और नारायण—इन सबका विधिवत् स्मरण कर पूजन कराये और पञ्चग्रन्थमिश्रित दधि-भातका नैवेद्य समर्पित करे।

बल आदि देवताओंकी पूजा करनेके पछात् दक्षिणाकी ओर 'स्योना पृथिवी' (यजु० ३५। २१) इस मन्त्रसे पृथ्वीदेवीका पूजन करे। मधुमिश्रित पायसाश्रका नैवेद्य अर्पित करे। पृथ्वीदेवी शुद्ध काङ्गन वर्णकी आभासे युक्त हैं। हाथमें बरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हैं। सम्पूर्ण अलंकारोंसे अलंकृत हैं। घरके बाम भागमें विश्वकर्माका यजन करे। 'विश्वकर्मन्' (ऋ० १०। ८१। ६) यह मन्त्र उनके पूजनमें विनियुक्त है। भगवान् विश्वकर्माका वर्ण शुद्ध सफाटिकके समान है, ये शूल और टंकको धारण करनेवाले हैं तथा शान्तास्वरूप हैं। इन्हें मधु और पिष्टककी बिलि दे। अनन्तर कौम्भाण्डसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पाठ करे। इसी पृथ्वी-होम-

कर्ममें मधु और पायस-युक्त हविष्यसे आठ आहुतियाँ दे तथा अन्य देवताओंको एक-एक आहुति दे।

उद्यानके चारों ओर अथवा बीच-बीचमें उद्यानकी रक्षाके लिये मेढ़ोंका निर्माण करे, जिन्हें धर्मसेतु कहा जाता है। उद्यानकी दृढ़ताके लिये विशेष प्रबन्ध करे। धर्मसेतुका निर्माण कर उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

पिञ्छिले परितान्ते च उच्चिलेनाङ्गुस्तेगतः ॥

प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ॥

ये चात्र प्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः ॥

वेदागमेन यत्पुण्यं तथैव हि समर्पितम् ॥

(मध्यमर्पण ३। १। ४४—४६)

तात्पर्य यह कि यदि कोई व्यक्ति इस धर्मसेतु (मेड़) पर चलते समय गिर जाय, फिसल जाय तो इस धर्मसेतुके निर्माणका कोई पाप मुझे न लगे। क्योंकि इस धर्मसेतुका निर्माण मैंने धर्मकी अधिवृद्धिके लिये ही किया है। इस स्थानपर आनेवाले प्राणियोंकी ये धर्मसेतु रक्षा करते हैं। वेदाध्ययन आदिसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य इस धर्मसेतुके निर्माण करनेपर प्राप्त होता है। (अध्याय १)

गोचर-भूमिके उत्सर्ग तथा लघु उद्यानोंकी प्रतिष्ठा-विधि

{ भारतमें पहले सभी ग्राम-नगरोंकी सभी दिशाओंमें कुछ दूरतक गोचर-भूमि रहती थी। उसमें गायें स्वच्छन्द-स्वप्न स्वरूप चरती थीं और वह भूमि सर्वसामान्यके भी धूमने-फिरनेके उपयोगमें आती थी। छोटे-छोटे बालक भी उसमें क्रीड़ा करते थे। यह प्रथा अभी कुछ दिनों पहलेतक थी, पर अब वह सर्वथा लुप्त हो गयी है, इससे गो-धनकी बड़ी हानि हुई है। जिसका फल प्रकृति अनावृष्टि, भीषण महर्घता (महैंगी), दुष्कालकी स्थिति, भूकम्प, महायुद्ध और सर्वत्र निर्दोष लोगोंकी हत्याके रूपमें परोक्ष तथा प्रत्यक्ष-रूपसे दे रही है। इसकी निवृत्तिका एकमात्र समाधान है प्राचीन पुराणोंके सदाचार, गो-सेवा और आस्तिकतापूर्ण आध्यात्मिक दृष्टिका पुनः अनुसाधन और अनुसरण करना। भला, आजकली दशासे, जहाँ किसीको भी किसी भी स्थितिमें तनिक भी शान्ति नहीं है, इससे अधिक और विनाशकी जात क्या हो सकती है! इस दृष्टिसे यह अध्याय विशेष महत्वका है और सभी पाठकोंके अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अपने-अपने ग्राम-नगरोंके चतुर्दिंक गोचरका या गो-प्रचार-भूमिका उत्सर्ग कर गो-संरक्षणमें हाथ बैटाना चाहिये।—सम्पादक]

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अब मैं गोचर-भूमिके विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें। गोचर-भूमिके उत्सर्ग-कर्ममें सर्वप्रथम लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुकी विधिके अनुसार पूजा करनी चाहिये। इसी तरह ब्रह्मा, रुद्र, कर्णालिङ्ग, वराह, सोम, सूर्य और महादेवजीका ऋषभः विविध उपचारोंसे पूजन करे। हवन-कर्ममें लक्ष्मीनारायणको तीन-तीन आहुतियाँ घीसे

दे। क्षेत्रपालोंको मधुमिश्रित एक-एक लजाहुति दे। गोचरभूमिका उत्सर्ग करके विधानके अनुसार यूपकी स्थापना करे तथा उसकी अर्चना करे। वह यूप तीन हाथका ऊँचा और नागफणोंसे युक्त होना चाहिये। उसे एक हाथसे भूमिके मध्यमें गाढ़ना चाहिये। अनन्तर 'विष्णेषाऽ' (ऋ० १०। २। ६) इस मन्त्रका उच्चारण करे और 'नागाधिष्ठतये नमः', 'अच्युताय

नमः' तथा 'धीमाय नमः' कहकर यूपके लिये लाजा निवेदित करे। 'भयि गृहाश्च' (यजु० १३। १) इस मन्त्रसे रुद्रमूर्ति-स्वरूप उस यूपकी पञ्चोपचार-पूजा करे। आचार्यको अज्र, वस्त्र और दक्षिणा दे तथा होता एवं अन्य ऋत्विजोंको भी अभीष्ट दक्षिणा दे। इसके बाद उस गोचरभूमिमें रल छोड़कर इस मन्त्रको पढ़ते हुए गोचरभूमिका उत्सर्ग कर दे—

शिवलोकस्तथा गावः सर्वदेवसुपूजिताः ॥

गोभ्य एषा भवा भूमिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना ।

(मध्यमर्त्य ३। २। १२-१३)

'शिवलोकस्तथा यह गोचरभूमि, गोलोक तथा गौण, सभी देवताओंद्वारा पूजित हैं, इसलिये कल्याणकी कामनासे मैंने यह भूमि गौओंके लिये प्रदान कर दी है।'

इस प्रकार जो समाहित-चित होकर गौओंके लिये गोचरभूमि समर्पित करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है। गोचरभूमिमें जिननी संस्थामें तुण, गुल्म उगते हैं, उनमें हजारों वर्षतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। गोचरभूमिकी सीमा भी निश्चित करनी चाहिये। उस भूमिकी रक्षाके लिये पूर्वमें वृक्षोंका रोपण करे। दक्षिणमें सेतु (मेड) बनाये। पश्चिममें कैटीले वृक्ष लगाये और उत्तरमें कूपका निर्माण करे। ऐसा करनेसे कोई भी गोचरभूमिकी सीमाका लक्खन नहीं कर सकेगा। उस भूमिको जलधारा और घाससे परिपूर्ण करे। नगर या ग्रामके दक्षिण दिशामें गोचरभूमि छोड़नी चाहिये। जो व्यक्ति किसी अन्य प्रयोजनसे गोचरभूमिको जोतता, सोहता या नष्ट करता है, वह अपने कुलोंके पातकी बनता है और अनेक ब्रह्म-हत्याओंसे आक्रमित हो जाता है।

जो भलीभांति दक्षिणाके साथ गोचर्य-भूमिका^१ दान करता है, वह उस भूमिमें जितने तुण हैं, उनमें समयतक स्वर्ग और विष्णुलोकसे च्युत नहीं होता। गोचर-भूमि छोड़नेके बाद ब्राह्मणोंको संतुष्ट करे। वृक्षोत्सर्गमें जो भूमि-दान करता है, वह प्रतेयोनिको प्राप्त नहीं होता। गोचर-भूमिके उत्सर्गकी समय जो मण्डप बनाया जाता है, उसमें भगवान् वासुदेव और सूर्यका

पूजन तथा तिल, गुड़की आठ-आठ आहुतियोंसे हवन करना चाहिये। 'देहि मे' (यजु० ३। ५०) इस मन्त्रसे मण्डपके ऊपर चार शुक्र घट स्थापित करे। अनन्तर सौर-सूक्त और वैष्णव-सूक्तका पाठ करे। आठ वटपत्रोंपर आठ दिव्याल देवताओंके चित्र या प्रतिमा बनाकर उन्हें पूर्वादि आठ दिशाओंमें स्थापित करे और पूर्वादि दिशाओंके अधिष्ठितयों—इन्द्र, अग्नि, यम, निर्वहि आदिसे गोचरभूमिकी रक्षाके लिये प्रार्थना करे। प्रार्थनाके बाद चारों वर्णोंकी, मृग एवं पक्षियोंकी अवस्थितिके लिये विशेषरूपसे भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके लिये गोचरभूमिका उत्सर्जन करना चाहिये। गोचरभूमिके नष्ट-भ्रष्ट हो जानेपर, घासके जीर्ण हो जानेपर तथा पुनः घास उगानेके लिये पूर्ववत् प्रतिष्ठा करनी चाहिये, जिससे गोचरभूमि अक्षय बनी रहे। प्रतिष्ठाकार्यके निमित्त भूमिके लोटने आदिमें कोई जीव-जन्म नहीं तो उससे मुझे पाप न लगे, प्रत्युत धर्म ही हो और इस गोचरभूमिमें निवास करनेवाले मनुष्यों, पशु-पक्षियों, जीव-जन्मुओंका आपके अनुग्रहसे निरन्तर कल्याण हो ऐसी भगवान्से प्रार्थना करनी चाहिये। अनन्तर गोचरभूमिको त्रिगुणित पवित्र धारेद्वारा सात बार आवेष्टित कर दे। आवेष्टनके समय 'सुत्रामाणं पृथिवीं' (ऋ० १०। ६३। १०) इस झचाका पाठ करे। अनन्तर आचार्यको दक्षिणा दे। मण्डपमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये। दीन, अन्य एवं कृपणोंको संतुष्ट करे। इसके बाद मङ्गल-ध्वनिके साथ अपने घरमें प्रवेश करे। इसी प्रकार तालाब, कुआं, कूप आदिकी भी प्रतिष्ठा करनी चाहिये, विशेषरूपसे उसमें बरुणदेवकी और नागोंकी पूजा करनी चाहिये।

ब्रह्मणो ! अब मैं छोटे एवं साधारण उद्यानोंकी प्रतिष्ठाके विषयमें बता रहा हूँ। इसमें मण्डल नहीं बनाना चाहिये। बाल्क शुभ स्थानमें दो हाथके स्थापिलपर कलश स्थापित करना चाहिये। उसपर भगवान् विष्णु और सोमकी अर्चना करनी चाहिये। केवल आचार्यका वरण करे। सूर्यसे वृक्षोंको आवेष्टित कर पुष्प-मालाओंसे अलंकृत करे। अनन्तर जलधारासे वृक्षोंको सीचे। पाँच ब्राह्मणोंको भोजन कराये।

१-गांवी शब्दे वृष्टीको यज तिष्ठत्यपीतिः। नद्योचर्यांति विश्वाते दते सर्वार्थाशानम् ॥

जिस गोचर-भूमिमें सौ गांवे और एक बैल स्वतन्त्र रूपसे विश्वान करते हों, वह भूमि गोचर्य-भूमि कहलाती है। ऐसी भूमिका दान करनेमें सभी पापोंका नाश होता है। अन्य बृहस्पति, बृद्धार्थीत, शतानप अर्दि स्मृतियोंके मतसे प्रायः ३,००० लाख लंबी-बौद्धी भूमिको मंजा गोचर्य है।

वृक्षोंका कर्णविधि संस्कार करे और संकल्पपूर्वक उनका उत्सर्जन कर दे। मध्य देशमें यूप स्थापित करे और दिशा-विदिशाओं तथा मध्य देशमें कटली-वृक्षका रोपण करे और विधानपूर्वक घोसे होम करे। फिर स्विष्टकृत् हवन कर-

पूर्णाहुति दे। वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्षाल और यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। दक्षिणामें गाय दे। सब कार्य विधानके अनुसार परिपूर्ण कर भगवान् सूर्यको अर्च्य प्रदान करे। (अध्याय २-३)

अश्रुत्य, पुष्करिणी तथा जलाशयके प्रतिष्ठाकी विधि

सुतजी बोले—ब्राह्मणो ! अश्रुत्य-वृक्षकी प्रतिष्ठा करनी हो तो उसकी जड़के पास दो हाथ लम्बी-चौड़ी एक वेदीका निर्माण कर चन्दन आदिसे प्रोक्षित करे। उसपर कमलकी रचना कर अर्च्य प्रदान करे। प्रथम दिनकी रात्रिमें 'तदविष्णोः' (यजु० ६। ५) इस मन्त्रद्वारा कलश-स्थापन कर गम्य, चन्दन, दूर्वा तथा अक्षत समर्पण करे। चन्दन-लिप्त शेत सूत्रोंसे कलशोंको आवेष्टित करे। प्रथम कलशके ऊपर गणेशजीका, दूसरे कलशपर ब्रह्माजीका पूजन करे। दिशाओंमें दिक्षाल और वृक्षके मूलमें नवप्रहोक्ता पूजन-अर्चन करे। वृक्षके मूलमें विष्णु, मध्यमें शंकर तथा आगे ब्रह्माजीकी पूजा कर हवन करे। पिण्डकाश-बलि दे। आचार्यको दक्षिणा देकर वृक्षको जलधारासे सींचे, उसकी प्रदक्षिणा करे और भगवान् सूर्यको अर्च्य निवेदित कर घर आ जाय।

बावली आदिकी प्रतिष्ठामें प्रथम भूतशुद्धि करके सूर्यको अर्च्य प्रदान करे। तदनन्तर गणेश, गुरुपादुका, जय और भद्रका समाहित होकर पूजन करे। मण्डलके मध्यमें आधार-शक्ति, अनन्त तथा कूर्मकी पूजा करे। चन्द्र, सूर्य आदिका भी मण्डलमें पूजन करे। दूसरे पात्रमें पुष्यादि उपचारोंसे भगवान् वरुणका पूजन करे। कमलके पूर्वादि पत्रोंमें इन्द्रादि दिक्षालोंकी, उनके आयुधोंकी तथा मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करे। 'भूर्भुवः स्वः' इन तत्त्वोंकी भी पूजा करे। मण्डलके उत्तर भागमें नागरूप अनन्तकी पूजा करे। इसके बाद हवन करे। प्रथम आहुति वरुणदेवको दे फिर दिक्षालों, नागरूप, शिव, दुर्गा, गणेश, ग्रहों और ब्रह्माको प्रदान करे। स्विष्टकृत् हवन करके बलि प्रदान करे। एक अष्टदल कमलके ऊपर वरुणकी रजत-प्रतिमा स्थापित करे और पुष्करिणी (बावली) की प्रतिमा स्वर्णकी बनाये और उसका पूजनकर जलाशयमें छोड़ दे। जलाशयके मध्यमें नौका आयोपित करे। जलाशयके बीचमें प्रह्लिकृ होम करे। शेषनागकी मूर्ति भी जलाशयमें

छोड़ दे। सम्पूर्ण कार्योंको सम्पन्न कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जलाशयमें मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, शैवाल आदि भी छोड़े। अनन्तर जलाशयकी प्रदक्षिणा करे। लाला और सोपी भी छोड़े। दूधकी शारा भी दे। पुष्करिणीको चारों ओरसे रक्तसूत्रसे आवेष्टित करे। दीनोंको संतुष्ट कर घरमें प्रवेश करे।

ब्राह्मणो ! अब मैं नलिनी (जिस तालाबमें कमल हो), वापी तथा हृद (गहरे जलाशय) की प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि बतला रहा हूँ। इन सबकी प्रतिष्ठा करनेके पहले दिन भगवान् वरुणदेवकी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर 'आपो हि ह्वा' (यजु० ११। ५०) इस मन्त्रसे उसका जलाधिवास करे। अनन्तर एक सौ कमल-पूष्पोंसे प्रतिमाका पुष्पाधिवास करे। तत्प्रकात् मण्डलमें आकर पूर्णमुख बैठे और कलशपर गणेश, वरुण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्यकी पूजा करे। वरुणके लिये घी और पायसकी आहुति दे। अन्य देवताओंको सुवाद्वारा एक-एक आहुति प्रदान कर पायस-बलि दे। फिर नलिनी-वापी आदिका संकल्पपूर्वक उत्सर्जन कर दे। मध्यमें यूपकी स्थापना करे। तदनन्तर गोदान दे और दक्षिणा प्रदान करे। पूर्णाहुतिके अनन्तर भगवान् सूर्यको अर्च्य प्रदान करे और अपने घरमें प्रवेश करे।

द्विजो ! अब मैं वृक्षोंके प्रतिष्ठा-विधानका वर्णन करता हूँ। वृक्षकी स्थापना कर सूत्रोंसे परिवेष्टित करे, फिर उसके पश्चिम भागमें कलश-स्थापना करे। कलशमें ब्रह्मा, सोप, विष्णु और वनस्पतिका पूजन करे। अनन्तर तिल और यवसे आठ-आठ आहुतियाँ दे। कटली-वृक्ष तथा यूपका उत्सर्जन करे, फिर लगाये गये वृक्षके मूलमें धर्म, पृथ्वी, दिशा, दिक्षाल एवं यक्षकी पूजा करे तथा आचार्यको संतुष्ट करे। आचार्यको गोदान दे, दक्षिणा प्रदान करे। वृक्ष-पूजनके बाद भगवान् सूर्यको अर्च्य प्रदान करे। (अध्याय ४—८)

बट, बिल्व तथा पूरीफल आदि वृक्ष-युक्त उद्घानकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! बट-वृक्षकी प्रतिष्ठामें वृक्षके दक्षिण दिशामें उसकी जड़के पास तीन हाथकी एक बेटी बनाये और उसपर तीन कलश स्थापित करे । उन कलशोपर क्रमशः गणेश, शिव तथा विष्णुकी पूजा कर चरुसे होम करे । बट-वृक्षको विशुणित रुक्ष सूत्रोंसे आवेष्टित करे । बिल्में यज्ञ-कीर्ति प्रदान करे और यूपस्थाप्य आरोपित करे । बट-वृक्षके मूलमें यज्ञ, नाग, गन्धर्व, सिद्ध और महद्गणोंकी पूजा करे । इस प्रकार सम्पूर्ण क्रियाएँ विधिके अनुसार पूर्ण करे ।

बिल्ववृक्षकी प्रतिष्ठामें पहले दिन वृक्षका अधिवासन करे । 'च्यव्यक्तं' (यजु० ३। ६०) इस मन्त्रसे वृक्षको पवित्र स्थापित कर 'सुनावमा' (यजु० २१। ७) इस मन्त्रसे गन्धोदक्षाग्र उसे स्नान कराये । 'मे गृह्णामि' इस मन्त्रसे वृक्षपर अक्षत चढ़ाये । 'कथा नक्षित्रं' (यजु० २७। ३९) इस मन्त्रसे धूप, वरुष तथा माला चढ़ाये । तदनन्तर रुद्र, विष्णु, दुर्गा और धनेश्वर—कुवेक्षका पूजन करे । दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शास्त्रानुसार नित्यक्रियासे निवृत होकर घरमें सात ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये । फिर

बिल्के मूलप्रदेशमें दो हाथकी बर्तुलाकार बेदीका निर्माण करे । उसको गेरु तथा सुन्दर पुण्य-चूर्णादिसे रङ्गितकर उसपर आषदल-कमलकी रचना करे । वृक्षको लाल सूत्रसे पाँच, सात या नौ बार बेष्टित करे । वृक्ष-मूलमें उत्तराभिमुख होकर ब्रीहि रोपे तथा शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, शोभ, अनन्त, इन्द्र, बनपाल, सोम, सूर्य तथा पृथ्वी—इनका क्रमशः पूजन करे । तिल और अक्षतासे हृष्ण करे तथा यी एवं भातका नैवेद्य दे । यक्षोंके लिये उड्ड और भातका भोग लगाये । ग्रहोंकी तुष्टिके लिये वासिके पात्रपर नैवेद्य दे । बिल्व-वृक्षको दक्षिण दिशासे दूधकी धारा प्रदान करे । यूपका आरोपण करे, वृक्षका कर्णवेद्य-संस्कार कर और भगवान् सूर्यको आर्य प्रदान करे ।

यदि सौ हाथकी लंबाई-चौड़ाईका उद्घान हो, जिसमें सुपारी या आम्र आदिके फलदायक वृक्ष लगे हों तो ऐसे उद्घानकी प्रतिष्ठामें वास्तुमण्डलकी रचनाकर वास्तु आदि देवताओंका पूजन करके यज्ञ-कर्म करे । विशेषरूपसे विष्णु एवं प्रजापति आदि देवताओंका पूजन करे । हृष्णके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे ।

(अथवा ९—११)

मण्डप, महायूप और पौसले आदिकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—हृदिगणो ! अब मैं यागादिके निर्धित निर्मित होनेवाले मण्डपोंकी प्रतिष्ठा-विधि बतलाता हूँ । वह मण्डप शिलामय हो या काष्ठमय अथवा तृण-पत्रादिसे निर्मित हो । ऐसी स्थितिमें अधिवासनके प्रारम्भमें शुभ-लघ्न-मुहूर्तमें घट-स्थापन करे । उस कलशपर सूर्य, सोम और विष्णुकी अर्चना करे । 'आपो हि द्वा' (यजु० ११। ५०) इस मन्त्रद्वाग्र कुशोदकसे तथा 'आप्यायस्त्' (यजु० १२। १४४) इस मन्त्रद्वाग्र सुगन्ध-जलसे प्रोक्षण करे । 'गन्धद्वाग्र' (श्रीसूक्त ९) इस क्रत्यासे चन्दन, सिन्दूर, आलड़ा और अङ्गन समर्पण करे । फिर दूसरे दिन प्रातः बृद्धि-श्राद्ध करे । शुभ लक्षणवाले मण्डपमें दिक्पालोंकी स्थापना करे । मध्यमें बेटीके ऊपर मण्डल चित्रित करे । उसमें सूर्य, सोम, विष्णुकी तथा कलशपर गणेश, नवग्रह आदिकी पूजा करे । सूर्यके लिये १०८ बार पायस-होम करे । विष्णु और सोमका उद्देश्य कर

बारह आहुतियाँ एवं पायस-बलि दे । वास्तु-देवताका पूजन करे और उनको अर्थी देकर विधिवत् आहुति प्रदान करे, फिर उस मण्डलको संकल्पपूर्वक योग्य ब्राह्मणके लिये समर्पित कर दे । उसे विधिवत् दक्षिणा दे और सूर्यके लिये अर्थ प्रदान करे । तृण-मण्डपमें विशेषरूपसे वासुदेवके साथ भगवान् सूर्यकी पूजा करे । एक घटके ऊपर वरदायक भगवान् गणेशजीकी पूजा कर विसर्जन करे । इशानकेणमें यूप स्थापित कर सभी दिशाओंमें ध्वजा फहराये ।

ब्राह्मणो ! अब मैं चार हाथसे लेकर सोलह हाथके प्रमाणमें निर्मित महायूपकी एवं पौसला तथा कुर्णि आदिकी प्रतिष्ठा-विधि बतला रहा हूँ । इनकी प्रतिष्ठामें गर्ग-त्रिग्रात्र यज्ञ करना चाहिये । पौसलेके पश्चिम भागमें क्षेत्र कुम्भपर भगवान् वरुणको स्थापित कर 'गायत्री' मन्त्र तथा 'आपो हि द्वा' (यजु० ११। ५०) इन मन्त्रोंसे उन्हें स्नान करना चाहिये ।

उसके बाद गच्छ, तेल, पुष्प और धूप आदि से मन्त्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हें वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिये। प्रतिष्ठाके अन्तमें श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन करना चाहिये। आठ हाथका एक मण्डप बनाकर उसमें कलशकी स्थापना करे। उसपर नारायणके साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदिका तत्-तत् मन्त्रोंसे पूजन करे, उसके बाद स्थालीपाक-विधानसे हवनके लिये कुशकण्ठिका करे। भगवान् वरुणका पूजन कर सुवाद्वाय उन्हें 'वरुणस्य' (यजु० ४। ३६) इत्यादि मन्त्रोंसे दस आहुतियाँ प्रदान करे। अन्य देवताओंके लिये क्रमशः एक-एक आहुति

दे। उसके बाद स्विष्टकृत् हवन करे और अग्निकी सप्तजिह्वाओंके नामसे चलका हवन करे। तदनन्तर सभीको नैवेद्य और बलि प्रदान करे। इसके पश्चात् संकल्प-वाक्य पढ़कर कूपका उत्सर्जन कर दे। ब्राह्मणोंके परिस्विनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करे। यदि लोटे कूपकी प्रतिष्ठा करनी हो तो गणेश तथा वरुणदेवताकी कलशके ऊपर विधिवत् पूजा करनी चाहिये। लाल सूत्रसे कलशको वेष्टित करना चाहिये। यूप स्थापित करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक कूपका उत्सर्जन करना चाहिये। ब्राह्मणोंको विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिये। (अध्याय १२-१३)

पुष्पवाटिका तथा तुलसीकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! पुष्पवाटिकाकी प्रतिष्ठामें तीन हाथकी एक वेदीका निर्माण कर उसपर घटकी स्थापना करे। पुष्पाधिवाससे एक दिन पूर्व ब्राह्मण-भोजन कराये। कलशपर गणेश, सूर्य, सोम, अग्निदेव तथा नारायणका आवाहन कर पूजन करे। वेदीपर मधु तथा पायससे हवन करे। ईशानकोणमें विधिवत् यूपका समारोपण कर उसके मूलभूत गुलवारके दिन गेहूँओंका रोपण कर उन्हें सीचे। वाटिकाको रक्त सूत्रसे झड़वेष्टित करे। वाटिकाके पुष्प-वृक्षोंका कर्णवेद कराकर उन्हें कुशोदकसे रुआन कराये और ब्राह्मणोंको धान्य, यज्ञ और गेहूँ दक्षिणारूपमें प्रदान करे और वाटिकाको बलधारासे सीचे।

तुलसीकी प्रतिष्ठा ज्येष्ठ और आषाढ़ मासमें विधिपूर्वक करनी चाहिये। प्रतिष्ठाके लिये शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि होनी चाहिये। रात्रिमें घटकी स्थापना कर विष्णु, शिव, सोम, ब्रह्मा तथा इन्द्रका पूजन करे। गायत्री-मन्त्र तथा पूर्वोक्त देवताओंके मन्त्रोद्घारा उन्हें रुआन कराये। 'कव्या नदिष्ट्रा' (यजु० २७। ३९) इस मन्त्रसे गच्छ, 'अ॒शुना॑' (यजु० २०। २७) इस मन्त्रसे इत्र, 'त्वा॑ गन्धवा॑' (यजु० १२। ९८) तथा 'मा॑ नस्तोके॑' (यजु० १६। १६) आदि मन्त्रोंसे पुष्प, 'श्रीशु ते॑' (यजु० ३१। २२) तथा 'वैशुदेवी॑' (यजु० १९। ४८) इन मन्त्रोंसे दुर्वा, 'रुपेण वो॑' (यजु० ७। ४५) इस मन्त्रसे दर्पण और 'या॑ फलिनीर्या॑' (यजु० १२। ८९) इस मन्त्रसे फल अर्पण करे तथा 'समिन्द्रो॑'

(यजु० २९। १) इस मन्त्रसे अङ्गन लगाये। तुलसीको पीले सूत्रसे आवेष्टित कर उसके चारों ओर दूध और जलकी धारा दे। कलश तथा तुलसीको वस्त्रसे भलीभांति आच्छादित कर घर आ जाय। दूसरे दिन 'तद्विष्णोः०' (यजु० ६। ५) इस मन्त्रसे सुहागिनी खियोद्धारा मङ्गल-गानपूर्वक उसे स्थान कराये। मातृ-पूजापूर्वक वृद्धि-श्राद्ध करे। गच्छ आदि पदार्थोद्धारा आचार्य, होता और ब्रह्मा आदिका वरण करे। दस हाथके मण्डपमें गोलाकार वेदीका निर्माण करे और वहाँ भगवान् नारायणका पूजन करे। वेदीके मध्य ग्रह, लोकपाल, सूर्य और मरुदग्धोंकी पूजा करे। कलशके चारों ओर रुद्र और वसुओंका पूजन करे। कुश-कण्ठिका करके, तिल-ववसे हवन करे। विष्णुको उद्दिष्ट कर १०८ आहुतियाँ दे। अन्य देवताओंको यथाशक्ति आहुति प्रदान करे। यूप स्थापित कर चरुकी बलि दे। चतुर्दिंक कदली-स्तम्भ स्थापित कर भजाएं फहराये। दक्षिणामें स्वर्ण, तिल-धान्य एवं परिस्विनी गाय प्रदान करे। तुलसीको कीरधारा दे।

कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं, जिनकी प्रतिष्ठा नहीं होती। जैसे—जयन्ती, सोमवृक्ष, सोमवट, फनस (कटहल), कदम्ब, निम्ब, कनकपाटला, शाल्मलि, निम्बक, विष्व, अशोक आदि। इनके अतिरिक्त भट्टक, शमीकोण, चंडालक, बक तथा स्वदिर आदि वृक्षोंकी प्रतिष्ठा तो करनी चाहिये, किन्तु इनका कर्णवेद-संस्कार नहीं करना चाहिये।

एकाह-प्रतिष्ठा तथा काली आदि देवियोंकी प्रतिष्ठा-विधि

सूतजीने कहा—ब्राह्मणो ! कलियुगमें अत्यन्त सामर्थ्यवान् व्यक्ति देवता आदिकी प्रतिष्ठा एक दिनमें भी कर सकता है । जिस दिन प्रतिष्ठा करनी हो उसी दिन विद्वान् ब्राह्मण घृताधिवास कराये । जब सूर्य भगवान् उत्तरायणके हों, तब प्रतिष्ठादि कार्य करने चाहिये । शशत्काल व्यतीत हो जानेपर वसन्त ऋतुमें यज्ञका आरप्त करना चाहिये । नारायण आदि मूर्तियोंके बत्तीस घेट हैं । गजानन आदि देवताओंकी प्रतिष्ठा विहित कालमें ही करनी चाहिये । बुद्धिमान् मनुष्य नित्य-क्रियासे निवृत्त होकर आभ्युदयिक कर्म करे । अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये । फिर यज्ञ-गृहमें प्रवेश करे । वहाँ प्रत्येक कुम्भके ऊपर भगवान् गणेश, नवग्रह तथा दिव्यपालोंका विधिवत् पूजन करे । वेदीपर भगवान् विष्णु और उनके परिवारका पूजन करे । सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको विभिन्न तीर्थ, समुद्र, नदियों आदिके जल, पञ्चामृत, पञ्चगव्य, सप्त-मूर्तिकामिश्रित जल, तिलके तेल, कथाय-द्रव्य और पुष्पोदकमें खान कराये । तुलसी, आम्र, शामी, कमल तथा करबीरके पत्र-पुष्पोंसे उनकी पूजा करे । इसके बाद मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा सम्पन्न करे । तत्पश्चात् विधिपूर्वक हवन करे । ब्राह्मणोंको दक्षिणांद्राश संतुष्टकर पूर्णहुति प्रदान करे ।

ब्राह्मणो ! अब मैं कहली आदि महाशक्तियोंकी प्रतिष्ठा एवं अधिवासनकी संक्षिप्त विधि बतलाए रहा हूँ । प्रतिष्ठाके पूर्व दिन देवीकी प्रतिमाका अधिवासन कर आभ्युदयिक शाद करे । सर्वप्रथम भगवतीकी प्रतिमाको कमलयुक्त जलसे, फिर

पञ्चगव्यसे स्नान कराये । कुम्भके ऊपर भगवती दुर्गाकी अर्चना करे । तदनन्तर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा करे । विष्व-पत्र और विष्व-फलोंसे सौ आहुतियाँ दे । दक्षिणामें सुवर्ण प्रदान करे । भगवती कालिका और तारकी प्रतिमाओंका अलग-अलग अर्चन करे । भगवतीको नामा प्रकारके सुगच्छित द्रव्योंसे तीन दिनतक स्नान कराये और नैतेव अर्पण करे । तारिके कलशपर सीन दिनतक प्रातःकालमें देवीकी अर्चना करे फिर कन्याओंद्वारा सुगच्छित जलसे भगवतीको स्नान कराये । आठवें दिन भी रात्रिमें विशेष पूजन करे एवं पायस-होम करे ।

आगमोंके अनुसार शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठामें तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराये और विशेषरूपसे भगवान् की प्रतिमाका अधिवासन करे । नित्य-क्रिया करके आभ्युदयिक शाद करे । दूसरे दिन प्रातः आचार्यका वरण करे । विधिके अनुसार प्रतिमाको स्नान कराकर शिवलिङ्गका परिवारके साथ पूजन करे । विधिपूर्वक तिलमयी या स्वर्णमयी अथवा साक्षात् गौका दान करे । हवनकी समाप्तिपर शुद्ध शूतसे वसुभारा प्रदान करे । इसी तरह सूर्य, गणेश, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा वाराही एवं त्रिपुणीदेवी और भुवनेश्वरी, महामाया, आम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राक्षी तथा अपराजिता आदि महाशक्तियोंकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा भी विधिपूर्वक करनी चाहिये और रात्रि-जागरण कर महान् उत्तरव करना चाहिये । देवीकी प्रतिष्ठामें कुमारी-पूजन भी करना चाहिये ।

(अध्याय १८-१९)

दिव्य, भौम एवं अन्तरिक्षजन्य उत्पात तथा उनकी शान्तिके उपाय *

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो ! अब मैं विविध प्रकारके अपशकुनों, उत्पातों एवं उनके फलोंका वर्णन कर रहा हूँ । आपलोग सावधान होकर सुनें । जिस व्यक्तिकी लग्न-कुण्डली अथवा गोचरमें पाप-प्रहोका योग हो तो उसकी शान्ति करनी चाहिये । दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम—ये तीन प्रकारके उत्पात होते हैं । यह, नक्षत्र आदिसे जो अनिष्टकी आशंका होती है वह दिव्य उत्पात कहलाता है । उल्कापात, दिशाओंका दाह

(मण्डलोंका उदय, सूर्य-चन्द्रके इर्द-गिर्द पड़नेवाले धेरोंका दिखायी देना), आकाशमें गवर्बनगरका दर्शन, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि अन्तरिक्षजन्य उत्पात हैं । जलाशयों, वृक्षों, पर्वतों तथा पृथग्योंसे प्रकट होनेवाले भूकृष्ण आदि उत्पात भौम उत्पात कहलाते हैं । अन्तरिक्ष एवं दिव्य उत्पातोंका प्रभाव एक सामान्यक रहता है । इसकी शान्तिके लिये तत्काल उपाय करना चाहिये अन्यथा वे बहुत कालतक

* इन उत्पातोंका तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान आधर्वण शान्तिकरण एवं अथर्वविशिष्टादिमें दिया गया है । महसुपुराणके २२८ से २३८ तकके आध्यायोंमें भी यह विषय विवेचित है ।

प्रभावी रहते हैं। देवताओंका हैसना, रुधिर-साथ होना, अकस्मात् बिजली एवं बद्रका गिरना, हिंसा और निर्दयताका बढ़ना, सर्पोंका आरोहण करना—ये सब दैव दुर्मिल हैं। मेघसे उत्पन्न वृष्टि केवल शिलातलपर ही गिरे तो एक सप्ताहके अंदर उत्पन्न प्राणी नष्ट हो जाते हैं। एक राशिपर शनि, मंगल और सूर्य—ये पापग्रह स्थित हो जायें और पृथ्वी अकस्मात् भूमिसे ढकी दीखे तो भारी जनसंहारकी सम्भावना होती है। यदि वृहस्पति अपनी राशिका अतिचार^१ करे और शनि वहाँ स्थित न हो तो राज्य-नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। यदि सूर्य कुछ समयतक न दिखायी दे और दिशाओंमें दाह होने लगे, धूमकेतु दिखायी दे और बार-बार भूकम्प होता हो तथा गजाके जन्म-दिनमें इन्द्रघनुष दिखायी पड़े तो वह उसके लिये भारी दुर्मिल है। भयंकर औंधी-तूफान आ जाय, प्रहोंका आपसमें युद्ध दिखलायी दे, तीन महीनेमें ही दूसरा ग्रहण लग जाय अथवा उल्कापात हो, आकाश और भूमिपर मेड़क दौड़ने लगे, हल्दीके समान पीली वृष्टि हो, पत्थरोंमें सिंह और बिल्लीकी आकृति दिखलायी पड़े तो गहूमें दुर्धिक्ष और गजाका विनाश होता है। चैत्रमें अथवा कुम्भके सूर्यमें (फाल्गुन मासमें) नदीका वेग अकस्मात् बहुत बढ़ जाय तो गहूमें विफल होता है। ये सब सूर्यजन्य अनन्त उत्पात हैं। हवन आदिद्वारा इनकी शान्ति करनी चाहिये। 'आ कुर्षोन'^२ (यजु० ३३। ४३) इस सूर्यमन्त्रद्वारा हवन करना चाहिये। धान्यादिका निस्सार हो जाना, गौओंका निस्सेज हो जाना, कुओंका जल सहसा सूख जाना—ये सब भी सूर्यजनित उत्पात हैं, इनकी शान्तिके लिये कमल-पुष्पोंसे एक सहस्र आहुतियाँ देनी चाहिये। विकृत पक्षी, पांडुवर्ण कपोत, शेष उल्लू, काला कैआ और कराकुल पक्षी यदि घरमें गिरे तो उस घरमें महान् उत्पात मच जाता है। गलेकी मालाएँ आपसमें टकराने लगे, सदा उत्पन्न बालकों दाँत हो, देवताओंकी मूर्तियाँ हँसती हों, मूर्तियोंमें पसीना दीख पड़े और घड़ोंमें अथवा घरमें सर्प और मण्डूकवृश्च प्रसव हो जाय तो उस घरकी गृहिणी छः मासके अंदर नष्ट हो जाती है। घरपर या वृक्षपर बिजली कड़कड़ाकर गिरे और आगकी ज्वालपरै दिखायी देनेपर महान् उत्पात होता है। इन सबकी शान्तिके

लिये रविवारके दिन भगवान् सूर्यकी प्रसन्नता-हेतु उनकी पूजा करे। तिल एवं पायसकी दस हजार आहुतियाँ प्रदान करे। गो-दान करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। इससे शोष शान्ति होती है। अचानक ध्वज, चामर, छत्र तथा सिंहासनसे विभूषित रथपर गजाका दिखलायी देना तथा खो-पुरुषोंकी लडाई ये भी महान् उत्पात है। पृथ्वीका कौपना, पहाड़ोंका टकराना, कोयल और उल्लूकब रोना आदि सुनायी पड़े तो राजा, मन्त्री, राजपुत्र, हाथी आदि विनष्ट होते हैं।

ताड़ एवं सुपारीके वृक्ष एक साथ उत्पन्न हो जायें तो उस घरमें रहनेवालोंपर विपत्तिकी सम्भावना होती है। दूसरे वृक्षोंमें अन्य वृक्षोंके फूल-फल लगे हुए दीखे तो ये सोमग्रहजन्य उत्पात हैं। इसकी शान्तिके लिये सोमवारके दिन सोमके निमित्त दधि, मधु, घृत तथा पलाश आदिसे 'इष्व वेष्टा'^३ (यजु० ९। ४०) इस मन्त्रसे एक हजार आहुतियाँ दे और चहरे भी हवन करे।

उड़द और जौकी द्वेरियाँ सहसा लुप्त हो जायें, दही, दूध, बी और पक्षाओंमें रुधिर दिखलायी पड़े, एकाएक घरमें आग-जैसा लगना दिखायी दे, बिना बादलके ही बिजली चमकने लगे, घरके सभी पशु तथा मनुष्य रुण-से दिखायी पड़े, तो मङ्गल ग्रहसे उत्पन्न उत्पात समझने चाहिये। इससे राजा, अमात्य तथा घरके स्वामियोंका विनाश होता है। ऐसे भयंकर उपद्रवोंको देखकर मङ्गलकी शान्तिके लिये दही, मधु, बीसे युक्त खैर और गूलप्रकी समिधासे 'अग्रिमूर्धा'^४ (यजु० ३। १२) इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। तीन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणामें लाल वस्तुएँ देनी चाहिये तथा सोने या तांबिकी मङ्गलकी प्रतिमा बनाकर दानमें देनी चाहिये। इससे शान्ति होती है।

गौऐं यदि घरमें पैंछु उठाकर स्वयं दौड़ने लगे और कुते तथा सूअर घरपर चढ़ने लगे तो उस घरकी स्त्रियोंके भीषण क्लेशकी आशंका होती है। गृहस्वामीका पूर्णतः मिथ्यावादी होना तथा गजाका बाद-विवादमें फैसना, घरमें गौओंका चिल्लना, पृथ्वीका हिलना, घरमें मेड़क तथा सौंपका जन्म लेना—ये सभी उत्पात बुधग्रहजन्य हैं। इसमें राज्य तथा घरके नष्ट होनेकी सम्भावना होती है। इन उत्पातोंकी शान्तिके

लिये बुधवारके दिन बुध ग्रहके उद्देश्यसे दही, मधु, घी तथा अपामार्गकी समिधा एवं चरुसे 'बृहस्पत्यस्त्र' (यजु० १५। ५४) इस मन्त्रद्वारा दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये । बुधकी सुवर्णकी प्रतिमा तथा पयस्तिनी गाय ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये ।

पशुओंका असमयमें समागम और उनसे यमल संतातियोंकी उत्पत्ति, जौ, ब्रह्म आदिका सहसा लुग हो जाना, गृहस्थाम्भका सहसा टूटना, आँगनमें बिल्ली तथा मेढ़कका नस्सोंसे जमीन कुरेदना और इनका भरपर चढ़ना, ये सभी दोष जहाँ दिखायी दें, वहाँ छः महीनेके भीतर ही घरका विनाश होता है—कोई प्राणी मर जाता है या कुन्तुम्भमें कलह होता है तथा अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं । बिल्व-बृक्षपर गृध और गृधीका एक साथ दिखलायी देना राजाके लिये विभ्रमकारक तथा प्रासादके लिये हानिकारक होता है । इस दोषसे अमात्यवर्ग राजाके विपरीत हो जाता है । ये सभी बृहस्पतिजनित दोष हैं । इनकी शान्तिके लिये बृहस्पतिके निमित्त शान्ति-होम करना चाहिये तथा पयस्तिनी गाय एवं स्वर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमाका दान करना चाहिये ।

राक्षसद्वारा घड़ेका जल पीनेका आभास होना; सिंह, शर्करा, तेल, चाँदी, ताप्डवनृत्य, उड़द-भात, धान्य आदिका आभास होना; घरमें तौबा, कर्मा, लोह, सीसा तथा पीतल आदिका रखा दिखलायी देनेका आभास होना; ऐसे उत्पत्तपर धनके नाश होनेकी सम्भावना रहती है और अनेक व्याधियाँ होती हैं, राजा भर्यकर उपद्रव तथा बन्धनमें पड़ जाता है । गौ, अश तथा सेवकोंका विनाश होता है । दन्तपत्तिको छोड़कर दाँतोंके ऊपर दाँतोंका निकलना, शलाकाके समान दौत निकलना—ये भी दोषकारक हैं । बर्तनोंमें, घड़ोंमें यदि बादलके गरजनेकी आवाज मुनायी दे तो गृहस्वामीपर विपत्तिकी सम्भावना होती है—ये शुक्रवारके दिन दही, मधु, शुतयुक्त शमीपत्रसे हवन करे तथा दो सफेद वस्त्र, पयस्तिनी छेत गौ, और सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमाका दान करना चाहिये ।

मन्दिरकी जमीन यदि रक्त वर्णकी अथवा पुण्यिता दिखलायी दे तो वहाँ भी उत्पातकी सम्भावना होती है । आकाशमें जलती हुई आग दिखलायी दे तो खी-पुरुषोंकी हानि

और राष्ट्रमें विष्वककी सम्भावना होती है । सभी ओषधियाँ और सस्य रसविहीन हो जायें; हाथी, घोड़े, मतवाले होकर हिंसक हो जायें; राजाके लिये नगर तथा गाँवमें सभी जन्म हो जायें; गौ, माहिं आदि पशु अनावास उत्पात मचाने लगें, घरके दरवाजेमें गोह और शखिनी प्रवेश करे तो अशुभ समझना चाहिये; इससे राज-पीड़ा और धन-हानि होती है । ये सभी उत्पात शनिप्रहजनित समझने चाहिये । इनकी शान्तिके लिये विविध सस्यों तथा समिधाओंसे शनिवारके दिन 'झं जो देवी' (यजु० ३६। १२)। इस मन्त्रसे दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और चरुसे भी हवन करना चाहिये । नीली सवत्सा पयस्तिनी गाय, दो वस्त्र, सोना, चाँदी, शनिकी प्रतिमा आदि दक्षिणामें ब्राह्मणको देनी चाहिये ।

बादलके गरजे बिना लाल-पीली शिलावृष्टिका दिखलायी देना, बिना हवाके वृक्षका हिलना-डुलना दिखलायी देना, इन्द्रध्वज तथा इन्द्रधनुषका गिरना, दिनमें सियारोशक तथा रात्रिमें उलूकका रोना, एक बैलका दूसरे बैलके कलन्दपर मैंह रखकर रैभाना, ऐसे दोष होनेपर देशमें पापकी वृद्धि होती है तथा राजा राज्य एवं धर्मसे चुत हो जाता है । गौ और ब्राह्मणमें परस्पर दून्दू मच जाता है, बाहन नष्ट हो जाते हैं । यदि आकाशमें ध्वजकी छाया दिखलायी पड़े तो गृष्ठमें महान् विष्वव होता है । यदि जलमें जलती हुई आग दिखलायी दे और सिर अथवा शरीरपर विजलती गिर जाय तो उसका जीवन दुर्लभ हो जाता है । दरवाजोंके किनारोंपर अथवा स्ताप्तपर अग्नि अथवा धूम दिखलायी दे तो मृत्युका धय होता है । आकाशमें वज्राधात, अग्निकी ज्वालाके मध्य धुआँ, नगरके मध्य किसी अनहोनी घटनाका दिखलायी देना, शय ले जाते समय उस शवका उठकर बैठ जाना; स्थापित लिङ्गका गमन करना; भूकृष्ण, आँधी-तूफान, उल्कापाता होना; बिना समय बूँदोंमें फल-फूल लगना—ये सभी उत्पात राहुजन्य हैं । इनकी शान्तिके लिये दही, मधु, घी, दूब, अक्षत आदिसे 'कथा नक्षित्र' (यजु० २७। ३९)। इस मन्त्रद्वारा रविवारके दिन दस हजार आहुतियाँ राहुके लिये दे, चरुसे भी हवन करे । पयस्तिनी कपिला गौ, अतसी, तिल, शंख और युग्मवस्त्र ब्राह्मणको दानमें दे । ब्राह्मणहोम भी करे । इससे सारे दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं ।

यदि जम्बूक, गृध्र, कर्ण आदि भीषण ध्वनि करते हों तथा भर्वेकर नुत्रय करते हों तो मृत्युकी आशंका होती है, जलती हुई आगके समान धूमकेनुक दिखलायी पड़ता, जमीनका लिसकान मालूम होना—ऐसी स्थितिमें राजा पीड़ित होता है, यद्यमें अकाल पड़ता है तथा अनेक प्रकारके अनिष्ट होते हैं। इनकी शान्तिके लिये स्वर्णछत्रयुक सात घोड़ोंसे युक्त सूर्यमण्डप बनाकर ब्राह्मणोंको दान करे। विश्वपत्र भी दे, ऐन्द्र मन्त्रसे हृष्ण करे। यदि अकस्मात् शाल, ताल, अक्ष, लट्ठि, कमल आदि घरके अंदर ही उत्पन्न हों तो ये सभी केतुप्रहजन्य दोष हैं। इनकी शान्तिके लिये 'ब्यांकं' (यजु. ३। ६०) इस मन्त्रसे दाही, मधु, पृतसे दस हजार आहुतियाँ दे तथा चन भी प्रदान करे। नीली सखलसा पर्यस्तिनी गाय, वर्ष, केनुकी प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंको दान करे।

दक्षिण दिशामें अपनी छाया अपने पैरके एकदम समीप आ जाय और छायामें दो या पाँच सिर दिखलायी दे अथवा छिप-भिप रूपमें सिर दिखलायी दे तो देखनेवालेकी साक्षात्के भीतर ही मृत्युकी आशंका होती है। कौआ, विल्ली, तोता

तथा कलोत्तमा मैथुन दिखलायी दे तो ये दुर्मित गहुजन्य उत्पात हैं। इनकी शान्तिके लिये शनिवारके दिन शनिके निमित दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये। अर्क-पुम्पसे शनिकी पूजा करे तथा चहसे सौ बार आहुति दे। बाप और दक्षिणके क्रमसे यदि बाहु, पैर तथा आंखमें स्फन्दन हो तो इससे मृत्युका भय होता है। यह सोमप्रहजनित दुर्मित है। पुस्तक, यजोपवीत, चह तथा इन्द्र-ध्वजमें आग लग जाय तो यह सूर्यजन्य दुर्मित है। इनकी शान्तिके लिये सूर्यके निमित त्रिमधुयुक्त कनेके पुण्योंसे आहुतियाँ देनी चाहिये। जिन प्रहोका दुर्मित दिखलायी दे, उसकी शान्तिके लिये प्रहो तथा उसके अधिदेवता और प्रत्यधिदेवताके निमित भी विशिष्टपूर्वक पूजन-हृष्ण-सत्त्वन, दान आदि करना चाहिये। विधिके अनुसार क्रिया न करनेसे दोष होता है। अतः ये सभी शान्त्यादि-कर्म शास्त्रोंके विधानके अनुसार ही करने चाहिये। इससे शान्ति प्राप्त होती है और सर्वविध कल्पना-महाल होता है।

(अध्याय २०)

॥ मध्यमपर्व, तृतीय भाग सम्पूर्ण ॥

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत मध्यमपर्व सम्पूर्ण ॥



प्रतिसर्गपर्व (प्रथम खण्ड)

{ यास्तवमें भविष्यपुराणके भविष्य नामकी सार्थकता प्रतिसर्गपर्वमें ही चरितार्थ हुई दीखती है। वंशानुकीर्तन सभी पुराणोंका मुख्य लक्षण है—‘वंशानुकीर्तने लेति पुराणं पञ्चस्तक्षणम्।’ यह विषय सभी पुराणोंमें प्राप्त होता है। भविष्यपुराणमें तो कई स्थानोंपर आया है, पर प्रतिसर्गपर्वने आधुनिक इतिहासका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। अरबी-फारसी और उर्दूमें इतिहासको तथारीख (तारीख) कहते हैं। सभी घटनाओंका उल्लेख तारीख (तिथि, वर्ष) क्रमपूर्वक हुआ है। अंग्रेजीमें भी इतिहासका सही नाम ‘क्रानिकिल्स’ है। भारतीय दृष्टिमें कठलका प्रवाह अनन्त है। एक सृष्टिके बाद दूसरी सृष्टिमें कल्प-महाकल्प लगे हुए हैं—जैसे—‘इहीं ब्रह्म मोहि सुनु खग ईसा / बीते कल्प सात अक बीसा ॥’ इसलिये किसी एक कल्पका ही वर्णन एक पुराणमें सम्भव होता है। प्रतिसर्गपर्व अपनेको वाराह-कल्पमें वैवस्तत मन्वन्तरका ही इतिहास-निर्देशक कहता रहा है और बड़ी सावधानीसे सत्ययुग, ब्रेतायुग आदिके दीर्घायु राजाओंके राज्य आदिका उल्लेख कर रहा है। आदमें कलियुगी राजाओंके वंशका भी वर्णन करता है। प्रसुत विवरणमें नामोंकी विशेष शुद्धिके लिये वाल्मीकीय रामायण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, श्रीमद्भागवतके साथ अन्य ग्रन्थों एवं ऐतिहासिक पौराणिक कोषोंसे भी सहायता ली गयी है।—सम्पादक]

सत्ययुगके राजवंशाका वर्णन

वारायणं नमस्त्वय नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

‘भगवान् नर-नाशयणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके ससा नरक्षेष्ठ अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले येदव्यासको नमस्कर कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यवदिष्ट प्रन्थोंका वाचन करना चाहिये।’

महामुनि आचार्य शौनकजीने पूछा—मुने ! ब्रह्माकी आयुके उत्तरार्थमें भविष्य नामके महाकल्पमें प्रथम वर्षके तीसरे दिन वैवस्तत नामक मन्वन्तरके अष्टाईसवें सत्ययुगमें कौन-कौन राजा हुए ? आप उनके चरित्र तथा राज्यकालका वर्णन करें।

सूतजी बोले—क्षेत्रवाराहकल्पमें ब्रह्माके वर्षके तीसरे दिन सातवें मुहूर्तके प्रारम्भ होनेपर महाराज वैवस्तत मनु उत्पन्न हुए। उन्होंने सरयू नदीके तटपर दिव्य सौ वर्षोंतक तपस्या की और उनकी छोंकसे उनके पुत्रकल्पमें राजा इक्ष्वाकुन्ना जन्म हुआ।

ब्रह्माके बरदानसे उन्होंने दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति की। राजा इक्ष्वाकु भगवान् विष्णुके परम भक्त थे। उन्होंकी कृपासे उन्होंने चौतीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र विकुञ्जित हुए, अपने पिता इक्ष्वाकुसे सौ वर्ष कम अर्धात् पैतीस हजार नीं सौ वर्षोंतक राज्य करके वे स्वर्ग पथार गये। उनके पुत्र रिपुञ्जय हुए और उन्होंने भी पिता विकुञ्जितसे सौ वर्ष कम अर्धात् पैतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र ककुत्स्य हुए। उन्होंने पैतीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अनेना हुए, उन्होंने पैतीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। अनेनाके पुत्र पृथु नामसे विलयात हुए। उन्होंने पैतीस हजार पाँच सौ वर्षोंतक राज्य किया और उनके पुत्र विष्वग्रश्च हुए, उन्होंने पैतीस हजार चार सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र अदि हुए, उन्होंने पैतीस हजार तीन सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र भद्राश्च हुए, जिन्होंने पैतीस हजार दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। राजा भद्राश्चके पुत्र युवनाश्च हुए, उन्होंने पैतीस हजार एक सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र श्रावस्त हुए। (इन्होंने श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी।) उस समय सत्ययुगमें समग्र भारतवर्षमें धर्म अपने तप,

हीय, दया तथा सत्य चारों चरणोंसे^१ विद्यमान था। इन सभी इक्ष्याकुर्यादी राजाओंने उद्याचलसे अस्ताचलपर्वत समूर्ध पृथ्वीपर नीति एवं धर्मपूर्वक राज्य किया। महाराज श्रवणसे पैतीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र वृहदेश हुए, उन्होंने चौतीस हजार नी सौ वर्षोंतक गुरु राज्य किया। उनके पुत्र कुवलयाश्व हुए, उन्होंने चौतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया।

महाराज कुवलयाश्वके पुत्र द्रुदाश हुए, उन्होंने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तैतीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र निकुम्भक हुए, उन्होंने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् बत्तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र संकटाश्व हुए, उन्होंने एक हजार वर्ष कम अर्थात् इक्तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र प्रसेनजित् हुए, उन्होंने तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद रत्नाश्व हुए, उन्होंने उन्तीस हजार आठ सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र मान्धाता हुए, उन्होंने अपने पितासे एक सौ वर्ष कम अर्थात् उन्तीस हजार सात सौ वर्षोंतक राज्य किया। महाराज मान्धाताके पुत्र पुष्कुलस हुए, उन्होंने उन्तीस हजार छः सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र विशदेश हुए, उनके रथमें तीस ब्रेष्ट घोड़े जुते रहते थे, इसीलिये वे विशदेशके नामसे विलक्षण हुए। राजा विशदेशके पुत्र अनरण्य हुए, उन्होंने अद्वैतीस हजार वर्षोंतक शासन किया। महाराज अनरण्यके पुत्र पृष्ठदेश हुए, वे छः हजार वर्षोंतक राज्य करके अन्तमें पितॄलोकव्यों चले गये। अनन्तर हर्यक्षनामके राजा हुए, उन्होंने राजा पृष्ठदेशसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र वसुमान् हुए, उन्होंने उनसे एक हजार वर्ष कम अर्थात् चार हजार वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर उनको विधनना नामका पुत्र हुआ, उसने अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् तीन हजार वर्षोंतक राज्य किया। तबतक भारतमें सत्य-युगका द्वितीय पाद समाप्त हो गया।

महाराज विधननाके पुत्र प्रथमाशुणि हुए, वे अपने पितासे एक हजार वर्ष कम अर्थात् दो हजार वर्षोंतक राज्य करके

सर्वी चले गये। उनके पुत्र विशंकु हुए, और उन्होंने मात्र एक हजार वर्ष राज्य किया। उनके बारण राजा विशंकु हीनताके प्राप्त हुए। उनके पुत्र हरिकन्द्र हुए, उन्होंने बीस हजार वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रोहित हुए, उन्होंने पिताके समान ही राज्य किया। उनके पुत्र कांक्षिका नाम हारीत था। राजा हारीतने भी पिताके समान ही दीर्घकालतक राज्य किया। उनके पुत्र चंचुभूप हुए। पिताके तुल्य वर्षोंतक उन्होंने राज्य किया। उनके पुत्र विजय हुए। इन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र रुक्मि हुए, उन्होंने भी पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। ये सभी राजा विष्णुभक्त थे एवं इनकी सेवा बहुत विशाल थी। उनके राज्यमें मणि-स्वर्णकी समृद्धि तथा प्रचुर धन-सम्पत्ति सभीको सुलभ थी। उस समय सत्ययुगका पूर्ण धर्म विद्यमान था।

सत्ययुगके तृतीय चरणके मध्यमे राजा रुक्मिके पुत्र महाराज सागर हुए। वे शिवभक्त तथा सदाचार-सम्पन्न थे। उनके (एक रानीसे उत्पन्न साठ हजार) पुत्र सागर नामसे प्रसिद्ध हुए। मुनियोंने तीस हजार वर्षोंतक उनका राज्य-क्षमता माना है। (कपिल मुनिके शापसे) सागर-पुत्र नहीं हो गये। दूसरी रानीसे असमंजस नामका एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र अंशुमान् हुए। उनके दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुए, जिनके द्वारा पृथ्वीपर लायी गयी गङ्गा भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। भागीरथके पुत्र क्षुतसेन हुए। महाराज सागरसे क्षुतसेनतक सभी राजा शैव थे। क्षुतसेनके पुत्र नाभाग तथा नाभागके पुत्र राजा अम्बरीष अल्पन्त प्रसिद्ध विष्णुभक्त हुए, जिनकी रक्षामें सुदर्शनचक्र रात-दिन निषुक्त रहता था। तबतक भारतमें सत्ययुगका तीसरा चरण समाप्त हो चुका था।

सत्ययुगके चतुर्थ चरणमें महाराज अम्बरीषके पुत्र विष्णुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुताश्व, अयुताश्वके पुत्र ऋतुपर्ण, उनके पुत्र सर्वकर्म तथा उनके पुत्र कल्मापदाद हुए। कल्मापदादके पुत्र सुदासको वसिष्ठजीके आशीर्वादसे मद्यनीसे उत्पन्न अश्मक (सौदास) नामका पुत्र प्राप्त हुआ। सौदासतके ये सात राजा वैष्णव कहे गये हैं। गुरुके शापसे सौदासने अङ्गोंसहित अपना समूर्ध राज्य गुरुको समर्पित कर

दिया । गोकर्ण लिङ्ग-भक्त शैव कहा जाता है । राजा अश्मकके पुत्र हरिवर्मा साथुओंके पूजक थे । उनके पुत्र दशरथ (प्रथम) हुए, उनके पुत्र दिलीप (प्रथम) हुए, उनके पुत्र विश्वासह हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया । उनके अधर्म-आचरणके कारण उस समय सौ वर्षोंतक भयंकर अनावृष्टि हुई, जिससे उनका राज्य विनष्ट हो गया और रानीके आग्रह करनेपर महर्षि वसिष्ठने यत्कर यज्ञके द्वारा खड़ाहु नामक पुत्र उत्पन्न किया । राजा खड़ाहुने शास्त्र धारण कर इन्द्रजी सहायतासे तीस हजार वर्षोंतक राज्य किया । तदनन्तर देवताओंसे वर प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की । उनके पुत्र दीर्घवाहु हुए, उन्होंने खीस हजार वर्षोंतक राज्य किया । उनके पुत्र सुदर्शन हुए । महामनीवी सुदर्शनने राजा काशीराजकी पुत्रीसे विवाह कर देवीके प्रसादसे राजाओंको जीतकर धर्मपूर्वक सम्पूर्ण भरतस्थलपर पाँच हजार वर्षोंतक राज्य किया ।

एक दिन स्वप्नमें महाकालीने राजा सुदर्शनसे कहा—
 'वस्त ! तुम अपनी पत्नीके साथ तथा महर्षि वसिष्ठ आदिसे समन्वित होकर हिमालयपर जाकर निवास करो; क्योंकि शीघ्र ही भीपण इंद्रावातके प्रभावसे भरतस्थलका प्रायः क्षय हो जायगा । पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओंके अनेक उपर्योग इंद्रावातोंके कारण समुद्रके गर्तमें विलीन-से हो गये हैं । भारतवर्षमें भी आजके साथवे दिन भीषण इंद्रावात आयेगा ।' स्वप्नमें भगवतीद्वारा प्रलयका निर्देश पाकर महाराज सुदर्शन प्रधान राजाओं, वैश्यों तथा ब्राह्मणों और अपने परिकरोंके साथ हिमालयपर चले गये और भारतवर्ष बड़ा-सा भूभाग समुद्री-तूफान आदिके प्रभावसे नष्ट हो गया । सम्पूर्ण प्राणी विनष्ट हो गये और सारी पृथ्वी जलमप्र हो गयी । पुनः कुछ समयके अनन्तर भूमि स्थलरूपमें दिखलायी देने लगी ।

(अध्याय १)

—अन्तः—

त्रेतायुगके सूर्य एवं चन्द्र-राजवंशोंका वर्णन

सूतजी बोले—महामुने ! वैशाख मासके शुक्र पक्षकी तृतीय तिथिमें वृहस्पतिवारके दिन महाराज सुदर्शन अपने परिकरोंके साथ हिमालयस्थितसे पुनः अयोध्या लैट आये । मायादेवीके प्रभावसे अयोध्यापुरी पुनः विविध अब्र-धनसे परिपूर्ण एवं समृद्धिदस्यप्र हो गयी । महाराज सुदर्शनने^१ दस हजार वर्षोंतक राज्यकर नित्यलोकको प्राप्त किया । उनके पुत्र दिलीप (द्वितीय) हुए, उन्हें नन्दिनी गौके वरदानसे श्रेष्ठ रथु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजा दिलीपने दस हजार वर्षोंतक भलीभांति राज्य किया । दिलीपके बाद पिताके ही समान महाराज रथुने भी राज्य किया । भृगुनन्दन ! त्रेतायें ये सूर्यवंशी शक्रिय रथुवंशी नामसे प्रसिद्ध हुए । ब्राह्मणके वरदानसे उनके अज नामक पुत्र हुआ, उन्होंने भी पिताके समान ही राज्य किया । उनके पुत्र महाराज दशरथ (द्वितीय) हुए, दशरथके पुत्ररूपमें (भगवान् विष्णुके अवतार) स्वयं राम उत्पन्न हुए । उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया । कृष्णके

पुत्र अतिथि, अतिथिके निषध, निषधके पुत्र नल^२ हुए, जो शक्तिके परम उपासक थे । नलके पुत्र नभ, नभके पुत्र पुण्डरीक, उनके पुत्र क्षेमधनवा, क्षेमधनवाके देवानीक और देवानीकके पुत्र अहीनग तथा अहीनगके पुत्र कुरु हुए । इन्होंने त्रेतायें सौ योजन विस्तारका कुरक्षेत्र बनाया । कुरुके पुत्र पारियात्र, उनके बलस्थल, बलस्थलके पुत्र उत्थ, उनके बद्रनाभिके पुत्र शहूनाभि और उनके व्युत्थनाभि हुए । व्युत्थनाभिके पुत्र विश्वपाल, उनके स्वर्णनाभि और स्वर्णनाभिके पुत्र पुष्पसेन हुए । पुष्पसेनके पुत्र ध्रुवसन्धि तथा ध्रुवसन्धिके पुत्र अपवर्मी हुए । अपवर्मीके पुत्र शीघ्रगन्ता, शीघ्रगन्ताके पुत्र मरुपाल और उनके पुत्र प्रसुश्रुत हुए । प्रसुश्रुतके पुत्र सुर्योधि हुए । उन्होंने पृथ्वीके एक छोरसे दूसरे छोरतक राज्य किया । उनके पुत्र अमर्यण हुए । उन्होंने पिताके समान राज्य किया । उनके पुत्र महाक्ष, महाक्षके पुत्र वृहद्वाल और इनके पुत्र वृहदैशान हुए । वृहदैशानके पुत्र मुहक्षेष, उनके वस्तपाल और उनके पुत्र वस्तव्यूह हुए । वस्तव्यूहके पुत्र राजा

१-यह सुदर्शनकी विनृत कथा देवीभगवानोंके तृतीय स्फूर्त्यमें प्राप्त होती है ।

२-ये नल दमयनीके पति अत्यन्त प्रसिद्ध महाराज नलसे भिन्न हैं ।

प्रतिष्ठोम हुए। उनके पुत्र देवकर और उनके पुत्र सहदेव हुए। सहदेवके पुत्र बृहदेव, उनके भानुरत्न तथा भानुरत्नके सुप्रतीक हुए। उनके महादेव^१ और महादेवके पुत्र सुनक्षत्र हुए। सुनक्षत्रके पुत्र केशीनर, उनके पुत्र अक्षरिक्ष और अक्षरिक्षके पुत्र सुवर्णांशु हुए। सुवर्णांशुके पुत्र अभिप्रविति, उनके पुत्र बृहदाज्ञ और बृहदाज्ञके पुत्र धर्मराज हुए। धर्मराजके पुत्र कृतङ्ग और उनके पुत्र रणज्ञय हुए। रणज्ञयके पुत्र सञ्जय, उनके पुत्र शाक्यवर्धन और शाक्यवर्धनके पुत्र क्रोधदाम हुए। क्रोधदामके पुत्र अतुलविक्रम, उनके पुत्र प्रसेनजित् और प्रसेनजित्के पुत्र शूद्रक हुए। शूद्रकके पुत्र सुरथ हुए। वे सभी महाराज रुक्मि-वंशज तथा देवीकी आराधनामें रत रहते थे। यह-यागादिमें तत्पर रहकर अन्तमें इन सभी राजाओंने स्वर्गलोक प्राप्त किया। जो बुद्धके वंशज हुए, वे सब पूर्ण शुद्ध क्षमित्र नहीं थे।

ग्रेतायुगके तृतीय चरणके प्रारम्भसे नवीनता आ गयी। देवराज इन्द्रने रोहिणी-पति चन्द्रमाको पृथ्वीपर भेजा। चन्द्रमाने तीर्थराज प्रयागको अपनी गोजधानी बनाया। वे भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिवकी आराधनामें तत्पर रहे। भगवती महामायाकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने सी यज्ञ किये और अद्वितीय हजार वर्षोंतक राज्यकर वे पुनः स्वर्गलोक चले गये। चन्द्रमाके पुत्र नुध हुए। नुधका विवाह इलके साथ विधिपूर्वक हुआ, जिससे पुरुषवाची उत्पत्ति हुई। राजा पुरुषवाने चौदह हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर रहसन किया। उनको भगवान् विष्णुकी आराधनामें तत्पर रहनेवाला आयु नामका एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज आयु छहोंस हजार वर्षोंतक राज्यकर गम्भीरलोकको प्राप्त करके पुनः लग्नमें देवताके समान आनन्द भोग रहे हैं। आयुके पुत्र हुए नहुय, जिन्होंने अपने पिताके समान ही धर्मपूर्वक पृथ्वीपर राज्य किया। तदनन्तर उन्होंने इन्द्रलवके प्राप्तकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया। फिर यादमें महर्षि दुर्वासाके शापसे^२ राजा नहुय अजगर हो गये। इनके पुत्र यशस्वि हुए। यशस्विके

पाँच पुत्र हुए, जिनमें से तीन पुत्र मैत्रेय देवीके शासक हो गये^३। शेष दो पुत्रोंने आर्यवको प्राप्त किया। उनमें यदु ज्येष्ठ वे और पुठ कनिष्ठ। उन्होंने तपोवल तथा भगवान् विष्णुके प्रसादसे एक लाख वर्षोंतक राज्य किया, अनन्तर वे दैत्यरुद्ध जले गये।

यदुके पुत्र क्रोधुने साठ हजार वर्षोंतक राज्य किया। त्रोधुके पुत्र वृजिनम हुए, उन्होंने दोस हजार वर्षोंतक पृथ्वीपर राज्य किया; उनको ल्वाहर्वन नामकर एक पुत्र हुआ। उनके पुत्र विव्रथ हुए और उनके अरविन्द हुए। अरविन्दको विष्णुभक्तिप्रसाद श्रवस् नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र तामस हुए, तामसके उत्पन्न नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र शीतांशुक हुए तथा शीतांशुकके पुत्र कमलांशु हुए। उनके पुत्र यात्रायत हुए, उन्हें यात्राय नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। यात्रायके पुत्र विदर्भ हुए। उनको क्रथ नामकर पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके पुत्र कुर्त्तिभोज हुए। कुर्त्तिभोजने पातालमें विवाह करनेवाली पुत्र दैत्यकी पुजीसे विवाह किया, जिससे वृष्णवर्ण नामका पुत्र हुआ। उनके पुत्र मायाविष्णु हुए, जो देवीके भक्त थे। उन्होंने प्रयागके प्रतिहानपुर (झूसी) में दस हजार वर्षोंतक राज्य किया जिसे लोक लोक लिया। मायाविष्णुके पुत्र जनयेत्य (प्रथम) हुए और उनका पुत्र प्रचिन्वान् हुआ। प्रचिन्वान्के पुत्र प्रवीर हुए। उनके पुत्र नभस्य हुए, नभस्यके पुत्र भवद और उनके सुदूष नामका पुत्र हुआ। सुदूषके पुत्र बाहुग, उनके पुत्र संयाति और संयातिके पुत्र धनदाति हुए। धनदातिके पुत्र ऐन्द्राश, उनके पुत्र रत्नीनर और रत्नीनरके पुत्र सुतपा हुए। सुतपाके पुत्र संवरण हुए, जिन्होंने हिमालय पर्वतपर तपस्या करनेकी इच्छा की और सी वर्षोंतक तपस्या करनेपर भगवान् सूर्यने अपनी तपती नामकी वस्त्रासे इनका विवाह कर दिया। संतुष्ट होकर राजा संवरण सूर्यलोक चले गये। तदनन्तर कहालके प्रभावसे ग्रेतायुगका अन्त समय उपस्थित हो गया, जिससे आगे समुद्र उमड़ उग्ये और प्रलयका दृश्य उपस्थित हो गया। दो वर्षोंतक पृथ्वी

१-अन्य सभी पुराणोंमें सूर्योदात्मक वर्णन है। पुराणोंके अनुसार यह देवताके माथ कलाप तामने विकसकर साधन कर रहे हैं, किन्तु इस पुराणके अनुसार सूर्योदात्मक वर्णन सूर्य अतोलक हुआ है, जो प्रायः वस्त्रियोंका पहुँच जाता है।

२-यज्ञापात अतिमें वे अग्रस्व ऊर्ध्वोंके इन्द्रसे अजगर हुए थे।

३-इनके पूरा विवरण मत्स्यमूलके प्रार्थिक अभ्यासोंमें प्राप्त होता है।

पर्वतोसहित समुद्रमें विलीन रही। इंज्ञावातोके प्रभावसे समुद्र सूख गया, फिर महर्षि अगस्त्यके तेजसे भूमि स्थलीभूत होकर दीखने लगी और पाँच बर्फके अंदर पृथ्वी बृक्ष, दूर्वा आदिसे

सम्पन्न हो गयी। भगवान् सूर्योदयकी आज्ञासे महाराज संवरण महाएनी तपती, महर्षि वासिष्ठ और तीनों वर्णोंके लोगोंके साथ पुनः पृथ्वीपर आ गये। (अध्याय २)

द्वापर युगके चन्द्रवंशीय राजाओंका वृत्तान्त

महर्षि शौनकने पूछा—लोमहर्षिजी! आप यह बताइये कि महाराज संवरण^१ किस समय पृथ्वीपर आये और उन्होंने कितने समयतक राज्य किया तथा द्वापरमें कौन-कौन राजा हुए, यह सब भी बतायें।

सुखजी बोले—महर्षे! महाराज संवरण भाद्रपदके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी तिथिको शुक्रवारके दिन भूनियोके साथ प्रतिष्ठानपुर (झूंसी) में आये। विश्वकर्मनि वहाँ एक ऐसे विशाल प्रासादका निर्माण किया, जो केवल आधा कोस या डेढ़ किलोमीटरके लगभग था। महाराज संवरणने पाँच योजन या बीस कोसके क्षेत्रमें प्रतिष्ठानपुरको अत्यन्त सुन्दरता एवं स्वच्छतापूर्वक बनाया। एक ही समयमें (चन्द्रमाके पुत्र) बुधके वंशमें उत्पन्न प्रसेन और यदुवंशीय राजा सातवत शूरसेन मधुग (मधुग) के शासक हुए। म्लेच्छवंशीय इमश्वपाल (दाढ़ी रखनेवाला) मरुदेश (अरब, ईरान और ईराक) के शासक हुए। क्रमशः प्रजाओंके साथ राजाओंकी संख्या बढ़ती गयी। राजा संवरणने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। इसके बाद उनके पुत्र अर्चज्ञ हुए, उन्होंने भी दस हजार वर्षोंतक शासन किया। उनके पुत्र सूर्यजापीने पिताके शाशनकालके आधे समयतक राज्य किया। उनके पुत्र सौरयज्ञपरायण सूर्यवर्ष हुए। उनके पुत्र आदित्यवर्धन, आदित्यवर्धनके पुत्र द्वादशात्मा और उनके पुत्र दिवाकर हुए। इन्होंने भी प्रायः अपने पितासे कुछ कम ही दिनोंतक राज्य किया। दिवाकरके पुत्र प्रभाकर और प्रभाकरके पुत्र भास्वदात्मा हुए। भास्वदात्माके पुत्र विवरण्य, उनके पुत्र हरिदशार्चन और उनके पुत्र वैकर्तन हुए। वैकर्तनके पुत्र अकेष्मान्, उनके पुत्र मार्ताण्डवत्सल और मार्ताण्डवत्सलके पुत्र मिहिरार्थ तथा उनके अरुणपोषण हुए। अरुणपोषणके पुत्र शुमणि, शुमणिके पुत्र तरणियज्ञ और उनके पुत्र मैत्रेष्टिवर्धन हुए। मैत्रेष्टिवर्धनके पुत्र वित्रभानुर्जक, उनके वैरोचन और वैरोचनके पुत्र हंसन्यायी

हुए। उनके पुत्र वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धनके पुत्र सावित्र और इनके पुत्र धनपाल हुए। धनपालके पुत्र म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहन्ताके आनन्दवर्धन, इनके धर्मपाल और धर्मपालके पुत्र ब्रह्मभक्त हुए। उनके पुत्र ब्रह्मोष्टिवर्धन, उनके पुत्र आत्मप्रज्ञक हुए और उनके परमेष्ठी नामक पुत्र हुए। परमेष्ठीके पुत्र हैरण्यवर्धन, उनके धातुयाजी, उनके विधातृपूजक और उनके पुत्र द्वुहिणकतु हुए। द्वुहिणकतुके पुत्र वैरच्य, उनके पुत्र कमलासन और कमलासनके पुत्र शमवर्ती हुए। शमवर्तीके पुत्र श्राद्धदेव और उनके पितृवर्धन, उनके सोमदत्त और सोमदत्तके पुत्र सौमदत्त हुए। सौमदत्तिके पुत्र सोमवर्धन, उनके अवतंस, अवतंसके पुत्र प्रतंस और प्रतंसके पुत्र परातंस हुए। परातंसके पुत्र अपतंस, उनके पुत्र समातंस, उनके पुत्र असुतंस और अनुतंसके पुत्र अधितंस हुए। अधितंसके अधितंस, उनके पुत्र समुतंस, उनके तंस और तंसके पुत्र दुष्यन्त हुए।

महाराज दुष्यन्तकी पत्नी शकुन्तलासे भरत नामके पुत्र हुए, जो सदा सूर्योदयकी पूजामें तत्पर रहते थे। महाराज भरतने महामाया भगवतीकी कृपासे सम्पूर्ण पृथ्वीपर छतोंस हजार वर्षोंतक चक्रवर्ती सम्प्राटके रूपमें राज्य किया और उनके पुत्र महाबल हुए। महाबलके पुत्र भरदाज हुए। भरदाजके पुत्र मन्मुषान् हुए, जिन्होंने अद्वृत राजा वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन किया। उनके पुत्र वृक्षहोत्र, उनके पुत्र सुहोत्र और सुहोत्रके पुत्र वीतिहोत्र हुए, इन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। वीतिहोत्रके पुत्र यज्ञहोत्र, यज्ञहोत्रके पुत्र शक्तहोत्र हुए। इन्द्रदेवने प्रसन्न होकर इन्हें स्वर्ग प्रदान किया। उस समय अयोध्यामें महाबली प्रतापेन्द्र नामक राजा हुए, उन्होंने दस हजार वर्षोंतक भारतपर शासन किया। इनके पुत्र मण्डलीक हुए। मण्डलीकके पुत्र विजयेन्द्र, विजयेन्द्रके पुत्र धनुर्दीप हुए।

महाराज शक्तहोत्र इन्द्रकी आज्ञासे धृताचीके साथ पुनः

१.—इनकी विस्तृत कथा महाभास्तके आदिपर्व (अ० १४) में विस्तारसे, किंतु १७२ तक प्रायः आती रही है।

भूतलपर आये और उन्होंने राजा धनुर्दीपके जीतकर पृथ्वीपर शासन किया। इकहोत्रके घृताचीसे हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। हस्तीने ऐरावत वर्षोंतक बहोपर आरुद्ध होकर पश्चिममें अपने नामसे हस्तिना नामक नगरीका निर्माण किया। यह दस योजन विस्तृत है तथा स्वर्गाल्के टटपर अवस्थित है। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक निवासकर राज्य किया। महाराज हस्तीके पुत्र अजमीठ, अजमीठके पुत्र रक्षपाल, रक्षपालके पुत्र सुशार्यण और उनके पुत्र कुरु हुए। इन्हें वरदानसे वे सदैह स्वर्ग चले गये।

उस समय मधुगुणमें सात्वत-वैश्यमें वृष्णि नामके एक महाबली राजा हुए। उन्होंने भगवान् विष्णुके वरदानसे पौच हजार वर्षोंतक सम्पूर्ण राज्यको अपने अधीन रखा। राजा वृष्णिके पुत्र निरावृति हुए, निरावृतिके पुत्र दशारी, दशारीके पुत्र विद्यामुन और विद्यामुनके पुत्र जीमूत और इनके पुत्र विकृति हुए। विकृतिके पुत्र भीमरथ, उनके पुत्र नवरथ और नवरथके दशरथ हुए। उनके पुत्र शकुनि, उनके कुशमुष्म और कुशमुष्मके पुत्र देवरथ हुए। देवरथके पुत्र देवकेत्र, उनके पुत्र मधु और मधुके पुत्र नवरथ और उनके कुरुवत्स हुए। इन सभी लोगोंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। कुरुवत्सके पुत्र अनुरथ, उनके पुरुहोत्र और पुरुहोत्रके पुत्र विचित्राल्लु हुए, उनके सात्वतवान् और उनके पुत्र भजमान हुए। उनके पुत्र विदूरथ, उनके सुरभक्त और सुरभक्तके सुमना हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। सुमनाके पुत्र ततिकेत्र, उनके स्वायम्भुव, उनके हरिदीपक और हरिदीपकके देवमेधा हुए। इन सभीने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। देवमेधाके पुत्र सुरपाल हुए।

द्वापरके तृतीय चरणके समाप्त होनेपर देवराज इन्द्रकी आशासे आयी सुकेशी नामकी अपाराके स्वामी कुरु राजा हुए। इन्होंने कुरुक्षेत्रका निर्माण किया जो बीस योजन विस्तृत है। विद्वानोंने उसे पुण्यक्षेत्र बताया है। महाराज कुरुने बारह हजार वर्षोंतक राज्य किया। इनके पुत्र जहु, जहुके सुरथ और

सुरथके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथके पुत्र सार्वभीम, इनके जयसेन और उनके पुत्र अर्णव हुए। महाराज अर्णवका शासन-क्षेत्र जारी समुद्रतक था और इन्होंने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। अर्णवके पुत्र अयुतायु हुए, जिन्होंने दस हजार वर्षोंतक राज्य किया। अयुतायुके पुत्र अक्रोधन, उनके प्रह्लाद, उनके पुत्र भीमसेन और भीमसेनके पुत्र दिलीप हुए। इन सभी राजाओंने अपने-अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। दिलीपके पुत्र प्रतीप हुए, इन्होंने पांच हजार वर्षोंतक शासन किया। प्रतीपके पुत्र शननु हुए और उन्होंने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया, उन्हें विचित्रवीर्य नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जिन्होंने दो सौ वर्षोंतक राज्य किया। उनके पुत्र पाण्डु हुए, उन्होंने पांच सौ वर्षोंतक राज्य किया, उनके पुत्र युधिष्ठिर हुए, उन्होंने पचास वर्षोंतक राज्य किया। सुयोधन (दुर्योधन) ने साठ वर्षोंतक राज्य किया और कुरुक्षेत्रमें (युधिष्ठिरके भाई भीमसेन)के द्वारा उसकी मृत्यु हुई।

प्राचीन कालमें दैत्योंका देवताओंद्वारा भारी संहार हुआ था। वे ही सब दैत्य शननुके राज्यमें पुनः भूलोकमें उत्पन्न हुए। दुर्योधनकी विशाल सेनाके भारसे परिव्याप्त वसुन्धरा इन्द्रकी शरणमें गयी, तब भगवान् श्रीहरिका अवतार हुआ। सौरि वसुदेवके द्वारा देवकीके गर्भसे उन्होंने अवतार लिया। वे एक सौ पैतीस वर्षोंतक पृथ्वीपर रहकर उसके बाद गोलोक चले गये। भगवान् श्रीकृष्णका अवतार द्वापरके चतुर्थ चरणके अन्तमें हुआ था।

इसके बाद हस्तिनापुरमें अभिमन्तुके पुत्र परीक्षितहे राज्य किया। परीक्षितके राज्य करनेके बाद उनके पुत्र जनमेजयने राज्य किया। तदनन्तर उनके पुत्र महाराज शतानीक पृथ्वीके शासक हुए। उनके पुत्र यज्ञदत्त (सहस्रानीक) हुए। उनके पुत्र निक्षक^१ (निवक्तु) हुए। उनके पुत्र उद्ध (उष्ण) पाल हुए। उनके पुत्र चित्ररथ और चित्ररथके पुत्र धृतिमान् और उनके पुत्र सुषेण हुए, सुषेणके पुत्र सुनीथ, उनके मरणपाल, उनके चक्र

१-विभिन्न पुण्यनोमें भगवान् श्रीकृष्णकी स्थितिकालक्षण उल्लेख पुछ अन्तरसे प्राप्त होता है, विदेशकर महाभारत, भागवत, हरिवंश, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैतरपुराण और गर्गसंहितामें भी उनका विस्तृत चरित्र प्राप्त होता है। अधिकांश स्थलोंपर उनका स्थितिकाल एक सौ पवित्र कर्म ही निर्दिष्ट है।

२-इनके शासनकालमें ही गङ्गा हस्तिनापुरके अधिकरेत्र भागवते बहु ले गयी। अतः इन्होंने कौशम्भीकरे राजधानी बनाया, जो प्रयागसे चार योजन पश्चिम थी। (विष्णुपुराण ४ : २१)

और चक्षुके पुत्र मुखवन्त (सुखवाल) हुए। मुखवन्तके पुत्र पारिष्ठव हुए। पारिष्ठवके पुत्र सुनय, सुनयके पुत्र मेधावी, उनके नृपञ्जय और उनके पुत्र मृदु हुए। मृदुके पुत्र तिमन्जयोति, उनके बृहद्रथ और उनके पुत्र वसुदान हुए। इनके पुत्र शशानीक हुए, उनके पुत्र उदयन, उदयनके अहीनर, अहीनरके निरमित्र तथा

निरमित्रके पुत्र क्षेमक हुए। महाराज क्षेमक गण्य छोड़कर कलापदाम छले गये। उनकी मृत्यु म्लेच्छोंके द्वाय हुई। नारदजीके उपदेश एवं सत्रयाससे उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम प्रद्योत हुआ। गणा प्रद्योतने म्लेच्छ-यज्ञ किया, जिसमें म्लेच्छोंका विनाश हुआ। (अध्याय ३)

म्लेच्छवंशीय राजाओंका वर्णन तथा म्लेच्छ-भाषा आदिका संक्षिप्त परिचय

शौनकने पूछा—विद्वान्न यज्ञ महामुने ! उस प्रद्योतमें कैसे म्लेच्छ-यज्ञ किया ? मुझे यह सब बतलायें।

श्रीमृतजीने कहा—महामुने ! किसी समय क्षेमकके पुत्र प्रद्योत हस्तिनामुनें विद्वान्नमान थे। उस समय नारदजी यहाँ आये। उनको देखकर प्रसन्न हो गजा प्रद्योतने विधिवत् उनकी पूजा की। मुखपूर्वक बैठे हुए मुनिने गजा प्रद्योतमें कहा—‘म्लेच्छोंके द्वाय मारे गये तुम्हारे पिता यमलोकमें चले गये हैं। म्लेच्छ-यज्ञके प्रभावसे उनकी नरकसे मुक्ति होगी और उन्हें स्वर्गीय गति प्राप्त होगी। अतः तुम म्लेच्छ-यज्ञ करो।’ यह सुनकर गजा प्रद्योतकी आँखें झोधसे लाल हो गयीं। तब उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर कुरुक्षेत्रमें म्लेच्छ-यज्ञको तत्काल आरच्य करा दिया। सोलह योजनमें चतुर्कोण यज्ञ-कुण्डका निर्माणकर देवताओंका आवाहनकर उस गजाने म्लेच्छोंका हनन किया। ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर अभिषेक कराया। इस यज्ञके प्रभावसे उनके पिता क्षेमक स्वर्गलोक चले गये। तभीसे गजा प्रद्योत सर्वत्र पृथ्वीपर म्लेच्छहन्ता (म्लेच्छोंको मारनेवाले) नामसे प्रसिद्ध हो गये। उनका पुत्र वेदवान् नामसे प्रसिद्ध हुआ।

म्लेच्छरूपमें स्वयं कहिने ही गम्य किया था। अनन्दर कहिने अपनी पलीके साथ नारायणकी पूजाकर दिव्य सुति की; सुतिसे प्रसन्न होकर नारायण प्रकट हो गये। कहिने उनसे कहा—‘हे नाथ ! गजा वेदवान्नके पिता प्रद्योतने मेरे स्थानका विनाश कर दिया है और मेरे प्रिय म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया है।’

भगवान्से कहा— करो ! कई करणोंसे अन्य युगोंकी अपेक्षा तुम श्रेष्ठ हो। अनेक रूपोंके भारणकर मैं तुम्हारी इच्छाको पूर्ण करूँगा। आदम नामका पुरुष और हृष्यवती (हीना) नामकी पलीसे म्लेच्छवंशोंकी वृद्धि करनेवाले उत्पन्न होंगे। यह कहकर श्रीहरि अनन्दर्थान हो गये

और कलियुगको इससे बहुत आनन्द हुआ। उसने नीलचबल पर्वतपर आकर कुछ दिनोंतक निवास किया।

गजा वेदवान्नके सुनन्द नामका पुत्र हुआ और जिन संततिके ही वह मृत्युके प्राप्त हुआ। इसके बाद आर्यवर्त देश सभी प्रकार क्षीण हो गया और भैर-भैर म्लेच्छोंका बल बढ़ने लगा। तब नैमित्यरण्यनिवासी अठासी हजार झूषि-मुनि हिमालयपर छले गये और वे बदरी-सेत्रमें आकर भगवान् विष्णुकी कथा-वार्तामें संलग्न हो गये।

सुतजीने पुनः कहा—मूने ! द्वापर युगके सोलह हजार वर्ष शेष कालमें आर्य-देशकी भूमि अनेक कीर्तियोंसे समन्वित रही; पर इन्हें समयमें कहीं शुद्ध और कहीं वर्षसंसेकर गजा भी हुए। आठ हजार दो सौ दो वर्ष द्वापर युगके शेष रह जानेपर यह भूमि म्लेच्छ देशके गजाओंके प्रभावमें आने लग गयी। म्लेच्छोंका आदि पुरुष आदम, उसकी स्त्री हृष्यवती (हीना) दोनों इन्द्रियोंका दमनकर व्यानपरायण रहते थे। इन्हाँने प्रदान नगरके पूर्वभागमें चार कोसवाला एक रमणीय महावनका निर्माण किया। पापवृक्षके नींवे जाकर कलियुग सर्वकृप भारणकर हीनाके पास आया। उस भूर्त कहिने हीनाको खोखा देकर गूल्मके पतोंमें लपेटकर दूषित वायुयुक्त फल उसे खिला दिया, जिससे विष्णुकी आज्ञा भंग हो गयी। इससे अनेक पुत्र हुए, जो सभी म्लेच्छ कहलाये। आदम पलीके साथ स्वर्ग चले गये। उसका क्षेत्र नामसे विश्वात श्रेष्ठ पुत्र हुआ, जिसकी एक सौ बारह वर्षकी आयु कही गयी है। उसका पुत्र अनुह हुआ, जिसने अपने पितासे कुछ कम ही वर्ष शासन किया। उसका पुत्र क्षीनाश था, जिसने पितामहके समान रुचि किया। महल्लल नामका उसका पुत्र हुआ, उसका पुत्र मानगर हुआ। उसको विरट नामका पुत्र हुआ और अपने नामसे नगर बसाया। उसका पुत्र विष्णुभक्तिपरायण हनुक हुआ। फलोंका

हवन कर उसने अध्यात्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किया। म्लेच्छधर्मपरायण वह सदाचार स्वर्ग चला गया। इसने द्विजोंके आचार-विचारका पालन किया और देवपूजा भी की, फिर भी वह विद्वानोंके द्वारा म्लेच्छ ही कहा गया। मुनियोंके द्वारा विष्णुभक्ति, अग्निपूजा, अहिंसा, तपस्या और इन्द्रियदमन—ये म्लेच्छोंके धर्म कहे गये हैं। हनुमतका पुत्र मतीचिठ्ठल हुआ। उसका पुत्र लोमक हुआ, अन्तमें उसने स्वर्ग प्राप्त किया। लद्दनन्तर उसका न्यूह नामका पुत्र हुआ, न्यूहके सीम, शम और भाव—ये तीन पुत्र हुए। न्यूह आत्मध्यान-परायण तथा विष्णुभक्त था। किसी समय उसने स्वप्नमें विष्णुका दर्शन प्राप्त किया और उन्होंने न्यूहसे कहा—‘कल्स ! सुनो, आजसे सातवें दिन प्रलय होगा । हे भक्तब्रेष्ट ! तुम सभी लोगोंके साथ नावपर चढ़कर अपने जीवनकी रक्षा करना । फिर तुम बहुत विश्वास व्यक्ति बन जाओगे। भगवान्‌की जात मानकर उसने एक सुदृढ़ नीकदाक निर्माण कराया, जो तीन सौ हाथ लम्बी, पचास हाथ चौड़ी और तीस हाथ ऊँची थी और सभी जीवोंसे सम्बन्धित थी। विष्णुके ध्यानमें तत्पर होता हुआ वह अपने वंशजोंके साथ उस नावपर चढ़ गया। इसी बीच इन्द्रदेवने चालीस दिनोंतक लगातार मेघोंसे मूसलधार बृष्टि करायी। सम्पूर्ण भारत सागरोंके जलमें प्राप्ति हो गया। चारों सागर मिल गये, पृथ्वी दूध गयी, पर हिमालय पर्वतका बदरी-क्षेत्र पानीसे ऊपर ही रहा, वह नहीं दूब पाया। अद्वासी हजार ब्रह्मवादी मुनिगण, अपने शिष्योंके साथ वहाँ स्थिर और मुरीकित रहे। न्यूह भी अपनी नीकामें साथ वहाँ आकर बच गये। संसारके दोष सभी प्राणी विनष्ट हो गये। उस समय मुनियोंने विष्णुमायाकी सुन्ति की।

मुनियोंने कहा—‘महाकालीको नमस्कार है, माता देवकीको नमस्कार है, विष्णुपत्नी महालक्ष्मीको, राधादेवीको और रेखती, पुष्पवती तथा स्वर्णवतीको नमस्कार है। कामाशी, माया और मालाको नमस्कार है। महाकामुके प्रभावादे-मेघोंके भवंकर शब्दसे एवं उम्र जलकी धाराओंसे दारण भय उत्पन्न हो गया है। भैरव ! तुम इस भयसे हम किकरोंकी रक्षा करो।’ देवीने प्रसन्न होकर जलकी बृद्धिको तुरंत शान्त कर-

दिया। हिमालयकी प्राक्तवतीं शिविला नामकी भूमि एक वर्षमें जलके हट जानेपर स्थलके रूपमें दीखने लगी। न्यूह अपने वंशजोंके साथ उस भूमिपर आकर निवास करने लगा।

शौनकने कहा—मुनीश्वर ! प्रलयके बाद इस समय जो कुछ वर्तमान है, उसे अपनी दिव्य दृष्टिके प्रभावसे जानकर बतायें।

सूतजी बोले—शौनक ! न्यूह नामका पूर्वनिर्दिष्ट म्लेच्छ राजा भगवान् विष्णुकी भक्तिमें लैन रहने लगा, इससे भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर उसके वंशकी बृद्धि की। उसने वेद-वाक्य और संस्कृतसे बहिर्भूत म्लेच्छ-भाषणका विस्तार किया और कलिकी बृद्धिके लिये ब्राह्मी* भाषाको अपशब्दवाली भाषा बनाया और उसने अपने तीन पुत्रों—सीम, शम तथा भावके नाम त्रिमृशः सिम, हाम तथा याकूत रख दिये। याकूतके सात पुत्र हुए—त्रुप्र, मार्जू, मार्दी, यूनान, तुवलोम, सक तथा तीराम। इन्हींके नामपर अलग-अलग देश प्रसिद्ध हुए। जुप्रेह दस पुत्र हुए। उनके नामोंसे भी देश प्रसिद्ध हुए। यूनानकी अलग-अलग संताने इलीश, तरलीश, किली और हूटा—इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुई तथा उनके नामसे भी अलग-अलग देश बसे। न्यूहके द्वितीय पुत्र हाम (शम) से चार पुत्र कहे गये हैं—कुश, मिश्र, कूज, कनर्भा। इनके नामपर भी देश प्रसिद्ध है। कुशके छ: पुत्र हुए—सवा, हवील, सर्वत, उरगम, सवतिका और महावली निमरुह। इनकी भी कलन, सिना, गोरक, आकट, बाषुन और रसनादेशक आदि संताने हुईं। इनी याते व्रहियोंको सुनाकर सूतजी समाधिस्थ हो गये।

बहुत बर्षोंके बाद उनकी समाधि सूली और वे कहने लगे—‘ऋग्विदो ! अब मैं न्यूहके ज्येष्ठ पुत्र राजा सिमके वंशका वर्णन करता हूं, म्लेच्छ-राजा सिमने पांच सौ वर्षोंतक भलीभौति रुग्य किया। अर्कन्सद उसका पुत्र था, जिसने चार सौ चालीस वर्षोंतक रुग्य किया। उसका पुत्र मिंहल हुआ, उसने भी चार सौ साठ वर्षोंतक रुग्य किया। उसका पुत्र इब्र हुआ, उसने पिताके समान ही रुग्य किया। उसका पुत्र कलज हुआ, जिसने दो सौ चालीस वर्षोंतक रुग्य किया। उसका पुत्र

* ब्राह्मीको लिखियोंका मूल माना गया है। राजा न्यूहके दृष्टव्यमें सर्व प्रशिष्ट सेवक भगवान् विष्णुने उसकी बृद्धिको प्रेरित किया, इसीलिये उसमें अपनी लिखियोंको उल्टी गतिसे दौड़ानेसे बायीं और प्रशिष्टित किया, जो उन् अस्ती, फारसी और दिव्यकी लेखन-प्रक्रियामें देखी जाती है।

रक्त हुआ, उसने दो सौ सैतीस वर्षोंतक राज्य किया। उसके जूँब नामक पुत्र हुआ, पिताके समान ही उसने राज्य किया। उसका पुत्र नहूर हुआ, उसने एक सौ साठ वर्षोंतक राज्य किया। हे राजन्! अनेक शत्रुओंका भी उसने विनाश किया। नहूरका पुत्र ताहर हुआ, पिताके समान उसने राज्य किया। उसके अविषय, नहूर और हारन—ये तीन पुत्र हुए।

हे मुने! इस प्रकार मैंने नाममात्रसे म्लेच्छ राजाओंका वंशोंका वर्णन किया। सरस्वतीके शापसे ये राजा म्लेच्छ-भाषा-भाषी हो गये और आचारमें अधम सिद्ध हुए। कलियुगमें इनकी संस्कृताकी विशेष वृद्धि हुई, किन्तु मैंने संक्षेपमें ही इन वंशोंका वर्णन किया। संस्कृत भाषा भारतवर्षमें ही किसी तरह बची रही। अन्य भागोंमें म्लेच्छ भाषा ही आमन्द देनेवाली हुई।

सूतजी पुनः बोले— भार्गवतनय महामुने शैनक! तीन सहस्र वर्ष कलियुगके बीत जानेपर अवनी नगरीमें शहूनामका एक राजा हुआ और म्लेच्छ देशमें शकोका राजा राज्य करता था। इनकी अभियुदित्तक करण सुनो। दो हजार वर्ष कलियुगके बीत जानेपर म्लेच्छवंशकी अधिक वृद्धि हुई और विश्वके अधिकांश भागकी भूमि म्लेच्छमयी हो गयी तथा

भौति-भौतिके मत चल पड़े। सरस्वतीका लट ब्रह्मावर्त-क्षेत्र ही शुद्ध बचा था। मूर्श नामका व्यक्ति म्लेच्छोंका आचार्य और पूर्व-पुरुष था। उसने अपने मतको सारे संसारमें फैलाया। कलियुगके आनेसे भारतमें देवपूजा और वेदभाषा प्रायः नष्ट हो गयी। भारतमें भी धर्म-धर्म प्राकृत और म्लेच्छ-भाषाका प्रचार प्रारम्भ हुआ। ब्रजभाषा और महाराष्ट्री—ये प्राकृतके मुख्य भेद हैं। याथनी और गुरुणिका (अंग्रेजी) म्लेच्छ भाषाके मुख्य भेद हैं। इन भाषाओंके और भी चार लाख सूक्ष्म भेद हैं। प्राकृतमें पानीयको पानी और बुभुक्षाको भूख कहा जाता है। इसी तरहसे म्लेच्छ भाषामें पितॄको पैतर-फटदर और भ्रातृको बादर-ब्रदर कहते हैं। इसी प्रकार आहुतिके आजु, जानुको जैन, रुक्षितारको संडे, फाल्गुनको फरवरी और यष्टिको मिक्सटी कहते हैं। भारतमें अयोध्या, मधुग, कवशी आदि पवित्र सात पुरीयाँ हैं, उनमें भी अब हिंसा होने लग गयी है। डाकू, शब्द, भिस्त, तथा मूर्श व्यक्ति भी आयदेश—भारतवर्षमें भर गये हैं। म्लेच्छदेशमें म्लेच्छ-धर्मको माननेवाले सुखोंसे रहते हैं। यही कलियुगकी विशेषता है। भारत और इसके द्वीपोंमें म्लेच्छोंका राज्य रहेगा, ऐसा समझकर हे मुनिश्रेष्ठ! आपलोग हरिका भवन करें। (अध्याय ४-५)

काश्यपके उपाध्याय, दीक्षित आदि दस पुत्रोंका नामोत्त्वेष्ट, मगधके राजवंश और बौद्ध राजाओंका वर्णन

शैनकजीने पूछा— महाराज ! ब्रह्मावर्तमें^१ म्लेच्छगण क्यों नहीं आ सके, इसका कारण यताये।

सूतजी बोले— मुने! सरस्वतीके प्रभावसे ये सब वहाँ नहीं आ सके। वहाँ काश्यप नामके एक ब्राह्मण रहते थे। वे कलियुगके हजार वर्ष बीतेनेपर देवताओंकी आज्ञासे स्वर्गलोकसे ब्रह्मावर्तमें आये। उनकी धर्म-पत्नीका नाम था आर्यवती। उससे काश्यपके दस पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम इस प्रकार

हैं—उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्र, मित्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डव तथा चतुर्वेदी। ये अपने नामके अनुरूप गुणवाले थे। उनके पिता काश्यप, जो सभी ज्ञानेसे समन्वित और सम्पूर्ण वेदोंके ज्ञाता थे, उनके बीच रहकर उन्हें ज्ञान देते रहते थे। काश्यपने काश्मीरमें जाकर जगज्जननी सरस्वतीको रक्तपुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा पुष्पाञ्जलिके द्वारा संतुष्ट किया। देवीकी सुति करते हुए

१-पहले संस्कृतका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार था। बालीद्वीपमें अब भी इसका पूर्ण प्रचार है तथा सुमात्रा, जावा, जापान आदिमें युक्त अंशोंमें इसका प्रचार है। योनियो, इडोनेशिया, कम्बोडिया और चीनमें भी इसका बहुत पहले प्रचार था। योन्योमें संस्कृतकी बहुत उपेक्षा हुई, पर जर्मन, रूस और ब्रिटेनके नियन्त्रितके सलमानससे अब पुनः इसका सभी विभिन्नधाराओंमें अध्यापन होने लगा है। यो कहना चाहिये कि भारतमें ही इसकी उपेक्षा हो रही है। पाश्चात्योंकी वैज्ञानिक उत्तिमें संस्कृतका ही मुख्य योगदान रहा है। मूर्हेपत्री गोध-भाषा संस्कृतमें बहुत मिलती थी। सभी सभ्य भाषाओंके व्याकरणोंमें संस्कृतके व्याकरणका बहुत प्रभाव है। मौनियनियन्त्रितमें तथा उत्तरनेमें अपने-अपने कोशीयोंमें इसके अनेक अन्तर्गत उत्तरण उपस्थित किये जाते हैं।

२-ब्रह्मावर्त मुख्यरूपसे गङ्गावर्त उत्तरी भाग है, जो विजयीरसे लेकर प्रयागतक और उत्तरमें नैनियाराज्यका फैला है।

काश्यपने कहा—‘मातः ! शक्तर्पिये ! मुझपर आपकी करुणा क्यों नहीं होती ? देवि ! अप सारे संसारकी माता हैं, फिर मुझे जगत्‌से बाहर क्यों मानती हैं ? देवि ! देवताओंके लिये धर्मद्वेषियोंको आप क्यों नहीं मारती हैं ? म्लेच्छोंको मोहित कीजिये और उत्तम संस्कृत भाषाका विस्तार कीजिये । अब ! आप अनेक रूपोंको धारण करनेवाली हैं, तुक्तरस्वरूप हैं, आपने भूमलेच्छको मारा है । दुर्गाकृष्णमें आपने भयंकर दैत्योंको मारकर जगत्‌में सुख प्रदान किया है । मातः ! आप दध्य, मोह तथा भयंकर गर्वका नाशकर सुख प्रदान करें और दुष्टोंका नाश करें तथा संसारमें ज्ञान प्रदान करें ।’

इस सुनिसे प्रसन्न होकर सरस्वतीदेवीने उन काश्यप मुनिके मनमें निवासकर उन्हें ज्ञान प्रदान किया । वे मुनि मिश्र देशमें चले गये और उन्होंने वहाँ म्लेच्छोंको मोहित कर उन्हें द्विजस्था बना लिया । सरस्वतीके अनुग्रहसे उन लोगोंके साथ सदा मुनिवृत्तिमें तत्पर मुनिश्रेष्ठ काश्यपने आर्यदेशमें निवास किया । उन आर्योंकी देखीके बरदानसे बहुत बढ़ि हुई । काश्यप मुनिका राज्यकाल एक सौ बीस वर्षतक रहा । राज्यपुत्र नामक देशमें आठ रुजार शूद्र हुए । उनके राजा आर्य पृथु हुए । उनसे ही मागधकी उत्पत्ति हुई । मागध नामके पुत्रका अभिषेककर पृथु चले गये । यह सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक आदि ऋषि प्रसन्न हो गये । फिर वे पौराणिक सूतको नमस्कार कर किण्वुके ध्यानमें तत्पर हो गये । चार वर्षतक ध्यानमें रहकर वे उठे और नित्य-पैमितिक क्रियाओंको सम्पन्न कर पुनः सूक्तजीवके पास गये और बोले—‘लोमहर्षजी ! अब आप मागध राजाओंका वर्णन करें । किन मागधोंने कलियुगमें राज्य किया, हे व्यासशिष्य ! आप हमें यह बतायें ।’

सूक्तजीने कहा—मगध-प्रदेशमें काश्यपसुन्न मागधने पितासे प्राप्त राज्यका भार बहन किया । उन्होंने आर्यदेशको अलग कर दिया । पाञ्चाल (पंजाब) से पूर्वका देश मगध^१ देश कहा जाता है । मगधकी आध्रेय दिशामें कलिंग

(उडीसा), दक्षिणमें अवन्तिदेश, नैऋत्यमें आनर्त (गुजरात), पश्चिममें सिन्धुदेश, वायव्य दिशामें कैकय देश, उत्तरमें महादेश और ईशानमें कुलिन्द देश हैं । इस प्रकार आर्यदेशका उन्होंने भेद किया । इस देशका नामकरण महात्मा मागधके पुत्रने किया था । अनन्तर राजा ने यज्ञके द्वारा बलवानजीको प्रसन्न किया, इसके फलस्वरूप बलभद्रके अंकासे शिशूनागका जन्म हुआ, उसने सौ वर्षतक राज्य किया । उसे काकवर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने नव्वे वर्षतक राज्य किया । उसे क्षेत्रधर्मा नामका पुत्र हुआ, उसने अस्त्री वर्ष राज्य किया । उसका पुत्र क्षेत्रजा हुआ, उसने सत्तर वर्षतक राज्य किया । उसके वेदमिश्र नामक पुत्र हुआ, उसने साठ वर्षतक शासन किया । उसे अजातरिपु (अजातशत्रु) नामक पुत्र हुआ, उसने पचास वर्षतक राज्य किया । उसका पुत्र दर्भक हुआ, उसने चालीस वर्षतक राज्य किया । उसे उदयाश्वर^२ नामका पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया । उसका पुत्र नन्दवर्धन हुआ, उसने बीस वर्षतक शासन किया । नन्दवर्धनका पुत्र नन्द हुआ, उसने पिताके तुल्य वर्षोंतक राज्य किया । नन्दके प्रणन्द हुआ, जिसने दस वर्ष राज्य किया । उससे परानन्द हुआ, उसने अपने पिताके तुल्य वर्षोंतक ही राज्य किया । उससे समानन्द हुआ, उसने बीस वर्ष राज्य किया । उससे ग्रियानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया । उसका पुत्र देवानन्द हुआ, उसने भी पिताके समान राज्य किया । देवानन्दका पुत्र यज्ञधर्म हुआ, उसने अपने पिताके आधे वर्षोंतक (दस वर्ष) राज्य किया । उसका पुत्र शौर्यानन्द और उसका पुत्र महानन्द हुआ । दोनोंने अपने-अपने पिताके समान वर्षोंतक राज्य किया ।

इसी समय कलिने हरिका स्मरण किया । अनन्तर प्रसिद्ध गौतम नामक देवताकी काश्यपसे उत्पत्ति हुई । उसमें बीदूधर्मको संस्कृतकर पट्टण नगर (कपिलवस्तु) में प्रचार किया और दस वर्षतक राज्य किया^३ । उससे शाक्यमुनिका जन्म हुआ, उसने भी बीस वर्षतक राज्य किया । उससे

१-यहाँसे लेकर आगे उदयाश्वतक मगधके राजवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी राजगृह थी ।

२-इसीने यज्ञगृहसे हटाकर यज्ञधानी गङ्गाके किनारे बसायी और उसका नाम पाटलिपुत्र या पटना पड़ा । इसके आगे के यज्ञगण पटनासे ही भारतवर्ष शासन करते थे ।

३-यहाँसे आगे अब लिखत्वादि राज्यवंशका वर्णन है, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी ।

शुद्धोदन नामक पुत्र हुआ, उसने तीस वर्षतक शासन किया। उससे शक्तिसिंहका जन्म हुआ। कलियुगके दो हजार वर्ष व्यतीत हो जानेके बाद शतांश्रिमें उसने शासन किया। कलिके प्रथम चरणमें वेदमार्गको उसने विनष्ट कर दिया और साठ वर्षतक उसने राज्य किया। उस समय प्रायः सभी बौद्ध हो गये। विष्णुखलूप्य उसके राजा होनेपर जैसा राजा था, वैसी ही प्रजा हो गयी, क्योंकि विष्णुकी शक्तिके अनुसार ही जगत्में धर्मकी प्रवृत्ति होती है। जो मनुष्य मायापति इरिकी शरणमें जाते हैं, वे उनकी कृपाके प्रभावसे मोक्षके भागी हो जाते हैं। शक्तिसिंहका पुत्र बुद्धसिंह हुआ, उसने तीस वर्ष राज्य किया। उसका पुत्र (शिव) चन्द्रगुप्त^१ हुआ, जिसने पारसीदेशके राजा सुलूब (सेल्यूक्स) की पुत्रीके साथ विवाह कर यवन-सम्बन्धी बौद्धधर्मका प्रचार किया। उसने साठ वर्षतक शासन

किया। चन्द्रगुप्तका पुत्र विन्दुसार (विम्बसार) हुआ। उसने भी पिताके समान राज्य किया। उसका पुत्र अशोक हुआ। उसी समय कल्याङ्कज देशका एक ब्राह्मण आबू पर्वतपर चला गया और वहाँ उसने विष्णुपूर्वक ब्रह्महोत्र सम्पन्न किया। वेदमन्त्रोंके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे चार क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई—प्रमर—परमार (सामवेदी), चपहानि—चौहान (कृष्णायजुवेदी) विवेदी—गहरवार (शुल्क यजुवेदी) और परिहारक (अथर्ववेदी) क्षत्रिय थे। वे सब ऐशवत-कुलमें उत्पन्न गजोंपर आरूढ़ होते थे। इन लोगोंने अशोकके वंशजोंको अपने अधीन कर भारतवर्षके सभी बौद्धोंको नष्ट कर दिया।

अबन्तरमें प्रमर—परमार राजा हुआ। उसने चार योजन विस्तृत अम्बावती नामक पुरीमें स्थित होकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया। (अध्याय ६)

महाराज विक्रमादित्यके चरित्रका उपक्रम

सूतजी बोले—शीनक ! विक्रूट पर्वतके आस-पासके क्षेत्र (प्रायः आजके पूरे बुद्धेलखण्ड एवं वधेलखण्ड)में परिहार नामका एक राजा हुआ। उसने रमणीय कलिंजर नगरमें रहकर अपने पराक्रमसे बौद्धोंको परास्त कर पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त की। राजपूतानेके क्षेत्र (दिल्ली नगर)में चपहानि—चौहान नामक राजा हुआ। उसने अति सुन्दर अजमेर नगरमें रहकर सुखपूर्वक राज्य किया। उसके राज्यमें चारों वर्ण स्थित थे। आनंद (गुजरात) देशमें शुल्क नामक राजा हुआ, उसने द्वारकाको राजधानी बनाया।

शीनकजीने कहा—हे महाभाग ! अब आप अग्रिवंशी राजाओंका वर्णन करें।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो ! इस समय मैं योगनिद्राके वशमें हो गया हूँ। अब आपलोग भी भगवान्का ध्यान करें। अब मैं थोड़ा विश्राम करूँगा। यह सुनकर मुनिगण भगवान् विष्णुके ध्यानमें लौन हो गये। लूम्बे अन्तरालके बाद ध्यानमें उठकर सूतजी पुनः बोले—महामुने ! कलियुगके सैतीस सौ दस वर्ष व्यतीत होनेपर प्रमर नामक राजाने राज्य करना प्रारम्भ

किया। उन्हें महामद (मुहम्मद) नामक पुत्र हुआ, जिसने पिताके शासन-कालके आधे समयतक राज्य किया। उसे देवापि नामक पुत्र हुआ, उसने भी पिताके ही तुल्य वर्षोंतक राज्य किया। उसे देवदूत नामक पुत्र हुआ, उसके गन्धर्वसेन नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्षतक राज्य किया। वह अपने पुत्र शङ्खका अधिष्ठेकर वन चला गया। शङ्खने तीस वर्षतक राज्यभार संभाला। उसी समय देवराज इन्द्रने वीरमती नामक एक देवाङ्गनाको पृथ्वीपर भेजा। शङ्खने वीरमतीसे गन्धर्वसेन नामक पुत्ररत्नको प्राप्त किया। पुत्रके जन्म-समयमें आकाशमें पुष्पवृष्टि हुई और देवताओंने दुर्दभी बजायी। सुखप्रद शीतल-मन्द वायु बहने लगी। इसी समय अपने शिव्योसहित शिवदृष्टि नामके एक ब्राह्मण तपस्याके लिये वनमें गये और शिवकी आशधानासे वे शिवस्वरूप हो गये।

तीन हजार वर्ष पूर्ण होनेपर जब कलियुगका आगमन हुआ, तब उकोंके विनाश और आर्यधर्मकी अपिवृद्धिके लिये वे ही शिवदृष्टि गुहाओंकी निवासभूमि कैलाससे भगवान् शंकरकी आज्ञा पाकर पृथ्वीपर विक्रमादित्य नामसे प्रसिद्ध

१-अब यहाँसे फिर पाटिलियुक्त राजवंशका वर्णन प्रारम्भ हुआ और यह चन्द्रगुप्त द्वीपीर्वशव फहला राजा था। जिसने भारतके साथ अन्य देशोंपर अधिकार किया था, जिन्हें बादमें अशोकने बौद्ध देश बना डाल। उन दिनों वे सभी देश भारतके ही उपनिवेश थे। जिसका यहाँ आगे वर्णन है। चन्द्रगुप्तने ही सेल्यूक्सकी पुरीसे शारीर की थी।

हुए। वे अपने माला-पिताको आनन्द देनेवाले थे। वे बचपनसे ही महान् बुद्धिमान् थे। बुद्धिविशारद विक्रमादित्य पर्वत वर्षकी ही बाल्यावस्थामें तप करने वनमें चले गये। बारह वर्षोंतक प्रयत्नपूर्वक तपस्या कर वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हो गये। उन्होंने अम्बावती नामक दिव्य नगरीमें आकर वतीस मूर्तियोंसे समन्वित, भगवान् शिवद्वारा अभिरक्षित रमणीय और दिव्य सिंहासनको सुशोभित किया। भगवती पार्वतीके द्वारा प्रेषित एक वैताल उनकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। उस वीर राजाने महाकालेश्वरमें जाकर देवाधिदेव महादेवकी पूजा की और अनेक व्यूहोंसे परिपूर्ण धर्म-सभाका निर्माण किया।

जिसमें विविध मणियोंसे विभूषित अनेक धातुओंके स्तम्भ थे। शौनकजी! उसने अनेक लताओंसे पूर्ण, पुष्पान्वित स्थानपर अपने दिव्य सिंहासनको स्थापित किया। उसने वेद-वेदाङ्ग-पारंगत मुख्य ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उनकी पूजाकर उनसे अनेक धर्म-गाथाएँ सुनी। इसी समय वैताल नामक देवता ब्राह्मणका रूप धारण कर 'आपकी जय हो', इस प्रकार कहता हुआ वहाँ आया और उनका अभिवादन कर आसनपर बैठ गया। उस वैतालने रुजासे कहा—'राजन्! यदि आपको सुननेकी इच्छा हो तो मैं आपको इतिहाससे परिपूर्ण एक रोचक आख्यान सुनाता हूँ', इसे आप सुनें। (अध्याय ७)

॥ प्रतिसर्गार्थ, प्रथम खण्ड सम्पूर्ण ॥



१-भारतवर्षमें विक्रमादित्य अस्त्रन्त प्रसिद्ध दानी, एतेवक्तव्यी और रथ्याहु-सदाचारी राजा हुए हैं। राजन् अदि पुण्यों, वृत्तकथा और द्वारिंशत्पुनर्लिङ्ग, सिंहासनवर्णनीयी, कश्चासरित्सागर, पुण्य-परोक्षा आदि घट्योंमें इनका चरित्र वर्णित है। अब इधर कैव्यजड़के हीतिहासके दूसरे भागमें इनका चरित्र आख्या है। वैसे मिथ्य और रिफिन्स्टन आदिने अनेक विक्रमादित्योंकी चर्चा की है, पर ये महाराज विक्रमादित्य उत्तमियोंके राजा थे और कर्त्तव्यास, अपराधिय, वरहीमीहर, वैद्यताज घनस्त्री, घटकार्पण आदि नवरत्न इनकी ही राजसभाकी दिव्य विद्वाद्विभूतियाँ थीं। जिनकी आंग-पीठ कोई उपास नहीं है। राजा भोजसे निकल बादशह अकबरतक सभीने अपनी सभापदों वैसे ही नवरत्नोंसे अलंकृत करनेवाल प्रयत्न किया था।

प्रतिसर्गपर्व

(द्वितीय खण्ड)

स्वामी एवं सेवककी परस्पर भक्तिका आदर्श *

(राजा रूपसेन तथा वीरवरकी कथा)

सूतजी बोले— महामुने ! एक बार रुद्रकिंकर वैतालने सर्वप्रथम भगवान् शंकरका ध्यान किया और फिर महाराज विक्रमादित्यसे इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया—

राजन् ! अब आप एक मनोहर कथा सुनें। प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्धमान नामक नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा रहता था। उसकी पतिव्रता शनीका नाम विद्वन्माला था। एक दिन राजाके दरबारमें वीरवर नामका एक क्षत्रिय गुणी व्यक्ति अपनी पली, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्द्रा वेतन निर्धारित कर महलके सिंहद्वारपर रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। कुछ दिन बाद राजाने अपने गुप्तचरोंसे जब उसकी आर्थिक स्थितिका पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव तथा विष्णुके मन्दिरोंमें आराधनादि कार्योंमें तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिजनोंका पालन करता है। इससे प्रसन्न होकर राजाने उसकी स्थायी नियुक्ति कर दी।

एक दिन जब आर्धी रातमें मूसलाधार बृष्टि, बादलोंकी गरज, विजलीकी चमक एवं झंझावातसे रात्रिकी विभीषिका सीमा पार कर रही थी, उसी समय श्मशानसे किसी नारीकी करुणक्रन्दन-ध्वनि राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलबार लेकर चला, तब राजा भी उसके भवकी आशंका तथा उसके सहयोगके लिये एक तलबार लेकर गुप्तरूपसे स्वयं उसके पीछे लग गया। वीरवरने श्मशानमें पहुँचकर एक खोको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका क्वरण पूछा, तब उसने कहा कि 'मैं इस राज्यकी

लक्ष्मी—राष्ट्रलक्ष्मी हूँ—इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जायगी। राजाकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी'—इसी चिन्तासे मैं रो रही हूँ।

स्वामिभक्त वीरवरने राजाके दीर्घायु होनेका उससे उपाय पूछा। इसपर वह देवी बोली—'यदि तुम अपने पुत्रकी बलि चण्डिकादेवीके सामने दे सको तो राजाके आयुकी रक्षा हो सकती है।' फिर क्या था, वीरवर उलटे पौंछ घर लौट आया और अपनी पली, पुत्र तथा लड़कीके जगाकर उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिकाके मन्दिरमें जा पहुँचा। राजा भी गुप्तरूपसे उसके पीछे-पीछे सर्वत्र चलता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर अपने स्थायीकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चढ़ा दी। भाईका कटा सिर देखकर दुखसे उसकी बहिनका हृदय विदीर्घ हो गया—वह मर गयी और इसी शोकमें उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंका दाह-संस्कार कर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए अपना सिर कटानेके लिये ज्यों ही तलबार खोंची, ज्यों ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ फकड़ लिया और बोली—'राजन् ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी आयु तो सुरक्षित हो ही गयी, अब तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो।' राजाने देवीसे परिजनोंसहित वीरवरको जिलानेकी प्रार्थना की। 'तथासु' कहकर देवी अन्तर्धान हो गयी। राजा प्रसन्न होकर चूपके-से वहाँसे चलकर अपने महलमें आकर लैट गया। इधर वीरवर भी चकित होता हुआ और देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर

* भारतवर्षमें प्राचीन कालसे 'वैताल-पछिंशतिक' या 'वैतालपचोसी'की कथाएँ, जो विक्रम-वैताल-संवादके रूपमें लोकमें अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, उनका मूल भवित्वपूर्ण ही प्रतीत होता है। ये कथाएँ, खी-पुलोंके अमर्यादित एवं अनौतीक आफर्वनसे सम्बन्धित होते हैं, भी लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे निष्ठाप्रद भी हैं। अतः उनमेंसे कुछ कथाएँ, यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आकर खड़ा हो गया।

अनन्तर राजा ने वीरवरको बुलाकर रातमें गेनेवाली नारीके रुदनका कारण पूछा, तो वीरवरने कहा—‘राजन्! वह तो कोई चुहैल थी, मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी। चिन्नाकी कोई बात नहीं है।’ वीरवरकी स्वामिभक्ति और धीरताको देखकर राजा रूपसेन अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपनी कल्याकृति कियाह वीरवरके पुत्रसे कर दिया तथा उसे अपना मित्र बना लिया। इतनी कथा कहकर वैताल शान्त हो गया। वैतालने राजा विक्रमसे फिर पूछा—‘राजन्! इस कथामें परस्पर सबने एक दूसरेके लिये लोहवश अपने प्राणोंका उत्सर्ग किया, पर सबसे अधिक लोह और स्याग किसका था? यह आप बताइये।’

—०००—

ब्राह्मण-पुत्री महादेवीकी कथा

वैतालने कहा—‘राजन्! उज्जियनी नामकी नारीमें चन्द्रवंशमें उत्पन्न महावल नामसे विष्णुत अत्यन्त बुद्धिमान् तथा वेदादि-शास्त्रोंका ज्ञाता एक राजा निवास करता था। उसका स्वामिभक्त हरिदास नामका एक दूत था। हरिदासकी पत्नी भक्तिमाला साधु पुरुषोंकी सेवामें तप्तर रहती थी। भक्तिमालाको सभी विद्याओंमें पारंगत कमलके समान नेत्रवाली अत्यन्त रूपवती एक कन्या उत्पन्न हुई, उसका नाम या महादेवी। एक दिन महादेवीने अपने पिता हरिदाससे कहा—‘तात! आप मुझे ऐसे योग्य पुरुषको दीजियेगा, जो गुणोंमें मुझसे भी अधिक हो, अन्य किसीको नहीं।’ अपनी पुत्रीकी बात सुनकर हरिदास बड़ा प्रसन्न हुआ और ‘ऐसा ही होगा’—कहकर हरिदास राजसभामें आया और उसने राजाका अभिनन्दन किया। तदनन्तर राजा ने कहा—‘हरिदास! तुम मेरे सम्मुख तैलंग देशके राजा हरिष्छन्द्रके पास जाओ और उनका कुशल-समाचार जानकर शीघ्र ही मुझे बताओ।’ हरिदास आशा पाकर राजा हरिष्छन्द्रके पास गया और उसने उन्हें अपने स्थानी महावलका कुशल-समाचार बताया। साथ कुशल-समाचार जानकर राजा हरिष्छन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने हरिदाससे पूछा—‘प्रभो! आप विद्वान् हैं, मुझे यह बताये कि कलिका आगमन हो गया, यह कैसे मालूम होगा?’

हरिदासने कहा—‘राजन्! जब वेदोंकी मर्यादाएँ नह

राजा बोले—यद्यपि सभीने अपने-अपने कर्त्तव्यका अद्भुत आदर्श उपस्थित किया, फिर भी राजाका लोह ही सबसे अधिक मान्य प्रतीत होता है, क्योंकि वीरवर राजसेवक था, उसे अपनी सेवाके प्रतिफलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलती थीं, अतः उसने स्वर्णप्राप्तिकी दृष्टिसे अपना उत्सर्ग किया, वीरवरकी पत्नी पवित्रता थी, धर्मश्वेषी थी, इसलिये उसने अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। बहिनका अपने भाईमें प्रेम था, पुत्रका अपने पितामें लोह था, यह तो स्वभाववश होता ही है, किंतु राजा रूपसेनने महान् लोहका आदर्श उपस्थित किया, जो कि वे एक सामान्य सेवकके लिये भी अपना प्राणोत्सर्ग करनेको उद्यत हो गये, अतः उन्हींका लोहमय स्याग महान् स्याग है।

हो जायें और वेदोक्त धर्म विपरीत दिखलायी देने लगें, तब कलिका आगमन समझना चाहिये, साथ ही कलिके प्रिय म्लेच्छगण कहे गये हैं। अधर्म ही जिसका मित्र है, ऐसे कलिके द्वारा सभी देवताओंको अपमानित किया गया हो, तब कलिका आगमन समझना चाहिये। राजन्! पापकी लौकिका नाम है मृणा (असत्य), उसका पुत्र दुःख कहा गया है। दुःखकी स्त्री है दुर्गति, जो कलियुगमें धर-धरमें व्याप्त रहेगी। सभी राजा क्रोधके वशीभूत हो जायेंगे तथा सभी ब्राह्मण कामके दास हो जायेंगे। धनिक-वर्ग लोभके वशीभूत हो जायगा तथा शूद्रजन महत्वको प्राप्त करेंगे। खियाँ लज्जासे रहित होंगी और सेवक स्वामीके ही प्राण हरण करनेवाले होंगे। पृथ्वी निष्कल (सत्त्वशून्य) हो जायगी। ऐसी स्थितिमें समझना चाहिये कि कलिका आगमन हो गया है, किंतु कलियुगमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जायेंगे, वे ही आनन्दसे रह पायेंगे, अन्य कोई नहीं।

यह सुनकर राजा हरिष्छन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे बहुत-सी दक्षिणा देकर विदा किया तथा राजा महावलका सम्पूर्ण समाचार देकर अपने महलमें चला आया और वह विप्र भी अपने शिविरमें आ गया। उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक बुद्धिमान् ब्राह्मण वहाँ आया और उसने अपनी विशिष्ट विद्याओंका हरिदासके सामने प्रदर्शन किया—उस ब्राह्मणने मन्त्र जपकर देवीकी आराधना की और एक

महान् आकृत्यजनक शीघ्रग नामक विमान प्रकटकर हरिदासको दिखलाया। उसकी विद्याओंसे मुख्य होकर हरिदासने उसे अपनी कन्याके योग्य समझकर उसका वरण कर लिया।

हरिदासका पुत्र था मुकुन्द। वह विद्याध्ययनके लिये अपने गुरुके यहाँ गया था, जब वह अपने गुरुसे विद्याओंको पढ़ चुका तो गुरुदक्षिणाके लिये प्रार्थना करने लगा। गुरुने उससे कहा—‘अरे मुकुन्द! सुनो, तुम गुरुदक्षिणाके रूपमें अपनी बहिन महादेवी मेरे दैवज्ञ पुत्र धीमानको समर्पित कर दो।’ ‘ठीक है’—ऐसा कहकर मुकुन्द अपने घर आ गया।

इधर हरिदासकी पली भक्तिमालामें द्रौणिशिष्य वामन नामक एक विप्रक जो शब्दवेधी वाण चलानेमें कुशल एवं शख्विद्याका ज्ञाता था, उसकी विद्यासे प्रभावित होकर अपनी कन्याके लिये दक्षिणा, तामूल आदिके द्वारा पूजित कर उसका वरण कर लिया।

समय आनेपर पिता, पुत्र तथा माताद्वारा वरण किये गये तीनों गुणवान् ब्राह्मण महादेवी नामवाली उस कन्याको प्राप्त करनेके लिये हरिदासके यहाँ आ पहुँचे। इसी बीच एक गुक्षस अपनी मायासे उस कन्या महादेवीका हरण कर विद्यपर्वतपर चला गया। यह समाचार जानकर ये तीनों कन्यार्थी दुःखी होकर गेने लगे। जब उनमेंसे गुरुपुत्र धीमान् नामक दैवज्ञ विद्वान् ब्राह्मणसे कन्याका पता पूछा गया तो उसने बतलाया कि वह कन्या विद्यपर्वतपर गुक्षलद्वारा हरण कर ले जायी गयी है। तदनन्तर उस कन्याकी प्राप्तिके लिये द्वितीय

बुद्धिकोविद नामक ब्राह्मणने अपने द्वारा बनाये गये आकृताचारी विमानपर उन दोनों विप्रोंको बैठाकर विद्यपर्वतपर पहुँचाया। तथा शब्दवेधी वाणोंको चलानेमें निषुण वामन नामक तीसरे ब्राह्मणने धनुषपर वाणका संधान किया और वाणसे उस राक्षसको मार डाला। वे तीनों कन्या महादेवीको प्राप्त कर उसी विमानमें बैठकर उज्जिमिनोमें वापस लौट आये।

वहाँ पहुँचकर तीनों ब्राह्मण अपने-अपने कार्यका महत्व बताते हुए कन्याके वास्तविक अधिकारी होनेके लिये परस्परमें विवाद करने लगे, यह निर्णय नहीं हो सका कि कन्याका विवाह किसके साथ हो।

बैतालने राजा विक्रमसे पूछा—राजन्! आप बतलाये कि इन तीनोंमें विवाहका अर्थात् कन्या प्राप्त करनेका अधिकारी कौन है?

राजा विक्रमादित्यने कहा—जिस विद्वान् गुरुके पुत्र ज्योतिषी ब्राह्मणने कन्याका यह पता बताया कि वह गुक्षलद्वारा चुहाकर विद्यपर्वतपर पहुँचायी गयी है, वह ब्राह्मण कन्याके लिये पितृतुल्य है और जिस दूसरे ब्राह्मण बुद्धिकोविदने अपने मन्त्रवलद्वारा उत्पन्न विमानसे महादेवी नामकी कन्याको यहाँ पहुँचाया, वह भाईके समान है, किंतु जिस वामन नामक ब्राह्मण युवकने शब्दवेधी वाणोंसे राक्षसके साथ युद्ध कर उसे मार गिराया, वही बीर ब्राह्मण इस कन्याको प्राप्त करनेका योग्य अधिकारी है।

—~~CARTOON~~—

समान-वर्णमें विवाह-सम्बन्धका औचित्य (त्रिलोकसुन्दरीकी कथा)

बैताल पुनः बोला—राजन्! अब मैं एक दूसरी कथा सुनाता हूँ। चम्पापुरी (भागलपुर) नामकी एक प्रसिद्ध नगरी थी, वहाँ चम्पकेश नामका एक बलवान् और धनुर्धारी राजा रहता था। उसकी रानीका नाम था सुलोचना। उसके त्रिलोक-सुन्दरी नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका मुख चन्द्रमाके समान, भौंह धनुषकी प्रत्यक्षाके समान, नेत्र मृगके समान तथा शब्द कोकिलके समान थे। राजन्! उस बालासे देवता भी विवाह करना चाहते थे, अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या? उसके स्वयंवरमें लोकविश्रुत सभी राजा तथा देवराज इन्द्र,

वरुण, कुम्भेर, धर्मराज और यम आदि देवता भी मनुष्यका शरीर धारण करके आये। उनमेंसे इन्द्रदत्तने कन्याके पिता राजा चम्पकसे कहा—‘राजन्! मैं सभी शास्त्रोंमें कुशल हूँ, रूपवान् एवं मनोरम हूँ, अतः आप अपनी पुत्रीको मुझे समर्पित कर दें।’ दूसरे धर्मदत्तने कहा—‘राजन्! मैं धनुर्विद्यामें कुशल एवं मनोरम हूँ, आप अपनी कन्या मुझे समर्पित करें।’ तीसरेने कहा—‘राजन्! मैं नाम धनपाल हूँ, मैं सभी प्राणियोंकी भाषा जानता हूँ, मैं गुणवान् और रूपवान् भी हूँ। आप अपनी कन्या मुझे समर्पित कर सुखी होइये।’

चौथेने कहा—‘राजन् ! मैं सर्वकला-विशारद हूँ, प्रतिदिन अपने उद्योगसे पौंच रज प्राप्त करता हूँ, उनमेंसे पुण्यके लिये एक रज, होमके लिये द्वितीय रज, आत्माके लिये तृतीय रज, पत्रोंके लिये चतुर्थ रज तथा शोष अन्तिम रज भोजनके लिये व्यय करता हूँ। अतः आप अपनी कन्या मुझ सर्वकला-विशारदको प्रदान करें।’

यह सुनकर राजा आश्वर्यने पहुँ गया कि अपनी कन्या मैं किसे हूँ। वह कुछ निष्ठ्य नहीं कर पाया। अस्तमे उसने सारी बातें कन्याको बतायीं और उसने पूछा कि तुम्हें इनमेंसे कौन-सा वर अपीष्ट है, पर कन्या विलोक्य सुन्दरीने रुक्खावरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

बैतालने पूछा—राजन् ! अब आप बतायें कि उस कन्याके योग्य वर इनमेंसे कौन था ?

राजा बोला—रुद्रविकर ! यह रुपवती कन्या विलोक-सुन्दरी धर्मदत्तके योग्य है; क्योंकि इन्द्रदत्त वेदादि शास्त्रोंका ज्ञाता है, अतः वर्णसे वह द्विज कहा जायगा। भागा जानने-वाला तथा धन-धान्यका विस्तार करनेवाला धनवाल विशिष्ट कहा जायगा। तृतीय जो कलाविद् है और रुद्रोंका व्यापार करता है, वह शूद्र कलावेगा। बैताल ! सत्रणके लिये ही कन्या योग्य होती है, अतः धनुर्वेद-शास्त्रमें जो निपुण धर्मदत्त है, वह वर्णसे क्षत्रिय कहलायेगा, इसलिये उस क्षत्रिय कन्याका विवाह धर्मदत्तके साथ ही किया जाना चाहिये।

—३०४—

विषयी राजा राज्यके विनाशका कारण बनता है (राजा धर्मवल्लभ और मन्त्री सत्यप्रकाशकी कथा)

बैतालने पूछः राजासे कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें रमणीय पुण्यसुर (पूता) नगरमें धर्मवल्लभ नामका एक राजा राज्य करता था। उसका मन्त्री सत्यप्रकाश था। मन्त्रीकी रुदीका नाम या लक्ष्मी। एक बार राजा धर्मवल्लभने मन्त्रीसे कहा—‘मन्त्रिवर ! आनन्दके किन्तने भेद है ? यह मुझे बताओ।’ उसने कहा—‘महाराज ! आनन्द चार प्रकारके हैं। (१) प्रायवर्यात्रिमका आनन्द जो ब्रह्मानन्द है, वह श्रेष्ठ है। (२) गृहस्थाश्रमका विषयानन्द मध्यम है। (३) बानप्रस्थका धर्मानन्द सामान्य है और (४) संन्यासमें जो शिवानन्दकी प्राप्ति है, वह आनन्द उत्तम है। राजन् ! इनमें गृहस्थाश्रमका विषयानन्द रुदी-प्रधान है, क्योंकि गृहस्थ-आश्रममें रुदीके विना सुख नहीं मिलता।’

यह सुनकर राजा अपने अनुकूल धर्मप्राप्त्याणा पली प्राप्त करनेके लिये अन्य देशमें चला गया, किन्तु उसे मनोऽनुकूल पली नहीं प्राप्त हुई। तब उसने अपने मन्त्रीसे कहा—‘मेरे अनुरूप कोई रुदी नहीं है।’ यह सुनकर मन्त्री विभिन्न देशोंमें गया। पर जब कहीं भी उसे राजाके योग्य रुदी नहीं मिली तो वह सिन्धु देशमें आकर समुद्रकी ओर बढ़ा। सभी तीर्थमें श्रेष्ठ सिन्धुको देखकर वह प्रसन्न हुआ। मन्त्री सत्यप्रकाशने समुद्रसे इस प्रकार प्रार्थना की—‘सभी रुदोंके आलय, सिन्धुदेशके स्थान ! आपको नमस्कर है। शरणागतवत्सल ! मैं आपकी से था तुम् अं १—

शरणमें आया हूँ, गङ्गा आदि नदियोंके स्वामी जलाधीश ! आपको नमस्कर है। मेरे राजाके लिये आप उत्तम रुदी-रज प्रदान करें। यदि ऐसा आप नहीं करेगे तो मैं अपने प्राण यहीं दे दूँगा।’ नदीपति सागर यह सुन्ति सुनकर प्रसन्न हो गये और उसे जलमें विहुमके पत्तोंवाले, मुकुराली फलसे समन्वित एक वृक्षको दिखाया, जिसके ऊपर मनोरमा, सुकुमारी एक सुन्दरी कन्या स्थित थी। पर कुछ ही क्षणोंमें देखते ही देखते वह कन्या यृक्षसहित पुनः जलमें लीन हो गयी।

यह देखकर अतिशय आश्वर्यचकित होकर मन्त्री सत्यप्रकाश पुनः राजाके पास लौट आया और उसने सारी बातें राजाको सुनायीं। पुनः दोनों समुद्रके किनारे आये। राजाने भी मन्त्रीके समान ही कन्याको यृक्षपर बैठा देखा और राजाके देखते ही वह कन्या पूर्ववत् जलमें प्रविष्ट हो गयी। इस अन्दुत दृश्यको देखकर राजा भी समुद्रमें प्रविष्ट हो गया तथा उसी कन्याके साथ पातालमें पहुँच गया और मन्त्री वापस लौट आया।

राजाने कहा—वहाने ! मैं तुम्हारे लिये यहाँ आया हूँ। गाय्यर्व विवाहमें मुझे प्राप्त करो। उसने हैसकर कहा—‘नृपश्रेष्ठ ! जब कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तिथि आयेगी, तब मैं देवी-मन्दिरमें आकर तुम्हें मिलूँगी।’ राजा लौट आया और पुनः कृष्ण चतुर्दशीके दिन हाथमें तलवार लेकर देवीके

मन्दिरमें गया। यह कन्या राजासे पूर्व ही मन्दिरमें पहुँच चुकी थी। उसी समय बकवाहन नामके एक राक्षसने आकर उस कन्याका सर्प किया। यह देखकर राजा क्रोधान्ध हो गया। उसने राक्षसका सिर तलवारसे कट दिया। पुनः उस कन्यासे कहा—‘भागिनि! तुम सत्य बताओ, यह कौन था और यहाँ कैसे आया?’ उसने कहा—‘राजन्! मैं विद्याधरकी कन्या हूँ। मेरे नाम मदवती है। मैं पिताजीकी प्रिय कन्या हूँ। एक बार मैं किसी समय बनमें गयी थी और भोजनके समय पिता-माताके पास घरमें नहीं पहुँच सकी थी। मेरे पिताजीने ध्यानके द्वारा साए बृक्षान्त जान लिया, उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि ‘मदवती! कृष्ण चतुर्दशीको तुमको राक्षस प्रहण करेगा।’ जब मुझे शापकी बात मालूम हुई, तब मैंने रोते हुए पिताजीसे पूछा—‘देव! मेरी इस शापसे मुक्ति कब होगी?’ उन्होंने कहा—‘पुरी! जब कृष्ण चतुर्दशीको कोई राजा तुम्हारा बरण करेगा, तब तुम्हारे शापकी निवृति हो जायगी।’

मदवतीने कहा—‘राजन्! आपके अनुग्रहसे आज मैं शापसे मुक्त हो गयी हूँ। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं अपने पिताके घर जाना चाहती हूँ। यह सुनकर राजा ने कहा—‘तुम मेरे साथ मेरे घर चलो। इसके बाद मैं तुम्हें तुम्हारे पिताके पास ले जाऊँगा।’ वह राजाकी बात मानकर राजा के गहलमें आ

गयी और राजासे उसका विवाह हो गया। उस राजा के नाममें महान् उत्सव हुआ। मन्त्रीने देखा कि राजा के साथ एक दिव्य कन्या भी आयी है। कुछ दिनों बाद मन्त्री एकालेक मृत्युके प्राप्त हो गया।

बैतालने पूछा—राजन्! बताओ, उस मन्त्रीके मरनेमें क्या करण है? क्या रहस्य है?

राजा विक्रमने कहा—मन्त्री सत्यप्रकाश राजाका मित्र और प्रजाका परम हितैषी था। उसके ही समुद्योगसे राजाको श्रेष्ठ मदवती नामकी विद्याधर-कन्या रानीके रूपमें प्राप्त हुई थी, किंतु मदवतीके साथ विवाहके बाद मन्त्री सत्यप्रकाशने देखा कि राजा मदवतीको पाकर विलासी होते जा रहे हैं और राज्य एवं प्रजाकी उपेक्षा करने लगे हैं। दिन-हत विषय-सुखमें ही लिप्त रहने लगे हैं। यह देखकर उसने समझ लिया कि अब शीघ्र ही इस राज्यका विनाश होनेवाला है; क्योंकि जब राजा विषयी एवं स्वार्थी बन जाता है, तब राज्यका नाश अवश्य होता है। ऐसी स्थितिमें मेरी मन्त्रजाएं भी व्यर्थ सिद्ध होगी, अतः राज्यके विनाशको मैं अपनी आँखोंसे न देख सकूँ, इसलिये पहले ही मैं अपने प्राणोंका उत्तर्ग कर देता हूँ। **बैताल!** यही समझकर मन्त्री सत्यप्रकाशने अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया।

किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है

(हरिस्वामीकी कथा)

बैतालने पुनः कहा—राजन्! चूड़ापुर नामक एक रमणीय नगरमें चूड़ापुरी नामकी एक राजा राज्य करता था। उसकी विशालाक्षी नामकी पतिभासा पली थी। रानीने पुत्रकी कम्मनासे भगवान् शंकरकी आराधना की। उनकी कृपासे उसे कम्मदेवके समान एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो देवताओंके अंशसे सम्भूत था। उसका नाम राजा गया हरिस्वामी। सभी सम्पत्तियोंसे समन्वित वह हरिस्वामी पृथ्वीपर देवताके समान सुख भोगने लगा। देवतमुनिके शापसे एक देवताङ्ना मानुषीरूपमें रूपलालयिक नामसे उत्पन्न होकर राजकुमार हरिस्वामीकी पली हुई। एक समय वह सुन्दरी अपने प्रासादमें आनन्दपूर्वक शाल्यापर शयन कर रही थी। उस समय सुकूल नामक एक गच्छार्थी आया और उसने प्रगाढ़ निद्रामें निमग्न उस रानीका अपहरण कर लिया। जब हरिस्वामी उठा, तब अपनी

पत्रीको न देखकर उसे ढूँढ़ने लगा। उसके न मिलनेपर वह ब्याकुल हो गया और नगर छोड़कर बनमें चला गया तथा सभी विषयोंका परित्याग कर एकमात्र भगवान् श्रीहरिके ध्यानमें लीन हो गया और भिक्षावृतिका आश्रय प्राहणकर संन्यासी हो गया।

एक दिन वह संन्यासी (राजा हरिस्वामी) भिक्षा माँगनेके लिये एक ब्राह्मणके घर आया और ब्राह्मणने प्रसन्नतापूर्वक खीर बनाकर उसको दी। खीरका पात्र लेकर वह बहासे जान करने लगा आया। खीरका पात्र उसने बटवृक्षपर रख दिया और स्वयं नदीमें जान करने लगा। उसी समय कहींसे एक सर्प आया और उसने उस खीरमें अपने मुँहसे विष उगल दिया। जब संन्यासी हरिस्वामी जानसे आकर खीर खाने लगा तो विषके प्रभावसे वह बेहोश होने लगा और उस ब्राह्मणके

पास आकर कहने लगा—‘अरे दुष्ट ब्राह्मण ! तुम्हारे द्वारा दिये गये विषमय खीरको खाकर अब मैं मर रहा हूँ। इसलिये तुम्हें ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।’ यह कहकर वह संन्यासी मर गया और उसने अपनी तपस्याके प्रभावसे शिवलोकवाले प्राप्त किया।

बैतालने राजासे पूछा—एजन् ! इनमें ब्रह्महत्याका पाप किसको लगेगा ? यह मुझे बताओ।

राजाने कहा—विषधर नागने अज्ञानवश स्वभावतः उस पायसको विषमय कर दिया, अतः ब्रह्महत्याका पाप उसे नहीं होगा।

चूँकि संन्यासी बुझक्षित था और भिक्षा माँगने ब्राह्मणके घर आया था, ब्राह्मणके लिये वह अतिथि देव-स्वरूप था। अतः अतिथिधर्मका पालन करना उसके कुल-धर्मके अनुकूल

ही था। उसने श्रद्धासे खीर बनाकर संन्यासीको निवेदित किया; ऐसेमें वह कैसे ब्रह्महत्याका भागी बन सकता है ? यदि वह विष मिलाकर अब देता, तभी ब्रह्महत्या उसे लगती, क्योंकि अतिथिका अपमान भी ब्रह्महत्याके समान ही है। अतः ब्राह्मणको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। शेष बच गया वह संन्यासी। चूँकि अपने किये गये शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है। अतः वह संन्यासी अपने किसी जन्मान्तरीय कर्मवश कालकी प्रेरणासे स्वतः ही मरा, उसकी मृत्यु स्वाभाविक रूपसे ही हुई। इसमें किसीका दोष नहीं। पायसका भोजन करना तो मरनेमें केवल निमित्तमात्र ही था। अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। इस प्रकार इन तीनोंमें किसीको भी ब्रह्महत्या नहीं लगेगी।

जीवन-दानका आदर्श (जीमूतवाहन और शत्रुघ्नीकी कथा)

खट्किंकर बैतालने राजा विक्रमादित्यसे कहा—महाराज ! कान्यकुब्ज (कन्नीज)में दानशील, सत्यवादी एवं देवी-पूजनमें तत्पर एक ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिग्रहसे प्राप्त द्रव्यका दान कर देता था। एक बार शारदीय नवदुर्गाका व्रत आया। उसे दानमें कुछ भी द्रव्य प्राप्त नहीं हो सका, अतः वह बहुत चिन्तित हो गया, सोचने लगा, कौन-सा उपाय करें, जिससे मुझे द्रव्यकी प्राप्ति हो। मैंने दुर्गा-पूजामें कन्याओंको निमन्त्रित किया है, अब उन्हें कैसे भोजन कराऊंगा। वह इसी चिन्तामें निमग्न हो रहा था कि देवीकी कृपासे उसे अनायास पाँच मुद्राएँ प्राप्त हो गयीं और उसीसे उसने व्रत सम्पन्न किया। उसने नौ दिनोंतक निराहर व्रत किया था। उस व्रतके प्रभावसे मरकर उसने देवस्वरूपको प्राप्त किया। फलतः वह विद्याधरोंका स्वामी जीमूतकेतु हुआ। वह हिमालय पर्वतके रम्य स्थानमें रहता था। वहाँ वह भक्तिपूर्वक कल्पवृक्षकी पूजा भी करता था। उस वृक्षके प्रभावसे उसे सभी कल्पाओंमें कुशल जीमूतवाहन नामका एक पुत्र प्राप्त हुआ।

पूर्वजन्ममें वह जीमूतवाहन मध्यदेशका शूरसेन नामक राजा था। किसी समय वह राजा शूरसेन आखेटके लिये महर्षि वात्मीकिंवि निवासभूमि उत्पलावर्त नामक बनमें आया। वहाँ

चैत्र शुक्ला नवमीको उसने विधिवत् रामजन्मका श्रीरामनवमी-उत्सव किया। उसने महर्षि वात्मीकिंवि कुटीमें गत्रि-जागरण भी किया। राममयी गाथाके श्रवणजन्य पुण्यके प्रभावसे वह शूरसेन राजा ही जीमूतकेतुके पुत्र-रूपमें जीमूतवाहन नामक विद्याधर हुआ।

उस महात्मा जीमूतवाहनने भी कल्पवृक्षकी श्रद्धापूर्वक पूजा की। एक वर्षके भीतर ही प्रसन्न होकर उस वृक्षने उससे वर माँगनेको कहा। इसपर जीमूतवाहनने कहा—‘महावृक्ष ! मैंना नगर आपकी कृपासे धन-धान्य-सम्पन्न हो जाय। कल्पवृक्षने नगरको पृथ्वीमें सर्वश्रेष्ठ कर दिया। वहाँ कोई भी ऐसा नहीं था जो कल्पवृक्षके प्रभावसे राजाके समान न हो गया हो। अनन्तर वे पिता और पुत्र दोनों तपस्याके लिये बनमें चले गये और अतिशय रमणीय मलयाचलपर कठोर तपस्या करने लगे।

एजन् ! एक दिन राजा मलयाचलकी पुत्री कमलाक्षी शिवकी पूजाके लिये अपनी सखियोंके साथ शिव-मन्दिरमें आयी। उसी समय जीमूतवाहन भी पूजाके लिये मन्दिरमें पहुँचा। सभी अलंकारोंसे अलंकृत दिव्य राजकन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छा जीमूतवाहनको जाप्रत् हुई तथा इसके

लिये उसने प्रार्थना भी की। अन्तमें कन्याके पिता मलयधनजे जीमूतवाहनसे उसका विवाह करा दिया।

रुजा मलयधनजका पुत्र विश्वावसु एक दिन अपने बहनोई जीमूतवाहनके साथ गन्धमादन पर्वतपर गया। वहाँ उसने नर-नारायणको प्रणाम किया। उसी शिखरपर भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़ आया। उस समय शङ्खचूड़ नागकी माता, जहाँ जीमूतवाहन था वहाँ विलाप कर रही थी। उसीके करणक्रन्दनको सुनकर दीनवस्तल जीमूतवाहन दुःखी होकर शीघ्र ही वहाँ पहुँचा। बृद्धको आशासन देकर उसने पूछा—‘तुम क्यों ये रही हो? तुम्हें क्या कष्ट है?’ वह बोली—‘देव! आज मेरा पुत्र गरुड़का भक्ष्य बनेगा, उसके वियोगके कारण दुःखसे व्याकुल होकर मैं ये रही हूँ।’ यह सुनकर रुजा जीमूतवाहन गरुड़-शिखरपर गया। गरुड़ उसे अपना भक्ष्य समझकर पकड़कर आकाशमें ले गया। जीमूतवाहनकी पत्नी कमलाक्षी आकाशमें गरुड़के द्वारा भक्षण किये जाते हुए अपने पतिको देखकर दुःखसे रोने लगी। परंतु बिना कठूले खाये जाते उस जीमूतवाहनकी मानव-रूपमें देखकर गरुड़ डर गया और जीमूतवाहनसे कहने लगा—‘तुम मेरे भक्ष्य क्यों बन गये?’ इसपर उसने कहा—‘शङ्खचूड़ नागकी माता बड़ी दुःखी थी, उसके पुत्रकी रक्षाके लिये मैं तुम्हारे पास आया।’ जब यह घटना शङ्खचूड़ नागको मालूम हुई तो दुःखी होकर वह शीघ्र ही गरुड़के पास आया और कहने लगा—‘कृपासागर! आपके भोजनके लिये मैं उपस्थित हूँ। महामते! इस दिव्य मनुष्यको छोड़कर मुझे अपना आहार बनाइये।’ जीमूतवाहनकी महानता और परोपकारकी भावना

देखकर गरुड़ अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने विद्याधर जीमूतवाहनको तीन वर दिये। ‘अब मैं आगे से कभी शङ्खचूड़के बेशजोंके नहीं खाऊँगा। श्रेष्ठ जीमूतवाहन! तुम विद्याधरोंकी नगरीमें श्रेष्ठ राज्य प्राप्त करोगे और एक लाख वर्षतक आनन्दका उपभोग कर वैकुण्ठ प्राप्त करोगे।’ इतना कहकर गरुड़ अन्तर्हित हो गया और जीमूतवाहनने पितासे राज्य प्राप्त किया तथा अपनी पत्नी कमलाक्षीके साथ राज्य-मुख भोगकर अन्तमें वह वैकुण्ठलोकको चला गया।

वैतालने राजासे पूछा—‘भूपते! अब आप बताइये कि शङ्खचूड़ तथा जीमूतवाहन—इन दोनोंमें किसको महान् फल प्राप्त हुआ और दोनोंमें कौन अधिक साहसी था?’

रुजा बोला—‘वैताल! शङ्खचूड़को ही महान् फल प्राप्त हुआ; व्योमिं उपकार करना तो रुजाका स्वभाव ही होता है। रुजा जीमूतवाहनने शङ्खचूड़के लिये यहाँपि अपना जीवन देकर महान् त्याग एवं उपकार किया, उसीके फलस्वरूप गरुड़ने प्रसन्न होकर उसे राज्य एवं वैकुण्ठ-प्राप्तिका वर प्रदान किया, तथापि रुजा होनेसे जीमूतवाहनका जीवन-दान (नागकी रक्षा करना) कर्तव्यकोटिमें आ जाता है। अतः उसका त्याग शङ्खचूड़के त्याग एवं साहसके सामने महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता, परंतु शङ्खचूड़ने निर्भय होकर अपने शत्रु गरुड़को अपना शरीर समर्पित कर एक महान् धर्मात्मा रुजाके प्राण बचाये थे। अतः शङ्खचूड़ ही सबसे बड़े फलका अधिकारी प्रतीत होता है। वैताल रुजाके इस उत्तरसे संतुष्ट हो गया।

साधनामें मनोयोगकी महत्ता (गुणाकरकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन्! उज्जित्यनीमें महासेन नामका एक रुजा था। उसके राज्यमें देवशर्मा नामका एक ब्राह्मण रहता था। देवशर्माका गुणाकर नामक एक पुत्र था, जो द्यूत, मद्य आदिका व्यसनी था। उस दुष्ट गुणाकरने पिताका सारा धन दूत आदिमें नष्ट कर दिया। उसके बन्धुओंने उसका परिल्पण कर दिया। वह पृथ्वीपर इधर-उधर भटकने लगा। दैवयोगसे गुणाकर एक सिद्धके आश्रममें आया, वहाँ कफदर्दी

नामके एक योगीने उसे कुछ खानेको दिया, किन्तु भूखसे पीड़ित होते हुए भी उसने उस अन्नको पिशाच आदिसे दूषित समझकर ग्रहण नहीं किया। इसपर उस योगीने उसके आतिथ्यके लिये एक यक्षिणीको बुलाया। यक्षिणीने आकर गुणाकरका आतिथ्य-स्वागत किया। तदनन्तर वह वैताल-शिखरपर चली गयी। उसके वियोगसे विहूल होकर गुणाकर पुनः योगीके पास आया। योगीने यक्षिणीको आकृष्ट करनेवाली

विद्या गुणाकरको प्रदान की और कहा—‘बत्स ! तुम चालीस दिनतक जलमें स्थित रहकर आधी रातमें इस शुभ मन्त्रका जप करो । ऐसा करनेपर यदि तुम मन्त्र सिद्ध कर लोगे तो मन्त्रकी शक्तिके प्रभावसे वह यक्षिणी तुम्हें प्राप्त हो जायगी । गुणाकरने वैसा ही किया, किंतु वह यक्षिणीको प्राप्त नहीं कर सका । अन्तमें विवश होकर योगीकी आज्ञासे अपने घर लौट आया । उसने अपने माता-पिताको नमस्कार कर वह गति बितायी । दूसरे दिन प्रातः वह गुणाकर संन्यासियोंके एक मठमें गया और वहाँ शिव्य-रूपमें रहने लगा । पञ्चाश्रिके मध्यमें स्थित होकर उसने पवित्र हो यक्षिणीको प्राप्त करनेके लिये कपर्दीद्वारा बताये गये मन्त्रका पुनः जप करना प्रारम्भ किया, पर यक्षिणी फिर भी नहीं आयी, जिससे उसे बड़ा कष्ट हुआ ।

वैतालने ज्ञानविशारद राजा से पूछा—‘महाभाग ! गुणाकर अपनी त्रिया यक्षिणीको कहों नहीं प्राप्त कर सका ?’

राजा बोला—रुद्रकिंकर ! साधककी सिद्धिके लिये तीन आवश्यक गुण होने चाहिये—मन, वाणी तथा शरीरका ऐकात्म्य । मन और वाणीकी एकतासे किया गया कर्म परलोकमें सुखप्रद होता है । वाणी और शरीरसे किया गया कर्म सुन्दर होता है । वह इस जन्ममें आंशिक फल देता है

और परलोकमें अधिक फलप्रद होता है । मन और शरीरके द्वारा किया गया कर्म दूसरे जन्ममें सिद्ध प्रदान करता है; परंतु मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंकी तन्मयतासे सम्पादित कर्म इस जन्ममें ही शीघ्र फल प्रदान करता है और अन्तमें मोक्ष भी प्रदान करता है । अतः साधकको कोई भी कार्य अत्यन्त मनोयोगसे करना चाहिये ।

गुणाकरने यहापि दो बार बड़े कष्टपूर्वक मन्त्रका जप किया; किंतु दोनों ही बासकी साधनामें मनोयोगकी कमी रही । जलके भीतर तथा पञ्चाश्रि-सेवन आदिमें शरीरका योग रहा और वाणीसे जप भी होता रहा, किंतु गुणाकरका मन मन्त्रमें न लगकर यक्षिणीमें लगा हुआ था । इसी कारण उसे मन्त्र-शक्तिपर विक्षास भी न हो सका । शरीर और वाणीका योग होते हुए भी मनका योग न रहनेके कारण गुणाकर यक्षिणीको प्राप्त न कर सका, किंतु कर्म तो उसने किया ही था, फलतः परलोकमें वह यक्ष हुआ और यक्ष होकर यक्षिणीको प्राप्त किया । इससे यह सिद्ध हुआ कि किसी भी कार्यकी पूर्ण सिद्धिके लिये मन, वाणी और शरीर—इन तीनोंका ही योग आवश्यक है । इनमें भी मनका योग परम आवश्यक है ।

संतानमें समान-भाव रखें

(मझले पुत्रकी कथा)

वैतालने पुनः कहा—राजन् ! चिक्रकूटमें रूपदत्त नामका एक विख्यात राजा रहता था । एक दिन वह एक मृगका पीछा करते हुए एक बनमें प्रविष्ट हो गया । मध्याह्न-कालमें वह एक सगेवरके पास पहुंचा और वहाँ उसने अपनी सखीके साथ कमल-पुष्पोंका चयन करती हुई एक सुन्दर मुनि-कन्याको देखा । उसके श्रेष्ठ रूपको देखकर राजाने उसे अपनी रानी बनानेका निष्ठय किया । वह कन्या भी राजाको देखकर प्रसन्न हुई । दोनों परस्पर प्रीतिपूर्वक एक दूसरेको देखने लगे । उसकी सखीसे राजाने जब उस कन्याका पता पूछा, तब उसने कहा कि यह एक मुनिकी धर्मपुत्री है । उसी समय उस कन्याके पिता वहाँ आ पहुंचे । मुनिको देखकर राजाने विनयपूर्वक उससे पूछा—‘मुने ! उत्तम धर्म क्या है ?’

इसपर महामनीषी मुनि बोले—‘राजन् ! असहायका पालन-पोषण, शरणागतकी रक्षा और दया करना यही मुख्य धर्म है । भयभीतको अभय-दान देनेके समान कोई दान नहीं है । उद्धोड़नेको दण्ड देना चाहिये । पूज्यजनोंकी पूजा करनी चाहिये । गौ एवं ब्राह्मणमें नित्य आदर-भाव रखना चाहिये । दण्ड देनेमें समान-भाव रखना चाहिये, पक्षपात नहीं करना चाहिये । देवताकी पूजामें छल-छूट एवं कपटको छोड़कर श्रद्धा-भक्ति-रूपी सत्यका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । गुरु एवं श्रेष्ठ जनोंकी पूजामें इन्द्रिय-निग्रह एवं समाहितचित्तताका विशेष ध्यान रखना चाहिये । दान देते समय मृदुताका आश्रय ग्रहण करना चाहिये । थोड़े-से भी हुए निन्दा कर्मको बहुत बड़ा अपराध समझकर सर्वथा उससे विरत रहना चाहिये ।

ऐसा कहकर उस मुनिने अपनी कन्याका विवाह राजकुमारके साथ कर दिया। राजा उसे लेकर अपनी राजधानीकी ओर चला। मार्गमें उसने एक बटवृक्षके नीचे विश्राम किया। उसी समय उसकी पत्नीको खा जानेके लिये एक राक्षस वहाँ आया और कहने लगा कि 'तुम दोनों मेरा स्थान अपवित्र कर दिया है, अतः मैं तुमलोगोंको खा जाऊँगा।' राजाके क्षमा माँगेपर उसने पुनः कहा—'यदि तुम किसी सात वर्षके ब्राह्मण-बालकको मेरे खानेके लिये प्रस्तुत करो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' राजा राक्षसको वचन देकर अपनी पत्नीके साथ महलमें चला आया।

दूसरे दिन राजाने मन्त्रियोंको सब समाचार कह सुनाया। मन्त्रियोंके परामर्शपर राजाने एक ब्राह्मणको एक लक्ष्य स्वर्ण-मुद्राएँ देकर उसके मध्यम पुत्रको राक्षसको समर्पित करनेके लिये राजी कर लिया। उस ब्राह्मणपुत्रने भी पिताके लिये अपना बलिदान देना स्वीकार कर लिया। यथासमय उसे

लेकर सभी राक्षसके पास पहुँचे। ज्यों ही बलिदानका बालक पहले हैंसा और फिर उच्च स्वरसे रोने लगा।

वैतालने पूछा—राजन्! बताओ कि मृत्युके समय वह ब्राह्मण-बालक पहले क्यों हैंसा और बादमें फिर क्यों रोया?

राजाने कहा—**वैताल!** बड़ा पुत्र पिताको प्रिय होता है और छोटा पुत्र माताको प्रिय होता है। इसलिये माता-पितासे अपनेको उपेक्षित जानकर और अन्य कोई शरण न देखकर बड़ी आशासे मध्यम पुत्रने राजाकी शरण ग्रहण की, परंतु अपनी पत्नीका प्रिय चाहनेवाले उस निर्दियी राजा रूपदत्तके हाथमें मृत्युरूपी तलवार देखकर उस ब्राह्मणकुमारको पहले हैंसी आ गयी और फिर मेरा यह उत्तम शरीर अधम राक्षसको प्राप्त होगा, यह सोचकर वह दुःखी होकर उच्च स्वरसे रोता हुआ पश्चात्पाप करने लगा। वैताल राजाके इस उत्तरसे बहुत प्रसन्न हुआ।

पढ़ो कम, समझो ज्यादा

(चार मूर्खोंकी कथा)

वैतालने राजासे पुनः कहा—राजन्! रमणीय जयपुरमें वर्धमान नामका एक राजा था। उसके गाँवमें वेदवेदाङ्गपाठगत विष्णुसामी नामका एक ब्राह्मण निवास करता था। वह राधा-कृष्णका भक्त था। उसके चार पुत्र थे, जो विभिन्न व्यसनोंमें लगे रहते थे। वे जैसा निन्दित कर्म करते थे, वैसा ही उनका नाम भी निन्दित ही हो गया। पहला पुत्र द्यूतकर्मा था, दूसरा व्यभिचारी, तीसरा विषयी और चौथा नास्तिक था। संयोगसे दुर्भाग्यवश वे सभी निर्धन हो गये। एक बार वे सभी अपने पिता विष्णुशमकि पास गये। उन लोगोंने विनयपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और कहा—'पिताजी! हमलोगोंकी लक्ष्मी कैसे नष्ट हो गयी?' पिताने कहा—'द्यूतकर्मा! द्यूतकर्म धनको नष्ट कर देता है। यह पापका मूल है। द्यूतकर्मसे व्यभिचार, चौर्य और निर्दयता आदि उत्पन्न होते हैं। यह महान् दुष्परिणामकारी है। द्यूतकर्म

करनेके कारण तुम्हारे द्रव्यका नाश हुआ।' यह सुनकर उसने कहा—'पितृचरण! आप मुझे कृपया धन-प्राप्तिका सही मार्ग बतायें।' पिताने कहा—'तीर्थ और ब्रतके प्रभावसे तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेंगे। तुम अपने माता-पिताकी बातोंपर ध्यान दो, उनका कहना मानो।' तदनन्तर पिताने द्वितीय पुत्रसे कहा—'पुत्र! तुम व्यभिचारी हो। वेश्याका संग बड़ा अशुभ है। तुम इस अशुभ कर्मको त्वागकर ब्रह्मचर्यपूर्वक ब्रह्मपरायण हो। ब्रह्मचर्यव्रत धारण करो।' तृतीय पुत्र विषयीसे कहा—'मांस और मदिरा सदा पापकी वृद्धिके कारण हैं, इनके द्वारा तुम चौर्य-कर्म करोगे और नरकगामी होगे, इसलिये तुम ऐश्वर्यसम्पन्न जगत्पति, सर्वोत्तम भगवान्, विष्णुके निमित्त द्रव्योंको समर्पित कर मौन होकर भोजन करो।' और अपने नास्तिक पुत्रसे कहा—'तुम देवनिन्दा आदि नास्तिक-भावको छोड़कर शुद्ध आस्तिक-मार्गिका अवलम्बन

अनहान् दण्डमादद्वार्दहूप्लाप्तं भजेत् । मित्रता गोद्विजे विवेचं समता दण्डनिवहे ॥
सलक्ता सुरपूजायां दमता गुणपूजने । मृदुता दानसमये संतुष्टिनिन्दाकर्मणि ॥

(प्रतिसर्गपर्व २ । १९ । ५-७)

करो, आत्मा शुद्ध-बुद्ध एवं नित्य है और महादेवी चण्डिका महाशक्ति है। सभी प्राणियोंके हृदय-गुहामें स्थित देवतागण परमात्माके अङ्ग हैं। उनका ज्ञान प्राप्तकर पापकी शान्तिके लिये उनकी पूजा करो।'

यह सुनकर वे चारों पुत्र अपने पिताके द्वारा निर्दिष्ट साधनोंमें प्रवृत्त हो गये और सुन्दर ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सर्वेश्वर शिखकी आराधना भी करने लगे। भगवान् शंकरने वर्षभरमें उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान कर दी। वे संजीवनी विद्या प्राप्त कर एक बनमें आये और वहाँ बिशुरी व्याघ्रकी अस्थियोंपर विद्याकी परीक्षा करने लगे। प्रथम पुत्रने मरे हुए व्याघ्रकी अस्थियोंको एकत्र करके उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का। उस मन्त्रके प्रभावसे वे अस्थियाँ पंजर-रूप हो गयीं। दूसरे व्यभिचारी पुत्रने उसपर मन्त्रपूत जल छिड़का। जिसके प्रभावसे वह पंजर मांस और रुधिरसे सम्पन्न हो गया। विषयी पुत्रने उसके ऊपर अभिमन्त्रित जल छिड़का। फलस्वरूप त्वचा और प्राण उसमें आ गये। सोये हुए व्याघ्रको जीवित करनेके लिये नास्तिक पुत्रने जल छिड़का। मन्त्रके प्रभावसे जीवित होनेपर उस व्याघ्रने उन सभीका भक्षण कर लिया।

वैतालने राजासे पूछा—राजन्! अब आप बतायें कि उन चारोंमें सबसे बड़ा मूर्ख कौन था?

राजा बोले—जिसने मरे हुए व्याघ्रको जिलाया,

वही सबसे बड़ा मूर्ख है। इस उत्तरसे वैताल अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

वैतालने पुनः राजासे कहा— राजा विक्रमादित्य ! भगवान् शंकरकी आज्ञासे ही मैं तुम्हारे पास आया था। अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तरोंके द्वारा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली और तुमने सबका बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारी भुजाओंमें मेरा निवास रहेगा, जिससे तुम पृथ्वीके समस्त शत्रुओंको जीत लोगे। दस्युओंके द्वारा सभी पुरियाँ, विविध क्षेत्र, नगर आदि नष्ट कर दिये गये हैं। इसलिये शास्त्रमें बताये गये परिमाणके आधारपर पुनः उनकी रक्षा करवाओ और न्यायपूर्वक पृथ्वीका शासन करो। तुम्हारे राज्यमें पुनः धर्मकी स्थापना होगी।

इतना कहकर वह वैताल देवीकी आराधनाका निर्देश देकर वहाँ अन्तर्भूत हो गया। राजा विक्रमादित्यने मुनियोंकी आज्ञासे अक्षमेघ-यज्ञ किया और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। धर्मपूर्वक राज्य करते हुए अन्तमें राजा विक्रमादित्यने स्वर्गलोक प्राप्त किया।

राजा विक्रमादित्यके स्वर्गगमनको जानकर शौनकादि महर्षियोंने लोमहर्षण सूतजी महाराजसे पुनः इतिहास एवं पुण्यमयी कथाओंका श्रवण किया और फिर आनन्दित होते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंकी ओर चले गये। (अध्याय १—२३)



सत्यनारायणब्रत-कथा

[भारतवर्षमें सत्यनारायणब्रत-कथा अत्यन्त लोकप्रिय है और जनता-जनर्दनमें इसका प्रचार-प्रसार भी सर्वाधिक है। भारतीय सनातन परम्परामें किसी भी माझलिक कार्यका प्रारम्भ भगवान् गणपति के पूजनसे एवं उस कार्यकी पूर्णता भगवान् सत्यनारायणकी कथा-श्रवणसे समझी जाती है। वर्तमान समयमें भगवान् सत्यनारायणकी प्रचलित कथा स्कन्दपुराणके रेखाखण्डके नामसे प्रसिद्ध है, जो पाँच या सात अध्यायोंके रूपमें उपलब्ध है। भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वमें भी भगवान् सत्यनारायणब्रत-कथाका उल्लेख मिलता है, जो छः अध्यायोंमें प्राप्त है। यह कथा स्कन्दपुराणकी कथासे मिलती-जुलती होनेपर भी विशेष रोचक एवं श्रेष्ठ प्रतीत होती है। सत्यनारायणब्रत-कथाकी प्रसिद्धिके साथ अनेक शंका-समाधान भी इसपर होते रहते हैं तथा लोग यह भी पूछते हैं कि साधु वर्णिक, काष्ठविक्रेता, शतानन्द ब्राह्मण, उत्कमुख, तुंगध्वज आदि राजाओंने कौन-सी कथाएँ सुनी थीं और वे कथाएँ कहाँ गयीं तथा इस कथाका प्रचार कबसे हुआ? इस सम्बन्धमें यही जानना चाहिये कि कथाके माध्यमसे मूल सत्-तत्त्व परमात्माका ही इसमें निरूपण हुआ है, जिसके लिये गीतामें 'नासतो विद्धते भावो नाभावो विद्धते सतः' आदि शब्दोंमें यह स्पष्ट किया गया है कि इस मायामय दुःखद संसारकी वास्तविक सत्ता ही नहीं है। परमेश्वर ही त्रिकालाबाधित सत्य है और एकमात्र वही ज्ञेय, ध्येय एवं उपास्य है। ज्ञान-वैराग्य और अनन्य भक्तिके द्वारा वही साक्षात्कार करनेके योग्य है। भागवत (१०। २। २६)में भी कहा गया है—

सत्यब्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनि निहितं च सत्ये ।

सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्माः ॥

यहाँ भी सत्यब्रत और सत्यनारायणब्रतका तात्पर्य उन शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मासे ही है। इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोकमें—

अनन्तभवेऽनन्तं भवन्तत्त्वेव त्रुतत्त्वजन्तो मृगयन्ति सत्तः ।

असत्तमव्यन्त्यहिमन्तरेण सत्तं गुणं तं किमु यन्ति सत्तः ॥ (श्रीमद्भा० १०। १४। २८)

—संसारमें मनीषियोद्वारा सत्य-तत्त्वकी खोजकी बात निर्दिष्ट है, जिसे प्राप्तकर मनुष्य सर्वथा कृतार्थ हो जाता है और सभी आराधनाएँ उसीमें पर्याप्तित होती हैं। निष्काम-उपासनासे सत्यस्वरूप नारायणकी प्राप्ति हो जाती है।

अतः श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजन, कथा-श्रवण एवं प्रसाद आदिके द्वारा उन सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा भगवान् सत्यनारायणकी उपासनासे लाभ उठाना चाहिये।—सत्यादक]

कथाका उपक्रम—

व्यासजी बोले—एक समयकी बात है, नैमित्यारण्यमें शौनकादि ऋषियोंने पौराणिक श्रीसूतजीसे विनयपूर्वक पूछा—‘भगवन्! संसारके कल्याणके लिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि चारों युगोंमें कौन पूजनीय और कौन सेवनीय है तथा कौन सबके अपीष्ट मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है? मानव अनायास ही किसकी आराधनाद्वारा अपनी मङ्गलमयी कामनाको प्राप्त कर सकता है? ब्रह्मन्! आप ऐसे सत्य उपायको बतलायें जो मनुष्योंकी कीर्तिको बढ़ानेवाला हो। शौनकादि ऋषियोद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीसूतजी भगवान् सत्यनारायणकी प्रार्थना करने लगे—

नवाम्बोजनेत्रं	रमाकेलिपात्रं
चतुर्द्वार्हुचामीकरं	चारुगात्रम् ।
जगत्वाणहेतुं	रिपौ धूप्रकेतुं
सदा सत्यनारायणं	स्तौमि देवम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २४। ४)

(श्रीसूतजीने प्रार्थना करते हुए कहा—)

‘प्रफुल्लित नवीन कमलके समान नेत्रवाले, भगवती लक्ष्मीके क्रीडापात्र, चतुर्भुज, सुवर्णकान्तिके समान सुन्दर शरीरवाले, संसारकी रक्षा करनेके एकमात्र मूल कारण तथा शत्रुओंके लिये धूप्रकेतुस्वरूप भगवान् सत्यनारायणदेवकी मै

सुति करता हूँ।'

श्रीरामं सहलक्ष्मणं सकरुणं सीतानितं सात्त्विकं

वैदेहीमुखपदालुभ्यमधुयं पौलस्यसंहारकम् ।

वन्दे वन्दापदाम्बुजं सुखरं भक्तानुकम्पाकरं

शशुभ्रेन हनुमता च भरतेनासेवितं राघवम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २ । २४ । ५)

'जो भगवान् करुणाके निधान हैं, जिनके चरणकमल वन्दनीय हैं, जो भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं, जो लक्ष्मणजीके साथ रहते हैं और माता श्रीसीतासे समन्वित हैं तथा माता वैदेही श्रीजनकनन्दिनीजीके मुख-कमलकी ओर स्त्रियध्यावसे देखते रहते हैं, उन शशुभ्र, हनुमान् तथा भरतेसे सेवित, पुलस्यकुलका संहार करनेवाले, सत्स्वरूप सुरेण्ठ रघवेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी मैं वन्दना करता हूँ।'

सूतजीने कहा—ऋषियो ! अब मैं आपसे श्रेष्ठ राजाओंके चरित्रोंसे सम्बद्ध एक इतिहासका वर्णन करता हूँ, उसे आपलोग श्रवण करें। यह पवित्र आख्यान कलियुगके सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला, कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, देवताओंद्वारा आभासित, ब्राह्मणोंद्वारा प्रकाशित, विद्वानोंको आनन्दित करनेवाला तथा विशेष रूपसे सत्संगकी चर्चास्वरूप है।

ऋषियो ! एक समय योगी देवर्षि नारदजी सबके कल्याणकी कामनासे विविध लोकोंमें भ्रमण करते हुए इस मृत्युलोकमें आये। यहाँ उन्होंने देखा कि अपने-अपने किये गये कर्मोंके अनुसार संसारके प्राणी नाना प्रकारके कलेशों एवं दुःखोंसे दुःखी हैं और विविध आधि एवं व्याधिसे ग्रस्त हैं। यह देखकर उन्होंने सोचा कि कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे इन प्राणियोंके दुःखका नाश हो। ऐसा विचारकर के विष्णु-लोकमें गये। वहाँ उन्होंने शहु, चक्र, गदा, पद्म और वनमालासे अलंकृत, प्रसन्नमुख, शान्त, सनक-सनन्दन तथा सनलकुमारादिसे संस्तुत भगवान् नारायणका दर्शन किया। उन देवाधिदेवका दर्शनकर नारदजी उनकी इस प्रकार सुति करने लगे—'वाणी और मनसे जिनका स्वरूप परे हैं और जो अनन्तशक्तिसम्पन्न हैं, अदि, मध्य और अन्तसे रुहित हैं, ऐसे

महान् आत्मा निर्गुणस्वरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है। सभीके आदिपुरुष लोकोपकारपरायण, सर्वत्र व्याप्त, तपोमूर्ति आपको मेरा बार-बार नमस्कार है।'

देवर्षि नारदकी सुति सुनकर भगवान् विष्णु बोले—देवर्षे ! आप किस कारणसे यहाँ आये हैं ? आपके मनमें कौन-सी चिन्ता है ? महाभाग ! आप सभी बातें बतायें। मैं उचित उपाय कहूँगा।

नारदजीने कहा—प्रभो ! लोकोंमें भ्रमण करता हुआ मैं मृत्युलोकमें गया था, वहाँ मैंने देखा कि संसारके सभी प्राणी अनेक प्रकारके क्लेश-तापोंसे दुःखी हैं। अनेक रोगोंसे ग्रस्त हैं। उनकी वैसी दुर्दशा देखकर मेरे मनमें बड़ा कष्ट हुआ और मैं सोचने लगा कि किस उपायसे इन दुःखी प्राणियोंका उद्धार होगा ? भगवन् ! उनके कल्याणके लिये आप कोई श्रेष्ठ एवं सुगम उपाय बतलानेकी कृपा करें। नारदजीके इन वचनोंको सुनकर भगवान् नारायणने साधु-साधु शब्दोंसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'नारदजी ! जिस विषयमें आप पूछ रहे हैं, उसके लिये मैं आपको एक सनातन ब्रत बतलाता हूँ।'

भगवान् नारायण सत्यव्युग और व्रेतायुगमें विष्णुस्वरूपमें फल प्रदान करते हैं और द्वापरमें अनेक रूप धारणकर फल देते हैं, परंतु कलियुगमें सर्वव्यापक भगवान् सत्यनारायण प्रत्यक्ष फल देते हैं, क्योंकि धर्मके चार पाद हैं—सत्य, शैच, तप और दान। इनमें सत्य ही प्रधान धर्म है। सत्यपर ही लोकका व्यवहार दिका है और सत्यमें ही ब्रह्म प्रतिष्ठित है, इसलिये सत्यस्वरूप भगवान् सत्यनारायणका ब्रत परम श्रेष्ठ कहा गया है।'

नारदजीने पुनः पूछा—भगवन् ! सत्यनारायणकी पूजाका क्या फल है और इसकी क्या विधि है ? देव ! कृपासागर ! सभी बातें अनुग्रहपूर्वक मुझे बतायें।

श्रीभगवान् बोले—नारद ! सत्यनारायणकी पूजाका फल एवं विधि चतुर्मुख ब्रह्मा भी बतलानेमें समर्थ नहीं हैं, किंतु संक्षेपमें मैं उसका फल तथा विधि बतला रहा हूँ,

१.—कलिकलुविनाशी कामरसिद्धिप्रकाशी सुखरम्यभासे भूमुरेण प्रकाशम् ।

विष्णुपूर्णिकलासे साधुवर्याविशेषं नृपतिवरचर्चितं भोः राष्ट्रगुणेतिहासम् ॥ (प्रतिसर्गपर्व २ । २४ । ६.)

आप सुने —

सत्यनारायणके ब्रत एवं पूजनसे निर्धन व्यक्ति धनाढ़ी और पुरुषोंन व्यक्ति पुज्वान् हो जाता है। राजन्यसुत व्यक्ति राज्य प्राप्त कर लेता है, दृष्टिहीन व्यक्ति दृष्टिसम्पन्न हो जाता है, बंदी बन्धनमुक्त हो जाता है और भयार्त व्यक्ति निर्भय हो जाता है। अधिक क्या ? व्यक्ति जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वह सब प्राप्त हो जाती है। इसलिये मुझे ! मनुष्य-जन्ममें भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी अवश्य आराधना करनी चाहिये। इससे वह अपने अभिलिखित वस्तुको निःसंदेह शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

इस सत्यनारायण-ब्रतके करनेवाले व्रतीको चाहिये कि वह प्रातः दन्तधावनपूर्वक खानकर पवित्र हो जाय। हाथमें तुलसी-मंजरीको लेकर सत्यमें प्रतिष्ठित भगवान् श्रीहरिका इस प्रकार ध्यान करे—

नारायण	सन्दर्भनावदात्
चतुर्भुजं	पीतमहार्हवाससम् ।
प्रसन्नवक्त्रं	नवकञ्जलोचनं
सनन्दनादीरूपसेवितं	भजे ॥
करोमि ते ब्रतं देव सायंकाले त्वदर्चनम् ।	
श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ॥	

(प्रतिसर्गार्थ २ । २४ । २६-२७)

‘सधन योगके समान अत्यन्त निर्मल, चतुर्भुज, अति श्रेष्ठ पीले वस्त्रको धारण करनेवाले, प्रसन्नमुख, नवीन कमलके समान नेत्रवाले, सनक-सनन्दनादिसे उपसेवित भगवान् नारायणका मैं सतत चिन्तन करता हूँ। देव ! मैं आपके सत्यस्तरूपको धारणकर सायंकालमें आपकी पूजा करूँगा। आपके रमणीय चरित्रको सुनकर आपके प्रसाद अर्थात् आपकी प्रसन्नताका मैं सेवन करूँगा।’

इस प्रकार मनमें संकल्पकर सायंकालमें विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। पूजामें पाँच कलश रखने चाहिये। कदली-स्तम्भ और बंदनवार लगाने चाहिये। स्वर्णमण्डित भगवान् शालग्रामको पुरुषसूक्त (यजुः-

३१ । १-१६) द्वारा पञ्चामृत आदिसे भलीभाँति खान कराकर चन्दन आदि अनेक उपचारोंसे भक्तिपूर्वक उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्को निम्न मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रणाम करना चाहिये—

नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय शीमहि ।

चतुःपदार्थदात्रे च नमस्तुष्यं नमो नमः ॥

(प्रतिसर्गार्थ २ । २४ । ३०)

‘हृषीक्षर्यरूप भगवान् सत्यदेवको नमस्कार है, मैं आपका सदा ध्यान करता हूँ। आप धर्म, अर्थ, क्रम और मोक्ष—इस चतुर्विध पुरुषार्थको प्रदान करनेवाले हैं, आपको बार-बार नमस्कार है।’

इस मन्त्रका यथाशक्ति जपकर १०८ बार हवन करे। उसके दशांशसे तर्पण तथा उसके दशांशसे मार्जन कर भगवान्की कथाको सुनना चाहिये, जो ३ः अध्यायमें उपनिवद्ध है। भगवान्की इस कथामें सत्य-धर्मकी ही मुख्यता है। कथा-श्रवणके अनन्तर भगवान्के प्रसादको खार भागोंमें विभक्तकर उसे भलीभाँति वितरण करे। प्रथम भाग आचार्यको दे, द्वितीय भाग अपने कुटुम्बको, तृतीय भाग श्रोताओंको और चतुर्थ भाग अपने लिये रखे। तत्पक्षात् आहारोंको भोजन कराये एवं स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। देवर्षे ! इस विधिसे सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सत्यनारायणकी पूजा करनेवाला व्रती सभी अभीष्ट कामनाओंके इसी जन्ममें प्राप्त कर लेता है। इस जन्ममें किये गये पुण्यफलको दूसरे जन्ममें भोगा जाता है और दूसरे जन्ममें किये गये कर्मोंके फल मनुष्यको यहाँ भोगना पड़ता है। श्रद्धापूर्वक किया गया गया सत्यनारायणका ब्रत सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

नारदजीने कहा—भगवन् ! आज ही आपकी आज्ञासे भूमण्डलमें इस सत्यदेव-ब्रतको मैं प्रतिष्ठित करूँगा। यह कहकर नारदजी तो पृथ्वीपर ब्रतका प्रचार करने चले गये और भगवान् नारायणदेव अन्तर्धान हो काशीपुरीमें चले आये।

(अध्याय २४)

सत्यनारायणव्रत-कथामें शतानन्द ब्राह्मणकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो ! भगवान् नारायणने स्वयं कृपापूर्वक देवर्षि नारदजीद्वारा जिस प्रकार इस व्रतका प्रचार किया, अब मैं उस कथाको कहता हूँ, आपलोग सुनें—

लोकप्रसिद्ध काशी नगरीमें एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, जो विष्णु-व्रतप्रायण थे, वे गृहस्थ थे, दीन थे तथा खी-पुत्रवान् थे। वे भिक्षा-वृत्तिसे अपना जीवन-यापन करते थे। उनका नाम शतानन्द था। एक समय वे भिक्षा माँगनेके लिये जा रहे थे। उन विनीत एवं अतिशय शान्त शतानन्दको मार्गमें एक बृद्ध ब्राह्मण दिखायी दिये, जो साक्षात् हरि ही थे। उन बृद्ध ब्राह्मणवेषधारी श्रीहरिने ब्राह्मण शतानन्दसे पूछा—“द्विजश्रेष्ठ ! आप किस निमित्तसे कहाँ जा रहे हैं ?” शतानन्द बोले—“सौम्य ! अपने पुत्र-कलत्रादिके भरण-पोषणके लिये घन-याचनाकी कामनासे मैं धनिकोंके पास जा रहा हूँ।”

नारायणने कहा— द्विज ! निर्झनताके कारण आपने दीर्घकालसे भिक्षा-वृत्ति अपना रखी है, इसकी निवृत्तिके लिये सत्यनारायणव्रत कलियुगमें सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये मेरे कथनके अनुसार आप कमलनेत्र भगवान् सत्यनारायणके चरणोंकी शरण-ग्रहण करें, इससे दारिद्र्य, शोक और सभी संतानोंका विनाश होता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है।

करुणामूर्ति भगवान्के इन वचनोंको सुनकर ब्राह्मण शतानन्दने पूछा—‘ये सत्यनारायण कौन हैं ?’

ब्राह्मणस्वप्नधारी भगवान् बोले— नानारूप धारण करनेवाले, सत्यव्रत, सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा निरञ्जन वे देव इस समय विप्रका रूप धारणकर तुम्हारे सामने आये हैं। इस महान् दुःखरूपी संसार-सागरमें पढ़े हुए प्राणियोंको तारनेके लिये भगवान्के चरण नौकारूप हैं। जो बुद्धिमान् व्यक्ति है, वे भगवान्की शरणमें जाते हैं, किंतु विषयोंमें व्याप्त विषयबुद्धिवाले व्यक्ति भगवान्की शरणमें न जाकर इसी संसार-सागरमें पढ़े रहते हैं। इसलिये द्विज ! संसारके कल्याणके लिये विविध उपचारोंसे भगवान् सत्यनारायण-

देवकी पूजा, आग्रहना तथा ध्यान करते हुए तुम इस व्रतको प्रकाशमें लाओ।

विप्ररूपधारी भगवान्के ऐसा कहते ही उस ब्राह्मण शतानन्दने मेथोंके समान नीलवर्ण, सुन्दर चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म लिये हुए और पीताम्बर धारण किये हुए, नवीन विकसित कमलके समान नेत्रवाले तथा मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाले, वनमालायुक्त और भैरोंके द्वारा चुम्बित चरण-कमलवाले पुरुषोत्तम भगवान् नारायणके साक्षात् दर्शन किये।

भगवान्की वाणी सुनने और उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेसे उस विप्रके सभी अङ्ग पुलिकित हो उठे, आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उसने भूमिपर गिरकर भगवान्को साण्डाङ्ग प्रणाम किया और गद्द वाणीसे वह उनकी इस प्रकार सुनी करने लगा—

संसारके स्वामी, जगत्के कारणके भी करण, अनाथोंके नाथ, कल्याण-मङ्गलको देनेवाले, शरण देनेवाले, पुण्यरूप, पवित्र, अव्यक्त तथा व्यक्त होनेवाले और आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनों प्रकारके तापोका समूल उच्छेद करनेवाले भगवान् सत्यनारायणको मैं प्रणाम करता हूँ। इस संसारके रचयिता सत्यनारायणदेवको नमस्कार है। विष्णुके भरण-पोषण करनेवाले शुद्ध सत्त्वस्वरूपको नमस्कार है तथा विश्वका विनाश करनेवाले करात महकालस्वरूपको नमस्कार है। सम्पूर्ण संसारका मङ्गल करनेवाले आत्ममूर्तिस्वरूप है भगवन् ! आपको नमस्कार है। आज मैं धन्य हो गया, पुण्यवान् हो गया, आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया, जो कि मन-वाणीसे अगम-अगोचर आपका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। मैं अपने भाग्यकी क्या सराहना करूँ ! न जाने मेरे किस पुण्यकर्मका यह फल था, जो मुझे आपके दर्शन हुए। प्रभो ! आपने कियाहीन इस मन्द-बुद्धिके शरीरको सफल कर दिया ॥

लोकनाथ ! रमापते ! किस विधिसे भगवान् सत्य-

१-दुःखोदीपिनिमग्राना तरणिक्षरणी होः। कुशलः शरण यत्ति नेत्रे विषयात्मिकः ॥ (प्रतिसर्गपर्व २। २५। १०)

२-प्रणामामि जगन्नाथं जगत्कारणकरणम् । अनाथनाथं शिवं देशरण्यमनन्दं चुचिम् ॥
अव्यक्तं व्यक्ततां यात् तापत्रविमोचनम् ॥

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्रं नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य भर्त्रे । करणाय कर्त्राय विश्वस्य होते नमस्ते जगन्मङ्गलायामध्यम् ॥

नारायणका पूजन करना चाहिये, विभो ! कृपाकर उसे भी आप बतायें। संसारको मोहित करनेवाले भगवान् नारायण मधुर चाणीमें बोले—‘विशेष्नु ! मेरी पूजामें बहुत अधिक घनकी आवश्यकता नहीं, अनायास जो घन प्राप्त हो जाय, उसीसे श्रद्धापूर्वक मेरा यजन करना चाहिये। जिस प्रकार मेरी सूतिसे, सूतिसे ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र, अजामिल संकटसे मुक्त हो गये, इसी प्रकार इस ब्रतके आश्रयसे मनुष्य तत्काल बलेशमुक्त हो जाता है। इस ब्रतकी विधिको सुनें—

अभीष्ट कामनाकी सिद्धिके लिये पूजाकी सामग्री एकत्रकर विधिपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनी चाहिये। सबा सेरके लगभग गोधूम-चूर्णमें दूध और शङ्कर मिलाकर, उस चूर्णको धूतसे युक्तकर हरिको निवेदित करना चाहिये, यह भगवान्को अत्यन्त प्रिय है। पञ्चमृतके द्वारा भगवान् शालग्रामको खान कराकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूलादि उपचारोंसे मन्त्रोद्घारा उनकी अर्चना करनी चाहिये। अनेक मिष्ठान तथा भक्ष्य-धोज्य पदार्थों एवं छहतुकालोदूत विविध फलों तथा पूर्णोंसे भक्ति-पूर्वक पूजा करनी चाहिये। फिर ब्राह्मणों तथा स्वजनोंके साथ मेरी कथा, राजा (तुम्भवज) के इतिहास, भीलोंकी और वणिक (साधु) की कथाओं आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिये। कथाओं अनन्तर भक्तिपूर्वक सत्यदेवको प्रणामकर प्रसादका वितरण करना चाहिये। तदनन्तर धोजन करना चाहिये। मेरी प्रसन्नता द्रव्यादिसे नहीं, अपितु श्रद्धा-भक्तिसे ही होती है।

विशेष्नु ! इस प्रकार जो विधिपूर्वक पूजा करते हैं, वे पुत्र-पौत्र तथा धन-सम्पत्तिसे युक्त होकर श्रेष्ठ धोगोंका उपभोग करते हैं और अन्तमें मेरा सानिध्य प्राप्त कर मेरे साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं। ब्रती जो-जो कामना करता है, वह उसे

अवश्य ही प्राप्त हो जाती है।

इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वे ब्राह्मण भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर, वे भिक्षाके लिये नगरकी ओर चले गये और उन्होंने मनमें यह निष्ठय किया कि ‘आज भिक्षामें जो धन मुझे प्राप्त होगा, मैं उससे भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।’

उस दिन अनायास बिना मार्गि ही उन्हें प्रचुर धन प्राप्त हो गया। वे आश्चर्यचकित हो अपने घर आये। उन्होंने सारा बृतान्त अपनी धर्मपत्रीको बताया। उसने भी सत्यनारायणके ब्रत-पूजाका अनुमोदन किया। वह पतिकी आज्ञासे श्रद्धापूर्वक बाजारसे पूजाकी सभी सामग्रियोंको ले आयी और अपने बन्धु-बान्धवों तथा पहुँचियोंको भगवान् सत्यनारायणकी पूजामें सम्मिलित होनेके लिये बुला ले आयी। अनन्तर शतानन्दने भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा की। कथाकी समाप्तिपर प्रसन्न होकर उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे भक्तवत्सल भगवान् सत्यनारायणदेव प्रकट हो गये। उनका दर्शनकर ब्राह्मण शतानन्दने भगवान्से इस लोकमें तथा परलोकमें सुख तथा पराभक्तिकी याचना की और कहा—‘हे भगवन् ! आप मुझे अपना दास बना लें।’ भगवान् भी ‘तथास्तु’ कहकर अन्तर्धान हो गये। यह देखकर कथामें आये सभी जन अत्यन्त विस्मित हो गये और ब्राह्मण भी कृतकृत्य हो गया। वे सभी भगवान्को दण्डवत् प्रणामकर आदरपूर्वक प्रसाद प्राप्तणकर ‘यह ब्राह्मण धन्य है, धन्य है’ इस प्रकार कहते हुए अपने-अपने घर चले गये। तभीसे लोकमें यह प्रचार हो गया कि भगवान् सत्यनारायणका ब्रत अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला, बलेशनाशक और धोग-मोक्षको प्रदान करनेवाला है। (अध्याय २५)

[सत्यनारायणब्रत-कथाका हितीय अध्याय]

—४०३—

सत्यनारायणब्रत-कथामें राजा चन्द्रचूड़का आख्यान

सूतजी बोले—ऋषियो ! प्राचीन कालमें केदारखण्डके मणिपूरक नामक नगरमें चन्द्रचूड नामक एक धार्मिक तथा

प्रजावत्सल राजा रहते थे। वे अत्यन्त शान्त-स्वभाव, मृदुभाषी, धीर-प्रकृति तथा भगवान् नारायणके भक्त थे।

धनोऽस्यद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलो मम। काहमनोऽगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥
दिख्ये कि वर्णयाम्नाहो न जाने कल्प का फलम्। किन्याहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं फलवान् कृतः ॥

(प्रतिसर्गपर्व २। २५। १५—१९)

विन्यादेशके म्लेच्छगण उनके शाश्रु हो गये। उस राजाका उन म्लेच्छोंसे अख-शाश्वोद्दाश भयानक युद्ध हुआ। उस युद्धमें राजा चन्द्रचूड़की विशाल चतुरज्ञिणी सेना अधिक नष्ट हुई, किंतु कूट-युद्धमें निपुण म्लेच्छोंकी सेनाकी क्षति बहुत कम हुई। युद्धमें दम्भी म्लेच्छोंसे परास्त होकर राजा चन्द्रचूड़ अपना गाढ़ छोड़कर अकेले ही वनमें चले गये। तीर्थठिनके बहाने इधर-उधर घूमते हुए वे काशीपुरीमें पहुंचे। वहाँ उन्होंने देखा कि घर-घर सत्यनारायणकी पूजा हो रही है और यह काशी नगरी द्वारकाके समान ही भव्य एवं समृद्धिशाली हो गयी है।

वहाँकी समृद्धि देखकर चन्द्रचूड़ विस्मित हो गये और उन्होंने सदानन्द (शतानन्द) ब्राह्मणके द्वारा की गयी सत्यनारायण-पूजाकी प्रसिद्धि भी सुनी, जिसके अनुसरणसे सभी शील एवं धर्मसे समृद्ध हो गये थे। राजा चन्द्रचूड़ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेवाले ब्राह्मण सदानन्द (शतानन्द) के पास गये और उनके चरणोपर गिरकर उनसे सत्यनारायण-पूजाकी विधि पूछी तथा अपने राज्यभ्रष्ट होनेकी कथा भी बतलायी और कहा—‘ब्रह्मन्! लक्ष्मीपति भगवान् जनार्दन जिस ब्रतसे प्रसन्न होते हैं, पापके नाश करनेवाले उस ब्रतको बतलाकर आप मेरा उद्धार करें।’

सदानन्द (शतानन्द)ने कहा—गजन्! श्रीपति भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाला सत्यनारायण नामक एक श्रेष्ठ ब्रत है, जो समस्त दुःख-शोकादिका शामक, धन-धान्यका

प्रवर्धक, सौभाग्य और संततिका प्रदाता तथा सर्वत्र विजय-प्रदायक है। गजन्! जिस किसी भी दिन प्रदोषकलमें इनके पूजन आदिका आयोजन करना चाहिये। कदलीदलके साम्भोंसे मणित, तोरणोंसे अलंकृत एक मण्डपकी रचनाकर उसमें पाँच कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और पाँच घजाएं भी लगानी चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि उस मण्डपके मध्यमें ब्राह्मणोंके द्वारा एक रमणीय वेदिकाकी रचना करवाये। उसके ऊपर स्वर्णसे मणित शिलारूप भगवान् नारायण (शालग्राम) को स्थापित कर प्रेम-भक्तिपूर्वक चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। भगवान्‌का ध्यान करते हुए भूमिपर शयनकर सात रात्रि व्यतीत करे।

यह सुनकर राजा चन्द्रचूड़ने काशीमें ही भगवान् सत्यनारायणकी शीघ्र ही पूजा की। प्रसन्न होकर शत्रियमें भगवान्-से राजाको एक उत्तम तलवार प्रदान की। शाश्रुओंको नष्ट करनेवाली तलवार प्राप्त कर राजा ब्राह्मणश्रेष्ठ सदानन्दको प्रणाम कर अपने नगरमें आ गये तथा छ: हजार म्लेच्छ दस्युओंको मारकर उनसे अपार धन प्राप्त किया और नर्मदाके मनोहर तटपर पुनः भगवान् श्रीहारिकी पूजा की। वे राजा प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको प्रेम और भक्तिपूर्वक विधि-विधानसे भगवान् सत्यदेवकी पूजा करने लगे। उस ब्रतके प्रभावसे वे लाखों ग्रामोंके अधिपति हो गये और साठ वर्षतक राज्य करते हुए अन्तमें उन्होंने विष्णुलोकको प्राप्त किया। (अध्याय २६)

[सत्यनारायण-ब्रत-कथाका त्रीतीय अध्याय]

सत्यनारायण-ब्रतके प्रसंगमें लकड़हारोंकी कथा

सूतजी बोले—ऋषियो! अब इस सम्बन्धमें सत्यनारायण-ब्रतके आचरणसे कृतकृत्य हुए भिल्लोंकी कथा सुनें। एक समयकी बात है, कुछ निषादगण वनसे लकड़हारोंका टाटकर नगरमें लाकर बेचा करते थे। उनमेंसे कुछ निषादकाशीपुरीमें लकड़ी बेचने आये। उन्हींमेंसे एक बहुत प्यासा लकड़हारा विष्णुदास (शतानन्द) के आश्रममें गया। वहाँ उसने जल पिया और देखा कि ब्राह्मणलोग भगवान्‌की पूजा कर रहे हैं। पिछले शतानन्दका वैभव देखकर वह चकित हो गया और सोचने लगा—‘इतने दरिद्र ब्राह्मणके पास यह अपार वैभव कहाँसे आ गया? इसे तो आजतक मैंने

अकिञ्चन ही देखा था। आज यह इतना महान् धनी कैसे हो गया?’ इसपर उसने पूछा—‘महाराज! आपको यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हुआ और आपको निर्धनतासे मुक्ति कैसे मिली? यह बतानेका कष्ट करें, मैं सुनना चाहता हूँ।’

शतानन्दने कहा—भाई! यह सब सत्यनारायणकी आराधनाका फल है, उनकी आराधनासे क्या नहीं होता। भगवान् सत्यनारायणकी अनुकूल्याके बिना किंचित् भी सुख प्राप्त नहीं होता।

निषादने उनसे पूछा—महाराज! सत्यनारायण भगवान्‌का क्या माहात्म्य है? इस ब्रतकी विधि क्या है? आप

उनकी पूजाके सभी उपचारोंका वर्णन करें, क्योंकि उपकार-परायण संत-महात्मा अपने हृदयमें सबके लिये समान भाव रखते हैं, किसीसे कोई कल्पणाकरी आत नहीं छिपाते^१।

शतानन्द बोले——एक समयकी आत है, जेन्द्रारक्षेत्रके मणिपूरक नगरमें रहनेवाले गजा चन्द्रचूड़ मेरे आश्रममें आये और उन्होंने मुझसे भगवान् सत्यनारायण-ब्रत-कथाके विधानको पूछा। हे निषादपुत्र ! इसपर मैंने जो उन्हें बताया था, उसे तुम सुनो—

सकाम भावसे अथवा निष्कामभावसे किसी भी प्रकार भगवान्की पूजाका मनमें संकल्पकर उनकी पूजा करनी चाहिये। सबा सेर गोधूमके चूर्णके मधु तथा सुगन्धित घृतसे संस्कृतकर नैवेद्यके रूपमें भगवान्को अर्पण करना चाहिये। भगवान् सत्यनारायण (शालग्राम) को पञ्चमृतसे ऊन कराकर चन्दन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पायस, अपूष, संवाव, दधि, दुध, झटुफल, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा करनी चाहिये। यदि वैधव रहे तो और अधिक उत्साह एवं समारोहसे पूजा करनी चाहिये। भगवान् भक्तिसे जितना प्रसन्न होते हैं, उतना विषुल द्रव्योंसे प्रसन्न नहीं होते। भगवान् सम्पूर्ण विश्वके स्वामी एवं आप्तकाम हैं, उन्हें किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, केवल भक्तोंके द्वारा श्रद्धासे अर्पित की हुई वस्तुको वे ग्रहण करते हैं। इसीलिये दुर्योधनके द्वारा की जानेवाली राजपूजाको छोड़कर भगवान्ने विदुरजीके आश्रममें आकर शाक-भाजी और पूजाको ग्रहण किया। सुटामाके तष्ठुल-कणको स्वीकार कर भगवान्ने उन्हें मनुष्यके लिये सर्वथा दुर्लभ सम्पत्तियाँ प्रदान कर दीं। भगवान् केवल

प्रीतिपूर्वक भक्तिकी ही अपेक्षा करते हैं। गोप, गृध्र, वणिक, व्याध, हनुमान्, विभीषणके अतिरिक्त अन्य वृत्तासुर आदि दैत्य भी नाशयणके सांनिध्यको प्राप्त कर उनके अनुघ्रहसे आज भी आनन्दपूर्वक रह रहे हैं^२।

निषादपुत्र ! मेरी आत सुनकर उस गजा चन्द्रचूड़ने पूजा-सामग्रियोंको एकत्रितकर आदरपूर्वक भगवान्की पूजा की; फलस्वरूप वे अपना नष्ट हुआ द्रव्य प्राप्तकर आज भी आनन्दित हो रहे हैं। इसलिये तुम भी भक्तिसे सत्यनारायणकी उपासना करो। इससे तुम लोकमें सुखको प्राप्त कर अन्तमें भगवान् विष्णुका सांनिध्य प्राप्त करोगे।

यह सुनकर वह निषाद कृतकृत्य हो गया। विप्रश्वेष शतानन्दको प्रणाम कर अपने घर जाकर उसने अपने साधियोंको भी हरि-सेवाका माहूल्य बताया। उन सबने भी प्रसन्नचित हो श्रद्धापूर्वक यह प्रतिज्ञा की कि आज काष्ठको बेचकर हमलोगोंको जितना धन प्राप्त होगा, उससे अपने सभी बम्बु-बाघ्योंके साथ श्रद्धा एवं विधिपूर्वक हम सत्य-नारायणकी पूजा करेंगे। उस दिन उन्हें काष्ठ बेचनेसे पहलेकी अपेक्षा चौगुना धन मिला। घर आकर उन सबने सारी बात शियोंको बतायी और फिर सबने मिलकर आदरपूर्वक भगवान् सत्यनारायणकी पूजा की और कथाका श्रवण किया तथा भक्तिपूर्वक भगवान्का प्रसाद सबको वितरितकर स्वयं भी ग्रहण किया। पूजाके प्रभावसे पुत्र, पत्नी आदिसे समन्वित निषादगणोंने पृथ्वीपर द्रव्य और श्रेष्ठ ज्ञान-दृष्टिको प्राप्त किया। द्विजश्रेष्ठ ! उन सबने यथेष्ट भोगोंका उपभोग किया और अन्तमें वे सभी योगिजनोंके लिये भी दुर्लभ वैष्णवधामको प्राप्त हुए। (अध्याय २७)

[सत्यनारायणब्रत-कथाका चतुर्थ अध्याय]

१-साधूम् समविकानामुपकारवतां सताम् । न गोप्ये विद्वते विविदार्त्तान्मार्त्तिनाशनम् ॥

(प्रतिसर्गपर्व २ । २७ । ८)

२-न तुष्टद्रव्यसम्बैर्भक्त्वा केवलया यथा । भगवान् वरितः पूजां न माने बुण्यात् क्वचित् ॥

दुर्योधनकृती त्वक्त्वा गजपूजा जनाईनः । विदुरस्वाक्रमे बासमातिथ्यं जाहे विभुः ॥

सुकृत्स्तंशुलकणा जगत्वा मानुष्ठुर्लभाः । सम्पदोदादृषिः प्रीत्या भक्तिमात्रमपेक्षयते ॥

गोपो गृद्धो विष्णवधारो हनुमान् सविभीषणः । वेऽन्ये पापात्मक दैत्या वृत्तकायाधवादयः ॥

नारायणान्तिकं प्राप्य मेष्टतेऽत्यापि यद्वशः ।

(प्रतिसर्गपर्व २ । २७ । १५—१९)

सत्यनारायण-ब्रतके प्रसंगमें साधु वर्णिक् एवं जामाताकी कथा

सूतजी बोले—ऋणियो ! अब मैं एक साधु वर्णिककी कथा कहता हूँ। एक बार भगवान् सत्यनारायणका भक्त मणिपूरक नगरका स्वामी महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओंके साथ ब्रतपूर्वक सत्यनारायण भगवान्का पूजन कर रहा था, उसी समय रत्नपुर (रत्नसारपुर) निवासी महाधनी साधु वर्णिक् अपनी नौकाको धनसे परिपूर्ण कर नदी-तटसे यात्रा करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। वहाँ उसने अनेक ग्रामवासियोंसहित मणि-मुक्तासे निर्भित तथा श्रेष्ठ वितानादिसे विभूषित पूजन-मण्डपको देखा, गीत-वाद्य आदिकी घनि तथा वेदध्वनि भी वहाँ उसे सुनायी पढ़ी। उस रम्य स्थानको देखकर साधु वर्णिकने अपने नाविकको आदेश दिया कि यहाँपर नौका रोक दो। मैं यहाँकी आयोजनको देखना चाहता हूँ। इसपर नाविकने वैसा ही किया। नावसे उत्तरकर उस वर्णिकने लोगोंसे जानकारी प्राप्त की और वह सत्यनारायण भगवान्की कथा-मण्डपमें गया तथा वहाँ उसने उन सभीसे पूछा—‘महाशय ! आपलोग यह कौन-सा पुण्यकार्य कर रहे हैं ?’ इसपर उन लोगोंने कहा—‘हमलोग अपने माननीय राजाके साथ भगवान् सत्यनारायणकी पूजा-कथाका आयोजन कर रहे हैं। इसी ब्रतके अनुष्ठानसे इहें निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ है। भगवान् सत्यनारायणकी पूजासे धनकी कामनावाला द्रव्य-लाभ, पुत्रकी कामनावाला उत्तम पुत्र, ज्ञानकी कामनावाला ज्ञान-दृष्टि प्राप्त करता है और भवासुर मनुष्य सर्वथा निर्भय हो जाता है। इनकी पूजासे मनुष्य अपनी सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।’

यह सुनकर उसने गलेमें वस्त्रको कई बार लपेटकर भगवान् सत्यनारायणको दण्डवत् प्रणाम कर सभासदोंको भी सादर प्रणाम किया और कहा—‘भगवन् ! मैं संततिहीन हूँ अतः मेरा सारा ऐश्वर्य तथा सारा उद्यम सभी व्यर्थ है, हे कृपासागर ! यदि आपकी कृपासे पुत्र या कन्या मैं प्राप्त करूँगा तो स्वर्णमयी पताका बनाकर आपकी पूजा करूँगा।’ इसपर सभासदोंने कहा—‘आपकी कामना पूर्ण हो।’ तदनन्तर उसने भगवान् सत्यनारायण एवं सभासदोंको पुनः प्रणामकर

प्रसाद प्राहण किया और हृदयसे भगवान्का चिन्तन करता हुआ वह साधु वर्णिक् सबके साथ अपने घर गया। घर आनेपर माङ्गलिक द्रव्योंसे स्त्रियोंने उसका यथोचित स्वागत किया। साधु वर्णिक् अतिशय आश्चर्यके साथ मङ्गलमय अन्तःपुरमें गया। उसकी पतिप्रता पल्ली लौलावतीने भी उसकी स्त्रियोचित सेवा की। भगवान् सत्यनारायणकी कृपासे समय आनेपर बघु-बाघवोंको आनन्दित करनेवाली तथा कमलके समान नेत्रोवाली उसे एक कन्या उत्पन्न हुई। इससे साधु वर्णिक् अतिशय आनन्दित हुआ और उस समय उसने पर्याप्त धनका दान किया। वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर उसने कन्याके जातकर्म आदि मङ्गलकृत्य सम्पन्न किये। उस बालिकाकी जन्मकुण्डली बनावाकर उसका नाम कलावती रखा। कलानिधि चन्द्रमाकी कलाके समान वह कलावती नित्य बढ़ने लगी। आठ वर्षकी बालिका गौरी, नौ वर्षकी रोहिणी, दस वर्षकी कन्या तथा उसके आगे (अर्थात्) बारह वर्षकी बालिका प्रौढ़ा या रजस्वला कहलाती है। समयानुसार कलावती भी बढ़ते-बढ़ते विवाहके योग्य हो गयी। उसका पिता कलावतीको विवाह-योग्य जानकर उसके सम्बन्धकी चिन्ता करने लगा।

काङ्क्षनपुर नगरमें एक शंखपति नामका वर्णिक् रहता था। वह कुलीन, रूपवान्, सम्पत्तिशाली, शील और उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न था। अपनी पुत्रीके योग्य उस वरको देखकर साधु वर्णिकने शंखपतिका वरण कर लिया और शुभ लग्नमें अनेक माङ्गलिक उपचारोंके साथ अग्रिमे वेद, वाद्य आदि ध्वनियोंके साथ यथाविधि कन्या उसे प्रदान कर दी, साथ ही मणि, मोती, मूँगा, वस्त्राभूषण आदि भी उस साधु वर्णिकने मङ्गलके लिये अपनी पुत्री एवं जामाताको प्रदान किये। साधु वर्णिक् अपने दामादको अपने घरमें रखकर उसे पुत्रके समान मानता था और वह भी पिताके समान साधु वर्णिकन् आदर करता था। इस प्रकार बहुत समय बीत गया। साधु वर्णिकने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करनेका पहले यह संकल्प लिया था कि ‘संतान प्राप्त होनेपर मैं

१-अहर्वर्या भुक्तेद्गौरी नववर्या च योहिणी ॥

दशवर्षी भवेत् कन्या ततः प्रौढा रजस्वला । (प्रतिसर्वार्थ २। २८। २१-२२)

भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करूँगा' पर वह इस बातको भूल ही गया। उसने पूजा नहीं की।

कुछ दिनोंके बाद वह अपने जामाताके साथ व्यापारके निमित्त सुदूर नर्मदाके दक्षिण तटपर गया और वहाँ व्यापारिनरत होकर बहुत दिनोंतक ठहरा रहा। पर वहाँ भी उसने सत्यदेवकी किसी प्रकार भी उपासना नहीं की और परिणामस्वरूप भगवान्के प्रक्रोपका भाजन बनकर वह अनेक संकटोंसे ग्रस्त हो गया। एक समय कुछ चोरोंने एक निस्तब्ध रात्रिमें वहाँके राजमहलसे बहुत-सा द्रव्य तथा मोतीकी मालाको चुगा लिया। राजाने चोरीकी बात जान होनेपर अपने राजपुरुषोंको बुलाकर बहुत फटकारा और कहा कि 'यदि तुमलोगोंने चोरोंका पता लगाकर साया धन यहाँ दो दिनोंमें उपस्थित नहीं किया तो तुम्हारी असावधानीके लिये तुम्हें मृत्यु-दण्ड दिया जायगा।' इसपर राजपुरुषोंने सर्वत्र व्यापक छान-चीन की, परंतु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उन चोरोंका पता नहीं लगा सके। फिर वे सभी एकत्रित होकर विचार करने लगे—'अहो! बड़े कष्टकी बात है, चोर तो मिला नहीं, धन भी नहीं मिला, अब राजा हमलोंगोंके परिवारके साथ मार डालेगा। मरनेपर भी हमें प्रेत-योनि प्राप्त होगी। इसलिये अब तो यही श्रेयस्कर है कि 'हमलोग पवित्र नर्मदा नदीमें ढूँढ़कर मर जायें। क्योंकि नर्मदाके

प्रभावसे हमें शिवलोककी प्राप्ति होगी।' वे सभी राजपुरुष आपसमें ऐसा निश्चयकर नर्मदा नदीके टटपर गये। वहाँ उन्होंने उस साधु विणिक्को देखा और उसके कण्ठमें मोतीकी माला भी देखी। उन्होंने उस साधु विणिक्को ही चोर समझ लिया और वे सभी प्रसन्न होकर उन दोनों (साधु विणिक् और उसके जामाता) को धनसहित पकड़कर राजाके पास ले आये। भगवान् सत्यनारायण भी पूजा करनेमें असत्यका आश्रय लेनेके कारण विणिक्को प्रतिकूल हो गये थे। इसी कारण राजाने भी विचार किये बिना ही अपने सेवकोंको आदेश दिया कि इनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर खजानेमें जमा कर दो और इन्हें हथकड़ी लगाकर जेलमें डाल दो। सेवकोंने राजाज्ञाका पालन किया। विणिक्की बातोंपर किसीने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अपने जामाताके साथ वह विणिक् अस्त्यन्त दुखित हुआ और विलाप करने लगा—'हा पुत्र! मेरा धन अब कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और पली कहाँ हैं? विधाताकी प्रतिकूलता तो देखो। हम दुःख-सागरमें निमग्न हो गये। अब इस संकटसे हमें कौन पार करेगा? मैंने धर्म एवं भगवान्के विरुद्ध आचरण किया। यह उन्हीं कर्मोंका प्रभाव है।' इस प्रकार विलाप करते हुए वे समुर और जामाता कई दिनोंतक जेलमें धीरण संतापका अनुभव करते रहे। (अध्याय २८)

[सत्यनारायण-ब्रत-कथाका पञ्चम अध्याय]

—————

सत्य-धर्मके आश्रयसे सबका उद्धार (लीलावती एवं कलावतीकी कथा)

सूतजीने कहा—इच्छियो! आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीनों तापोंको हरण करनेवाले भगवान् विष्णुके मङ्गलमय चरित्रको जो सुनते हैं, वे सदा हरिके धाममें निवास करते हैं, किंतु जो भगवान्का आश्रय नहीं प्रह्लण करते—उन्हें विस्मृत कर देते हैं, उन्हें कष्टमय नरक प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुकी पलीका नाम कमला (लक्ष्मी) है। इनके चार पुत्र हैं—धर्म, यज्ञ, राजा और चोर। ये सभी लक्ष्मी-प्रिय हैं अर्थात् ये लक्ष्मीकी इच्छा करते हैं। ब्राह्मणों और अतिथियोंको जो दान दिया जाता है, वह धर्म कहा जाता है, उसके लिये धनकी आवश्यकता है। स्वाहा और स्वधाके द्वारा जो देवयज्ञ और पितृयज्ञ किया जाता है, वह

यज्ञ कहा जाता है, उसमें भी धनकी अपेक्षा होती है। धर्म और यज्ञकी रक्षा करनेवाला राजा कहलाता है, इसलिये राजाको भी लक्ष्मी—धनकी अपेक्षा रहती है। धर्म और यज्ञको नष्ट करनेवाला चोर कहलाता है, वह भी धनकी इच्छासे चोरी करता है। इसलिये ये चारों किसी-न-किसी रूपमें लक्ष्मीके किंवद्दन हैं। परंतु जहाँ सत्य रहता है, वहीं धर्म रहता है और वहीं लक्ष्मी भी स्थिर-रूपमें रहती है।

वह विणिक् सत्य-धर्मसे च्युत हो गया था (उसने सत्यनारायणका ब्रत न कर प्रतिज्ञा-भंग की थी) इसलिये राजाने उस विणिक्के घरसे भी साया धन हरण करवा लिया और घरमें चोरी भी हो गयी। बेचारी उसकी पली लीलावती

एवं पुत्री कलावतीके साथ अपने वस्त्र-आभूषण तथा मकान बेचकर जैसे-तैसे जीवन-यापन करने लगी।

एक दिन उसकी कन्या कलावती भूखसे व्याकुल होकर किसी ब्राह्मणके घर गयी और वहाँ उसने ब्राह्मणको भगवान् सत्यनारायणकी पूजा करते हुए देखा। जगन्नाथ सत्यदेवकी प्रार्थना करते हुए देखकर उसने भी भगवान् से प्रार्थना की—‘हे सत्यनारायणदेव ! मेरे पिता और पति यदि घरपर आ जायेंगे तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी।’ उसकी बात सुनकर ब्राह्मणोंने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इस प्रकार ब्राह्मणोंसे आश्वासनयुक्त आशीर्वाद प्राप्त कर वह अपने घर चापस आ गयी। रुक्ष्रिये देरसे लौटनेके करण माताने उससे ढाँटते हुए पूछा कि ‘बेटी ! इतनी राततक तुम कहाँ रही ?’ इसपर उसने उसे प्रसाद देते हुए सत्यनारायणके पूजा-वृत्तान्तको बताया और कहा—‘माँ ! मैंने वहाँ सुना कि भगवान् सत्यनारायण कलियुगमें प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं, उनकी पूजा मनुष्यगण सदा करते हैं। माँ ! मैं भी उनकी पूजा करना चाहती हूँ, तुम मुझे आज्ञा प्रदान करो।’ मेरे पिता और स्वामी अपने घर आ जायें, यही भैरी कामना है।’

रातमें ऐसा मनमें निष्ठायकर प्रातः वह कलावती शीलपाल नामक एक विणिकूके घरपर धन प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और उसने कहा—‘बन्हो ! थोड़ा धन दे, जिससे मैं भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कर सकूँ।’ यह सुनकर शीलपालने उसे पाँच अशर्कियाँ दी और कहा—‘कलावती ! तुम्हारे पिताका कुछ ऋण शेष था, मैं उन्हें ही चापस कर रहा हूँ, इसे देकर आज मैं उऋण हो गया।’ यह कहकर शीलपाल गया-तीर्थमें श्राद्ध करने चला गया। कन्याने अपनी माँ शीलावतीके साथ उस द्रव्यसे कल्याणप्रद सत्य-नारायण-ब्रतका श्रद्धा-पक्षिये विधिषुर्वक अनुशासन किया। इससे सत्यनारायण भगवान् संतुष्ट हो गये।

उधर नर्मदा-तटवासी राजा अपने राजमहलमें सो रहा था। रुक्ष्रिये अन्तिम प्रहरमें ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् सत्यनारायणने स्वप्रमें उससे कहा—‘राजन् ! तुम शीघ्र उठकर उन निर्दोष विणिकोंवो बन्धनमुक्त कर दो। वे दोनों बिना अपराधके ही बंदी बना लिये गये हैं। यदि तुम ऐसा नहीं करेंगे तो तुम्हारा कल्याण नहीं होगा।’ इतना कहकर वे

अन्तर्हित हो गये। राजा निद्रासे सहसा जग उठा। वह परमात्माका स्मरण करने लगा। प्रातःकाल राजा अपनी सभामें आया और उसने अपने मन्त्रीसे देखे गये स्वप्रका फल पूछा। महामन्त्रीने भी राजासे कहा—‘राजन् ! वहे आश्वर्यकी बात है, मुझे भी आज ऐसा ही स्वप्र दिखलायी पढ़ा। अतः उस विणिकू और उसके जामाताको बुलाकर भलीभांति पूँछ-ताछ कर लेनी चाहिये।’ राजाने उन दोनोंको बंदी-गृहसे बुलावाया और पूछा—‘तुम दोनों कहाँ रहते हो और तुम कौन हो ?’ इसपर साधु विणिकूने कहा—‘राजन् ! मैं रत्नपुरका निवासी एक विणिकू हूँ। मैं व्यापार करनेके लिये यहाँ आया था। पर दैववश आपके सेवकोंने हमें चोर समझकर पकड़ लिया। साथमें यह मेरा जामाता है। बिना अपराधके ही हमें मणि-मुक्ताकी चोरी लगी है। राजेन्द्र ! हम दोनों चोर नहीं हैं। आप भलीभांति विचार कर लें।’ उसकी बातें सुनकर राजाको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने उन्हें बन्धनमुक्त कर दिया। अनेक प्रकारसे उन्हें अलंकृत कर भोजन कराया और वस्त्र, आभूषण आदि देकर उनका सम्मान किया। साधु विणिकूने कहा—‘राजन् ! मैंने कारागारमें अनेक कष्ट भोगे हैं, अब मैं अपने नगर जाना चाहता हूँ, आप मुझे आज्ञा दें।’ इसपर राजाने अपने कोषाध्यक्षके माध्यमसे साधु विणिकूकी नौका रत्नों आदिसे परिपूर्ण करवा दी। फिर वह साधु विणिकू अपने जामाताके साथ राजाद्वारा सम्मानित हो द्विगुणित धन लेकर रत्नपुरकी ओर चला।

साधु विणिकूने अपने नगरके लिये प्रस्थान किया, पर भगवान् सत्यनारायणका पूजन वह उस समय भी भूल गया। भगवान् सत्यदेवने जो कलियुगमें तत्काल फल देते हैं, पुनः तपस्वीका रूप धारणकर वहाँ आकर उससे पूछा—‘साधो ! तुम्हारी इस नौकामें क्या है ?’ इसपर साधु विणिकूने उत्तर दिया—‘आपको देखेके लिये कुछ भी धन मेरे पास नहीं है। नावमें केवल कुछ लताओंके पते भरे पड़े हैं।’ साधु विणिकूके ऐसा कहनेपर तपस्वीने कहा—‘ऐसा ही होगा।’ इतना कहकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहते ही नौकामें धनके बदले केवल पते ही दीखने लगे। यह सब देखकर साधु अत्यन्त चकित एवं चिन्तित हो गया, उसे मूर्छाँ-सी आ गयी। वह अनेक प्रकारसे विलाप करने लगा। वज्रपात होनेके समान

वह सत्य होकर सोचने लगा कि मैं अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? मेरा धन कहाँ चला गया ? जामाताके समझानेवालानेपर इसे तपस्वीका शाप समझकर वह पुनः उन्हीं तपस्वीकी शरणमें गया और गलेमें कपड़ा लपेटकर उस तपस्वीको प्रणाम कर कहा—‘महाभाग ! आप कौन हैं ? कोई गवर्ख हैं या देवता हैं या साक्षात् परमात्मा हैं ? प्रभो ! मैं आपकी महिमाको लेशमात्र भी नहीं जानता । आप मेरे अपराधोंके काम कर दें और मेरी नौकाके धनको पुनः पूर्ववत् कर दें ।’ इसपर तपस्वी-रूप भगवान् सत्यनारायणने कहा कि तुमने चन्द्रचूड़ गजाके सत्यनारायणके मण्डपमें ‘संतातिके प्राप्त होनेपर भगवान् सल्लदेवकी पूजा करूँगा’—ऐसी प्रतिज्ञा की थी । तुम्हें कल्या प्राप्त हुई, उसका विवाह भी तुमने किया, व्यापारसे धन भी प्राप्त किया, बंदी-गृहसे तुम मुक्त भी हो गये, पर तुमने भगवान् सत्यनारायणकी पूजा कभी नहीं की । इससे मिथ्याभाषण, प्रतिज्ञालोप और देवताकी अवश्य आदि अनेक दोष हुए, तुम भगवान्का समरणतक भी नहीं करते । इसी कारण हे मूढ़ ! तुम कह भोग रहे हो । सत्यनारायण-भगवान् सर्वव्यापी हैं, वे सभी फलोंको देनेवाले हैं । उनका अनादर कर तुम कैसे सुख प्राप्त कर सकते हो । तुम भगवान्को याद करो, उनका स्मरण करो ।’ इसपर साधु वणिकको भगवान् सत्यनारायणका स्मरण हो आया और वह पक्षात्पाप करने लगा । उसके देखते-ही-देखते वहाँ वे तपस्वी भगवान् सत्यनारायणरूपमें परिवर्तित हो गये और तब वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

‘सत्यस्वरूपं, सत्यसंघं, सत्यनारायणं भगवान् हरिको
नमस्कार है । जिस सत्यसे जगत्की प्रतिष्ठा है, उस सत्यस्वरूपं
आपको बार-बार नमस्कार है । भगवन् ! आपकी मायासे
मोहित होनेके कारण भनुष्य आपके स्वरूपको जान नहीं पाता
और इस दुःखरूपी संसार-समुद्रको सुख मानकर उसीमें लिप्त
रहता है । धनके गर्वसे मैं मूढ़ होकर मदाभ्यक्तारसे कर्तव्य और

अकर्तव्यकी दृष्टिसे शून्य हो गया । मैं अपने कल्याणको भी
नहीं समझ पा रहा हूँ । मेरे दौरात्य-भावके लिये आप क्षमा
करें । हे तपोनिधे ! आपको नमस्कार है । कृपासागर ! आप
मुझे अपने चरणोंका दास बना लें, जिससे मुझे आपके चरण-
कमलोंका नित्य स्मरण होता रहें ।’

इस प्रकार स्तुति कर उस साधु वणिकने एक लाख
मुद्रासे पुरोहितके द्वारा घर आकर सत्यनारायणकी पूजा करनेके
लिये प्रतिज्ञा की । इसपर भगवान्-प्रसाद होकर कहा—
‘वस्त ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, तुम पुत्र-पौत्रसे समन्वित
होकर श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर मेरे सत्यलोकको प्राप्त करोगे
और मेरे साथ आनन्द प्राप्त करोगे ।’ यह कहकर भगवान्,
सत्यनारायण अन्तर्हित हो गये और साधुने पुनः अपनी यात्रा
प्रारम्भ की ।

सत्यदेव भगवानसे रक्षित हो वह साधु वणिक एक
सप्ताहमें नगरके समीप पहुँच गया और उसने अपने
आगमनका समाचार देनेके लिये घरपर दूत भेजा । दूतने घर
आकर साधु वणिककी लौ सीलावतीसे कहा—‘जामाताके
साथ सफलमनोरथ साधु वणिक आ रहे हैं ।’ वह साथी
लीलावती कल्याके साथ सत्यनारायण भगवान्की पूजा कर
रही थी । पतिके आगमनको सुनकर उसने पूजा वाहीपर छोड़
दी और पूजाका शोष दायित्व अपनी पुत्रीको सौंपकर वह
शीघ्रतासे नौकाके समीप चली आयी । इधर कलावती भी
अपनी सखियोंके साथ सत्यनारायणकी जैसे-तैसे पूजा
समाप्तकर बिना प्रसाद लिये ही अपने पतिको देखनेके लिये
उतावली हो नौकाकी ओर चली गयी ।

भगवान् सत्यनारायणके प्रसादके अपमानसे जामाता-
सहित साधु वणिककी नौका जलके मध्य अलक्षित हो गयी ।
यह देखकर सभी दुःखमें निमग्न हो गये । साधु वणिक भी
मूर्चिंठ हो गया । कलावती भी यह देखकर मूर्चिंठ हो
पृथ्वीपर गिर पड़ी और उसका साथ शरीर आँसुओंसे भींग

१-सत्यस्वरूपं सत्यसंघं सत्यनारायणं हरिम् । यत्सत्यलेन जगतस्ते सत्यं त्वं नमाम्यहम् ॥

त्वयायामोहितात्मानो न पश्यत्वात्मनः शुभम् । दुःखाभ्योद्यो सदा ममा दुःखे च सुखामानिः ॥

मूर्चिंठहं अनावेन मदाभ्यूतलोचनः । न जाने स्वामनः क्षेयं कथं पश्यत्मि मूर्चिः ॥

क्षमस्व मम दौरात्यं तपोधाने हो नमः । आज्ञापायात्मदास्यं मे येन ते चरणी स्त्रे ॥

गया। वह हवाके बेगसे हिलते हुए केलेके पत्तेके समान कहँने लगी। हा नाथ ! हा कहन ! कहकर बिलाप करने लगी और कहने लगी—‘हे विश्वाता ! आपने मुझे पति से वियुक्त कर मेरी आशा तोड़ दी। पतिके चिना स्त्रीका जीवन अधूरा एवं निष्कल है।’ कलावती आर्तस्वरमें भगवान् सत्यनारायणसे ओही—‘हे सत्यसिंहो ! हे भगवान् सत्यनारायण ! मैं अपने पतिके वियोगमें जलमें डूबनेवाली हूँ, आप मेरे अपराधोंको क्षमा करें। पतिको प्रकट कर मेरे प्राणोंकी रक्षा करें।’ (इस प्रकार जब वह अपने पतिके पाणुकाओंको लेकर जलमें प्रवेश करनेवाली ही थी) उसी समय आकाशवाणी हुई—‘हे साधो ! तुम्हारी पुत्रीने मेरे प्रसादका अपमान किया है। यदि वह पुनः घर आकर श्रद्धापूर्वक प्रसादको ग्रहण कर ले तो उसका पति नौकासहित यहाँ अवश्य दीखेगा, चिन्ता मत करो।’ इसपर आश्र्यचकित

हो कलावतीने बैसा ही किया और उसका पति पुनः अपनी नौकासहित दीखने लगा। फिर क्या था ? सभी परस्पर आनन्दसे मिले और घर आकर साधु विणिक्कने एक लाख मुद्राओंसे बड़े समारोहपूर्वक भगवान् सत्यदेवकी पूजा की और आनन्दसे रहने लगा। पुनः कभी भगवान् सत्यदेवकी उपेक्षा नहीं की। उस ब्रतके प्रभावसे पुत्र-पौत्रसमन्वित अनेक भोगोका उपभोग करते हुए सभी स्वर्गलोक चले गये। इस इतिहासको जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सुनता है, वह भी विष्णुका अल्पन्त प्रिय हो जाता है। अपनी मनःक्षमनाकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

सूतजी बोले—क्रृष्णिणो ! मैंने सभी ब्रतोंमें श्रेष्ठ इस सत्यनारायण-ब्रतको कहा। ब्राह्मणके मुखसे निकला हुआ यह ब्रत कलिकालमें अतिशय पुण्यप्रद है।

(अध्याय २९)

[श्रीसत्यनारायण-ब्रत-कथाका यह अध्याय]

(सत्यनारायण-ब्रत-कथा सम्पूर्ण)

—४३—

पितृशर्मा और उनके बंशज—व्याडि, पाणिनि और वररुचि आदिकी कथा

क्रृष्णियोने कहा—भगवन् ! तीनों दुःखोंके विनाश करनेवाले ब्रतोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यनारायण-ब्रतको हमलोगोंनि सुना, अब आपसे हमलोग ब्रह्मचर्यका महत्व सुनना चाहते हैं।

सूतजी बोले—क्रृष्णियो ! कलियुगमें पितृशर्मा नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। वह वेदवेदाङ्गोंके तत्त्वोंको जाननेवाला था और पापकर्मोंसे डरता रहता था। कलियुगके भयंकर समयको देखकर वह बहुत चिन्तित हुआ। उसने सोचा कि किस आश्रमके द्वारा मेरा कल्याण होगा, क्योंकि कलिकालमें संन्यास-मार्ग दम्भ और पाखण्डके द्वारा खाप्ति हो गया है, वानप्रस्थ तो समाप्त-सा ही है, बस, कहाँ-कहाँ ब्रह्मचर्य रह गया है, किंतु गार्हस्थ-जीवनका कर्म सभी कर्मोंमें श्रेष्ठ माना

गया है। अतः इस श्रेष्ठ कलियुगमें मुझे गृहस्थ-धर्मका पालन करनेके लिये विवाह करना चाहिये। यदि भाग्यसे अपनी मनोवृत्तिके अनुसार आचरण करनेवाली स्त्री मिल जाती है, तब मेरा जन्म सफल एवं कल्याणकरी हो जायगा। इस प्रकार विचार करते हुए पितृशर्मनि उत्तम पल्ली प्राप्त करनेके लिये विशेषरी जग्न्याता भगवतीकी चन्दन आदिसे पूजाकर सुति प्रारम्भ की।

पितृशर्माकी सुति सुनकर देवी प्रसन्न हो गयी और उन्होंने कहा—‘हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने तुम्हारी स्त्रीके रूपमें विष्णुयशा नामक ब्राह्मणकी कन्याको निर्दिष्ट किया है।’ तदनन्तर पितृशर्मा उस देवी ब्रह्मचारिणीसे विवाह करके मथुरामें निवास करते हुए गृहस्थ-धर्मानुसार जीवन-यापन

१-नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैल्यायै नमो नमः । त्रिगुणैवस्वरूपायै तुरीयायै नमो नमः ॥

महत्त्वजनन्त्यै च द्रन्दकर्त्यै नमो नमः । ब्रह्मार्त्तर्मस्तुत्यै साहेकारपितामहि ॥

पृथग्णायै शुद्धायै नमो मातर्मन्त्रे नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्मी सत्त्वजोपर्य ॥

नमो मातरविद्यायै ततः शुद्धयै नमो नमः । कल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातर्मन्त्रे नमः ॥

स्त्रियै शुद्धरजोपर्यै नमस्त्वेत्यव्यासिनि । नमो रजस्त्वेत्यव्यासिनि । नमो रजस्त्वेत्यव्यासिनि ॥ (प्रतिसर्गीर्व २ । ३० । १०—१४)

करने लगा। चारों देशोंको जाननेवाले उसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे—ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्वा। ऋक् के पुत्र व्यादि थे, जो न्याय-शास्त्र-विशारद थे। यजुषके पुत्र लोकविश्रुत मीमांसा हुए। सामके पुत्र पाणिनि हुए जो व्याकरण-शास्त्रमें पारंगत थे और अथर्वके पुत्र वरुचि हुए।

एक समय वे चारों पितृशमकि साथ मगध देशके अधिपति गजा चन्द्रगुप्तकी सभामें गये। अतिशय सम्मानपूर्वक गजाने उन लोगोंका पूजनकर पूछा—‘द्विजगण ! कौन-सा ब्रह्मचर्यवत् श्रेष्ठ है ?’ इसपर व्यादिने कहा—‘महाराज ! जो व्यक्ति उस परम पुण्यदेवकी न्यायपूर्वक आश्रधनामें तत्पर रहता है, वह श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है।’ मीमांसने कहा—‘राजन् ! जो श्रेष्ठ व्यक्ति यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवताओंका यज्ञन करता है और रोचना आदिसे उनका अर्चन एवं तर्पण आदि करता है तथा भगवान्के प्रसादको ग्रहण करता है, वह ब्रह्मचारी है।’ यह सुनकर पाणिनिने कहा—‘राजन् ! उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंसे या परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणीसे शब्दब्रह्मका

आशाधक तथा लिङ्, धानु एवं गणोंसे समन्वित सूक्ष्मपाठोंसे शब्दब्रह्मकी आशाधना करनेवाला सच्चा ब्रह्मचारी है और वही ब्रह्मके प्राप्त करता है।’ यह सुनकर वरकाचिने कहा—‘हे मगधाधिपते ! जो व्यक्ति उपनीत होकर गुरुकुलमें निवास करता हुआ दण्ड, केश और नखधारी विक्षार्थी वेदाध्ययनमें तत्पर रहते हुए गुरुकी आज्ञाके अनुसार गुरुके गृहमें निवास करता है, वह ब्रह्मचारी कहा गया है।’

इनके वचनोंको सुनकर पितृशमनि कहा कि ‘जो गृहस्थ-धर्ममें रहता हुआ पितरों, देवताओं और अतिथियोंका सम्मान करता है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक ऋतुकालमें ही भार्याका उपगमन करता है, वही मुख्य ब्रह्मचारी है।’ यह सुनकर गजाने कहा—‘स्वामिन् ! कलिकालके लिये आपका ही कथन उचित, सुगम और उत्तम धर्म है, यही मेरा भी मत है।’

यह कहकर वह गजा पितृशमार्मा का शिष्य हो गया और उसने अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त किया। पितृशमार्मा भी भगवान् श्रीहरिका ध्यान करते हुए हिमालय पर्वतपर जाकर योगध्यान-परायण हो गया। (अध्याय ३०)

महर्षि पाणिनिका इतिवृत्त

ऋषियोंने पूछा—भगवन् ! सभी तीर्थों, दानों आदि धर्मसाधनोंमें उत्तम साधन क्या है, जिसका आश्रय लेकर मनुष्य क्लेश-सागरको पार कर जाय और मुक्ति प्राप्त कर ले ?

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें सामके एक श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनका नाम पाणिनि था। कणादके श्रेष्ठ शास्त्रज्ञ शिष्योंसे वे पराजित एवं लज्जित होकर लीर्थाटनके लिये चले गये। प्रायः सभी लीर्थोंमें ज्ञान तथा देवता-पितरोंका तर्पण करते हुए वे केदार-क्षेत्रका जल पानकर भगवान् शिवके ध्यानमें तत्पर हो गये। पत्तोंके आहारपर रहते हुए वे सप्ताहान्तरमें जल ग्रहण करते थे। फिर उन्होंने दस दिनतक जल ही ग्रहण किया। बादमें वे दस दिनोंतक केवल वायुके ही आहारपर रहकर भगवान् शिवका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब अद्वैत दिन व्यतीत हो गये तो भगवान् शिवने प्रकट होकर उनसे वर

माँगनेको कहा। भगवान् शिवकी इस अमृतमय वाणीको सुनकर उन्होंने गद्द वाणीसे सर्वेश, सर्वलिङ्गेश, गिरिजावल्लभ हरकी इस प्रकार सुन्ति की—

‘महान् रुद्रको नमस्कार है। सर्वेशर सर्वहितकारी भगवान् शिवको नमस्कार है। अभ्य एवं विद्या प्रदान करनेवाले, नन्दी-वाहन भगवान्को नमस्कार है। पापका विनाश करनेवाले तथा समस्त लोकोंके स्वामी एवं समस्त मायारूपी दुःखोंका हरण करनेवाले तेजःस्वरूप अनन्तमूर्ति भगवान् शंकरको नमस्कार है।’^१ देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे मूल विद्या एवं परम शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—यह सुनकर महादेवजीने प्रसन्न होकर ‘अ इ उ ण्’ आदि मङ्गलकारी सर्ववर्णमय सूत्रोंको उन्हें प्रदान किया। ज्ञानरूपी सरोवरके सत्यरूपी जलसे जो राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाला है, उस मानसस्तीर्थको प्राप्त करनेपर

१-नमो रुद्रप्रय महते सर्वेशय हितीयिने। नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च ॥

पापान्तक्षय भग्नय नमोऽनन्ताय वेष्टसे। नमो मायाहरेशय नमस्ते लोकशंकर ॥ (प्रतिसार्गपर्व २ : ३१। ७-८)

अर्थात् उस मानस तीर्थमें अवगाहन करनेपर सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। यह महान् मानस-ज्ञान-तीर्थ ब्रह्मके साक्षात्कार करनेमें समर्थ है। पाणिने ! मैंने यह सर्वोत्तम तीर्थ तुम्हें प्रदान किया है, इससे तुम कृतकृत्य हो जाओगे। यह कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि अपने घरपर आ गये। पाणिनिने सूत्रपाठ, धातुपाठ, गणपाठ और

लिङ्गसूत्र-रूप व्याकरण शास्त्रका निर्माण कर परम निवारण प्राप्त किया।^१ अतः भार्गवशेष ! तुम मनोमय ज्ञानतीर्थका अवलम्बन करो। उन्होंसे कल्पाणमयी सर्वोत्तम तीर्थमयी गङ्गा प्रकट हुई है। गङ्गासे बढ़कर उत्तम तीर्थ न कोई हुआ है और न आगे होगा।

(अध्याय ३१)

—३१—

बोपदेवके चरित्र-प्रसंगमें श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

सूतजी बोले—महामुने शौनक ! तोताद्विमें एक बोपदेव नामके ब्राह्मण रहते थे। वे कृष्णभक्त और वेद-वेदाङ्गपाठगत थे। उन्होंने गोप-गोपियोंसे प्रतिष्ठित वृन्दावन-तीर्थमें जाकर देवाधिदेव जनार्दनकी आराधना की। एक वर्ष बाद भगवान् श्रीहरिने प्रसन्न होकर उन्हें अतिशय श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान किया। उसी ज्ञानके द्वारा उनके हृदयमें भागवती कथाका उदय हुआ। जिस कथाको श्रीशुकदेवजीने बुद्धिमान् गणा पर्याकृतको सुनाया था, उस सनातनी मोक्ष-स्वरूपा कथाका बोपदेवने हरि-लीलामृत नामसे पुनः वर्णन किया। कथाकी समाप्तिपर जनार्दन भगवान् विष्णु प्रकट हुए और बोले 'महामते ! वर माँगो।' बोपदेवने अतिशय ऊहमयी वाणीमें कहा—'भगवन् ! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण संसारपर अनुग्रह करनेवाले हैं। आपसे देव, मनुष्य, पशु-पक्षी सभी निर्मित हुए हैं। नरकसे दुःखी प्राणी भी इस कलियुगमें आपके ही नामसे कृतार्थ होते हैं। महर्षि वेदव्यासरचित् श्रीमद्भागवतका ज्ञान तो आपने मुझे प्रदान किया है, पुनः यदि आप वर प्रदान करना चाहते हैं तो उस भागवतका माहात्म्य मुझसे कहो।'

श्रीभगवान् बोले—बोपदेव ! एक समय भगवान् शंकर पार्वतीके साथ दम्भ और पाखण्डसे युक्त बौद्धोंके राज्य प्राप्त होनेपर काशीमें उत्तम भूमि देखकर वहाँ स्थित हो गये। भगवान् शंकरने आनन्दपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—'हे सच्चिदानन्द ! हे विष्णो ! हे जगत्को अनन्द प्रदान

करनेवाले ! आपकी जय हो।' इस प्रकारकी वाणी सुनकर पार्वतीने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन् ! आपके समान दूसरा अन्य देवता कौन है जिसे आपने प्रणाम किया ?' इसपर भगवान् शिवने कहा—'महादेवि ! यह काशी परम पवित्र क्षेत्र है, यह स्वर्य सनातन ब्रह्मस्वरूप है, यह प्रणाम करने योग्य है। यहाँ मैं सप्ताह-यज्ञ (भागवत-सप्ताह-यज्ञ) करूँगा।' उस यज्ञ-स्थलकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने चण्डीश, गणेश, नदी तथा गुहायोंको स्थापित किया और स्वयं ध्यानमें स्थित होकर माता पार्वतीसे सात दिनतक भागवती कथा कहते रहे। आठवें दिन पार्वतीको सोते देखकर उन्होंने पूछा कि 'तुमने कितनी कथा सुनी ?' उन्होंने कहा—'देव ! मैंने अमृत-मन्त्रनपर्यन्त विष्णुचरित्रका श्रवण किया।' इसी कथाको वहाँ वृक्षके कोटरमें स्थित शुक्रलयी शुक्रदेव सुन रहे थे। अमृत-कथाके श्रवणसे वे अमर हो गये। मेरी इस आज्ञासे वह शुक्र साक्षात् तुम्हारे हृदयमें स्थित है। बोपदेव ! तुमने इस दुर्लभ भागवत-माहात्म्यको मेरे द्वारा प्राप्त किया है। अब तुम जाकर गणा विक्रमके पिता गन्धर्वसेनको नर्ददाके तटपर इसे सुनाओ। हरि-माहात्म्यका दान करना सभी द्यानोंमें उत्तम दान है। इसे विष्णुभक्त बुद्धिमान् सत्यात्रको ही सुनाना चाहिये। भूखेको अन्न-दान करना भी इसके समान दान नहीं है। यह कहकर भगवान् श्रीहरि अन्तर्हित हो गये और बोपदेव बहुत प्रसन्न हो गये।

(अध्याय ३२)

—३२—

१-सूतपाठ धातुपाठ गणपाठ तथैव च।
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाचनमहत्वान्॥

(प्रतिसर्गार्थी २। ३१। १३-१४)

श्रीदुर्गासप्तशतीके आदिचरित्रका माहात्म्य (व्याधकर्मकी कथा)

ऋषियोंने पूछा—सूतजी महाराज ! अब आप हमलोगोंको यह बतलानेकी कृपा करें कि किस स्तोत्रके पाठ करनेसे वेदेकि पाठ करनेका फल प्राप्त होता है और पाप विनष्ट होते हैं ।

सूतजी बोले—ऋषियो ! इस विषयमें आप एक कथा सुनें । राजा विक्रमादित्यके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था । उसकी स्त्रीका नाम था कामिनी । एक बार वह ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ करनेके लिये अन्यत्र गया हुआ था । इधर उसकी स्त्री कामिनी जो अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाली थी, पतिके न रहनेपर निन्दित कर्ममें प्रवृत्त हो गयी । फलतः उसे एक निन्द्या पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्याधकर्मी नामसे प्रसिद्ध हुआ । वह भी अपने नामके अनुरूप कर्म करनेवाला था, धूर्त था तथा वेद-पाठसे गहित था । उस ब्राह्मणने अपनी स्त्री एवं पुत्रके निन्दित कर्म और पापमय आचरणको देखकर उन दोनोंको घरसे निकाल दिया तथा स्वयं धर्ममें तप्तपर रहते हुए विश्वाश्वल पर्वतपर प्रतिदिन चण्डीपाठ करने लगा । जगदम्बाके अनुग्रहसे अन्तमें वह जीवन्मुक्त हो गया ।

इधर वे दोनों माता-पुत्र (कामिनी और व्याधकर्मी) पूर्वपरिचित निषादके पास चले गये और वहाँ निवास करने लगे । वहाँ भी वे दोनों अपने निन्दित आचरणको छोड़ न सके और इन्हों बुरे कर्मोंसे धन-संप्रद रहते लगे । व्याधकर्मी चौर्य-कर्ममें प्रवृत्त हो गया । ऐसे ही भ्रमण करते हुए दैवयोगसे एक दिन वह व्याधकर्मी देवीके मन्दिरमें पहुंचा । वहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीदुर्गासप्तशतीका पाठ कर रहे थे । दुर्गापाठके आदिचरित्र (प्रथम चत्रिं) के किंचित् पाठमात्रके श्रवणसे उसकी दुष्टवृद्धि धर्ममय हो गयी, फलतः धर्मवुद्धि-सम्पन्न उस

व्याधकर्मानि उस श्रेष्ठ विप्रका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया और अपना सारा धन उन्हें दे दिया । गुरुकी आज्ञासे उसने देवीके मन्त्रका जप किया । वीजमन्त्रके प्रभावसे उसके शरीरसे पापसमूह कूमिके रूपमें निकल गये । तीन वर्षतक इस प्रकार जप करते हुए वह निष्पाप श्रेष्ठ द्विज हो गया । इसी प्रकार मन्त्र-जप और आदि चरित्रका पाठ करते हुए उसे बारह वर्ष व्यतीत हो गये । तदनन्तर वह द्विज कशीमें चला आया । मूनि एवं देवोंसे पूजित महादेवी अन्नपूर्णाका उसने गोचरनादि उपचारोंके द्वारा पूजन किया और उनकी इस प्रकार सुति की—

नित्यानन्दकरी पराभ्यकरी सौन्दर्यस्त्राकरी

निर्धूताखिलपापपावनकरी काशीपुराथीश्वरी ।
नानालोककरी महाभयहरी विश्वम्भरी सुन्दरी

विद्या देहि कृपायत्तम्भनकरी माताप्रापूर्णेश्वरी ॥

(प्रतिसर्गपर्व २ । ३३ । २९)

इस सुतिका एक सौ आठ बार जपकर व्याधनमें नेत्रोंको बंदकर वह वही सो गया । सप्तमें उसके सम्मुख अन्नपूर्णा शिवा उपस्थित हुई और उसे श्रुत्येदका ज्ञान प्रदान कर अन्तहित हो गयी । बादमें वह बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ विद्या प्राप्त कर राजा विक्रमादित्यके यज्ञका आचार्य हुआ । यज्ञके बाद योग धारण कर हिमालय चला गया ।

हे विप्रो ! मैंने आपलोगोंको देवीके पुण्यमय आदि-चरित्रके माहात्म्यको बतलाया, जिसके प्रभावसे उस व्याधकर्मानि ब्राह्मीभाव प्राप्तकर परमोत्तम सिद्धिको प्राप्त कर लिया था ।

(अध्याय ३३)

श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यमचरित्रका माहात्म्य

(कात्यायन तथा मगधके राजा महानन्दकी कथा)

सूतजी बोले—शौनक ! उज्जियनी नगरीमें एक हिंसापरायण महा-मांस-भक्षी भीमवर्मा नामका क्षत्रिय रहता

था । वह अतिशय हिंसा एवं अधर्मचरणके कारण भयंकर व्याधियोंसे ग्रस्त हो गया और युवावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो

१.—‘हे भवशीपुरीकी अधीश्वरी अन्नपूर्णेश्वरी ! आप नियम आनन्ददायिनी हैं । श्रावुओंसे अध्य प्रदान करनेवाली है तथा आप सौन्दर्यलोकी निधान और समस्त पापोंको नष्ट कर पवित्र कर देनेवाली हैं । हे सुन्दरी ! आप सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षण करनेवाली, महान्-महान् भयोंके दूर करनेवाली, विश्वका भरण-पोषण करनेवाली तथा सबके ऊपर अनुप्राप्त करनेवाली हैं । हे मात ! आप मुझे विद्या प्रदान करें ।

गयी। संयोगवश उसने कभी चण्डीपाठ भी कराया था। जिसके पुण्यके प्रभावसे इतना निकृष्ट पापी भी नरकमें नहीं गया। दूसरे जन्ममें वही राजनीतिपरायण मगधका विष्णुआत राजा महानन्द हुआ और उसे अपने पूर्वजन्मकी पूरी सूति थी। अतिशय समर्थ बुद्धिमान् काल्यायन (वररुचि) का वह शिष्य हुआ। देवी महालक्ष्मीके बीजसहित मध्यम चरित्रका राजा महानन्दको उपदेश देकर काल्यायन स्वयं विष्णुपर्वतपर शक्ति-उपासनाके लिये चले गये। इधर राजा भी प्रतिदिन महालक्ष्मीकी कल्पूरी, चन्दन आदिसे पूजा कर श्रीदुर्गासप्तशतीके मध्यम

चरित्रका पाठ करने लगा। बारह वर्ष व्यतीत होनेपर शक्तिकी उपासना करनेवाले काल्यायन पुनः अपने शिष्य महानन्दके पास आये और उन्होंने राजासे विष्णुपूर्वक लक्ष्मणीपाठ करवाया। फलस्वरूप सनातनी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुई और राजाको धर्म, अर्थ, कामसहित मोक्ष भी दे दिया। इस प्रकार महाभाग महानन्दने देवोंके समान अभीष्ट फलोंका उपभोग कर अन्तमें देवताओंसे नमस्कृत हो परम लोकको प्राप्त किया।

(अध्याय ३४)

श्रीदुर्गासप्तशतीके उत्तरचरित्रकी महिमाके प्रसंगमें योगाचार्य महर्षि पतञ्जलिका चरित्र

सूतजी बोले— अनेक धातुओंके द्वारा वित्रित रमणीय विक्रमूर्ति पर्वतपर महाविद्वान् उपाध्याय पतञ्जलिमुनि रहते थे। वे वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ एवं गीता-शास्त्र-परायण थे। वे विष्णुके भक्त, सत्यवक्ता एवं व्याकरण-महाभाष्यके रचयिता भी माने गये हैं। एक समय वे शुद्धाभ्यास अन्य तीथोंमें गये। काशीमें उनका देवीभक्त काल्यायनके साथ शास्त्रार्थ हुआ। एक वर्षतक शास्त्रार्थ चलता रहा, अन्तमें पतञ्जलि पराजित हो गये। इससे लक्षित होकर उन्होंने सरस्वतीकी इस प्रकार आराधना की—

नमो देव्य महामूर्त्यं सर्वमूर्त्यं नमो नमः।
शिवायै सर्वमाङ्गल्यै विष्णुमाये च ते नमः॥
त्वयेव अद्वा बुद्धिस्वर्वं मेधा विद्या शिवंकरी।
शान्तिर्वाणी त्वयेवासि नारायणि नमो नमः॥

(प्रतिसर्गपर्व २। ३५। ५-६)

'महामूर्ति देवीको नमस्कार है। सर्वमूर्तिस्वरूपिणीको नमस्कार है। सर्वमङ्गलस्वरूपा शिवादेवीको नमस्कार है। हे विष्णुमाये ! तुम्हें नमस्कार है। हे नारायण ! तुम्हीं श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या तथा कल्याणकारिणी हो। तुम्हीं शान्ति हो,

तुम्हीं वाणी हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है।'

इस स्मृतिसे प्रसन्न होकर भगवती सरस्वतीने आवश्यकाणीमें कहा—'विष्णुष्ट ! तुम एकाग्राचित्त होकर मेरे उत्तर चरित्रका जप करो। उसके प्रभावसे तुम निष्ठा ही ज्ञानको प्राप्त करोगे। पतञ्जले ! काल्यायन तुमसे परासत हो जायेंगे।' देवीकी इस वाणीको सुनकर पतञ्जलिने विष्णुवासिनीदेवीके मन्दिरमें जाकर सरस्वतीकी आराधना की और वे प्रसन्न हो गयीं। इससे उन्होंने पुनः शास्त्रार्थमें काल्यायनको पराजित कर दिया, बादमें उन्होंने कृष्ण-मन्त्र और भक्तिके प्रचारमें तुलसीमाला आदिका भी महत्व बढ़ाया। भगवती विष्णुमायाकी कृपासे वे योगाचार्य अत्यन्त चिरजीवी हो गये।

मुनियो। इस प्रकार दुर्गासप्तशतीके उत्तर चरित्रकी महिमा निरूपित हुई। अब आगे आपलोंग वया सुनना चाहते हैं, वह बतायें। सभीका कल्याण हो, कोई भी दुःख प्राप्त न करे। गरुडध्वज, पुण्डरीकाश भगवान् विष्णु मङ्गलमय हैं। भगवान् विष्णु मङ्गलमूर्ति हैं। जो व्यक्ति पवित्र होकर इस इतिहास-समुच्चयको प्रतिदिन सुनता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। (अध्याय ३५)

—३५—
॥ प्रतिसर्गपर्व हिंसीय स्वप्न सम्पूर्ण ॥

—३५—

प्रतिसर्गपर्व (तृतीय खण्ड)

[भविष्यपुराणके प्रतिसर्गपर्वका तीसरा खण्ड रामांश और कृष्णांश अर्थात् आल्हा और उदल (उदयसिंह) के चरित्र तथा जयचन्द्र एवं पृथ्वीराज चौहानकी वीर-गाथाओंसे परिपूर्ण है। इधर भारतमें जगनिक भाटरचित आल्हाका वीरकर्त्त्व बहुत प्रचलित है। इसके बुदेलखण्डी, भोजपुरी आदि कई संस्करण हैं, जिनमें भाषाओंका थोड़ा-थोड़ा भेद है। इन कथाओंका मूल यह प्रतिसर्गपर्व ही प्रतीत होता है। इसीके आधारपर ये रचनाएँ प्रचलित हैं। प्रायः ये कथाएँ लोकरजनके अनुसर अतिशयोक्तिपूर्ण-सी प्रतीत होती हैं, किंतु ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्वकी भी हैं। यहाँ इनका सारांश प्रस्तुत किया गया है। — सम्पादक]

आल्हा-खण्ड (आल्हा-उदलकी कथा) का उपक्रम

प्रह्लियोने पूछा—सूतजी महाराज ! आपने महाराज विक्रमादित्यके इतिहासका वर्णन किया। द्वापर युगके समान उनका शासन, धर्म एवं न्यायपूर्ण था और लंबे समयतक इस पृथ्वीपर रहा। महाभाग ! उस समय भगवान् श्रीकृष्णने अनेक लीलाएँ की थीं। आप उन लीलाओंका हमलोगोंसे वर्णन कीजिये, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं।

श्रीसूतजीने मङ्गल-स्मरणपूर्वक कहा—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

(प्रतिसर्गपर्व ३ । १ । ३)

'भगवान् नर-नारायणके अवतारस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके सखा नरशेष अर्जुन, उनकी लीलाओंको प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उनके चरित्रोंका वर्णन करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार कर अष्टादश पुराण, रामायण और महाभारत आदि जय नामसे व्यपदिष्ट अन्योंका वाचन करना चाहिये।'

मुनिगणो ! भविष्य नामक महाकल्पके वैवस्वत मन्वन्तरके अढुईंसवें द्वापर युगके अन्तमें कुलक्षेत्रका प्रसिद्ध महायुद्ध हुआ। उसमें युद्ध कर दुर्भिमानी सभी कौरवोंपर पाण्डवोंने अठारहवें दिन पूर्ण विजय प्राप्त की। अन्तिम दिन भगवान् श्रीकृष्णने बलवंशी दुर्गतिको जानकर योगरूपी सनातन शिवजीकी मनसे इस प्रकार स्तुति की—

शान्तस्वरूपी, सब भूतोंके स्वामी, कपर्दी, कालकर्ता, जगद्दर्ता, पाप-विनाशक रुद्र ! मैं आपको बार-बार प्रणाम

करता हूँ। भगवन् ! आप मेरे भक्त पाण्डवोंकी रक्षा कीजिये।

इस सुनिको सुनकर भगवान् शंकर नन्दीपर आरुद्ध हो हाथमें त्रिशूल लिये पाण्डवोंके शिविरकी रक्षाके लिये आ गये। उस समय महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये थे और पाण्डव सरस्वतीके किनारे रहते थे।

मध्यरात्रिमें अक्षत्यामा, भोज (कृतवर्मी) और कृपाचार्य—ये तीनों पाण्डव-शिविरके पास आये और उन्होंने मनसे भगवान् रुद्रकी सुन्ति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया। इसपर भगवान् शंकरने उन्हें पाण्डव-शिविरमें प्रवेश करनेकी आज्ञा दे दी। बलवान् अक्षत्यामाने भगवान् शंकरद्वारा प्राप्त तलवारसे धृष्टघुम्प आदि वीरेंकी हत्या कर दी, फिर वह कृपाचार्य और कृतवर्मके साथ वापस चला गया। वहाँ एकमात्र पार्षद सूत ही बचा रहा, उसने इस जनसंहारकी सूचना पाण्डवोंको दी। भीम आदि पाण्डवोंने इसे शिवजीका ही कृत्य समझा; वे ब्रोधसे तिलमिला गये और अपने आयुधोंसे देवाधिदेव पिनाकीसे सुदूर करने लगे। भीम आदिद्वारा प्रयुक्त अख-शस्त्र शिवजीके शारीरमें समाहित हो गये। इसपर भगवान् शिवने कहा कि तुम श्रीकृष्णके उपासक हो अतः हमारे द्वारा तुमलोग रक्षित हो, अन्यथा तुमलोग वधके योग्य थे। इस अपराधका फल तुम्हें कलियुगमें जन्म लेकर भोगना पड़ेगा। ऐसा कहकर वे अदृश्य हो गये और पाण्डव बहुत दुःखी हुए। वे अपराधसे मुक्त होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। निःशस्त्र पाण्डवोंने श्रीकृष्णके साथ एकत्र प्रसाद शंकरजीकी सुन्ति की। इसपर

भगवान् शंकरने प्रत्यक्ष प्रकट होकर उनसे वर माँगनेको कहा ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देव ! पाण्डवोंके जो शख्सख आपके शरीरमें लीन हो गये हैं, उन्हें पाण्डवोंको वापस कर दीजिये और इन्हें शापसे भी मुक्त कर दीजिये ।

श्रीशिवजीने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ । उस समय मैं आपकी मायासे भोहित हो गया था । उस मायाके अधीन होकर मैंने यह शाप दे दिया । यद्यपि मेरा वचन तो मिथ्या नहीं होगा तथापि ये पाण्डव तथा कौरव अपने अंशोंसे कलियुगमें उत्पन्न होकर अंशतः अपने पापोंका फल भोगकर मुक्त हो जायेंगे ।

युधिष्ठिर वत्सराजका पुत्र होगा, उसका नाम बलखानि (मलखान) होगा, वह शिरीय नगरका अधिपति होगा । भीमका नाम वीरण होगा और वह वनरसका राजा होगा । अर्जुनके अंशसे जो जन्म लेगा, वह महान् बुद्धिमान् और मेरा भक्त होगा । उसका जन्म परिमलके यहाँ होगा और नाम होगा ब्रह्मानन्द । महाबलशाली नकुलका जन्म कान्यकुञ्जमें रब्रभानुके पुत्रके रूपमें होगा और नाम होगा लक्षण । सहदेव

भीमसिंहका पुत्र होगा और उसका नाम होगा देवसिंह । धूतराष्ट्रके अंशसे अजमेरमें पृथ्वीराज जन्म लेगा और द्रौपदी पृथ्वीराजकी कन्याके रूपमें बेला नामसे प्रसिद्ध होगी । महादानी कर्ण तारक नामसे जन्म लेगा । उस समय रत्नबीजके रूपमें पृथ्वीपर मेरा भी अवतार होगा । जैरव माया-मुद्रमें निष्पात होगे और पाण्डु-पक्षके बोद्धा धार्मिक और बलशाली होंगे ।

सूतजी बोले—ऋषियो ! यह सब बातें सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराये और उन्होंने कहा ‘मैं भी अपनी शक्ति-विशेषसे अवतार लेकर पाण्डवोंकी सहायता करूँगा । मायादेवीद्वारा निर्मित महावती नामकी पुरीमें देशराजके पुत्र-रूपमें मेरा अंश उत्पन्न होगा, जो उदयसिंह (उदल) कहलायेगा, वह देवकीके गर्भसे उत्पन्न होगा । मेरे वैकुण्ठ-धामका अंश आहूद नामसे जन्म लेगा, वह मेरा गुरु होगा । अग्रिवंशसे उत्पन्न राजाओंका विनाश कर मैं (श्रीकृष्ण—उदयसिंह) धर्मकी स्थापना करूँगा ।’ श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर शिवजी अन्तर्भूत हो गये ।



राजा शालिवाहन तथा ईशामसीहकी कथा

सूतजीने कहा—ऋषियो ! प्रातःकालमें पुत्रशोकसे पीड़ित सभी पाण्डव प्रेतकार्य कर पितामह भीष्मके पास आये । उनसे उन्होंने राजधर्म, मोक्षधर्म और दानधर्मोंके स्वरूपको अलग-अलग रूपसे भलीभांति समझा । तदनन्तर उन्होंने उत्तम आचरणोंसे तीन अश्वमेघ-यज्ञ किये । पाण्डवोंने छत्तीस वर्षातक राज्य किया और अन्तमें वे स्वर्ग चले गये । कलिधर्मकी वृद्धि होनेपर वे भी अपने अंशसे उत्पन्न होंगे ।

अब आप सब मुनिगण अपने-अपने स्थानको पथारे । मैं योगनिद्राके वशीभूत हो रहा हूँ, अब मैं समाधिस्थ होकर गुणातीत परब्रह्मका ध्यान करूँगा । यह सुनकर नैमित्तारण्यवासी मुनिगण यौगिक सिद्धिका अवलम्बन कर आत्मसामीप्यमें स्थित हो गये । दीर्घकाल व्यतीत होनेपर शौनकादिमुनि ध्यानसे उठकर पुनः सूतजीके पास पहुँचे ।

मुनियोंने पूछा—सूतजी महाराज ! विक्रमाख्यानका तथा द्वापरमें शिवकी आज्ञासे होनेवाले राजाओंका आप वर्णन करेजिये ।

सूतजी बोले—मुनियो ! विक्रमादित्यके स्वर्गलोक चले जानेके बाद बहुतसे राजा हुए । पूर्वमें कपिल स्थानसे पश्चिममें सिन्धु नदीतक, उत्तरमें बद्रीक्षेत्रसे दक्षिणमें सेतुबन्धतकी सीमावाले भारतवर्षमें उस समय अठारह राज्य या प्रदेश थे । उनके नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल, कुरुक्षेत्र, कम्पिल, अन्तर्वेदी, ब्रज, अजमेर, मरुधन्व (मारवाड़), गुर्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, ब्रविड़ (तमिलनाडु), कलिंग (उडीसा), अवन्ती (उज्जैन), उदुप (आन्ध्र), बंग, गौड़, मार्ग तथा कौशल्य । इन राज्योंपर अलग-अलग राजाओंने शासन किया । वहाँकी भाषाएँ भिन्न-भिन्न रहीं और समय-समयपर विभिन्न धर्म-प्रचारक भी हुए । एक सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर धर्मका विनाश सुनकर शक आदि विदेशी राजा अनेक लोगोंके साथ सिन्धु नदीको पारकर आपेंद्रियमें आये और कुछ लोग हिमालयके हिममार्गसे यहाँ आये । उन्होंने आयोंको जीतकर उनका धन लूट लिया और अपने देशमें लौट गये । इसी समय विक्रमादित्यका पौत्र राजा

शालिवाहन पिताके सिंहासनपर आसीन हुआ। उसने शक, चीन आदि देशोंकी सेनापर विजय किया। बाह्यिक, कामरूप, रोम तथा खुर देशमें उत्पन्न हुए दुष्टोंको पकड़कर उन्हें कठोर दण्ड दिया और उनका सारा कोष छीन लिया। उसने म्लेच्छों तथा आयोजिकी अलग-अलग देश-मर्यादा स्थापित की। सिन्धु-प्रदेशको आयोजिक उत्तम स्थान निर्धारित किया और म्लेच्छोंके लिये सिन्धुके उस पारका प्रदेश नियत किया।

एक समयकी बात है, वह शकाधीश शालिवाहन हिमशिखारपर गया। उसने हूून देशके मध्य स्थित पर्वतपर एक सुन्दर पुरुषको देखा। उसका शरीर गोरा था और वह श्वेत वस्त्र धारण किये था। उस व्यक्तिको देखकर शकगुजने प्रसन्नतासे पूछा—‘आप कौन हैं?’ उसने कहा—‘मैं ईशपुत्र हूूँ और कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूूँ। मैं म्लेच्छ-धर्मका प्रचारक और सत्य-ब्रतमें स्थित हूूँ।’ राजाने पूछा—‘आपका कौन-सा धर्म है?’

ईशपुत्रने कहा—महाराज ! सत्यका विनाश हो जानेपर मर्यादारहित म्लेच्छ-प्रदेशमें मैं मसीह बनकर आया और

दस्युओंके मध्य भवंकर ईशामसी नामसे एक कन्या उत्पन्न हुई। उसीको म्लेच्छोंसे प्राप्त कर मैंने मसीहत्व प्राप्त किया। मैंने म्लेच्छोंमें जिस धर्मकी स्थापना की है, उसे सुनिये—

‘सबसे पहले मानस और दैत्यिक मलको निकालकर शरीरको पूर्णतः निर्मल कर लेना चाहिये। फिर इट देवताका जप करना चाहिये। सत्य वाणी बोलनी चाहिये, न्यायसे चलना चाहिये और मनको एकाग्र कर सूर्यमण्डलमें स्थित परमात्माकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि ईश्वर और सूर्यमें समानता है। परमात्मा भी अचल है और सूर्य भी अचल है। सूर्य अनित्य भूतोंके सारका चारों ओरसे आकर्षण करते हैं। हे भूषाल ! ऐसे कृत्यसे वह मसीहा विलीन हो गयी। पर मेरे हृदयमें नित्य विशुद्ध कल्याणकारिणी ईश-मूर्ति प्राप्त हुई है। इसलिये मेरा नाम ईशामसीह प्रतिष्ठित हुआ।’

यह सुनकर राजा शालिवाहनने उस म्लेच्छ-पूज्यको प्रणाम किया और उसे दारुण म्लेच्छ-स्थानमें प्रतिष्ठित किया तथा अपने राज्यमें आकर उस राजाने अश्रमेष्य यज्ञ किया और साठ वर्षतक राज्य करके स्वर्गलोक चला गया।

राजा भोज और महामदकी कथा

सूरजीने कहा—ऋषियो ! शालिवाहनके वंशमें दस राजा हुए। उन्होंने पाँच सौ वर्षतक शासन किया और स्वर्गवासी हुए। तदनन्तर भूमण्डलपर धर्म-मर्यादा लुप्त होने लगी। शालिवाहनके वंशमें अन्तिम दसवें राजा भोजराज हुए। उन्होंने देशकी मर्यादा क्षीण होती देख दिव्यविजयके लिये प्रस्थान किया। उनकी सेना दस हजार थी और उनके साथ कलिदास एवं अन्य विद्वान् ब्राह्मण भी थे। उन्होंने सिन्धु नदीको पार करके गाम्भार, म्लेच्छ और काश्मीरके शठ राजाओंको परास्त किया तथा उनका कोश छीनकर उन्हें दण्डित किया। उसी प्रसंगमें आचार्य एवं शिष्यमण्डलके साथ म्लेच्छ महामद नामका व्यक्ति उपस्थित हुआ। राजा भोजने मरुस्थलमें विद्यमान महादेवजीका दर्शन किया। महादेवजीको पञ्चगव्यमिश्रित गङ्गाजलसे ऊन करकर चन्दन आदिसे भक्तभावपूर्वक उनका पूजन किया और उनकी सुति की।

भोजराजने कहा—हे मरुस्थलमें निवास करनेवाले

तथा म्लेच्छोंसे गुप्त शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूपवाले गिरिजापते ! आप त्रिपुरासुके विनाशक तथा नानाविध मायाशक्तिके प्रवर्तक हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूूँ, आप मुझे अपना दास समझें। मैं आपको नमस्कार करता हूूँ। इस सुतिको सुनकर भगवान् शिवने राजासे कहा—

‘हे भोजराज ! तुम्हें महाकालेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। यह बाह्यिक नामकी भूमि है, पर अब म्लेच्छोंसे दूषित हो गयी है। इस दारुण प्रदेशमें आर्य-धर्म है ही नहीं। महामायावी त्रिपुरासुर यहाँ दैत्यराज बलिद्वारा प्रेषित किया गया है। मेरे द्वारा वरदान प्राप्त कर वह दैत्य-समुदायको बढ़ा रहा है। वह अयोनिज है। उसका नाम महामद है। राजन ! तुम्हें इस अनार्य देशमें नहीं आना चाहिये। मेरी कृपासे तुम विशुद्ध हो !’ भगवान् शिवके इन वचनोंको सुनकर राजा भोज सेनासे साथ अपने देशमें वापस चला आया।

राजा भोजने द्विजवाङ्कि लिये संस्कृत वाणीका प्रचार किया और शूद्रोंके लिये प्राकृत भाषा चलायी। उन्होंने पचास

वर्षतक राज्य किया और अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त किया। हिमालयके मध्यमें आर्यवर्तीकी पुण्यभूमि है, वहाँ आर्यलोग उन्होंने देश-मर्यादाका स्थापन किया। विन्यगिरि और रहते हैं।

देशराज एवं वत्सराज आदि राजाओंका आविर्भाव

सूतजीने कहा— भोजराजके स्वागतिहणके पश्चात् उनके बंशमें सात राजा हुए, पर वे सभी अल्पायु, मन्द-बुद्धि और अल्पतेजस्ती हुए तथा तीन सौ वर्षके भीतर ही मर गये। उनके राज्यकालमें पृथ्वीपर छोटे-छोटे अनेक राजा हुए। बीरसिंह नामके सातवें राजाके बंशमें तीन राजा हुए, जो दो सौ वर्षके भीतर ही मर गये। दसवाँ जो गंगासिंह नामका राजा हुआ, उसने कल्पक्षेत्रमें धर्मपूर्वक अपना राज्य चलाया। अन्तर्वेदीमें कान्यकुञ्जपर राजा जयचन्द्रका शासन था। तोमरवंशमें उत्पन्न अनन्दपाल इन्द्रप्रस्थका राजा था। इस तरहसे गाँव और राष्ट्रमें (जनपदों) में बहुतसे राजा हुए। अग्रिवंशका विस्तार बहुत हुआ और उसमें बहुतसे बलवान् राजा हुए। पूर्वमें कपिलस्थान (गङ्गासागर), पश्चिममें बाह्यक, उत्तरमें चीन देश और दक्षिणमें सेतुबन्ध—इनके बीचमें साठ लाख भूपाल ग्रामपालक थे, जो महान् बलवान् थे। इनके राज्यमें—प्रजाएं अग्रिहोत्र करनेवाली, गौ-बाहुणका हित चाहनेवाली तथा द्वापर युगके समान धर्म-कार्य करनेमें निपुण थीं। सर्वत्र द्वापर युग ही मालूम पड़ता था। धर-धरमें प्रचुर धन तथा जन-जनमें धर्म विद्यमान था। प्रत्येक गाँवमें देवताओंकी मन्दिर थे। देश-देशमें यज्ञ होते थे। म्लेच्छ भी आर्य-धर्मका सभी तरहसे पालन करते थे। द्वापरके समान ऐसा धर्माचरण देखकर कलिने भयभीत होकर म्लेच्छाके साथ नीलाचल पर्वतपर जाकर हरिकी शारण ली। वहाँ उसने बारह वर्षतक तपक्षर्या की। इस ध्यानयोगात्मक तपक्षर्यामें उसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ। राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर उसने मनसे उनकी सुन्ति की।

कलिने कहा— हे भगवन् ! आप मेरे साण्डाङ्क दण्डवत् प्रणामको स्वीकार करें। मेरी रक्षा कीजिये। हे कृपानिधि ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सभी पापोंका विनाश करते हैं। सभी कालोंका निर्माण करनेवाले आप ही हैं। सत्ययुगमें आप गौरवणिके थे, त्रेतामें रक्तवर्ण, द्वापरमें पीतवर्णिके थे। मेरे समय (कलियुग)में आप कृष्ण-रूपके हैं। मेरे पुत्रोंने म्लेच्छ होनेपर भी अब आर्य-धर्म स्वीकार किया है। मेरे राज्यमें प्रत्येक घरमें धूत, मध्य, स्वर्ण, स्त्री-हास्य आदि होना चाहिये। परंतु अग्रिवंशमें पैदा हुए क्षत्रियोंने उनका विनाश कर दिया है। हे जनार्दन ! मैं आपके चरण-कमलोंकी शरण हूँ। कलियुगकी यह सुन्ति सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मुसकराकर कहने लगे—

'कलिराज ! मैं तुम्हारी रक्षाके लिये अंशरूपमें महाबतीमें अवतीर्ण होऊँगा, वह मेरा अंश भूमिमें आकर उन महाबली अग्रिवंशीय प्रजाओंका विनाश करेगा और म्लेच्छवंशीय राजाओंकी प्रतिष्ठा करेगा।' यह कहकर भगवान् अदृश्य हो गये और म्लेच्छाके साथ वह कलिल्यन्त प्रसन्न हो गया।

आगे चलकर इसी प्रकार सम्पूर्ण घटनाएँ घटित हुईं। कौरवांशोंकी पराजय और पाण्डवांशोंकी विजय हुई। अन्तमें पृथ्वीराज चौहानने बीरगति प्राप्त की तथा सहोद्रीन (मोहम्मदगोरी) अपने दास कुतुकोद्रीनको यहाँका शासन सौंपकर यहाँसे बहुत-सा धन लूटकर अपने देश श्रीकृष्णचन्द्रका दर्शन हुआ। राधाके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन पाकर उसने मनसे उनकी सुन्ति की।

* * * * *
॥ प्रतिसर्गपर्व, तृतीय खण्ड सम्पूर्ण ॥

* * * * *

* प्रतिसर्गपर्वका चतुर्थ खण्ड परिशिष्टाङ्कमें दिया गया है।

उत्तरपर्व

महाराज युधिष्ठिरके पास व्यासादि महर्षियोंका आगमन एवं उनसे
उपदेश करनेके लिये युधिष्ठिरकी प्रार्थना

कल्याणानि ददातु बो गणपतिर्यस्मिन्नतुरु सति
क्षोदीयस्यपि कर्मणि प्रभवितुं ब्रह्मापि जिह्वायते ।
भेजे यद्वरणारविन्दमसकृत्स्तो भाग्यभाग्योदयै-
स्तेनैषा जगति प्रसिद्धिमगमद्देवेन्द्रलक्ष्मीरपि ॥
शक्षत्युण्यहिरण्यगर्भरसनासिंहासनाध्यासिनी
सेव्य वाग्धिदेवता वितरतु श्रेयांसि भूयांसि यः ।
यत्पाद्यामलकोमलाङ्गुलिनरुज्योत्सनाभिरुद्देलितः
शब्दब्रह्मासुधाम्बुधिर्वृधमनस्तुच्छूलं खेलति ॥

(उत्तरपर्व १ । १-२)

'जिनकी प्रसन्नताके बिना ब्रह्मा भी एक क्षुद्रकार्यका सम्पादन नहीं कर सकते और जिनके चरणोंके एक बार आश्रय लेनेसे देवेन्द्रका भाग्य चमक उठा तथा उन्हें अखण्ड रुजलक्ष्मीकी प्राप्ति हो गयी, वे भगवान् गणपतिदेव आप-लोगोंका कल्याण करें। जो ब्रह्माके जिह्वाप्रभागपर निरन्तर सिंहासनासीन रहती है और जिनके चरणनखकी चन्द्रिकासे प्रकाशित होकर शब्दब्रह्मका समृद्ध विद्वानोंके हृदयपर नृत्य करता है, वे भगवती सरस्वती आप सबका अनन्त कल्याण करें।'

भगवान् शंकरका ध्यान कर, भगवान् (विष्णु) कृष्णकी सुति कर और ब्रह्माजीको नमस्कार कर तथा सूर्यदेव एवं अग्निदेवको प्रणाम कर इस प्रथका वाचन करना चाहिये^१।

एक बार धर्मके पुत्र धर्मवीता महाराज युधिष्ठिरको देखनेके लिये व्यास, मार्कण्डेय, माण्डव्य, शाङ्किल्य, गौतम, शातातप, पराशर, भरद्वाज, शौनक, पुलस्य, पुलह तथा देवर्षि नारद आदि श्रेष्ठ ऋषिगण यधारे ।

उन महान् तपस्वी एवं वेदवेदाङ्गपारंगत ऋषियोंको देखकर भक्तिमान् राजा युधिष्ठिरने अपने भाइयोंके साथ प्रसन्नचित हो सिंहासनसे उठकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा पुरोहित धौम्यको आगे कर उनका अभिवादन किया और आचमन एवं पादादिसे उनकी पूजाकर आसन प्रदान किया। उन तपस्वियोंके बैठनेपर विनयसे अवनत हो महाराज

युधिष्ठिरने श्रीवेदव्यासजीसे कहा—

'भगवन् ! आपके प्रसादसे मैंने यह महान् राज्य प्राप्त किया तथा दुर्योधनादिको परास्त किया। किंतु जैसे रोगीको सुख प्राप्त होनेपर भी वह सुख उसके लिये सुखकर नहीं होता, वैसे ही अपने बन्धु-बाल्यवैयोंको मारकर वह राज्य-सुख मुझे प्रिय नहीं लग रहा है। जो आनन्द बनाये निवास करते हुए कन्द-मूल तथा फलोंके भक्षणसे प्राप्त होता है, वह सुख शत्रुओंको जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य प्राप्त करनेपर भी नहीं होता। जो भीष्मितामह हमारे गुरु, बन्धु, रक्षक, कल्याण और कवचस्वरूप थे, उन्हें भी मुझ-जैसे पापीने गज्यके लोभसे मार डाला। मैंने बहुत विवेकशून्य कर्म किया है। मेरा मन पाप-पड़ूमें लिप्त हो गया है। भगवन् ! आप कृपाकर अपने ज्ञानरूपी जलसे मेरे अज्ञान तथा पाप-पड़ूको धोकर सर्वथा निर्मल बना दीजिये और अपने प्रज्ञारूपी दीपकसे मेरा धर्मरूपी मार्ग प्रशस्त कीजिये। धर्मके संरक्षक ये मुनिगण कृपाकर यहाँ आये हुए हैं। गङ्गापुत्र महाराज भीष्मितामहसे मैंने अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्रका विस्तारसे श्रवण किया है। उन शान्तनुपत्र भीष्मके स्वर्गलोक चले जानेपर अब श्रीकृष्ण और आप ही मैत्री एवं बन्धुताके कारण मेरे मार्गदर्शक हैं।'

व्यासजी बोले—राजन् ! आपको करने योग्य सभी वाते मैंने, पितामह भीष्मने, महर्षि मार्कण्डेय, धौम्य और महामुनि लोमशने बता दी हैं। आप धर्मज्ञ, गुणी, मेधावी तथा धीमान् पुरुषोंके समान हैं, धर्म और अधर्मके निष्ठयमें कोई भी बात आपको अज्ञात नहीं है। हर्षीकेश भगवान् श्रीकृष्णके यहाँ उपस्थित रहते हुए धर्मका उपदेश करनेका साहस कौन कर सकता है ? क्योंकि ये ही संसारकी सृष्टि, स्थिति तथा पालन करते हैं एवं प्रत्यक्षदर्शी हैं। अतः ये ही आपको उपदेश करेंगे। इतना कहकर तथा पाण्डुवैयोंकी पूजा ग्रहणकर बादरायण व्यासजी तपोवन चले गये।

(अध्याय १)

भुवनकोशका संक्षिप्त वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह जगत् किसमें प्रतिष्ठित है? कहाँसे उत्पन्न होता है? इसका किसमें लग्न होता है? इस विश्वका हेतु क्या है? पृथ्वीपर कितने द्वीप, समुद्र तथा कुलाचल हैं? पृथ्वीका कितना प्रमाण है? कितने भुवन हैं? इन सबका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, वह सब पुण्यका विषय है, किन्तु संसारमें घूमते हुए मैंने जैसा सुना और जो अनुभव किया है, उनका संक्षेपमें मैं वर्णन करता हूँ। सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन पाँच लक्षणोंसे समन्वित पुण्य कहा जाता है^१।

अनन्य! आपका प्रश्न इन पाँच लक्षणोंमेंसे सर्ग (सृष्टि) - के प्रति ही विशेषरूपसे सम्बद्ध है, इसलिये इसका मैं संक्षेपमें वर्णन करता हूँ।

अव्यक्त-प्रकृतिसे महतत्त्व-बुद्धि उत्पन्न हुई। महतत्त्वसे क्रियुणात्मक अहंकार उत्पन्न हुआ, अहंकारसे पञ्चतन्मात्रा, पञ्चतन्मात्राओंसे पाँच महाभूत और इन भूतोंसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ है। स्थावर-जड़मात्मक अर्थात् चराचर जगत्के नष्ट होनेपर जलमूर्तिमय विष्णु रह जाते हैं अर्थात् सर्वत्र जल परिव्याप्त रहता है, उससे भूतात्मक अण्ड उत्पन्न हुआ। कुछ समयके बाद उस अण्डके दो भाग हो गये। उसमें एक खण्ड पृथिवी और दूसरा भाग आकाश हुआ। उसमें जगत्युसे मेरु आदि पर्वत हुए। नाडियोंसे नदी आदि हुई। मेरु पर्वत सोलह हजार योजन भूमिके अंदर प्रविष्ट है और चौंगासी हजार योजन भूमिके ऊपर है, बत्तीस हजार योजन मेरुके शिखरका विस्तार है। कमलस्वरूप भूमिकी कर्णिका मेरु है। उस अण्डसे आदिदेवता आदित्य उत्पन्न हुए, जो प्रातःकालमें ब्रह्मा, मध्याह्नमें विष्णु और सायंकालमें रुद्ररूपसे अवस्थित रहते हैं। एक आदित्य ही तीन रूपोंको धारण करते हैं। ब्रह्मासे मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और नारद—ये नौ मानस-पुत्र उत्पन्न हुए। पुण्योंमें इन्हे ब्रह्मपुत्र कहा गया है। ब्रह्माके दक्षिण ओंगटेसे दक्ष उत्पन्न हुए और

वाये ओंगटेसे प्रसूति उत्पन्न हुई। दोनों दम्पति ओंगटेसे ही उत्पन्न हुए। उन दोनोंसे उत्पन्न हर्यश आदि पुत्रोंको देवतार्थ नारदने सृष्टिके लिये उद्यत होनेपर भी सृष्टिसे विरत कर दिया। प्रजापति दक्षने अपने पुत्र हर्यशोंको सृष्टिसे विमुख देखकर सत्या आदि नामवाली साठ कन्याओंको उत्पन्न किया और उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो बाहुपुत्रको, दो कृशास्थको, चार अश्विनेमिको, एक भूगुको और एक कन्या शंकरको प्रदान किया। फिर इनसे चराचर-जगत् उत्पन्न हुआ। मेरु पर्वतके तीन शृङ्गोपर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी क्रमशः वैराज, वैकुण्ठ तथा कैलास नामक तीन पुरीयाँ हैं। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र आदि दिव्यालोकी नगरी है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, खेत और शङ्खवान्—ये सात जम्बूद्वीपमें कुल-पर्वत हैं। जम्बूद्वीप लक्ष्य योजन प्रमाणवाला है। इसमें नौ वर्ष हैं। जम्बू, शाक, कुश, क्रौञ्च, शाल्मलि, गोमेद* तथा पुष्कर—ये सात द्वीप हैं। ये सातों द्वीप सात समुद्रोंसे परिवेषित हैं। क्षार, दुध, इक्षुरस, सुग, दधि, धृत और स्वादिष्ट जलके सात समुद्र हैं। सातों समुद्र और सातों द्वीप एककी अपेक्षा एक द्विगुण हैं। भूलौक, भुवलौक, स्वलौक, महलौक, जनलौक, तपोलौक और सत्यलौक—ये देवताओंके निवास-स्थान हैं। सात पाताललौक हैं—अतल, महातल, भूमितल, सुतल, वितल, रसातल तथा तल्यातल। इनमें हिरण्याक्ष आदि दानव और वासुकि आदि नाग निवास करते हैं। हे युधिष्ठिर! सिद्ध और ऋषिगण भी इनमें निवास करते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाशुष—ये छः मनु व्यतीत हो गये हैं, इस समय वैवस्त मनु वर्तमान हैं। उन्हेंकि पुत्र और पौत्रोंसे यह पृथिवी परिव्याप्त है। बारह आदित्य, आठ वसु, न्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार—ये तीनों देवता वैवस्त-मन्वन्तरमें कहे गये हैं। विप्रचितिसे दैत्यगण और हिरण्याक्षसे दानवगण उत्पन्न हुए हैं।

द्वीप और समुद्रोंसे समन्वित भूमिका प्रमाण पचास कोटि

*१-सर्ग विविध वंशों मन्वन्तरणि च वंशानुचरितं चैव पुण्यं पञ्चलक्षणम्॥ (उत्तरपर्व २। ११)

* अन्य मत्य आदि सभी पुण्योंके अनुसार गोमेद आठवाँ है, यहाँ प्रक्ष नामक द्वीप हूँ गया है।

योजन है। नौकाकी तरह यह भूमि जलपर तैर रही है। इसके चारों ओर लोकालोक-पर्वत हैं। नैमित्तिक, प्राकृत, आत्मनितक और नित्य—ये चार प्रकारके प्रलय हैं। जिससे इस संसारकी उत्पत्ति होती है। प्रलयके समय उसीमें इसका लय हो जाता है। जिस प्रकार ब्रह्मुके अनुकूल वृक्षोंके पुष्प, फल और फूल उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार संसार भी अपने समयसे उत्पन्न होता है और अपने समयसे लीन होता है। समूर्ण विश्वके लीन होनेके बाद महेश्वर वेद-शब्दोंके द्वारा पुनः इसका निर्माण करते हैं। हिस, अहिस, मृदु, झूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि कर्मोंसे जीव अनेक योनियोंके इस संसारमें प्राप्त करते

हैं। भूमि जलसे, जल तेजसे, तेज वायुसे, वायु आकाशसे वेष्टित है। आकाश अहंकारसे, अहंकार महतत्त्वसे, महतत्त्व प्रकृतिसे और प्रकृति उस अविनाशी पुरुषसे परिव्याप्त है। इस प्रकारके हजारों अष्ट उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। सुर, नर, किंब्र, नाग, यक्ष तथा सिद्ध आदिसे समन्वित चराचर-जगत् नारायणकी कुक्षिमें अवस्थित है। निर्मल-चूदि तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिगण इसके बाह्य और आनन्दर-स्वरूपको देखते हैं अथवा परमात्माकी माया ही उन्हें जानती है।

(अध्याय २)

नारदजीको विष्णु-मायाका दर्शन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह विष्णु-भगवान्की माया किस प्रकारकी है? जो इस चराचर-जगत्को छायापोहित करती है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! किसी समय नारदमुनि श्वेतद्वीपमें नारायणका दर्शन करनेके लिये गये। वहाँ श्रीनारायणका दर्शन कर और उन्हें प्रसन्न-मुद्रामें देखकर उनसे जिज्ञासा की। भगवन्! आपकी माया कैसी है? कहाँ रहती है? कृपाकर उसका रूप मुझे दिखायें।

भगवान् ने हँसकर कहा—नारद! मायाको देखकर क्या करोगे? इसके अतिरिक्त जो कुछ चाहते हो वह माँगो।

नारदजीने कहा—भगवन्! आप अपनी मायाको ही दिखायें, अन्य किसी वरकी अभिलाषा नहीं है। नारदजीने बार-बार आग्रह किया।

नारायणने कहा—अच्छा, आप हमारी माया देखें। यह कहकर नारदकी अंगुली पकड़कर श्वेतद्वीपसे चले। मार्गमें आकर भगवान् एक बृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया। शिशा, यजोपवीत, कमण्डलु, मृगचर्मको धारण कर कुशाकी पक्की हाथोंमें पहनकर वेद-पाठ करने लगे और अपना नाम उन्होंने यज्ञशर्मा रख लिया। इस प्रकारका रूप धारणकर नारदके साथ जग्नुद्वीपमें आये। वे दोनों वेश्वरीं नदीके तटपर स्थित विदिशा नामक नगरीमें गये। उस विदिशा नगरीमें धन-धान्यसे समृद्ध उद्यमी, गाय, भैस, बकरी आदि पशु-पालनमें तत्पर, कृषिकर्त्ताको भलीभांति करनेवाल सीरभद्र

नामका एक वैश्य निवास करता था। वे दोनों सर्वप्रथम उसीके घर गये। उसने इन विशुद्ध ब्राह्मणोंका आसन, अर्च आदिसे आदार-स्तुतकर किया। फिर पूछा—‘यदि आप उचित समझें तो अपनी रुचिके अनुसार मेरे यहाँ अन्नका भोजन करें।’ यह सुनकर बृद्ध ब्राह्मणरूपधारी भगवान् ने हँसकर कहा—‘तुमको अनेक पुत्र-पौत्र हों और सभी व्यापार एवं सेवामें तत्पर रहें। तुम्हारी खेती और पशु-धनकी नित्य वृद्धि हो।’—यह मेंग आशीर्वाद है। इतना कहकर वे दोनों वहाँसे आगे गये। मार्गमें गङ्गाके तटपर वेणिका नामके गाँवमें गोस्वामी नामका एक दाढ़ि ब्राह्मण रहता था, वे दोनों उसके पास पहुँचे। वह अपनी खेतीकी विन्तामें लगा था। भगवान् ने उससे कहा—‘हम बहुत दूरसे आये हैं, अब हम तुम्हारे अतिथि हैं, हम भूखे हैं, हमें भोजन कराओ।’ उन दोनोंको साथमें लेकर वह ब्राह्मण अपने घरपर आया। उसने दोनोंको ज्ञान-भोजन आदि कराया, अनन्तर मुख्यपूर्वक उत्तम शश्यापर शयन आदिकी व्यवस्था की। प्रातः उठकर भगवान् ने ब्राह्मणसे कहा—‘हम तुम्हारे घरमें सुखपूर्वक रहे, अब जा रहे हैं। परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्कर्तु हो, तुम्हारी संततिकी वृद्धि न हो।’—इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

मार्गमें नारदजीने पूछा—भगवन्! वैश्यने आपकी कुछ भी सेवा नहीं की, किंतु उसको आपने उत्तम वर दिया। इस ब्राह्मणने श्रद्धासे आपकी बहुत सेवा की, किंतु उसको आपने आशीर्वादके रूपमें शाप ही दिया—ऐसा आपने

क्यों किया ?

भगवान्से कहा—नारद ! वर्षभर मल्लली पकड़नेसे जितना पाप होता है, उतना ही एक दिन हल जोतनेसे होता है। वह सौरभद्र वैश्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ इसी कृषि-कार्यमें लगा हुआ है, वह नरकमें जायगा, अतः हमने न तो उसके घरमें विश्राम किया और न भोजन ही किया। इस ब्राह्मणके घरमें भोजन और विश्राम किया। इस ब्राह्मणको ऐसा आशीर्वाद दिया है कि जिससे यह जगज्ञालमें न फैसलकर मुक्तिको प्राप्त करे।

इस प्रकार मार्गमें बातचीत करते हुए वे दोनों कान्यकुम्भ देशके समीप पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अतिशय रथ्य सरोवर देखा। उस सरोवरकी शोभा देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए।

भगवान्से कहा—नारद ! यह उत्तम तीर्थस्थान है। इसमें खान करना चाहिये, फिर कल्पनायाज नामके नगरमें चलेंगे इतना कहकर भगवान् उस सरोवरमें खान कर शीघ्र ही बाहर आ गये।

तदनन्तर नारदजी भी खान करनेके लिये सरोवरमें प्रविष्ट हुए। खान सम्पन्न कर जब वे बाहर निकले, तब उन्होंने अपनेको दिव्य कन्याके रूपमें देखा। उस कन्याके विशाल नेत्र थे। चन्द्रमाके समान मुख था, वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कन्या दिव्य शुभलक्षणोंसे सम्पन्न थी। अपनी सुन्दरतासे संसारको व्यामोहित कर रही थी। जिस प्रकार समुद्रसे सम्पूर्ण रूपकी निधान लक्ष्मी निकली थीं, उसी प्रकार सरोवरसे खानके बाद नारदजी खीके रूपमें निकले। भगवान् अन्तर्धान हो गये। वह स्त्री भी अपने झुंडसे भ्रष्ट अकेली हरिणीकी तरह भयभीत होकर इधर-उधर देखने लगी। इसी समय अपनी सेनाओंके साथ राजा तालध्वज वहाँ आया और उस सुन्दरीको देखकर सोचने लगा कि यह कोई देवस्त्री है या अपसरा? फिर बोला—‘बाले ! तुम कौन हो, कहाँसे आयी हो?’ उस कन्याने कहा—‘मैं माता-पितासे रहित और निराश्रय हूँ। मेरा विवाह भी नहीं हुआ है, अब आपकी ही शरणमें हूँ।’ इतना सुनते ही प्रसन्नचित हो राजा उसे थोड़ेपर बैठाकर राजधानी

पहुँचा और विधिपूर्वक उससे विवाह कर लिया। तेरहवें वर्षमें वह गर्भवती हुई। समय पूर्ण होनेपर उससे एक तुंबी (लौकी) उत्पन्न हुई, जिसमें पचास छोटे-छोटे दिव्य शरीरवाले युद्धमें कुशल बलशाली बालक थे, उसने उनको धृतकुण्डमें छोड़ दिया, कुछ दिन बाद पुत्र और पौत्रोंकी खूब बृद्धि हो गयी। वे महान् अंहकारी, परस्पर-विरोधी और राज्यकी कामना करनेवाले थे। अनन्तर राज्यके लोभसे कौरव और पाण्डवोंकी तरह परस्पर युद्ध करके समुद्रकी लहरोंकी भाँति लड़ते हुए वे सभी नष्ट हो गये। वह स्त्री अपने बंशका इस प्रकार संहार देखकर छाती पीटकर करुणापूर्वक विलाप करती हुई मूर्खित हो पृथ्वीपर गिर पड़ी। राजा भी शोकसे पीड़ित हो रोने लगा।

इसी समय ब्राह्मणका रूप धारणकर भगवान् विष्णु द्विजोंके साथ वहाँ आये और राजा तथा राजीको उपदेश देने लगे—‘यह विष्णुकी माया है। तुमलोग व्यर्थ ही गे रहे हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी अन्तमें यही स्थिति होती है। विष्णुमाया ही ऐसी है कि उसके द्वारा सैकड़ों चक्रवर्तीं और हजारों इन्द्र उसी तरह नष्ट कर दिये गये हैं जैसे दीपकोंपर प्रचण्ड वायु विनष्ट कर देती है। समुद्रको सुखानेके लिये भूमिको पीसकर चूर्ण कर डालनेकी तथा पर्वतको पीठपर उठानेकी सामर्थ्य रखनेवाले पुरुष भी कालके कलाल मुखमें चाले गये हैं। त्रिकूट पर्वत जिसका दुर्ग था, समुद्र जिसकी खाई थी, ऐसी लंका जिसकी राजधानी थी, गक्षसागण जिसके योद्धा थे, सभी शास्त्रों और वेदोंको जानेवाले शुक्राचार्य जिसके लिये मन्त्रणा करते थे, कुन्भेके धनको भी जिसने जीत लिया था, ऐसा रावण भी दैववश नष्ट हो गया’। युद्धमें, घरमें, पर्वतपर, अग्निमें, गुफामें अथवा समुद्रमें कहीं भी कोई जाय, वह कालके कोपसे नहीं बच सकता। भावी होकर ही रहती है। पातालमें जाय, इन्द्रलोकमें जाय, मेरु पर्वतपर चढ़ जाय, मन्त्र, औषध, शस्त्र आदिसे भी कितनी भी अपनी रक्षा करे, किंतु जो होना होता है, वह होता ही है—इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है। मनुष्योंके भाव्यानुसार जो भी शुभ और अशुभ होना है, वह अवश्य ही होता है। हजारों उत्तरपर भी

१-तुर्गिंसिकूटः परिका समुद्रो रक्षासि योधा धनदाता वित्तम्।

शस्त्रं च यस्याशनसा प्रणीतं स एवको दैववशम् विपतः॥ (उत्तरपर्व ४। १३)

भावी किसी भी प्रकार नहीं टल सकती^१। कोई शोक-विद्वाल होकर आँख उपकाता है, कोई रोता है, कोई बड़ी प्रसन्नतासे नाचता है, कोई मनोहर गीत गाता है, कोई धनके लिये अनेक उपाय करता है, इस तरह अनेक प्रकारके जालकी रचना करता रहता है, अतः यह संसार एक नाटक है और सभी प्राणिवर्ग उस नाटकके पात्र हैं।

इतना उपदेश देकर भगवान् ने रानीका हाथ पकड़कर कहा—‘नारदजी ! तुमने विष्णुकी माया देख ली। उठो ! अब स्नानकर अपने पुत्र-पौत्रोंको अर्घ्य देकर और्ध्वदेहिक कूल्य करो। यह माया विष्णुने स्वयं निर्मित की है।’ इतना कहकर उसी पुण्यतीर्थमें नारदको स्नान कराया। स्नान करते ही रुदी-रूपको छोड़कर नारदमुनिने अपना रूप धारण कर लिया। राजाने भी अपने मन्त्री और पुरोहितोंके साथ देखा कि

जटाधारी, यशोपवीतधारी, दण्ड-कमण्डलु लिये, बीणा धारण किये हुए, खड़ाऊंके ऊपर स्थित एक तेजस्वी मुनि हैं, यह मेरी रानी नहीं है। उसी समय भगवान् नारदका हाथ पकड़कर आकाश-मार्गसे क्षणमात्रमें श्वेतद्वीप आ गये।

भगवान् ने नारदसे कहा—देवर्षि नारदजी ! आपने मेरी माया देख ली। नारदके देखते-देखते ऐसा कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये। देवर्षि नारदजीने भी हैंसकर उन्हें प्रणाम किया और भगवान्की आशा प्राप्त कर तीनों लोकोंमें घूमने लगे। महाराज ! इस विष्णुमायाका हमने संक्षेपमें वर्णन किया। इस मायाके प्रभावसे संसारके जीव, पुत्र, स्त्री, धन आदिमें आसक्त हो रहे-गते हुए अनेक प्रकारकी चेष्टाएं करते हैं।

(अध्याय ३)

संसारके दोषोंका वर्णन

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यह जीव किस कर्मसे देवता, मनुष्य और पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है ? बालभावमें कैसे पुष्ट होता है और किस कर्मसे युवा होता है ? किस कर्मके फलस्वरूप अतिशय भयंकर दारुण गर्भवासका कष्ट सहन करता है ? गर्भमें वसा खाता है ? किस कर्मसे रूपवान्, धनवान्, पश्चित, पुत्रवान्, स्त्रीगी और कुलीन होता है ? किस कर्मसे रोगरहित जीवन व्यतीत करता है ? कैसे सुखपूर्वक मरता है ? शुभ और अशुभ फलका भोग कैसे करता है ? हे विमलमते ! ये सभी विषय मुझे बहुत ही गहन मालूम होते हैं ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! उत्तम कर्मोंसे देवयोनि, मिश्रकर्मसे मनुष्ययोनि और पाप-कर्मोंसे पशु आदि योनियोंमें जन्म होता है। धर्म और अधर्मके निश्चयमें श्रुति ही प्रमाण है। पापसे पापयोनि और पुण्यसे पुण्ययोनि प्राप्त होती है।^२

ऋतुकालके समय दोषरहित शुक्र वायुसे प्रेरित रूपके रक्तके साथ मिलकर एक हो जाता है। शुक्रके साथ ही कर्मोंके

अनुसार प्रेरित जीवयोनिमें प्रविष्ट होता है। एक दिनमें शुक्र और शौणित मिलकर कलल बनता है। पाँच रातमें वह कलल बहुद हो जाता है। सात रातमें बहुद मांसपेशी बन जाता है। चौदह दिनोंमें वह मांसपेशी मांस और रुधिरसे व्याप्त होकर ढूढ़ हो जाता है। पचीस दिनोंमें उसमें अङ्गुर निकलते हैं। एक महीनेमें उन अङ्गुरोंके पाँच-पाँच भाग—ग्रीवा, सिर, कंधे, पृष्ठवंशा तथा उदर हो जाते हैं। चार मासमें वही अङ्गुरोंका भाग अंगुली बन जाता है। पाँच महीनेमें मुख, नासिका और कान बनते हैं। छः महीनेमें दन्तपंक्तिर्थां, नल और कानके छिद्र बनते हैं। सातवें महीनेमें गुदा, लिङ्ग अथवा योनि और नाभि बनते हैं, संधिर्थां उत्पन्न होती है और अङ्गोंमें संकोच भी होता है। आठवें महीनेमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब पूर्ण हो जाते हैं और सिरमें केश भी आ जाते हैं। माताके भोजनका रस नाभिके द्वारा बालकके शरीरमें पहुंचता रहता है, उसीसे उसका पोषण होता है। तब गर्भमें स्थित जीव सब सुख-दुःख समझता है और यह विचार करता है कि ‘मैंने अनेक योनियोंमें जन्म लिया और बारंबार मृत्युके अधीन हुआ और अब जन्म

१-पातलमायिशतु यातु सुरेन्द्रलेकमारोहतु शितिशयाधिपति सुमेषम्।

मन्त्रौषधिप्रहरणीकृत्योनुरक्षणं यद्यावित्यनुपत्तिं नाथ विभावितोऽपि॥ (उत्तरपर्व ४। १५)

२-शुभेदेवत्वमाप्नोति मिश्रमनुपत्ती ब्रजेत्। अशुभैः कर्ममिश्रमनुसितर्थं ग्नेतिषु जायते॥

प्रमाणं शुभिरेवत्र शर्माशर्मिनिश्चये। पापं पापेन भवति पुण्यं पुण्येन कर्मणा॥ (उत्तरपर्व ४। ६-७)

होते ही फिर संसारके बन्धनको प्राप्त करूँगा।' इस प्रकार गर्भमें विचारता और मोक्षका उपाय सोचता हुआ जीव अतिशय दुःखी रहता है। पर्वतके नीचे दब जानेसे जितना फ़ेश जीवको होता है, उतना ही जरायुसे वेष्टि अर्थात् गर्भमें होता है। समुद्रमें हूँवनेसे जो दुःख होता है, वही दुःख गर्भके जलमें भी होता है, तस्म लोहेके स्वभेसे बाँधनेमें जीवको जो फ़ेश होता है वही गर्भमें जठराप्रिके तापसे होता है। तपायी हुई सूहवोसे बेघेनेपर जो व्यथा होती है, उससे आठ गुना अधिक गर्भमें जीवको कष्ट होता है। जीवोंके लिये गर्भवाससे अधिक कोई दुःख नहीं है। उससे भी कोटि गुना दुःख जन्म लेते समय होता है, उस दुःखसे मूर्छा भी आ जाती है। प्रबल प्रसव-वायुकी प्रेरणासे जीव गर्भके बाहर निकलता है। जिस प्रकार कोलहूमें पीड़न करनेसे तिल निसार हो जाते हैं, उसी प्रकार शरीर भी योनियन्त्रके पीड़नसे निस्तत्व हो जाता है। मुखरूप जिसका ढार है, दोनों ओष्ठ कपाट हैं, सभी इन्द्रियाँ गवाक्ष अर्थात् झरोखे हैं, दाँत, जिहा, गला, बात, पित, कफ, जरा, शोक, काम, क्रोध, तृष्णा, राग, द्वेष आदि जिसमें उपकरण हैं, ऐसे इस देह-रूप अनित्य गृहमें नित्य आत्माका निवास-स्थान है। शुक्र-शोणितके संयोगसे शरीर उत्पन्न होता है और नित्य ही मूत्र, विष्णा आदिसे भरा रहता है। इसलिये यह अत्यन्त अपवित्र है। जिस प्रकार विष्णुसे भरा हुआ घट बाहर धोनेसे शुद्ध नहीं होता, इसी प्रकार यह देह भी स्नान आदिके ढारा पवित्र नहीं हो सकता। पञ्चग्रन्थ आदि पवित्र पदार्थ भी इसके संसर्गसे अपवित्र हो जाते हैं। इससे अधिक और कौन अपवित्र पदार्थ होगा। उत्तम भोजन, पान आदि देहके संसर्गसे मलरूप हो जाते हैं, फिर देहकी अपवित्रताका क्या वर्णन करें। देहको बाहरसे जितना भी शुद्ध करें, भीतर सो कफ, मूत्र, विष्णा आदि भरे ही रहेंगे। सुगन्धित तेल देहमें मलते रहें, परंतु कभी इस देहकी बलिनता कम नहीं होती। यह आश्चर्य है कि मनुष्य अपने देहका दुर्गम्य सूखकर, नित्य अपना मल-मूत्र देखकर और नासिकाका मल निकालकर भी इस देहसे विरक्त नहीं

होता और उसे देहसे धूणा उत्पन्न नहीं होती। यह मोहक्य ही प्रभाव है कि शरीरके दोष और दुर्गम्य देख-सूखकर भी इससे गलानि नहीं होती। यह शरीर स्वभावतः अपवित्र है। यह केलेके वृक्षकी भाँति केवल त्वक् आदिसे आवृत और निस्सार है। जन्म होते ही बाहरकी वायुके स्पर्शसे पूर्वजन्मोंका ज्ञान नष्ट हो जाता है और पुनः संसारके व्यवहारमें आसक्त हो अनेक दुष्कर्ममें रत हो जाता है और अपनेको तथा परमेश्वरको भूल जाता है। आँख रहते हुए भी नहीं देख पाता, बुद्धि रहते हुए भी भले-बुरेका निर्णय नहीं कर पाता। याग तथा लोप आदिके वशीभूत होकर वह संसारमें दुःख प्राप्त करता रहता है। सूखे मार्गमें भी पैर फिसलते हैं, यह सब मोहकी ही महिमा है। दिव्यदर्शी महर्षियोंने इस गर्भका वृतान्त विस्तृत रूपसे वर्णन किया है। इसे सुनकर भी मनुष्यको वैराग्य उत्पन्न नहीं होता और अपने कल्पाणका मार्ग नहीं सोचता—यह बड़ा ही आश्चर्य है।

बाल्यावस्थामें भी केवल दुःख ही है। बालक अपना अभिग्राह भी नहीं कह सकता और जो चाहता है, वह नहीं कर पाता, वह असमर्थ रहता है। इससे नित्य व्याकुल रहता है। दाँत अनेके समय बालक बहुत फ़ेश भोगता है और भाँति-भाँतिके रोग तथा बालग्रह उसे सताते रहते हैं। वह क्षुधा-तृष्णासे पीड़ित होता रहता है, मोहसे विष्णु आदिका भी भक्षण करने लगता है। कुमारावस्थामें कर्ण-वेघके समय दुःख होता है। अक्षरारम्भके समय गुरुसे भी बड़ा ही भय होता है। माता-पिता ताड़न करते हैं।

युवावस्थामें भी सुख नहीं है। अनेक प्रकारकी ईर्ष्या मनमें उपजती है। मनुष्य मोहमें लीन हो जाता है। याग आदिमें आसक्त होनेके कारण दुःख होता है, रात्रिको नीद नहीं आती और धनकी चिन्तासे दिनमें भी चैन नहीं पड़ता। रुदी-संसर्गमें भी कोई सुख नहीं। कुछी व्यक्तिके कोढ़में कीड़े पड़ जानेपर जो खुजलाहट होती है, उसे खुजलानेमें जितना आनन्द होता है, उससे अधिक क्षमी व्यक्तिको स्त्रीसे सुख नहीं मिलता।^१

१-अव्यक्तेन्द्रियवृत्तिलब्द, बाल्ये दुःख महसुनः। इच्छापि न इच्छोति कर्तुं कर्तुं च सक्तियाम्॥

दन्तोत्थाने महादुःखं मैलेन व्यविना तथा। बालग्रहैर्गै विविदैः पीडा बालप्रहैर्ग्य॥

क्लिमिभिस्तुद्यामानस्य कुष्ठिनः कामिनस्तथा। कपूर्यन्ताप्रितापेन वद्भवेत् खीपु लद्धि तत्॥

इस तरह विचार करनेपर मालूम होता है कि स्त्रीमें कोई सुख नहीं है।

व्यक्ति मान-अपमानके द्वारा, युवावस्था-बुद्धावस्थाके द्वारा और संयोग-वियोगके द्वारा ग्रस्त है, तो फिर निर्विवाद सुख कहाँ ? जो यौवनके कारण रुचि-पुरुषोंके शरीर परस्पर प्रिय लगते हैं, वही वार्षक्यके कारण धृणित प्रतीत होते हैं। बुद्ध हो जाने, शरीरके काँपने और सभी अङ्गोंके जर्जर एवं शिथिल हो जानेपर वह सभीको अप्रिय लगता है। जो युवावस्थाके बाद वार्षक्यमें अपनेमें भारी परिवर्तन और अपनी शक्तिहीनताको देखकर विरक्त नहीं होता—धर्म और भगवान्की ओर प्रवृत्त नहीं होता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन हो सकता है ?

बुद्धोंमें जब पुत्र-पौत्र, बान्धव, दुराचारी नौकर आदि अवज्ञा—उपेक्षा करते हैं, तब अत्यन्त दुःख होता है। बुद्धोंमें वह धर्म, अर्थ, काम तथा योक्ष-सम्बन्धी कार्योंको सम्पन्न करनेमें असमर्थ रहता है। इसमें बात, पित आदिकी विषमतासे अर्थात् न्यूनता-अधिकता होनेसे अनेक प्रकारके रोग होते रहते हैं। इसलिये यह शरीर रोगोंका घर है। ये दुःख प्रायः सभीको समय-समयपर अनुभूत होते ही हैं, फिर उसमें विशेष कहनेकी आवश्यकता ही क्या ?

वास्तवमें शरीरमें सैकड़ों मृत्युके स्थान हैं, जिनमें एक तो साक्षात् मृत्यु या काल है, दूसरे अन्य आने-जानेवाली भयंकर आधि-व्याधियाँ हैं, जो आधी मृत्युके समान हैं। आने-जानेवाली आधि-व्याधियाँ तो जप-तप एवं औषध आदिसे टल भी जाती हैं, परंतु काल—मृत्युका कोई उपाय नहीं है। रोग, सर्प, शर्क, विष तथा अन्य घात करनेवाले बाघ, सिंह, दस्यु आदि प्राणिवर्ग ये सब भी मृत्युके द्वार ही हैं। किन्तु जब रोग आदिके रूपमें साक्षात् मृत्यु पहुंच जाती है तो देव-वैश्य घन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर पाते। औषध, तन्त्र, मन्त्र, तप, दान, रसायन, योग आदि भी कालसे ग्रस्त व्यक्तिकी रक्षा नहीं कर सकते। सभी प्राणियोंके लिये मृत्युके समान न कोई रोग है, न भय, न दुःख है और न कोई शंकका स्थान अर्थात् केवल एकमात्र मृत्युसे ही सारे भय आदि आशंकाएँ हैं। मृत्यु पुत्र, रुचि, मित्र, राज्य, ऐश्वर्य, धन आदि सबसे विशुक करा देती है और बद्धमूल वैर भी मृत्युसे निवृत्त हो जाते हैं।

पुरुषकी आयु सौ वर्षोंकी कही गयी है, परंतु कोई अस्सी वर्ष जीता है कोई सतर वर्ष ? अन्य लोग अधिक-से-अधिक साठ वर्षतक ही जीते हैं और बहुत-से तो इससे पहले ही मर जाते हैं। पूर्वकर्मानुसार मनुष्यकी जितनी आयु निश्चित है, उसका आधा समय तो रात्रि ही सोनेमें हर लेती है। योस वर्ष बाल्य और बुद्धायेमें व्यर्थ चले जाते हैं। युवा-अवस्थामें अनेक प्रकारकी चिन्ता और कामकी व्यथा रहती है। इसलिये वह समय भी निरर्थक ही चला जाता है। इस प्रकार यह आयु समाप्त हो जाती है और मृत्यु आ पहुंचती है। मरणके समय जो दुःख होता है, उसकी कोई उपमा नहीं। हे मातः ! हे पितः ! हे कान्त ! आदि चिल्लते व्यक्तिको भी मृत्यु वैसे ही पकड़ ले जाती है, जैसे मेहुकको सर्प पकड़ लेता है। व्याधिसे पीड़ित व्यक्ति खाटपर पड़ा इधर-उधर हाथ-पैर पटकता रहता है और साँस लेता रहता है। कभी खाटसे भूमिपर और कभी भूमिसे खाटपर जाता है, परंतु कहीं चैन नहीं मिलता। कण्ठमें घर-घर शब्द होने लगता है। मुख सूख जाता है। शरीर मृत्, विष्णु आदिसे लिप्स हो जाता है। प्यास लगनेपर जब वह पानी माँगता है, तो दिया हुआ पानी भी कण्ठतक ही रह जाता है। बाणी बंद हो जाती है, पड़ा-पड़ा चिन्ता करता रहता है कि मेरे धनको कौन भोगेगा ? मेरे कुटुम्बकी रक्षा कौन करेगा ? इस तरह अनेक प्रकारकी यातना भोगता हुआ मनुष्य मरता है और जीव इस देहसे निकलते ही जोकियी तरह दूसरे शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है।

मृत्युसे भी अधिक दुःख विवेकी पुरुषोंको याचना अर्थात् माँगनेमें होता है। मृत्युमें तो क्षणिक दुःख होता है, किन्तु याचनासे तो निरन्तर ही दुःख होता है। देखिये, भगवान् विष्णु भी बलिसे माँगते ही वामन (अत्यन्त छोटे) हो गये। फिर और दूसरा है ही कौन जिसकी प्रतिष्ठा याचनासे न घटे। आदि, मध्य और अन्यमें दुःखकी ही परम्परा है। अज्ञानवश मनुष्य दुःखोंके झेलता हुआ कभी आनन्द नहीं प्राप्त करता। बहुत साये तो दुःख, थोड़ा साये तो दुःख, किसी समय भी सुख नहीं है। क्षुधा सब रोगोंमें प्रबल है और वह अन्नरूपी ओषधिके सेवनसे थोड़ी देरके लिये शान्त हो जाती है, परंतु अन्न भी परम सुखका साधन नहीं है। प्रातः उठते ही मृत्, विष्णु आदिकी बाधा, मध्याह्नमें क्षुधा-तृष्णाकी पीड़ा और पेट

भरनेपर कथमकी व्यथा होती है। गत्रिको निद्रा दुःख देती है। धनके सम्पादनमें दुःख, सम्पादित धनकी रक्षा करनेमें दुःख, फिर उसके व्यय करनेमें अतिशय दुःख होता है। इससे धन भी सुखदायक नहीं है। चोर, जल, अग्नि, रुजा और स्वजनोंसे भी धनवालोंको अधिक भय रहता है। मांसको आकाशमें फेंकनेपर पक्षी, भूमिपर कुत्ते आदि जीव और जलमें मछली आदि खा जाते हैं, इसी प्रकार धनवान्‌की भी सर्वत्र यही स्थिति होती है। सम्पत्तिके अर्जन करनेमें दुःख, सम्पत्तिकी प्राप्तिके बाद मोहरूपी दुःख और नाश हो जानेपर तो अत्यन्त दुःख होता ही है, इसलिये किसी भी कालमें धन सुखका साधन नहीं है। धन आदिकी कामनाएँ ही दुःखका परम कारण हैं, इसके विपरीत कामनाओंसे निःस्पृह रहना परम सुखका मूल है^१।

हेमन्त ऋतुमें शीतका दुःख, ग्रीष्ममें दारुण तापका दुःख और वर्षा ऋतुमें झंझावात तथा वर्षाका दुःख होता है। इसलिये काल भी सुखदायक नहीं है। विवाहमें दुःख और पतिके विदेश-गमनमें दुःख, रुक्षी गर्भवती हो तब दुःख, प्रसवके समय दुःख, संतानके दन्त, नेत्र आदिकी पीड़ासे दुःख। इस प्रकार रुक्षी भी सदा व्याकुल रहती है। कुटुम्बियोंको यह चिन्ता रहती है कि गौ नष्ट हो गयी, खेती सूख गयी, नौकर

चला गया, घरमें मेहमान आया है, रुक्षीके अभी संतान हुई है, इसके लिये रसोई कौन बनायेगा, कन्याके विवाह आदिकी चिन्ता—इस प्रकार हजारों चिन्ताएँ कुटुम्बियोंके कारण लगी रहती हैं, जिनसे उनके शील, शुद्ध बुद्धि और सम्पूर्ण गुण नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह कचे घड़में जल ढालते ही घटके साथ जल नष्ट हो जाता है, उसी तरह गुणोंसहित कुटुम्बी मनुष्यका देह नष्ट हो जाता है।

गृज्य भी सुखका साधन नहीं है। जहाँ नित्य सत्य-विप्रहवी चिन्ता लगी रहती है और पुजासे भी गृज्यके ग्रहणका भय बना रहता है, वहाँ सुखका लेश भी नहीं है। अपनी जातिसे भी सबको भय होता है। जिस प्रकार एक मांस-खण्डके अधिलाली कुत्तोंको परस्पर भय रहता है, वैसे ही संसारमें कोई सुखी नहीं है। ऐसा कोई राजा नहीं जो सबको जीतकर सुखपूर्वक राज्य करे, प्रलेकको दूसरेसे भय रहता है। इतना कहकर श्रीकृष्णभगवानने पुनः कहा कि 'महाराज ! यह कर्ममय शरीर जन्मसे लेकर अन्ततक दुःखी ही है। जो पुरुष जितेन्द्रिय है और ब्रत, दान तथा उपवास आदिमें तत्पर रहते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं।'

(अध्याय ४)

विविध प्रकारके पापों एवं पुण्य-कर्मोंका फल

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! अधम कर्म करनेसे जीव घोर नरकमें गिरते हैं और अनेक प्रकारकी यातनाएँ भोगते हैं। उस अधम कर्मको ही पाप और अधर्म कहते हैं। वित्तवृत्तिके भेदसे अधर्मका भेद जानना चाहिये। स्थूल, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म आदि भेदोंके द्वारा कठोरों प्रकारके पाप हैं। परंतु यहाँ मैं केवल बड़े-बड़े पापोंका संक्षेपमें वर्णन करता हूँ—परस्तीका चिन्तन, दूसरेका अनिष्ट-चिन्तन और अकार्य (कुकर्म) में अभिनिवेश—ये तीन प्रकारके मानस पाप हैं। अनियन्त्रित प्रलाप, अप्रिय, असत्य, परनिन्दा और

पिशुनता अर्थात् चुगली—ये पाँच वाचिक पाप हैं। अपश्य-भक्षण, हिंसा, मिथ्या कामसेवन (असंयमित जीवन व्यतीत करना) और परथन-हरण—ये चार कायिक पाप हैं। इन बारह कर्मोंके करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। इन कर्मोंकी भी अनेक भेद होते हैं। जो पुरुष संसाररूपी सागरसे उद्धार करनेवाले महादेव अथवा भगवान् विष्णुसे द्रेष रखते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं। ब्रह्महत्या, सुरापान, सुर्वर्णकी चोरी और गुरु-पत्रीगमन—ये चार महापातक हैं। इन पापकोंके करनेवालोंके सम्पर्कमें रहनेवाला मनुष्य पाँचवाँ महापातकी गिना

१—अर्थस्योपचर्वि दुःखमर्जितस्यापि रक्षणे। आये दुःखं च्यये दुःखमर्येभ्यश्च कुतः सुखम्॥

चौर्यः सलिलादयः स्वजनात् पार्थिवादपि भयमर्घवतो नित्यं मृतोः प्राणभृतामिव ॥

से यतो परिक्षिभिर्मौसे भक्षयते शापदैर्धुलिः जले च भक्षयते मर्त्यैस्तथा सर्वत्र विचरणः ॥

विमोहयन्ति सम्पत्तु तापयन्ति विपत्तिः। सोदयन्त्यर्जनाकहे कदा हार्थः सुखावहः ॥

यथार्थपतिरुद्धिः यत्र सर्वार्थानिःस्पृहः। यतार्थार्थपतिरुद्धिः सुखी सर्वार्थानिःस्पृहः ॥

जाता है। ये सभी नरकमें जाते हैं।

अब मैं उपपातकोंका वर्णन करता हूँ। ब्राह्मणको कोई पदार्थ देनेकी प्रतिश्वाक करके फिर नहीं देना, ब्राह्मणका धन हरण करना, अत्यन्त अहंकार, अतिक्रेश, दार्ढिकत्व, कृतप्रताता, कृपणता, विषयोंमें अतिशय आसक्ति, अच्छे पुरुषोंसे द्वेष, परस्लोहरण, कुमारीगमन, रुग्नी, पुत्र आदिको बेचना, रुग्नी-धनसे निर्वाह करना, रुग्नीकी रक्षा न करना, ऋण लेकर न चुकाना; देवता, अग्नि, साधु, गौ, ब्राह्मण, राजा और पतिव्रताकी निन्दा करना आदि उपपातक हैं। इन पापोंको करनेवाले पुरुषोंका जो संसर्ग करते हैं वे भी पातकी होते हैं। इस प्रकार पाप करनेवाले मनुष्योंको मृत्युके बाद यमराज नरकमें ले जाते हैं। जो भूलसे पाप करते हैं, उनको गुरुजनोंकी आज्ञाके अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो मन, वचन, कर्मसे पाप करते हैं एवं दूसरोंसे करते हैं अथवा पाप करते हुए पुरुषोंका अनुमोदन करते हैं, वे सभी नरकमें जाते हैं और जो उत्तम कर्म करते हैं, वे स्वर्गमें सुखसे आनन्द भोगते हैं। अशुभ कर्मोंका अशुभ फल और शुभ कर्मोंका शुभ फल होता है।

महाराज ! यमराजकी सभामें सबके शुभ-अशुभ कर्मोंका विचार चित्रगुप्त आदि करते हैं। जीवको अपने कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है। इसलिये शुभ कर्म ही करना चाहिये। किये गये कर्मका फल बिना भोगे किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। धर्म करनेवाले सुखपूर्वक परलोक जाते हैं और पापी अनेक प्रकारके दुःखका भोग करते हुए यमलोक जाते हैं। इसलिये सदा धर्म ही करना चाहिये। जीव छियासी हजार योजन चलकर वैवस्वतपुरमें पहुँचता है। पुण्यालमाओंको इतना बड़ा मार्ग निकट ही जान पड़ता है और पापियोंके लिये बहुत लम्बा हो जाता है। पापी जिस मार्गसे चलते हैं, उसमें तीखे कटि, कंकड़, पत्थर, कीचड़, गढ़े और तलवारकी धारके समान तीक्ष्ण पत्थर पड़े रहते हैं और लोहेकी सुड्डाँ बिलरी रहती है। उस मार्गमें कहीं अग्नि, कहीं सिंह, कहीं व्याघ्र और कहीं-कहीं माकिंवा, सर्प, वृक्षिक आदि दुष्ट जन्म घूमते रहते हैं। कहींपर डाकिनी, शाकिनी, रोग और बड़े कूर गाक्षस दुःख देते रहते हैं। उस मार्गमें न कहीं छाया है और न जल। इस प्रकारके भयंकर मार्गसे यमदूत पापियोंको लोहेकी शूक्रलासे बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं। उस समय अपने बन्धु

आदिसे रहित वे प्राणी अपने कर्मोंको सोचते हुए रोते रहते हैं। भूख और प्यासके मारे उनके कण्ठ, तालु और ओष्ठ सूख जाते हैं। भयंकर यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और पैरोंमें अथवा चौटीमें साँकलसे बाँधकर खींचते हुए ले जाते हैं। इस प्रकार दुःख भोगते-भोगते वे यमलोकमें पहुँचते हैं और वहाँ अनेक यातनाएँ भोगते हैं।

पुण्य करनेवाले उत्तम मार्गसे सुखपूर्वक पहुँचकर सौम्य-स्वरूप धर्मराजका दर्शन करते हैं और वे उनका बहुत आदर करते हैं, वे कहते हैं कि महात्माओ ! आपलोग धन्य हैं, दूसरोंका उपकार करनेवाले हैं। आपने दिव्य सुखवी प्राप्तिके लिये बहुत पुण्य किया है। इसलिये इस उत्तम विमानपर चढ़कर स्वर्गको जाये। पुण्यालमा यमराजको प्रसन्नचित्त अपने पिताकी भाँति देखते हैं, परंतु पापी लोग उन्हें भयानक रूपमें देखते हैं। यमराजके समीप ही कालाग्निके समान कूर कृष्ण-वर्ण मृत्युदेव विराजमान रहते हैं और कालवी भयंकर शक्तियाँ तथा अनेक प्रकारके रूप धारण किये सम्पूर्ण रोग वहाँ बैठे दिखायी देते हैं। कृष्णवर्णके असंख्य यमदूत अपने हाथोंमें शक्ति, शूल, अद्भुत, पाश, चक्र, खड्ग, बद्र, दण्ड आदि शस्त्र धारण किये वहाँ स्थित रहते हैं। पापी जीव यमराजको इस रूपमें स्थित देखते हैं और यमराजके समीप बैठे हुए चित्रगुप्त उनकी भर्त्ता करके कहते हैं कि पापियो ! तुमने ऐसे बुरे कर्म किये ? तुमने पराया धन अपहरण किया है, रूपके गर्वसे पर-स्त्रियोंका सम्पर्क किया है, और भी अनेक प्रकारके पातक-उपपातक तुमने किये हैं। अब उन कर्मोंका फल भोगो। अब कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार पापी याजाओंका तर्जनकर चित्रगुप्त यमदूतको आज्ञा देते हैं कि इनको ले जाकर नरकोंकी अग्निमें डाल दो।

सातवें पातालमें घोर अन्धकारके बीच अति दारुण अद्वाईस करोड़ नरक हैं, जिनमें पापी जीव यातना भोगते हैं। यमदूत वहाँ उनको ऊंचे वृक्षोंकी शाखाओंमें टाँग देते हैं और सैकड़ों मन लोहा उनके पैरोंमें बाँध देते हैं। उस बोझसे उनका शरीर टूटने लगता है और वे अपने अशुभ कर्मोंको यादकर रोते और चिल्लाते हैं। तपाये हुए कॉटोंसे युक्त लैंह-दण्डसे और चाबुकोंसे यमदूत उन्हें बार-बार ताडित करते हैं और सर्पोंसे कटवाते हैं। जब उनके देहोंमें घाव हो जाता है तब

उनमें नमक लगते हैं। कभी उनको उतारकर खौलते हुए तेलमें डालते हैं, वहाँसे निकालकर विष्ट्रोके कूपमें उनको डुबोते हैं, जिनमें कीड़े कट-कटकर खाते हैं, फिर मेद, रुधि, पूय आदिके कुष्ठोंमें उनको ढकेल देते हैं। जहाँ लोहेकी चोचबाले क़टक और शान आदि जीव उनका मास नोच-नोच कर खाते हैं। कभी उनको तीक्ष्ण शूलोंमें पिरोते हैं।

अभक्ष्य-भक्षण और मिथ्या भाषण करनेवाली जिहायको बहुत दण्ड मिलता है। जो पुरुष माता, पिता और गुरुको कठोर वचन बोलते हैं, उनके मुखमें जलते हुए अंगारे भर दिये जाते हैं और घायोंमें नमक भरकर खौलता हुआ तेल डाल दिया जाता है। जो अतिथिको अन्न-जल दिये दिना उसके सम्मुख ही स्वयं भोजन करते हैं, वे इक्षुकी तरह कोल्हूमें पेरे जाते हैं तथा वे असिताल बन नामक नरकमें जाते हैं। इस प्रकार अनेक हेहश भोगते रहनेपर भी उनके प्राण नहीं निकलते। जिसने परनारीके साथ संग किया हो, यमदूत उसे ताप लोहेकी नारीसे आलिङ्गन करते हैं और पर-पुरुषगमिनी रुको ताप लौह पुरुषसे लिपटाते हैं और कहते हैं कि 'दुष्टे ! जिस प्रकार तुमने अपने पतिका परित्याग कर पर-पुरुषका आलिङ्गन किया, उसी प्रकारसे इस लौह-पुरुषका भी आलिङ्गन करो।' जो पुरुष देवालय, बाग, वापी, कूप, मठ आदिको नष्ट करते हैं और वहाँ रहकर मैथुन आदि अनेक प्रकारके पाप करते हैं, यमदूत उनको अनेक प्रकारके यन्त्रोंसे पीड़ित करते हैं और वे जबतक चन्द्र-सूर्य हैं, तबतक नरककी अग्रिमें पढ़े जलते रहते हैं। जो गुरुकी निन्दा श्रवण करते हैं, उनके कानोंको दण्ड मिलता है। इस प्रकार जिन-जिन इन्द्रियोंसे मनुष्य पाप करते हैं, वे इन्द्रियाँ कष्ट पाती हैं। इस प्रकारकी अनेक घोर यातना पापी पुरुष सभी नरकोंमें भोगते हैं। इनका सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं हो सकता। जीव नरकोंमें अनेक प्रकारकी दारुण व्यथा भोगते रहते हैं, परंतु उनके प्राण नहीं निकलते।

इससे भी अधिक दारुण यातनाएँ हैं, मृदुचित पुरुष उनको सुनकर ही दहलने लगते हैं। पुत्र, मित्र, रुकी आदिके लिये प्राणी अनेक प्रकारका पाप करता है, परंतु उस समय

कोई सहायता नहीं करता। केवल एकाकी ही वह दुःख भोगता है और प्रलयपर्यन्त नरकमें पड़ा रहता है। यह भूव सिद्धान्त है कि अपना किया पाप स्वयं भोगना पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शरीरको नशर जानकर लेशमान भी पाप न करे, पापसे अवश्य ही नरक भोगना पड़ता है। पापका फल दुःख है और नरकसे बढ़कर अधिक दुःख कहीं नहीं है। पापी मनुष्य नरकवासके अनन्तर फिर पूर्वीपर जन्म लेते हैं। वृक्ष आदि अनेक प्रकारकी स्थावर योनियोंमें वे जन्म ग्रहण करते हैं और अनेक कष्ट भोगते हैं। अनन्तर कीट, पतंग, पक्षी, पशु आदि अनेक योनियोंमें जन्म लेते हुए अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाते हैं। स्वर्ग एवं मोक्ष देनेवाले मनुष्य-जन्मको पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे नरक न देखना पड़े। यह मनुष्य-योनि देवताओं तथा असुरोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। धर्मसे ही मनुष्यका जन्म मिलता है। मनुष्य-जन्म पाकर उसे धर्मकी बृद्ध करनी चाहिये। जो अपने कल्पाणके लिये धर्मका पालन नहीं करता है, उसके समान मूर्ख कैन होगा ?

यह देश सब देशोंमें उत्तम है। बहुत पुण्यसे प्राणीका जन्म भारतवर्षमें होता है। इस देशमें जन्म पाकर जो अपने कल्पाणके लिये पुण्य करता है, वही बुद्धिमान् है। जिसने ऐसा नहीं किया, उसने अपने आत्माके साथ बछना की। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक जो कुछ पुण्य बन सके वह कर लेना चाहिये। बादमें कुछ भी नहीं हो सकता। दिन-रातके बहाने नित्य आयुके ही अंश स्विंडित हो रहे हैं। फिर भी मनुष्योंके बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु आ पहुँचेगी। यह तो किसीको भी निश्चय नहीं है कि किसीकी मृत्यु किस समयमें होगी, फिर मनुष्यको क्योंकर धैर्य और सुख मिलता है ? यह जानते हुए कि एक दिन इन सभी सामग्रियोंको छोड़कर अकेले चले जायेंगे, फिर अपने हाथसे ही अपनी सम्पत्ति सत्पात्रोंको क्यों नहीं बांट देते ? मनुष्यके लिये दान ही पाथेय अर्थात् गालोंके लिये भोजन है। जो दान करते हैं, वे सुखपूर्वक जाते हैं। दानहीन मार्गमें अनेक दुःख पाते हैं, भूखे मरते जाते हैं। इन सब बातोंको विचारकर पुण्य ही करना

चाहिये, पापसे सदा बचना चाहिये । पुण्य कर्मोंसे देवत्व प्राप्त होता है और पाप करनेसे नरककी प्राप्ति होती है । जो सत्पुरुष सर्वाल्मभावसे श्रीसदाशिककी शरणमें जाते हैं, वे पदापत्रपर स्थित जलकी तरह पापोंसे लिप्त नहीं होते । इसलिये द्वन्द्वोंसे छूटकर भक्तिपूर्वक ईश्वरकी आराधना करनी चाहिये तथा सभी प्रकारके पापोंसे निरन्तर बचना चाहिये । (अध्याय ५-६)

ब्रतोपवासकी महिमामें शक्तब्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैंने जो भीषण नरकोंका विस्तारसे वर्णन किया है, उन्हें ब्रत-उपवासरूपी नौकासे मनुष्य पार कर सकता है । प्राणीको अति दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे पञ्चात्तप न करना पड़े और यह जन्म भी व्यर्थ न जाय और फिर जन्म भी न लेना पड़े । जिस मनुष्यकी कीर्ति, दान, ब्रत, उपवास आदिकी परम्परा बनी है, वह परलोकमें उन्हीं कर्मेंकि द्वारा सुख भोगता है । ब्रत तथा स्वाध्याय न करनेवालेकी कहीं भी गति नहीं है । इसके विपरीत ब्रत, स्वाध्याय करनेवाले पुरुष सदा सुखी होते हैं । इसलिये ब्रत-स्वाध्याय अवश्य करने चाहिये ।

गजन् ! यहाँ एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता है—
योगको सिद्ध किया हुआ एक सिद्ध अति भयंकर विकृत रूप धारण कर पृथ्वीपर विचरण करता था । उसके लंबे ओढ़, टूटे दाँत, पिछल नेत्र, चपटे कान, फटा मुख, लंबा पेट, टेढ़े पैर और सर्प्पी अङ्ग कुरुप थे । उसे मूलजालिक नामके एक ब्राह्मणने देखा और उससे पूछा कि आप स्वर्गसे कब आये और किस प्रयोजनसे यहाँ आपका आगमन हुआ ? क्या आपने देवताओंके चित्तको मोहित करनेवाली और स्वर्गकी अलंकार-स्वरूपिणी रम्भाको देखा है ? अब आप स्वर्गमें जाये तो रम्भासे कहें कि अवन्तिपुरीका निवासी ब्राह्मण तुम्हारा कुशल पूछता था । ब्राह्मणका वचन सुनकर सिद्धने चकित हो पूछा कि 'ब्राह्मण ! तुमने मुझे कैसे पहचाना ?' तब ब्राह्मणने कहा कि 'महाराज ! कुरुप पुरुषोंके एक-दो अङ्ग विकृत होते हैं, पर आपके सभी अङ्ग टेढ़े और विकृत हैं ।' इसीसे मैंने अनुमान किया कि इतना रूप गुप्त किये कोई स्वर्गके निवासी सिद्ध ही है । ब्राह्मणका वचन सुनते ही वह

सिद्ध वहाँसे अन्तर्धीन हो गया और कई दिनोंके बाद पुनः ब्राह्मणके समीप आया और कहने लगा—'ब्राह्मण ! हम स्वर्गमें गये और इन्द्रकी सभामें जब नृत्य हो चुका, उसके बाद मैंने एकान्तमें रम्भासे तुम्हारा संदेश कहा, परंतु रम्भाने यह कहा कि मैं उस ब्राह्मणको नहीं जानती । यहाँ तो उसीका नाम जानते हैं जो निर्मल विद्या, पौरुष, दान, तप, यज्ञ अथवा ब्रत आदिसे युक्त होता है । उसका नाम स्वर्गभरमें चिरकालतक स्थिर रहता है ।' रम्भाका सिद्धके मुखसे यह वचन सुनकर ब्राह्मणने कहा कि हम शक्तब्रतको नियमसे करते हैं, आप रम्भासे कह दीजिये । यह सुनते ही सिद्ध फिर अन्तर्धीन हो गया और स्वर्गमें जाकर उसने रम्भासे ब्राह्मणका संदेश कहा और जब उसने उसके गुण वर्णन किये तब रम्भा प्रसन्न होकर कहने लगी—'सिद्ध महाकाल ! मैं वनके निवासी उस शक्त ब्राह्मचारीको जानती हूँ । दर्शनसे, सम्भाषणसे, एकज निवाससे और उपकार करनेसे मनुष्योंका परस्पर स्नेह होता है, परंतु मुझे उस ब्राह्मणका दर्शन-सम्भाषण आदि कुछ भी नहीं हुआ । केवल नाम-श्रवणसे इतना स्नेह हो गया है ।' सिद्धसे इतना कहकर रम्भा इन्द्रके समीप गयी और ब्राह्मणके ब्रत आदि करने तथा अपने ऊपर अनुरक्त होनेका वर्णन किया । इन्द्रने भी प्रसन्न हो रम्भासे पूछकर उस उत्तम ब्राह्मणको वस्त्राभूषण आदिसे अलंकृत कर दिव्य विमानमें बैठाकर स्वर्गमें बुलाया और वहाँ सत्कारपूर्वक स्वर्गके दिव्य भोगोंको उसे प्रदान किया । ब्राह्मण चिरकालतक वहाँ दिव्य भोग भोगता रहा । यह शक्त-ब्रतका माहात्म्य हमने संक्षेपमें वर्णन किया है । दृढ़वती पुरुषके लिये राजलक्ष्मी, वैकुण्ठलोक, मनोविघ्नित फल आदि दुर्लभ पदार्थ भी जगत्में सुलभ हैं । इसलिये सदा सत्परायण पुरुषको ब्रतमें संलग्न रहना चाहिये । (अध्याय ७)



तिलकब्रतके माहात्म्यमें चित्रलेखाका चरित्र

[संवत्सर-प्रतिपदाका कृत्य]

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गौरी, गणपति, दुर्गा, सोम, अग्नि तथा सूर्य आदि देवताओंके ब्रत शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन ब्रतोंका वर्णन आप प्रतिपदादि क्रमसे करें। जिस देवताकी जो तिथि है तथा जिस तिथिमें जो कर्तव्य है, उसे आप पूरी तरह बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! चैत्र मासके शुक्र पक्षकी जो प्रतिपदा होती है, उस दिन रुची अथवा पुरुष नदी, तालाब या घरपर ऊन कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। फिर घर आकर आठेकी पुरुषाकार संवत्सरकी मूर्ति बनाकर चन्दन, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उसकी पूजा करे। ऋतु तथा मासोंका उचारण करते हुए पूजन तथा प्रणाम कर संवत्सरकी प्रार्थना करे और—‘संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उवसर्से कल्पन्तामयोरात्रासे कल्पन्तामर्थमासासे कल्पन्तामा सासे कल्पन्तामृतवासे कल्पन्ताम् संवत्सरसे कल्पन्ताम्। प्रेत्या एत्यै सं चाङ्ग प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तथा देवतायाऽहंगिरस्वद् भूक्षः सीद ॥’(यजु० २७। ४५) यह मन्त्र पढ़कर वस्त्रसे प्रतिमाको बैठित करे। तदनन्तर फल, पुण्य, मोदक आदि नैवेद्य चढ़ाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना करे—‘भगवन् ! आपके अनुग्रहसे मेरा वर्ष सुखपूर्वक व्यतीत हो।’ यह कहकर यथाशक्ति ब्राह्मणको दक्षिणा दे और उसी दिनसे आरम्भ कर ललाटको नित्य चन्दनसे अलंकृत करे। इस प्रकार रुची या पुरुष इस ब्रतके प्रभावसे

उत्तम फल प्राप्त करते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी और शत्रु उसके मस्तकमें तिलक देखते ही भाग खड़े होते हैं।

इस सम्बन्धमें मैं एक इतिहास कहता हूँ—पूर्व कालमें शत्रुघ्न नामके एक राजा थे और चित्रलेखा नामकी अल्पत्त सदाचारिणी उनकी पत्नी थी। उसीने सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे संकल्पपूर्वक इस ब्रतको प्रहण किया था। इसके प्रभावसे बहुत अवस्था बीतनेपर उनको एक पुत्र हुआ। उसके जन्मसे उनको बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। वह रानी सदा संवत्सरब्रत किया करती और नित्य ही मस्तकमें तिलक लगाती। जो उसको तिलकको देखकर पराभूत-सा हो जाता। कुछ समयके बाद राजाको उन्मत हाथीने मार डाला और उनका बालक भी सिरकी पीड़ासे मर गया। तब रानी अति शोककुल हुई। धर्मराजके किंवदन (यमदूत) उन्हें लेनेके लिये आये। उन्होंने देखा कि तिलक लगाये चित्रलेखा रानी समीपमें बैठी है। उसको देखते ही वे उलटे लौट गये। यमदूतोंके चले जानेपर राजा अपने पुत्रके साथ स्वस्थ हो गया और पूर्वकर्मानुसार शुभ भोगोंका उपयोग करने लगा। महाराज ! इस परम उत्तम ब्रतका पूर्वकालमें भगवान् शंकरने मुझे उपदेश किया था और हमने आपको सुनाया। यह तिलकब्रत समस्त दुःखोंको हरनेवाला है। इस ब्रतको जो भक्तिपूर्वक करता है, वह चित्रकालपर्यन्त संसारका सुख भोगकर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ८)

अशोकब्रत तथा करवीरब्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! आश्चिन-मासकी शुक्र प्रतिपदाको गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, सप्तधान्यसे तथा फल, नारिकेल, अनाद, लड्हु आदि अनेक प्रकारके नैवेद्यसे मनोरम पत्तलबोंसे युक्त अशोक वृक्षका पूजन करनेसे कभी शोक नहीं होता। अशोक वृक्षकी निष्प्रलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे और उसे अर्थ्य प्रदान करे—

पितृप्रातृपतिश्शश्रूषशुराणां तथैव च ।

अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुरु ॥

(उत्तरपर्व ९। ४)

‘अशोकवृक्ष ! आप मेरे कुलमें पिता, भाई, पति, सास तथा ससुर आदि सभीका शोक शमन करें।’

वस्त्रसे अशोक-वृक्षको लपेट कर पताकाओंसे अलंकृत करे। इस ब्रतको यदि रुची भक्तिपूर्वक करे तो वह दमयन्ती, स्वाहा, वेदवती और सतीकी भाँति अपने पतिकी अति प्रिय हो

जाती है। बनगमनके समय सीताने भी मार्गमें अशोक वृक्षका भक्तिपूर्वक गम्य, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, अक्षत आदिसे पूजन किया और प्रदक्षिणा कर बनको गयीं। जो स्त्री तिल, अक्षत, गेहूँ, सर्वषं आदिसे अशोकका पूजन कर मन्त्रसे बनदना और प्रदक्षिणा कर ब्रह्मण्यको दक्षिणा देती है, वह शोकमुक्त होकर चिरकालतक अपने पतिसहित संसारके सुखोंका उपभोगकर अन्तमे गौरी-लोकमें निवास करती है। यह अशोकवत् सब प्रकारके शोक और रोगको हरनेवाल है।

महाराज ! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी शुक्र प्रतिपदाको सूर्योदयके समय अत्यन्त मनोहर देवताके उद्घाटनमें लगे हुए करवीर-वृक्षका पूजन करे। लाल सूत्रसे वृक्षको वेष्टित कर गम्य, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, सप्तधान्य, नारिकेल, नारंगी और भाँति-भाँतिके फलोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे उसकी प्रार्थना करे—

करवीर विश्वास नमस्ते भानुवल्लभ ।



कोकिलाब्रतका विधान और माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! जिस ब्रतके करनेसे कुलीन खियोंका अपने पतिके साथ परस्पर विशुद्ध प्रेम बना रहे, उसे आप बतलाइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण ओऽले—महाराज ! यमुनाके तटपर मथुरा नामक एक सुन्दर नगरी है। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने अपने भाई शत्रुघ्नको राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया था। उनकी रानीका नाम कीर्तिमाला^१ था। वह बड़ी पतिक्रता थी। एक दिन कीर्तिमालाने अपने कुलगुरु, वसिष्ठमुनिसे प्रणामकर पूछा—‘मुझे कोई ऐसा ब्रत बतायें, जिससे मेरे अखण्ड सौभाग्यकी वृद्धि हो ।’

वसिष्ठजीने कहा—कीर्तिमाले ! कल्याण-कल्याणी स्त्री आपाद् मासकी पूर्णिमाको सायंकाल यह संकल्प करे कि ‘श्रावण मासभर नित्य-स्नान, रात्रि-भोजन और भूमि-शय्यन कर्हेंगी तथा ब्रह्मचर्यसे रहेंगी और प्राणियोंपर दया करेंगी।’ प्रातः उठकर सब सामग्री लेकर नदी, तालाब आदिपर जाय। वहाँ दन्तधावन कर सुगम्यित द्रव्य, तिल और आँखेलेका उबटन लगाये और विधिसे राजा करे। इस प्रकार आठ

मौलिमण्डनसद्गत नमस्ते केशवेशयोः ॥

(उत्तरपर्व १० । ४)

‘भगवान् विष्णु और शंकरके मुकुटपर रत्नके रूपमें सुशोभित, भगवान् सूर्यके अत्यन्त प्रिय तथा त्रिष्टुते आवास करवीर (जहर करें) ! आपको बार-बार नमस्कार है।’

इसी तरह ‘आ कृष्णन रजसा वर्तमानो निवेशयत्रमृतं पर्हं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ (यजु० ३३ । ४३)’ इस मन्त्रसे प्रार्थना कर ब्रह्मण्यको दक्षिणा दे एवं वृक्षकी प्रदक्षिणा कर घरको जाय। सूर्यदिवकी प्रसन्नताके लिये इस ब्रतको अरुन्धती, साधित्री, सरस्वती, गायत्री, गङ्गा, दमयन्ती, अनसूया और सत्यभामा आदि पतित्रता खियोंने तथा अन्य खियोंने भी किया है। इस करवीरब्रतको जो भक्तिपूर्वक बनता है, वह अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्तमें सूर्यलोकको जाता है।

(अध्याय ९-१०)

दिनतक राजा करे। अनन्तर सर्वोषधियोंका उबटन लगाकर आठ दिनतक राजा करे। शेष दिनोंमें वचका उबटन मलकर राजा करे। तदनन्तर सूर्यभगवान्का ध्यान करे। इसके बाद तिल पीस करके उससे कोकिला पक्षीकी मूर्ति बनाये। रक्तबन्दन, चम्पाके पुण्य, पत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, तिल, चावल, दूर्वा आदिसे उसका पूजनकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

तिलसहे तिलसौख्ये तिलवर्णे तिलिष्ये ।

सौभाग्यद्रव्यपुत्रांशु देहि मे कोकिले नमः ॥

(उत्तरपर्व ११ । १४)

‘तिलसहे कोकिला देवि ! आप तिलके समान कृष्णवर्णवाली हैं। आपको तिलसे सुख प्राप्त होता है तथा आपको तिल अत्यन्त प्रिय है। आप मुझे सौभाग्य, सम्पत्ति तथा पुत्र प्रदान करें। आपको नमस्कार है।’

—इस प्रकार पूजन कर घरमें आकर भोजन ग्रहण करे। इस विधिसे एक मास ब्रतकर अन्तमें तिलपिष्ठकी कोकिला बनाकर उसमें रत्नके नेत्र और सुवर्णके पंख लगाकर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। दक्षिणासहित बस्त्र, धान्य और गुड़ ससुर,

१—सभी रामायणोंमें शत्रुघ्न-पञ्चका नाम श्रुतिरीति प्राप्त होता है। इसे उसका पर्याय मानना चाहिये। भाव प्राप्तः समान है।

दैवज्ञ, पुरोहित अथवा किसी ब्राह्मणको दान करे।

इस विधिसे जो नारी कोकिलाव्रत करती है, वह सात जन्मतक सौभाग्यवती रहती है और अन्तमें उत्तम विमानमें बैठकर गौरीलोकको जाती है। वसिष्ठजीसे ब्रतका विधान सुनकर कीर्तिमालाने उसी प्रकार कोकिलाव्रतका अनुष्ठान

किया। उससे उन्हें अखण्ड सौभाग्य, पुत्र, सुख-समृद्धि और शाश्वतजीवीकी कृपा एवं प्रीति प्राप्त हुई। अन्य भी जो जिन्याँ इस ब्रतको भक्तिपूर्वक करती हैं उन्हें भी सुख, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय ११)

बृहत्पोत्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं सभी पापोंका नाशक तथा सुर, असुर और मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ बृहत्पोत्रतका विधान बतलाता हूँ, आप सुनें—आश्चिन मासकी पूर्णिमाके दिन आत्मशुद्धिपूर्वक उपवासकर रातमें भूमिक्षित पायसका भोजन करना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः उठकर पवित्र हो आचमनकर बिल्वके काष्ठसे दन्तधावन करे। अनन्तर इस मन्त्रसे महादेवजीकी प्रार्थना करनी चाहिये—

अहं देवद्वत्पिंदं कर्तुमिष्टामि शाश्वतम् ।
तवाज्ञया महादेव यथा निर्विहते कुरु ॥

(उत्तरपर्व १२। ४)

'महादेव ! मैं आपकी आज्ञासे निरन्तर बृहत्पोत्रत करना चाहता हूँ। जिस प्रकार मेरा यह ब्रत निर्विघ्न पूर्ण हो जाय, आप वैसी कृपा करें।'

नियमपूर्वक सोलह वर्षपर्यन्त प्रतिपद्क ब्रत करना चाहिये। फिर मार्गशीर्ष मासकी प्रतिपदाको उपवास कर, गुरुजनोंसे आदेश प्राप्त करके महादेवका स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक शिवका पूजन करना चाहिये और रातमें दीपक जलाकर शिवको निर्विदित करना चाहिये। शिवभक्त सप्तलीक सोलह ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजनकर उत्तम पदार्थोंका भोजन करना चाहिये। यदि शक्ति न हो तो एक ही दम्पतिका पूजन करे। निराहर ब्रत करके रातमें भूमिपर शयन करना चाहिये। सूर्योदय होनेपर खान करके सभी सामग्रियोंको लेकर शिवजीका उद्घार्तन एवं पञ्चगव्यसे खान करना चाहिये। अनन्तर पञ्चमृत, तिलमिक्षित जल और गर्भ जलसे खान करना चाहिये। खानके अनन्तर कर्म, चन्दन आदिका लेपकर कमल आदि उत्तम पुष्प चढ़ाने चाहिये। वस्त्र, पताका, वितान, धूप, दीप, घण्टा एवं भाँति-भाँतिके नैवेद्य महादेवजीको समर्पित कर-

अग्रि प्रज्वलित कर एवं उसकी पूजाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिये। अब आकर पञ्चगव्य-प्राशन कर आचार्य आदिको भोजन कराकर अपने सभी बन्धुओंके साथ मैन होकर भोजन करना चाहिये। फिर स्वर्ण, वस्त्र आदि देकर ब्राह्मणोंसे क्षमा मार्गि। धनवान् व्यक्ति श्रद्धापूर्वक साङ्केषण्ड निर्दिष्ट विधिसे पूजन करे एवं यदि कोई व्यक्ति निर्धन हो तो वह श्रद्धापूर्वक जल, पुष्प आदिसे पूजा करे। इससे ब्रतके सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है। श्रद्धाके साथ कार्तिकी प्रतिपदासे लेकर प्रतिमास इस विधिसे ब्रत करना चाहिये। अनन्तर पारणा करनी चाहिये। सोलहवे वर्षमें पारणाके दिन शिवजीकी पूजा कर सोनेकी सींग, चाँदीके खुर और घण्टा, कर्सिके दोहन-पात्रके साथ उत्तम गाय महादेवजीके निमित्त शिवभक्त ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। अनन्तर सोलह ब्राह्मणोंका विधि-विधानसे पूजनकर यथाशक्ति वस्त्र, आभूषण आदिसे पूजनकर उत्तम पदार्थोंका भोजन करना चाहिये। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर दक्षिणा दे। दीनों, अन्यों, अनाथों आदिको भी भोजन कराकर कुछ दान देना चाहिये। यह बृहत्पोत्रत ब्रह्महस्त्या-जैसे पापोंका हरण और तीनों लोकोंमें अनेक प्रकारके उत्तम भोगोंके प्रदान करनेवाला है। चारों वर्णोंकि लिये यह स्वर्गकी सीढ़ी है। धन पाकर भी जो इस ब्रतको नहीं करता, वह मूढ़-बुद्धि है। सध्या रुपी यदि इसे करती है तो उसका पतिसे वियोग नहीं होता और विधवा रुपीको भी भविष्यमें वैधव्य न प्राप्त हो, इसलिये उसे यह ब्रत करना चाहिये। इस ब्रतके अनुष्ठानसे धन, आयु, रूप, सौभाग्य आदिकी प्राप्ति होती है। सभी रुपी-पुरुष इस ब्रतको कर सकते हैं। सोलह वर्षोंतक इस बृहत्पोत्रतका भक्तिपूर्वक अनुष्ठान कर ब्रती सूर्यमण्डलका भेदनकर शिवजीके चरणोंको प्राप्त करता है।

(अध्याय १२)

जातिस्मर^१-भद्रब्रतका फल और विधान तथा

स्वर्णाष्टीवीकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! अपने पूर्व-जन्मोंका ज्ञान होना बहुत कठिन है। आप यह बतायें कि भृष्टियोंके वरदान, देवताओंकी आशाभना या तीर्थ, स्त्रान, होम, जप, तप, ब्रत आदिके करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त हो सकता है या नहीं ? यदि ऐसा कोई ब्रत हो, जिसके करनेसे पूर्वजन्मका स्मरण हो सकता है तो आप उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! एक ही वर्षमें ‘मार्गशीर्ष, फल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद’ ऋग्मःः इन चार मासोंमें भद्रब्रतका श्रद्धापूर्वक उपवास करनेसे मनुष्यको अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो जाता है। इस विषयमें एक आस्थान है, उसे आप सुनें—

प्राचीन कालमें यमुनाके किनारे शुभोदय नामका एक वैश्य रहता था। वह इस ब्रतको करता था। कालक्रमसे वह मृत्युको प्राप्त हुआ और ब्रतके प्रभावसे वह दूसरे जन्ममें राजा संजयके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुआ, उसका नाम था स्वर्णाष्टीवी। उसे पूर्वजन्मका स्मरण था। कुछ दिनों बाद चोरोंने उसे मार डाला और नारदजीके प्रभावसे वह जीवित हो गया। इस ब्रतके प्रभावसे अपने इस विगत वृत्तान्तोंके बह भलीभांति जानता था।

राजाने पूछा—उसका स्वर्णाष्टीवी नाम कैसे पड़ा ? और चोरोंने उसे क्यों मार डाला ? तथा किस उपायसे वह जीवित हुआ, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करें ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! कुशावती नामकी नगरीमें संजय नामका एक राजा रहता था। एक दिन नारद और पर्वत नामके दो मुनि राजाके पास आये। वे दोनों राजाके भित्र थे। राजाने अर्थ-पाद्य, आसनादि उपचारोंसे उनका पूजन तथा सत्करण किया। उसी समय राजाकी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या बहाँ आयी। पर्वतमुनिने उसे देखकर मोहित हो राजासे पूछा—‘राजन् ! यह युवती कौन है ?’ राजाने

कहा—‘मुने ! यह मेरी कन्या है।’ नारदजीने कहा—‘राजन् ! आप अपनी इस कन्याको मुझे दे दें और आप जो दुर्लभ वर माँगना चाहते हो, वह मुझसे माँग लें।’ राजाने प्रसन्न होकर कहा—‘देवर्ण ! आप मुझे एक ऐसा पुत्र दें जो जिस स्थानमें मूत्र-पुरीष और निष्ठीवन (थूक, खखार) का त्वाग करे, वह सब उत्तम सुवर्ण बन जाय।’ नारदजी बोले—‘ऐसा ही होगा।’

राजाने अभीष्ट वर प्राप्त कर अपनी कन्याको वस्त्र-आभूषणसे अलंकृतकर नारदजीसे उसका विवाह कर दिया। नारदकी इस लीलाको देखकर पर्वतमुनिके ओढ़ ब्रोधसे फड़कने लगे, औंसे लल हो गयों। वे नारदजीसे बोले—‘नारद ! तुमने इसके साथ विवाह कर लिया, अतः तुम मेरे साथ स्वर्ग आदि लोकोंमें नहीं जा सकोगे और जो तुमने इस राजाको पुत्र-प्राप्तिका वरदान दिया है, वह पुत्र भी चोरोंद्वारा मारा जायगा।’ यह सुनकर नारदजीने कहा—‘पर्वत ! तुम धर्मको जाने बिना मुझे शाप दे रहे हो। यह कन्या है, इसपर किसीका भी अधिकार नहीं। धर्मपूर्वक माता-पिता जिसे दे दें, वही उसका स्वामी होता है। तुमने मूढ़तावश मुझे शाप दिया है, इसलिये तुम भी स्वर्गमें नहीं जा सकोगे। राजा संजयके पुत्रको चोरोंद्वारा मार डाले जानेपर भी मैं उसे यमलोकसे ले आऊंगा।’

इस प्रकार परस्पर शाप देकर और राजा संजयके द्वारा सल्कृत होकर दोनों मुनि अपने-अपने आश्रमकी ओर चले गये। तदनन्तर सातवें महीनेमें राजाको पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कामदेवके समान अतिशय रूपवान् और पूर्वजन्मोंका जाता था। नारदजीके वरदानसे जिस स्थानपर वह मूत्र-पुरीष आदिका परित्याग करता, वहीं वह सुवर्ण हो जाता, इसलिये राजाने उसका नाम स्वर्णाष्टीवी रखा। वह राजपुत्र सभी प्राणियोंकी बातोंको समझता था। राजा संजयने पुत्रके प्रभावसे

१-जातिस्मर शब्दका अर्थ है पूर्वजन्मोंको स्मरण करनेवाला व्यक्ति। यह योगदर्शनके अनुसार स्याग, अर्थित्रह और मन-बुद्धि एवं प्रकृतिके अनुशीलनसे प्राप्त होता है—‘संख्यारसाक्षत्करणत् पूर्वजातिश्चनम्’। (योगदर्शन ३। १८) जिस प्रकार अद्वौह, सद्ब्राव, सरलता आदिको जातिस्मरता (आध्यात्मिकता, कुण्डलिनी-जागरणादि) में सहायक माना है, उसी प्रकार उहंकर, कौटिल्य-द्वेष-द्वोहादिको आध्यात्मिकतामें वाधक भी मानना चाहिये और कल्याणकालीनोंको उनसे सदा बचाते रहनेवाली भी चेष्टा करनी चाहिये।

बहुत घन प्राप्तकर राजसूय आदि यज्ञोंका विधिपूर्वक सम्पादन किया। उसने अनेक कृष्ण, सरोवर, देवालयों आदिका निर्माण कराया। पुत्रकी रक्षाके लिये विशाल सेना भी नियुक्त कर दी।

स्वर्णहीनीके प्रभावसे राजा संजयके यहाँ स्वर्णकी हेर सारी राशियाँ एकत्र हो गयीं। कुछ समयके बाद राजपुत्रकी अत्यन्त स्थानि सुनकर लोभवश मटोद्वत् चोरेने स्वर्णहीनीका हरण कर लिया, परंतु जब उसके शरीरमें कहीं भी सोना नहीं देखा, तब चोरेने उसे मारकर जंगलमें फेंक दिया। चोरोद्वारा पुत्रके मारे जानेपर राजा बहुत दुःखी हो विलाप करने लगा। उस समय नारदजी वहाँ पुनः पधारे। नारदजीने अनेक प्राचीन गुजाओंकी गाथाएँ सुनाकर राजाके शोकको दूर किया और यमलोकमें जाकर ये राजपुत्रको ले आये। पुत्रको प्राप्तकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने नारदजीसे पूछा—‘महाराज ! किस कर्मके प्रभावसे यह मेरा पुत्र स्वर्णहीनी हुआ और किस कर्मके प्रभावसे इसको पूर्वजन्मका स्मरण है ?’ नारदजीने कहा—‘राजन् ! इसने ‘भद्र’ नामक ब्रतको विधिपूर्वक चार बार किया है। यह उसीका प्रताप है।’ इतना कहकर नारदजी अपने आश्रमको छले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस ब्रतके करनेसे ब्रतीका उत्तम कुलमें जन्म होता है और वह रूपवान् तथा पूर्वजन्मका ज्ञाता एवं दीर्घायु होता है। अब आप इस ब्रतका विद्यान सुनें—इस ब्रतके चार भद्र चार पादके रूपमें हैं। मार्गशीर्षमें पहला, फल्लुनमें दूसरा, ज्येष्ठमें तीसरा और भाद्रपदमें चौथा पाद होता है। मार्गशीर्ष शुक्र आदि तीन मास ‘विष्णुपद’ नामक भद्र सभी धर्मोंका साधक है। फल्लुन शुक्र आदि तीन मास ‘क्रिपुष्कर’ नामक भद्ररूप है और वह तप आदिका साधक एवं लक्ष्मीभद्र है। ज्येष्ठ शुक्र आदि तीन मास ‘क्रिराम’ नामक भद्र है। यह सत्य और शौर्य प्रदान करता है। भाद्र शुक्र आदि तीन मास ‘क्रिंग’ नामक भद्र है, यह बहुत विद्या देनेवाल है। सभी खी-पुरुषोंको इस भद्र-ब्रतको करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—जगत्पते ! इन भद्रोंका विद्यान आप विस्तारपूर्वक कहें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस अतिशय गुप्त विद्यानको मैंने किसीसे नहीं कहा है, आपको मैं सुनाता

हूँ, आप सावधान होकर सुनें—

मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी प्रारम्भिक चार तिथियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ मानी गयी हैं। ये तिथियाँ हैं—द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी और पञ्चमी। त्रितीयोंको प्रतिपदाके दिन जितेन्द्रिय होकर एकमुक्त रहना चाहिये। प्रातःकालमें द्वितीया तिथिको नित्यक्रियाओंको सम्प्रकरण कर मध्याह्नमें मन्त्रपूर्वक गोमय तथा मिट्टी आदि लगाकर खान करना चाहिये। इन मन्त्रोंके अधिकारी चारों वर्ष हैं, किंतु वर्णसंकरोंको इनका अधिकार नहीं है। विषवा खी यदि सदाचारसम्पन्न हो तो वह भी इस ब्रतकी अधिकारिणी है। सधवा खी अपने पतिकी आज्ञासे यह ब्रत प्राप्त करे। शरीरमें मिट्टी-लेपन करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

त्वं मृत्ने वन्दिता देवैः समर्लैङ्कृत्यातिभिः ॥

मयापि वन्दिता भक्त्या मामतो विमलं कुरु ॥

(उत्तरपर्व १३ । ६५-६६)

‘भूतिके ! दुष्ट दैत्योंका विनाश करनेवाले देवताओंके द्वारा आप वन्दित हैं, मैं भी भक्तिपूर्वक आपकी वन्दना करता हूँ, मुझे भी आप पवित्र बना दें।’

अनन्तर जलके समुख जाकर सफेद सरसों, कृष्ण तिल, बच और सर्वोषधिका उड्टन लगाकर जलमें मण्डल अङ्कित कर ये मन्त्र पढ़ने चाहिये—

त्वमादिः सर्वदिवानां जगतां च जगत्पते ।

भूतानां वीरुद्धां चैव रसातां पतये नमः ॥

गङ्गासागराणं तोयं पौष्टकं नार्मदं तथा ।

यामूनं सांनिहत्यं च संनिधानमिहास्तु मे ॥

(उत्तरपर्व १३ । ६८-६९)

ये मन्त्र पढ़कर खानकर शुद्ध वस्त्र पहन, संभया और तर्पण करे। फिर घर आकर नियमपूर्वक रहे और चन्द्रोदय-पर्यन्त किसीसे सम्प्राप्त न करे।

इसी प्रकार द्वितीया आदि तिथियोंमें कृष्ण, अच्युत, अनन्त और हृषीकेश—इन नामोंसे भक्तिपूर्वक भगवान्नका पूजन करे। पहले दिन भगवान्के चरणारविन्दोंका, दूसरे दिन नाभिका, तीसरे दिन वक्षःस्थलका और चौथे दिन नारायणके मस्तकका विधिपूर्वक उत्तम पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन करे और रात्रिमें जब चन्द्रोदय हो, तब शशि, चन्द्र,

शाश्वत तथा इन्द्रु—इन नामोंसे क्रमशः चन्दन, अगर, कर्पूर, दधि, दूर्वा, अक्षत तथा अनेक रत्नों, पुष्पों एवं फलों आदिसे चन्द्रमाको अर्थ्य दे। प्रत्येक दिन जैसे-जैसे चन्द्रमाकी वृद्धि हो वैसे-वैसे अर्थ्यमें भी वृद्धि करनी चाहिये। अर्थ्य इस मन्त्रसे देना चाहिये—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायपानः पुनः पुनः ।
प्रिग्रिसमवेतान् वै देवानाप्यायसे हृषिः ॥
गगनाङ्गमसदीप दुधाविष्यमथनोद्दत्त ।
भाभासितदिग्भोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १३। ८६-८७)

‘हे रमानुज ! आप प्रत्येक मासके अन्तमें नवीन-नवीन रूपमें आविर्भूत होते रहते हैं। तीन अग्रियोंसे समन्वित देवताओंको आप ही हृषिष्यके द्वारा आप्यायित करते हैं। आपकी उत्पत्ति क्षीरसागरके मन्थनसे हुई है। आपकी आभासी ही दिशा-विदिशाएँ आभासित होती हैं। गगनरूपी आँगनके आप सत्स्वरूपी देवीपामान दीपक हैं। आपको नमस्कार है।’

चन्द्रमाको अर्थ्य निवेदित कर वह अर्थ्य ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर भौन होकर भूमिपर पदापत्र विछकर भोजन करे। पलाश या अशोकके पत्रोंद्वारा पवित्र भूमि या शिलातलका शोधन कर इस मन्त्रसे भूमिकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्वरसोद्दत्ते ॥
मदनुप्रहाय सुखदं कुर्वन्नममृतोपमम् ।

(उत्तरपर्व १३। ९०-९१)

‘सम्पूर्ण रसोंको उत्पन्न करनेवाली है पृथ्वी देवि ! आपके आश्रयमें मैं भोजन करना चाहता हूँ। मुझपर अनुग्रह करनेके

यमद्वितीया तथा अशून्यशयन-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वितीया तिथिको यमुनाने अपने घर अपने भाई यमको भोजन कराया और यमलोकमें बड़ा उत्सव हुआ, इसलिये इस तिथिका नाम यमद्वितीया है। अतः इस दिन भाईको अपने घर भोजन न कर बहिनके घर जाकर प्रेमपूर्वक उसके हाथका बना हुआ भोजन करना चाहिये। उससे बल और पुष्टिकी वृद्धि होती है। इसके बदले बहिनको सर्वांगलिंगार, वस्त्र तथा द्रव्य आदिसे संतुष्ट करना चाहिये।

लिये आप इस अन्नको अमृतके समान उत्तम स्वादयुक्त बना दें।’

अनन्तर शाक तथा पकान्नका भोजन करे। भोजनके बाद आचमन करे और अङ्गोंका स्पर्श कर चन्द्रमाका ध्यान करते हुए भूमिपर ही शयन करे। द्वितीयाके दिन शार एवं लवणरहित हृषिष्यक भोजन करना चाहिये। तृतीयाको नीवार (तिग्री) तथा चतुर्थीको गायके दूधसे बने उत्तम पदार्थोंको ग्रहण करना चाहिये। पञ्चमीको शुत्रसुकृतशारात्र (खिचड़ी) ग्रहण करना चाहिये। इस भद्रब्रतमें सार्वां चावल, गायका धूत तथा अन्य गव्य पदार्थ एवं अयाचित प्राप्त बन्य फल प्रशस्त माने गये हैं। अनन्तर प्रातःकाल स्नानकर पितरोंका तर्पणकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दान-दक्षिणा आदि देकर विदा करना चाहिये। बादमें भूत्य एवं अन्यजनोंके साथ स्वयं भी भोजन करे।

इस प्रकार तीन-तीन महीनोंतक चार भद्र-ऋतोंका जो वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक प्रमादरहित होकर आचरण करता है, उसे चन्द्रदेव प्रसन्न होकर श्री, विजय आदि प्रदान करते हैं। जो कल्या इस भद्रब्रतका अनुष्ठान करती है, वह शुभ पतिको प्राप्त करती है। दुर्भगा खी सुभगा एवं साध्वी हो जाती है तथा नित्य सौभाग्यको प्राप्त करती है। राज्यार्थी राज्य, धनार्थी धन और पुत्रार्थी पुत्र प्राप्त करता है। इस भद्रब्रतके करनेसे खीका उत्तम कुलमें विकाह होता है तथा वह उत्तम शत्र्या, अन्न, यान, आसन आदि शुभ पदार्थोंको प्राप्त करती है तथा पुरुष धन, पुत्र, खीके साथ ही पूर्वजन्मके ज्ञानको भी प्राप्त कर लेता है।

(अथाय १३)

यदि अपनी सगी बहिन न हो तो पिता के भाईकी कन्या, मामाकी पुत्री, मौसी अथवा बुआकी बेटी—ये भी बहिनके समान हैं, इनके हाथका बना भोजन करे। जो पुरुष यमद्वितीयाको बहिनके हाथका भोजन करता है, उसे धन, यश, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुखकी प्राप्ति होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने बताया कि सब धर्मोंका साधन गृहस्थाश्रम है, वह गृहस्थाश्रम खी और

पुरुषसे ही प्रतिष्ठित होता है। पलीहीन पुरुष और पुरुषहीन नारी धर्म आदि साधन सम्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होते, इसलिये आप कोई ऐसा ब्रत बतायें जिसके अनुष्ठानसे दाम्पत्यका विवेग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी द्वितीयाको अशून्यशयन नामक ब्रत होता है। इसके करनेसे स्त्री विधवा नहीं होती और पुरुष पलीसे हीन नहीं होता। इस तिथिको लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुके शश्यापर अनेक उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये। इस दिन उपचारस, नक्तब्रत अथवा अयाचित-ब्रत करना चाहिये। ब्रतके दिन दही, अक्षत, कन्द-मूल, फल, पुष्प, जल आदि सुवर्णके पात्रमें रखकर निष्प्रमन्त्रको पढ़ते हुए चन्द्रमाको अर्घ्य

देना चाहिये—

गगनाङ्गुणसम्मूत् दुष्टाच्छिपथनोद्दत्वं ।
भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १५। १८)

इस विधानके साथ जो व्यक्ति चार मासतक ब्रत करता है, उसको कभी भी स्त्री-विवोग प्राप्त नहीं होता एवं उसे सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस ब्रतको करती है, वह तीन जन्मतक विधवा और दुर्भगानहीं होती। यह अशून्य-द्वितीयाका ब्रत सभी कामनाओं और उत्तम भोगोंको देनेवाला है, अतः इसे अवश्य करना चाहिये।

(अध्याय १४-१५)

मधूकतृतीया एवं मेघपाली तृतीया-ब्रत

दुष्टिष्ठिरने पूजा— भगवान् ! मधूक-वृक्षका आश्रय ग्रहण करनेवाली भगवान् शंकरकी भार्या भगवती गौरीकी लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवियोंने किस कारणसे अर्चना की, इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— प्राचीन कालमें समुद्र-मथनसे मधूक-वृक्ष विनिर्गत हुआ। स्त्रियोंको अखण्ड सौभाग्य प्राप्त करनेवाले तथा सभी आधि-व्याधियोंको दूर करनेवाले उस वृक्षको भूलेकवासियोंने पृथिवीपर स्थापित किया। जया-विजया आदि सत्तियोंसहित भगवती गौरीको उस प्रफुल्लित सुन्दर वृक्षका आश्रय ग्रहण किये देशकर देवताओंने अपनी अभीष्ट इच्छाओंकी पूर्तिहेतु उसकी अनेक उपचारोंसे पूजा की। स्वयं लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, गङ्गा, रोहिणी, रम्भा तथा अरुच्छती ऊदिने भी विनयपूर्वक पूजा की। भगवती गौरीने प्रसन्न होकर उन्हें अधिमत फल प्रदान किया। फलानुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको इनकी उपासना हुई थी। इसलिये फलानुनके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको उपचारसकर मधुवनमें जाकर मधूक वृक्षके नीचे ब्रह्मचर्यमें स्थित, जटामुकुटसे सुशोभित, तपस्यारत तथा गोधाके रथपर आरूढ़, रुद्र-ध्यानपरायणा भगवती पार्वतीकी प्रतिमाका ध्यान करते हुए गंध, पुष्प, दीप, लाल चन्दन, केशर, मधुर द्रव्य, स्वर्ण, माणिक्य आदिसे पूजाकर देवीसे इस प्रकार अखण्ड

सौभाग्यके लिये प्रार्थना करे—

३० भूषिता देवभूषा च भूषिका लक्षिता उमा ।
तपोवनरता गौरी सौभाग्यं मे प्रयच्छतु ॥
दीर्घार्थं मे शमयतु सुप्रसन्नमनाः सदा ।
अवैधव्यं कुले जन्म ददात्वपरजन्मनि ॥

(उत्तरपर्व १६। ३०)

'तपोवनरता है गौरी देवि ! आपका नाम लक्षिता तथा उमा है। आप देवताओंकी आभूषणस्वरूपा एवं सभीको आभूषित करनेवाली हैं और स्वयं आभूषित हैं। आप मुझे सौभाग्य प्रदान करें। आप मेरे दीर्घार्थका शमन करें। दूसरे जन्ममें भी मेरा सौभाग्य अस्विंडित रहे। आप सर्वदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

अनन्तर पूर्ण, जीरक, लक्षण, गुड़, ची, पुष्पमालाओं, कुंकुम, गंध, अगर, चन्दन एवं सिंदूर आदि तथा वस्त्रोंसे और अनेक देशोत्पत्र अंजनोंसे, पुआ, तिल और तण्डुल, घृतपूरित मोदक इत्यादि नैवेद्योंसे मधूक-वृक्षकी पूजा करे। उसकी प्रदक्षिणा कर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। जो कन्या इस उत्तम तृतीयाब्रतको करती है वह तीनों लोकोंमें दुष्पाप्य भगवान् विष्णुके समान पति प्राप्त करती है। गणन् ! मेरे द्वाग विधित यह ब्रत विरकालतक प्रसिद्ध रहेगा। इस ब्रतको रुक्मिणीके सम्मुख प्रथम महार्षि कश्यपने कहा था। जो स्त्री

इस ब्रतका आचरण करेगी, वह नीरेण, सुन्दर दृष्टिसम्पन्न तथा अङ्ग-प्रत्यक्षोंसे शोभायुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीवित रहेगी। अनन्तर किंकिणीके शब्दोंसे समन्वित हंसत्यानसे रुद्रलोकको प्राप्त करेगी। वहाँ अनेक वर्षोंतक अपने पतिके साथ दिव्य भोगोंको प्राप्त कर आठों सिद्धियोंसे समन्वित होगी।

युधिष्ठिरने पूजा—भगवन्! मेघपाली-ब्रत कब और कैसे अनुष्ठित होता है, इसका क्या फल है तथा मेघपाली लता कैसी होती है? इसे बतानेवाली कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—आश्चिन मासके कृष्ण-पक्षकी तृतीया तिथिको भक्तिपूर्वक खियो अथवा पुरुषोंको सहर्मसी प्राप्तिके लिये मेघपालीको सप्तधान्य (यव, गोधूम, धान, तिल, कंगु, श्यामाक (सावा) तथा चना) और अंकुरित गोधूमके साथ अथवा तिल-तण्डुलके पिण्डोंद्वारा अर्थ प्रदान करना चाहिये। मेघपाली ताम्बूलके समान पत्तों-वाली, मंजरीयुक्त एक लाल लता है, वह वाटिकाओंमें, ग्राम-मार्गमें होती है तथा पर्वतोंपर प्रायः होती है। व्यापारसे जीवन बितानेवाले वैश्यगण धान्य, तेल, गुड़, कुकुम, स्वर्ण, तथा

फल (जूता, छाता, कपड़ा, औंगूठी, कमण्डल, आसन, बर्तन और भोज्य वस्तु) आदिसे इसकी पूजा करते हैं। मेघपालीके अर्घदानसे जाने-अनजाने जो भी पाप होते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। श्रेष्ठ स्त्रियोंको शुभ देश या स्थानमें उत्पन्न मेघपालीकी फल, गन्ध, पुण्य, अक्षत, नारिकेल, खजूर, अनार, कनेर, धूप, दीप, दही और नये अंकुरवाले धान्य-समूहसे पूजा करनी चाहिये तथा लाल वस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर और अधीरसे विभूषित कर अर्थ देना चाहिये। वह अर्थ विद्वान् ब्राह्मणको समर्पण कर देना चाहिये। इस प्रकार मेघपालीकी पूजा करनेवाली नारी या पुरुष परम ऐश्वर्यको प्राप्त करते हैं तथा सुख-सौभाग्यसे समन्वित हो सौ वर्षोंतक मर्त्यलोकमें जीवित रहते हैं। अन्तमें विमानपर आरूढ़ हो विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं और अपने सात कुलोंको निःसंदेह नरकसे ल्वर्ग पहुँचा देते हैं। जो नरकके भवयसे फलादिसे समन्वित अर्थ मेघपालीको प्रदान करता है, उसके सभी पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्यके द्वारा अन्यकार नष्ट हो जाता है।

(अध्याय १६-१७)

पञ्चाश्रिसाधन नामक रथा-तृतीया तथा

गोष्ठद-तृतीयाब्रत

युधिष्ठिरने पूजा—भगवन्! इस मृत्युलोकमें जिस ब्रतके द्वारा स्त्रियोंका गृहस्थाश्रम सुखार-रूपसे बद्ले और उन्हें पतिकी भी प्रीति प्राप्त हो, उसे बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—एक समय अनेक लताओंसे आच्छन्न, विविध पुष्पोंसे सुशोभित, मुनि और किञ्चरोंसे सेवित तथा गान और नृत्यसे परिपूर्ण रमणीय कैलास-शिखरपर मुनियों और देवताओंसे आकृत माँ पार्वती और भगवान् शिव बैठे हुए थे। उस समय भगवान् शंकरने पार्वतीसे पूजा—‘सुन्दरि! तुमने कौन-सा ऐसा उत्तम ब्रत किया था, जिसमें आज तुम मेरी वामाङ्गीके रूपमें अत्यन्त प्रिय बन गयी हो?’

पार्वतीजी बोली—नाथ! मैंने वास्त्य-कालमें रथाब्रत किया था, उसके फलस्वरूप आप मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए हैं

एवं मैं सभी स्त्रियोंकी स्वामिनी तथा आपकी अर्धाङ्गिनी भी बन गयी हूँ।

भगवान् शंकरने पूजा—भद्रे! सभीको सौख्य प्रदान करनेवाला वह रथाब्रत कैसे किया जाता है? पिताके यहाँ इसे तुमने किस प्रकार अनुष्ठित किया था? उसे बताओ।

पार्वतीजी बोली—देव! एक समय मैं बाल्यकालमें अपने पिताके घर सहियोंके साथ बैठी थी, उस समय मेरे पिता हिमवान् तथा माता मेनाने मुझसे कहा—‘पुत्रि! तुम सुन्दर तथा सौभाग्यवर्धक रथाब्रतका अनुष्ठान करो, उसके आरम्भ करते ही तुम्हें सौभाग्य, ऐश्वर्य तथा महादेवी-पदकी प्राप्ति हो जायगी। पुत्रि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको स्नान कर इस ब्रतका नियम प्राहण करो और अपने चारों ओर पञ्चाश्रि प्रज्वलित करो अर्थात् गार्हणत्यागि, दक्षिणांशि, आहवनीय तथा

१-इसमें वनस्पतिके देवता मानकर उसकी पूजाको विशेष महत्व प्रदान किया गया है। विशेषकर अर्थवैद तथा उसके सूत्रोंमें ऐसे कई प्रकरण आये हैं। ओषधियाँ देवता ही हैं, जिनसे रोग, दुःख, पाप-शमनके साथ-साथ धर्मार्थके सिद्धि भी होती हैं।

सभ्याग्रि और पाँचवें तेजःस्वरूप सूर्यग्रिका सेवन करो। इसके बीचमें पूर्वकी दिशाकी ओर मुखकर बैठ जाओ और मृगचर्म, जटा, बल्कल आदि धारण कर चार भुजाओंवाली एवं सभी अलंकारोंसे सुशोभित तथा कमलके ऊपर विशज्जान भगवती महासतीका ध्यान करो। पुत्रि ! महालक्ष्मी, महाकाली, महामाया, महामति, गङ्गा, यमुना, सिंधु, शतहृ, नर्मदा, मही, सरस्वती तथा वैतरणीके रूपमें वे ही महासती सर्वत्र व्याप्त हैं। अतः तुम उन्हींकी आराधना करो।'

प्रभो ! मैंने माताके द्वारा वतलायी गयी विधिसे श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रथा-(गौरी) व्रतका अनुष्ठान किया और उसी व्रतके प्रधावसे मैंने आपको प्राप्त कर लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले— कौन्तेय ! लोपामुद्राने भी इस रथाभ्रतके आचरणसे महामुनि अगस्त्यको प्राप्त किया और वे संसारमें पूजित हुईं। जो कोई रुपी-पुरुष इस रथाभ्रतको करेगा, उसके कुलकी वृद्धि होगी। उसे उत्तम संतति तथा सम्पत्ति प्राप्त होगी। खियोंको अस्त्रण सौभाग्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाले श्रेष्ठ गार्हस्थ्य-सुखकी प्राप्ति होगी और जीवनके अन्तमें उन्हें इच्छानुसार विष्णु एवं शिवलोककी प्राप्ति होगी।

इस व्रतका संक्षिप्त विधान इस प्रकार है—व्रतीको एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसे गन्ध-पुष्पादिसे सुवासित तथा अलंकृत करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपमें महादेवी रुद्राणीकी यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। देवीके 'सम्मुख सौभाग्याश्रक—जीरा, कदुहुंड, अपूष, फूल, पवित्र निष्ठाव (सेम), नमक, चीनी तथा गुड़ निवेदित करना चाहिये। पदासन लगाकर सूर्यास्तक देवीके सम्मुख बैठा रहे। अनन्तर रुद्राणीको प्रणाम कर यह मन्त्र कहे—

वेदेषु सर्वशास्त्रेषु दिवि भूमौ धरातले ।

दृष्टः क्षतश्च बहुशो न शक्त्या रहितः शिवः ॥

त्वं शक्तिस्त्वं स्वधा स्वाहा त्वं सावित्री सरस्वती ।

पति देहि गृहं देहि वसु देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १८। २३-२४)

'सम्पूर्ण वेदादि शास्त्रोंमें, स्वर्णमें तथा पृथ्वी आदिमें कहीं

भी यह कभी नहीं सुना गया है और न ऐसा देखा ही गया है कि शिव शक्तिसे रहित हैं। हे पार्वती ! आप ही शक्ति हैं, आप ही स्वधा, स्वाहा, सावित्री और सरस्वती हैं। आप मुझे पति, श्रेष्ठ गृह तथा धन प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार पुनः-पुनः उन्हें प्रणाम करते हैं देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। अनन्तर सप्तलीक यशस्वी ब्राह्मणकी सभी उपकरणोंसे पूजा करके दान देना चाहिये। सुवासिनी खियोंको नैवेद्य आदि प्रदान करना चाहिये। इस विधानसे सभी कार्य सम्पन्न कर पाप-नाशके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। अगले दिन चतुर्थीको ब्राह्मण-दम्पतियोंको मधुर रसोंसे समन्वित भोजन कराकर व्रत पूर्ण करना चाहिये।

पार्थ ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तथा चतुर्थी तिथिको प्रतिवर्ष गोष्ठद-नामक व्रत करना चाहिये। स्त्री अथवा पुरुष प्रथम ज्ञानसे निवृत्त होकर अक्षत और पुष्पमाला, धूप, चन्दन, पिण्डक (पीठी) आदिसे गौकी पूजा करे। उसके बृंग आदि सभी अङ्गोंको अलंकृत करे। उन्हें भोजन कराकर तृप्त कर दे। स्वयं तेल और लवण आदि क्षार वस्तुओंसे रहित जो अग्रिके द्वारा सिद्ध न किया गया हो उसका भोजन करे। वनकी ओर जाती तथा लैटटी गौओंको उनकी तुष्टिके लिये ग्रास दे और उन्हें निम्न मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नामिः ।

प्र नु योचं विकिन्तुये जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ठ ॥

(अं ८। १०१। १५)

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे गौकी प्रार्थना करे—

गावो मे अप्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।

गावो मे हृदये सन्तु गावां मध्ये वसाम्यहम् ॥

(उत्तरपर्व १९। ७)

पञ्चमीको ऋतोधरहित होकर गायके दूध, दही, चावलका पीठा, फल तथा शाकका भोजन करे। रात्रिमें संयत होकर विश्राम करे। प्रातःकाल यथाशक्ति स्वर्णादिसे निर्मित गोष्ठद (गायका स्वर) तथा गुड़से निर्मित गोवर्धन पर्वतकी पूजा कर ब्राह्मणको 'गोविन्दः प्रीयताम्' ऐसा कहकर दान करे। अनन्तर अच्युतको प्रणाम करे।

इस व्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला व्रती सौभाग्य,

लगवण्य, धन, धान्य, यश, उत्तम संतान आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त करता है। उसका यह, गौ और बछड़ोंसे परिपूर्ण रहता है। मृत्युके बाद वह दिव्य स्वरूप धारणकर दिव्यालंकारोंसे विभूषित हो विमानमें बैठकर स्वर्गलोक जाता है एवं स्वर्गमें

हरकालीब्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूजा—भगवन् ! भगवती हरकाली-देवी कौन है ? इनका पूजन करनेसे स्त्रियोंको क्या फल प्राप्त होता है ? इसका आप कर्णन करें ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! दक्ष प्रजापतिकी एक कन्याका नाम था काली। उनका वर्ण भी नीलकमलके समान काला था। उनका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। विवाहके बाद भगवान् शंकर भगवती कालीके साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगे। एक समय भगवान् शंकर भगवान् विष्णुके साथ अपने सुरम्य मण्डपमें विहाजमान थे। उस समय हँसकर शिवजीने भगवती कालीको बुलाया और कहा—‘प्रिये ! गौरि ! यहाँ आओ।’ शिवजीका यह ब्रह्मवाक्य सुनकर भगवतीको बहुत क्रोध आया और वे यह कहकर रुदन करने लगीं कि ‘शिवजीने मैंग कृष्णवर्ण देखकर परिहास किया है और मुझे गौरी कहा है, अतः अब मैं अपनी इस देहको अग्रिमे प्रज्वलित कर दूँगी।’ भगवान् शंकरने उन्हें अग्रिमे प्रवेश करनेसे रोकनेका प्रयत्न किया, परंतु देवीने अपनी देहकी हरितवर्णकी कान्ति हरी दूर्वा आदि धासमें त्यागकर अपनी देहको अग्रिमे हवन कर दिया और उन्होंने पुनः हिमालयकी पुत्री-रूपमें गौरी नामसे प्रादुर्भूत होकर शिवजीके वामाङ्कमें निवास किया। इसी दिनसे जगत्कृत्या श्रीभगवतीका नाम ‘हरकाली’ हुआ।

महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी तृतीया तिथिको सब प्रकारके नये धान्य एकत्रकर उत्पर अंकुरित हरी धासमें निर्मित भगवती हरकालीकी मूर्ति स्थापित करे और गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, मोदक आदि नैवेद्य तथा भौति-भौतिके उपचारोंसे देवीका पूजन करे। यात्रिमें गीत-नृत्य आदि उत्सवकर जागरण करे और देवी हरकालीको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

दिव्य सौ वर्षोंतक निवासकर फिर विष्णुलोकमें जाता है। इस गोष्ठद त्रिवत्रतका कर्ता गौ तथा गोविन्दकी पूजा करनेवाला और गोरस आदिका भोजन करते हुए जीवनव्यापन करनेवाला उत्तम गोलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १८-१९)

हरकर्षसमुत्पद्ने हरकाये हरप्रिये ।

मा ग्राहीशस्य मूर्तिस्ये प्रणतोऽस्मि नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व २०। २०)

‘भगवान् शंकरके कृत्यसे उत्पन्न है शंकरप्रिये ! आप भगवान् शंकरके शरीरमें निवास करनेवाली हैं, भगवान् शंकरकी मूर्तिमें स्थित रहनेवाली हैं, मैं आपकी शरण हूं, आप मेरी रक्षा करें। आपको यार-यार प्रणाम हैं।’

इस प्रकार देवीका पूजनकर प्रातःकाल सुवासिनी स्त्रियाँ बड़े उत्सवसे गीत-नृत्यादि करते हुए प्रतिमाको पवित्र जलाशयके समीप ले जायें और इस मन्त्रको पढ़ते हुए विसर्जित करें—

अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम् ।

हरकाले शिवे गौरि पुनरागमनाय च ॥

(उत्तरपर्व २०। २१)

‘हे हरकाली देवि ! मैंने भक्तिपूर्वक आपकी पूजा की है, हे गौरि ! आप पुनः आगमनके लिये इस समय देवलोकको प्रस्थान करें।’

इस विधिसे प्रतिवर्ष, जो स्त्री अथवा पुरुष व्रत करता है, वह आगम्य, दीर्घायुष्य, सौभाग्य, पुत्र, पौत्र, धन, बल, ऐश्वर्य आदि प्राप्त करता है और सौ वर्षोंतक संसारका सुख भोगकर शिवलोक प्राप्त करता है। महादेवके अनुग्रहसे वहाँ वीरभद्र, महाकाल, नन्दीश्वर, विनायक आदि शिवजीके गण उसकी आज्ञामें रहते हैं। जो भी स्त्री भक्तिपूर्वक यह हरकाली-व्रत करती है और रात्रिके समय गीत-बाद्य-नृत्यसे जागरण कर उत्सव मनाती है, वह अपने पतिकी अति प्रिय होती है।

(अध्याय २०)



ललितातृतीया-ब्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप द्वादश मासोंमें किये जानेवाले ब्रतोंका वर्णन करें, जिनके करनेसे सभी उत्तम फल प्राप्त होते हैं, साथ ही प्रत्येक मास-ब्रतका विधान भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस विषयमें मैं एक प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ, आप सुनें—

एक समय देवता, गम्भीर, यक्ष, किन्नर, सिद्ध, तपसी, नाग आदिसे पूजित भगवान् श्रीसदाशिव कैलाशपूर्वतपर विराजमान थे। उस समय भगवती उमाने विनयपूर्वक भगवान् सदाशिवसे प्रार्थना की कि महाराज ! आप मुझे उत्तम तृतीया-ब्रतके विषयमें बतानेकी कृपा करें, जिसके करनेसे नारीको सौभाग्य, धन, सुख, पुत्र, रूप, लक्ष्मी, दीर्घायु तथा आरोग्य प्राप्त होता है और स्वर्गकी भी प्राप्ति होती है। उमाकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए कहा—‘प्रिये ! तीनों लोकोंमें ऐसा कौन-सा पदार्थ है जो तुम्हें दुर्लभ है तथा जिसकी प्राप्तिके लिये ब्रतकी जिज्ञासा कर रही हो ?’

पार्वतीजी बोली—महाराज ! आपका कथन सत्य ही है। आपकी कृपासे तीनों लोकोंके सभी उत्तम पदार्थ मुझे सुलभ हैं, किन्तु संसारमें अनेक स्त्रियाँ विविध कामनाओंकी प्राप्तिके लिये तथा अमङ्गलोंकी निवृत्तिके लिये भक्तिपूर्वक भेरी आराधना करती हैं तथा मेरी शरण आती हैं। अतः ऐसा कोई ब्रत बताइये, जिससे वे अनायास अपना अभीष्ट प्राप्त कर सकें।

भगवान् शिवने कहा—उमे ! ब्रतकी इच्छावाली रूप संयमपूर्वक माघशुक्ल तृतीयाको प्रातः उठकर नित्यकर्म सम्प्रकर ब्रतके नियमको प्रहण करे। मध्याह्नके समय विल्व और आमलकमिश्रित पवित्र जलसे खान कर शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा गम्य, पुष्प, दीप, कपूर, कुकुम एवं विविध नैवेद्योंसे भक्तिपूर्वक भक्तोंपर वात्सल्यभाव रखनेवाली तुम्हारी (पार्वतीकी) भक्तिभावसे पूजा करे। अनन्तर ईशानी नामसे तुम्हारा व्यान करते हुए तृष्णिके घड़ेमें जल, अक्षत तथा सुखर्ण रखकर सौभाग्यादिकी कामनासे संकल्पपूर्वक वह घट

ब्राह्मणको दान दे दे। ब्राह्मण उस घटस्थ जलसे ब्रतकर्त्तीका अधिष्ठेक करे। अनन्तर वह कुशोदकका आचमन कर शत्रिके समय भगवती उमादेवीका व्यान करते हुए भूमिपर कुशकी शाव्या विद्याकर सोये। दूसरे दिन प्रातः उठकर खानसे निवृत्त हो, विधिपूर्वक भगवतीका पूजन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस प्रकार भगवतीका प्रथम मासमें ईशानी नामसे, द्वितीय मासमें पार्वती नामसे, तृतीय मासमें शंकरप्रिया नामसे, चतुर्थ मासमें भवानी नामसे, पाँचवें मासमें स्कन्दमाता नामसे, छठे मासमें दक्षदुहिता नामसे, सातवें मासमें भैनाकी नामसे, आठवें मासमें कालायनी नामसे, नवें मासमें हिमाद्रिजा नामसे, दसवें मासमें सौभाग्यदायिनी नामसे, स्यारहवें मासमें उमा नामसे तथा अन्तिम बारहवें मासमें गौरी नामसे पूजन करे। बारहों मासोंमें क्रमशः कुशोदक, दुग्ध, धूत, गोमूत्र, गोमय, फल, निष्व-पत्र, कटकजीरी, गोशृंगोदक, दही, पञ्चगव्य और शक्कका प्राशन करे।

इस प्रकार बारह मासतक ब्रतकर श्रद्धापूर्वक भगवतीकी पूजा करे और प्रत्येक मासमें ब्राह्मणोंको दान दे। ब्रतकी समाप्तिपर वेदपाठी ब्राह्मणको पालीके साथ बुलाकर दोनोंमें शिव-पार्वतीकी बुद्धि रखकर गम्य-पुष्पादिसे उनकी पूजा करे और उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा आभूषण, अत्र, दक्षिणा आदि देकर उन्हें संतुष्ट करे। ब्राह्मणको दो शुक्र वस्त्र तथा ब्राह्मणीको दो रक्त वस्त्र प्रदान करे। जो रुपी इस ब्रतको भक्तिपूर्वक करती है, वह अपने पतिके साथ दिव्यलोकमें जाकर दस हजार वर्षोंतक उत्तम भोगोक्ता भोग करती है। पुनः मनुष्य-लोकमें अपेक्ष वाद वे दोनों दम्पति ही होते हैं और आरोग्य, धन, संतान आदि सभी उत्तम पदार्थ उन्हें प्राप्त होते हैं। इस ब्रतका पालन करनेवाली रुपीका पति सदा उसके अधीन रहता है और उसे अपने प्राणोंसे भी अधिक मानता है। जन्मान्तरमें ब्रतकर्त्ती रुपी राजपत्री होकर गम्य-सुखका उपभोग करती है।

(अध्याय २१)

अवियोगतृतीया-ब्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! जिस ब्रतके करनेसे पत्नी पतिसे वियुक्त न हो और अन्तमें शिवलोकमें निवास करे तथा जन्मान्तरमें भी विधवा न हो ऐसे ब्रतका आप वर्णन करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इसी विषयको भगवती पार्वतीजीने भगवान् शिवसे और अरुचतीने महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा था । उन लोगोंने जो कहा, वही आपको सुनाता है ।

मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी द्वितीयाको पवित्र चत्रिवाली स्त्री रात्रिमें पायस भक्षण कर शिव और पार्वतीके दण्डवत् प्रणाम करे । तृतीया तिथिमें प्रातः गूलरकी दातीनसे दन्तधावन कर खान करे । शालि चावलके चूर्णसे शिव और पार्वतीकी प्रतिमा बनाये । उन्हें एक उत्तम पात्रमें स्थापित कर विधिपूर्वक उनका पूजन करे । रात्रिमें जागरण कर शिव-पार्वतीका कीर्तन करती हुई भूमिपर शयन करे । चतुर्थको प्रातः उठकर दक्षिणाके साथ उस प्रतिमाको आचार्यको समर्पित कर शिवभक्त ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन कराकर संतुष्ट करे । ब्राह्मण दम्पतिकी भी यथाशक्ति पूजा करे ।

इस प्रकार प्रतिमास ब्रत एवं पूजन करना चाहिये । बारह महीनोंमें क्रमशः शिव-पार्वतीकी इन नामोंसे पूजा करनी चाहिये—मार्गशीर्षमें शिव-पार्वतीके नामसे, पौषमें गिरीश और पार्वती नामसे, माघमें भव और भवानी नामसे, फाल्गुनमें महादेव और उमा नामसे, चैत्रमें शंकर और ललिता नामसे, वैशाखमें स्थाणु और लोलनेत्रा नामसे, ज्येष्ठमें वीरेश्वर और एकवीरा नामसे, आषाढ़में त्रिलोकन पशुपति और शक्ति

नामसे, श्रीकण्ठ और सुता नामसे, भाद्रपदमें भीम और कालरात्रि नामसे, आश्विनमें शिव और दुर्गा नामसे तथा कार्तिकमें ईशान और शिवा नामसे पूजा करनी चाहिये ।

बारह महीनोंमें भगवान् शिव एवं पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये क्रमशः—नील कमल, कनेर, बिल्वपत्र, पलास, कुञ्ज, मलिलका, पाढ़र, श्वेत कमल, कदम्ब, तगर, द्रोण तथा मालनी—इन पुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये । इस प्रकार मार्गशीर्षसे ब्रत प्रारम्भकर कार्तिकमें ब्रतका उद्यापन करना चाहिये । उद्यापनमें सुवर्ण, कमल, दो वस्त्र, धजा, दीपक और विविध नैवेद्य शिवको अर्पित कर आरती करनी चाहिये और बारह ब्राह्मणयुगलका यथाशक्ति पूजनकर सुवर्णमय शिव-पार्वतीकी मूर्ति बनवाकर उन्हें ताप्रपात्रमें स्थापित कर उसी पात्रमें चौसठ मोती, चौसठ मूँगा, चौसठ पुखराज रक्षकर उस पात्रको वस्त्रसे ढककर आचार्यको समर्पित करना चाहिये । अड़तालीस जलपूर्ण कलश, छाता, जूता और सुवर्ण ब्राह्मणोंको दानमें देना चाहिये । दीन, अन्य और कृपणको अत्र बाँटना चाहिये । किसीको भी उस दिन निराश नहीं जाने देना चाहिये । यदि इतनी शक्ति न हो तो कुछ कम करे, किन्तु वित्तशाट्य न करे । इस ब्रतके करनेसे रूप, सौभाग्य, धन, आयु, पुत्र और शिवलोककी प्राप्ति होती है तथा इष्टज्ञोंसे कभी वियोग नहीं होता । इस ब्रतके करनेपर पातिव्रता स्त्री कभी भी पति-पुत्र, सौभाग्य और धनसे वियुक्त नहीं होती और शिवलोकमें निवास करती है ।

(अध्याय २२)

उमामहेश्वर-ब्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! जिस ब्रतके करनेसे स्त्रियोंको अनेक गुणवान् पुत्र-पौत्र, सुवर्ण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा पति-पत्नीका परस्पर वियोग नहीं होता, उस ब्रतका आप वर्णन करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सभी ब्रतोंमें श्रेष्ठ एक ब्रत है, जो उमामहेश्वर-ब्रत कहलाता है, इस ब्रतको करनेसे स्त्रियोंको अनेक संतान, दास, दासी, आभूषण, वस्त्र और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है । इस ब्रतको अप्सरा, विद्याधरी,

किंवरी, ऋषिकन्या, सीता, अहल्या, रोहिणी, दमयन्ती, तारा तथा अनसूया आदि सभीने किया था और अन्य सभी उत्तम स्त्रियाँ भी इस ब्रतको करती हैं । भगवती पार्वतीने सौभाग्य तथा आरोग्य प्रदान करनेवाले और दरिद्रता तथा व्याधिका नाश करनेवाले इस ब्रतका दुर्भाग्य और कुरुपा तथा निर्धन स्त्रियोंके हितकी दृष्टिसे मनुष्यलोकमें प्रचार किया ।

धर्मपरायणा स्त्री इस ब्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी तृतीया तिथिको नियमपूर्वक उपवास करे । प्रातः उठकर पवित्र

गङ्गा आदि नदियोंमें खान कर शिव-पार्वतीका ध्यान करती हुई यह मन्त्र पढ़े और भगवान् शंकरकी अर्धांगी भगवती श्रीललिताकी पूजा करे—

नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्थधारक ।
महादेवि नमस्तेऽस्तु हरकायार्थवासिनि ॥

(उत्तरपर्व २३ । १२)

'भगवती उमाको अपने आधे भागमें धारण करनेवाले हैं देवदेवेश्वर भगवान् शंकर ! आपको बार-बार नमस्कार है । महादेवि ! भगवती पार्वती ! आप भगवान् शंकरके आधे शरीरमें निवास करनेवाली हैं, आपको नमस्कार है ।'

पुनः घर आकर शरीरकी शुद्धिके लिये पञ्चग्रन्थ-पान करे और प्रतिमाके दक्षिण भागमें भगवान् शंकर और बाम भागमें भगवती पार्वतीकी भावना कर गम्ध, पुष्प, गुण्डुल, धूप, दीप और धीमें पकाये गये नैवेश्वरोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे । इसी प्रकार बारह महीनेतक पूजनकर प्रसन्नतित हो ब्रतका उद्यापन करे । भगवान् शंकरकी चाँदीकी तथा भगवती पार्वतीकी सुवर्णकी मूर्ति बनवाकर दोनोंको चाँदीके वृषभपर स्थापित कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करे । अनन्तर चन्दन, श्वेत

पुष्प, श्वेत वस्त्र आदिसे भगवान् शंकरकी ओर कुंकुम, रक्त वस्त्र, रक्त पुष्प आदिसे भगवती पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये । फिर शिवभक्त वेदपाठी, शान्तचित्त ब्राह्मणोंके भोजन करना चाहिये । सभीको दक्षिणा देकर उनकी प्रदक्षिणा करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

उमामहेश्वरी देवी सर्वलोकपितामही ।
ब्रतेनानेन सुप्रीती भवेतां मम सर्वदा ॥

(उत्तरपर्व २३ । २१)

'सभी लोकोंके पितामह भगवान् शिव एवं पार्वती मेरे इस ब्रतके अनुष्ठानसे मुझपर सदा प्रसन्न रहें ।'

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्रोधरहित ब्राह्मणको सभी सामग्रियाँ देकर ब्रतको समाप्त करे । इस ब्रतको जो स्त्री भक्तिपूर्वक करती है, वह शिवजीके समीप एक कल्पतक निवास करती है । तदनन्तर मनुष्य-लोकमें उत्तम कुलमें जन्म ग्रहणकर रूप, योवन, पुत्र आदि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर बहुत दिनोंतक अपने पतिके साथ सांसारिक सुखोंको भोगती है, उसका अपने पतिसे कभी वियोग नहीं होता और अन्तमें वह शिव-सायुज्य प्राप्त करती है । (अध्याय २३)

रघ्यानृतीया-ब्रतका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं सभी पापोंके नाशक, पुत्र एवं सौभाग्यप्रद सभी व्याधियोंके उपशामक, पुण्य तथा सौख्य प्रदान करनेवाले रघ्यानृतीया-ब्रतका वर्णन करता हूँ । यह ब्रत सप्तलियोंसे उत्पन्न छेषका शामक तथा ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाला है । भगवान् शंकरने देवी पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये इस ब्रतकी जो विधि बतलायी थी, उसे ही मैं कहता हूँ ।

श्रद्धालु स्त्री मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया तिथिको प्राप्तः उठकर दन्तशावन आदिसे निवृत्त हो भक्तिपूर्वक उपवासका नियम ग्रहण करे । वह सर्वप्रथम ब्रत-ग्रहण करनेके लिये देवीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवि संखतसर यावनृतीयायामुपोविता ।

प्रतिमासं करिष्यामि पारणं चापरेऽहनि ।

तदविघ्नेन मे यातु प्रसादान् तव पार्वति ॥

(उत्तरपर्व २४ । ५)

'देवि ! मैं पूरे एक वर्षताक इस तृतीया-ब्रतका आचरण और दूसरे दिन पारणा करूँगी । आप ऐसी कृपा करें, जिससे इसमें कोई विघ्न न उत्पन्न हो ।'

इस प्रकार स्त्री या पुरुष ब्रतका संकल्प करे और मनमें ब्रतका निश्चय कर सावधानी बरती हुए नदी, तालाब अथवा धरमें खान करे । तदनन्तर देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें कुशोदकका प्राशन करे । दूसरे दिन प्रातःकाल विद्वान् शिवभक्त ब्राह्मणोंके भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें सुवर्ण एवं लवण प्रदान करे । यथाशक्ति गौरीभूर भगवान् शिवको प्रयत्नपूर्वक भोग निवेदित करे ।

राजन् ! पौष मासकी तृतीयामें इसी विधिसे उपवास एवं पूजनकर रात्रिमें गोमूषकका प्राशन कर प्रभातकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और दक्षिणाके रूपमें उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार सोना तथा जीरक दे । इससे वाजपेय तथा अतिरात्र यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह कल्पपर्यन्त इन्द्रलोकमें

निवासकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

माघ मासकी शुक्र तृतीयाको 'सुदेवी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गोमयका प्राशन कर अकेले ही सोये। प्रातः अपनी शरिके अनुसार केसर तथा सोना ब्राह्मणोंको दानमें दे। इससे ब्रतीको चिरकालतक विष्णुलोकमें निवास करनेके पश्चात् भगवान् शंकरके सायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

फाल्गुन नासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको 'गौरी' नामसे देवी पार्वतीका पूजन कर रात्रिमें गायकव दूध पीये। प्रातः विद्वान् शिवभक्तों तथा सुवासिनी खियोंको भोजन कराकर सोनेके साथ कडुकुंड देकर विदा करे। इससे वाजपेय तथा अतिशय यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्र पक्षकी तृतीयामें भक्तिपूर्वक भगवती पार्वतीका विशालाक्षी नामसे पूजन कर रात्रिमें दहीका प्राशन करे और प्रातः 'कुंकुमके' साथ ब्राह्मणोंको सोना प्रदान करे। विशालाक्षीके प्रसादसे ब्रतकर्त्तीको महान् सौभाग्य प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'श्रीमुखी' नामसे पूजन करे। रात्रिमें धूतका प्राशन करे और एकाकी ही शयन करे। प्रातः शिवभक्त ब्राह्मणोंको यथारुचि भोजन कराकर ताम्बूल तथा लवण प्रदान कर प्रणामपूर्वक विदा करे। इस विधिसे पूजन करनेपर सुन्दर पुत्रोंकी प्राप्ति होती है।

आषाढ़ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको गौरी-पार्वतीकी 'माधवी' नामसे पूजा करे। तिलोदकका प्राशन करे। प्रातःकाल विंत्रोंको भोजन कराये और दक्षिणामें गुड़ तथा सोना दे। इससे उसे शुभ लोककी प्राप्ति होती है।

श्रावण मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'श्रीदेवी' नामसे पूजनकर गायके संगका स्पर्श किया जल पीये। शिवभक्तोंको भोजन कराकर सोना और फल दक्षिणाके रूपमें दे। इससे ब्रती सर्वलोकेश्वर होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है।

भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'हरताली' नामसे पूजन करे। महिलाका दूध पीये। इससे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है और इस लोकमें वह सुख भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

आश्विन मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'गिरिपुंजी' नामसे पूजनकर तप्तुल-मिश्रित जलका प्राशन करे और दूसरे दिन प्रातः ब्राह्मणोंका पूजन कर चन्दनयुक्त सुवर्ण दक्षिणामें दे। इससे सभी यज्ञोंका फल प्राप्त होता है और वह गौरीलोकमें प्रशंसित होता है।

कार्तिक मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको देवी पार्वतीका 'परोद्वता' नामसे पूजन करके पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें सप्तलोक सदाचारी ब्राह्मणोंको भोजन कराये और माल्य, बस्त्र तथा अलंकरणसे उन शिवभक्त ब्राह्मणोंका पूजन करे। कुमारियोंको भी भोजन कराये।

इस प्रकार वर्षभर ब्रत करनेके पश्चात् उद्यापन करना चाहिये। यथाशक्ति सोनेकी उमा-महेश्वरकी प्रतिमा बनाकर उन्हें एक सुन्दर, अलंकृत वितानयुक्त मण्डपमें स्थापित कर सुगच्छित द्रव्य, पत्र, पुण्य, फल, धूत-पक्ष-नैवेद्य, दीपमाला, शर्करा, नारियल, दाढ़िम, बीजपूरक, जीरक, लवण, कुसुंभ, कुंकुम तथा मोटकयुक्त ताम्रपात्रसे देवदेवेशकी विधिवत् पूजाकर अन्तमें क्षमा-प्रार्थना एवं शंख आदि वाज्ञोंकी अवनि करनी चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस विधिसे देवी पार्वतीका पूजन करनेपर जो फल प्राप्त होता है, उसका फल वर्णन करनेमें भी समर्थ नहीं हूँ। वह पूर्वोक्त सभी फलोंको प्राप्त करता है, सभी देवताओंके द्वाय पूजित होता है तथा सौ करोड़ कल्पोंतक सभी कामनाओंका उपभोग करता हुआ अन्तमें शिव-सायुज्य प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं। यह ब्रत फहले रात्रके द्वारा किया गया था, इसलिये यह रम्भाब्रत कहलाता है।

(अध्याय २४)



सौभाग्यशायन-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले सौभाग्यशायन-ब्रतका वर्णन करता हूँ। जब प्रलयके पूर्वकालमें—‘भूर्भुवः स्वः’ आदि सभी लोक दण्ड हो गये, तब सभी प्राणियोंका सौभाग्य एकत्र होकर वैकुण्ठमें भगवान् विष्णुके वक्षः स्थलमें स्थित हो गया। पुनः जब सृष्टि हुई, तब आधा सौभाग्य ब्रह्माजीके पुत्र दक्ष प्रजापतिने पान कर लिया, जिससे उनका रूप-लावण्य, बल और तेज सबसे अधिक हो गया। शेष आधे सौभाग्यसे इक्षु, स्तवराज, निष्पाव (सेम), गरजिधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर तथा उसका विकार, कुसुंभ-पुष्प (केसर), कुकुम तथा लवण्य—ये आठ पदार्थ उत्पन्न हुए। इनका नाम सौभाग्याष्टक है।

दक्ष प्रजापतिने पूर्वकालमें जिस सौभाग्यका पान किया, उससे सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। सभी लोकोंमें उस कन्याका सौन्दर्य अधिक था, इसीसे उसका नाम सती एवं रूपमें अतिशय लालित्य होनेके कारण ललिता पड़ा। त्रैलोक्य-सुन्दरी इस कन्याका विवाह भगवान् शंकरके साथ हुआ। जगन्माता ललितादेवीकी आराधनासे भुक्ति, मुक्ति और स्वर्गका गम्य आदि सब प्राप्त होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पृथ्वी—भगवन् ! जगद्गात्री उन भगवतीकी आराधनाका क्या विधान है ? उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! चैत्र मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको ललितादेवीका भगवान् शंकरके साथ विवाह हुआ। इस दिन पूर्वाह्नमें तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। पञ्चग्रन्थ तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रदेवरकी प्रतिनामोंको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोद्धारण उन दोनोंकी पूजा करे। इसके बाद इस प्रकार अङ्ग-पूजा करे—

‘३० पाटलायै नमः, ३० शास्वते नमः’ ऐसा कहकर पार्वती और शास्वते चरणोंकी, ‘त्रियुगायै नमः, ३० शिवाय नमः’ से दोनोंके गुल्फोंकी; ‘विजयायै नमः, ३० भद्रेश्वराय नमः’ से दोनोंके जानुओंकी, ‘३० इंशान्यै नमः, ३०

हरिकेशाय नमः’ से कटि-प्रदेशकी, ‘३० कोटब्यै नमः, ३० शूलिने नमः’ से कुशियोंकी, ‘३० मङ्गलायै नमः, ३० शर्वाय नमः’ से उदरकी, ‘३० उमायै नमः, ३० रुद्राय नमः’ से कुच्छियकी, ‘३० अनन्तायै नमः, ३० त्रिपुरायाय नमः’ से दोनोंके हाथोंकी पूजा करे। ‘३० भवान्यै नमः, ३० भवाय नमः’ से दोनोंके कण्ठकी, ‘३० गौर्यै नमः, ३० हुराय नमः’ से दोनोंके मुखकी तथा ‘३० ललितायै नमः, ३० सर्वाल्पने नमः’ से दोनोंके मस्तककी पूजा करे।

इस प्रकार विधिवत् पूजनकर शिव-पार्वतीके सम्मुख सौभाग्याष्टक स्थापित कर ‘उमामहेश्वरी प्रीयताम्’ कहकर उनकी प्रतिके लिये निवेदन करे। उस रात्रिमें गोशंगोदकका प्राशनकर भूमिपर ही शयन करना चाहिये। प्रातः द्विद-दम्पतिकी वस्त्र-माला तथा अलंकारोंसे पूजाकर सुवर्णनिर्मित गौरी तथा भगवान् शंकरकी प्रतिमाके साथ वह सौभाग्याष्टक ‘ललिता प्रीयताम्’ ऐसा कहकर ब्राह्मणोंको दे दे।

इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासकी तृतीयाको पूजा करनी चाहिये। चैत्र आदि वारहों मासोंमें क्रमशः गौके सींगका जल, गोमय, मन्दार-पुष्प, विल्वपत्र, दही, कुशोदक, दूध, धूत, गोमूत्र, कृष्ण तिल और पञ्चग्रन्थका प्राशन करना चाहिये। ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती तथा उमा—इन बारह नामोंका क्रमशः बारह महीनोंमें दानके समय ‘प्रीयताम्’ कहकर उत्तरण करे। मलिलका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल, मालती, कुदमल, करबीर, बाण (कच्चवार या कशा), खिला हुआ पुष्प, कुकुम और सिंदुवार—ये बारह महीनोंकी पूजाके लिये क्रमशः पुष्प कहे गये हैं। जपाकुन्सुम, कुसुंभ, मालती तथा कुन्दके पुष्प प्रशस्त माने गये हैं। करबीरका पुष्प भगवतीको सदा ही प्रिय है।

इस प्रकार एक वर्षतक ब्रत करके सभी सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शाय्यापर सुवर्णकी उमा-महेश्वरकी तथा सुवर्णनिर्मित गौ तथा वृषभकी प्रतिमा स्थापित कर उनकी

पूजाकर ब्राह्मणको दे ।

इस ब्रतके करनेसे सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और निष्कामभावसे करनेपर नित्यपद प्राप्त होता है । रुग्न, पुरुष अथवा कुमारी जो कोई भी इस सौभाग्यशयन नामक ब्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे देवीके अनुग्रहसे अपनी कामनाओंको

प्राप्त कर लेते हैं । जो इस ब्रतका माहात्म्य श्रवण करते हैं, वे दिव्य शरीर प्राप्त कर स्वर्गमें जाते हैं । इस ब्रतको कामदेव, चन्द्रमा, कुबेर तथा और भी अन्य देवताओंने किया है । अतः सबको यह ब्रत करना चाहिये ।

(अध्याय २५)

अनन्त-तृतीया तथा रसकल्प्याणिनी तृतीया-ब्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप सौभाग्य एवं आरोग्य-प्रदायक, शत्रुविनाशक तथा भुक्ति-मुक्ति-प्रदायक कोई ब्रत बतालाये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! बहुत पहलेकी बात है, असुर-संहारक भगवान् इंकरने अनेक कथाओंके प्रसंगमें पार्वतीजीसे भगवती ललिताकी आराधनाकी जो विधि ब्रतलायी थी, उसी ब्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ, यह ब्रत सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला तथा नारियोंके लिये अत्यन्त उत्तम है, इसे आप सावधान होकर सुनें—

वैशाख, भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको श्रेत सरसोंका उष्टुप्तन लगाकर राजा करे । गोरोचन, मोथा, गोमूत्र, दही, गोमय और चन्दन—इन सबको मिलाकर मस्तकमें तिलक करे, क्योंकि यह तिलक सौभाग्य तथा आरोग्यको देनेवाला है तथा भगवती ललिताको बहुत प्रिय है । प्रत्येक मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको सौभाग्यवती रुग्न रक्तवर्ज, विधवा गेह आदिसे रौंग वस्त्र और कुमारी शुक्र वस्त्र धारणकर पूजा करे । भगवती ललिताको पञ्चगव्य अथवा केवल दुधसे रूग्न कराकर मधु और चन्दन-पुष्पमिश्रित जलसे रूग्न कराना चाहिये । रूग्नके अनन्तर श्रेत पुण्य, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्रेत जीरा, नमक, गुड़, दूध तथा धीका नैवेद्य अर्पणकर श्रेत अक्षत तथा तिलसे ललितादेवीकी अर्चना करे । प्रत्येक शुक्र पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी अर्चना करे ।

प्रत्येक शुक्र पक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्वन्त पूजन करनेका विधान इस प्रकार है—‘वरदायै नमः’ कहकर दोनों चरणोंकी, ‘श्रियै नमः’ कहकर दोनों टखनोंकी, ‘अशोकायै नमः’ कहकर दोनों पिण्डलियोंकी, ‘भवान्यै नमः’ कहकर घटनोंकी, ‘मङ्गलकारिण्यै नमः’ कहकर ऊर्जोंकी, ‘कामदेव्यै नमः’

कहकर कटिकी, ‘पशोद्धवायै नमः’ कहकर पेटकी, ‘कापश्चिवै नमः’ कहकर वक्षःस्थलकी, ‘सौभाग्यवासिन्यै नमः’ कहकर हाथोंकी, ‘शशिमुखश्रियै नमः’ कहकर बाहुओंकी, ‘कन्दर्पवासिन्यै नमः’ कहकर मुखकी, ‘पार्वत्यै नमः’ कहकर मुसकानकी, ‘गौर्यै नमः’ कहकर नासिकाकी, ‘सुनेत्रायै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘तुष्ण्यै नमः’ कहकर ललाटकी, ‘कात्यायन्यै नमः’ कहकर उनके मस्तककी पूजा करे । तदनन्तर ‘गौर्यै नमः’, ‘सुष्ण्यै नमः’, ‘कान्त्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, ‘रथायै नमः’, ‘ललितायै नमः’ तथा ‘वासुदेव्यै नमः’ कहकर देवीके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करे । इसी प्रकार विधिपूर्वक पूजाकर मूर्तिके आगे कुंकुमसे कर्णिकासहित द्वादश-दलयुक कमल बनाये । उसके पूर्वभागमें गौरी, अग्रिकोणमें अर्पणी, दक्षिणमें भवानी, नैऋत्यमें रुद्राणी, पश्चिममें सौभ्या, वायव्यमें मदनवासिनी, उत्तरमें पाटला तथा ईशानकोणमें उमाकी स्थापना करे । मध्यमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्णि, मङ्गल, कुमुदा, सती तथा रुद्राणीकी स्थापना कर कर्णिकाके ऊपर भगवती ललिताकी स्थापना करे । तत्पश्चात् गौत और मङ्गलिक वाद्योंका आयोजन कर श्रेत पुण्य एवं अक्षतसे अर्चना कर उन्हें नमस्कार करे । फिर लाल वस्त्र, रक्त पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गुष्ठासे मुवासिनी खिलोंका पूजन करे तथा उनके सिर (माँग) में सिंदूर और केसर लगाये, क्योंकि सिंदूर और केसर सतीदेवीको सदा अभीष्ट हैं ।

भाद्रपद मासमें उष्टुप्त (नीलकमल) से, अधिनमें बन्धुजीव (गुलदुपहरिया) से, कर्तिकमें कमलसे, मार्गशीर्षमें कुन्द-पुण्यसे, पौषमें कुंकुमसे, माघमें सिंदुवार (निर्मुडी) से, फलत्युनमें मालतीसे, चैत्रमें मलिन्दका तथा अशोकसे, वैशाखमें गन्धपाटल (गुलब) से, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारसे, आषाढ़में चम्पक और कमलसे तथा श्रावणमें कदम्ब

और मालतीके पुष्पोंसे उमादेवीकी पूजा करनी चाहिये। भाद्रपदसे लेकर श्रावण आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूर, गोमय, दूध, दही, धी, कुशोदक, वित्तवप्त, मदार-पुष्य, गोभृष्णोदक, पञ्चगव्य और वेलकव्र नैवेद्य अर्पण करे।

प्रत्येक पक्षकी तृतीयामें ब्राह्मण-दम्पतियों निमन्त्रित कर उनमें शिव-पार्वतीकी भावना कर भोजन कराये तथा वस्त्र, माला, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। पुरुषको दो पीताम्बर तथा स्त्रीको पीली साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी स्त्रीको सौभाग्याष्टक-पदार्थ तथा ब्राह्मणको फल और सुवर्णनिर्मित कमल देवर प्रार्थना करे—

यथा न देवि देवेशस्त्वा परित्यज्य गच्छति ।

तथा मां सम्परित्यज्य पतिनन्वित गच्छतु ॥

(उत्तरपर्व २६। ३०)

‘देवि ! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर कहीं न जायें।’

पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, लूलिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वती—इन नामोंका उत्तारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों।

ब्रतकी समाप्तिमें सुवर्णनिर्मित कमलसहित शश्या-दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। प्रत्येक मासमें ब्राह्मण-दम्पतियोंकी पूजा विधिपूर्वक करे। अपने पूज्य गुरुदेवकी भी पूजा करे।

जो इस अनन्त तृतीया-ब्रतका विधिपूर्वक पालन करता है, वह सौ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास कर पुष्य और मन्त्र आदिके द्वारा इस ब्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी यही फल प्राप्त होता है। सधवा रूपी, विधवा अथवा कुमारी जो कोई भी इस ब्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे उस फलको प्राप्त कर लेती है। जो इस ब्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा सुनता है, वह भी उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब एक ब्रत और बता रहा हूँ, उसका नाम है—रसकल्प्याणिनी तृतीया।

यह पापोंका नाश करनेवाला है। यह ब्रत माघ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको किया जाता है। उस दिन प्रातःकाल गो-दुध और तिल-मिश्रित जलसे स्नान करे। फिर देवीकी मूर्तिको मधु और गन्धेके रससे स्नान कराये तथा जाती-पुष्पों एवं कुकुमसे अर्चना करे। अनन्तर पहले दक्षिणाङ्की पूजा करे तब बामाङ्की। अङ्ग-पूजा इस प्रकार करे—‘ललितायै नमः’ कहकर दोनों चरणों तथा दोनों टखनोंकी, ‘सत्यै नमः’ कहकर पिंडलियों और घुटनोंकी, ‘विद्यै नमः’ कहकर ऊँठोंकी, ‘मदालसायै नमः’ कहकर कटि-प्रदेशकी, ‘मदनायै नमः’ कहकर उदरकी, ‘मदनवासिन्यै नमः’ कहकर दोनों स्तनोंकी, ‘कुमुदायै नमः’ कहकर गरदनकी, ‘माधव्यै नमः’ कहकर भुजाओंकी तथा भुजाके अध्यापागकी, ‘कमलायै नमः’ कहकर उपस्थकी, ‘रुद्रायै नमः’ कहकर भू और ललाटकी, ‘शंकरायै नमः’ कहकर पलकोंकी, ‘विश्वावासिन्यै नमः’ कहकर मुकुटकी, ‘कान्त्यै नमः’ कहकर केशपाशकी, ‘चक्रावत्यारिण्यै नमः’ कहकर नेत्रोंकी, ‘पुष्ट्रै नमः’ कहकर मुखकी, ‘उद्धरण्ठिन्यै नमः’ कहकर कण्ठकी ‘अनन्तायै नमः’ कहकर दोनों कंधोंकी, ‘रघ्यायै नमः’ कहकर वामवालुकी, ‘विशोकायै नमः’ कहकर दक्षिण बाहुकी, ‘मन्त्रादित्यै नमः’ कहकर हृदयकी पूजा करे, फिर ‘पाटलायै नमः’ कहकर उहें बार-बार नमस्कार करे।

इस प्रकार प्रार्थना कर ब्राह्मण-दम्पतियोंकी गन्ध-माल्यादिसे पूजा कर स्वर्णकमलसहित जलपूर्ण घट प्रदान करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें पूजन करे और माघ आदि महीनोंमें क्रमशः लवण, गुड़, तेल, राई, मधु, पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), जीरा, दूध, दही, धी, शाक, धनिया और शर्कराका त्वाग करे। पूर्वकथित पदार्थोंको उन-उन मासोंमें नहीं खाना चाहिये। प्रत्येक मासमें ब्रतकी समाप्तिपर करवेके ऊपर सफेद चावल, गोद्धिया, मधु, पूरी, घेवर (सेवई), मण्डक (पिण्डक), दूध, शाक, दही, छः प्रकारका अन्न, भिंडी तथा शाकवर्तिक रसाकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। माघ मासमें पूजाके अन्तमें ‘कुमुदा प्रीवताम्’ यह कहना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन आदि महीनोंमें ‘माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, शची, सती, मङ्गल तथा रतिलालसा’ का नाम लेकर ‘प्रीयताम्’ ऐसा

कहे। सभी मासोंके ब्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन करे और उपवास करे। तदनन्तर माघ मास आनेपर करकपात्रके ऊपर पञ्चरत्नसे युक्त अङ्गुष्ठमात्रकी पार्वतीकी स्वर्णनिर्मित मूर्तिकी स्थापना करे। वस्त्र, आधूषण और अलंकारसे उसे सुशोभित कर एक बैल और एक गाय 'भवानी प्रीयताम्' यह कहकर ब्राह्मणको प्रदान करे। इस विधिके अनुसार ब्रत करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे उसी क्षण मुक्त हो जाता है और हजार वर्षोंतक दुःखी

नहीं होता। इस ब्रतके करनेसे हजारों अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुमारी, सध्या, विश्वा या दुर्भगा जो भी हो, वह इस ब्रतके करनेपर गौरीलोकमें पूजित होती है। इस विधानको सुनने या इस ब्रतको करनेके लिये औरोंको उपदेश देनेसे भी सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है और वह पार्वतीके लोकमें निवास करता है।

(अध्याय २६)

आद्रानन्दकरी तृतीयाब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध, आनन्द प्रदान करनेवाले, पापोंका नाश करनेवाले आद्रानन्दकरी तृतीयाब्रतका वर्णन करता हूँ। जब किसी भी महीनेमें शुक्र पक्षकी तृतीयाको पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ अथवा रोहिणी या मृगशिरा नक्षत्र हो तो उस दिन यह ब्रत करना चाहिये। उस दिन कुश और गन्धोदक्षे खानकर शेत चन्दन, शेत माला और शेत वस्त्र धारणकर उत्तम सिंहासनपर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। सुगन्धित शेत पुण्य, चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। 'वासुदेव्य नमः-शंकराय नमः' से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंकी, 'शोकविनाशिन्यै नमः-आनन्दाय नमः' से शिल्पियोंकी, 'रघायै नमः-शिवाय नमः' से ऊर्जी, 'आदित्यै नमः-शूलपाणयै नमः' से कटिकी, 'माधव्यै नमः-भवाय नमः' से नाभिकी, 'आनन्दकरिण्यै नमः-इन्द्रायरिणे नमः' से दोनों सत्नोंकी, 'उत्कण्ठिण्यै नमः-नीलकण्ठाय नमः' से कण्ठकी, 'उत्पलधारिण्यै नमः-रुद्राय नमः' से दोनों हाथोंकी, 'परिरिष्टिण्यै नमः-नृत्यशीलाय नमः' से दोनों भुजाओंकी, 'विलासिन्यै नमः-वृषेशाय नमः' से मुखकी, 'सप्तरशीलायै नमः-विश्ववक्ताय नमः' से मुक्ताकानकी, 'मदनवासिन्यै नमः-विश्वधान्ने नमः' से नेत्रोंकी, 'रतिशियायै नमः-ताप्तवेशाय नमः' से भ्रुओंकी, 'इन्द्राण्यै नमः-हव्यवाहाय नमः' से ललाटकी तथा 'स्वाहायै नमः-पञ्चशराय नमः' कहकर मुकुटकी पूजा करे। तदनन्तर नीचे लिखे मन्त्रसे पार्वती-परमेश्वरीकी प्रार्थना करे—

विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ ।

प्रसन्नवदनौ बन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

(उत्तरपर्व २७। १३)

'विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक है, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरी मैं बन्दना करता हूँ।'

इस प्रकार पूजनकर मूर्तियोंके आगे अनेक प्रकारके कमल, शङ्ख, स्वस्तिक, चक्र आदिका चित्रण करे। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, धी, कुशोदक, गोशृंगोदक, बिल्वपत्र, घड़ेका जल, खसकद जल, यवचूर्णवद जल तथा तिलोदकका क्रमशः मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें प्राशन करे, अनन्तर शयन करे। यह प्राशन प्रत्येक पक्षकी द्वितीयाको करना चाहिये। भगवान् उमा-महेश्वरकी पूजाके लिये सर्वत्र शेत पुण्यको श्रेष्ठ माना गया है। दानके समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

गौरी मे प्रीयतां नित्यमधनाशाय मङ्गला ।

सौभाग्याशास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये ॥

(उत्तरपर्व २७। १९)

'गौरी नित्य मुङ्गपर प्रसन्न रहे, मङ्गल मेरे पापोंका विनाश करे। ललिता मुझे सौभाग्य प्रदान करे और भवानी मुझे सब सिद्धियाँ प्रदान करे।'

वृषके अन्तमें लवण तथा गुडसे परिपूर्ण घट, नेत्रपट, चन्दन, दो शेत वस्त्र, ईश और विभिन्न फलोंके साथ सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा सपलीक ब्राह्मणको दे और 'गौरी मे प्रीयताम्' ऐसा कहे। शाय्यादान भी करे।

इस आद्रानन्दकरी तृतीयाका ब्रत करनेसे पुण्य शिवलोकमें निवास करता है और इस लोकमें भी धन, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य और सुखको प्राप्त करता है। इस ब्रतके करनेवालोंको कभी शोक नहीं होता। दोनों पक्षोंमें विधिवत् पूजनसहित इस ब्रतको करना चाहिये। ऐसा करनेसे रुद्राणीके

लोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इस विधानको सुनता और सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें अपने पतिके साथ गौरीके सुनाता है, वह गृहव्योंसे पूजित होता हुआ इन्द्रलोकमें निवास करता है। जो कोई रुपी इस ब्रतको करती है, वह संसारके लोकमें निवास करती है।

(अध्याय २७)

चैत्र, भाद्रपद और माघ शुक्र तृतीया-ब्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप चैत्र, भाद्रपद तथा माघके शुक्र तृतीया-ब्रतोंके विषयमें सुनें। इन व्रतोंसे रूप, सौभाग्य तथा उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। इस विषयमें आप एक वृत्तान्त सुनें—

भगवती पार्वतीकी जया और विजया नामकी दो सखियाँ थीं। किसी समय मूनि-कन्याओंने उन दोनोंसे पूजा कि आप दोनों तो भगवती पार्वतीके साथ सदा निवास करती हैं। आप सब यह बताये कि किस दिन, किन उपचारों और मन्त्रोंसे पूजा करनेसे भगवती पार्वती प्रसन्न होती है।

इसपर जया बोली—मैं सभी कामनाओंको सिद्ध करने-वाले ब्रतका वर्णन करती हूँ। चैत्र मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको प्रातःकाल उठकर दन्तधावन आदि क्रियाओंसे निवृत्त होकर इस ब्रतके नियमको ग्रहण करे। कुंकुम, सिंदूर, रक्त वस्त्र, ताम्बूल आदि सौभाग्यके चिह्नोंको धारणकर भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करे। प्रथम अतिशय सुन्दर एक मण्डप बनवाकर उसके मध्यमें एक मनोहर मणिजटिट वेदीकी रचना करे। एक हस्त प्रमाणका कुण्ड बनाये, तदनन्तर खान कर उत्तम वस्त्र धारणकर देवताओं और पितरोंकी पूजा कर देवीके मण्डपमें जाय और पार्वती, ललिता, गौरी, गान्धारी, शङ्करी, शिवा, उमा और सती—इन आठ नामोंसे भगवतीकी पूजा करे। कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन आदिका लेपन करे। अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प चढ़ाकर धूप, दीप आदि उपचार अर्पण करे। लड्ढ, अनेक प्रकारके अपूप तथा विभिन्न प्रकारके धूतपक नैवेद्य, जीरक, कुंकुम, नमक, ईस और ईशका रस, हल्दी, नारिकेल, आमलक, अनार, कूम्बाण्ड, कर्कटी, नारंगी, कटहल, बिजौरा नींबू आदि छहुफल भगवतीको निवेदित करे। गृहस्तीके उपकरण—ओखली, सिल, सूप, टोकरी आदि तथा शरीरको अलंकृत करनेकी सामग्रियाँ भी निवेदित करे। शङ्ख, तूर्य, मृदङ्ग आदिके शब्द और उत्तम गीतोंके साथ महोत्सव करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक

अपनी शक्तिके अनुसार पार्वतीजीकी पूजा करके कुमारी कन्याएँ सौभाग्यकी अधिलालासेप्रदोषके समय नये कलशोंमें जल लाकर उससे खान करें। पुनः पूर्वोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करे। प्रत्येक प्रहरमें पूजा और धूतसमन्वित तिलोंसे हवन करे। भगवतीके सम्मुख पदासन लगाकर गत्रि-जागरण करे। नृत्यसे भगवान् शंकर, गीतसे भगवती पार्वती और भक्तिसे सभी देवता प्रसन्न होते हैं। ताम्बूल, कुंकुम और उत्तम-उत्तम पुष्प सुवासिनी रुपीको अर्पित करे।

प्रातः-खानके अनन्तर पार्वतीजीकी पूजाकर गुड़, लवण, कुंकुम, कपूर, अगर, चन्दन आदि द्रव्योंसे यथाशक्ति तुलादान करे और देवीसे क्षमा-प्रार्थना करे। आह्वाणी तथा सुवासिनी खिलोंको भोजन कराये। नैवेद्यका वितरण करे। इससे उसका कर्म सफल हो जाता है।

भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको भी चैत्र-तृतीयाकी भाँति ब्रत एवं पूजन करना चाहिये। इसमें सप्तधान्योंसे एक सूपमें उमाकी मूर्ति बनाकर पूजा करनी चाहिये तथा गोमूत्र-प्राशन करना चाहिये। यह ब्रत उत्तम सौन्दर्य-प्रदायक है।

इसी प्रकार माघ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको चैत्र-तृतीयाकी भाँति पूर्वोक्त क्रियाओंको करनेके पश्चात् कुन्द-पुष्पोंसे तुलादान करे तथा चतुर्थीको गणेशजीका भी पूजन करे।

इस विधिसे जो रुपी ब्रत और तुलादान करती है, वह अपने पतिके साथ इन्द्रलोकमें निवास कर ब्रह्मलोकमें और वहाँसे शिवलोकमें जाती है। इस लोकमें भी वह रूप, सौभाग्य, संतान, धन आदि प्राप्त करती है। उसके वंशमें दुर्भग कन्या और दुर्विनीत पुत्र कभी भी उत्पन्न नहीं होता। धर्ममें दारिद्र्य, रोग, शोक आदि नहीं होते। जो कन्या इस ब्रतको करती है तथा ब्राह्मणकी पूजा करती है, वह अभीष्ट वर प्राप्त कर संसारका सुख भोगती है। (अध्याय २८)

आनन्दर्थ-तृतीयाव्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपने शुक्र पक्षके अनेक तृतीया-ब्रतोंको बतलाया। अब आप आनन्दर्थ-ब्रतका स्वरूप बतलाये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! ब्रह्मा, विष्णु और महेशने देवताओंको बतलाया है कि यह आनन्दर्थब्रत अत्यन्त गुह्य है, फिर भी मैं आपसे इस ब्रतका वर्णन करता हूँ। इस ब्रतका आरम्भ मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी तृतीयासे करना चाहिये। द्वितीयाके दिन रातमें ब्रतकर तृतीयाको उपवास करे। गम्य, पुण्य आदिसे उमादेवीका पूजनकर शर्करा और पूरीका नैवेद्य समर्पित करे। स्वयं दहीका प्राशन कर गत्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इस विधिसे जो रुची ब्रत करती है, वह सम्पूर्ण अक्षमेध-यज्ञके फलको प्राप्त करती है।

मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयाको भगवती काल्यायनीके पूजनमें नारिकेल समर्पित कर दुष्टका प्राशन करे। काम-क्रोधका त्यागकर गत्रिमें शयन करे एवं प्रातः उठकर ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।

पौष मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको उपवासकर गौरीका पूजन करे, लकूड़ा नैवेद्य निवेदित करे और घृतका प्राशनकर शयन करे। प्रातः उठकर सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे महान् यज्ञका फल मिलता है। इसी प्रकार पौषकी कृष्ण-तृतीयाको भगवती पार्वतीकी पूजा करे और नैवेद्य अर्पण करे, रातमें पूरी और गोमयका प्राशन करना चाहिये। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अक्षमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

माघ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको भगवती पार्वतीका 'सुरनायिका' नामसे पूजनकर खाँड़ और विल्वका नैवेद्य समर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर जितेन्द्रिय रहे, भूमिपर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिको भोजन कराये। इससे सुवर्णदानका फल मिलता है। इसी प्रकार माघ-कृष्ण-तृतीयाको पवित्र होकर 'आर्या' नामसे पार्वतीका पूजनकर भक्ष्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित कर मधुका प्राशन करे। देवीके आगे शयन करे, दूसरे दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिका

पूजन करे। इससे वाजपेय-यज्ञका फल मिलता है।

फल्गुन मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको पवित्र होकर उपवास करे और देवी पार्वतीका 'भद्रा' नामसे पूजनकर कासारका नैवेद्य निवेदित करे। शर्कराका प्राशन कर गत्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे सौक्रामणि-यागका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्षकी तृतीयामें 'विशालाक्षी' नामसे भगवती पार्वतीका पूजन कर पूरीका भोग लगाये। जल तथा चावल निवेदित कर भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

चैत्र मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय और पवित्र होकर भगवती पार्वतीका 'श्री' नामसे पूजन करे। चटक (दहीबड़ा) का नैवेद्य निवेदित करे, विल्वपत्रका प्राशन करे एवं देवीका ध्यान करता हुआ विश्राम करे। प्रातःकाल भक्तिपूर्वक ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे, इससे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कृष्ण-तृतीयाको देवीकी 'काली' नामसे पूजा करे। अपूपका नैवेद्य निवेदित करे, पीठीका प्राशन करे और गत्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

वैशाख मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको जितेन्द्रिय होकर उपवास करे। भगवती पार्वतीकी 'चण्डिका' नामसे पूजा कर मधुक निवेदित करे। श्रीखण्ड-चन्दनसे लिप्त कर देवीके सम्मुख विश्राम करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे चान्द्रायणब्रतका फल मिलता है। ऐसे ही कृष्ण पक्षकी तृतीयाको विष्वस्तर होकर उपवास करे। देवीकी 'कालसूत्रि' नामसे गम्य, पुण्य, धूप, दीप आदिसे पूजा करे। घी तथा जौके आटेसे बना नैवेद्य निवेदित करे। तिलका प्राशन कर गत्रिमें शयन करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे अतिकृच्छ्रब्रतका फल प्राप्त होता है।

ज्येष्ठ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको उपवासकर पार्वतीकी पूजा 'शुभा' नामसे करे तथा आग्र-फलका नैवेद्य निवेदित करे एवं आँवलेका प्राशन कर गौरीका ध्यान करते हुए सुखपूर्वक सोये। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन

कराये। इससे तीर्थवात्राका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार ज्येष्ठ कृष्ण तृतीयाको सुवासिनी स्त्री उपवास करे। 'स्कन्दमाता' की पूजा कर भोग लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन कर देवीके सामने शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है।

आषाढ़ मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको सतीका पूजन कर दहीका नैवेद्य समर्पित करे। गोभृङ्ग-जलका प्राशन कर शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे, इससे कन्यादानका फल प्राप्त होता है। पुनः आषाढ़ मासके कृष्ण पक्षकी तृतीयामें कूच्छापट्टीका पूजन कर गुड़ और धूतके साथ सतृका नैवेद्य अर्पित करे। कुशोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे गोसहस्र-दानका फल प्राप्त होता है।

श्रावण मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको उपवासकर चन्द्र-घट्टाका पूजन करे। कुरुपाप (कुलथी) को नैवेद्य-रूपमें समर्पित कर पुष्पोदकका प्राशन कर शयन करे, प्रातःकाल ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। ऐसा करनेसे अभ्यदानका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार श्रावणकी कृष्ण-तृतीयाको 'रुद्राणी' नामसे पार्वतीका पूजन कर सिद्ध पिण्ड आदि नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। तिलकुट्टका प्राशन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे इष्टापूर्त-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी तृतीयामें 'हिमाद्रिजा' नामसे पार्वतीका पूजन कर गोधूमका नैवेद्य समर्पित करे। श्वेत चन्दन तथा गन्धोदकका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे, इससे सैकड़ों उद्यान लगानेका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद कृष्ण-तृतीयाको दुर्गाकी पूजा करे। गुड़युक्त पिण्ड और फलका नैवेद्य समर्पित करे, गोभृतका प्राशन कर शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करे। इससे सदावर्तका फल प्राप्त होता है।

आष्टिनमें उपवासकर 'नारायणी' नामसे पार्वतीका पूजनकर पक्षान्त्रका नैवेद्य समर्पित करे। रक्त चन्दनका प्राशन कर रात्रिमें शयन करे। प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इससे अग्रिहोत्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। आष्टिन कृष्ण-तृतीयाको 'स्वस्ति' नामसे पार्वतीकी पूजा करे। गुड़के

साथ शाल्योदन समर्पित करे। कुसुंभके बीबोंका प्राशन कर रात्रिमें विश्राम करे। प्रातःकाल सपलीक ब्राह्मणको भोजन कराये। इससे गवाहिक (अन्न, भास आदिसे दिनभर गो-सेवा करने) का फल प्राप्त होता है।

कार्तिक मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको 'साहा' नामसे पार्वतीका पूजनकर धूत, खाँड़ और खीरका नैवेद्य समर्पित करे। कुकुम, केसरका प्राशन कर शयन करे और प्रातः ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करे। इससे एकभुक्त-ब्रतका फल प्राप्त होता है। कार्तिककी कृष्ण-तृतीयाको 'स्वधा' नामसे पार्वतीका पूजनकर मैंगकी सिंचडीका नैवेद्य समर्पित करे और शीका प्राशनकर रातमें शयन करे। प्रातः सपलीक ब्राह्मणका पूजन करे। इससे नक्तब्रतका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार वर्षभर प्रत्येक मास एवं पक्षकी तृतीयाको ब्रतादि करनेसे ब्रती सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त और पवित्र हो जाता है। ब्रत पूर्ण कर उद्यापन इस प्रकार करना चाहिये—

मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको उपवासकर शास्त्र-गीतिसे एक मण्डप बनाकर सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनवाये। उन प्रतिमाओंके नेत्रोंमें मोती और नीलम लगाये। ओष्ठोंमें मैंगा और कानोंमें रत्नकुण्डल पहनाये। भगवान् शंकरको यज्ञोपवीत और पार्वतीजीको हारसे अलंकृत कर क्रमशः श्वेत और रक्त वस्त्र पहनाये। चतुःसम (एक गन्ध-द्रव्य जो कस्तुरी, चन्दन, कुकुम और कपूरके समान-भागके योगसे बनता है) से सुशोभित करे। तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप आदि उपचारोंसे मण्डलमें पूजनकर अगस्त्यका हवन करे। इसमें अपराजिता भगवतीकी अर्चना करे। मृतिकाका प्राशन कर रातमें जागरण करे। गीत, नृत्य आदि उत्सव करे। सूर्योदयपर्यन्त जप करे। प्रातः उत्तम मण्डल बनाकर मण्डलमें शव्यापर शिव-पार्वतीकी प्रतिमा स्थापित करे। वितान, ध्वज, माला, किंकिणी, दर्पण आदिसे मण्डपको सुशोभित करे, अनन्तर शिव-पार्वतीकी पूजा करे। सपलीक ब्राह्मणको भोजनादिसे संतुष्ट करे। पान निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'हे भगवान् शिव-पार्वती! आप दोनों मुङ्गपर प्रसन्न होवें।' इसके बाद उच्चारण स्थानको पवित्र कर ले। ततपक्षा सुवर्णसे मणित सींग तथा चाँदीसे मणित सुखाली, कांस्य-दोहनपात्रसे युक्त, लाल वस्त्रसे आच्छादित, घटा आदि

आधरणोंसे युक्त पर्यासिनी लाल रंगकी गौकी प्रदक्षिणा कर दक्षिणाके साथ जूता, खड़ाऊँ, छाता एवं अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ गुरुको समर्पित करे । पुनः शिव-पार्वतीको प्रणाम कर गुहके चरणोंमें भी प्रणाम कर क्षमा मार्गि । इस प्रकार इस आनन्द-ब्रतकी समाप्ति करे । जो रुची या पुरुष इस ब्रतको करता है, वह दिव्य विमानमें बैठकर गम्भर्वलोक, यक्षलोक, देवलोक तथा विष्णुलोकमें जाता है । वहाँ बहुत समयतक उत्तम भोगोंको भोगकर शिवलोकको प्राप्त करता है और फिर

भूमिपर जन्म लेकर प्रतापी चक्रवर्ती राजा होता है । ब्रत करनेवाली उसकी रुची उसकी पटरानी होती है । जिस प्रकार शिवजीके साथ पार्वती, इन्द्रके साथ शशी, वसिष्ठके साथ अरुचती, विष्णुके साथ लक्ष्मी, ब्रह्माके साथ सावित्री सदा विराजमान रहती है, उसी प्रकार वह नारी भी जन्म-अन्नमें अपने पतिके साथ सुख भोगती है । इस ब्रतको करनेवाली नारी पतिसे विषुक नहीं होती तथा पुत्र, पौत्र आदि सभी वस्तुओंको प्राप्त करती है । (अध्याय २९)

अक्षय-तृतीयाब्रतके प्रसंगमें धर्म वर्णिक्का चरित्र

भगवान् श्रीकृष्ण खोले—महाराज ! अब आप वैशाख मासके शुक्र पक्षकी अक्षय-तृतीयाकी कथा सुनें । इस दिन रान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय हो जाते हैं^१ । सत्ययुगका आरम्भ भी इसी तिथिको हुआ था, इसलिये इसे कृतयुगादि तृतीया भी कहते हैं । यह सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली एवं सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है । इस सम्बन्धमें एक आस्थ्यान प्रसिद्ध है, आप उसे सुनें—

शकल नगरमें प्रिय और सत्यवादी, देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धर्म नामक एक धर्मार्था वर्णिक् रहता था । उसने एक दिन कथाप्रसंगमें सुना कि यदि वैशाख शुक्रकी तृतीया रोहिणी नक्षत्र एवं बुधवारसे युक्त हो तो उस दिनका दिवा हुआ दान अक्षय हो जाता है । यह सुनकर उसने अक्षय तृतीयाके दिन गङ्गामें अपने पितरोंका तर्पण किया और घर आकर जल और अन्नसे पूर्ण घट, सतृ, दही, चना, गेहूँ, गुड़, ईस, खांड और सुवर्ण श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दान दिया । कुरुम्बमें आसक्त रहनेवाली उसकी रुची उसे बार-बार रोकती

थी, किन्तु वह अक्षय तृतीयाको अवश्य ही दान करता था । कुछ समयके बाद उसका देहान्त हो गया । अगले जन्ममें उसका जन्म कुशायती (द्वारका) नगरीमें हुआ और वह बहौंका राजा बना । दानके प्रभावसे उसके ऐश्वर्य और धनकी कोई सीमा न थी । उसने पुनः बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ किये । वह ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, सुवर्ण आदि देता रहता और दीन-दुश्यियोंको भी संतुष्ट करता, किन्तु उसके धनका कभी हास नहीं होता । यह उसके पूर्वजन्ममें अक्षय तृतीयाके दिन दान देनेका फल था । महाराज ! इस तृतीयाका फल अक्षय है । अब इस ब्रतका विधान सुनें—सभी रस, अन्न, शहद, जलसे भरे घड़े, तरह-तरहके फल, जूता आदि तथा ग्रीष्म ऋतुमें उपयुक्त सामग्री, अन्न, गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र जो पदार्थ अपनेको प्रिय और उत्तम लगे, उन्हें ब्राह्मणोंको देना चाहिये । यह अतिशय रहस्यकी बात भैने आपको बतलायी । इस तिथिमें किये गये कर्मका क्षय नहीं होता, इसीलिये मुनियोंने इसका नाम अक्षय-तृतीया रखा है ।

(अध्याय ३०—३३)



१-पत्स्यपुराणके अध्याय ८५ में इसके विषयमें एक दूसरी कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि 'इस दिन अक्षतसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनेसे वे विशेष प्रसन्न होते हैं और उसकी संतुति भी अक्षय बनी रहती है—'

अक्षय संतुतिस्त्रय तस्यो शुक्रतमश्यम् । अक्षतीः पूजाते विष्णुस्तेन साक्षा स्मृतः ॥

अक्षतैस्तु नग न्याता विष्णोदर्त्ता तथाक्षतन् ॥ (मत्स्यपुराण ६५।४)

(सामान्यतया अक्षतके द्वाय विष्णुपूजन निश्चिद है, परं केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजा की जाती है । अन्यत्र अक्षतके स्थानपर संकेद तिलका विधान है ।)

शान्तिब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं पञ्चमी-कल्पमें शान्तिब्रतका वर्णन करता हूँ। इसके करनेसे गृहस्थोंको सब प्रकाशकी शान्ति प्राप्त होती है। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीसे लेकर एक वर्षपर्यन्त खट्टे पदार्थोंका भोजन न करे। नक्षत्रत कर शेषनागके ऊपर स्थित भगवान् विष्णुका पूजन करे और निम्नलिखित मन्त्रोंसे उनके अङ्गोंकी पूजा करे—

‘ॐ अनन्ताय नमः पादौ पूजयामि’से भगवान् विष्णुके दोनों पैरोंकी, ‘ॐ धूतराष्ट्राय नमः कटि पूजयामि’से कटि-प्रदेशकी, ‘ॐ तक्षकाय नमः उदरं पूजयामि’से उदरदेशकी, ‘ॐ कक्षोटिकाय नमः उरः पूजयामि’से हृदयकी, ‘ॐ पद्माय नमः कण्ठं पूजयामि’से दोनों कानोंकी,

‘ॐ महापद्माय नमः दोयुंगं पूजयामि’से दोनों भुजाओंकी, ‘ॐ शङ्खपालाय नमः वक्षः पूजयामि’से वक्षःस्थलकी तथा ‘ॐ कुलिकाय नमः शिरः पूजयामि’ से उनके मस्तककी पूजा करे। तदनन्तर मौन हो भगवान् विष्णुको दूधसे स्नान कराये, फिर दुध और तिलोंसे हवन करे। वर्ष पूरा होनेपर नाशयन तथा शेषनागकी सुखर्णश्रीतमा बनवाकर उनका पूजन कर ब्राह्मणको दान दे, साथ ही उसे सवत्सा गौ, पायससे पूर्ण कांस्यपात्र, दो वस्त्र और यथाशक्ति सुवर्ण भी प्रदान करे। तत्पक्षात् ब्राह्मण-भोजन कराकर ब्रत समाप्त करे। जो व्यक्ति इस ब्रतको भक्तिपूर्वक करता है, वह नित्य शान्ति प्राप्त करता है और उसे नागोंवा कभी भी कोई भय नहीं रहता।

(अध्याय ३४)

सरस्वतीब्रतका विधान और फल

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस ब्रतके करनेसे वाणी मधुर होती है ? प्राणीको सौभाग्य प्राप्त होता है ? विद्यामें अतिकौशल प्राप्त होता है ?, पति-पत्नीका और बन्धुजनोंका कभी वियोग नहीं होता तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है ? उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! आपने बहुत उत्तम ब्रात पूछी है। इन फलोंको देनेवाले सारस्वतब्रतका विधान आप सुनें। इस ब्रतके कीर्तनमात्रसे भी भगवती सरस्वती प्रसन्न हो जाती है। इस ब्रतको वत्सराघरमें चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको आदिल्यवारसे प्रारम्भ करना चाहिये। इस दिन भक्तिपूर्वक ब्राह्मणके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गम्भ, क्षेत्र माला, शुक्ल अक्षत और क्षेत्र वस्त्रादि उपचारोंसे, बीणा, अक्षमाला, कमण्डलु तथा पुस्तक धारण की हुई एवं सभी अलंकारोंसे अलंकृत भगवती गायत्रीका पूजन करे। फिर हाथ जोड़कर इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

यथा तु देवि भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
त्वां परित्यज्य नो तिष्ठेत् तथा भव वरप्रदा ॥
वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् ।
याहिनं यत् स्वया देवि तथा मे सन्तु मिद्दृष्यः ॥
लक्ष्मीमेधा वरा रिष्टिर्गीरि तुष्टिः प्रभा मतिः ।

एतमिः पाहि तनुभिराशुभिर्मा सरस्वति ॥

(उत्तरपर्व ३५। ७—९)

‘देवि ! जिस प्रकार लोकपितामह ब्रह्मा आपके परित्यागकर कभी अलग नहीं रहते, उसी प्रकार आप हमें भी यह दीजिये कि हमारा भी कभी अपने परिवारके लोगोंसे वियोग न हो। हे देवि ! वेदादि सम्पूर्ण शास्त्र तथा नृत्य-गीतादि जो भी विद्याएँ हैं, वे सभी आपके अधिष्ठानमें ही रहती हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हों। हे भगवती सरस्वती देवि ! आप अपनी—लक्ष्मी, मेधा, वरा, रिष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा तथा मति—इन आठ मूर्तियोंके द्वारा मेरी रक्षा करें।’

इस विधिसे प्रार्थनाकर मौन होकर भोजन करे। प्रत्येक मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको सुवासिनी स्त्रियोंका भी पूजन करे और उन्हें तिल तथा चावल, बूतपात्र, दुध तथा सुखर्ण प्रदान करे और देते समय ‘गायत्री प्रीवताम्’ ऐसा उच्चारण करे। सायंकाल मौन रहे। इस तरह वर्षभर ब्रत करे। ब्रतकी समाप्तिपर ब्राह्मणके भोजनके लिये पूर्णपात्रमें चावल भरकर प्रदान करे। साथ ही दो क्षेत्र वस्त्र, सवत्सा गौ, चन्दन आदि भी दे। देवीको निवेदित किये गये वितान, शृण्टा, अन्न आदि पदार्थ भी ब्राह्मणको दान कर दे। पूज्य गुरुका भी वस्त्र, माल्य तथा धन-धान्यसे पूजन करे। इस विधिसे जो पुरुष सारस्वत

ब्रत करता है, वह विद्वान्, धनवान् और मधुर कण्ठवाला होता है। भगवती सत्स्वतोकी कृपासे वह वेदव्यासके समान कवि

हो जाता है। नारी भी यदि इस ब्रतका पालन करे तो उसे भी पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। (अध्याय ३५-३६)

श्रीपञ्चमीब्रत-कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! तीनों लोकोंमें लक्ष्मी दुर्लभ है; पर ब्रत, होम, तप, जप, नमस्कार आदि किस कर्मके करनेसे स्थिर लक्ष्मी प्राप्त होती है? आप सब कुछ जाननेवाले हैं, कृपाकर उसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण ओले—महाराज! मुना जाता है कि प्राचीन कालमें भृगुमुनिकी 'खाति' नामकी खीसे लक्ष्मीका आविर्भाव हुआ। भृगुने विष्णुभगवान्के साथ लक्ष्मीका विवाह कर दिया। लक्ष्मी भी संसारके पाति भगवान्, विष्णुको वरके रूपमें प्राप्तकर अपनेको कृतार्थ मानकर अपने कृपाकटाक्षसे सम्पूर्ण जगत्को आनन्दित करने लगी। उन्होंसे प्रजाओंमें क्षेम और सुभिक्ष होने लगा। सभी उपद्रव शान्त हो गये। ब्राह्मण हवन करने लगे, देवगण हृषिय-भोजन प्राप्त करने लगे और राजा प्रसन्नतापूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा करने लगे। इस प्रकार देवगणोंको अतीव आनन्दमें निमग्न देखकर विरोचन आदि दैत्यगण लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये तपस्या एवं यज्ञ-यागादि करने लगे। वे सब भी सदाचारी और धार्मिक हो गये। फिर दैत्योंके पराक्रमसे सारा संसार आळकान्त हो गया।

कुछ समय बाद देवताओंको लक्ष्मीका मद हो गया, उन लोगोंके शौच, पवित्रता, सत्यता और सभी उत्तम आचार नष्ट होने लगे। देवताओंको सत्य आदि शील तथा पवित्रतासे रहित देखकर लक्ष्मी हैत्योंके पास चली गयी और देवगण श्रीविहीन हो गये। दैत्योंको भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होते ही बहुत गर्व हो गया और दैत्यगण परस्पर कहने लगे कि 'मैं ही देवता हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही ब्राह्मण हूँ, सम्पूर्ण जगत् भेग ही स्वरूप हूँ, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि सब मैं ही हूँ।' इस प्रकार अतिशय अहंकारयुक्त हो वे अनेक प्रकारका अनर्थ करने लगे। अहंकारमति दैत्योंकी भी यह दशा देखकर व्याकुल हो वह भृगुकन्या भगवती लक्ष्मी श्रीरसागरमें प्रविष्ट हो गयी। श्रीरसागरमें लक्ष्मीके प्रवेश करनेसे तीनों लोक श्रीविहीन होकर अत्यन्त निस्तोज-से हो गये।

देवराज इन्द्रने अपने गुरु बृहस्पतिसे पूछा—

महाराज ! कोई ऐसा ब्रत बताये, जिसका अनुष्ठान करनेसे पुनः स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति हो जाय !

देवगुरु बृहस्पति बोले—देवेन्द्र ! मैं इस सम्बन्धमें आपको अत्यन्त गोपनीय श्रीपञ्चमी-ब्रतका विधान बतलाता हूँ। इसके करनेसे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा। ऐसा कहकर देवगुरु बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको श्रीपञ्चमी-ब्रतकी साङ्घोषाङ्क विधि बतलायी। तदनुसार इन्द्रने उसका विधिवत् आचरण किया। इन्द्रको ब्रत करते देखकर विष्णु आदि सभी देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, विद्याधर, नाग, ब्राह्मण, क्रृष्णिगण तथा राजागण भी यह ब्रत करने लगे। कुछ कालके अनन्तर ब्रत समाप्तकर उत्तम बल और तेज पाकर सबने विचार किया कि समुद्रको मथकर लक्ष्मी और अमृतको प्रहण करना चाहिये। यह विचारकर देवता और असुर मन्दरपर्वतको मथानी और वासुकिनागको रससी बनाकर समुद्र-मन्थन करने लगे। फलस्वरूप सर्वप्रथम शीतल किरणोंवाले अति उत्तम चन्द्रमा प्रकट हुए, फिर देवी लक्ष्मीको प्रादुर्भाव हुआ। लक्ष्मीके कृपाकटाक्षको पाकर सभी देवता और दैत्य परम आनन्दित हो गये। भगवती लक्ष्मीने भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय प्रहण किया, भगवान् विष्णुने इस ब्रतको किया था, फलस्वरूप लक्ष्मीने इनका वरण किया। इन्द्रने राजस-भावसे ब्रत किया था, इसलिये उन्होंने त्रिभुवनका राज्य प्राप्त किया। दैत्योंने तामस-भावसे ब्रत किया था, इसलिये ऐक्षर्य पाकर भी वे ऐक्षर्यहीन हो गये। महाराज ! इस प्रकार इस ब्रतके प्रभावसे श्रीविहीन सम्पूर्ण जगत्, फिरसे श्रीयुक्त हो गया।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—यदूतम् ! यह श्रीपञ्चमी-ब्रत किस विधिसे किया जाता है, कबसे यह प्रारम्भ होता है और इसकी पारणा कब होती है? आप इसे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण ओले—महाराज ! यह ब्रत मार्ग-शीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको करना चाहिये। प्रातः-

उठकर शौच, दन्तधावन आदिसे निवृत्त हो ब्रतके नियमको धारण करे। फिर नदीमें अथवा घरपर ही रुान करे। दो वस्त्र धारण कर देवता और पितरोंका पूजन-तर्पण कर घर आकर लक्ष्मीका पूजन करे। सुवर्ण, चाँदी, ताङ्र, आरकूट, काष्ठकी अथवा चित्रपटमें भगवती लक्ष्मीकी ऐसी प्रतिमा बनाये जो कमलपर विराजमान हो, हाथमें कमल-पुष्प धारण किये हो, सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो, उनके लोचन कमलके समान हों और जिन्हें चार श्वेत हाथी सुवर्णके कलशोंके जलसे रुान करा रहे हों। इस प्रकारकी भगवती लक्ष्मीकी प्रतिमाकी निर्मालिखित नाम-मन्त्रोंसे ऋतुकालेन्द्रूत पुष्टोद्धारा अङ्गपूजा करे—

'ॐ चतुलायै नमः, पादौ पूजयामि', 'ॐ चतुलायै नमः, जानुनी पूजयामि', 'ॐ कमलवासिन्यै नमः, कटि पूजयामि', 'ॐ ख्यात्यै नमः, नाभिं पूजयामि', 'ॐ मध्यथवासिन्यै नमः, स्तनौ पूजयामि', 'ॐ लक्ष्मितायै नमः, भुजद्वयं पूजयामि', 'ॐ ऊळपिण्डितायै नमः, कण्ठं पूजयामि', 'ॐ माघव्यै नमः, मुखमण्डलं पूजयामि' तथा 'ॐ श्रियै नमः, शिरः पूजयामि' आदि नाममन्त्रोंसे पैरसे लेखक रितक पूजा करे। इस प्रकार प्रत्येक अङ्गोंकी भक्तिपूर्वक पूजाकर अंकुरित विविध धान्य और अनेक प्रकारके फल नैवेद्यमें देवीको निवेदित करे। तदनन्तर पुष्प और कुंकुम आदिसे सुवासिनी स्त्रियोंका पूजन कर उन्हें मधुर भोजन कराये और प्रणाम कर बिदा करे। एक प्रस्थ (सेरभर) चावल और घृतसे भरा पात्र ब्राह्मणको देकर 'श्रीशः सम्रीयताम्' इस प्रकार कहकर प्रार्थना करे। इस तरह पूजन

कर मौन हो भोजन करे। प्रतिमास यह ब्रत करे और श्री, लक्ष्मी, कमला, सम्पत्, रमा, नारायणी, पद्मा, धृति, मिथि, पुष्टि, क्रहिदि तथा सिद्धि—इन बाहु नामोंसे क्रमशः बाहु महीनोंमें भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे और पूजनके अन्तमें 'प्रीयताम्' ऐसा उच्चारण करे। बारहवें महीनेकी पञ्चमीको वस्त्रसे उत्तम मण्डप बनाकर गम्य-पुष्पादिसे उसे अलैकृतकर उसके मध्य शत्र्यापर उपकरणोंसहित भगवती लक्ष्मीकी मूर्ति स्थापित करे। आठ मोती, नेत्रपट्ट, सप्त-धान्य, खड़ाऊँ, जूता, छाता, अनेक प्रकारके पात्र और आसन वहाँ उपस्थित करे। तदनन्तर लक्ष्मीका पूजन कर वेदवेता और सदाचारसम्पन्न ब्राह्मणको सवत्सा गौसहित यह सब सामग्री प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें दक्षिणा दे। अन्तमें भगवती लक्ष्मीसे क्रहिदिकी कामनासे इस प्रकार प्रार्थना करे—

क्षीराविष्मयनोद्दूते विष्णोर्वक्षःस्थलालये ।

सर्वकामप्रदे देवि क्रहिदि यच्च नमोऽसु ते ॥

(उत्तरपर्व ३७। ५५)

'हे देवि ! आप क्षीरसागरके मन्थनसे उद्भूत हैं, भगवान् विष्णुका वक्षःस्थल आपका अधिष्ठान है, आप सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली हैं, अतः मुझे भी आप क्रहिदि प्रदान करें, आपको नमस्कार है।'

जो इस विधिसे श्रीपञ्चमीका ब्रत करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंके साथ लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। जो सौभाग्यवती रु॒ इस ब्रतको करती है, वह सौभाग्य, रूप, संतान और धनसे सम्पन्न हो जाती है तथा पतिको अत्यन्त प्रिय होती है। (अध्याय ३७)

विशोक-घटी-ब्रत

राजा युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन ! आपके श्रीमुखसे पञ्चमी-ब्रतोंका विधान सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई। अब आप घटीब्रतोंका विधान बतलायें। मैंने सुना है कि घटीको भगवान् सूर्यकी पूजा करनेसे सभी व्याधियाँ शान्त हो जाती हैं और सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सर्वप्रथम मैं विशोक-घटी-ब्रतका विधान बतलाता हूँ। इस तिथिको उपवास करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। माघ मासके

शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको प्रभातकालमें उठकर दन्तधावन करे, कृष्ण तिलोंसे रुान आदिद्वारा पवित्र हो कृशर- (खिचड़ी) का भोजन करे, रात्रिमें ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे। दूसरे दिन घटीको प्रभातकालमें उठकर रुान आदिसे पवित्र हो जाय। सुवर्णका एक कमल बनाये, उसे सूर्यनाशयणका स्वरूप मानकर रक्तचन्दन, रक्तकरवीर-पुष्प और रक्तवर्णके दो वस्त्र, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। तदनन्तर हाथ जोड़कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

यथा विशोकं भवनं त्वयैवादित्य सर्वदा ।

तथा विशोकता मे स्यात् त्वद्विक्तिर्जन्मभनि ॥

(उल्लर्पर्व ३८।७)

‘हे आदिल्यदेव ! जैसे आपने अपना स्थान शोकसे रहित बनाया है, वैसे ही मेरा भी भवन सदा शोकरहित हो तथा जन्म-जन्ममें मेरी आपमें भक्ति बनी रहे ।’

इस विधिसे पूजनकर पष्ठीको ब्राह्मण-भोजन कराये । गोमूकका प्राशन करे । फिर गुड़, अन्न, उत्तम दो वस्त्र और सुवर्ण ब्राह्मणको प्रदान करे । सप्तमीको मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे और पुराण भी श्रवण करे । इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंकी पष्ठीका व्रतकर अन्तमें शुक्ल

सप्तमीको सुवर्ण-कमलयुक्त कलश, श्रेष्ठ सामग्रियोंसे युक्त उत्तम शब्द्या और पयस्विनी कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे । इस विधिसे कृपणता छोड़कर जो इस व्रतको करता है, वह करोड़ों वर्षोंसे भी अधिक समयतक शोक, रोग, दुर्गति आदिसे मुक्त रहता है । यदि किसी कामनासे यह व्रत किया जाय तो उसकी वह कामना अवश्य पूर्ण होती है और यदि निष्काम होकर व्रत करे तो उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । जो इस शोक-विनाशिनी विशोक-पष्ठीका एक बार भी उपवास करता है, वह कभी दुःखी नहीं होता और इन्द्रलोकमें निवास करता है ।

(अध्याय ३८)

कमलघट्टी- (फलघट्टी-) व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं कमल-पष्ठी नामक व्रतको बतलाता हूँ, जिसमें उपवास करनेसे व्यक्ति पापमुक्त होकर स्वर्णांको प्राप्त करता है । मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमीको नियतव्रत होकर पष्ठीको उपवास करे । कृष्ण सप्तमीको सुवर्णकमल, सुवर्णफल तथा शर्कराके साथ कलश ब्राह्मणको प्रदान करे । इसी विधिसे एक वर्षपर्यन्त दोनों पक्षोंमें प्रत्येक पष्ठीको उपवास करे । भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शुक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा तथा वरुण—इन बारह नामोंसे क्रमशः बारह महीनोंमें पूजन करे और ‘भानुमें प्रीयताम्’, ‘अर्कमें प्रीयताम्’ इस प्रकार प्रतिमास सप्तमीको दान और पष्ठी-पूजन आदिके समय उच्चारण करे । व्रतके अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजाकर वस्त्र-आभूषण, शर्करापूर्ण कलश और सुवर्ण-कमल तथा स्वर्णफल ब्राह्मणको देकर

निश्चिन्नित मन्त्र पढ़कर व्रत पूर्ण करे—

यथा फलकरो मासस्वद्वद्वत्तानां सदा रवे ।

तथानन्तफलतावापिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥

(उल्लर्पर्व ३९।११)

‘हे सूर्यदेव ! जिस प्रकार आपके भक्तोंकी लिये यह मास-व्रत फलदायी होता है, उसी प्रकार मुझे भी जन्म-जन्ममें अनन्त फलोंकी प्राप्ति होती रहे ।’

इस अनन्त फल देनेवाली फल-पष्ठी-व्रतको जो करता है, वह सुरुपानादि सभी पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकमें समानित होता है और अपने आगे-पीछेकी इक्षीस पीड़ियोंका उद्धार करता है । जो इसका माहात्म्य श्रवण करता है, वह भी कल्याणका भागी होता है ।^१

(अध्याय ३९)

मन्दारघट्टी-व्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले तथा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले मन्दारघट्टी नामक व्रतका विधान बतलाता हूँ । व्रती मासके शुक्ल पक्षकी पञ्चमी तिथिको स्वत्प भोजन कर नियमपूर्वक रहे और पष्ठीको उपवास करे । ब्राह्मणोंका पूजन

करे तथा मन्दारका पुष्प भक्षण कर गत्रिमें शयन करे । पष्ठीको प्रातः उठकर स्नानादि करे तथा ताप्रपात्रमें काले तिलोंसे एक अष्टदल कमल बनाये । उसपर हाथमें कमल लिये भगवान् सूर्यकी सुवर्णकी प्रतिमा स्थापित करे । आठ सोनेके अर्कपुष्पोंसे तथा गन्धादि उपचारोंसे अष्टदल-कमलके दलोंमें

^१-मन्दारपुराणके अध्याय ७६ में फलस्वत्तमी नामसे इसी व्रतका वर्णन हुआ है ।

पूर्वादि क्रमसे भगवान् सूर्यके नाम-मन्त्रोद्घारा इस प्रकार पूजा करे—‘३० भास्कराय नमः’ से पूर्व दिशामें, ‘३० सूर्याय नमः’ से अग्निकोणमें, ‘३० अकर्णय नमः’ से दक्षिणमें, ‘३० अर्यमणे नमः’ से नैऋत्यमें, ‘३० वसुधात्रे नमः’ से पश्चिममें, ‘३० चण्डभानवे नमः’ से वायव्यमें, ‘३० पूर्णे नमः’ से उत्तरमें, ‘३० आनन्दाय नमः’ से ईशानकोणमें तथा उस कमलकी मध्यर्थी कर्णिकामें ‘३० सर्वांत्मने पुरुषाय नमः’ यह कहकर शुक्ल वस्त्र, नैवेद्य तथा माल्य एवं फलादि सभी उपचारोंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। सप्तमीको पूर्वीभिन्नख मौन होकर तेल तथा लवण भक्षण करे। इस प्रकार प्रत्येक मासकी शुक्ल-घट्टीको ब्रतकर सप्तमीको पारण करे। वर्षके अन्तमें वही मूर्ति कलशके ऊपर स्थापित कर यथाशक्ति वस्त्र, गौ,

सुवर्ण आदि ब्राह्मणको प्रदान करे और दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

नमो मन्दारनाथाय मन्दरभवनाय च ।
त्वं च वै तारयस्वास्मानस्यात् संसारकर्दमात् ॥

(उत्तरपर्व ४ ११)

‘हे मन्दारभवन, मन्दारनाथ भगवान् सूर्य ! आप हमलोगोंका इस संसाररूपी पङ्कुसे उड़ार कर दें, आपको नमस्कार है।’

इस विधिसे जो मन्दार-घट्टीका ब्रत करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर एक कल्पतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करता है और जो इस विधानको पढ़ता है अथवा सुनता है, वह भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ४०)

* * * * *

ललिताधृष्टी-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको यह ब्रत होता है। उस दिन उत्तम रूप, सौभाग्य और संतानकी इच्छावाली खींचे चाहिये कि वह नदीमें ऊन करे और एक नये बाँसके पात्रमें बालू लेकर घर आये। फिर बख्तका मण्डप बनाकर उसमें दीप प्रज्वलित करे। मण्डपमें वह बाँसका बालुकामय चाक्र स्थापित कर उसमें बालुकामयी, तपोवन-निवासिनी भगवती ललितागौरीका ध्यानकर पूजन करे और उस दिन उपवास रहे, तदनन्तर चम्पक, करबीर, अशोक, मालती, नीलोत्पल, केतकी तथा तगर-पुष्प—इनमेंसे प्रत्येककी १०८ या २८ पुष्पाङ्गुलि अक्षतोंके साथ निष्पत्तिकृत मन्त्रसे दे—

ललिते ललिते देवि सौख्यसौभाग्यदायिनि ।

या सौभाग्यसमूलवदा तस्यै देव्यै नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व ४१ ८)

इस प्रकारसे पूजन करनेके पश्चात् तरह-तरहके सोहाल,

* * * * *

कुमारधृष्टी-ब्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भरतसत्तम महागुरु युधिष्ठिर ! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथि समस्त पापनाशिनी, धन-धान्य तथा शान्ति-प्रदायिनी एवं अति-

कल्पाणकारिणी है। उसी दिन कातिकेयने तारकासुरका वध किया था, इसलिये यह षष्ठी तिथि स्वामिकातिकेयको बहुत प्रिय है। इस दिन किया हुआ ऊन-दान आदि कर्म अक्षय

१-मासपुराणके अध्याय ७९ में मन्दारसप्तमी नामसे इसी ब्रतका वर्णन हुआ है।

होता है। दक्षिण देशमें स्थित कार्तिकियका जो इस तिथिमें दर्शन करता है, वह निःसंदेह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसलिये इस तिथिमें कुमारस्वामीकी सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनवाकर पूजा करनी चाहिये। अपराह्नमें स्नान तथा आचमनकर, पश्चासन लगाकर बैठ जाय और स्वामी कुमारका एकाग्रिचित्तसे ध्यान करे। इस दिन उपवासपूर्वक निष्ठालिखित मन्त्र पढ़ते हुए इनके मस्तकपर कलशसे अधिष्ठेक करे—

ब्रह्मपञ्चलभूतानां भवभूतिपवित्रिता ।

गङ्गाकुमार धारेयं पतिता तथ यस्तके ॥

(उत्तरपर्व ४२।७)

इस प्रकार अधिष्ठेक कर भगवान् सूर्यका पूजन करे, तदनन्तर गन्ध, पुण्य, धूप, नैवेद्य आदि उपचारेद्वारा कृतिकापुत्र कार्तिकेयकी निग्र मन्त्रसे पूजा करे—

देव सेनापते स्वन्द कार्तिकेय भवोद्भव ।

कुमार गुह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ४२।९)

दक्षिण-देशोत्पन्न अन्न, फल और मलय चन्दन भी चढ़ाये। इसके बाद स्वामिकार्तिकेयके परमप्रिय छाग, कुकुट, कलापयुक्त मध्यूर तथा उनकी माता भगवती पार्वती— इनका प्रत्यक्ष पूजन करे अथवा इनकी सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर पूजन करे। पूजनके अनन्तर पूर्वोक्त देवसेनापति तथा स्वन्द आदि नाम-मन्त्रोंसे आज्ययुक्त तिलोंसे हवन करे, अनन्तर फल भक्षण कर भूमिपर कुशाकी शव्यापर शयन करे। क्रमशः बारह महीनोंमें नारियल, मातुलुंग (बिजौरा नीबू), नारंगी, पनस (कटहल), जम्बूर (एक प्रकारका नीबू), दाढ़िय, द्राक्षा, आप्र, बिल्व, आमलक, ककड़ी तथा केला—इन फलोंका

भक्षण करे। ये फल उपलब्ध न हो तो उस कालमें उपलब्ध फलोंका सेवन करे। प्रातःकाल सोनेके बने छाग अथवा कुकुटको 'सेनानी प्रीयताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे। बारह महीनोंमें क्रमसे सेनानी, सम्भूत, क्रौंचारि, वण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्तिकेय, स्वामी, बालप्रहारणी, छागप्रिय, शक्तिघर तथा द्वार—इन नामोंसे कार्तिकियका पूजन करे और नामोंके अन्तमें 'प्रीयताम्' यह पद योजित करे। यथा—'सेनानी प्रीयताम्' इत्यादि। इसके पक्षात् ब्राह्मणोंके भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। वर्ष समाप्त होनेपर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी पष्ठीको बछ, आभूषण आदिसे कार्तिकेयका पूजन एवं हवन करे और सब सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस व्रतको करते हैं, वे उत्तम फलोंको प्राप्त कर इन्द्रलोकमें निवास करते हैं, अतः राजन्। शंकरालभज कार्तिकेयका सदा प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। राजाओंके लिये तो कार्तिकेयकी पूजाका विशेष महत्व है। जो राजा स्वामी कुमारका इस प्रकार पूजनकर युद्धके लिये जाता है, वह अवश्य ही विजय प्राप्त करता है। विधिपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् कार्तिकेय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। जो पष्ठीको नक्तवत करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। दक्षिण दिशामें जाकर जो भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका दर्शन और पूजन करता है वह शिवलोकको प्राप्त करता है। जो सदा शरवणोद्भव आदिदेव कार्तिकेयकी आराधना करता है, वह बहुत कालतक स्वर्णका सुख भोगकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता तथा चक्रवर्ती राजाका सेनापति होता है।

(अध्याय ४२)

विजयासप्तमी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—देव ! विजया-सप्तमी-व्रतमें किसकी पूजा की जाती है, उसका क्या विधान है और क्या फल है ? इसे आप बतालानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको यदि आदित्यवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। वह सभी पातकोंका विनाश करनेवाली है। उस दिन

किया हुआ स्नान, दान, जप, होम तथा उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है। जो उस दिन फल, पुण्य आदि लेकर भगवान् सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पुत्रको प्राप्त करता है। पहली प्रदक्षिणा नारियल-फलोंसे, दूसरी रक्तनागरसे, तीसरी बिजौरा नीबूसे, चौथी कदलीफलसे, पाँचवीं श्रेष्ठ कूमारण्डसे, छठी पके हुए

तेंटूके फलोंसे और सातवीं बृन्ताक-फलोंसे करे अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करे। मोती, पद्मराग, नीलम, पत्रा, गोमेद, हीरा और वैदुर्य आदिसे भी प्रदक्षिणा करे तथा अखरोट, बेर, बिल्व, करौदा, आम्र, आध्रातक (आमड़ा), जामुन आदि जो भी उस कालमें फल-फूल मिले उससे प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करते समय बीचमें बैठे नहीं, न किसीको स्पर्श करे और न किसीसे बात करे। एकाग्रचित्तसे प्रदक्षिणा करनेसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं। गौके घृतसे वसोधारा भी दे। किंकिणीयुक्त धजा तथा खेत छत्र चढ़ाये और फिर कुंकुम, गच्छ, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यसे क्षमा-प्रार्थना करे—

भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्ये दिवाकर।
आरोग्यमायुर्विजयं पुञ्च देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ४३ । १४)

इस ब्रतमें उपचारस, नक्तब्रत अथवा अव्याचित-ब्रत करे। इस विजया-सप्तमीका नियमपूर्वक ब्रत करनेसे रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, दरिद्र लक्ष्मी प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। शुक्ल पक्षकी आदित्यवारयुक्त सात सप्तमियोंमें नक्तब्रत कर मूँगका

भोजन करना चाहिये। भूमिपर पलाशके पत्तोंपर शयन करना चाहिये। इस प्रकार ब्रतकी समाप्तिपर सूर्यभगवान्का पूजनकर पड़क्षर-मन्त्र (खाखोल्काय नमः) से अष्टोत्तरशत हवन करे। सुवर्णपत्रमें सूर्यप्रतिमा स्थापित कर रक्तवर्ष, गौ और दक्षिणा इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुष्यं यशस्कर ॥
घमाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः ।

(उत्तरपर्व ४३ । २३-२४)

तदनन्तर शत्या-दान, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि कर्म करे। इस ब्रतके करनेसे यात्रियोंकी यात्रा प्रशस्त हो जाती है, विजयकी इच्छावाले राजाको युद्धमें विजय अवश्य प्राप्त होती है, इसलिये लोकमें यह विजयसप्तमीके नामसे विश्रुत है। इस ब्रतके करनेवाला पुरुष संसारके समस्त सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें निवास करता है और फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर दानी, भोगी, विद्वान्, दीर्घायु, नीरोग, सुखी और हाथी, घोड़े तथा रङ्गोंसे सम्पन्न बद्धा प्रतापी राजा होता है। यदि खीं इस ब्रतको करे तो वह पुण्यभागिनी होकर उत्तम फलोंको प्राप्त करती है। राजन् ! इसमें आपको किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये। (अध्याय ४३)

आदित्य-मण्डलदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं समस्त अशुभोंके निवारण करनेवाले श्रेयस्कर आदित्य-मण्डलके दानका वर्णन करता हूँ। जौ अथवा गोधूमके चूर्णमें गुड़ मिलाकर उसे गौके घृतमें भलीभांति पकड़कर सूर्यमण्डलके समान एक अति सुन्दर अपूप बनाये और फिर सूर्यभगवान्का पूजनकर उनके आगे रक्तचन्दनका मण्डप अंकितकर उसके ऊपर वह सूर्यमण्डलात्मक मण्डप (एक प्रकारका पिण्डक) रखे। ब्राह्मणको सादर आमन्त्रित कर रक्त वर्ष तथा दक्षिणासहित वह मण्डप इस मन्त्रको पढ़ते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

आदित्यतेजसोत्पत्रं राजतं विधिनिर्वितम् ।

श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृहेदमुतमम् ॥

(उत्तरपर्व ४४ । ५)

ब्राह्मण भी उसे ग्रहणकर निष्पत्तिखित मन्त्र बोले—
कामदं धनदं धर्मं पुत्रदं सुखदं तत् ।
आदित्यप्रतीतये दत्तं प्रतिगृहामि मण्डलम् ॥

(उत्तरपर्व ४४ । ६)

इस प्रकार विजय-सप्तमीको मण्डकका दान करे और सामर्थ्य होनेपर सूर्यभगवान्की प्रीतिके लिये शुद्धभावसे नित्य ही मण्डप क्रदान करे। इस विधिसे जो मण्डकका दान करता है, वह भगवान् सूर्यकी अनुग्रहसे राजा होता है और स्वर्गलोकमें भगवान् सूर्यकी तरह सुशोभित होता है।

(अध्याय ४४)

वर्ज्यसप्तमी-ब्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! धन, सौख्य तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली किसी सप्तमीब्रतका आप वर्णन करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! उत्तरायणके व्यतीत हो जानेपर शुक्ल पक्षमें पुरुषवाची नक्षत्रमें आदित्यवारको सप्तमी-तिथि-ब्रत ग्रहण करे । धान, तिल, जौ, उड्ड, मैंग, गेहूँ, मधु, निन्दा भोजन, मैथुन, कांस्यपात्रमें भोजन, तैलाभ्यङ्ग, अंजन

और शिलापर पीसी हुई वस्तु—इन सबका यही तिथिको प्रयोग न करे । इन पदार्थोंका यहीके दिन परित्याग कर केवल चनाका भोग करे और देवता, मूनि तथा पितर—इन सबका तर्पणकर भगवान् सूर्यका पूजन करे । धूतयुक्त तिल और जौका हवन कर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शायन करे । इस विधिसे जो एक वर्षतक ब्रत करता है, वह अपने सभी मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है । (अध्याय ४५)

कुकुट-मर्कटी-ब्रतकथा (मुक्ताभरण सप्तमीब्रत-कथा)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर ! एक बार महर्षि लोमश मधुग आये और वहाँ मेरे माता-पिता—देवकी-वसुदेवने उनकी बड़ी श्रद्धासे आवधारण की । फिर वे प्रेमसे बैठकर अनेक प्रकारकी कथाएँ कहने लगे । उन्होंने उसी प्रसंगमें मेरी मातासे कहा—‘देवकी ! कंसने तुम्हारे बहुतसे पुत्रोंको मार डाला है, अतः तुम मृतवत्सा एवं दुःखभागिनी बन गयी हो । इसी प्रकारसे प्राचीन कालमें चन्द्रमुखी नामकी एक सुलक्षणा रानी भी मृतवत्सा एवं दुःखी हो गयी थी । परंतु उसने एक ऐसे ब्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वह जीवतुंत्रा हो गयी । इसलिये देवकी ! तुम भी उस ब्रतके अनुष्ठानके प्रभावसे वैसी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं ।’

माता देवकीने उनसे पूछा—महाराज ! वह चन्द्रमुखी रानी कौन थी ? उसने सौभाग्य और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला कौन-सा ब्रत किया था ? जिसके कारण उसकी संतान जीवित हो गयी । आप मुझे भी वह ब्रत बतलानेकी कृपा करें ।

लोमशमुनि बोले—प्राचीन कालमें अयोध्यामें नलुप नामके एक प्रसिद्ध राजा थे, उन्हींकी महारानीका नाम चन्द्रमुखी था । राजाके पुरोहितकी पली मानमानिकासे रानी चन्द्रमुखीकी बहुत प्रीति थी । एक दिन वे दोनों सखियाँ खान करनेके लिये सरयू-टटपर गयीं । उस समय नगरकी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ खान करने आयी हुई थीं । उन सब स्त्रियोंने खानकर एक मण्डल बनाया और उसमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमा चित्रितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे

भक्तिपूर्वक वथाविधि उनकी पूजा की । अनन्तर उन्हें प्रणामकर जब वे सभी अपने घर जानेको उद्यत हुईं, तब महारानी चन्द्रमुखी तथा पुरोहितकी स्त्री मानमानिकाने उनसे पूछा—‘देवियो ! तुमलोगोंने यह किसकी और किस उद्देश्यसे पूजा की है ?’ इसपर वे कहने लगीं—‘हमलोगोंने भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीकी पूजा की है और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर यह सुवर्णसूत्रमय धागा भी हाथमें धारण किया है । हाय सब जबलक प्राण रहेंगे, तबतक इसे धारण किये रहेंगी और शिव-पार्वतीका पूजन भी किया करेंगी ।’ यह सुनकर उन दोनोंने भी वह ब्रत करनेका निष्पत्ति किया और वे अपने घर आ गयीं तथा नियमसे ब्रत करने लगीं । परंतु कुछ समय बाद रानी चन्द्रमुखी प्रमादवश ब्रत करना भूल गयीं और सूत्र भी न बांध सकीं । इस कारण मरनेके अनन्तर वह बानरी हुई, पुरोहितकी स्त्रीका भी ब्रत-भङ्ग हो गया, इसलिये मरकर वह कुकुटी हुई । उन योनियोंमें भी उनकी मित्रता और पूर्वजनकी सृतियाँ बनी रहीं ।

कुछ कालके अनन्तर दोनोंकी मृत्यु हो गयी । फिर रानी चन्द्रमुखी तो मालब देशके पृथ्वीनाथ नामक राजाकी मुख्य रानी और पुरोहित अग्रिमीलकी स्त्री मानमानिका उसी राजाके पुरोहितकी पली हुई । रानीका नाम ईश्वरी और पुरोहितकी स्त्रीका नाम भूषणा था । भूषणाको अपने पूर्वजन्मोक्त ज्ञान था । उसके आठ उत्तम पुत्र हुए । परंतु रानी ईश्वरीको बहुत समयके बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रोगव्रस्त रहता था । इस कारण योड़े ही समय बाद (नवे वर्ष) उसकी मृत्यु हो गयी । तब दुःखी हो भूषणा अपनी सखी रानी ईश्वरीको आशासन देने

उनके पास आयी। भूषणाके बहुतसे पुत्रोंको देखकर ईश्वरीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, फलस्वरूप रानी ईश्वरीने धीर-धीर भूषणाके सभी पुत्र मरवा डाले, परंतु भगवान् शंकरके अनुग्रहसे वे मरकर भी पुनः जीवित हो ठठे। तब ईश्वरीने भूषणाको अपने यहाँ बुलवाया और उससे पूछा—‘सखि ! तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिसके कारण तुम्हारे मरे हुए भी पुत्र जीवित हो जाते हैं और तुम्हारे बहुतसे चिरंजीवी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मुत्त आदि आभूषणोंसे रहित होनेपर भी कैसे तुम सदा सुशोभित रहती हो ?’

भूषणाने कहा—सखि ! मुक्ताभरण सप्तमी-ब्रतका विलक्षण माहात्म्य है। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किये जानेवाले इस व्रतमें स्वानकर एक मण्डल बनाकर उसमें शिव-पार्वतीका पूजन करे और शिवको आत्म-निवेदित सूत्र (दोरक) को हाथमें धारण करे अथवा चाँटी, सोनेकी औंगूठी बनाकर औंगूलीमें पहने। उस दिन उपवास करे। बादमें ब्रतका उद्यापन करे। उद्यापनके दिन शिव-पार्वतीका मण्डलमें पूजन कर वह औंगूठी ताङ्केपात्रमें रखकर ब्राह्मणको दे दे तथा यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। इस ब्रतके करनेसे सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

सखी ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको तुमने और मैंने साथ ही इस ब्रतका नियम ग्रहण किया था,

परंतु प्रमादवश तुमने इसे छोड़ दिया, इसीसे तुम्हारा पुत्र नष्ट हो गया और राज्य पाकर भी तुम दुःखी ही रहती हो। मैंने ब्रतका भक्तिपूर्वक पालन किया, इससे मैं सब प्रकारसे सुखी हूँ, परंतु मेरा ब्रत अन्तमें भङ्ग हो गया था, इसलिये एक जन्ममें मुझे कुकुटी बनना पढ़ा। सखि ! मैं तुम्हें अपने द्वारा किये गये ब्रतका आधा पुण्यफल देती हूँ, इससे तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे। इतना कहकर भूषणने अपने ब्रतका आधा पुण्यफल ईश्वरीको दे दिया। उसके प्रभावसे ईश्वरीके दीर्घ आमुखाले बहुत पुत्र उत्पन्न हुए और उसे सब प्रकारका सुख प्राप्त हुआ तथा अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

लोमश मुनि बोले—देवकी ! तुम भी इस ब्रतको करो, इससे तुम्हारी संतान स्थिर हो जायगी और तुम्हारा पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा। यह कहकर लोमश मुनि अपने आश्रमको छले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! (मेरी माताको इसी ब्रतके प्रभावसे मेरे-जैसा पुत्र पैदा हुआ और मेरी इतनी आयु बढ़ी तथा केस आदि दुष्टोंसे बच भी गया।) यह प्रसंगवश मैंने इस ब्रतका माहात्म्य बतलाया है, अन्य जो भी कोई रसी इस ब्रतका आचरण करेगी, उसे कभी संतानका वियोग नहीं होगा और अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त करेगी। (अथ्याय ४६)

उत्थय-सप्तमीब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। आप इसे प्रीतिपूर्वक सुनें। माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीको संकल्पकर भगवान् सूर्यका वरुणदेव-नामसे पूजन करे। अष्टमीके दिन तिल, पिण्ड, गुड़ और ओदन ब्राह्मणोंको भोजन कराये, ऐसा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। फलन्तु शुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करनेसे यज्ञप्रयोग यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीमें वेदांशु-नामसे सूर्य-पूजन करनेसे

उक्त नामक यज्ञके समान पवित्र फल प्राप्त होता है। वैशाखके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको भाता नामसे पूजा करनेसे पशुबूद्ध-यागके पुण्यके समान फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासकी सप्तमीको इन्द्र नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे यज्ञप्रयोग यज्ञका दुर्लभ फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासकी सप्तमीको दिवाकरकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणकी सप्तमीको मातापि (लोलार्क) को पूजनेसे सौत्रामणि यागका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद

२-इसी ब्रतका ठीक इन्हीं श्लोकोंमें हेमादि, जयसिंह-कल्पतुम तथा ब्रतराज आदि निवन्ध-ग्रन्थोंमें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे उल्लेख किया गया है और उसके श्लोक भविष्यत्पुराणके नामसे सूचित किये गये हैं, किन्तु आहार्य है कि वहाँ इसे कुकुट-मर्कटी-सप्तमी नहीं कहा गया है। सम्भव है कि भविष्यत्पुराणके अन्य किन्हीं हस्तलिखित प्रतिलिपियोंमें पुण्यकामोंहाँहे मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे निर्दिष्ट किया गया हो। मैनियर विलियम नामक संस्कृत अंग्रेजीके विद्यार्थी नेपालमें केटलगास नामसे कुकुट-मर्कट-सप्तमीके नामका ही उल्लेख किया गया है।

मासमें शुचि नामसे सूर्यका पूजन करे तो तुलापुरुष-दानका फल प्राप्त होता है। आश्विन शुक्रवार सप्तमीको सविताकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्रवार सप्तमीमें सप्तवाहन दिनेशकी पूजा करनेसे पुण्डरीक-यागका फल प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्रवार पक्षकी सप्तमीमें भानुकी पूजा करनेसे दस राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। पौष मासमें शुक्रवार पक्षकी सप्तमीको भास्करकी पूजा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको भी उन-उन नामोंसे पूजा करनी चाहिये।

महाराज ! इस प्रकार एक वर्षतक ब्रत और पूजन कर उद्घापन करे। पवित्र भूमियर एक हाथ, दो हाथ अथवा चार हाथ रक्तचन्दनका मण्डल बनाकर उसमें सिंटूर और गेरुका सूर्यमण्डल बनाये। कमल आदि रक्तपुष्पों, शाल्वकी वृक्षके

गोद आदिसे निर्मित धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। अब तथा स्थानसे भरे कलशोंको उनके सामने स्थापित करे। फिर अग्रिसंस्कार कर तिल, मृत, गुड़ और आककी समिधाओंसे 'आ कृष्णोन्' (यजु० ३३ । ४३) इस मन्त्रसे एक हजार आहुति दे। अनन्तर द्वादश ब्राह्मणोंको रक्तवर्ष, एक-एक सवत्सा गौ, छतरी, जूता, दक्षिणा और भोजन देकर क्षमा-प्रार्थना करे। बादमें स्वयं भी मैन होकर भोजन करे।

इस विधिसे जो सप्तमीका ब्रत करता है, वह नीरोग, कुशल वत्ता, रूपवान् और दीर्घायु होता है। जो पुरुष सप्तमीके दिन उपवास कर भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। यह उभय-सप्तमीब्रत सम्पूर्ण अशुधोंको दूर कर आरोग्य और सूर्यलोक प्राप्त करनेवाला है, ऐसा देवर्षि नारदका कहना है।

(अध्याय ४७)

कल्याणसप्तमी-ब्रतकी विधि

महराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! यदि इस संसार-सागरसे पार उत्तारनेवाला तथा स्वर्ग, आरोग्य एवं सुखप्रदायक कोई ब्रत हो तो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जिस शुक्र सप्तमीको आदित्यवार हो, उसे विजया-सप्तमी या कल्याण-सप्तमी कहते हैं। यह तिथि महापुण्यमयी है। इस दिन प्रातःकाल गोदुग्धयुक्त जलसे स्नानकर शुक्रवार वर्ष धारण कर अक्षतोंसे अति सुन्दर एक कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये तथा पूर्वादि आठों दलोंमें क्रमशः पूर्व दिशामें 'ॐ तपनाय नमः', अग्निकोणमें 'ॐ मार्त्तिष्ठाय नमः', दक्षिण दिशामें 'ॐ दिवाकराय नमः', नैऋत्यकोणमें 'ॐ विद्याये नमः', पश्चिम दिशामें 'ॐ वरुणाय नमः', वायव्यकोणमें 'ॐ भास्कराय नमः', उत्तर दिशामें 'ॐ विकर्त्तनाय नमः' तथा

ईशानकोणमें 'ॐ रथये नमः'—इस प्रकारसे नाम-मन्त्रोद्धारा कर्णिकाओंमें सभी उपचारोंसे पूजन करे। शुक्रवार, फल, भक्ष्य पदार्थ, धूप, पुष्पमाला, गुड़ और लवणसे नमस्करणत इन नाम-मन्त्रोंसे वेदीके ऊपर पूजा करे। इसके बाद व्याहृति-होमकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। गुरुको सुवर्णसहित तिलपात्र-दान करे। दूसरे दिन प्रातः उठकर नित्य-क्रियासे निवृत्त हो ब्राह्मणोंकी साथ धूत एवं पायससे बने पदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् सूर्यका पूजन एवं ब्रतकर उद्घापन करे। जल, कलश, धूतपात्र, सुवर्ण, वर्ष, आधूषण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। इतनी शक्ति न हो तो गोदान करे। जो इस कल्याणसप्तमी-ब्रतको करता है अथवा माहात्म्यको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। (अध्याय ४८)

शर्करासप्तमी-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज ! अब मैं सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा आयु, आरोग्य और अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले शर्करासप्तमी-ब्रतका वर्णन करता हूँ।

वैशाख मासके शुक्रवार पक्षकी सप्तमीको खेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नानकर शुक्रवार वर्षोंको धारण करे तथा वेदीके ऊपर कुंकुमसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमलकी रचना करे और

'सवित्रे नमः' इस नाम-मन्त्रसे गन्ध-पुण्य आदिसे सूर्यकी पूजा करे। जलपूर्ण कलशके ऊपर शार्करसे भरा पूर्णपात्र स्थापित करे। उस कलशको रक्त वस्त्र, शेत माला आदिसे अलंकृत करे, साथ ही वहाँ एक सुवर्ण-निर्मित अष्ट भी स्थापित करे। तदनन्तर भगवान् सूर्यका आवाहनकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

विष्णुदेवमयो यसाद् वेदवादीति पठन्त्वसे ॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन ।

(उत्तरपर्व ४९। ५-६)

'हे भगवान् सूर्योदेव ! यह सारा विश्व एवं सभी देवता आपके ही स्वरूप हैं, इस कारण आपको ही वेदोंका तत्त्वज्ञ एवं अमृतसर्वस्व कहा गया है। हे सनातनदेव ! आप मेरी रक्षा करें।'

तदनन्तर सौरसूक्तका^१ जप करे अथवा सौरपुण्यका^२ श्रवण करे। अष्टमीको प्रातः उठकर स्नान आदि नियतिक्रिया सम्पन्नकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। तत्पश्चात् सारी सामग्री

वेदवेत्ता ब्राह्मणको देकर शर्करा, घृत और पायससे यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे। इस विधिसे प्रतिमास ब्रत करके वर्ष पूरा होनेपर यथाशक्ति उत्तम शश्या, दूध देनेवाली गाय, शर्करापूर्ण घट, गृहस्थके उपकरणोंसे युक्त मकान तथा अपनी सामग्रीके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्ठ सोनेका बना हुआ एक अष्ट ब्राह्मणको दान करे। भगवान् सूर्यके मुखसे अमृतपान करते समय जो अमृत-बिन्दु गिरे, उनसे शालि (अगहनी धान), मैंग और इक्षु उत्पन्न हुए, शर्करा इक्षुका सार है, इसलिये हृष्ट-कल्पमें इस शर्कराका उपयोग करना भगवान् सूर्यको अति प्रिय है एवं यह शर्करा अमृतरूप है। यह शर्करासप्तमी-ब्रत अष्टमेष्ठ यजक्रत फल देनेवाला है। इस ब्रतके करनेसे संतानकी वृद्धि होती है तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस ब्रतका करनेवाला व्यक्ति एक कल्प स्वर्गमें निवासकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है^३।

(अध्याय ४९)

कमलसप्तमी-ब्रत^४

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं कमलसप्तमी-ब्रतका वर्णन करता हूँ, जिसके नाम लेनेमात्रसे ही भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वसन्त ऋतुमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रातःकाल पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करे। एक पात्रमें तिल रखकर उसमें सुखराङ्का कमल बनाकर स्थापित करे और उसमें भगवान् सूर्यकी भावना कर दो वस्त्रोंसे आवृत करे तथा गन्ध-पुण्यादि उपचारोंसे पूजाकर नियतिखित श्लोकसे प्रार्थना करे—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥

दिवाकर नमस्तुर्ये प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।

(उत्तरपर्व ५०। ३-४)

तदनन्तर वस्त्र, माला तथा अलंकारोंसे सुसज्जित उस

उदकुम्भको प्रतिमासहित ब्राह्मणकी पूजाकर प्रदान कर दे। दूसरे दिन अष्टमीको यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं भी तेल आदिसे रहित विशुद्ध भोजन करे। इसी प्रकार वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी शुक्ल सप्तमीको भक्तिपूर्वक ब्रत करे। ब्रतकी समाप्तिपर वह भक्तिपूर्वक सुवर्ण-कमल, सुवर्णकी पर्यायी गौ, अनेक पात्र, आसन, दीप तथा अन्य सामग्रियाँ ब्राह्मणको दानमें दे। इस विधिसे जो कमल-सप्तमीका ब्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकमें प्रसन्न होकर निवास करता है। कल्प-कल्प भर सात लोकोंमें निवास करता हुआ अन्तमें परमगतिको प्राप्त करता है।

(अध्याय ५०)

१-प्रामेण्टके प्रथम मण्डलका ५०वाँ सूक्त सूर्यसूक्त या सौरसूक्त कहलाता है।

२-सौरपुण्यसे मुख्य तात्पर्य है भविष्यपुण्य और साम्बपुण्य। आजकल सौरपुण्यके नामसे प्रकाशित जो सूर्यपुण्य है, बास्तवमें वे शैवपुण्य हैं सौर नहीं।

३-शिवपुण्यादि वह अध्याय भी मत्स्यपुण्यके अ० ७७ में प्राप्तः इसी रूपमें प्राप्त होता है।

४-कई ब्रत-नियमों एवं पुराणोंमें इसे ही कमल-षष्ठी भी कहा गया है।

शुभसप्तमी-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—गजन्! अब मैं एक दूसरी सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, वह शुभसप्तमी कहलाती है। इसमें उपवासकर व्यक्ति रोग, शोक तथा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यप्रद ब्रतमें आश्चिन मासमें (शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको) ज्ञान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर गम्य, माल्य तथा अनुलेपनादिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौका निम्नलिखित मन्त्रसे पूजन करे—

नमामि सूर्यसम्भूतापशेषभुवनात्याप् ॥

त्वामहं शुभकल्याणशरीरो सर्वसिद्धये ।

(उत्तरपर्व ५१। ३-४)

'देवि ! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयदात्री हैं, आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे मुक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।'

तत्पक्षात् ताप्रपात्रमें एक सेर तिल रखकर उसपर वृषभकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे और उसकी वस्त्र, माल्य, गुड़ आदिसे पूजा करे। सायंकालमें 'अर्द्धमा प्रीयताम्' यह

कहकर सब सामग्री भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको निवेदित करे। गत्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा भूमिपर ही मात्सर्यरहित होकर शब्दन करे। प्रातः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको पूजा आदिसे संतुष्ट करे। प्रत्येक मासमें दो वस्त्र, स्वर्णमय वृषभ और गौ आदिका पूजनपूर्वक दान करे। संवत्सरके अन्तमें ईख, गुड़, वस्त्र, पात्र, आसन, गदा, तकिया आदिसे समन्वित शरण्या, एक सेर तिलसे पूर्ण ताप्र-पात्र, सौवर्णी वृषभ 'विश्वात्मा प्रीयताम्' कहकर बेदङ्ग ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे शुभसप्तमी-ब्रत करनेवाला व्यक्ति जन्म-जन्ममें विमल कीर्ति एवं श्री प्राप्त करता है और देवतोंके पूजित तथा प्रलयपर्यन्त गुणाधिष्ठ होता है। एक कल्पके अनन्तर वह पृथ्वीपर जन्म लेकर सातों द्वीपोंका चक्रवर्तीं समाद् होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ-सप्तमी सहस्रों ब्रह्महत्या और सैकड़ों भूणहत्या आदि पापोंका नाश करती है। इस शुभ-सप्तमीके माहात्म्यको जो पढ़ता है अथवा क्षणभर भी सुनता है, वह शरीर कूटनेपर विद्याधरोंका अधिष्ठित होता है।'

(अध्याय ५१)

सप्तमी-स्नापनब्रत और उसकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो ! मनुष्यको अपने मनमें उद्भूत उद्देश तथा खेद-खिन्नता और अपनी दरिद्रताकी निवृत्तिके लिये अनुदृत^१-शान्तिके निमित्त कौन-सा धर्म-कृत्य करना चाहिये ? मृतवत्सा रसीको (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अपनी संतानिकी रक्षा और दुःखप्रादिकी शान्तिके लिये क्या करना चाहिये ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—गजन्! पूर्वजन्मके पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं कल्याणकारी सप्तमी-स्नापन नामक ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोगोंकी पीड़का विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमें ही शिशुओं, बृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु होती देखी जाती है, वहाँ उसकी शान्तिके लिये इस 'मृतवत्साभिषेक' को बतला रहा हूँ।

यह समस्त अनुदृत उत्तातों, उद्देशों और चित्त-भ्रमोक्ता भी विनाशक है।

वराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें सल्ययुगमें हैहयवंशीय क्षत्रियोंके कुलकी शोभा बद्धानेवाला कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ था। उसने सतहत्तर हजार वर्षतक धर्म और नीतिपूर्वक समस्त प्रजाओंका पालन किया। उसके सौ पुत्र थे, जो च्यवनमुनिके शापसे दग्ध हो गये। फिर राजाने भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक उपासना प्रारम्भ की। कृतवीर्यके उपवास-ब्रत, पूजा और स्तोत्रोंसे संतुष्ट होकर भगवान् सूर्यने उसे अपना दर्शन दिया और कहा—'कृतवीर्य ! तुम्हें (कार्तवीर्य नामक) एक सुन्दर एवं विरायु पुत्र उत्पन्न होगा, किंतु तुम्हें अपने पूर्वकृत पापोंको विनष्ट करनेके लिये स्नापन-सप्तमी नामक ब्रत करना पड़ेगा। तुम्हारी मृतवत्सा पल्लीके जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तो

१-पवित्रपुण्डिका यह अध्याय महस्यपुण्डि (अध्याय ८०) में इसी रूपमें प्राप्त होता है।

२-सामवंशीय 'अनुदृतब्रह्मण' (ताण्डव २६) तथा अर्थवर्तीरेशष्ट (७२) में अनुदृत-शान्तिका विलाससे उल्लेख है।

सात महीनेपर बालकके जन्म-नक्षत्रकी तिथिको छोड़कर शुभ दिनमें प्रह एवं ताराबलको देखाकर ब्राह्मणोद्भाग स्थापित-आचन करना चाहिये। इसी प्रकार बृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये किये जानेवाले इस ब्रतमें जन्म-नक्षत्रका परित्याग कर देना चाहिये। गोदुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यात्र पकाकर मातृकाओं, भगवान् सूर्य एवं रुद्रकी तुष्टिके लिये अर्पण करना चाहिये और फिर भगवान् सूर्यके नामसे अग्निमें घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। फिर बादमें रुद्रसूक्तसे भी आहुतियाँ देनी चाहिये। इस आहुतिमें आक एवं पलाशकी समिधाएँ प्रयुक्त करनी चाहिये तथा हवन-कार्यमें काले तिल, जौ एवं घीकी एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हवनके बाद शीतल गङ्गाजलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसन्ध्यानी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रब या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वीषधि, पञ्चग्रन्थ, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वर्षोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथीसार, घुडशाल, विमैट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार—इन सात जगहोंसे शुद्ध मृतिक लाकर उन सभी कलशोंमें डाल दे।

तदनन्तर ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशके हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोक्त पाठ करे तथा सात सुलक्षणा खियोद्भाग जो पुष्प-माला और वस्त्राभूषणोद्भाग पूजित हों, ब्राह्मणके साथ-साथ उस अड्डेके जलसे मृतवत्सा खीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह रूपी जीवसुप्ता (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, प्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनके अतिरिक्त

अन्यान्य देव-समूह इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो क्षेत्र बालप्रह हों, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री शेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों खियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमा ताप्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृष्णता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको बालककी रक्षाके लिये इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे वडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करे और सदा इसके लिये वरदायक हों।' इस प्रकारके बावज्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा करे। तत्पश्चात् मृतवत्सा खी पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् राक्षको नमस्कार करे और हवनमें बचे हुए हव्यात्रको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यह ब्रत उद्दिष्टा और दुःखप्रादिमें भी प्रशस्त माना गया है।

इस प्रकार कतकि जन्मदिनके नक्षत्रोंको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु सुकल पश्चकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये, क्योंकि इस ब्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य इस विधानके अनुसार इस ब्रतका सदा अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी ब्रतके प्रभावसे) कार्तवीयीने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। राजन्। इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्त्रपन-ब्रतका

१-दीर्घायुरसु बालोऽयं जीवपुत्र च भाविनी। आदिलचन्द्रमासाधी

ग्रहनशत्रमप्पदलम्॥

शकः सहोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुहेश्वरः। एते चान्ये च वै देवाः सदा पानु कुमारकम्॥

मा शनिर्मा स दुत्पुह मा च चालप्रहाः क्षयविद्। पीढी कुर्वन्तु बालय मा मातृजनकस्य वै॥ (उत्तरपर्व ५२। २६—२८)

२-दीर्घायुरसु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी। यत्किञ्चिद्देव दुरिते तत्क्षणं वडवामुखे॥

ब्रह्मा रुद्रे विष्णुः रुद्रदे वायुः शक्षो हुताशमः। इक्षन्तु सर्वे दुष्टेष्यो वरदा यानु सर्वदा॥ (उत्तरपर्व ५२। ३२—३३)

विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मनुष्यको सूर्यसे बड़े-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम नीरोगता, अग्रिसे धन, ईश्वर (शिवजी) से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये^१। यह व्रत जनार्दनसे हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको सुनता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है^२। (अध्याय ५२)

अचलासप्तमी^३-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने सभी उत्तम फलोंको देनेवाले माघस्नानका^४ विधान बतलाया था, परंतु जो प्रातःकाल ज्ञान करनेमें समर्थ न हो तो वह क्या करे? क्षिर्यां अति सुकृमारी होती है, वे किस प्रकार माघस्नानका कष्ट सहन कर सकती हैं? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि थोड़ेसे परिश्रमसे भी नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं अचलासप्तमीका अत्यन्त गोपनीय विधान आपको बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें अति रूपतरी इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह वेश्या प्रातःकाल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—देखो! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें दूबते हुए जीव जन्म-मृत्यु-जरा आदिसे तथा जल-जन्माओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उत्तर नहीं पाते। ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय अपने किये गये कर्मरूपी ईधनसे एवं कालरूपी अग्रिसे दर्श कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रहित दिन व्यतीत होते हैं, किर ये कहाँ वापस आते हैं? जिस दिन ज्ञान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ है। पुत्र, रुपी, धर, क्षेत्र तथा धन आदिकी चिन्तामें सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर धर दबोचती है।

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्दिग्र होकर सोचती-विचारती हुई वह इन्दुमती वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहने लगी—‘महाराज ! मैंने न तो कभी कोई दान दिया, न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया और न शिव, विष्णु आदि किन्हीं देवताओंकी आराधना की, अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।’

वसिष्ठजी बोले—‘वहने ! तुम माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको ज्ञान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गुरुता आदि सत्कर्म फल प्राप्त होते हैं। वहीके दिन एक बार भोजनकर सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और ज्ञान करो, जिसके जलको किसीने ज्ञानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल मलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा करन्याण होगा।’ वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने धर व्यापस लौट आयी और उनके द्वारा बतायी गयी विधिके अनुसार उसने ज्ञान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके ज्ञानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपधोग करती हुई वह देह-त्यागके पक्षात् देवराज इन्द्रजी सभी अप्सराओंमें प्रधान नायिकाके पदपर अविद्युत हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अचलासप्तमीका माहात्म्य तो आपने बतलाया, कृपाकर अब ज्ञानका विधान

१-अग्नेयं भास्करादिच्छेदनमिष्टेद्युताशनात्। शक्तान्ज्ञानमिष्टेनु गतिमिष्टेजनार्दनात्॥ (उत्तरपर्व ५२। ३९)

२-भविष्यपुराणका यह अध्याय मन्त्रपुराण (अ०६८) से प्राप्तः निलेता है।

३-यह सप्तमी पुण्योंमें रथ, सूर्य, भानु, अर्क, महती, पुण्यसप्तमी आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुण्योंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियां निर्दिष्ट हैं, जिससे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

४-पुण्योंका परस्पर अनिष्ट सम्बन्ध है। माघस्नानकी विस्तृत विधि परमपुराणके उत्तरखण्ड एवं वायुपुराणमें प्राप्त होती है। इनमें बड़ी सुन्दर एवं बेहुल कथाएँ हैं।

भी बतलाये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यष्टीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनाशयणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय आदि वेलामें बहुत सबेर ही खान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताप्रके पात्रमें कुसुमकी रंगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्ते रुद्ररुपाय रसानाम्पतये नमः ।
ब्रह्माय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते ॥
याकञ्चन्य कृतं पापं मद्या जन्मसु सप्तसु ।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी ॥
जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके ।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमप्छले ॥

(उत्तरपर्व ५३ । ३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे फिर खानकर देवता और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीकी स्थापनाकर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्णांदि आठ दलोंमें

—◆◆◆—

बुधाष्टमीब्रत-कथा तथा माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं बुधाष्टमीब्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेवाला कभी नरकका मुख नहीं देखता। इस विषयमें आप एक आङ्गान सुनें। सत्ययुगके प्रारम्भमें मनुके पुत्र राजा इल^१ हुए। वे अनेक मित्रों तथा भूत्योंसे घिरे रहते थे। एक दिन वे मृगयाके प्रसंगसे एक हिरण्यका पीछा करते हुए हिमालय पर्वतके समीप एक जंगलमें पहुँच गये। उस बनमें प्रवेश करते ही वे सहसा खी-रूपमें परिणत हो गये। वह बन शिवजी और माता पार्वतीजीका विहार-क्षेत्र था। वहाँ शिवजीकी यह आङ्गा थी कि ‘जो पुरुष इस बनमें प्रवेश करेगा, वह तत्क्षण ही खी हो जायगा।’ इस कहाणे राजा इल भी खी हो गये। अब वे खी-

क्रमसे भानु, रघि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रिकरण तथा सर्वात्माका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें ‘ॐ’कार तथा अन्तमें ‘नमः’ पद लगाये। यथा—‘ॐ भानवे नमः’, ‘ॐ रघवे नमः’ इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजाकर ‘स्वस्यानं गम्यताम्’ यह कहकर विसर्जित कर दे। बादमें ताप्र अथवा मिहीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका ताल-पत्राकार एक कलानका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रत्नकर्मसे उसे ढैंककर पुष्प-धूपादिसे पूजन करे और वह पात्र दैर्घ्यमय तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर ‘सपुत्रपश्चभूत्याय मेऽर्कोऽयं प्रीयताम्’ पुत्र, पशु, भूत्य-समन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जायें—ऐसी प्रार्थना करे। फिर गुरुको वस्त्र, तिल, गौ और दक्षिणा देकर तथा यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंके भोजन करकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको खान करता है, उसे सम्पूर्ण माघ-खानका फल प्राप्त होता है। जो इस माहात्म्यको भक्तिसे कहेगा या सुनेगा तथा लोगोंको इसका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा।

(अध्याय ५३)

रूपसे बनमें विचरण करने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि मैं कहाँ आ गया हूँ। उसी समय चन्द्रमाके पुत्र कुमार बुधकी दृष्टि उनपर पड़ी। उसके उत्तम रूपपर आङ्कृष्ट हो बुधने उसे अपनी खी बना लिया। इलासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पुरुषवा था। पुरुषवासे ही चन्द्रवंशका प्रारम्भ हुआ।

जिस दिन बुधने इलासे विवाह किया, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिये यह बुधाष्टमी जगतमें पूज्य हुई। यह बुधाष्टमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाली है।

राजन् ! अब मैं आपको एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ—विदेह राजाओंकी नगरी मिथिलामें निमि नामके एक राजा थे।

१—इनका मुख्य नाम सुषुप्त था, किन्तु जन्मके समय पुरीकरणमें उत्पन्न होनेके कारण ‘इला’ और बादमें पुष्प-रूपमें परिवर्तित हो जानेपर ‘इल’ नाम हुआ। इनकी कथा प्रायः सभी पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी आती है।

वे शत्रुओंद्वारा लड़ाईके मैदानमें मार डाले गये । उनकी रूपीका नाम था उर्मिला । उर्मिला जब राज्य-च्युत एवं निराश्रित हो इधर-उधर घूमने लगी, तब अपने बालक और कन्याको लेकर वह अवन्ति देश चली गयी और वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें कार्यकर अपना निर्वाह करने लगी । वह विपतिसे पीड़ित थी, गेहूं पीसते समय वह थोड़ेसे गेहूं चुराकर रख लेती और उसीसे क्षुधासे पीड़ित अपने बच्चोंका पालन करती । कुछ समय बाद उर्मिलाका देहान्त हो गया । उर्मिलाका पुत्र बड़ा हो गया, वह अवन्तिसे पिथिला आया और पिताके राज्यको पुनः प्राप्तकर शासन करने लगा । उसकी बहन श्यामला विचाह-योग्य हो गयी थी । वह अत्यन्त रूपवती थी । अवन्तिदेशके गुजा धर्मराजने उसके उत्तम रूपकी चर्चा सुनकर उसे अपनी गनी बना लिया ।

एक दिन धर्मराजने अपनी प्रिया श्यामलासे कहा—‘वैदेहिनन्दिनि ! तुम और सभी कामोंको तो करना, परंतु ये सात स्थान जिनमें ताले बंद हैं, इनमें तुम कभी मत जाना ।’ श्यामलाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर पतिकी बात मान ली, परंतु उसके मनमें कुतूहल बना रहा ।

एक दिन जब धर्मराज अपने किसी कर्त्यमें व्यस्त थे, तब श्यामलाने एक मकानका ताला खोलकर वहाँ देखा कि उसकी माता उर्मिलाको अति भयंकर यमदूत बांधकर तपा तेलके कड़ाहमें बार-बार डाल रहे हैं । लक्षित होकर श्यामलाने वह कमरा बंद कर दिया, फिर दूसरा ताला खोला तो देखा कि वहाँ भी उसकी माताको यमदूत शिलाके ऊपर रखकर पीस रहे हैं और माता चिल्ला रही है । इसी प्रकार उसने तीसरे कमरेको खोलकर देखा कि यमदूत उसकी माताके मस्तकमें लोहेकी कींव ठोक रहे हैं, इसी तरह चौथेमें अति भयंकर श्याम उसका भक्षण कर रहे हैं, पांचवेंमें लोहेके संदंशसे उसे पीड़ित कर रहे हैं । छठेमें कोलहूके बीच ईंखेके समान पेरी जा रही है और सातवें स्थानपर ताला खोलकर देखा तो वहाँ भी उसकी माताको हजारों कृपि भक्षण कर रहे हैं और वह रुधिर आदिसे लथपथ हो रही है ।

यह देखकर श्यामलाने विचार किया कि मेरी माताने ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे वह इस दुर्गतिको प्राप्त हुई । यह

सोचकर उसने सारा वृत्तान्त अपने पति धर्मराजको बतलाया ।

धर्मराज बोले—‘प्रिये ! मैंने इसीलिये कहा था कि ये सात ताले कभी न खोलना, नहीं तो तुम्हें वहाँ पश्चात्याप होगा । तुम्हारी माताने संतानके खेहसे ब्राह्मणके गेहूं चुराये थे, क्या तुम इस बातको नहीं जानती हो जो तुम मुझसे पूछ रही हो ? यह सब उसी कर्मका फल है । ब्राह्मणका धन खेहसे भी भक्षण करे तो भी सात कुल अध्योगतिको प्राप्त होते हैं और चुराकर खाये तो जबतक चन्द्रमा और तारे हैं, तबतक नरकसे उद्धार नहीं होता । जो गेहूं इसने चुराये थे, वे ही कृपि बनकर इसका भक्षण कर रहे हैं ।’

श्यामलाने कहा—‘महाराज ! मेरी माताने जो कुछ भी पहले किया, वह सब मैं जानती ही हूं, फिर भी अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मेरी माताका नरकसे उद्धार हो जाय । इसपर धर्मराजने कुछ समय विचार किया और कहने लगे—‘प्रिये ! आजसे सात जन्म पूर्व तुम ब्राह्मणी थी । उस समय तुमने अपनी सखियोंकि साथ जो बुधाष्टमीका व्रत किया था, यदि उसका फल तुम संकल्पपूर्वक अपनी माताको दे दो तो इस संकटसे उसकी मुक्ति हो जायगी ।’ यह सुनते ही श्यामलाने रूपानकर अपने व्रतका पुण्यफल संकल्पपूर्वक माताके लिये दान कर दिया । व्रतके फलके प्रभावसे उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धारणकर विमानमें बैठकर अपने पतिसहित स्वर्गलोकको चली गयी और बुध ग्रहके समीप स्थित हो गयी ।

राजन ! अब इस व्रतके विधानको भी आप सावधान होकर सुनें—जब-जब शुक्ल पक्षकी अष्टमीके बुधवार पढ़े तो उस दिन एकभुक्त-व्रत करना चाहिये । पूर्वाह्नमें नदी आदिमें रूपान करे और वहाँसे जलसे भरा नवीन कलश लाकर घरमें स्थापित कर दे, उसमें सोना छोड़ दे और बांसके पात्रमें पववान भी रखे । आठ बुधाष्टमीयोंका व्रत करे और आठोंमें क्रमसे ये आठ पववान—मोदक, फेंसी, धीका अपूर, वटक, खेत कसारसे बने पदार्थ, सोहालक (खांडयुक्त अशोकवर्तिका) और फल, पुण्य तथा फेनी आदि अनेक पदार्थ बुधको निवेदित कर बादमें स्वयं भी अपने इष्ट-मित्रोंकि साथ भोजन करे । साथ ही बुधाष्टमीकी कथा भी सुने । बिना कथा सुने भोजन न करे । बुधकी एक माश (८ रत्न-एक माशा) या

आधे माशेकी सुखर्णमयी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, पीत वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे उसका पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ बुधाय नमः, ॐ सोमात्मजाय नमः, ॐ दुर्गुद्धिनाशनाय नमः, ॐ सुखुद्धिप्रदाय नमः, ॐ ताराजाताय नमः, ॐ सौभ्यप्रहाय नमः तथा ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः।'

तदनन्तर निश्चलिखित मन्त्र पढ़कर मूर्तिके साथ-साथ वह भोज्य-सामग्री तथा अन्य पदार्थ ब्राह्मणको दान कर दे—

ॐ बुधोऽयं प्रतिगृहात् द्रव्यस्योऽयं बुधः स्वयम्।

दीयते बुधराजाय तुल्यतां च बुधो मम॥

(उत्तरपर्व ५४। ५१)

ब्राह्मण भी मूर्ति आदि प्रहणकर यह मन्त्र पढ़े—



श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीब्रतकी कथा एवं विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—अच्युत ! आप विस्तारसे (अपने जन्म-दिन) जन्माष्टमीब्रतका विधान बतलानेकी कृपा करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जब मधुरामें कंस मारा गया, उस समय माता देवकी मुझे अपनी गोदमें लेकर रोने लगीं। पिता वसुदेवजी भी मुझे तथा बलदेवजीको आलिङ्गित कर गदूदवाणीसे कहने लगे—'आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं अपने दोनों पुत्रोंको कुशलसे देख रहा हूँ। सौभाग्यसे आज हम सभी एकत्र मिल रहे हैं।' हमारे माता-पिताजो अति हृषित देखकर बहुतसे लोग वहाँ एकत्र हुए और मुझसे कहने लगे—'भगवन् ! आपने बहुत बड़ा काम किया, जो इस दुष्ट कंसको मारा। हम सभी इससे बहुत

बुधः सौभ्यसारकेयो राजपुत्र इलापतिः ।
कुमारो हिंजराजस्य यः पुरुत्वासः पिता ॥
दुर्गुद्धिवोधदुरितं नाशयित्वावयोर्बुधः ।
सौख्यं च सौभ्यनस्य च करोतु शशिनन्दनः ॥

(उत्तरपर्व ५४। ५२-५३)

इस विधिसे जो बुधाष्टमीका ब्रत करता है, वह सात जन्मतक जातिस्मर होता है। धन, धन्य, पुत्र, पौत्र, दीर्घ आयुष्य और ऐश्वर्य आदि संसारके सभी पदार्थोंको प्राप्त कर अन्त समयमें नाशयणका स्मरण करता हुआ तीर्थ-स्थानमें प्राण ल्याग करता है और प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। जो इस विधानको सुनता है, वह भी ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ५४)

१-मत्स्यपुरुणमें बुधका रूपरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

पीडितः विश्वास्यान्वरभः कर्णिकावरसमद्युतिः । खद्गचर्मगदापाणिः सिंहस्यो वरदो बुधः ॥ (९४। ४)

बुध पीडित राजकी पुष्पमला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरकृति करेके पुष्प-सरीखी है। वे चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल गदा और बदमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं।

२-हेमदि, ब्रह्मज तथा जयमिहकललद्वय आदि निवन्ध्याव्यायोंमें भी भविष्योत्तरपुण्ड्रके नामसे बुधाष्टमीब्रत दिया गया है, परं पाठ-भेद अधिक है। ब्रह्मजमें बुधके पूजनकी तथा ब्रह्मके उत्थापनकी विधि भी भविष्योत्तरपुण्ड्रके नामसे दी गयी है। इस कथामें बुद्धि, युक्ति और विमर्श-शक्तिका भी पर्याप्त सम्बन्ध दीखता है।

रोहिणी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ^१। वसुदेवजीके द्वारा माता देवकीके गर्भसे मैंने जन्म लिया। यह दिन संसारमें जन्माएँगी नामसे विख्यात होगा। प्रथम यह व्रत मधुरामें प्रसिद्ध हुआ और बादमें सभी स्त्रीलोकोंमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी। इस व्रतके करनेसे संसारमें शान्ति होगी, सुख प्राप्त होगा और प्राणिवर्ग रोगरहित होगा।

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप इस व्रतका विधान बतलायें, जिसके करनेसे आप प्रसन्न होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस एक ही व्रतके कर लेनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रतके पहले दिन दत्तधावन आदि करके व्रतका नियम ग्रहण करे। व्रतके दिन मध्याह्नमें स्नानकर माता भगवती देवकीका एक सूतिका-गृह बनायें। उसे पद्मरागमणि और बनमाला^२ आदिसे सुशोभित करे। गोकुलकी भाँति गोप, गोपी, घण्टा, मृदङ्ग, शङ्कु और माझल्य-कलश आदिसे समन्वित तथा अलंकृत सूतिका-गृहके द्वारपर रक्षाके लिये खड़, कृष्ण छाग, मुशल आदि रखें। दीवालोंपर स्थानिक आदि माझलिक चिह्न बना दें। बहीदेवीकी भी नैवेद्य आदिके साथ स्थापना करें। इस प्रकार यथाशक्ति उस सूतिकागृहको विभूषितकर बीचमें पर्यङ्कके ऊपर मुझसहित अर्धसुपावस्थावाली, तपस्विनी माता देवकीकी प्रतिमा स्थापित करें। प्रतिमाएँ आठ प्रकारकी होती हैं—स्वर्ण, चाँदी, ताप्र, पीतल, मूर्तिका, काष्ठकी, मणिमयी तथा चित्रमयी। इनमेंसे किसी भी वस्तुकी सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा बनाकर स्थापित करें। माता देवकीका स्तनपान करती हुई बालस्वरूप मेरी प्रतिमा उनके समीप पलैंगके ऊपर स्थापित करें। एक कन्याके साथ माता यशोदाकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की जाय। सूतिका-मण्डपके ऊपरकी भित्तियोंमें देवता, प्रह, नाग तथा विश्वधर आदिकी मूर्तियाँ हाथोंसे पुण्य-वर्षा करते हुए बनायें। वसुदेवजीको भी सूतिकागृहके बाहर खड़ और ढाल थारण किये चित्रित करना चाहिये। वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अवतार हैं और देवकी माता

अदितिकी। बलदेवजी शेषनागके अवतार हैं, नन्दबाबा दक्षप्रजापतिके, यशोदा दितिकी और गर्गमुनि ब्रह्माजीके अवतार हैं। कंस कालनेमिका अवतार हैं। कंसके पहरेदारोंको सूतिकागृहके आस-पास निद्रावस्थामें चित्रित करना चाहिये। गौ, हाथी आदि तथा नाचती-गाती हुई अपसराओं और गच्छवेंकी प्रतिमा भी बनायें। एक और कालिय नागको यमुनाके हृदयमें स्थापित करें।

इस प्रकार अस्त्वन रमणीय नवसूतिका-गृहमें देवी देवकीका स्थापनकर भक्तिसे गम्भ, पुण्य, अक्षत, धूप, नारियल, दाढ़िम, ककड़ी, बीजपूर, सुपारी, नारंगी तथा फलस आदि जो फल उस देशमें उस समय प्राप्त हों, उन सबसे पूजनकर माता देवकीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

गायद्विः किञ्चरादैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-

भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्दैः पर्यङ्के स्वासृते या मुदिततरमनाः पुणिणी सम्यगास्ते

सा देवी देवमाता जयति सुखदना देवकी कान्तरूपा ॥

(उत्तरपर्व ५५। ४२)

‘जिनके चारों ओर किनर आदि अपने हाथोंमें वेणु तथा वीणा-वाद्योंके द्वारा सुनि-गान कर रहे हैं और जो अभियेक-पात्र, आदर्श, मङ्गलमय कलश तथा चैवर हाथोंमें लिये श्रेष्ठ मुनिणणोंद्वारा सेवित हैं तथा जो कृष्ण-जननी भलीभाँति विछेहुए पलैंगपर विराजमान हैं, उन कमलीय स्वरूपवाली सुखदना देवमाता अदिति-स्वरूपा देवी देवकीकी जय हो।’

उस समय यह ध्यान करे कि कमलासना लक्ष्मी देवकीके चरण दबा रही हों। उन देवी लक्ष्मीकी—‘ऋमो देवै महादेवै शिवायै सततं नमः।’ इस मन्त्रसे पूजा करें। इसके बाद ‘ॐ देवकै नमः, ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ सुभद्राय नमः, ॐ नन्दाय नमः तथा ॐ यशोदाय नमः’—इन नाम-मन्त्रोंसे सबका अलग-अलग पूजन करें।

१-सिंहशिराते सूर्ये गगने जलदाकुले। मासि भाद्रपदे उष्टम्ये कृष्णपक्षे उर्ध्वशत्रके।

(उत्तरपर्व ५५। ४४)

२-आज्ञानुलमिनी ऋतु-पुण्योक्ती माला और पद्मराग, मुत्ता आदि पञ्चमियोंकी माला तथा तुलसीपत्रमिश्रित विविध पुण्योंकी मालाओंसे भी

बनमाला, जयमाला और वैजयन्ती माला कहा गया है।

कुछ लोग चन्द्रमाके उदय हो जानेपर चन्द्रमाको अर्च्य प्रदान कर हरिका ध्यान करते हैं, उन्हें निम्नलिखित मन्त्रोंसे हरिका ध्यान करना चाहिये—

अनर्थ बामनं शौरि वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् ।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूहनम् ॥
वाराहं पुण्डरीकाशं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम् ।
द्यमोदरं पदानार्थं केशवं गस्तुचक्रजम् ॥
गोविन्दप्रचुतं कृष्णमनन्तमपराजितम् ।
अधोक्षजं जगद्वीजं सर्गस्थित्यनन्तकारणम् ॥
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् ।
नारायणं चतुर्वर्णं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥
पीताम्बरधरं नित्यं बनमालाविभूषितम् ।
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् ॥

(उत्तरपर्व ५५। ४६—५०)

—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके 'योगेश्वराय योगसम्भवाय योगपतये गोविन्दाय नमः'—इस मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान करना चाहिये। अनन्तर 'यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमः'—इस मन्त्रसे अनुलेपन, अर्च्य, धूप, दीप आदि अर्पण करे। तदनन्तर 'विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमः'। इस मन्त्रसे नैवेद्य निवेदित करे। दीप अर्पण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—'धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमः'।

इस प्रकार वेदीके ऊपर रोहिणी-सहित चन्द्रमा, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा और बलदेवजीका पूजन करे, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। चन्द्रोदयके समय इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्च्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्षवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्रत्व ।

गृहणार्थं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहिते नमः ॥

(उत्तरपर्व ५५। ५४)

आधी रातको गुड़ और धीसे बसोर्धारिकी आहुति देकर पाष्ठोदेवीकी पूजा करे। उसी क्षण नामकरण आदि संस्कार भी करने चाहिये। नवमीके दिन प्रातःकाल मेरे ही समान भगवतीका भी उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर 'कृष्णो मे प्रीयताम्' कहकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये और यह मन्त्र भी पढ़ना चाहिये—

यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीवनत् ।

भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्यै ब्रह्मात्मने नमः ॥

(उत्तरपर्व ५५। ६०)

इसके बाद ब्राह्मणोंको बिदा करे और ब्रह्मण कहे—'शान्तिरस्तु शिवं चास्तु ।'

धर्मनन्दन ! इस प्रकार जो मेरा भक्त पुरुष अथवा नारी देवी देवकीके इस महोत्सवको प्रतिवर्ष करता है, वह पुरुष, संतान, आरोग्य, धन-धान्य, सटगृह, दीर्घ आयुष्य और गम्य तथा सभी मनोरथोंको प्राप्त करता है। जिस देशमें यह उत्सव किया जाता है, वहाँ जन्म-मरण, आवागमनकी व्याधि, अवृष्टि तथा ईति-भीति आदिका कभी भय नहीं रहता। मेघ समयपर वर्षा करते हैं। पाण्डुपुत्र ! जिस घरमें यह देवकी-ब्रत किया जाता है, वहाँ अकालमृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा वैधव्य, दीर्घाय एवं कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस ब्रतको करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इसे ब्रतके करनेवाले संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें निवास करते हैं।

(अध्याय ५५)

दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीब्रतका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको अल्पान्त पवित्र दूर्वाष्टमीब्रत होता है। जो पुरुष इस पुण्य दूर्वाष्टमीका श्रद्धापूर्वक ब्रत करता है, उसके वंशका साय नहीं होता। दूर्वाके अद्भुतोंकी तरह उसके कुलकी वृद्धि होती रहती है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—लोकनाथ ! यह दूर्वा

कहाँसे उत्पन्न हुई ? कैसे विरायु हुई तथा यह क्यों पवित्र मानी गयी और लोकमें वन्द्य तथा पूज्य कैसे हुई ? इसे भी बतानेकी कृपा करे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देवताओंके द्वारा अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीर-सागरके मध्ये जानेपर भगवान् विष्णुने अपनी जंघापर हाथसे पकड़कर मन्दराचलको धारण किया

था । मन्दराचलके बेगसे भ्रमण करनेके कारण रगड़से विष्णु भगवान्के जो रोम उत्थानकर समुद्रमें गिरे थे, पुनः समुद्रकी लहरोंद्वारा उछाले गये वे ही रोम हरित वर्णके सुन्दर एवं शुभ दूर्वाकि रूपमें उत्थान हुए । उसी दूर्वापर देवताओंने मन्थनसे उत्थन अमृतका कुम्ह रखा, उससे जो अमृतके बिन्दु गिरे, उनके स्पर्शसे वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी । वह देवताओंके लिये पवित्र तथा बन्ध तुई । देवताओंने भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमीको गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, खञ्जूर, नारिकेल, द्राक्षा, कपिस्थ, नारंग, आप्र, बीजपूर, दाङिम आदि फलों तथा दही, अक्षत, माला आदिसे निष्ठ मन्त्रोद्घारा उसका पूजन किया—

त्वं दूर्वाष्टमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः ।
सौभाग्यं संतानि कृत्वा सर्वकार्यकरी भव ॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विसृतासि महीतले ।

मासिक कृष्णाष्टमी^१-ब्रतोंकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! अब आप समस्त पापों तथा भयोंके नाशक, धर्मप्रद और भगवान् शंकरके प्रतिकारक मासिक कृष्णाष्टमी-ब्रतोंके विधानका श्रवण करें । मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासके नियम ग्रहणकर जितेन्द्रिय और क्रोधरहित हो गुरुकी आज्ञानुसार उपवास करे । मध्याह्नके अनन्तर नदी आदिमें ऊनकर गन्ध, उत्तम पुण्य, गुणुल धूप, दीप अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा ताम्रबूल आदि उपचारोंसे शिवलिङ्गका पूजनकर काले तिलोंसे हवन करे । इस मासमें शंकरजीका पूजन करे और गोमूत्र-पानकर गोत्रिमे भूमिपर शवन करे, इससे आतिशत्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है । पौष मासकी कृष्णाष्टमीको शम्भु नामसे महेश्वरका पूजनकर घृत प्राशन करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है । माघ मासकी कृष्णाष्टमीको महेश्वर नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोदुर्घ प्राशन करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीमें महादेव नामसे उनका पूजनकर तिल भक्षण करनेसे आठ गणसूय यज्ञोंका फल प्राप्त

तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरापरे ॥

(उत्तरपर्व ५६ । १२-१३)

देवताओंके साथ ही उनकी पत्नियाँ तथा अप्सराओंने भी उसका पूजन किया । मर्त्यलोकमें वेदवती, सीता, दमयन्ती आदि लियोंके द्वारा भी सौभाग्यदायिनी यह दूर्वा पूजित (वन्दित) हुई और सभीने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया । जो भी नारी ऊनकर शुद्ध वस्त्र धारणकर दूर्वाका पूजन कर तिलपिण्ड, गोधूम और सप्तधान्य आदिका दानकर ब्राह्मणको भोजन करती है और श्रद्धासे इस पुण्य तथा संतानकारक दूर्वाष्टमी-ब्रतको करती है वह पुत्र, सौभाग्य—धन आदि सभी पदार्थोंके प्राप्तकर बहुत कालतक संसारमें सुख भोगकर अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गमें जाती है और प्रलयपर्वत वहाँ निवास करती है तथा देवताओंके द्वारा आनन्दित होती है ।

(अध्याय ५६)

होता है । चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीमें स्थानु नामसे शिवका पूजनकर यवका भोजन करनेसे अश्रमेध यज्ञका फल मिलता है । वैशाख मासकी कृष्णाष्टमीमें शिव नामसे इनका पूजनकर गोत्रिमे कुशोदक-पान करनेसे दस पुरुषेमें यज्ञोंका फल मिलता है । ज्येष्ठ मासकी कृष्णाष्टमीमें पशुपति नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोशृंगजलका पान करनेसे लाख गोदानका फल मिलता है । आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें उत्र नामसे शंकरका पूजनकर गोमय प्राशन करनेवाला दस लाख वर्षसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें निवास करता है । श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीमें शर्व नामसे भगवान् शंकरकी पूजाकर गोत्रिमे अर्क प्राशन करनेसे बहुत-सा सुवर्ण-दान किये जानेवाले यज्ञका फल मिलता है । भाद्रपद मासकी कृष्णाष्टमीमें त्र्यम्बक नामसे इनकी पूजाकर एवं विल्वपत्रका भक्षण करनेसे अम्र-दानका फल मिलता है । आश्चिन मासकी कृष्णाष्टमीमें भव नामसे भगवान् शंकरका यज्ञकर तप्तुलोदकका पान करनेसे सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार

१-यह श्रीकृष्णभगवान्मासोंमें भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत ब्रत है । इसके माहिमा तथा अनुष्ठान-विधिका वर्णन मल्यपुराण, अध्याय ५६, नारदपुराण, सौरपुराण इ४ । १-३६, ब्रत-कल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है । विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये । ज्योतिष्यप्रथमों और पुराणोंके अनुसार अष्टमी तिथिके रूपामी शिव ही है । अतः अष्टमी तथा चतुर्दशीको उनकी उपासना विशेष कल्याणकारिणी होती है ।

कार्तिक मासकी कृष्णाष्टमीमें रुद्र नामसे भगवान् शंकरकी भक्तिसे पूजाकर गत्रिमें दहीका प्राशन करनेसे अग्रिष्ठोम यज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार बारह महीने शिवजीका पूजन कर अन्तमें शिवभक्त ब्राह्मणोंको घृत, शर्करायुक्त पायस भोजन कराये तथा यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र आदि उनको देकर प्रसन्न करे। करते तिलसे पूर्ण बारह कलश, छाता, जूता तथा चख आदि ब्राह्मणोंको देकर दूध देनेवाली सवत्सा एक कृष्ण वर्णकी गौ भी महादेवजीको निवेदित करे। इस मासिक कृष्णाष्टमी-ब्रतको जो एक वर्षतक निरन्तर करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर

उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है और सौ वर्षपर्यन्त संसारके आनन्दोंका उपभोग करता है। इसी ब्रतका अनुष्ठान कर इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्म तथा विष्णु आदि देवताओंने उत्तम-उत्तम पदोंको प्राप्त किया है। जो स्त्री-पुरुष इस ब्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं वे उत्तम विमानमें बैठकर देवताओंद्वारा सुत होते हुए शिवलोकमें जाते हैं और भगवान् शंकरके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। वहाँ आठ कल्पपर्यन्त निवास करते हैं और जो इस ब्रतके माहात्म्यको सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ५७)

अनधाष्टमी-ब्रतकी कथा एवं विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाग्रज ! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीके महातेजस्ती अत्रि पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। अत्रिकी भार्याकी नाम था अनसूया, वह महान् भाग्यशालिनी एवं पतित्रिता थी। कुछ कालके बाद उनके महातेजस्ती पुत्र दत्त हुए। दत्त महान् योगी थे। ये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम था अनघ। इनकी भार्याकी नाम था नदी। ब्राह्मणोंके सभी गुणोंसे सम्पन्न इनके आठ पुत्र थे। 'दत्त' विष्णु-रूपमें थे तथा 'नदी' लक्ष्मीकी रूप थीं। दत्त अपनी भार्या नदीके साथ योगाभ्यासमें लीन थे, उसी समय जंभै नामक दैत्यसे पीड़ित तथा पराजित देवता विष्वगिरिमें स्थित इनके आश्रममें आये और उन्होंने इनकी शरण ग्रहण की। दत्तात्रेयजीने इनके साथ उन सभी देवताओंको अपने योगबलसे अपने आश्रममें रख लिया और कहा—'आपलोग निर्भय तथा निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।' देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे वहाँ रहने लगे।

दैत्य-समुदाय भी देवताओंको खोजते-खोजते इसी आश्रमपर आ पहुंचा। वे क्रोधपूर्वक ललकारकर कहने लगे—'इस मुनिकी पलीको पकड़ लो और यह साग आश्रम उड़ाङ डालो।' यह कहते हुए दैत्यगण आश्रममें घुस गये और उनकी पलीको उठाकर अपने सिरपर रखकर चल पड़े। लक्ष्मीको सिरपर उठाते ही सभी दैत्य श्रीहीन हो गये और

दत्तकी दृष्टि पड़नेसे वे सभी दैत्य भागने और नह रहने लगे। देवताओंने भी उन्हें मारना प्रारम्भ कर दिया। निशेष होकर दैत्यगण हाहाकार करने लगे। दत्तमुनिके प्रभावसे वहाँ प्रलय मच गया। इन्द्रादि देवताओंने सभी असुरोंको पराजित कर दिया और फिर वे सभी अपने-अपने लोक चले गये तथा पूर्ववत् आनन्दसे रहने लगे। देवताओंने उन भगवान् दत्तात्रेयकी महिमा और प्रभावको ही इसमें कारण माना।

दत्तात्रेयजी भी संसारके कल्प्याणके लिये कृष्णबाहु होकर कठिन तपस्या करने लगे। वे योगमार्गका आश्रय सेवक ध्यान-समाधिमें स्थित हो गये। इसी प्रकार समाधिमें उन्हें तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माहिष्मतीके राजा हैह्याधिष्ठित कार्तवीर्यार्जुन उनके पास आया और रात-दिन उनकी सेवा करने लगा। दत्त उनकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी याचनापर उसे चार वर प्रदान किये—पहला वर था हजार हाथ हो जायै, दूसरे वरसे सारी पृथ्वीको अधर्मसे बचाते हुए धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करना। तीसरे वरसे लडाईके मैदानमें किसीसे पराजित न होना तथा चौथे वरसे भगवान् विष्णुके हाथों मृत्यु होना।

कौन्तेय ! योगाभ्यासमें लीन उन दत्तमुनिने कार्तवीर्यार्जुनको अष्टसिद्धियोंसे समन्वित चक्रवर्ती-पदवाले गणको प्रदान किया। कार्तवीर्यार्जुनने भी सप्तद्वीपा

१-यह अनेक गुहासोका नाम है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत ६। १८। १२, ब्रह्माण्ड ३। ६। १०, वायु० १७। १०३, मल्ल० ४७। ७२ और विष्णु० ४। ६। १४ आदि पुराणोंमें आकृत है। इसे हक्कने माया था, अतः हक्कन एक नाम जंभपेटी भी है।

वसुमतीको धर्मपूर्वक अपने अधीन कर लिया। यह सब उसके हजार बाहुओंका प्रभाव था। वह अपनी मायाद्वारा यज्ञोंके माध्यमसे ध्वजावाला रथ उत्पन्न कर लेता था। उसके प्रभावसे सभी द्वीपोंमें दस हजार यज्ञ निरन्तर होते रहते थे। उन यज्ञोंकी वेदियाँ, यूप तथा मण्डप आदि सभी सोनेके रहते थे। उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी जाती थीं। विमानमें बैठकर सभी देवता, गन्धर्व तथा अपराह्ण पृथ्वीपर आकर यज्ञकी शोभा बढ़ाते रहते थे। नारद नामक गन्धर्व उसके यज्ञकी गाथा इस प्रकार गाया करता था—‘कर्त्तवीर्यकि पराक्रमकी बात सुननेसे यह पता चलता है कि संसारका कोई भी राजा उसके समान यज्ञ, दान तथा तप नहीं कर सकता। सातों द्वीपोंमें केवल वही ढाल, तलवार तथा धनुष-बाणवाला है। जैसे बाज पक्षीको अन्य पक्षी डरसे अपने समीप ही समझते हैं, वैसे ही अन्य राजा लोग दूरसे ही इससे भय खाते हैं। इसकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती, इसके गुणमें न कहीं शोक दिखायी पड़ता है न कोई कलान्त ही। यह अपने प्रभावसे पृथ्वीपर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता है।’

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले— नराधिप ! कर्त्तवीर्य इस पृथ्वीपर पचासी हजार वर्षतक अखण्ड शासन करता रहा। वह अपने योगबलसे पशुओंका पालक तथा खेतोंका रक्षक भी था। समयानुसार मेघ बनकर बृष्टि भी करता था। धनुषकी प्रत्यङ्गाके आवातसे कठोर त्वचायुक्त अपनी सहस्रों भुजाओंद्वारा वह सूर्यके समान उद्भासित होता था। उसने अपनी हजार भुजाओंके बलसे समुद्रको मथ डाला और नागलोकमें कर्कोटक आदि नागोंको जीतकर वहाँ भी अपनी नगरी बसा ली। उसकी भुजाओंद्वारा समुद्रके उद्भवित होनेसे पातालवासी महान् असुर भी निषेष हो जाते थे। बड़े-बड़े नाग उसके पराक्रमको देखकर सिर नीचा कर लेते थे। सभी धनुर्धरोंको उसने जीत लिया। अपने पराक्रमसे रावणको भी

उसने अपनी माहिमती नगरीमें लाकर बंटी बना रखा था, जिसे पुलस्त्य ऋषिने छुड़वाया। एक बार भूत्ये-प्यासे चित्रधानु (अग्निदेव) को राजा कर्त्तवीर्यर्जुनने समस्त सप्तद्वीपा वसुन्धराको दानमें दे दिया। इस प्रकार वह कर्त्तवीर्यर्जुन बड़ा पराक्रमी एवं गुणवान् राजा हुआ था।

योगाचार्य भगवान् अनघ (दत्तात्रेय) से वर प्राप्तकर कर्त्तवीर्यर्जुनने पृथ्वीलोकमें इस अनधाष्टमी-ब्रतको प्रवर्तित किया। अष्टको पाप कहा जाता है यह तीन प्रकारका होता है—कार्यिक, वाचिक और मानसिक। यह अनधाष्टमी त्रिविध पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये इसे अनधा कहते हैं। इस ब्रतके प्रभावसे अष्टविध ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, लघिमा, ईश्विल, वशिल तथा सर्वकामावसायिता) प्राप्त कर लेना मानो विनोद ही है।

महाराज युधिष्ठिरने पूजा—पुण्डीकाक्ष ! राजा कर्त्तवीर्यर्जुनके द्वारा प्रवर्तित यह अनधाष्टमी-ब्रत किन मन्त्रोंके द्वारा, क्य और कैसे किया जाता है ? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— राजन् ! इस ब्रतकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको कुशोंसे खीं-पुरुषकी प्रतिमा बनाकर भूमिपर स्थापित करनी चाहिये। उनमें एकमें सौम्य एवं शान्तिस्वरूपयुक्त अनघ (दत्तात्रेय) की तथा दूसरेमें अनधा (लक्ष्मी) की भावना करनी चाहिये और ऋषेदेके विष्णुसूक्तसे^१ पूजा करनी चाहिये। पूजामें फल, कन्द, शृंगारकी सामग्री, बेर, विविध धान्य, विविध पुष्पक उपयोग करना चाहिये। दीपक जलाना चाहिये तथा ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवोंको भोजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा भगवान् विष्णु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय ५८)

१-अतो देवा अवन् नो यतो विष्णुर्विचक्षमे। पृथिव्याः
इदं विष्णुर्विचक्षमे त्रेषा नि दधे पदम्। सम्हृद्यमस्य
त्रिणि पदा वि चक्षमे विष्णुर्गोपा अदाप्तः। अतो
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रह्मनि पश्यते। इत्प्रस्य
तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः। दिवीव
तद् विष्णोसो विष्णवन्यो जागृतांसः समित्यतो। विष्णोर्यत्

सप्त	धर्मधि ॥
पांसुरे ॥	
धर्माणि	वारयन् ॥
युजः	सखा ॥
	चक्षुयतम् ॥
परमं	पदम् ॥ (ऋग्वेद १। २२। १६—२१)

सोमाष्टमी-ब्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं एक दूसरा ब्रत बतला रहा हूँ, जो सर्वसम्मत, कल्याणप्रद एवं शिवलोक-प्रापक है। शुक्र पक्षकी अष्टमीके दिन यदि सोमवार हो तो उस दिन उमासहित भगवान् चन्द्रचूड़का पूजन करे। इसके लिये एक ऐसी प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये, जिसका दक्षिण भाग शिवस्वरूप और वामभाग उमा-स्वरूप हो। अनन्तर विधिपूर्वक उसे पञ्चमृतसे स्नान करकर उसके दक्षिणभागमें कर्ष्णरथुक्त चन्दनका उपलेपन करे। श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाये और श्रुतमें पकाये गये नैवेद्यका भोग लगाये। पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे उमासहित भगवान् चन्द्रचूड़की आरती करे। उस दिन निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः इसी प्रकार पूजन सम्पन्न कर तिल तथा धीसे हवन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यथाशक्ति सप्तलीक ब्राह्मणकी पूजा करे और पितरोंका भी अर्चन करे। एक वर्षतक इस प्रकार ब्रत करके एक त्रिकोण तथा दूसरा चतुर्भुज (चौकोर) मण्डल बनाये। त्रिकोणमें भगवती पार्वती तथा चौकोर मण्डलमें भगवान् शंकरको स्थापित करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिके अनुसार पार्वती एवं शंकरकी पूजा करके श्वेत एवं पीत वस्त्रके दो वितान, पताका, घण्टा, धूपदानी, दीपमाला आदि पूजनके उपकरण ब्राह्मणको समर्पित

करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र, आभूषण, भोजन आदिसे पूजनकर पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे धीर-धीर नीराजन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पाँच वर्षांतक या एक वर्ष ही ब्रत करनेसे ब्रती उमासहित शिवलोकमें निवास कर अनामय पद प्राप्त करता है। जो पुरुष आजीवन इस ब्रतको करता है, वह तो साक्षात् विष्णुरूप ही हो जाता है। उसके समीप आपत्ति, शोक, ज्वर आदि कभी नहीं आते। इतना विधान कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज ! इसी प्रकार गविवार-युक्त अष्टमीका भी ब्रत होता है। उस दिन एक प्रतिमाके दक्षिण भागमें शिव और वाम भागमें पार्वतीकी पूजा करे। दिव्य पद्मरागसे भगवान् शंकरको और सुवर्णसे पार्वतीको अलंकृत करे। यदि रत्नोंकी सुविधा न हो सके तो सुवर्ण ही चढ़ाये। चन्दनसे भगवान् शिवको और कुंकुमसे देवी पार्वतीको अनुलिप्त करे। भगवती पार्वतीको लाल वस्त्र और लाल माला तथा भगवान् शंकरको रुद्राक्ष निवेदित कर नैवेद्यमें धूतपक्व पद्मार्थ निवेदित करे। शेष सारा विधान पूर्ववत् कर पारण गव्य-पदार्थोंसे करे। उद्यापन पूर्वीत्या करना चाहिये। इस ब्रतको एक वर्ष अथवा लगातार पाँच वर्ष करनेवाला सूर्य आदि लोकोंमें उत्तम भोगको प्राप्तकर अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। (अध्याय ५९)

—४४३—

श्रीवृक्षनवमी-ब्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! देवता और दैत्योंने जय समुद्र-मन्थन किया था, तब उस समय समुद्रसे निकली हुई लक्ष्मीको देखकर सभीकी यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मीको प्राप्त कर लौं। लक्ष्मीकी प्राप्तिको लेकर देवता और दैत्योंमें परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मीने कुछ देरके लिये विल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया। भगवान् विष्णुने सभीको जीतकर लक्ष्मीका वरण किया। लक्ष्मीने विल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण किया था, इसलिये उसे श्रीवृक्ष भी कहते हैं। अतः भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी नवमी तिथिको श्रीवृक्ष-नवमीब्रत करना चाहिये। सूर्योदयके समय भक्तिपूर्वक अनेक पुष्पों, गन्ध, वस्त्र, फल, तिलपिण्ड, अश्र, गोधूम,

धूप तथा माला आदिसे निप्रलिपित मन्त्रसे विल्ववृक्षकी पूजा करे—

**श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ ।
ममाभिलिपिं कृत्वा सर्वविप्रहरो भव ॥**

इस विधिसे पूजा कर श्रीवृक्षकी सात प्रदक्षिणा कर उसे प्रणाम करे। अनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर 'श्रीदेवी प्रीयताम्' ऐसा कहकर प्रार्थना करे। तदनन्तर स्वयं भी तेल और नमकसे रहित बिना अप्रिके संयोगसे तैयार किया गया भोजन, दही, पुष्प, फल आदिको मिट्ठीके पात्रमें रखकर मौन हो ग्रहण करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो पुरुष या स्त्री श्रीवृक्षका पूजन करते हैं, वे अवश्य ही सभी सम्पत्तियोंको प्राप्त करते हैं।

(अध्याय ६०)

ध्वजनवमी-ब्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! भगवती दुर्गाद्वारा महिषासुरके वध किये जानेपर दैत्योंने पूर्व-वैरका स्मरण कर देवताओंके साथ अनेक संग्राम किये । भगवतीने भी धर्मकी रक्षाके लिये अनेक रूप धारण कर दैत्योंका संहार किया । महिषासुरके पुत्र रत्नसुरने बहुत लम्बे समयतक घोर तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे तीनों लोकोंका राज्य दे दिया । उसने वर प्राप्ताकर दैत्योंको एकत्रित किया तथा इन्हेंके साथ युद्ध करनेके लिये अमरवतीपर आक्रमण कर दिया । देवताओंने देखा कि दैत्य-सेना युद्धके लिये आ रही है, तथा वे भी एकत्रित होकर देवगण इन्हेंकी अध्यक्षतामें युद्धके लिये आ डटे । घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । दानवोंने इतना भयंकर युद्ध किया कि देवगण रण छोड़कर भाग गये । दैत्य रत्नसुर अमरवतीको अपने अधीन कर राज्य करने लगा । देवगण वहाँसे भागकर करक्षत्रापुरीमें गये, जहाँ भववल्लभा दुर्गा निवास करती है । चामुण्डा भी नवदुग्धके साथ वहाँ विवाहमान रहती है । वहाँ देवताओंने महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, आमरी, चन्द्रमङ्गला, रेखती और हरीसिद्धि—इन नीं दुर्गाओंकी भक्तिपूर्वक सूति करते हुए कहा—‘भगवति ! इस घोर संकटसे आप हमारी रक्षा करें, हमारे लिये अब दूसरा कोई भी अव्यालम्ब नहीं है ।’

देवताओंकी यह आर्त वाणी सुनकर वीस भुजाओंमें विभिन्न आयुध धारण किये सिंहारुद्वा नवदुग्धके साथ कुमारी-स्वरूपा भगवती प्रकट हो गयीं । तदनन्तर परम पराक्रमी और ब्रह्माजीके वरदानसे अधिमानी अधम अब्रह्मण्य प्रचण्ड दैत्यगण भी वहाँ आये, जिनमें इन्द्रमारी, गुरुकेशी, प्रलभ, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्वर, दुन्दुभि, इल्वल, नमुचि, भौम, वातापि, ऐनुक, कलि, मायावृत, बलवन्धु, कैटघ, कालजित, राहु, पौण्ड्र आदि दैत्य मुख्य थे । ये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, विविध वाहनोंपर आरूढ़ अनेक प्रकारके शस्त्र, अस्त्र और ध्वजाओंको धारण किये हुए थे । उनके आगे पण्ड, भेरी, गोमुख, शङ्ख, डमरु, डिण्डम आदि

बाजे बज रहे थे । दैत्योंने युद्ध आरम्भ कर दिया और भगवतीपर शर, शूल, परिघ, पहिंश, शक्ति, तोमर, कुत्त, शत्रुघ्नी, गदा, मुद्र आदि अनेक आयुधोंकी वृष्टि करने लगे । भगवती भी क्रोधसे प्रज्वलित हो दैत्योंका संहार करने लगीं । उनके ध्वज आदि विहङ्गोंको बलपूर्वक छीनकर देवगणोंको सौंप दिया । क्षणभरमें ही उन्होंने अनन्त दैत्योंका नाश कर दिया । रत्नसुरके कण्ठको पकड़कर पृथ्वीपर पटककर त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया । वचे हुए दैत्यगण वहाँसे जान बचाकर भाग निकले । इस प्रकार देवीकी कृपासे देवताओंने विजय प्राप्तकर करछापुरमें आकर भगवतीका विशेष उत्सव मनाया । नगर तोरणों और ध्वजाओंसे अलंकृत किया गया । राजन् ! जो नवमी तिथिको उपवासकर भगवतीका उत्सव करता है तथा उन्हें ध्वज अर्पण करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है ।

महाराज ! अब इस ब्रतकी विधि सुनिये । पौष मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको स्नानकर पूजाके लिये पुण्य अपने हाथसे चुने और उनसे सिंहवाहिनी कुमारी भगवतीका पूजन करे साथ ही विविध ध्वजाओंको भगवतीके सम्मुख स्थापित करे और मालाती-पूष्ण, धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन, विविध फल, माला, बस्त्र, दधि एवं विना अग्निसे सिद्ध विविध भक्ष्य भगवतीको निवेदित करे एवं इस मन्त्रको पढ़े—

स्त्रां भगवतीं कृष्णां प्रहं नक्षत्रमालिनीम् ।
प्रपत्नोऽहं शिवां रात्रि सर्वशत्रुक्षयंकरीम् ॥

—फिर कुमारियों और देवीभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये, क्षमा-प्रार्थना करे, उपवास करे या भक्तिपूर्वक एकभुक्त रहे । इस प्रकारासे जो पुण्य नवमीको उपवास करता है और ध्वजाओंसे भगवतीको अलंकृत कर उनकी पूजा करता है, उसे चोर, अग्नि, जल, राजा, शान्त्रु आदिका भय नहीं रहता । इस नवमी तिथिको भगवतीने विजय प्राप्त की थी, अतः यह नवमी इहें बहुत प्रिय है । जो नवमीको भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा कर इन्हें ध्वजारोपण करता है, वह सभी प्रकारके सुखोंको भोगकर अनन्त वीरलोकको प्राप्त होता है । (अध्याय ६१)



उल्का-नवमी-ब्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप उल्का-नवमी-ब्रतके विषयमें सुनें। आस्थिन मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदीमें खानकर पितुदेवीकी विधिपूर्वक अर्चना करे। अनन्तर गन्ध, पुण्य, धूप, नैवेद्य आदिसे घैरव-प्रिया चामुण्डादेवीकी पूजा करे, तदनन्तर इस मन्त्रसे हाथ जोड़कर सुनि करे—

महिषाशि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि ।
द्रव्यमारोम्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ६२ । ५)

इसके बाद यथाशक्ति सात, पाँच या एक कुमारीको भोजन कराकर उन्हें नीला कंचुक, आभूषण, वस्त्र एवं दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। श्रद्धासे भगवती प्रसन्न होती है। अनन्तर भूमिका अध्युक्षण करे। तदनन्तर गोबरका चौका लगाकर आसनपर बैठ जाय। सामने पात्र रखकर, जो भी

भोजन बना हो सारा परोस ले, फिर एक मुद्दी तृण और सूखे पत्तोंको अग्निसे प्रज्वलित कर जितने समयतक प्रकाश रहे उत्तने समयमें ही भोजन सम्पन्न कर ले। अग्निके शान्त होते ही भोजन करना बंद कर आचमन करे। चामुण्डाका हृदयमें ध्यानकर प्रसत्रातापूर्वक घरका कार्य करे। इस प्रकार प्रतिमास ब्रतकर वर्षके समाप्त होनेपर कुमारी-पूजा करे तथा उन्हें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर उनसे क्षमा-याचना करे। ब्राह्मणको सुखर्ण एवं गौका दान करे। हे पार्थ ! इस प्रकार जो पुरुष उल्का-नवमीका ब्रत करता है, उसे शत्रु, अग्नि, राजा, चौर, भूत, प्रेत, पिशाच आदिका भय नहीं होता एवं युद्ध आदिमें उत्सर्ज शास्त्रोंका प्रहर नहीं लगता, देवी चामुण्डा उसकी सर्वत्र रक्षा करती है। इस उल्का-नवमी-ब्रतको करनेवाले पुरुष और खी उल्काकी तरह तेजस्वी हो जाते हैं।

(अध्याय ६२)

दशावतार-ब्रत-कथा, विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! सत्ययुगके प्रारम्भमें भृगु नामके एक ऋषि हुए थे। उनकी भार्या दिव्या^१ अत्यन्त पतित्रिता थीं। वे आश्रमकी शोधा थीं और निरन्तर गृहकार्यमें संलग्न रहती थीं। वे महर्षि भृगुकी आजाका पालन करती थीं। भृगुजी भी उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

किसी समय देवासुर-संघाममें भगवान् विष्णुके द्वाय असुरोंको महान् भय उपस्थित हुआ। तब वे सभी असुर महर्षि भृगुकी शरणमें आये। महर्षि भृगु अपना अग्निहोत्र आदि कार्य अपनी भार्याको सौंपकर स्वयं संजीवनी-विद्याको प्राप्त करनेके लिये हिमालयके उत्तर भागमें जाकर तपस्या करने लगे। वे भगवान् शंकरकी आराधना कर संजीवनी-विद्याको प्राप्त कर दैत्यराज बलिको सदा विजयी करना चाहते थे। इसी समय गरुडपर चढ़कर भगवान् विष्णु वहाँ आये और दैत्योंका वध करने लगे। क्षणभरमें ही उन्होंने दैत्योंका संहार कर दिया। भृगुकी पत्नी दिव्या भगवान्को शाप देनेके लिये उद्यत हो गयी। उनके मुखसे शाप निकलना ही चाहता था कि भगवान् विष्णुने चक्रसे उनका सिर कट दिया। इतनेमें भृगुमुनि भी

संजीवनी-विद्याको प्राप्तकर वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि सभी दैत्य मारे गये हैं और ब्राह्मणी भी मार दी गयी है। क्रोधाभ्य हो भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दे दिया कि 'तुम दस बार मनुष्यलोकमें जन्म लोगे।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! भृगुके शापसे जगत्की रक्षाके लिये मैं बार-बार अवतार ग्रहण करता हूँ। जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करते हैं, वे अवश्य स्वर्गानामी होते हैं।

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आप अपने दशावतार-ब्रतका विधान कहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको संयतेन्द्रिय हो नदी आदिमें खान कर तर्पण सम्पन्न करे तथा घर आकर तीन अशुलि धान्यका चूर्ण लेकर धूतमें पकाये। इस प्रकार दस वर्षोंके प्रतिवर्ष करे। प्रतिवर्ष क्रमशः पूरी, घेवर, कसार, मोदक, सोहालक, खण्डवेष्टक, कोकरस, अपूप, कर्णवीष्ट तथा खण्डक—ये पक्वान्न उस चूर्णसे बनाये और उसे भगवान्को

१-भगवत्, विष्णु आदि पुण्योंमें भृगु-पत्नीका नाम 'चुम्पि' आया है।

नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। प्रत्येक दशहराको दस गौड़े, दस ब्राह्मणोंको दे। नैवेद्यका आधा भाग भगवान्के सामने रखा दे, चौथाई ब्राह्मणको दे और चौथाई भाग पवित्र जलाशयपर जाकर बादमें स्वयं भी ग्रहण करे। गन्ध, पुण्य, धूप, दीप आदि उपचारोंसे मन्त्रपूर्वक दशावतारोंका पूजन करे। भगवान्के दस अवतारोंके नाम इस प्रकार हैं—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नूसिंह, (५) त्रिविक्रम (बामन), (६) परशुराम, (७) श्रीराम, (८) श्रीकृष्ण, (९) बुद्ध तथा (१०) कलिक।

अनन्तर प्रार्थना करे—

गतोऽस्मि शरणं देवं हरि नारायणं प्रभुम्।

प्रणतोऽस्मि जगद्रावं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥

आशादशमी-ब्रत-कथा एवं ब्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! अब मैं आपसे आशादशमी-ब्रत-कथा एवं उसके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें निषष्ठ देशमें नल नामके एक राजा थे। उनके भाई पुष्करने द्यूतमें जब उन्हें पराजित कर दिया, तब नल अपनी भार्या दमयन्तीके साथ राज्यसे बाहर चले गये। वे प्रतिदिन एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते रहते थे, केवल जलमात्रसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे और जनशून्य भयंकर बनोंमें घूमते रहते थे। एक बार राजाने वनमें स्वर्ण-सी कलिन्दियाले कुछ पक्षियोंको देखा। उन्हें पकड़नेकी इच्छासे राजाने उनके ऊपर वस्त्र फैलाया, परंतु वे सभी उस वस्त्रको लेकर आकाशमें उड़ गये। इससे राजा बड़े दुखी हो गये। वे दमयन्तीको गाढ़ निद्रामें देखकर उसे उसी शिथितमें छोड़कर चले गये।

दमयन्तीने निद्रासे उठकर देखा तो नलको न पाकर वह उस ओर वनमें हाहाकार करते हुए रोने लगी। महान् दुःख और शोकसे संताप होकर वह नलके दर्शनोंकी इच्छासे इधर-उधर भटकने लगी। इसी प्रकार कई दिन श्रीत गये और भटकते हुए वह चेदिदेशमें पहुँची। वहाँ वह उन्मत्त-सी रहने लगी। छोटे-छोटे शिशु उसे कैतुकवश धेरे रहते थे। किसी दिन मनुष्योंसे चिरी हुई उसे चेदिदेशके राजाकी माताने देखा। उस

ठिनत्तु वैष्णवीं मायां भवत्या ग्रीतो जनार्दनः ।
क्षेत्रद्वीपं नयत्वस्मान्यथात्मा विनिवेदितः ॥

(उत्तरपर्व ६३ । २४-२५)

'दस अवतारोंको धारण करनेवाले सर्वव्यापी, सम्पूर्ण संसारके लाली है नारायण हरि ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देव ! आप मुझपर प्रसन्न हों। जनार्दन ! आप भक्तिद्वारा प्रसन्न होते हैं। आप अपनी वैष्णवीं मायाको निवारित करे, मुझे आप अपने धाममें ले चले। मैंने अपनेको आपके लिये सौंप दिया है।'

इस प्रकार जो इस ग्रन्थको करता है, वह भगवान्के अनुग्रहसे जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और सदा विष्णुलोकमें निवास करता है। (अध्याय ६३)

समय दमयन्ती चन्द्रमाकी रेखाके समान भूमिपर पड़ी हुई थी। उसका मुखमण्डल प्रकाशित था। राजमाताने उसे अपने भवनमें बुलाकर पूछा—'वरानने ! तुम कौन हो ?' इसपर दमयन्तीने लज्जित होते हुए कहा—'मैं सैरन्धी हूँ। मैं न किसीके चरण धोती हूँ और न किसीका उच्छिष्ट भक्षण करती हूँ। यहाँ रहते हुए कोई मुझे प्राप्त करेगा तो वह आपके द्वारा दण्डनीय होगा। देखि ! इस प्रतिज्ञाके साथ मैं यहाँ रह सकती हूँ।' राजमाताने कहा—'ठीक है ऐसा ही होगा।' तब दमयन्तीने वहाँ रहना स्वीकार किया और इसी प्रकार कुछ समय ब्यतीत हुआ और फिर एक ब्राह्मण दमयन्तीको उसके माता-पिताके घर ले आया। पर माता-पिता तथा भाइयोंका छोह यानेपर भी पतिके बिना वह अत्यन्त दुःखी रहती थी।

एक बार दमयन्तीने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाकर उससे पूछा—'हे ब्राह्मणदेवता ! आप कोई ऐसा दान एवं ब्रत बतालायें, जिससे मैं पति मुझे प्राप्त हो जाय॑।' इसपर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने कहा—'भ्रद्रे ! तुम मनोवाचिष्ठत सिद्धि प्रदान करनेवाले आशादशमी-ब्रतको करो।' तब दमयन्तीने पुण्यवेत्ता उस दमन नामक पुरोहित ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर आशादशमी-ब्रतका अनुष्ठान किया। उस ब्रतके प्रभावसे दमयन्तीने अपने पतिको पुनः प्राप्त किया।

१-दशावतारोंमें दो पक्ष प्राप्त होते हैं, एकमें भगवान् बृहदाको पूर्णतम भगवान् मानकर कैन्द्रमें रखा गया है और अन्यत्र उन्हें दस अवतारोंके भीतर ही रख लिया है। दोनों मत मान्य हैं, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—हे गोविन्द ! यह आशादशमी-ब्रत किस प्रकार और कैसे किया जाता है, आप सर्वज्ञ हैं, आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! इस ब्रतके प्रभावसे राजपुत्र अपना राज्य, कृषक खेती, विधिक् व्यापारमें लाभ, पुत्रार्थी पुत्र तथा मानव धर्म, अर्थ एवं क्रमकी सिद्धि प्राप्त करते हैं । कन्या श्रेष्ठ वर प्राप्त करती है, ब्राह्मण निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न कर लेता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और पतिके विव-प्रवास हो जानेपर उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है । शिशुके दन्तजनित पीड़ामें भी इस ब्रतसे पीड़ा दूर हो जाती है और कष्ट नहीं होता । इसी प्रकार अन्य कथाओंकी सिद्धिके लिये इस आशादशमी-ब्रतको करना चाहिये । जब भी जिस किसीको कोई कष्ट पढ़े, उसकी निवृत्तिके लिये इस ब्रतको करना चाहिये ।

यह आशादशमी-ब्रत किसी भी मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको किया जाता है । इस दिन प्रातःकाल खान करके देवताओंकी पूजा कर रात्रिमें पूष्य, अलक्ष तथा चन्द्रन आदिसे दस आशादेवियोंकी पूजा करनी चाहिये । घरके आँगनमें जौसे अथवा पिण्ठातकसे पूर्वादि दसों दिशाओंके अधिपतियोंकी प्रतिमाओंको उनके बाहन तथा अख-शर्खोंसे सुसज्जित कर उन्हें ही ऐन्द्री आदि दिशा-देवियोंके रूपमें मानकर पूजन करना चाहिये । सबको धूतपूर्ण नैवेद्य, पृथक्-पृथक् दीपक तथा छटुफल आदि समर्पित करना चाहिये । इसके अनन्तर अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

आशाक्षाशा: सदा सन्तु सिद्ध्वन्तां मे मनोरथः ।

भक्तीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्वति ॥

(तत्तरपर्व ६४ । २५)

हे आशादेवियो ! मेरी आशाएं सदा सफल हों, मेरे मनोरथ पूर्ण हों, आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरा सदा कल्याण हो ।'

इस प्रकार विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानकर प्रसाद प्रहण करना चाहिये । इसी क्रमसे प्रत्येक मासमें इस ब्रतको करना चाहिये । जबतक अपना मनोरथ पूर्ण न हो जाय, तबतक इस ब्रतको करना चाहिये । अनन्तर उद्यापन करना चाहिये । उद्यापनमें आशादेवियोंकी सोने, चौंदी अथवा पिण्ठातकसे प्रतिमा बनाकर घरके आँगनमें उनकी पूजा करके ऐन्द्री, आम्रपाली, याम्या, नैऋति, वारुणि, वायव्या, सौम्या, ऐशानी, अधि : तथा आही—इन दस आशादेवियों (दिशादेवियो) से अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, साथ ही नक्षत्रों, ग्रहों, तारामण्डों, नक्षत्र-मातृकाओं, भूत-प्रेत-विनायकोंसे भी अभीष्ट-सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये । पूष्य, फल, धूप, गन्ध, वर्ज आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये । सुहागिनी स्त्रियोंको नुत्य-गीत आदिके द्वाय रात्रि-जागरण करना चाहिये । प्रातःकाल विद्वान् ब्राह्मणको सब कुछ पूजित पदार्थ निवेदित कर देना चाहिये और उन्हें प्रणाम कर शमा-याचना करनी चाहिये । अनन्तर बस्तु-बास्तुओं एवं मित्रोंके साथ प्रसन्न-मनसे भोजन करना चाहिये । हे पार्थ ! जो इस आशादशमी-ब्रतको श्रद्धापूर्वक करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । यह ब्रत स्त्रियोंके लिये विशेष श्रेयस्कर है । (अध्याय ६४)

तारकद्वादशीके प्रसंगमे राजा कुशध्वजकी कथा तथा ब्रत-विधान

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! मैं बहुत बड़ा पातकी हूँ । भीष्म, द्रोण आदि महात्माओंका मैंने वध किया । आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं इस वधरूपी पापसमूहसे छुटकारा पा सकूँ ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें एक बड़ा प्रतापी कुशध्वज नामका राजा रहता था । किसी दिन वह मृगयाके लिये बनमें गया । वहाँ उसने मृगके थोखेमें एक तपस्वी ब्राह्मणको बाणसे मार दिया ।

मरनेके बाद उस पापसे उसे भयकर गैरव नरककी प्राप्ति हुई । फिर वह बहुत दिनोंतक नरककी यातनाको भोगकर भयकर सर्प-योनिमें गया । सर्प-योनिमें भी उसने पाप किया । इस कारण उसे सिंह-योनि प्राप्त हुई । इस प्रकार उसने कई निन्दा योनियोंमें जन्म लिया और उस-उस योनियोंमें पाप-कर्म करता रहा । इस कर्मविषाकसे उसे कष्ट भोगना पड़ता था । चैकिं उसने पूर्वजन्ममें तारकद्वादशीका ब्रत किया था, अतः उस ब्रतके प्रभावसे इन पाप-योनियोंसे वह जल्दी-जल्दी मुक्त होता

गया। अन्तमें पुनः वह विद्यर्थ देशका धर्मात्मा राजा हुआ। वह भक्तिपूर्वक तारकद्वादशीका व्रत किया करता था। उसके प्रभावसे बहुत समयतक निष्कण्टक राज्यकर, मरनेपर उसने विष्णुलोकको प्राप्त किया।

राजा युधिष्ठिरने पूजा—कृष्णचन्द्र ! इस व्रतको किस प्रकार करना चाहिये ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको तारकद्वादशी-व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें खानकर तर्पण, पूजन आदि सम्प्रभ कर सूर्यास्तक हवन करता रहे। सूर्यास्त होनेपर पवित्र भूमिके ऊपर गोमयसे ताणओसहित एक सूर्य-मण्डलका निर्माण करे। उस आकाशमें चन्द्रसे धूबकड़े भी अद्वित करे। अनन्तर ताप्रके अर्धपात्रमें पुण्य, फल, अक्षत, गन्ध, सुवर्ण तथा जल रखकर मस्तकतक उस अर्धपात्रको उठाकर दोनों जानुओंको भूमिपर टेककर पूर्वाभिमुख होकर 'सहस्रशीर्षा' इस मन्त्रसे

उस मण्डलको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः खण्ड-खाद्य, सोहालक, तिल-तण्डुल, गुडके अपूप, मोदक, खण्डवेष्टक, सत्तु, गुडयुक्त पूरी, मधुशीर्ष, पायस, धूतपर्णी (करंज) और कसारका भोजन ब्राह्मणको कराये। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना कर मैन-धारणपूर्वक स्वयं भी भोजन करे। उद्यापनमें चौंदीका तारकमण्डल बनाकर उसकी पूजा करे। मोदकके साथ बारह घड़े तथा दक्षिणाके साथ वह मण्डल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस विधिसे जो पुण्य और स्त्री इस तारकद्वादशी-व्रतको करते हैं, वे सूर्यके समान देवीयमान विमानोंमें बैठकर नक्षत्र-लोकको जाते हैं। वहाँ अयुत वर्षोंतक निवास कर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। इस व्रतको सती, पार्वती, सीता, राज्ञी, दमयन्ती, रुद्रिमणी, सत्यभामा आदि श्रेष्ठ नारियोंने किया था। इस व्रतको करनेसे अनेक जन्मोंमें किये गये पातक नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय ६५)



अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल

महाराज युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र ! आप अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—कौन्तेय ! प्राचीन कालमें जिस व्रतको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बनमें सीताजीने किया था और अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदिसे मुनिपत्रियोंको संतुष्ट किया था, उस अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान मैं बतलाता हूँ, आप प्रीतिपूर्वक सुनें। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला एकादशीको प्रातः खानकर भगवान् जनर्दनकी भक्तिपूर्वक गन्ध, पुण्यादि उपवासोंसे पूजा करनी चाहिये और उपवास रखना चाहिये। शत्रियें जागरण करना चाहिये। दूसरे दिन खान आदि करके वेदज्ञ ब्राह्मणोंको उपवासमें से जाकर प्रायः फल आदि भोजन करना चाहिये। अनन्तर पञ्चवार्षका प्राशन कर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस विधिसे एक वर्षतक व्रत करे। श्रावण, कार्तिक, माघ तथा चैत्र मासमें वृक्षादिसे सुशोभित किसी सुन्दर बनमें अरण्यवासियों, मुनियों तथा ब्राह्मणोंको पूर्व या उत्तरमुख आसनपर बैठाकर मण्डक, धूतपूर, खण्डवेष्टक, शाक,

व्यञ्जन, अपूप, मोदक तथा सोहालक आदि अनेक प्रकारके पक्वात्र, फल तथा विभिन्न भोज्य पदार्थोंसे संतुष्ट करे और दक्षिणा प्रदान करे। कर्पूर, इलायची, कस्तुरी आदिसे सुगमित पानक पिलाना चाहिये। बनमें रहनेवाले मुनिगण एवं उनकी पत्रियों, एक दण्डी अथवा त्रिदण्डी और गृहस्थ आदि अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करना चाहिये। वासुदेव, जनर्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाश तथा बराह—इन बारह नामोंसे नमस्कारपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराकर वस्त्र और दक्षिणा देकर 'विष्णुर्म प्रीयताम्' यह वाक्य कहकर अपने पित्र, सम्बन्धी और बास्त्रोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारसे जो अरण्यद्वादशी-व्रत करता है, वह अपने परिवारके साथ दिव्य विमानमें बैठकर भगवान्के थाम श्वेतद्वीपमें निवास करता है। वह वहाँ प्रलयपर्यन्त निवासकर मुक्ति प्राप्त करता है। यदि कोई स्त्री भी इस व्रतका आचरण करती है तो वह भी संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर भगवान्की कृपासे पतिलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६६)



रोहिणीचन्द्र-ब्रत तथा अवियोग-ब्रतका विधान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! वर्षाकालमें आकाश नीले मेघसे आच्छादित हो जाता है। मेरे चारों ओर भीठी-भीठी बोली बोलने लगते हैं। मेहुकोंकी ध्वनि भी बड़ी सुखावनी लगती है, इस समय कुलीन खिलाईं किसको अर्थ दें तथा कौन-सा सल्कर्म करें और वे किस तिथिमें कौन-सा ब्रत करें ? आप इसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! श्रेष्ठ खिलोंको इस समय रोहिणीचन्द्र-ब्रतका पालन करना चाहिये। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी एकादशीको पवित्र होकर सर्वांगधिमत्रित जलसे स्नान करे, अनन्तर उड़ान्दके आटेकी एक सौ इन्दुरिका और पाँच धृत-मोदक बनाये। सभी सामग्रियोंको लेकर उत्तम जलाशयपर जाय और उसके तटपर गोबरसे मण्डलकी रचना करे, उसमें रोहिणीके साथ चन्द्रमाको अद्वित ब्रह्म गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य आदिसे उनकी अर्चना करे और इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

सोमराज नमस्तुप्यं रोहिण्यै ते नमो नमः ।

महासति महादेवि सम्पादय ममेष्मितम् ॥

(उत्तरपर्व ६७ । ८)

अनन्तर 'सोमो मे प्रीयताम्' तथा 'देवी रोहिणी मे प्रीयताम्' ऐसा कहते हुए पूजन-द्रव्य ब्राह्मणके लिये निवेदित कर दे। अनन्तर कमरतक जलमें उत्तरकर मनमें रोहिणीसहित चन्द्रमाका ध्यान करते हुए उन इन्दुरिकाओंका भक्षण ब्रह्म ले। अनन्तर जलसे बाहर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे। प्रतिवर्ष इस विधिसे जो खीं अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक ब्रत करता है, वह धन-धान्य, पुण्य-पौत्रादिसे



गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! मेरे राज्यकी प्राप्तिके लिये अड्डारह अक्षैहिणी सेनाएं नष्ट हुई हैं, इस पापसे मेरे चित्तमें बहुत धृणा उत्पन्न हो गयी है। उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी मारे गये हैं। भीष्म, द्रोण, कलिङ्गराज, कर्ण, शश्य, दुर्योधन आदिके मरनेसे मेरे इदयमें महान् झेश हैं। हे जगत्पते ! इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिये किसी धर्मका आप वर्णन करें।

परिपूर्ण होकर बहुत दिनोंतक सुख भोगकर तीर्थ-स्थानमें मृत्युको प्राप्त करता है और ब्रह्मलोकको जाता है, अनन्तर विष्णुलोक, तदनन्तर शिवलोकमें जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आप यह बतायें कि अवियोगब्रत किस विधिसे किया जाता है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अवियोगब्रत सभी ब्रतोंमें श्रेष्ठ है, मैं उसका विधान बतलाता हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको प्रातः उठकर जलाशयपर जाकर स्नान करे, शुद्ध शुक्ल वस्त्र धारणकर सुन्दर लिपे-पुते स्थानपर गोबरसे एक मण्डलका निर्माण कर, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु, गौरीसहित शिव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, यशीसहित सूर्यनाशयणकी प्रतिमा स्थापितकर गम्ध, पुण्य, धूप, दीप आदि उपचारोंसे इन चारों देवदम्पतियोंके पृथक्-पृथक् नाम-मन्त्रोंसे आदिमें 'ॐ'कार तथा अन्तमें 'नमः' पदकी योजनाकर पूजा एवं प्रार्थना करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। फिर विविध दान देकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इस अवियोगब्रतको जो करता है, उसका कभी भी इष्टजनों (मित्र, पुत्र, पत्नी आदि)से वियोग नहीं होता और बहुत समयतक वह सांसारिक सुखोंका भोगकर क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्यलोकमें निवास कर अनन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है। जो खीं इस ब्रतको करती है, वह भी अपने सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर विष्णुलोकको प्राप्त करती है।

(अध्याय ६७—६८)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ ! गोवत्सद्वादशी नामका ब्रत अतीव पुण्य प्रदान करनेवाला है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यह गोवत्सद्वादशी कौन-सा ब्रत है ? इसके करनेका क्या विधान है ? इसकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई है ? मैं नरकार्णवमें दूब रहा हूँ, प्रभो ! आप मेरी रक्षा कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! सत्यवुगमें

पुण्यशाली जम्बूमार्ग (भड़ौच) में नामब्रतधरा नामक पर्वतके टंटार्वि नामक रमणीय शिखरपर भगवान् शंकरके दर्शन करनेकी इच्छासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे। वह तपोवन अतुलनीय दिव्य कङ्गनोंसे मण्डित था। वह महर्षि भृगुका आश्रममण्डले था। विविध मृगगण और बंदरोंसे समन्वित था। सिंह आदि सभी जंगली पशु, आनन्दपूर्वक निर्भय होकर वहाँ साथ-साथ ही निवास करते थे। उन तपस्यारत मुनियोंको दर्शन देनेके व्याजसे भगवान् शंकरने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश बना लिया। जर्जर-देहवाले वे वृद्ध ब्राह्मण हाथमें ढंडा लिये कर्पते हुए उस स्थानपर आये। जगन्माता पार्वती भी सुन्दर सवत्सा गौका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुईं।

पार्थ ! गौका जो स्वरूप है, उसे आप सुनें—प्राचीन कालमें क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतके साथ पाँच गौओं उत्पन्न हुईं—नन्दा, सुभद्रा, सुरुभि, सुशीला तथा बहुला। इन्हें लोकमाता कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकोपकार तथा देवताओंकी तृप्तिके लिये हुआ है। देवताओंने अधीष्ट कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली इन पाँच गौओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतममुनियोंप्रदान किया और इन महाभागोंने इन्हें ग्रहण किया। गौओंकी छः अङ्ग—गोपय, रोचना, मूज, दुष्य, दधि और घृत—ये अत्यन्त पवित्र और संशुद्धिके साधन भी हैं। गोमयसे शिवप्रिय श्रीमान् विल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, उसमें पदाहस्ता श्रीलक्ष्मी विद्यमान है, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष कहा जाता है।

गोमयसे ही कमलके बीज उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन अतिशय मङ्गलमय है, यह पवित्र और सर्वार्थसाधक है। गोमूत्रसे गुण्युक्ती उत्पत्ति हुई है, जो देखनेमें प्रिय और सुगन्धियुक्त है। यह गुण्युल सभी देवोंका आहार है। विशेषरूपसे शिवका आहार है। संसारमें जो कुछ भी मूलभूत बीज है, वे सभी गोदुधसे उत्पन्न हैं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गलिक पदार्थ दधिसे उत्पन्न हैं। घृतसे अमृत उत्पन्न होता है, जो देवोंकी तृप्तिका साधन है। ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। ब्राह्मणोंके हृदयमें तो वेदमन्त्र निवास करते हैं और गौओंके हृदयमें हृषि रहती है। गायसे ही यज्ञ प्रवृत्त होता है और गौमें ही सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं। गायमें ही छः अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद समाहित हैं।

गौओंकी सींगकी जड़में सदा ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। शङ्कूके अग्रभागमें सभी चराचर एवं समस्त तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। सभी कारणोंके कारणस्वरूप महादेव शिव मध्यमें प्रतिष्ठित हैं। गौके ललाटमें गौरी, नासिकामें कृतिकीय और नासिकाके दोनों पुटोंमें कम्बल तथा अक्षतर ये दो नाग प्रतिष्ठित हैं। दोनों कानोंमें अस्त्रीनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दौतोंमें आठों वसुगण, जिह्वामें वरुण, कुहरमें सरस्वती, गण्डस्थलोंमें यम और यक्ष, ओढ़ोंमें दोनों संघार्ण, ग्रीवामें इन्द्र, ककुद (मौर) में राक्षस, पर्विण-भागमें द्यौ और जंघाओंमें चारों चरणोंसे धर्म सदा विराजमान रहता है। खुरोंके मध्यमें गव्यर्थ, अग्रभागमें सर्प एवं पश्चिम-भागमें राक्षसगण प्रतिष्ठित हैं। गौके पृष्ठदेशमें एकादश रुद्र, सभी संधियोंमें वरुण, श्रीणितट (कमर) में

१-सींगेदत्तोयसम्भूत या: पुण्यमन्यने। पह गतः गुप्तः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥

नन्द सुभद्रा सुरुभि: सुशीला बहुला इति। इता लोकोपकारय देवानां तर्पणाय च ॥

जमदग्निभद्रावसिष्ठसिंहतमातृतमाः । जग्नुः कमलः पञ्च गावो दत्ता: सुरैस्ततः ॥

गोपयं गोरुनां गूर्जं क्षीरं दधिं घृतं गवाम्। वड़ूनिनि पवित्राणि संस्तुदिकरणाणि च ॥

गोमयकुलितः श्रीमान् विल्ववृक्षः शिवप्रियः। तदस्ते पदाहस्ता श्रीः श्रीवृक्षसेन स मृकः ।

क्षीरनुत्पलपदानां पुनर्वातनि गोपयत् ॥

गोरोचना च गद्धुन्या पवित्रा सर्वसाधिक ॥

गोमत्राद् गुण्युलुर्वतः सुगन्धिः प्रियदर्शनः। आहारः सर्वदिवानां शिवस्य च विशेषतः ॥

यद्योऽं जगतः किञ्चित् लग्नेष्व वैरसम्पदम् ॥

शृणुतानि सर्वाणि मङ्गलान्यर्थसिद्धये। पृथग्दम्भुतमुत्पादं देवानां तृप्तिकालम् ॥

वृक्षगाहैव गवाक्ष कुलमें द्विष्ठ कृतम्। एकत्र मन्त्रस्त्रियुक्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥

गोतु यज्ञः प्रवर्तने गोपु देवा: प्रतिष्ठितः। गोपु वेदा: समुक्तीर्णः सप्तदङ्गपदक्रमः ॥ (उत्तर्पद्य ६९। १६—२५)

पितर, कपोलोंमें मानव तथा अपानमें स्वाहा-रूप अलंकारको आश्रित कर श्री अवस्थित हैं। आदिल्यशिमर्याँ केश-समूहोंमें पिण्डीभूत हो अवस्थित हैं। गोमूरमें साक्षात् गङ्गा और गोमयमें यमुना स्थित हैं। रोमसमूहमें तैतीस करोड़ देवगण प्रतिष्ठित हैं। उदरमें पर्वत और जंगलोंके साथ पृथ्वी अवस्थित है। चारों पयोधरोंमें चारों महासमुद्र स्थित हैं। क्षीरधाराओंमें भेष, बृहि एवं जलविनु हैं, जटरमें गार्हपत्यग्रि, हृदयमें दक्षिणग्रि, कण्ठमें आहवनीयग्रि और तालुमें सम्ब्यग्रि स्थित हैं। गौओंकी अस्थियोंमें पर्वत और मज्जाओंमें यज्ञ स्थित हैं। सभी वेद भी गौओंमें प्रतिष्ठित हैं।

हे युधिष्ठिर ! भगवती उमाने उन सुरभियोंके रूपका स्मरणकर अपना भी रूप वैसा ही बना लिया। छः स्थानोंसे उन्नत, पौंच स्थानोंसे निष्ठ, माघूक्लेत्रा, सुन्दर पैृष्ठवाली, ताप्रके समान रक्त स्तनवाली, चाँदीके समान उज्ज्वल कटि-भागवाली, सुन्दर खुर एवं सुन्दर मुखवाली, श्वेतवर्ण, सुशीला, पुत्रबेहवती, मधुर दूधवाली, शोभन पयोधरवाली—इस प्रकार सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सवत्सा गोरुपधारिणी उस उमाको बृहद विप्ररूपधारी भगवान् शंकर प्रसन्नचित्त होकर चरा रहे थे। हे पार्थ ! धीर-धीर वे उस आश्रममें गये और कुलपति भृगुके पास जाकर उन्होंने उस गायको न्यासरूपमें दो दिनतक उसकी सुरक्षा करनेके लिये उन्हें दे दिया और कहा—‘मुने ! मैं वहाँ स्नानकर जम्बूक्षेत्रमें जाऊंगा और दो दिन बाद लौटूंगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।’ मुनियोंने भी उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिष्ठित

की। भगवान् शिव वहाँ अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद वे एक व्याघ्र-रूपमें प्रकट हो गये और बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आङ्कान्त हो आर्तनाद करने लगे और यथासम्भव व्याघ्रको हटानेके उपाय करने लगे। व्याघ्रके भयसे सवत्सा वह गौ भी कूद-कूदकर रैभाने लगी। युधिष्ठिर ! व्याघ्रके भयसे डरी हुई गौके भागनेपर चारों सुरोंका चिह्न शिला-मध्यमें पढ़ गया। आकाशमें देवताओं एवं किन्नरोंने व्याघ्र (भगवान् शंकर) और सवत्सा गौ (माता पार्वती) की वन्दना की। शिलाका वह चिह्न आज भी सुस्पष्ट दीखता है। वह नर्मदाजीका उत्तम तीर्थ है। यहाँ शम्भुतीर्थके शिवलिङ्गका जो स्पर्श करता है, वह गोहत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन् ! जम्बूमार्गमें स्थित उस महातीर्थमें ज्ञान कर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

जब व्याघ्रसे सवत्सा गौ भयभीत हो रही थी तब मुनियोंने कूद होकर ब्रह्मासे प्राप्त भवेत्कर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र भी सवत्सा गौको छोड़कर चला गया। ब्रह्मणोंने उसका नाम रखा तुण्डागिरि। हे पार्थ ! जो मानव उसका दर्शन करते हैं, वे रुद्रस्वरूप ही हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकर व्याघ्ररूपको छोड़कर वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये। वे वृषभपर आरूढ़ थे, भगवती उमा उनके बाम भागमें विराजमान थीं तथा विनायक कक्षातिक्यके साथ नन्दी, महाकाल, शङ्खी, वीरभद्रा, चामुण्डा, अष्टाकर्णा आदिसे परिवृत और मातृका, भूतसमूह, यक्ष, राक्षस, गुहाक, देव,

१-भृगुमूले गवो नित्यं जहा विष्णुकृ संस्थितौ। भृगुप्रे सर्वतीर्थानि स्वावरणि चरणि च॥

शिखो मध्ये महादेवः सर्वकरणकरणम्। लक्ष्मटे संस्थिता गौरी नासावशो च पर्युक्तः॥

कम्बलक्ष्मतौ नागी नामापुटसमधितौ। कर्णयोर्युक्तिनी देवी चक्षुयो शशिभासकौ॥

दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरणः स्थितः। सरसवती च कुदे यमयसी च गच्छयोः॥

संध्याद्यै तयोऽग्न्यां ग्रीवायां च पुनर्दः। रक्षांसि कवुदे दौष्ट पार्विकाये व्यवस्थिता॥

चतुर्प्रात्सकलो घर्ष्ये नित्यं जहान्मु शिष्टुति। खुरमध्येषु गच्छाः सुराग्रेषु च परग्राः॥

सुराणां पश्येद भागे गशसाः सम्भितिः। रुद्रा एकदश पृष्ठे वरणः सर्वमनिष्टु॥

श्रोणीतुष्ट्याः पितरः काषेलेषु च मानवाः। श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालंकारमधितः॥

आदित्य रथमये वालः विष्णीभूत्य व्यवस्थितः। साक्षात्गङ्गा च गोमूरे गोमये यमुना स्थिता॥

प्रदीर्जिनश्च देवकोट्यो रोमकूपे व्यवस्थितः। उदो पृथिवी सर्वा सरैलवनवदना॥

चत्वारः साक्षात् प्रेतां गवां ये तु पयोधरः। पर्वत्यः श्रीरथगम्य मेषा विनुभवस्थितः॥

जठो गाहृक्षेत्रप्रिण्डिक्षिणाप्रिहीदि विष्टतः। कपोदे आहवनोयोग्रीः सप्तोऽग्निसातुनि स्थितः॥

अस्थिवृद्धवस्थितः शैला मञ्चसु ग्रहवः स्थितः। क्षम्भेष्टेऽथर्वेदक्ष स्तम्भयेदे यजुस्तथा॥ (उत्तरपर्व ६९। २५—३७)

दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर एवं नाग तथा उनकी पलियोंसे वे पूजित थे। सनकादि भी उनकी पूजा कर रहे थे।

राजन् ! कार्तिक मासके शुक्ल पक्ष (मतान्तरसे कृष्ण पक्ष) की द्वादशी तिथिमें ब्रह्मवादी ऋषियोंने सवत्सा गोरुपधारिणी उमादेवीकी नन्दिनी नामसे भक्तिपूर्वक पूजा की थी। इसीलिये इस दिन गोवत्सद्वादशीव्रत किया जाता है। तभीसे उस व्रतका पृथ्वीतलपर प्रचार हुआ। राजा उत्तानपादने जिस प्रकार इस व्रतको पृथ्वीपर प्रचारित किया उसे आप सुनें—

उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय राजा थे। जिनकी सुरुचि और शुभ्नी (सुनीति) नामकी दो गणियाँ थीं। सुनीतिसे श्रुत नामका पुत्र हुआ। सुनीतिने अपने उस पुत्रको सुरुचिको सौंप दिया और कहा—‘हे सखि ! तुम इसकी रक्षा करो। मैं सदा स्वयं सेवामें तप्तपर रहूँगी।’ सुरुचि सदा गृहकर्त्ता संभालती और पतिव्रता सुनीति सदा पतिकी सेवा करती थी। सपली-द्वेषके क्षण किसी समय क्रोध और माल्सर्वसे सुरुचिने सुनीतिके शिशुको मार डाला, किन्तु वह तत्क्षण ही जीवित होकर हँसता हुआ मौकी गोदमें स्थित हो गया। इसी प्रकार सुरुचिने कई बार यह कुकृत्य किया, किन्तु वह ब्यालक बार-बार जीवित हो उठता। उसको जीवित देखकर आश्चर्य-चकित हो सुरुचिने सुनीतिसे पूछा—‘देवि ! यह कैसी विचित्र घटना है और यह किस व्रतका फल है, तुमने किस हकन या व्रतका अनुष्ठान किया है ? जिससे तुम्हारा पुत्र बार-बार जीवित हो जाता है ? क्या तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या सिद्ध है ? रत्न, महारत्न या कौन-सी विशिष्ट विद्या तुम्हारे पास है—यह सत्य-सत्य बताओ।’

सुनीतिने कहा—‘यहन ! मैंने कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन गोवत्सव्रत किया है, उसीके प्रभावसे मेरा पुत्र पुनः-पुनः जीवित हो जाता है। जब-जब मैं उसका स्मरण करती हूँ, वह मेरे पास ही आ जाता है। प्रवासमें रहनेपर भी इस व्रतके प्रभावसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस गोवत्सद्वादशी-

व्रतके करनेसे हे सुरुचि ! तुम्हें भी सब कुछ प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा। सुनीतिके कहनेपर सुरुचिने भी इस व्रतका पालन किया, जिससे उसे पुत्र, धन तथा सुख प्राप्त हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सुरुचिको उसके पाति उत्तानपादके साथ प्रतिष्ठित कर दिया और आज भी वह आनन्दित हो रही है। दस नक्षत्रोंसे युक्त ध्रुव आज भी आकाशमें दिखायी देते हैं। ध्रुव नक्षत्रको देखनेसे सभी पापोंसे विमुक्ति हो जाती है।

युधिष्ठिरने कहा—‘हे भगवन् ! इस व्रतकी विधि भी बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘हे कुरुश्रेष्ठ ! कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको संकल्पपूर्वक श्रेष्ठ जलाशयमें ऊन कर पुरुष या स्त्री एक समय ही भोजन करे। अनन्तर मध्याह्नके समय वत्ससन्मित गौकी गन्ध, पुण्य, अक्षत, कुंकुम, अलत्तक, दीप, उड़दके बड़े, पुण्ड्रों तथा पुण्यमालाओंद्वारा इस मन्त्रसे पूजा करे—

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदिति वधिष्ठ नमो नमः स्वाहा ॥ (ऋ० ८ । १०१ । १५)

इस प्रकार पूजाकर गौको ग्रास प्रदान करे और निष्ठालिखित मन्त्रसे गौका सर्पा करते हुए प्रार्थना एवं क्षमा-याचना करे—

ॐ स्वदेवयमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि ।

मातर्ममाभिलिखितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥

(उत्तरपर्व ६९ । ८५)

इस प्रकार गौकी पूजाकर जलसे उसका पर्युक्षण करके भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। उस दिन तबापर पक्षाया हुआ भोजन न करे और ब्रह्मचर्यपूर्वक पृथ्वीपर शयन करे। इस व्रतके प्रभावसे व्रती सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोयें हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है, इसमें संदेह नहीं है।

(अथ्याय ६९)

देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशीव्रतोंका विधान

एवं चातुर्मास्यव्रतका भी वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

युधिष्ठिरने पूछा—‘महाराज ! यह देव-शयन क्या है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘राजन् ! अब मैं गोविन्द-शयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ और कटिदान, सम्मुख्यान

जंघ देवता भी सो जाते हैं तब संसार कैसे चलता है ? देव क्यों सोते हैं ? और इस ब्रतका क्या विधान है—इसे कहें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवान् सूर्यके भिथुन राशिमें आनेपर भगवान् मधुमूदनकी मूर्तिको शयन करा दे और तुलाराशिमें सूर्यके जानेपर पुनः भगवान् जनार्दनको शयनसे उठाये। अधिमास आनेपर भी यही विधि है। अन्य प्रकारसे न तो हरिको शयन कराये और न उन्हें निद्रासे उठाये। आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी देवशयनी एकादशीको उपवास करे। भक्तिमान् पुरुष शुक्ल वर्षसे आच्छादित तकियेसे युक्त उत्तम शय्यापर पीताम्बरथारी, सौम्य, शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको शयन कराये। इतिहास और पुण्यवेत्ता विष्णुभक्त पुरुष दही, दूध, शहद, घी और जलसे भगवान्हकी प्रतिमाको स्थान कराकर गन्ध, धूप, कुम्कुम तथा वस्त्रोंसे अलंकृत कर निप्रलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करे—

सुप्ते त्वयि जगत्राथ जगत् सुप्ते भवेद्विष्टम्।

विवुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्॥

(उत्तरपर्व ३० । १०)

‘हे जगत्राथ ! आपके सो जानेपर यह सारा जगत् सुप्त हो जाता है और आपके जग जानेपर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रवृद्ध हो जाता है।’

महाराज ! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको शय्यापर स्थापित कर उसीके समुख बाणीपर नियन्त्रण रखनेका और अन्य नियमोंका द्रष्ट ग्रहण करे। वर्षके चार मासतक देवाधिदेवके शयन और उसके बाद उत्थापनकी विधि कही गयी है।

राजन् ! इस ब्रतके त्यागने एवं ग्रहण करने योग्य पदार्थोंके अलग-अलग नियमोंको आप सुनें। गुड़का परित्याग करनेसे ब्रती अगले जन्ममें मधुर लाणीवाला राजा होता है। इसी प्रकार चार मासतक तेलका परित्याग करनेवाला सुन्दर शरीरवाला होता है। कटु तैलका त्याग करनेसे उसके राजुओंका नाश होता है। महुणके तेलका त्याग करनेसे अतुल सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। पुरुष आदिके भोगका परित्याग करनेसे खण्डमें विद्याधर होता है। इन चार मासोंमें जो योगका अध्यास करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। कदुवा,

खट्टा, तीता, मधुर, क्षार, कयाय आदि रसोंका जो त्याग करता है, वह वैरुप्य और दुर्गतिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। ताम्बूलके त्यागसे ब्रेष्ट भोगोंको प्राप्त करता है और मधुर कण्ठवाला होता है। घृतके त्यागसे रमणीय स्वावर्ण्य और सभी प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है। फलका त्याग बनेसे बुद्धिमान् होता है और अनेक पुरोंकी प्राप्ति होती है। पत्नीका साग स्थानेसे रोगी, अपवर्ग अन्न खानेसे निर्मल शरीरसे युक्त होता है। तैल-मर्दनके परित्यागसे ब्रती दीप्तिमान्, दीप्तकरण, राजाधिराज धनाध्यक्ष कुवेरके साकुञ्जको प्राप्त करता है। दही, दूध, तक (मट्टा)के त्यागका नियम^१ लेनेसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त करता है। स्थालीपाकका परित्याग करनेपर इन्द्रका अतिथि होता है। तापपक्व वस्तुके भक्षणका नियम लेनेपर दीर्घायु संतानकी प्राप्ति होती है। पृथ्वीपर शयनका नियम लेनेसे विष्णुका भक्त होता है।

हे धर्मनन्दन ! इन वस्तुओंके परित्यागसे धर्म होता है। नख और केशोंके धारण करनेपर, प्रतिदिन गङ्गा-स्थान करनेपर एवं मौनव्रती रहनेपर उसकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीपति होता है। ‘ॐ नमो नारायणाय’ इस अष्टाहर मन्त्रका निराहार रहकर जप करने एवं भगवान् विष्णुके चरणोंकी बद्धना करनेसे गोदानजन्य फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके चरणोंटके संस्पर्शसे मनुष्य कृदकृत्य हो जाता है। चातुर्मासियमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें उपलेपन और अर्चना करनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त स्थायी राजा होता है, इसमें संशय नहीं है। स्तुतिपाठ करता हुआ जो सौ बार भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है एवं पुण्य, माला आदिसे पूजा करता है, वह हंसयुक्त विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। विष्णु-सम्बन्धी गान और वाद्य करनेवाला गम्भर्वलोकको प्राप्त होता है। प्रतिदिन शास्त्र-चर्चासे जो लोगोंको ज्ञान प्रदान करता है, वह व्यासरूपी भगवान्के रूपमें मान्य होता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। नित्य स्थान करनेवाला मनुष्य कभी नरकोंमें नहीं जाता। भोजनका संयम करनेवाला मनुष्य पुक्कर-क्षेत्रमें स्थान करनेका फल प्राप्त करता है। भगवत्सम्बन्धी लीला-नाटक आदिका आयोजन करनेवाला अपसराओंका राज्य प्राप्त करता

१-सावनमें मट्टा, भाद्रपदमें दही और आष्टिनमें दूधका परित्याग करना चाहिये।

है। अयाचित भोजन करनेवाला श्रेष्ठ बावली और कुंआ बनानेका फल प्राप्त करता है। दिनके छठे (अन्तिम) भागमें अन्नके भक्षण करनेसे मनुष्य स्थायीरूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। पतलमें भोजन करनेवाला मनुष्य कुरुक्षेत्रमें बास करनेका फल प्राप्त करता है। शिलापर नित्य भोजन करनेसे प्रयागमें खान करनेका फल प्राप्त करता है। दो प्रहरतक जलका त्वाग करनेसे कभी रोगी नहीं होता।

हे पार्थ ! चातुर्मास्यमें इस प्रकारके ब्रत एवं नियमोंके पालनसे साधक पूर्ण संतोषको प्राप्त करता है। अर्थात् सभी प्रकार सुखी एवं संतुष्ट हो जाता है। गृहध्वज जगत्ताथके शयन करनेपर चारों वर्णोंकी विवाह, यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ सम्पादित नहीं होतीं। विवाह, यज्ञोपवीतादि संस्कार, दीक्षा-ग्रहण, यज्ञ, गृहप्रवेशादि, गोदान, प्रतिष्ठा एवं जितने भी शुभ कर्म हैं, वे सभी चातुर्मास्यमें लाभ्य हैं। संक्रान्तिरहित मासमें अर्थात् मलमासमें देवता एवं पितरोंसे सम्बन्धित कोई भी क्रिया सम्पादित नहीं की जानी चाहिये। भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको भगवान् विष्णुका कटिदान होता है अर्थात् करवट बदलनेकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इस दिन महापूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब इस विष्णु-शयनका कारण सुनिये। किसी समय तपस्याके प्रभावसे हुरिको संतुष्टकर योगनिद्राने प्रार्थना की कि भगवन् ! आप मुझे भी अपने अङ्गोंमें स्थान दीजिये। तथा मैंने देखा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर तो लक्ष्मी आदिके द्वारा अधिष्ठित है। लक्ष्मीके द्वारा उत्स्थल, शङ्ख, चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा असिके द्वारा बाहु, वैनतेयके द्वारा नाभिके नीचेके अङ्ग, मुकुटसे सिर, कुण्डलोंसे कान अधरुद्ध हैं। इसलिये मैंने संतुष्ट होकर नेत्रोंमें आदरसे योगनिद्राको स्थान दिया और कहा कि तुम वर्षमें चार मास मेरे आश्रित रहोगी। यह सुनकर प्रसन्न होकर योगनिद्राने मेरे नेत्रोंमें बास किया। मैं उस मनस्विनीको आदर देता हूँ। योगनिद्रामें जब मैं क्षीरसागरमें इस महानिद्रारूपी शेषशय्यापर शयन करता हूँ, उस समय ब्रह्माके सानिध्यमें भगवती लक्ष्मी अपने करकमलोंसे मेरे दोनों चरणोंका मर्दन करती है और क्षीरसागरकी लहरें मेरे चरणोंको छोती हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ ! जो मनुष्य इस चातुर्मास्यके समय

अनेक ब्रत-नियमपूर्वक रहता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है, इसमें संशय नहीं। शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु कर्त्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीमें जागते हैं, उसकी ब्रत-विधि आप सुनिये। भगवान् अपने इस मन्त्रसे जगाना चाहिये—‘इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेष्ठा नि दद्य पश्य। समूद्रमस्य पा॑ सुरो स्वाहा ॥’ (यजु० ५। १५) अपने आसनपर विष्णुके जागनेपर संसारकी सभी धार्मिक क्रियाएँ प्रवृत्त हो जाती हैं। शङ्ख, मूर्दग आदि बाह्योंकी घ्वनि एवं जयबोधके साथ भगवान् को गत्रिमें रथपर बैठाकर घुमाना चाहिये। देवदेवेशके उठनेपर नगरको दीपादिसे देवीयमान कर नृत्य-गीत-वाद्य आदिसे मङ्गलोत्सव करना चाहिये। धरणीधर दामोदर भगवान् विष्णु उठकर जिस-जिसको देखते हैं, उस समय उन्हें प्रदत्त सभी वस्तुएँ मानवको स्वर्गमें प्राप्त होती हैं। एकादशीके दिन गत्रिमें मन्दिरमें जागरण करे। द्वादशीमें प्रातःकल सच्च जलसे खानकर विष्णुकी पूजा करे। अग्रिमें घृत आदि हृव्य द्रव्योंसे हवन करे, अनन्तर खानकर ब्राह्मणको विशिष्ट अन्नोंका भोजन कराये। धी, दही, मधु, गुड आदिके द्वारा निर्मित मोदकको भोजनके लिये समर्पित करे। यजमान भी प्रसन्नतापूर्वक संवामित होकर ग्यारह, दस, आठ, पाँच या दो विप्रोंकी पृथ्वी, गन्ध आदिसे विधिवृत् पूजा करे। श्रेष्ठ संन्यासियोंको भी भोजन कराये और संकल्पमें त्यक्त पदार्थ तथा अभीष्ट पत्र-पुस्त आदि दक्षिणाके साथ देकर उन्हें विदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। जिस वस्तुको चार मासक छोड़ा है, उसे भी खाना चाहिये। ऐसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। अन्तमें ब्रती विष्णुपुरी (वैकुण्ठ) को प्राप्त करता है। जिस व्यक्तिका चातुर्मास्यब्रत निर्विघ्न सम्पन्न होता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे पार्थ ! जो देवशयन-ब्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ अन्तमें भगवान् विष्णुको जगाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस माहात्म्यको जो मनुष्य ध्यानसे सुनता है, सुन्ति करता एवं कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। क्षीरसागरमें भगवान् अनन्त जिस दिन सोते हैं और जागते हैं, उस दिन अनन्यवित्तसे उपवास करनेवाला पुरुष सद्गतिको प्राप्त करता है। (अध्याय ७०)

नीराजनद्वादशीब्रत-कथा एवं ब्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— राजन् ! प्राचीन कालमें अजपाल नामके एक राजर्षि थे। एक बार प्रजाने अपने दुःखोंको दूर करनेकी उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नीराजन-शान्तिका अनुष्ठान किया। राजन् ! आपको उस ब्रतकी विधि बतलाता है। हे पाण्डवब्रेष्ट ! राजा को पुरोहितके द्वारा इसे सविधि सम्पन्न कराना चाहिये।

जब अजपाल राजा था, उस समय राक्षसोंका स्थामी रावण लंकाका राजा था। देवताओंको उसने अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया था। रावणने चन्द्रमास्त्रे छत्र, इन्द्रको सेनापति, वायुको धूल साफ करनेवाला, वरुणको जलसेवक, कुबेरको धनरक्षक, यमको शत्रुको संयत करनेवाला तथा राजेन्द्र मनुको मन्त्रणाके लिये नियुक्त किया। मेघ उनकी इच्छानुसार शीतल मन्द वृष्टि करते थे। ब्रह्माके साथ सप्तर्षिण नित्य उनकी शान्तिकी कामना करते रहते थे। रावणने गव्यवौंको गानके लिये, अप्सराओंको नृत्य-गीतके लिये, विद्याधरोंको वाद्य-कार्यके लिये, गङ्गादि नदियोंको जलपान करानेके लिये, अग्निको गार्हपत्य-कार्यके लिये, विश्वकर्माको अब्र-संस्करके लिये तथा यमको शित्य आदि कार्योंके लिये नियुक्त किया और दूसरे राजागण नगरकी सेवाके विधानमें तत्पर रहते थे। रावणने ऐसा अपना प्रभाव देखकर अपने प्रसरित नामक प्रतिहारसे कहा—‘यहाँ मेरी सेवाके लिये कौन आया है ?’ प्रणाम कर निशाचरने कहा—‘प्रभो ! ककुत्स्य, मात्राता, धुम्युमार, नल, अर्जुन, ययाति, नहुष, भीम, रघुव, विदूरथ—ये सभी तथा अन्य बहुतसे राजा आपकी सेवाके लिये यहाँ आये हैं, किंतु राजा अजपाल आपकी सेवामें नहीं आया है।’ रावणने कृद्ध होकर शीघ्र ही धूमाक्ष नामक राक्षससे कहा—‘धूमाक्ष ! जाओ और अजपालको मेरी आज्ञाके अनुसार यह सूचना दो कि तुम आकर मेरी सेवा करो, अन्यथा तलवारसे तुमको मैं मार डालूँगा।’ रावणके द्वारा ऐसा कहनेपर धूमाक्ष गरुड़के समान तेज गतिसे उसकी रमणीय नगरीमें गया और राजकुलमें पहुँचा। धूमाक्षने रावणके द्वारा कही गयी बातें उसे सुनायीं, किंतु अजपालने धूमाक्षके आक्षेपपूर्वक अन्य कारणोंको कहते हुए

लौटा दिया। तदनन्तर ज्वरको बुलाकर राजाने कहा—‘तुम संकेश्वर रावणके पास जाओ और वहाँ यथोचित कर्त्य सम्पन्न करो।’ अजपालके द्वारा नियुक्त मूर्तिमान् ज्वर वहाँ गया और उसने सभी गणोंके साथ बैठे हुए राक्षसपतियों प्रकाशित कर दिया। रावणने उस परम भयेंकर ज्वरको आया जानकर कहा कि अजपाल राजा वहाँ रहे, मुझे उसकी जरूरत नहीं है। उसी बुद्धिमान् राजर्षि अजपालके द्वारा यह शान्ति प्रवर्तित हुई है, यह शान्ति सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाली है। सभी गणोंको नष्ट करनेवाली है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें सायंकाल भगवान् विष्णुके जग जानेके बाद ब्राह्मणोंके द्वारा विष्णुका हवन करे। वर्धमान (एरण्ड) वृक्षोंसे प्राप्त तेलसुक्त दीपिकाओंसे भगवान् विष्णुका धीरे-धीर नीराजन करे। पुष्य, चन्द्रन, अलंकार, वस्त्र एवं रस्ते उनकी पूजा करे। साथ ही लक्ष्मी, चण्डिका, ब्रह्मा, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्रह, माता-पिता तथा नाग सभीका नीराजन (आरती) करे। गौ, महिष आदिका भी नीराजन करे। घटा आदि वाद्योंको बजाये। गौओंका सिन्दूर आदिसे तथा चित्र-विचित्र वस्त्रोंसे शूल्पार करे और बछड़ोंके साथ उनको ले चले और उनके पीछे गोपाल भी ध्वनि करते चले। मङ्गलध्वनिसे युक्त गौओंके नीराजन-उत्सवमें ओढ़ों आदिको भी ले चले। अपने घरके आँगनको राजचिह्नोंसे सुशोभित कर पुरोहितोंके साथ मन्त्री, नौकर आदिको लेकर राजा शङ्कु, तुरही आदिके द्वारा एवं गव्य, पुष्य, वस्त्र, दीप आदिसे पूजा करे। पुरोहित ‘शान्तिरसु’, ‘समृद्धिरसु’ ऐसा कहते रहें। यह महाशान्ति नामसे प्रसिद्ध नीराजन जिस राष्ट्र, नगर और गाँवमें सम्पन्न होता है, वहाँके सभी रोग एवं दुःख नष्ट हो जाते हैं और सुभिक्ष हो जाता है। राजा अजपालने इसी नीराजन-शान्तिसे अपने राष्ट्रकी वृद्धि की थी और सम्पूर्ण प्राणियोंको रोगसे मुक्त बना दिया था। इसलिये रोगादिकी निवृत्ति और अपना हित चाहनेवाले व्यक्तियोंको नीराजनब्रतका अनुष्ठान प्रतिवर्ष करना चाहिये। भगवान् विष्णुका जो नीराजन करता है, वह गौ, ब्राह्मण, रथ, ओड़े आदिसे युक्त एवं नीरोग हो सुखसे जीवन-यापन करता है। (अध्याय ७१)

भीष्मपञ्चक-ब्रतकी विधि एवं महिमा

युधिष्ठिरने कहा—हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण ! कार्तिक मासमें श्रीभीष्मपञ्चक नामका जो श्रेष्ठ ब्रत होता है, अब कृष्णया उसका विधान बताइये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं आपसे ब्रतोंमें सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक-ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ । मैंने पहले इस ब्रतका उपदेश भृगुजीको किया था, फिर भूमुने शुक्राचार्यको और शुक्राचार्यने प्रह्लाद आदि दैत्यों एवं अपने शिष्य ब्राह्मणोंको बताया । जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, श्रीब्रग्नामियोंमें पवन, पूजनीयोंमें ब्राह्मण एवं दारोंमें सुवर्ण-दान श्रेष्ठ है, वैसे ही ब्रतोंमें भीष्मपञ्चक-ब्रत श्रेष्ठ है । लोकोंमें भूलौक, तीर्थोंमें गङ्गा, यज्ञोंमें अश्रुमेघ, शास्त्रोंमें वेद तथा देवताओंमें अच्युतका जैसा स्थान है, ठीक उसी प्रकारसे ब्रतोंमें भीष्मपञ्चक सर्वोत्तम है । जो इस दुष्कर भीष्मपञ्चक-ब्रतका अनुष्ठान कर लेता है, उसके द्वारा सभी धर्म सम्पादित हो जाते हैं । पहले सत्ययुगमें वसिष्ठ, भृगु, गर्ग आदि मुनियोंने, फिर त्रेतामें नाभाग, अम्बरीष आदि राजाओंनि और द्वापरमें सीरभद्र आदि वैश्योंने तथा कलियुगमें उत्तम आचरणवाले शूद्रोंने भी इस ब्रतका अनुष्ठान किया । ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य-पालन, जप तथा हवन-कर्मके द्वारा और क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस ब्रतका अनुष्ठान किया है । सत्यहीन मूढ़ मनुष्योंके लिये इस ब्रतका अनुष्ठान असम्भव है । यह भीष्मपञ्चक-ब्रत पाँच दिनतक होता है । इस भीष्मपञ्चक-ब्रतमें असत्यभावण, शिकार खेलने आदि अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये । पाँच दिन विष्णु भगवान्का पूजन करते हुए शाकमात्रका ही आहार करना चाहिये । पतिकी आज्ञासे रुखी भी सुख-प्राप्तिहेतु इस ब्रतका आचरण कर सकती है । विधवा नारी भी पुत्र-पौत्रोंकी समृद्धि अथवा मोक्षार्थ इस ब्रतको कर सकती है । इसमें कार्तिक मासपर्यन्त नित्य प्रातः-स्नान, दान, मध्याह्न-स्नान और भगवान् विष्णुके पूजनका विधान है । नदी, झरना, देवखात या किसी पवित्र जलाशयमें शरीरमें गोमय लगाकर ऊन कर जौ, चावल तथा तिलोंसे देवता, ऋणियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये । भगवान् विष्णुको भी मधु, दुध, धी तथा चन्दनमिश्रित जलसे भक्तिपूर्वक ऊन करना चाहिये । कर्पूर, पल्लगव्य, कुंकुम (केसर), चन्दन तथा

सुगन्धित पदार्थके द्वारा भगवान् गरुडध्वज विष्णुका उपलेपन करना चाहिये । उनके सामने एक दीपक पाँच दिनोंतक अनवरत दिन-रात प्रज्वलित रखना चाहिये । भगवान्को नैवेद्य निवेदित कर ‘ॐ नमो वासुदेवाय’ का अष्टोत्तरशत-जप, तदनन्तर षड्क्षर-मन्त्रसे हवन करना चाहिये तथा विश्वपूर्वक सायंकालीन संध्या करनी चाहिये । जमीनपर सोना चाहिये । ये सभी कार्य पाँच दिनोंतक किये जाने चाहिये । इस ब्रतमें पहले दिन भगवान् विष्णुके चरणोंकी कमल-पुष्पोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये । दूसरे दिन विष्वपत्रके द्वारा उनके घुटनोंकी, तीसरे दिन नाभि-स्थलपर केवड़ेके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये । चौथे दिन विष्व एवं जपा-पुष्पोंसे भगवान्के स्फन्ध-प्रदेशकी पूजा करनी चाहिये और पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे भगवान्के शिरोभागकी पूजा करनी चाहिये ।

इस प्रकार हृषीकेशका पूजन करते हुए ब्रतीको एकादशीके दिन ब्रत कर अभिमन्त्रित गोमय तथा द्वादशीको गोमृतका प्राशन करना चाहिये । त्रयोदशीको दूध तथा चतुर्दशीको दधिका प्राशन करना चाहिये । कायथुदिके लिये चारों दिन इनका प्राशन करना चाहिये । पाँचवें दिन ऊनकर केशवकी विश्वित् पूजा करनी चाहिये । तत्पश्चात् ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये । इसी प्रकार पुण्य-वाचकोंकी भी वस्त्राभूषण प्रदान करना चाहिये । रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे । इस प्रकारसे भीष्मपञ्चक-ब्रतका समाप्तन करना चाहिये । यह भीष्मपञ्चक-ब्रत परम पवित्र और सम्पूर्ण पांचोंका नाश करनेवाला है । राजन् । इसी भीष्मपञ्चक-ब्रतका वर्णन शरशत्यापर पढ़े हुए महात्मा भीष्मने स्वयं किया था । इसे मैंने आपको बता दिया । जो मानव भक्तिपूर्वक इस ब्रतका पालन करता है, उसे भगवान् अच्युत मुक्ति प्रदान करते हैं । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो कोई भी इस ब्रतको करते हैं, उन्हें वैष्णव-स्थान प्राप्त होता है । कार्तिक शुक्ल एकादशीसे ब्रत प्रारम्भ करके पौर्णमासीको ब्रत पूर्ण करना चाहिये । जो इस ब्रतको सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और शुद्ध सद्वतिको प्राप्त होता है । ऐसा भीष्मका वचन है । (अध्याय ७२)

मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-ब्रतका विधान

युधिष्ठिरके द्वारा मल्लद्वादशीके विवरमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—महाराज ! जब मेरी अवस्था आठ वर्षकी थी, उस समय यमुना-तटपर भाष्टीर-बनमें बट-खूक्सके नीचे एक सिंहासनपर मुझे बैठाकर सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्धन तथा यशेन्द्रभद्र आदि बड़े-बड़े मल्लों और गोपाली, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, अनुगन्धा, सुभगा आदि गोपियोंने दही, दूध और फल-फूल आदिसे भेंग पूजन किया। तत्पश्चात् तीन सौ साठ मल्लोंने भक्तिपूर्वक भेंग पूजन करते हुए मल्लयुद्धको सम्पन्न किया तथा हमारी प्रसन्नताके लिये बड़ा भारी उत्सव मनाया। उस महोत्सवमें भौति-भौतिके भक्ष्य-भोज्य, गोदान, गोष्ठी तथा पूजन आदि कार्य सम्पन्न किये गये थे। अद्यापूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन भी हुआ था। उसी दिनसे यह मल्लद्वादशी प्रचलित हुई। इस ब्रतको मार्गशीर्ष-मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीतक करना चाहिये और प्रतिमास ब्रम्मसे केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हणीकेश, पद्मनाभ तथा दमोदर—इन नामोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गीत-बाद्य, नृत्य-सहित पूजन करे और 'कृष्णो मे प्रीयताम्' इस प्रकार उच्चारण करे। यह द्वादशीब्रत मुझे बहुत प्रिय है। चूंकि मल्लोंने इस ब्रतको प्रारम्भ किया था, अतः इसका नाम मल्लद्वादशी है। जिन गोपोंके द्वारा इस ब्रतको सम्पन्न किया गया उन्हें गाय, महिषी, कूपि आदि प्रचुर मात्रामें प्राप्त हुआ। जो कोई पुरुष इस ब्रतको सम्पन्न करेगा, मेरे अनुग्रहसे वह आरोग्य, बल, ऐक्षर्य और शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त करेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें भीम नामक एक प्रतापी राजा थे। वे दमयन्तीके पिता एवं राजा नलके ससुर थे। राजा भीम बड़े पराक्रमी, सत्यवक्ता और प्रजापालक थे। वे शाश्वत-विधिसे रुद्ध-क्षर्य करते थे। एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि उनके यहाँ पधारे। राजाने अर्थ-पादादिद्वारा उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। पुलस्त्यमुनिने प्रसन्न होकर राजासे कुशल-क्षेम पूछा, तब राजाने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—‘महाराज ! जहाँ आप-जैसे महानुभावका आगमन सं भ पु अ० १२—

हो, वहाँ सब कुशल ही होता है। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।’ इस तरहसे अनेक प्रकारकी खेहकी बातें राजा तथा पुलस्त्यमुनिके बीच होती रहीं। कुछ समयके पश्चात् विदर्भाधिपति भीमने पुलस्त्यमुनिसे पूछा—प्रभो ! संसारके जीव अनेक प्रकारके दुःखोंसे सदा पीड़ित रहते हैं और उसमें गर्भवास सबसे बड़ा दुःख है, प्राणी अनेक प्रकारके रोगसे ग्रस्त हैं। जीवोंकी ऐसी दशाको देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट होता है। अतः ऐसा कैन-सा उपाय है, जिसके द्वारा बोड़ा परिश्रम करके ही जीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेमें समर्थ हो जाय। यदि कोई ब्रत-दानादि हो तो आप मुझे बतलायें।

पुलस्त्यमुनिने कहा—गजन् ! यदि मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करे तो उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता। यह तिथि परम पवित्र करनेवाली है। यह ब्रत अति गुण है, किंतु आपके खेहने मुझे कहनेके लिये विवश कर दिया है। अदीक्षितसे इस ब्रतको कभी नहीं कहना चाहिये, जितेन्द्रिय, धर्मिणष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष ही इस ब्रतके अधिकारी हैं। ब्रह्माती, गुरुधाती, स्त्रीधाती, कृतघ्र, मित्रद्वाही आदि बड़े-बड़े पातकी भी इस ब्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। इसके लिये शुद्ध तिथिमें और अच्छे मुहूर्में दस हाथ लाघ्वा-चौड़ा मण्डप तैयार करना चाहिये तथा उसके मध्यमें पाँच हाथकी एक वेदी बनानी चाहिये। वेदीके ऊपर एक मण्डल बनाये, जो पाँच रोपोंसे युक्त हो। मण्डपमें आठ अथवा चार कुण्ड बनाये। कुण्डोंमें ब्राह्मणोंको उपस्थित करे। मण्डलके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर पश्चिमाभिमुख चतुर्भुज भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि भौति-भौतिके उपचारों तथा नैवेद्योंसे शास्त्रोक्त-विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा उनकी पूजा करानी चाहिये। नारायणके सम्पुत्र दो सात्प्र गाढ़कर उनके ऊपर एक आङ्ग काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छोंका बाँधना चाहिये। उसपर सुवर्ण, चाँदी, ताप्र अथवा मृत्युकाका सहस्र, शत अथवा एक छिद्रसमन्वित उत्तम कलश जल, दूध अथवा धीसे पूर्ण कर रखना चाहिये। पलाशकी समिधा, तिल, धूत, खीर और शामी-पत्रोंसे ग्रहोंके लिये आहुति देनी चाहिये। ईशान-क्षेत्रमें ग्रहोंका पौठ-स्थापन कर ग्रह-यज्ञविधानसे ग्रहोंकी पूजा करनी

चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पूजन कर शुक्ल वस्त्र तथा चन्दनसे भूषित, हाथमें कुश लेकर यजमानको एक पीढ़ेके ऊपर भगवान्के सामने बैठना चाहिये। यजमानको एकत्रित हो कलशसे गिरती जलधारा (वसोर्धारा) को निम्नमन्त्रका पाठ करते हुए भगवान्को प्रणामपूर्वक अपने सिरपर धारण करना चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर ।

ब्रतेवानेन मां पाहि परमात्मन् नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ७४। ५२)

उस समय ब्राह्मणोंके चारों दिशाओंके कुण्डोंमें हवन करना चाहिये। साथ ही शान्तिकार्याय और विष्णुसूतका पाठ किया जाना चाहिये। शङ्ख-ध्वनि करनी चाहिये। भौति-भौतिके वाद्योंके बजाना चाहिये। पुण्य-जयघोष करना चाहिये। माङ्गलिक स्तुति-पाठ करना चाहिये। इस तरहके माङ्गलिक कर्त्तव्य करते हुए यजमानको रुहिंशं, सौपर्णिक (सुपर्णसूक) आख्यान और महाभारत आदिका श्रवण करते हुए जागरण-पूर्वक गति व्यतीत करनी चाहिये। भगवान्के ऊपर गिरती हुई वसोर्धारा समस्त सिद्धियोंके प्रदान करनेवाली है। दूसरे दिन प्रातः यजमान ब्राह्मणोंके साथ किसी पुण्य जलाशय अथवा नदी आदिमें झानकर शुक्ल वस्त्र पहनकर प्रसन्नतिसे भगवान् भास्करको अर्थ्य दे। पुण्य, धूप, दीप आदि उपचारोंसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। हवन करके भक्तिपूर्वक

पूर्णाहुति दे। यज्ञमें उपस्थित सभी ब्राह्मणोंका शाश्वा, भोजन, गोदान, वस्त्र, आभूषण आदिद्वारा पूजन करे और आचार्यकी विशेषरूपसे पूजा करे। जैसे ब्राह्मण एवं आचार्य संतुष्ट हों वैसा यत्न करे, क्योंकि आचार्य साक्षात् देवतुल्य गुरु है। दीनों, अनाथों तथा अभ्यागतोंको भी संतुष्ट करे। अनन्तर स्वयं भी हविष्यका भोजन करे।

राजन्! इस प्रकार मैंने इस भीमद्वादशीब्रतका विधान बतलाया, इससे पापिष्ठ व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। यह विष्णुयाग सैकड़ों वाजपेय एवं अतिहार यागोंसे विशेष फलदायी है। इस भीमद्वादशीका ब्रत करनेवाले स्त्री-पुरुष सात जन्मोंतक अखण्ड सौभाग्य, आयु, आरोग्य तथा सभी सम्पदाओंके प्राप्त करते हैं। अनन्तर मृत्युके बाद क्रमशः विष्णुपुर, रुद्रलोक तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इस पृथ्वीलोकमें आकर पुनः वह सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति एवं चक्रवर्ती धार्मिक राजा होता है।

इस ब्रतको प्राचीन कालमें महात्मा सगर, अज, धंशुमार, दिलीप, ययाति तथा अन्य महान् श्रेष्ठ राजाओंने किया था और स्त्री, वैश्य एवं शूद्रोंने भी धर्मकी कथमनासे इस ब्रतको किया था। भृगु आदि मुनियों और सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा भी इसका अनुष्ठान हुआ था। हे राजन्! आपके पूछनेपर मैंने इसे बतलाया है, अतः आजसे यह द्वादशी आपके (भीमद्वादशी) नामसे पृथ्वीपर ख्याति प्राप्त करेगी। (अध्याय ७३-७४)

श्रवणद्वादशी-ब्रतके प्रसंगमें एक वर्णिककी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति दीर्घ उपवास करनेमें असमर्थ हो उसके लिये कौन-सा ब्रत है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें ब्रत करनेसे सभी कथमनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह परम पवित्र एवं महान् फल देनेवाली द्वादशी है। इस ब्रतमें प्रातःकाल नदी-संगममें जाकर झान करके द्वादशीमें उपवास करना चाहिये। एकमात्र इस श्रवणद्वादशीके ब्रत कर लेनेसे द्वादश द्वादशी-ब्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है। यदि इस तिथिमें बुधवारका भी योग हो जाय तो इसमें किये गये समस्त

कर्म असत्य हो जाते हैं। इस ब्रतसे गङ्गामानका लाभ होता है। इस ब्रतमें एक सुन्दर कलशकी विधिवत् स्थापना कर उसमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्की अङ्गपूजा करनी चाहिये। शत्रियों जागरण करे। प्रभातकालमें झानकर गङ्गाध्वजकी पूजा करे और पुष्पाञ्जलि देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द ब्रुद्धश्रवणसंज्ञक ।
अध्यैषसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥

(उत्तरपर्व ७५। १५)

अनन्तर वेदज्ञ एवं पुराणज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और प्रतिमा आदि सब पदार्थ 'प्रीयती मे जनार्दनः' कहकर

ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! इस ब्रतके प्रसंगमे एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें—दशार्ण देशके पश्चिम भागमे सम्पूर्ण प्राणियोंको भय देनेवाला एक मरुदेश है। वहाँकि भूमिकी बालू निरन्तर तपती रहती है, यत्र-तत्र भयंकर साँप धूमते रहते हैं। वहाँ छाया बहुत कम है। वृक्षोंमें पत्ते कम रहते हैं। प्राणी प्रायः मरे-जैसे ही रहते हैं। शमी, खीर, पलाश, करील, पीलु आदि कैटीले वृक्ष वहाँ हैं। वहाँ अब्र और जल बहुत कम मिलता है। वृक्षोंके कोटरोंमें छोटे-छोटे पक्षी च्यासे ही मर जाते हैं। वहाँकि च्यासे हरिण मर-भूमिमें जलकी इच्छासे दौड़ लगाते रहते हैं और जल न मिलनेसे मर जाते हैं।

उस मरुस्थलमें दैववश एक विणिक् पहुँच गया। वह अपने साथियोंसे विछुड़ गया था। उसने इधर-उधर धूमते हुए भयंकर पिशाचोंको वहाँ देखा। वह विणिक् भूख-च्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर धूमने लगा। कहने लगा—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँसे मुझे अब्र-जल प्राप्त हो। तदनन्तर उसने एक प्रेतके स्कन्धप्रदेशपर बैठे एक प्रेतको देखा। जिसे चारों ओरसे अन्य प्रेत घेरे हुए थे। कन्धेपर चढ़ा हुआ वह प्रेत विणिक्को देखकर उसके पास आया और कहने लगा—‘तुम इस निर्जल प्रदेशमें कैसे आ गये ?’ उसने बताया—‘मेरे साथी सूट गये हैं, मैं अपने किसी पूर्व-कुकूल्यके फलसे या संयोगसे यहाँ पहुँच गया हूँ। भूख और च्याससे मेरे प्राण निकल रहे हैं। मैं अपने जीनेका कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ।’ इसपर वह प्रेत बोला—‘तुम इस पुत्राग वृक्षके पास क्षणमात्र प्रतीक्षा करो। यहाँ तुम्हें अभीष्ट-लाभ होगा, इसके बाद तुम यथेच्छ चले जाना।’ विणिक् वहाँ ठहर गया। दोपहरके समय कोई व्यक्ति पुत्राग वृक्षसे एक कसोरमें जल तथा दूसरे कसोरमें दही और भात लेकर प्रकट हुआ और उसने वह विणिक्को प्रदान किया। विणिक् उसे ग्रहणकर संतुष्ट हुआ। उसी व्यक्तिने प्रेत-समुदायको भी जल और दही-भात दिया, इससे वे सभी संतुष्ट हो गये। शेष भागको उस व्यक्तिने स्वयं भी ग्रहण किया। इसपर आक्षर्यचकित होकर विणिक्कने उस प्रेताधिष्पसे पूछा—‘ऐसे दुर्गम स्थानमें अब्र-जलकी प्राप्ति आपको कहाँसे होती है ? थोड़ेसे ही अब्र-जलसे बहुतसे लोग

कैसे तृप्त हो जाते हैं। मुझे सहारा देनेवाले इस स्थानमें आप कैसे मिल गये ? हे शुभब्रत ! आप यह बतलायें कि प्रासमात्रसे ही आपको संतुष्टि कैसे हो गयी ? इस धोर अटवीमें आपने अपना स्थान कहाँ बनाया है ? मुझे बड़ा कैतूहल हो रहा है, मेरा संशय आप दूर करें।’

प्रेताधिष्पने कहा—हे भद्र ! मैंने पहले बहुत दुखूक्त किया था। दुष्ट चुदिकाला मैं पहले रमणीय शाकल नगरमें रहता था। व्यापारमें ही मैंने अपना अधिकांश जीवन बिता दिया। प्रमादवश मैंने धनके लोभसे कभी भी भूखेको न अन्न दिया और न च्यासकी च्यास ही बुझायी। मेरे ही अरके पास एक गुणवान् ब्राह्मण रहता था। वह भाद्रपद मासकी श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीके योगमें कभी भी मेरे साथ तोषा नामकी नदीमें गया। तोषा नदीका संगम चन्द्रभागासे हुआ है। चन्द्रभागा चन्द्रमाकी तथा तोषा सूर्यकी कन्या हैं। उन दोनोंका शोतूष जल बड़ा मनोहर है। उस तीर्थमें जाकर हमलोगोंने ध्यान किया और उपवास किया। हमने वहाँ दध्योदन, छव, वस्त्र आदि उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाकी पूजा की। इसके अनन्तर हमलोग घर आ गये। मरनेके अनन्तर नासिक होनेसे मैं प्रेतत्वको प्राप्त हुआ। इस धोर अटवीमें जो हो रहा है, वह तो आप देख ही रहे हैं। ये जो अन्य प्रेताणि आप देख रहे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मणोंके धनकक्ष अपहरण करनेवाले, कोई परदारात हैं, कोई अपने स्वामीसे द्वोह करनेवाले तथा कोई नित्रद्वोही हैं। मेरा अब्र-पान करनेसे ये सब मेरे सेवक बन गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अक्षय, सनातन परमात्मा हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय होता है। हे महाभाग ! आप हिमालयमें जाकर धन प्राप्त करेगे, अनन्तर मुझपर कृपाकर आप इन प्रेतोंकी मुक्तिके लिये गयामें जाकर श्राद्ध करें। इन्हा कहकर वह प्रेताधिप मुक्त होकर विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चला गया।

प्रेताधिष्पके चले जानेपर वह विणिक् हिमालयमें गया और वहाँ धन प्राप्त कर अपने घर आ गया और उस धनसे उसने गया तीर्थमें अक्षयवटके समीप उन प्रेतोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया। वह विणिक् जिस-जिस प्रेतकी मुक्तिके निमित्त श्राद्ध करता था, वह प्रेत विणिक्को स्वप्रमें दर्शन देकर कहता था कि ‘हे महाभाग ! आपकी कृपासे मैं प्रेतत्वसे मुक्त हो गया

और मुझे परमगति प्राप्त हुई।' इस प्रकार वे सभी प्रेत मुक्त हो गये। राजन् ! वह विणिक पुनः घर लौट आया और उसने भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें भगवान् जनार्दनकी

पूजा की, ब्राह्मणोंको गो-दान किया। जितेन्द्रिय होकर प्रतिवर्ष नदीके संगमोपर वह सब कर्त्त्य किया और अन्तमें उसने मानवोंके लिये दुर्लभ स्थानको प्राप्त किया। (अध्याय ७५)

विजय-श्रवण-द्वादशीब्रतमें वामनावतारकी कथा तथा ब्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर ! भाद्रपद मासकी एकादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तोंके विजय प्रदान करनेवाली है। एक बार दैत्यराज बलिसे पराजित होकर सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—'प्रभो ! सभी देवताओंके एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आप महान् कष्टसे हमारा उद्धार कीजिये। इस दैत्य बलिका आप विनाश कीजिये।' इसपर भगवान्ने कहा—'देवगणो ! मैं यह जानता हूँ कि विरोचन-पुत्र बलि तीनों लोकोंका कष्टक बना हुआ है, पर उसने तपस्याद्वारा अपनी आत्माकी अपनेमें भावना कर ली है, वह शान्त है, जितेन्द्रिय है और मेंग भक्त है, उसके प्राण मुझमें ही लगे हैं, वह सत्यप्रतिज्ञ है। बहुत दिनोंके बाद उसकी तपस्याका अन्त होगा। जब मैं इसे अविनयसम्पन्न समझूँगा, तब उसका अभीष्ट हरण कर लूँगा और आपको दे दूँगा। पुत्रकी इच्छासे देवमाता अदिति भी मेरे पास आयी थी। देवताओ ! मैं उनका भी कल्याण करूँगा, अवतार लेकर देवताओंका संरक्षण और असुरोंका विनाश करूँगा। इसलिये आपलोग निश्चिन्त होकर जायें और समयकी प्रतीक्षा करें।' देवगण भगवान् विष्णुको स्मरण करते हुए बापस आ गये। इधर अदिति भी भगवान् विष्णुका ध्यान करती थी। कुछ कालमें उसने गर्भमें भगवान्को धारण किया। नवे मासमें वामन भगवान् अदितिके गर्भसे प्रातुर्भूत हुए। उनके पैर छोटे, शरीर छोटा, सिर बड़ा और छोटे बच्चेके समान हाथ-पैर, उदर आदि थे। वामनरूपमें जब अदितिने पुत्रको देखा और जब वह कुछ कहनेको उदात हुई तो देवमायासे उनकी बाणी अवरुद्ध हो गयी।

हे नरोत्तम ! भाद्रपद मासके श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी तिथिमें जब विविक्रम वामन भगवान्का पृथ्वीपर अवतार हुआ तब पृथ्वी डगमगाने लगी। दैत्योंमें भय छा गया और देवगण प्रसन्न हो गये। महामुनि कश्यपने शिशुके

जातकमीद संस्कार स्वयं ही किये। वामन भगवान् दण्ड, मेषाला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा छत्र धारणकर राजा बलिके यज्ञस्थलमें गये। उन्होंने बलिसे कहा—'यज्ञपते ! मुझे तीन पग भूमि प्रदान करो।' बलिने कहा—'मैंने दे दिया।' उसी समय भगवान् वामनने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान्ने अपना शरीर इतना विशाल बना लिया कि एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वीलोकको नाप लिया तथा द्वितीय पगसे ब्रह्मलोक नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये जब कोई स्थान न मिला तो देवगण, सिद्ध, ऋषि-मुनि इस कृत्यको देखकर साधु-साधु कहने लगे और भगवान्की सुति करने लगे। तदनन्तर सभी दैत्यगणोंको जीतकर उन्होंने दैत्यराज बलिसे कहा—'तुम अपने परिजनोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ। मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर तुम वहाँ अभीप्सित भोगोंका उपभोग करोगे। वर्तमानमें जो इन्द्र है, उनके बाद तुम इन्द्रत्वको प्राप्त करोगे।' बलि भगवान्को प्रणामकर प्रसन्न हो सुतललोकको चला गया। भगवान्ने देवताओंसे कहा—'आपलोग अपने-अपने स्थानपर निविन्न होकर रहें।' भगवान् भी संसारका कल्याण करके वहाँ अन्तर्धान हो गये।

राजन् ! ये सभी कर्म एकादशी तिथिको हुए थे। अतः यह तिथि देवताओंकी विजयतिथि मानी गयी है। यही एकादशी तिथि फलनुन मासमें पुण्य नक्षत्रसे युक्त होनेपर विजया तिथि कही गयी है। एकादशीके दिन उपवासकर रात्रिमें भगवान् वामनकी प्रतिमा बनाकर पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाके समीप ही कुण्डका, छत्र, चरणपादुका, यष्टि, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा मृगवर्म आदि स्थापित करना चाहिये। अनन्तर विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। निम्न मन्त्रोंसे उन्हें नमस्कार करे और प्रार्थना करे—

अनेककर्मनिर्वाच्यव्यसिनं जलशायिनम् ।
नतोऽस्मि मधुरावासं मायवं मधुसूदनम् ॥

नमो वामनसुपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।
नमस्ते मणिवन्थाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥
नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ॥
अचौधर्षसंक्षये कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ॥

(उत्तरपर्व ७६। ४८—५१)

इसके अनन्तर भगवान्‌को शयन कराये । गीत-वाच,

स्तुति आदिके द्वारा जागरण करे । प्रातःकाल उस प्रतिमासी पूजाकर मन्त्रपूर्वक उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे । ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । इस ब्रतके करनेसे ब्रतीका एक मन्त्रनरपर्यन्त विष्णुलोकमें वास होता है, तदनन्तर वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती दानी राजा होता है । वह नीरोग, दीर्घायु एवं पुत्रवान् होता है । (अध्याय ७६)

सम्प्राप्ति-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीब्रत

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीसे ज्येष्ठ मासकी द्वादशीतक प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वादशीको याण्मासिक सम्प्राप्ति-द्वादशीब्रत किया जाता है । प्रत्येक मासमें क्रमशः पुण्डरीकाश, माघव, विश्वरूप, पुरुषोत्तम, अच्युत तथा जय—इन नामोंसे उपवासपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये । पुनः आपाङ् कृष्ण द्वादशीसे ब्रत ग्रहणकर मार्गशीर्षतक ब्रतका नियम लेना चाहिये । पूर्वविधानसे उपवासपूर्वक उन्हीं नामोंसे क्रमशः भगवान्‌का पूजन करना चाहिये । प्रतिमास ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये । ब्रतीको गोमूत्र, गोमय, दधि अथवा गोदुग्धका प्राशान करना चाहिये । दूसरे दिन खानकर उसी विधिसे गोविन्दका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये । इसके साथ ही इस दिन गौको तृतीयपूर्वक भोजन करना चाहिये । इसी प्रकार प्रतिमास ब्रत करते हुए वर्ष समाप्त होनेपर भगवती लक्ष्मीके साथ सुवर्णकी भगवान् गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर पुष्प, धूप, दीप, माला, नैवेद्य आदिसे उनका पूजनकर सवत्सा गौसहित ब्राह्मणोंको देना चाहिये । प्रतिमास गौओंकी पूजा तथा उन्हें ग्रासादिसे तृप्त करना चाहिये । पारणाके दिन विशेषरूपसे उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिये । इस ब्रतको करनेसे वही फल प्राप्त होता है जो सुवर्णशूली सौ गौओंके साथ एक उत्तम वृक्षका दान देनेसे होता है । इस ब्रतको सम्यक्रूपसे करनेवाला सब सुख भोगकर अन्तमें गोलोकको प्राप्त होता है । (अध्याय ७७-७८)

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! इसी प्रकार गोविन्द-द्वादशी नामका एक अन्य ब्रत है, जिसके करनेसे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं । पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे

—॥७॥—

अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल-द्वादशी-ब्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्ण ! ब्रतोपवास, दान, धर्म आदिमें जो कुछ वैकल्य अर्थात् किसी बातकी न्यूनता रह जाय तो व्या फल होता है ? इसे आप बतलायें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! राज्य पाकर भी जो निर्धन, उत्तम रूप पाकर भी करने, अंधे, लैगड़े हो जाते हैं, वे सब धर्म-वैकल्यके प्रभावसे ही होते हैं । धर्म-वैकल्यसे ही स्त्री-पुरुषोंमें वियोग एवं दुर्भगत्य होता है, उत्तम कुलमें जन्म पाकर भी लोग दुःशील हो जाते हैं, धनालघ होकर भी शनका भोग तथा दान नहीं कर सकते तथा वस्त्र-आभूषणोंसे

हीन रहते हैं । वे सुख प्राप्त नहीं कर पाते । अतः यज्ञमें, ब्रतमें और भी अन्य धर्म-कृत्योंमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने देनी चाहिये ।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन् ! यदि कदाचित् उपवास आदिमें कोई त्रुटि हो ही जाय तो उसके निवारणार्थ क्या करना चाहिये ?

श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अखण्ड द्वादशी-ब्रत करनेसे सभी प्रकारकी धार्मिक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं । अब आप उसका भी विधान सुनें । मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी

द्वादशीको मानकर जनार्दन भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन कर उपवास रखना चाहिये और नारायणका सतत स्मरण करते रहना चाहिये। जितेन्द्रिय पुण्य पञ्चगव्यमिश्रित जलसे मान करके जौ और बीहि (धान) से भय पात्र ब्राह्मणको दान करे और फिर भगवान्‌से यह प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि यस्तिंचिन्मया खण्डवते कृतम् ।
भगवन् त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥
यथाखण्डं जगत् सर्वै त्वयैव पुरुषोत्तम् ।
तथाखिलान्यखण्डानि ब्रतानि मम सन्तु वै ॥

(उत्तरपर्व ७९। १४-१५)

'भगवन् ! मुझसे सात जन्मोंमें जो भी व्रत करनेमें न्यूनता हुई हो, वह सब आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो जाय। पुरुषोत्तम ! जिस प्रकार आपसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है, उसी प्रकार मेरे खण्डित सभी व्रत पूर्ण हो जायें।'

इस व्रतमें चार महीनेमें व्रतकी पारणा करनी चाहिये। चैत्रादि चार मासके अनन्तर दूसरी पारणा कर सत्-पात्र ब्राह्मणको देनेका विधान है। श्रावणादि चार मासके अनन्तर तीसरा पारण कर नारायणका पूजन करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चाँदी, मृत्तिका अथवा पलाश-पत्रके पात्रमें घृत-दान करना चाहिये। संवत्सर पूर्ण होनेपर जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर वस्त्राभूषण देकर त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगनी चाहिये। इसमें आचार्यका विधिपूर्वक पूजन करनेका भी विधान है। इस तरहसे जो अखण्ड-द्वादशीका व्रत करता है, उसके सात जन्मतक किये हुए व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं। अतः स्त्री-पुरुषोंको व्रतोंका वैकल्य दूर करनेके लिये अवश्य ही इस व्रतको सम्पादित करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! स्त्री अथवा पुरुष दोनोंको फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर जगत्पति भगवान्‌का पूजन-भजन और उठते-बैठते नित्य हरिका स्मरण करते रहना चाहिये। द्वादशीके दिन प्रभातमें ही रान-पूजन तथा घृतसे हवनके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनेका विधान है। तदनन्तर भगवान्‌से अपने अभीष्ट मनोरथोंकी संसिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हविष्य-भोजन प्रहण करना चाहिये। इस व्रतमें फाल्गुनसे ज्येष्ठतक प्रथम चार महीनोंमें रक्तपूष्य,

गुणुल-धूप और हविष्यात्र-नैवेद्यसे भगवान्‌की पूजा-अर्चनाके बाद गोमूत्रालित जल तथा हविष्यात्र प्रहण करनेका विधान है। फिर आषाढ़से आस्तिनक चार महीनोंमें चमेलीके पुण्य, धूप और शाल्यत्र (साठी धान) आदिके नैवेद्योद्धारा भगवान्‌की पूजा-स्तुति करनेके बाद कुशोदकका प्राशन तथा निवेदित नैवेद्य भक्षण करना चाहिये। कार्तिकसे माघ मासतक तीसरी पारणामें जपापूर्ण (अङ्गहुल), उत्तम धूप और कसारके नैवेद्यसे नारायणके पूजनोपरान्त गोमूत्र-प्राशन तथा कसार-भक्षण करनेका विधान है। प्रतिमास ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वर्षके अन्तमें एक कर्व (माशा) सुकर्णकी भगवान्-नारायणकी प्रतिमाका पूजन कर, दो बस्त्र और दक्षिणासहित ब्राह्मणोंको निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ बारह ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर प्रत्येकको अन्न, जलका घट, छतरी, जूता, बस्त्र और दक्षिणा देनी चाहिये। इस द्वादशी-व्रतके करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे इसका नाम मनोरथ-द्वादशी है। इन्द्रको त्रैलोक्यका राज्य भी इसी व्रतके परिणाम-स्वरूप प्राप्त हुआ है। शुक्रवारीने धन तथा महर्षि घौम्यने निर्विघ्र विद्या प्राप्त की है। अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंने तथा स्त्रियोंने भी इस व्रतके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया है। जो कोई भी जिस-किसी अभिलाषासे इस व्रतको करता है, उसे वह अवश्य प्राप्त होती है। जो पुण्य भगवान्-पुरुषोत्तमका पूजन नहीं करते, गौ, ब्राह्मण आदिकी सेवा नहीं करते और मनोरथ-द्वादशीका व्रत नहीं रखते, वे किसी भी प्रकारसे अपना अभीष्ट-फल प्राप्त नहीं कर सकते।

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! थोड़ेसे परिश्रमसे अथवा स्वल्पदानसे सभी पाप कट जाय ऐसा कोई उपाय आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! तिल-द्वादशी नामक एक व्रत है, जो परम पवित्र है और सभी पापोंका नाश करनेवाला है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको जब मूल अथवा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र प्राप्त हो, तब उसके एक दिन पूर्व अर्धात् एकादशीको उपवास रखकर व्रत प्रहण करना चाहिये। द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णका पूजन कर ब्राह्मणको कृष्ण तिलोंका दान करना चाहिये। ब्रतीको भी मानकर काले तिलका ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक

प्रत्येक कृष्ण द्वादशीमें ब्रतकर अन्तमें तिलोंसे पूर्ण कृष्णवर्णके कुम्भ, पक्वान, छत्र, जूता, वस्त्र और दक्षिणा बारह ब्राह्मणोंको देना चाहिये। उन तिलोंके बोनेसे जितने तिल उत्पन्न होते हैं, उनने वर्षपर्वन्त इस ब्रतको करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है और किसी जन्ममें अंध, बधिर, कुष्ठी आदि नहीं होता,

सदा नीरोग रहता है। इस तिल-दानसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। इस ब्रतमें न बहुत परिश्रम है और न ही बहुत अधिक व्यय। इसमें तिलोंसे ही ज्ञान, तिल-दान और तिल ही भोजन करनेपर अवश्य सहाति मिलती है।

(अध्याय ७९—८१)

सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा— श्रीकृष्णचन्द्र ! ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करनेसे सभी कष्ट दूर हो जायें तथा कोई संताप भी न हो ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! आपने जो पूछा है, उस विषयमें एक आख्यानका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें विदिशा (मेलसा) नगरीमें सीरभद्र नामक एक वैश्य रहता था। वह पुत्र-पौत्र, कन्या, स्त्री आदिके भरण-पोषणमें ही लगा रहता था, फलस्वरूप स्वप्नमें भी उसे परलोककी चिन्ता नहीं होती थी। वह न्याय-अन्याय हर तरहसे धनका ही उपार्जन करता, कभी दान, हवन, देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता था। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका लोप उसने स्वयं कर लिया था। कुछ कालके अनन्तर वह वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ और विन्यायरण्यमें यातना-देहमें प्रेतरूपसे रहने लगा। एक दिन श्रीम ऋष्टुमें विपीत नामके वेदवेता ब्राह्मणने उस प्रेतको देखा कि वह सूर्य-किरणोंसे संताप नदीके बालूमें लौट रहा है, उसके सब अঙ्गोंमें छले पड़ गये हैं। प्याससे कण्ठ सूख रहा है और जिह्वा लटक गयी है। वह लम्बी-लम्बी साँस ले रहा है। उसकी यह दशा देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी और उसने उसका वृत्तान्त पूछा।

प्रेत कहने लगा—ब्रह्मन् ! मैं पूर्व-जन्ममें परलोकके लिये किसी प्रकारके कर्म न करनेके कारण ही दग्ध हो रहा हूँ। मैं निरन्तर धन, घर, खेत, पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तामें ही आसक्त रहता था और मैंने अपने वास्तविक हितका चिन्तन कभी नहीं किया। इसीसे यह कष्ट भोग रहा हूँ। 'यह कथा कर लिया और यह काम करना है'—इसी उधेङ्कुनमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही यह फल है। लोभवश मैं शीत-उष्ण सभी प्रकारके कष्टोंको झेल रहा हूँ। मैंने धर्मके लिये

किंचित् भी कष्ट नहीं झेला, उससे अब पछताता हूँ। देवता, पितर, अतिथि आदिका मैंने कभी पूजन नहीं किया और यही कारण है कि अब मुझे अन्न-जलतक नहीं मिल रहा है। अन्यायके द्वारा एकज किये गये धनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे होंगे, यह सोच-सोचकर मुझे चैन नहीं मिलता। मैंने कभी ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया और न ही कभी देवार्चन ही किया। फलस्वरूप मेरी ऐसी दशा हुई है। चूंकि मैंने पापोंका ही संचय किया, अतः मैं उसके फलको अकेले ही भोग रहा हूँ। मैं अपने किये दुष्कर्मोंका ही फल भोग रहा हूँ। अतः हे मुनीश्वर ! यदि ऐसा कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें, जिससे इस दुर्गतिसे मेरा उदाहर हो।

विपीतमुनि बोले—सीरभद्र ! दस जन्म पहले तुमने भगवान् अच्युतकी आराधनाकी इच्छासे सुकृत-द्वादशीका उपवास किया था, उसके प्रभावसे इस पापके बहुत बड़े भागका क्षय हो गया है, अब तुम्हें अल्पकालमें ही उत्तम गति प्राप्त होगी। यह द्वादशी-ब्रत पापोंका क्षय तथा पुण्यका संचार करनेवाला है, इसी कारण इसका नाम सुकृत-द्वादशी है। इस तरह सीरभद्रको आश्वस्त कर विपीतमुनि अपने आश्रमको छले गये और सीरभद्र भी द्वादशीव्रतके फलस्वरूप थोड़े कालके अनन्तर मोक्षको प्राप्त हो गया।

इतना कहकर श्रीकृष्ण भगवान् बोले—हे महाराज ! यह उपवासका प्रभाव है कि इतना पाप थोड़े ही कालमें क्षय हुआ, इसलिये मनुष्यके पुण्यके लिये सदा यत्र करना चाहिये। और अपने कल्याणके लिये उपवासादि करते रहना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र ! पापोंसे अति दाहण नरककी यातना भोगनी पड़ती है। ऐसा कौन-सा व्रत है, जिससे सब पाप नष्ट हो जायें और मोक्ष प्राप्त हो।

* यह कथा ब्रह्मपुण्यमें भी आयी है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपचार कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्प आदिका त्यागकर संसारकी असारताकी भावना करता हुआ 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये । और इसी भौति द्वादशीको भी भगवान् मध्यसूदनकी पूजा आदि करनी चाहिये । प्रथम चार (फाल्गुनसे ज्येष्ठ) मासके पारणमें चाँटी, ताँबे अथवा मृतिकाके पातोंमें यव भरकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये । आयाद्यादि द्वितीय पारणमें भूतपात्र देना चाहिये और कार्तिकादि चार मासमें तिलपात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये । भगवान्की पूजाके अनन्तर उनके अनुप्रहवी प्राप्तिके लिये

प्रार्थना करनी चाहिये । तदनन्तर भोजन करना चाहिये । वर्ष पूर्ण होनेपर सुवर्णकी विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे पूजित कर वस्त्र, सुवर्ण, दक्षिणा-सहित सवत्साधेनु ब्राह्मणोंको देना चाहिये । इस विधिसे जो पुण्य अथवा स्त्री इस सुकृतद्वादशीका व्रत करता है, वह कभी नरकवे नहीं प्राप्त होता । नारायणके भक्तको कभी नरककी बाधा नहीं होती । विष्णुका नाम उच्चारण करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर नरकके भयका तो प्रश्न ही नहीं उठता । इसी प्रकार वासुदेव नारायणके नामोंका उच्चारण करनेवाला कभी भी यमका मुख नहीं देखता । अतः भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करना चाहिये । (अथ्याय ८२)

—४०—

धरणी-ब्रत (अर्चावितार-ब्रत)

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! वेदोंमें यह कहा गया है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने, बड़े-बड़े दान देने और कठिन परिश्रम करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, किंतु कलियुगके प्राणी, जो न दान दे सकते हैं और न ही यज्ञ करनेमें समर्थ हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है, यदि कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं आपको एक रहस्यपूर्ण बात बतलाता हूँ । प्रलयके समय जब धरणी (पृथ्वी) जलमें निमग्न होकर रसातल चली गयी, तब उस समय धरणीदेवीने अपने उद्धारके लिये व्रत किया था । व्रतके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वाराहरूप धारणकर उसे पुनः अपने स्थानपर लाकर स्थापित कर दिया । उस व्रतका विधान इस प्रकार है—

व्रतीको मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी दशमीको प्रातः-काल नित्य-स्नानादि क्रियाओंके सम्पन्न ब्रह्मदेवार्चन एवं हृष्णादि कर्म विधिपूर्वक करने चाहिये । उस दिन पवित्र, अत्यल्प हृष्यवान्-भोजन करना चाहिये । अनन्तर पुनः पाँच पग चलकर हाथ-पाँव धोकर पवित्र हो क्षीर-वृक्षके आठ अंगुलके दातूनसे दन्तधावन कर आचमन करना चाहिये । जलसे अवृत्तेव स्पर्शकर भगवान् जनार्दनका ध्यान करते हुए वह दिन व्यतीत करना चाहिये । एकादशीको नियाहार रहकर भगवान्के नामोंका जप करना चाहिये । द्वादशीको प्रातः नदी

आदिके पवित्र जलमें स्नान करना चाहिये । स्नानसे पूर्व नदी, तालव अथवा शुद्ध एवं पवित्र स्थानकी मृतिका ग्रहण करनी चाहिये, मृतिका ग्रहण करते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

धारणी पौष्ट्रं त्वत्ते भूतानां देवि सर्वदा ।
तेन सर्वेन मां पाहि पापान्वोचय सुक्रते ॥

(उत्तरपूर्व ८३ । १७)

'देवि सुक्रते ! जिस शक्तिके द्वारा आप समस्त स्थावर-जंगमात्मक प्राणियोंवा धारण-पौष्ट्र करती हैं, उसी शक्तिके द्वारा मुझे पापोंसे मुक्त कीजिये तथा सदा मेरा पालन कीजिये ।'

पुनः उस मिट्टीको सूर्यको दिखाकर शरीरमें लगाकर स्नान करे । तदनन्तर आचमनकर देवमन्दिरमें जाकर भगवान् नारायणके अङ्गोंकी पूजा करे । नारायणके आगे चार जलपूर्ण घटोंमें चार समुद्रोंकी परिकल्पनाकर स्थापना करे । उन घटोंपर तिलपूर्ण पूर्णपात्र स्थापित करे । घटोंके मध्य एक पीठके ऊपर जलपात्रमें सुवर्ण, चाँटी अथवा काष्ठकी मत्स्यधगवान्की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे । यथाविधि उपचारोंसे उनका पूजनकर प्रार्थना करे । ग्रन्तिमें वहीं जागरण करे । प्रभातमें चारों घटोंके ऋष्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी तथा अथर्ववेदी चार ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें निवेदित करे । जलपात्रमें स्थापित भगवान् मत्स्यकी प्रतिमा ब्राह्मण-दम्पतिको प्रदान करे ।

ब्राह्मणोंको पायसाक्रम संतुष्ट कर पक्षात् स्वयं भी भोजन करे। राजन्! इस विधिसे जो मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशीका ब्रत करता है, उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जन्मान्तरमें किये गये ब्रह्महत्या आदि महापातकोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। यदि निष्क्रामभावसे ब्रत करता है तो उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसी प्रकार रुग्नादि कर पौष मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीको उपवास कर भगवान् जनार्दनकी कूर्मरूपमें पूजा करनी चाहिये। माघ मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् वराहकी प्रतिमाका पूजनकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका, चैत्र मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनकी प्रतिमाका, वैशाख शुक्र द्वादशीको परदशुणमजीकी प्रतिमाका, ज्येष्ठ मासकी शुक्र द्वादशीको भगवान् राम-लक्ष्मणकी प्रतिमाका, आषाढ़ शुक्र द्वादशीको भगवान् वासुदेव (कृष्ण) की प्रतिमाका, श्रावण मासकी शुक्र द्वादशीको बुद्ध भगवान्की तथा भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् कलिककी प्रतिमाका यथाविधि अङ्ग-पूजन आदि कर घटोंकी स्थापना करके पूजित प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंके निवेदित कर देनी चाहिये।

विशोकद्वादशी-ब्रत और गुडधेनु^१ आदि दस

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या ब्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके विवोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जिस ब्रतके विषयमें प्रश्न किया है, वह समस्त जगत्के प्रिय तथा इतना महत्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते तथापि आप-जैसे भक्तिमान्के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा।

इस प्रकार दस मासोंमें भगवान्के दशावतारोंका पूजनकर पूर्व-विधानसे आखिन शुक्र द्वादशीको उपवास-पूर्वक भगवान् पद्मनाभकी तथा कार्तिक द्वादशीको वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। अन्तमें प्रतिमा तथा घटोंको ब्राह्मणको निवेदित कर दे। उन्हें भोजन कराकर, दक्षिण प्रदान करे तथा दीनों, अनाथोंको भी भोजन-वस्त्र आदिसे संतुष्ट करना चाहिये और फिर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार द्वादश मासोंमें जो इस ब्रतको करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त करता है। घरणीदेवीने इस ब्रतको किया था। इसीलिये यह घरणी-ब्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने इस ब्रतका अनुष्ठानकर प्रजाओंका अधिपतित्व प्राप्त किया था। गजा युवनाक्षने इस ब्रतके अनुष्ठानसे मान्यता नामक श्रेष्ठ पुत्रको प्राप्तकर अन्तमें शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त किया था। इसी प्रकार हैह्याधिपति कृतवीर्ये इस ब्रतके प्रभावसे महान् पश्चकमी चक्रवर्ती गजा सहस्रार्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। शकुन्तलाने भी इस ब्रतके प्रभावसे गजर्जि दुष्यन्तको पति-रूपमें तथा श्रेष्ठ भरतको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार अन्य कई श्रेष्ठ चक्रवर्ती गजाओं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंने इस ब्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त किया था। जो भी इसे करता है, भगवान् नारायण उसका उद्धार कर देते हैं^२। (अध्याय ८३)

धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा

उस पुण्यप्रद ब्रतका नाम विशोकद्वादशी-ब्रत है। विद्वान् व्रतीको, आखिन मासमें दशमी तिथिके दिन अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस ब्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन ब्रती उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (ज्ञान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभांति पूजा करे और 'दूसरे दिन भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर शत्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वोषधि और पञ्चगव्यमिले जलसे ज्ञान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण

^१-याराषुपुण्यके ३९वें अध्यायसे ५०वें तक टीक इसी प्रकार इन द्वादश द्वादशी-ब्रतोंकी कथा एवं ब्रत-विधिका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

^२-यह विषय मल्लपुण्य ८२, पद्मपु. १। २१, वराहसुषुण १०२, कृष्णकल्पतार ५, दानकाण्ड पृ. १४१ तथा दानमध्यूक्त, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोद्घारा पूजा करे। पूजन करनेके पश्चात् एक मण्डल बनाकर मिट्टीसे वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी और सुन्दर हो। तत्पश्चात् चुदिमान् ब्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अद्वित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर 'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्यै नमः', 'शिव्यै नमः', 'पृष्ठ्यै नमः', 'तुष्ट्यै नमः', 'वृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः' के उत्तारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशेषका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोन्न नाश करे, विशेषक मेरे लिये बदलायिनी हों, विशेषका मुझे संतति दे और विशेषका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करे।' तदनन्तर शेष वस्त्रोंसे सूपको परिवेषित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलोंसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर ब्रती सभी गत्रियोंमें कुशोदक-पान करे और सारी गत नृत्य-गीत आदिका आयोजन कराये। तीन पहर गत व्यतीत होनेपर ब्रती मनुष्य स्वयं नीद त्यागकर जग जाय और अपनी शक्तिके अनुसार शश्यापर सोते हुए तीन या एक ह्रिज-दम्पतिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे 'जलशायिने नमोऽस्तु' जलशायी भगवान्को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार गतमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल खान कर पुनः ह्रिज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन कराये। फिर स्वयं भोजन करके पुण्योंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे साय कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार ब्रतकी समाप्तिके अवसरपर गहा, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शश्या गुड़-धेनुके साथ दान करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवेश ! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जाती, उसी प्रकार सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता सदा मुझे निख्वच्छन्नरूपसे प्राप्त हो—मेरा परित्याग न करे और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैष्णवकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रतीको समन्त्र गुड़-धेनुसहित शश्या और लक्ष्मीसहित सूप-दान

करना चाहिये। इस व्रतमें कमल, करत्वीर (कनेर), बाण (नीलकुमुम या अगस्त्य-बृक्षका पुष्प), ताजा (विना कुम्हलाया हुआ) कुंकुम, केसर, सिंदुवार, मत्तिलका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुञ्जक और जाती—ये पुण्य सदा प्रशस्त माने गये हैं।

युधिष्ठिरने पुनः पूजा—जगत्पते ! अब आप मुझे (विशेषकद्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड़-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि गुड़-धेनुका रूप कैसा होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महागत ! इस लोकमें गुड़-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ। गुड़-धेनुका दान समस्त पापोंका विनाशक है। गुड़-धेनुका दान करनेके दिन गोबरसे भूमिको लैप-पोतकर सब ओरसे कुश विछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अप्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। तदनन्तर एक छोटे मृगचर्ममें बछड़की कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्वमुख और उत्तर पैरवाली सबस्ता गौकी कल्पना करे। चार भारे गुड़से बनी हुई गुड़-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुड़का बनाना चाहिये। अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़की कल्पना करके उन्हें शेष एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर धीसे उनके मुखकी, सीपसे कठनोंकी, गलेसे पैरोंकी, शेष मोतीसे नेत्रोंकी, शेष सूतसे नाड़ियोंकी, शेष कम्बलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके विहङ्गसे पीठकी, शेष रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोंगेकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, कँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे—

'जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली

१-विशेषक दुःखनाशय विशेषक वरदान्तु में। विशेषक चालु संतत्वे विशेषक सर्वसिद्धये ॥ (उत्तरपर्व ८४ । १६)

२-ये हजार पल अर्धात् तीन मनके बजनके 'भार' कहते हैं।

लक्ष्मी है, धेनुरूपसे वही देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्वल्पर विराजमान है, जो स्वाहारूपसे अग्रिकी पली है तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूप है, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी, कुञ्जरकी तथा लोकायालोकी लक्ष्मी है, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा, यज्ञभोजी अग्रियोंके लिये स्वाहारूपा तथा समस्त पापोंको हरनेवाली धेनुरूपा है, वे मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड़-धेनुको आमनित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिळ आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा गया है।

नरेश्वर ! अब जो दस पापविनाशिनी गौणे बतलायी गयी है, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा है। पहली गुड़-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिळ-धेनु, चौथी मधु-धेनु, पाँचवीं जल-धेनु, छठी क्षीर-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं

दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोचारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये, क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फलको प्रदान करनेवाली हैं। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चूंकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-ब्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड़-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायणके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड़-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका ब्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तमें श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है। (अध्याय ८४)

विभूतिद्वादशी^१-ब्रतमें राजा पुष्पवाहनकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है। बुद्धिमान् मनुष्य क्षतिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फलत्युन अथवा आशाढ़ मासमें शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत हो इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो ! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभांति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव ! मेरा यह नियम निर्विव्रतापूर्वक पूर्ण हो जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें '३० नमो नारायणाय' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर ऊन-जप आदि करके पवित्र हो श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुष्टिरोक्तक्षक्त्र पूजन करे।

एक वर्षताक प्रतिमास क्रमशः भगवान्के दस अवतारों तथा दसांत्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमाका स्वर्णानिर्मित

कमलके साथ दान करना चाहिये। उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये। राजन् ! इस प्रकार यथाशक्ति वारहों द्वादशी-ब्रतोंको समाप्त कर यक्षि अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शत्र्या-दान करना चाहिये। ब्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शूलक-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर प्राप्त अथवा गृहके साथ-साथ भूमिका दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनवाशियों-द्वारा संतुष्ट करना चाहिये। स्वल्प धनवाला ब्रती अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करे तथा जो ब्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे तीन वर्षताक पुष्पार्चनकी विधिसे इस ब्रतका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीड़ियोंतको तार देता है। उसे एक लाख जन्मोत्तक

^१—इस ब्रतका वर्णन मत्स्यपु १९-१००, पशुपु सृष्टिसं २०। १—४२, विष्णुधर्मो, ब्रतब्र, ब्रतराज, ब्रतकल्पद्वाम आदिमें भी ये ही प्राप्त होता है। पालीय कथामें तीर्थगुरु पुष्पक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दग्धिता ही घरती है तथा न ब्रह्मनमें ही पड़ना पड़ता है। वह प्रत्येक जनमें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है। राजन् ! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा— महाराज ! बहुत पहले रथ्यन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जिससे वह इच्छानुसार जहाँ-कहाँ भी आ-जा सकता था। उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकमें तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था। कल्पके आदिमें पुकरनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकोंमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्परुद्धीपके नामसे कहा जाने लगा। चैकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकमें कोई भी स्थान अगम्य न था। नरेन्द्र ! उसकी पलीका नाम ल्लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वतीजी परम प्रिय है। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अप्रगम्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बासवार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मय-विमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि^१ राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देखकर राजा ने उससे इस प्रकार प्रश्न किया—

राजा पुष्पवाहनने पूछा— मुनीन् ! किस कारणसे मुझे

यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है ? मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्षेत्रों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौं करोड़ राजा बैठ जायें तो भी वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान तारागणों, लोकपालों तथा देवताओंके लिये भी अलक्षित-सा रहता है। प्रयेतः ! मैंने, मेरी पुत्रीने अथवा मेरी भायने पूर्वजन्मोंमें कैन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसका प्रभाव आज दिखलायी पड़ रहा है, इसे आप बतलायें।

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जनान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—‘राजन् ! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याघके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्ग संधियुक्त तथा बेड़ील था। तुम्हारी त्वचा दुर्गच्छुक थी और नक्ष बहुत बड़े हुए थे। उससे दुर्गच्छुकलती थी और तुम बड़े कुरुप थे। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और न भाई-बहु थी थे, न पिता-माता और बहिन ही थी। भूपाल ! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पली ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी भयंकर अनायाएँ हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कुछ भी जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कोई खाता वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मणित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिशा^२ नामक नगर- (वैदिशा नगरी-) में चले गये। वहाँ तुम्हें उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चकार लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीदार न मिला। उस समय

१-वाल्मीकीय रुद्रायण, उत्तरकल्प १३। १७, १६। १०, ११। ११ तथा अध्यात्मरामायण ७। ३। ३१, वाल्मीकीय, उत्तररामायणित अदिके अनुसार ‘प्राचेतस’ शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है।

२-यह इतिहास-पुण्यादिमें अति प्रसिद्ध वैदिशा नामकी नदीके ऊपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेस्तानगर, आजकलका भेस्तानगर है। इसपर कविनिवासका ‘भेस्तां टीप्पा’ नाम प्रसिद्ध है।

तुम भूखसे अस्थन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय छान्त होकर पलीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पलीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गलशब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ मासकी विभूतिद्वादशी-ब्रतकी समाप्ति कर अपने गुहको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शुद्धार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचाल और समस्त उपकरणोंसहित शश्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाप्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शुद्धार किया जाता। नरेश्वर ! उस समय तुम दोनों पति-पलीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अचाकि प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचालकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंने शश्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया।

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशार्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया। भूपते ! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेहा, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लक्षकर दिया और कहा—‘भोजन कीजिये’, किन्तु तुम दोनोंने उसका भी परित्याग कर दिया और कहा—‘वरानने ! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दूववते ! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हमें विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।’ उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ और तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया था। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुहको लवणाचालसहित शश्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बाहर ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादिसहित बाहर गैरे प्रदान की।

तदनन्तर सुहृद्, भिव, दीन, अंधे और दण्डोंके साथ तुम लुधक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सलवारके साथ तुम्हें विदा किया।

राजेन्द्र ! वह सपलीक लुधक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निलोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन् ! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर खेच्छानुसार जहाँ-कहाँ भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पली रतिके^१ सौतरुप्यमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विवृत्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सलकृत है। इसलिये राजराजेश्वर ! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी।

श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! ऐसा कहकर प्रचेतामुनि वहाँ अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कर्म सम्पन्न किया। राजन् ! इस विभूतिद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करते समय अस्त्राण्ड-ब्रतका पालन करना आवश्यक है। जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका ब्रत कमल-पुष्पोद्घार सम्पन्न करना चाहिये। अनघ ! अपनी शक्तिके अनुसार आद्याणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृष्णता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस ब्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देखलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ८५)

१—हरिवंश एवं अन्य पुण्यों तथा कथासरित्सागरादिमें भी ऐसी और प्रीति—ये दो कर्मदेवकी परिवर्ण कही गयी है। किन्तु उसकी दूसरी पर्णी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यही है।

मदनद्वादशी-ब्रतमें मरुदूषणोंका आख्यान

युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! दिति (दैत्योंकी जननी) ने जिस ब्रतके करनेसे उनचास मरुदूषणोंको पुत्र-रूपमें प्राप्त किया था, अब मैं आपसे उस मदनद्वादशी-ब्रतके विषयमें सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिसे जिस उत्तम मदनद्वादशी-ब्रतका वर्णन किया था, उसीको आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। ब्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासके शुक्र पक्षकी द्वादशी तिथिको धेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर धेत चन्दनका अनुलेप्य लगा हो तथा वह धेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके छतुफल और गधेके टुकड़े रखे जायें। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुखन-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ तांबिका पात्र स्थापित करे। उसके ऊपर केलेके पतेपर काम तथा उसके बाम-भागमें शक्तसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य तथा भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करे। प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणोंको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन करकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस प्रकार उत्तरण करे—‘जो सम्पूर्ण प्रणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे क्रामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।’

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन आमलक-फल खाकर भूतलपर शयन करे और ब्रोदीशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर धूतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पत्र शाव्या, क्रामदेवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा और धेत रंगकी दुधारू चौ ब्राह्मणको समर्पित करे। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वाग सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शाय्या और सुगम्य आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये—‘आप प्रसन्न हों।’ तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ ब्रतीको क्रामदेवके

नामोंका कीर्तन करते हुए गोदुम्बसे बनी हुई हवि और धेत तिलोंसे हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गत्रा और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है।

दितिके इस ब्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पत्र तरुण बना दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। दितिने कहा—‘पतिदेव ! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हो।’ यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे कहा ‘ऐसा ही होगा।’

कश्यपने पुनः उससे कहा—‘वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और अपने गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि ! गर्भिणी स्त्रीको संघ्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री—मूसल, ओखलली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर खान न करे, सुनसान घरमें न जाय, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। वह बाल सोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहाँ भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर रहे न उद्धिप्राचित रहे, न कभी भीगे चरणोंसे शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलमें झान करे। बुरी ख़ियोंसे बातचीत न करे, कपड़ेसे हवा न ले। मृतवत्सा ख़ीके साथ न बैठे, दूसरेके घरमें न जाय, जलदी-जलदी न चले, महानदियोंको पार न करे। भर्यकर और बीभत्स दृश्य न देखे। अजीर्ण भोजन न करे। कठिन

व्यायामादि न करे। ओषधियोद्भारा गर्भकी रक्षा करती रहे, हृदयमें मातसर्य-भाव न रखे। जो गर्भिणी रुचि विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निसंदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है। प्रिये ! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके अपने गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।'

दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहाँ अन्तर्धान हो गये। तब दिति नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी। कालान्तरमें दितिको उनचास पुत्र (मरुदण) प्राप्त हुए।

राजन् ! इस प्रकारसे जो भी नारी इस मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करेगी, वह पुत्र प्राप्त कर पतिके सुखको प्राप्त करेगी। (अध्याय ८६)

अबाधक-ब्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशक ब्रतका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! जनशूद्य धोर बनमें, समुद्रतरणमें, संग्राममें, चोर आदिके भयमें व्याकुल मनुष्य किस देवताका स्मरण करे, जिससे उस संकटके समय उसकी रक्षा हो सके, यह आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! सर्वमङ्गला भगवती श्रीदुर्गादिवीका स्मरण करनेपर पुरुष कभी भी दुःख और भयको प्राप्त नहीं होता। भारत ! जब मैं और बलदेवजी अपने गुरु संदीपनि मुनिके यहाँ सब विद्या पढ़ चुके तो उस समय हमने गुरुदक्षिणाके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की। तब गुरुजीने हमारा दिव्य प्रभाव जानकर यही कहा—‘प्रभो ! मेरा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गया था, वहाँ उसे समुद्रमें किसी प्राणीने मार दिया, उसी पुक्को गुरुदक्षिणाके रूपमें मुझे प्राप्त कराओ।’ तब हम यमलोकमें गये और वहाँसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुजीके समीप आये और गुरुदक्षिणाके रूपमें उनका पुत्र उन्हें समर्पित कर दिया। तदनन्तर गुरुको प्रणामकर जब हम चलने लगे, तब गुरुजीने कहा—‘पुत्रो ! इस स्थानमें तुम अपने चरणोंका चिह्न बना दो’, हमने भी गुरुकी आज्ञाके अनुसार बैसा ही किया, फिर हम बापस घर आ गये। उसी दिनसे बलदामजीके दक्षिण पादका, मध्यमें सर्वमङ्गलाका और मेरे बाम चरण-चिह्नका पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे अथवा अपनी इच्छाओंकी

पूर्तिके लिये सभी वहाँ पूजन करते हैं। प्रत्येक मासको शुक्र पक्षकी त्रयोदशीको एकभुक्त, नक्षत्रत अथवा उपवास रहकर मूर्तिका अथवा सुवर्णकी इनकी प्रतिमा बना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु आदिसे जो रुचि अथवा पुरुष पूजन करता है, वह समूर्ण पांचोंसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—यदुशार्दूल ! ऐसा कौन ब्रत है, जिसके आचरणसे शरीरका दुर्गन्ध नहीं हो जाय और दौर्भाग्य भी दूर हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! इसी प्रश्नको गानी विष्णुभक्तिने जातूकर्त्त्यमुनिसे पूछा था, तब उन्होंने उनसे कहा—‘देवि ! ज्येष्ठ मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीमें पवित्र जलाशयमें खान करे और शुद्ध स्थानमें उत्पन्न शेत आक, रक्त करवीर तथा निष्प वृक्षकी पूजा करे। ये तीनों वृक्ष भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शनकर उनका अपने हृदयमें ध्यान करे। अनन्तर पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि उपचारोंसे उन वृक्षोंकी पूजा करे और पूजनके अनन्तर उन्हें नमस्कार करे।

राजन् ! इस विधिसे जो रुचि-पुरुष इस ब्रतको करते हैं, उनके शरीरकी दुर्गन्ध तथा उनका दौर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं और वे सौभाग्यशाली हो जाते हैं। (अध्याय ८७-८८)

धर्मराजका समाराधन-ब्रत*

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! ऐसा कौन-सा ब्रत है जिसके करनेसे यमराज प्रसन्न हो जाय और नरकका दर्शन न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! एक बार जब मैं द्वारका-स्थित समुद्रमें स्नान करके बाहर निकला, तब देखा कि मुद्रलमुनि चले आ रहे हैं। उनका तेज सूर्यके समान था

* यह कथा स्कन्दपुराणके नामसे अनेक ब्रत-निवारणोंमें संप्रहीत है।

और उनके मुखके तपस्तेजसे दिशाईं उद्भवित हो रही थीं। तब मैंने उनका अर्थ, पाद्य आदिसे सलकार कर आदरपूर्वक उनसे पूछा—‘महाराज ! प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयदायक नरक तथा यमदूतों आदिका जिससे दर्शन न हो ऐसा कोई व्रत आप मुझसे बतलायें।’ यह सुनकर मुद्रलम्बुनि भी कुछ विस्मित-से हुए। किंतु बादमें शान्त-मन होकर वे बोले—‘प्रभो ! एक बार ऐसा हुआ कि मुझे अकस्मात् मूर्च्छा आ गयी और मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस स्थितिमें मैंने देखा कि हाथमें लाटी लिये कुछ लोग आगसे जलते हुए-से मेरे शरीरसे निकलकर बाहर रखड़े हुए थे और मेरे हृदयसे एक औंगठेके बगावर व्यक्तिको बलपूर्वक खींचकर तथा रसियोंसे बाँधकर यमपुरीकी ओर ले जा रहे हैं। फिर मैं तल्काल क्या देखता हूँ कि यमराजकी सभा लगी है और लाल-पीले नेत्रोंवाले यमराज सभामें विराजमान हैं तथा कफ, वात, पित्त, ज्वर, मांस, शोथ, फोड़, फुसी, भगंदर, अशिरोग, विषुचिका, गलग्रह आदि अनेकों प्रकारके रोग और मृत्यु उन्हें खेरे हुए हैं और वे सभी मूर्तिमान् होकर यमदेवकी उपासना कर रहे हैं। यमदूत भयंकर शर्ष धारण किये हैं। कुछ गक्षस, दानव आदि भी वहाँ बैठे हैं। सिंह, व्याघ्र, बिचू, दंश, सियार, साँप, उल्लू, कीड़े-मकोड़े आदि भयंकर जीव-जन्म वहाँ उपस्थित हैं।’ यमराजने अपने किंकरोंसे पूछा—‘दूतो ! तुमलोग यहाँ इन मुद्रलम्बिनिकों क्यों ले आये ? मैंने तो मुद्रल शत्रियको लानेके लिये कहा था, वह कौँडिन्यनगरका निवासी भीष्मकव चुन है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है, इन मुनियों तल्काल छोड़ दो और उसे ही ले आओ।’ यह सुनकर वे दूत कौँडिन्यनगर गये, किंतु वहाँ गजा मुद्रलमें मृत्युके कोई लक्षण न देखकर भ्रान्त होकर पुनः यमलोकमें लापस आये और उन्होंने साया बृतान्त यमराजको बता दिया। इसपर यमराजने उनसे कहा—‘दूतो ! जिन पुरुषोंने नरकार्त्ति-विनाशिनी त्रयोदशीका व्रत किया है, उन्हें यमकिंकर नहीं देख पाते, इसीलिये तुमलोगोंने गजा मुद्रलको पहचाना नहीं।’ पुनः यमदूतोंद्वारा व्रतके विधानको

पूछे जानेपर यमराजने उनसे कहा—‘मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीको जब गविवार एवं मंगलवार न हो तब उस दिन तेरह विद्वान् और पवित्र ब्राह्मणों तथा एक पुराणवाचकका वरण करके पूर्वाह्निकालमें इन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख पवित्र आसनपर बैठाये। तिल-तैलसे उनका अध्यंग करके गन्धकायाय तथा हलके गरम जलसे उन्हें पृथक्-पृथक् स्नान कराये और उनकी सेवा-शुश्रूषा करे। अनन्तर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन्हें शाल्यन, मुद्रान, गुड़के अपूर्प तथा सुपक्व व्यञ्जन आदरपूर्वक लिलाये।

पुनः ब्रती पवित्र होकर आचमन करे और उन ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। ताप्तात्रमें प्रस्थमात्र (एक पसर या एक सेर) तिल-ताष्ठुल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश आदि उन्हें अलग-अलग प्रदान कर विसर्जित करे।

इसी प्रकार वर्षभरतक व्रत करे। कोई मानव यदि आदरपूर्वक एक बार भी इस व्रतको कर ले तो वह मेरे यमलोकका दर्शन नहीं करता। वह मेरी मायासे अदृष्ट रहता है, अन्तमें विमानद्वारा अर्कमण्डलमें प्रवेश कर वह विष्णुपुर और शिवपुरको प्राप्त करता है। यमदूतों ! उस रात्रा मुद्रलने इस त्रयोदशी-व्रतको पहले किया था, इसीलिये तुम सब उस क्षत्रिय-त्रेषुका दर्शन नहीं कर पाये।’

श्रीकृष्ण ! उसी क्षण मेरी मूर्च्छा दूर हो गयी और मैं स्वस्थ हो गया। भगवान् ! मैं आपके दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया था, जैसा पहले बृतान्त हुआ, वह सब मैंने आपको बतलाया।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन् ! वे मुनि मुझसे इतना कहकर अपने स्थानको छले गये। कौन्तेय ! आप भी इस व्रतको करें। इससे आपको यमलोक नहीं जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जो कोई स्त्री-पुरुष इस त्रयोदशी-व्रतका श्रद्धापूर्वक आचरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर अपने पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें पूजित होंगे और उन्हें कभी यमयातना नहीं सहनी पड़ेगी। (अध्याय ८९)

—८८—

अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रत

युधिष्ठिरने पूछा—संसारसे उद्धार करनेवाले स्वामिन् ! आप रूप एवं सौभाग्य प्रदान करनेवाला कोई व्रत बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! शरीरको छेद देनेवाले बहुत-से व्रतोंके करनेसे क्या लाभ ? अकेले

अनङ्गत्रयोदशी ही सब दोषोंका शमन एवं समस्त मङ्गलोंकी चृद्धि करनेवाली है। आप इसकी विधि सुनें।

पहले जब भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध कर दिया, तब वह विना अङ्गके ही सबके शरीरमें निवास करने लगा। कामदेवने इस ब्रतके किया था, इसीसे इसका नाम अनङ्ग-त्रयोदशी पड़ा। इस ब्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीको नटी, तड़ाग आदिमें खान कर, जितेन्द्रिय हो, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य और कालोदूत फलोंसे भगवान् शंकरका 'शशिशेषर' नामसे पूजन करे और तिलसहित अक्षतोंसे हवन करे। रात्रिको मधु-प्राशन कर सो जाय। इससे ब्रती कामदेवके समान ही सुन्दर हो जाता है और दस अश्वमेघ-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार धौप मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीमें भगवान् शंकरका 'योगेश्वर' नामसे पूजन कर चन्दनका प्राशन करे तो शरीरमें चन्दनके समान गन्ध हो जाती है और ब्रती राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। माघ मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीको भगवान् शंकरका 'महेश्वर' नामसे पूजन कर मोतीका चूर्ण भक्षण करे तो उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार फलनुगमें 'हरेश्वर' नामसे पूजन कर कंकोलका प्राशन करनेसे अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। चैत्रमें 'सुरुपक' नामसे पूजन करने और कर्पूर-प्राशन करनेसे ब्रती चन्द्रके तुल्य मनोहर हो जाता है और महान् सौभाग्य प्राप्त करता है। वैशाखमें 'महारूप' नामसे पूजन कर जातीफल (जायफल)का प्राशन करे, इससे उत्तम कुलकी प्राप्ति होती है और उसके सब काम सफल हो जाते हैं तथा वह सहस्र गोदानका फल प्राप्त कर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। ज्येष्ठमें 'प्रद्युम्न' नामसे पूजन करे और लवंगका प्राशन करे, इससे उत्तम स्थान, श्रेष्ठ लक्ष्मी और

सभी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा वह एक सौ आठ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। आषाढ़में 'उमाभर्ती' नामसे पूजन कर तिलोदकका प्राशन करे। इससे उत्तम रूप प्राप्त होता है तथा वह सौ वर्षतक मुखी जीवन व्यतीत करता है। श्रावणमें 'उमापति' नामसे पूजन कर तिलोंका प्राशन करे, इससे पौष्टीरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें 'सद्योजात' नामसे पूजन कर आगरुका प्राशन करे, इससे वह भूमिपर सबका गुरु बनता है और पुष्प-पौत्र, धन आदि प्राप्त कर बहुत दिन संसारमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें पूजित होता है। आष्टिन मासमें 'त्रिदशाधिपति' नामसे पूजन कर स्वर्णोदकका प्राशन करे तो ब्रती उत्तम रूप, सौभाग्य, प्रगल्भता और करोड़ों निष्ठदानका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें 'विष्णेश्वर' नामसे पूजन कर दमन (दैना) फलका प्राशन करे तो ब्रती अपने बाहुबलसे समस्त संसारका साधी होता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

इस प्रकार वर्षभर इस उत्तम ब्रतका पालन कर पारणा करनी चाहिये। फिर कलश स्थापित कर उसके ऊपर ताप्रपात्र और उसके ऊपर शिवकी प्रतिमा स्थापित कर शेष वस्त्रसे आच्छादित करे। गन्ध, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर उसे शिवभक्त ब्राह्मणको प्रदान कर दे। साथ ही पर्यावरणी सबसा गौ, छाता और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार जो इस अनङ्गत्रयोदशी-ब्रतको करता है और ब्रत-पारणके समय महान् उत्सव करता है वह निष्ठाप्तक राज्य, आयुष्य, बल, यश तथा सौभाग्य प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय १०)

पाली-ब्रतः एवं रम्या-(कदली-) ब्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवान्! श्रेष्ठ स्त्रियाँ जलपूर्ण तड़ागों और सरोवरोंमें किस निमित्त खान-दान आदि कर्म करती हैं? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी चतुर्दशीके बावली, कुण्डे, पुष्करिणी तथा

बड़े-बड़े जलाशयों आदिके पास पवित्र होकर भगवान् वरुणदेवको अर्थ प्रदान करना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि तड़ागके तटपर जाकर फल, पुण्य, वस्त्र, दीप, चन्दन, महावर, सप्तधान्य, बिना आग्रिमें स्पर्शसे पका हुआ अत्र, तिल, चावल, खजूर, नारिकेल, बिजौर नीबू, नारंगी, अंगूर, दाढ़िम,

१-पाली शब्द जटिल है, यह क्षेत्रोंमें प्रायः नहीं मिलता। इसका अर्थ कूप, तड़ाग आदि जलाशयोंवाले रक्षके लिये बने खेतों हैं। उसीपर बैठकर करना चाहिये।

सुपारी आदि उपचारोंसे वारुणीसहित वरुणदेवकी एवं जलाशयकी विधिपूर्वक पूजा करे और उन्हें अर्थ्य प्रदान कर इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

वरुणाय नमस्तुष्ट्यं नमस्ते यादसाम्पते ।
अपामप्ते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः ॥
मा द्वे दं मा च द्वौग्निं विरस्यं मा मुखेऽस्तु ये ।
वरुणो वारुणीधर्ता वरद्वेऽस्तु सदा यम ॥

(उत्तरपर्व ११।७-८)

‘जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। सभी जल एवं जलसे उत्पन्न रस-द्रव्योंके स्वामी वरुणदेव ! आपको नमस्कार है। मेरे शरीरमें पसीना, दुर्गम्य या विरसता^१ आदि मेरे मुखमें न हो। वारुणीदेवीके स्वामी वरुणदेव ! आप मेरे लिये सदा प्रसन्न एवं वरदायक बने रहें।’

ब्रतीको चाहिये कि इस दिन विना अग्रिमे पके हुए भोजन अर्थात् फल आदिका भोजन करे। इस विधिसे जो पाली-ब्रतको करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। आयु, यश और सौभाग्य प्राप्त करता है तथा समुद्रके जलकी भौति उसके धनका कभी अन्त नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—यजन् ! अब मैं ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षियोंके द्वारा पूछे जानेपर देवलमुनिश्रोक्त रम्भा-ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह भी भाद्रपद शुक्र चतुर्दशीको ही होता है। सभी देवताओं, गण्डवों तथा अपराधोंने भी इस ब्रतका अनुष्ठान कर कदली-वृक्षको सादर अर्थ्य प्रदान किया था। ब्रतीको चाहिये कि इस चतुर्दशीको

नाना प्रकारके फल, अंकुरित अन्नों, सप्तधान्य, दीप, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, बर्ख, पक्षान्न, जायफल, इलायची तथा लवणग आदि उपचारोंसे कदली-वृक्षका पूजनकर उसे निष्पत्ति विधित मन्त्रसे अर्थ्य प्रदान करे—

वित्या त्वं कन्दलदैः कदली कामदायिनि ।

शरीरातोम्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२।७)

‘कदली देवि ! आप अपने पतोंसे वायुके व्याजसे ज्ञान एवं चेतनाका संचार करती हुई सभी क्रमनाओंको देती हैं। आप मेरे शरीरमें रूप, लावण्य, आरोग्य प्रदान करनेकी कृपा करें। आपको नमस्कार है^२।’

इसके अनन्तर स्वर्ण पके हुए फल आदिका भोजन ग्रहण करे। जो भी पुरुष अथवा स्त्री भक्तिसे इस ब्रतको करती है, उसके वंशमें दुर्भाग्य, दरिद्रा, वन्ध्या, पापिनी, व्यभिचारिणी, कुलद्या, पुनर्भू, दुष्टा और पतिकी विरोधिनी कोई कन्या नहीं उत्पन्न होती। इस ब्रतको करनेपर नारी सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, आयुष्य तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त अपने पतिके साथ आनन्दपूर्वक रहती है। इस रम्भा-ब्रतको गायत्रीने स्वर्णमें किया था। इसी प्रकार गौरीने कैलासमें, इन्द्रजीने नन्दनवनमें, लक्ष्मीने खेतद्वीपमें, राजीने रथिमण्डलमें, अरुचतीने दारुकवनमें, स्वाहाने मेरुपर्वतपर, सीतादेवीने अयोध्यामें, वेदवतीने हिमाचलपर और भानुमतीने नागपुरमें इस ब्रतको किया था।

(अध्याय ११-१२)

आश्रेयी शिवचतुर्दशी-ब्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! प्राचीन कालमें जब अग्रिमेव अदृश्य हो गये, उस समय अग्रिमका कार्य किसने किया और कैसे अग्रिमे पुनः अपना स्वरूप प्राप्त किया ? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! एक बार उत्थमुनि और अङ्गिरामुनिका विद्यामें और तपमें परस्पर

श्रेष्ठताके विषयमें बहुत विवाद हुआ। इसका निश्चय करनेके लिये दोनों ब्रह्मालोक गये और उन्होंने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त बतलाया। ब्रह्माजीने उनसे कहा कि ‘तुम दोनों जाकर सभी देवताओं और लोकपालोंको यहाँ बुला लाओ, तब सभीके समझ इसका निर्णय किया जायगा।’ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दोनों जाकर सभी देवता, ऋषि, गर्ववीर, किंवद्र, यक्ष, राक्षस,

१-जब आदिसे मुखका साद बिगड़ जाता है, उसे विरसता कहते हैं।

२-कदलीके व्याजसे सर्वशक्तिमयी दुर्गाकी ‘वित्तिरूपेण या कृत्वा मेतद् व्याय स्थित जगत् । नमस्तस्मै’-के ही स्मरण करते हुए प्रार्थना की गयी है।

दैत्य, दानव आदिको बुला लये। किन्तु भगवान् सूर्य नहीं आये। ब्रह्माजीके पुनः कहनेपर उत्तर्यमुनि सूर्यनारायणके समीप जाकर बोले—‘भगवन्! आप शीघ्र ही हमारे साथ ब्रह्मलोक चलें।’ भगवान् सूर्यने कहा—‘मुझे! हमारे चले जानेपर जगत्‌में अन्धकार छा जायगा, इसलिये हमारा चलना किस प्रकार हो सकता है, हम नहीं चल सकेंगे।’ यह सुनकर उत्तर्यमुनि वहाँसे चले आये और ब्रह्माजीको सब वृत्तान् सुना दिया। तब ब्रह्माजीने अङ्गिरामुनिसे सूर्यभगवान्‌को बुलानेके लिये कहा। अङ्गिरामुनि ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सूर्यनारायणके समीप गये और उनसे ब्रह्मलोक चलनेको कहा। सूर्यनारायणने वही उत्तर इनको भी दिया। तब अङ्गिराने कहा—‘प्रभो! आप ब्रह्मलोक जायें, मैं आपके स्थानपर यहाँ रहकर प्रकाश करेंगा।’ यह सुनकर सूर्यनारायण तो ब्रह्माजीके पास चले गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेजसे तपने लगे। इधर भगवान् सूर्यने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन्! आपने किस निमित्तसे मुझे यहाँ बुलाया है?’ ब्रह्माजीने कहा—‘देव! आप शीघ्र ही अपने स्थानपर जायें, नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको दम्ध कर डालेंगे। देखिये उनके तापसे सभी लोग दम्ध हो रहे हैं। जबतक वे सब कुछ भस्म न कर डालें उससे पूर्व ही आप प्रतिष्ठित हो जायें।’ यह सुनते ही सूर्यभगवान् पुनः अपने स्थानपर लौट आये और उन्होंने अङ्गिरामुनिकी सुन्ति कर उन्हें बिदा किया। अङ्गिरा पुनः देवताओंके समीप आये। देवताओंने अङ्गिरामुनिकी सुन्ति की और कहा—‘भगवन्! जबतक हम अग्रिको रूँदें, तबतक आप अग्रिके सभी कर्म कीजिये।’ देवताओंका ऐसा वचन सुनकर महर्षि अङ्गिरा अग्रिरूपमें देवताओंकी सम्पत्ति करने लगे। जब अग्रिदेव आये तो उन्होंने देखा कि अङ्गिरामुनि अग्रि बनकर स्थित है। इसपर वे बोले—‘मुझे! आप मेरा स्थान छोड़ दें। मैं आपकी शुभा नामकी खीसे ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और तब मेरा नाम होगा बृहस्पति। आपके और भी बहुत-से

पुत्र-पौत्र होंगे।’ यह वर पाकर प्रसन्न हो महर्षि अङ्गिराने अग्रिका स्थान छोड़ दिया।

राजन्। अग्रिदेवको चतुर्दशी तिथिको ही अपना स्थान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह तिथि अग्रिको अति प्रिय है और आग्रेयी चतुर्दशी तथा गौत्री चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। स्वर्णमें देवता और भूमिपर मान्याता, मनु, नहुष आदि बड़े-बड़े राजाओंने इस तिथिको माना है। जो पुरुष युद्धमें मारे जायें, सर्प आदिके कट्टनेसे मरे हों और जिसने आत्मघात किया हो, उनका इस चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये, जिससे वे सद्गतिको प्राप्त हो जायें। इस तिथिके ब्रतका विधान इस प्रकार है—चतुर्दशीको उपवास करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे विलोचन श्रीसदाशिष्यका पूजन करे, रथिये जागरण करे। गविये पञ्चगव्यका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करे। तैल-क्षारसे रहित श्यामाक (साँबा)का भोजन करे। अग्रिके नाम-मन्त्रोद्घात्रा काले तिलोंसे १०८ आहुतियाँ प्रदान करे। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर पञ्चामूतसे शिवजीको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और पूर्वोक्त रीतिसे हवनकर उनकी प्रार्थना करे। पीछे आरती कर ब्राह्मणको भोजन कराये। उनको दक्षिणा दे और मौन हो स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष ब्रत कर सुवर्णीके विलोचन भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनाये। प्रतिमाको चाँदीके वृषभपर स्थितकर दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर ताप्रापात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दे दे। जो एक वर्षतक इस ब्रतको करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें तीर्थमें प्राण परित्याग कर शिवलोकमें देवताओंके साथ विहार करता है। वहाँ बहुत कालतक रहकर वह पृथ्वीमें आकर ऐश्वर्य-सम्पत्ति धार्मिक राजा होता है। पुत्र-पौत्रोंसे समन्वित होता है और चिरकालतक आनन्दित रहता है तथा अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ९३)



अनन्तचतुर्दशी-ब्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सम्पूर्ण पापोंका नाशक, कल्याणकारक तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनन्तचतुर्दशी नामक एक व्रत है, जिसे भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको सम्पन्न किया जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो अनन्त नाम लिया है, क्या ये अनन्त शेषनाम हैं या कोई अन्य नाम हैं या परमात्मा हैं या ब्रह्म हैं? अनन्त संज्ञा किसकी है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अनन्त मेरा ही नाम है। कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग तथा कल्प आदि काल-विभागोंके रूपमें मैं ही अवस्थित हूँ। संसारका भार उतारने तथा दानोंका विनाश करनेके लिये वसुदेवके कुलमें मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। पार्थ! आप मुझे ही विष्णु, विष्णु, हर, शिव, ब्रह्म, भास्कर, शैव, सर्वव्यापी ईश्वर समझिये और अनन्त भी मैं ही हूँ। मैंने आपको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये ऐसा कहा है।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! मुझे आप अनन्त-ब्रतके माहात्म्य और विधिको तथा इसे किसने पहले किया था और इस ब्रतका क्या पुण्य है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें। कृतयुगमें वसिष्ठगोत्री सुमन्तु नामके एक ब्राह्मण थे। उनका महर्षि भृगुकी कन्या दीक्षासे वेदोक्त-विधिसे विवाह हुआ था। उन्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीला रखा गया। कुछ समय बाद उसकी माता दीक्षाका ज्वरसे देहान्त हो गया और उस पतिवताको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। सुमन्तुने पुनः एक कर्कशा नामके समान ही दुशील, कर्कश तथा नित्य कलहकरिणी एवं चण्डीरूपा थी। शीला अपने पिताके घरमें रहती हुई दीवाल, देहली तथा स्तम्भ आदिमें माझलिक स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख आदि विष्णुचिह्नोंको अङ्कित कर उनकी अर्चना करती रहती। सुमन्तुको शीलाके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने शीलाका विवाह कौड़िन्यमुनिके साथ कर दिया। विवाहके अनन्तर सुमन्तुने अपनी पलोंसे कहा— 'देवि !

दामादके लिये पारितोषिक रूपमें कुछ दहेज द्रव्य देना चाहिये।' यह सुनकर कर्कशा कुद्द हो उठी और उसने घरमें बने मण्डपको उत्ताढ़ डाला तथा भोजनसे बचे हुए कुछ पदार्थोंको पाथेयके रूपमें प्रदान कर कहा—'चले जाओ, फिर उसने कपाट बंद कर लिया।

कौड़िन्य भी शीलाको साथ लेकर बैलगाड़ीसे धौर-धौर बहासे चल पड़े। दोपहरका समय हो गया। वे एक नदीके किनारे पहुँचे। शीलाने देखा कि शुभ वस्त्रोंको पहने हुए कुछ स्त्रियाँ चतुर्दशीके दिन भक्तिपूर्वक जनार्दनकी अलग-अलग पूजा कर रही हैं। शीलाने उन स्त्रियोंके पास जाकर पूछा— 'देवियो ! आपलोग यहाँ किसकी पूजा कर रही हैं, इस ब्रतका क्या नाम है?' इसपर वे स्त्रियाँ बोलीं—'यह व्रत अनन्त-चतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है।' शीला बोली—'मैं भी इस ब्रतको करूँगी, इस ब्रतका क्या विधान है, किस देवताकी इसमें पूजा की जाती है और दानमें क्या दिया जाता है, इसे आपलोग बतायें।' इसपर स्त्रियोंने कहा—'शीले ! प्रस्थधर पक्षवत्रका नैवेद्य बनाकर नदीटटपर जाय, वहाँ रुान कर एक मण्डलमें अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी गम्य, पुण्य, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे और कथा सुने। उन्हें नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यका आधा भाग ब्राह्मणको निवेदित कर आधा भाग प्रसाद-रूपमें ग्रहण करनेके लिये रखे। भगवान् अनन्तके सामने चौदह ग्रन्थियुक्त एक दोरक (डोरा) स्थापित कर उसे कुंकुमादिसे चर्चित करे। भगवान्के वह दोरक निवेदित करके पुरुष दाहिने हाथमें और ऊँची बाये हाथमें बाँध ले। दोरक-बन्धनका मन्त्र इस प्रकार है— अनन्तसंसारमहासमुद्रे मध्यान् समभुद्धर वासुदेव। अनन्तस्वरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥

(उत्तरपर्व १४। ३३)

'हे वासुदेव ! अनन्त संसाररूपी महासमुद्रमें मैं डूब रही हूँ, आप मेरा उद्धार करें, साथ ही अपने अनन्तस्वरूपमें मुझे भी आप विनियुक्त कर ले। हे अनन्तस्वरूप ! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।'

दोरक बाँधनेके अनन्तर नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये। अन्तमें विश्वरूपी अनन्तदेव भगवान् नारायणका ध्यान कर

अपने घर जाय। शीले ! हमने इस अनन्तब्रतका वर्णन किया। तदनन्तर शीलाने भी विधि से इस ब्रतका अनुष्ठान किया। पाथेय निवेदित कर उसका आशा भाग ब्राह्मणको प्रदान कर आधा स्वयं ग्रहण किया और दोरक भी बांधा। उसी समय शीलाके पति कौड़िन्य भी बांधा आये। फिर वे दोनों बैलगाड़ी से अपने घरकी ओर चल पड़े। घर पहुँचते ही ब्रतके प्रभावसे उनका घर प्रचुर धन-धान्य एवं गोधनसे सम्पन्न हो गया। वह शीला भी मणि-मुक्ता तथा स्वर्णादिके हारों और बख्तोंसे सुशोभित हो गयी। वह साक्षात् सावित्रीके समान दिखलायी देने लगी। कुछ समय बाद एक दिन शीलाके हाथमें बैधे अनन्त-दोरको उसके पतिने कुदू हो तोड़ दिया। उस विपरीत कर्मविपाकसे उनकी सारी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, गोधन आदि चोरोंने चुरा लिया। सभी कुछ नष्ट हो गया। आपसमें कलह होने लगा। मित्रोंने सम्बन्ध तोड़ लिया। अनन्त-भगवान्के तिरस्कार करनेसे उनके घरमें दरिद्रताका साक्रान्त्य छा गया। दुर्खी होकर कौड़िन्य एक गहन बनमें चले गये और विचार करने लगे कि मुझे कब अनन्तभगवान्के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्होंने पुनः निराहार रहकर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान् अनन्तका ब्रत एवं उनके नामोंका जप किया और उनके दर्शनोंकी लालसासे विहूल होकर वे पुनः दूसरे निर्जन बनमें गये। वहाँ उन्होंने एक फले-फूले आम-वृक्षको देखा और उससे पूछा कि क्या तुमने अनन्त-भगवान्को देखा है ? तब उसने कहा—‘ब्राह्मण देखता ! मैं अनन्तको नहीं जानता।’ इस प्रकार वृक्षों आदिसे अनन्त-भगवान्के विषयमें पूछते-पूछते घास चरती हुई एक सवत्सा गौको देखा। कौड़िन्यने गौसे पूछा—‘धेनुके ! क्या तुमने अनन्तको देखा है ?’ गौने कहा—‘विष्णो ! मैं अनन्तको नहीं जानती।’ इसके पश्चात् कौड़िन्य फिर आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृषभ घासपर बैठा है। पूछनेपर वृषभने भी बताया कि मैंने अनन्तको नहीं देखा है। फिर आगे जानेपर कौड़िन्यको दो रमणीय तालाब दिखलायी पड़े। कौड़िन्यने उनसे भी अनन्तभगवान्के विषयमें पूछा, किन्तु उन्होंने भी अनपिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार कौड़िन्यने अनन्तके विषयमें गर्दभ तथा हाथीसे पूछा, उन्होंने भी नकाशात्का उत्तर दिया। इसपर वे कौड़िन्य अत्यन्त निराश हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसी

समय कौड़िन्यमुनिके सामने कृपा करके भगवान् अनन्त वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हो गये और पुनः उन्हें अपने दिव्य चतुर्भुज विश्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्का दर्शनकर कौड़िन्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी प्रार्थना करने लगे तथा अपने अपारधोंके लिये क्षमा मांगने लगे—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्बद्धः ।

पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ।

(उत्तरपर्यं ९४ । ६०-६१)

कौड़िन्यने भगवान्से पुनः पूछा—‘भगवन् ! घोर बनमें मुझे जो आम्रवृक्ष, वृषभ, गौ, पुष्करिणी, गर्दभ तथा हाथी मिले, वे कौन थे ? आप तत्त्वतः इसे बतलायें।

भगवान् बोले—‘द्विजदेव ! वह आम्रवृक्ष पूर्वजन्ममें एक वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण था, किन्तु उसे अपनी विद्याका बड़ा गर्व था। उसने शिष्योंको विद्या-दान नहीं किया, इसलिये वह वृक्ष-योनिको प्राप्त हुआ। जिस गौको तुमने देखा, वह उपजाऊ शक्तिरहित वसुभूषा थी, वह भूमि सर्वथा निष्करुण थी, अतः वह गौ बनी। वृषभ सत्य धर्मका आश्रय ग्रहणकर धर्मस्वरूप ही था। वे पुष्करिणीयाँ धर्म और अधर्मकी व्यवस्था करनेवाली दो ब्राह्मणीयाँ थीं। वे परस्पर बहिनें थीं, किन्तु धर्म-अधर्मके विषयमें उनमें परस्पर अनुचित विवाद होता रहता था। उन्होंने किसी ब्राह्मण, अतिथि अथवा भूखेको दान भी नहीं किया। इसी कारण वे दोनों बहिनें पुष्करिणी हो गयीं, यहाँ भी लहरोंके रूपमें आपसमें उनमें संघर्ष होता रहता है। जिस गर्दभको तुमने देखा, वह पूर्वजन्ममें महान् ब्रोधी व्यक्ति था और हाथी पूर्वजन्ममें धर्मदूषक था। हे विष्र ! मैंने तुम्हें सारी बातें बताल दीं। अब तुम अपने घर जाकर अनन्त-ब्रत करो, तब मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्रका पद प्रदान करूँगा। तुम स्वयं संसारमें पुत्र-पौत्रों एवं सुखको प्राप्तकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

कौड़िन्यने भी घर आकर भक्तिपूर्वक अनन्तब्रतका पालन किया और अपनी पत्नी शीलाके साथ वे धर्मात्मा उत्तम सुख प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गमें पुनर्जन्म सु नामक नक्षत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। जो व्यक्ति इस ब्रतको करता है या इस कथाको सुनता है, वह भी भगवान्के स्वरूपमें मिल जाता है। (अध्याय ९४)

श्रवणिकाव्रत-कथा एवं ब्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! संसारमें श्रावणी नामकी जिन देवियोंका नाम सुना जाता है, वे कौन हैं और उनका क्या धर्म है तथा वे क्या करती हैं ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डवश्रेष्ठ ! ब्रह्माने इन श्रावणी देवियोंकी रचना की है । संसारमें मानव जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, वे श्रावणी देवियाँ उस विषयकी सूचना शीघ्र ही ब्रह्माको श्रवण करती हैं, इसीलिये ये श्रावणी कही गयी हैं^१ । संसारके प्राणियोंका नियमन करनेके कारण ये पूज्य हैं । ये दूरसे ही जान-सुन-देख लेती हैं । कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इनसे अदृश्य हो । इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है जो तर्क, हेतु आदिसे अगम्य है । जिस प्रकार देवता, विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, किम्पुरुष आदि पूज्य एवं पुण्यप्रद हैं, उसी प्रकार ये श्रावणी देवियाँ भी वन्दनीय एवं पुण्यमयी हैं । लौ-पुरुषोंको इनकी प्रसन्नताके लिये ब्रत करना चाहिये तथा जल, चन्दन, पुष्प, धूप, पक्षान्त्र आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये और लियों तथा पुरुषोंको भोजन कराकर ब्रतकी पारणा करनी चाहिये ।

इनका ब्रत न करनेसे मृत्यु-कष्ट होता है और यम-यातना सहन करनी पड़ती है । राजन् ! इस विषयमें आपको एक आख्यान सुनाता हूँ—

प्राचीन कालमें नानु नामके एक राजा थे । उनकी रानीका नाम ‘जयश्री’ था । वह अत्यन्त सुन्दर, शीलवती एवं पतिव्रता थी । एक बार गङ्गामें ऋान करके वह महर्षि वसिष्ठके समीपवर्ती आश्रममें गयी, वहाँ उसने देखा कि माता अरुन्धती मुनिपत्रियोंके विषय फ्रकारका भोजन करा रही हैं । जयश्रीने उन्हें प्रणाम कर पूछा—‘भगवति ! आप यह कौन-सा ब्रत कर रही हैं ?’ अरुन्धती बोली—‘देवि । मैं श्रवणिकाव्रत कर रही हूँ । इस ब्रतको मुझे महर्षि वसिष्ठने बताया है । यह ब्रत अत्यन्त गुप्त और ब्राह्मणियोंका सर्वत्र है तथा कल्याओंके लिये श्रेष्ठ एवं उत्तम पति प्रदान करनेवाल है । तुम यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगी ।’ और उन्होंने वैसा ही किया ।

तदनन्तर जयश्री अपने नगरमें चली आयी । कुछ समय बाद वह उस ब्रतको तथा अरुन्धतीके भोजनको भूल गयी । समय आनेपर जब वह महासती मरणासन्न हुई तो उसके गलेमें घर्षणहट होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, मुखसे फेन एवं लार टपकने लगा । इस प्रकार दारण कष्ट भोगते हुए उसे पंद्रह दिन व्यापी हो गये । उसका मुख देखनेसे भय लगता था । सोलहवें दिन अरुन्धती जयश्रीके घर आयी और उन्होंने वैसी कष्टप्रद स्थितिमें उसे देखा । तब अरुन्धतीने राजा नहुयसे श्रवणिकाव्रतके विषयमें बतलाया । राजा नहुयने भी देवी अरुन्धतीके निर्देशानुसार जयश्रीके निमित्त तत्काल श्रवणिकाव्रतका आयोजन किया । उस ब्रतके प्रभावसे जयश्रीने सुख-पूर्वक मृत्युका वरण किया और इन्द्रलोकको प्राप्त किया ।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन् ! मार्गशीर्षसे कार्तिकातक द्वादश मासोंकी चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक यह ब्रत करना चाहिये । प्रातःकाल नदी आदिमें ऋानकर पवित्र हो, श्रेष्ठ बारह ब्राह्मण-दम्पतियों अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न बारह दम्पतियोंको बुलाकर गन्ध, पुष्प, रोचना, वस्त्र, अलंकार, सिंदूर आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करे । सुन्दर, सुडौल, अच्छिद्र, जलसे भरे हुए, सूत्रसे आवेषित तथा पुण्यमाला आदिसे विभूषित स्वर्णयुक्त बारह वर्धनियों (जलपूर्ण कलश) को ब्राह्मणियोंके सामने पृथक्-पृथक् रखे । उनमेंसे मध्यको एक वर्धनी उठाकर अपने सिरपर रखे तथा उन ब्राह्मणियोंसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था तथा बृद्धावस्थामें किये गये पाणोंके विनाश, सुखपूर्वक मृत्यु-प्राप्ति तथा संसार-सागरसे पार होने और भगवान्के परमपदको पानेके लिये प्रार्थना करे । ये ब्राह्मणियाँ भी कहें—‘ऐसा ही हो ।’ ब्राह्मणोंसे पापके विनाशके लिये प्रार्थना करे । ब्राह्मण उस वर्धनियोंसे उसके सिरसे उतार लें और उसे आशीर्वाद प्रदान करें । उन सभी वर्धनियोंको ब्राह्मण-पत्रियोंको दे दे ।

हे पार्थ ! इस प्रकार इस श्रवणिकाव्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला सभी भोगोंका उपभोग कर सुखपूर्वक मृत्युका वरण करता है और उत्तम लोकनको प्राप्त करता है । (अध्याय १५)

नक्त एवं शिवचतुर्दशी-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप नक्तब्रतका विधान सुनिये, जिसके करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी भी मासकी शुक्र चतुर्दशीको ब्राह्मणको भोजन कराकर नक्तब्रत प्रारम्भ करना चाहिये। प्रत्येक मासमें दो अष्टमियाँ और दो चतुर्दशियाँ होती हैं। उस दिन भक्तिपूर्वक शिक्षणीका पूजन करे और उनके ध्यानमें तत्पर रहे। रात्रिके समय पृथ्वीको पात्र बनाकर उसीमें भोजन करे^१। उपवाससे उत्तम भिक्षा, भिक्षासे उत्तम अयाचित-ब्रत और अयाचित-ब्रतसे भी उत्तम है नक्त-भोजन। इसलिये नक्तब्रत करना चाहिये। पूर्वाह्नमें देवता, मध्याह्नमें मुनिगण, अपराह्नमें पितर और सायंकालमें गुह्यक आदि भोजन करते हैं। इसलिये सबके बाद नक्त-भोजन करना चाहिये। नक्तब्रत करनेवाला पुरुष नित्य स्नान, स्वल्प हविव्याप्र-भोजन, सत्य-भाषण, नित्य-हवन और भूमिशयन करे। इस प्रकार एक वर्षताक ब्रत करके अन्तमें घृतपूर्ण कलशके ऊपर भगवान् शिवकी मृतिकासे अनी प्रतिमा स्थापित करे। कपिला गौके पञ्चगव्यसे प्रतिमाको स्नान कराकर फल, पुष्प, यव, क्षीर, दधि, दूर्वाकुरु, तिल तथा चावल जलमें छोड़कर अष्टाह्न-अर्ध्य प्रदान करे। दोनों शुटनोंको पृथ्वीपर रखकर पात्रको सिरतक डाकर महादेवजीको अर्घ्य दे। अनन्तर अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य नैवेद्य निवेदित करे। एक उत्तम सवत्सा गौ और वृषभ वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति दिव्य देह धारण कर उत्तम विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोगकर इस लोकमें महान् राजा होता है। एक बार भी जो इस विधानसे नक्तब्रत कर श्रीसदाशिवका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शिवचतुर्दशीकी विधि बता रहा हूँ। यह माहेश्वरब्रत शिवचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है^२। इस ब्रतमें

मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी त्रयोदशीको एक बार भोजन करे और चतुर्दशीको निराहार रहकर पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी गम्य, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे। स्वर्णका वृषभ बनाकर उसकी भी पूजा करे। अनन्तर वह वृषभ तथा स्थापित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको प्रदान कर दे, विविध प्रकारके भक्ष्य पदार्थ भी दे और कहे—‘प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्’। अनन्तर उत्तराभिमुख हो घृतका प्राशन कर भूमिपर शयन करे। प्रतिमासकी शुक्र चतुर्दशीको यही विधान करे और मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें शयनके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

शंकराय नमस्तुर्यं नमस्ते करवीरक ।

त्र्यम्बकाय नमस्तुर्यं महेश्वरमतः परम् ॥

नमस्तेऽस्तु महादेव स्वाणवे च ततः परम् ।

नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे नमः ॥

नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ।

नमो भीमाय चोप्राय त्वामहं शरणं गतः ॥

(उत्तरपर्व १३। १५—१७)

बारह महीनोंमें क्रमसे गोमूत्र, गोमय, दुध, दधि, धूत, कुशोदक, पञ्चगव्य, बिल्व, यवाग् (यवकी कौजी), कमल तथा काले तिलका प्राशन करे और मन्दार, मालती, घृत, सिंदुवार, अशोक, मैलिलका, कुञ्जक, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, रक्त एवं नीलकमल तथा कनेर—इन बारह पुष्पोंसे क्रमशः बारहों चतुर्दशियोंमें उमामहेश्वरका पूजन करे। अनेक प्रकारके भोजन, वस्त्र, आभूषण, दक्षिणा आदि देवत ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर नीले (कृष्ण) रंगका वृष छोड़े और एक गौ तथा एक वृष सुखर्णका बना करके आठ मोतियोंसे युक्त उत्तम शव्यापर स्थापित करे। जल-कुम्भ, शालि-चावल, धूत, दक्षिणासहित सब सामग्री वेद-ब्रत-परायण, शान्तिचित सपलीक ब्राह्मणोंको प्रदान कर दे। इस ब्रतको जो पुरुष भक्तिपूर्वक करता है, उसके माता-पिताके भी सभी पाप नष्ट

१-गवा आदि तीर्थमें पृथ्वीपर ही भोजनपात्रके रूपमें थालियाँ बनी रही हैं। यहाँले जैन, बौद्ध, धिक्ष, संनक्षसी उन्हींमें या मिट्टीकी बनी थालियोंमें भोजन करते थे और कुछ न्यौग हाथमें लेकर भोजन करते थे। उन्हें कल्पनी कहते थे। इसमें त्वरण, व्रत, तपस्या और सहिष्णुता सब विभिन्न थीं।

२- इस ब्रतका वर्णन मल्य आदि पुस्तकोंमें भी प्राप्त होता है।

हो जाते हैं और वह स्वयं हजार अश्वमेघ-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा दीर्घायु, ऐश्वर्य, आरोग्य, संतान एवं विद्या प्राप्त करता है। आदि प्राप्त करता है। बहुत दिनोंतक संसारका सुख भोगकर

(अध्याय १६-१७)

सर्वफलत्याग-चतुर्दशीब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भारत ! अब आप सर्वफलत्याग-चतुर्दशीब्रतका माहात्म्य सुनें। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस ब्रतका नियम मार्गशीर्ष मासके शुक्र पक्षकी चतुर्दशीको अथवा अन्य मासोंकी अष्टमीको प्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्राह्मणोंको पायस-भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस ब्रतका आरम्भ कर वर्षभर कोई निन्द्य फल-मूल तथा अठारह प्रकारके धान्य^१ भक्षण न करे। वर्षके अन्तमें चतुर्दशी अथवा अष्टमीके दिन सुवर्णके रुद्र एवं धर्मगुरुकी प्रतिमा बनाकर दो कलशोंके ऊपर स्थापित कर उनका पूजन करे। सोनेके सोलह कूप्याषड़ और मातुलुकु, बैगन, कटहल, आम्र, आमदा, कैथ, कलिंग (तरबूज), ककड़ी, श्रीफल, बट, अश्वत्थ, जम्बूरी नींबू, केला, और तथा दाढ़िम (अनार) —ये फल बनवाये। मूली, आंबला, जामुन, कमलगद्वा, करौदा, गूलर, नारियल, अंगूर, दो बनभंटा, कंकोल, काकमाची, खीर, करील, कुटज तथा शमी—ये सोलह फल चाँदीके बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिंडार, खजूर, सूरण, कंदक, कटहल, लकुच, खेंकसा,

इमली, चित्रावल्ली, कूटशाल्मलिका, महुआ, कारबेल्ल, बल्ली तथा गुदपटोलक—ये सोलह फल तीव्रके बनवाये। इन फलोंका ब्रतपर्यन्त भक्षण न करे अर्थात् इन फलोंके त्यागका ब्रतमें संकल्प करे। ब्रतकी पूर्णतापर धर्मगुरु एवं रुद्रकी प्रतिमा तथा स्वर्ण, रौप्य एवं ताप्रसे बनाये गये इन फलोंको बेदज, शान्त, सपलीक ब्राह्मणको भगवान्की प्रसन्नताके लिये प्रार्थनापूर्वक दान कर दे। सभी उपकरणोंसहित उत्तम शव्या, भूषण, दक्षिणा भी ब्राह्मणको देकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। यदि सभी फलोंको न त्याग सके तो एक ही फलका त्याग करे और सुवर्ण आदिका बनवाकर इसी विधानसे ब्राह्मणको दे। उन फलोंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्षतक इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकमें पूजित होता है। स्त्रियोंको भी यह ब्रत करना चाहिये। इस ब्रतके करनेवालोंके लिये किसी जन्ममें इष्टका वियोग नहीं होता और अन्तमें वह स्वर्गमें निवास करता है।

(अध्याय १८)

पौर्णमासी-ब्रत-विधान एवं अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! पौर्णिमा चन्द्रमाकी प्रिय तिथि है। क्योंकि इसी दिन चन्द्रमा^२ सोलह कलणओंसे परिपूर्ण होते हैं। इसीलिये यह पौर्णमासी कही जाती है। इसी तिथिको चन्द्रमा तारासे बुध नामक पुत्रको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यह पौर्णमासी तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। चन्द्रमाने स्वयं कहा है कि 'जो इस

पौर्णिमा-तिथिमें भक्तिपूर्वक विधिवत् मेरी पूजा करेगा, मैं प्रसन्न होकर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दौँगा।' ब्रतीको चाहिये कि पौर्णिमाके दिन प्रातः नदी आदिमें झान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। तटनन्तर घर आकर एक मण्डल बनाये और उसमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमाको अंकित कर शेत गच्छ, अक्षत, शेत पुष्प, धूप, दीप, धूतपक नैवेद्य और शेत वस्त्र

१—ये अठारह धान्य—याप्तवल्क्य-सू. १। २०८ की अपेक्षा व्यास्ता, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने संहिता १८। १२, दानमयूल तथा विधानपरिज्ञात आदिके अनुसार इस प्रकार है—सार्वा, धान, जौ, भूंग, तिरु, अनु, (कैंगनी), उड़ड, गेहूँ, कोटो, कुलथी, सतीन (छांटी मटर), सेम, आङ्गनी (अरहर) या मधुह (उजली मटर), चमा, कलाय, मटर, बिम्बु (सरसों, गर्ज या टांगन) और मसूर। अन्य महासे मधुर्मूदिको जगह अतसी और नींवार ग्राहा है।

२—मास शब्दका अर्थ चन्द्रमा होता है, हिन्दुओंके यहाँने अमावास्याको पूर्ण होते हैं

आदि उपचारोंसे चन्द्रमाका पूजन कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे और सायंकाल इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्थ प्रदान करे—

वसन्नवान्यव विभो शीतांशो स्वस्ति नः कुरु ।

गगनार्णवमाणिक्यं चन्द्रं दाक्षायणीपते ॥

(उत्तरपर्व १९। ४४)

अनन्तर गत्रिमें मौन होकर शाक एवं तित्रीके चावलका भोजन करे। प्रत्येक मासकी पौर्णिमासीको इसी प्रकार उपवासपूर्वक चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। यदि कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें कोई श्रद्धावान् व्यक्ति चन्द्रमाकी पूजा करना चाहे तो उसके लिये भी यही विधि बतायी गयी है। इससे सभी अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। अमावास्या तिथि पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन दान एवं तर्पण आदि करनेसे पितरोंको तृप्ति प्राप्त होती है। जो अमावास्याको उपवास करता है, उसे अक्षय-वटके नीचे श्राद्ध करनेका फल प्राप्त होता है।

—८४४—

वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संवत्सरमें कौन-कौन तिथियाँ स्नान-दान आदिमें अधिक पुण्यप्रद हैं। उनका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! वैशाख, कार्तिक और माघ—इन तीन महीनोंकी पूर्णिमाएँ, स्नान-दान आदिके लिये अति श्रेष्ठ हैं। इन तिथियोंमें स्नान, दान आदि अवश्य करने चाहिये। इन तिथियोंमें तीथोंमें स्नान करे और यथाशक्ति दान दे। वैशाखीको उज्जयिनी (शिंश्रा) में, कार्तिकीको पुष्करमें और माघीको वाराणसी (गङ्गा)में स्नान करना चाहिये। इस दिन जो पितरोंका तर्पण करता है, वह अनन्त फल पाता है और पितरोंका उद्धार करता है। वैशाख-पूर्णिमाको अत्र, सुखर्ण और वसन्नसहित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको दान करनेसे ब्रती सर्वथा शोकमुक्त हो जाता है। इस ब्रतमें सुन्दर मधुर भोजनसे परिपूर्ण पात्र, गौ, भूमि, सुखर्ण तथा वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको देवता और पितरोंका तर्पण कर सुखर्णसहित तिलपात्र, कम्बल, रुईके वस्त्र, कपास, रल आदि ब्राह्मणोंको दे। कार्तिक-पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करे। भगवान् विष्णुका नीराजन करे। हाथी, घोड़े, रथ और घृत-धेनु आदि दस धेनुओंका दान

होता है। यह अक्षय-वट पितरोंके लिये उत्तम तीर्थ है। जो अमावास्याको अक्षय-वटमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धादि किया करता है, वह पुण्यात्मा अपने इकीस कुलोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पूर्णिमा-ब्रत करके नक्षत्रसहित चन्द्रमाकी सुवर्णकी प्रतिमा बना करके वस्त्राभूषण आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दान कर दे। ब्रती यदि इस ब्रतको निरत्तर न कर सके तो एक पक्षके ब्रतको ही करके उद्यापन कर ले। पार्थ ! पौर्णिमासी-ब्रत करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है और पुत्र-पौत्र, धन, आशेष्य आदि प्राप्तकर बहुत कालतक सुख भोग कर अन्त-समयमें प्रयागमें प्राण त्यागकर विष्णुलोकको जाता है। जो पुरुष पूर्णिमाको चन्द्रमाका पूजन और अमावास्याको पितृ-तर्पण, पिण्डदान आदि करते हैं, वे कभी धन-शान्त-संतान आदिसे छुट नहीं होते। (अध्याय १९)

विश्वास हो गया और उन्होंने भरतको अपने अङ्गमें ले लिया तथा अनेक प्रकारसे आश्रित किया। महाराज ! इन तीनों तिथियोंको सम्पूर्ण माहात्म्य क्रैन वर्णन कर सकता है। मैंने करते हैं। (अध्याय १००)

युगादि तिथियोंकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आप उन तिथियोंका वर्णन करें, जिनमें स्वल्प भी किया गया रहा, दान, जप आदि पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं और महान् धर्म तथा शुभ फल प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण खोले—महाराज ! मैं आपको अन्यन्त रहस्यकी बात बताता हूँ, जिसे आजतक मैंने किसीसे नहीं कहा था। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया, कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा—ये चारों युगादि तिथियाँ हैं। अर्थात्, इन तिथियोंमें क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—चारों युगोंका प्रारम्भ हुआ है। इन तिथियोंको उपवास, तप, दान, जप, होम आदि करनेसे कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख शुक्ल तृतीयाको गम्य, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषणादिसे लक्ष्मीसहित नारायणका पूजन कर सवत्सा लक्षण-धेनुका दान करना चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदी, तड़ाग आदिमें झान कर पुण्य, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उमाके साथ नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी पूजा कर तिल-धेनुका दान करना चाहिये। भाद्रपद

संक्षेपमें कहा है। इन तीनों तिथियोंको जल, अग्नि, वस्त्र, स्वर्णपात्र, छत्र आदि दान करनेवाले पुण्य इन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १००)

कृष्ण ऋषोदशीको पितृ-तर्पण कर शहद और घृतयुक्त अनेक प्रकारके पक्काओंसे ब्राह्मण-भोजन कराये तथा दूध देनेवाली सुन्दर सुपुष्ट सवत्सा प्रत्यक्ष गौ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर सुवर्ण, वस्त्र अनेक प्रकारके फलोंसहित नवमीत-धेनुका दान करना चाहिये।

राजन् ! इस प्रकार दान करनेवालोंको तीनों लोकोंमें किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। इन युगादि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय होता है। निर्धन हो तो थोड़ा-थोड़ा ही दान करें, उसका भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। वितके अनुसार शत्र्या, आसन, छतरी, जूता, वस्त्र, सुवर्ण, भोजन आदि ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इन तिथियोंमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन भी कराये। अनन्तर प्रसन्न-मनसे वन्धु-बान्धवोंके साथ मैंन हो स्वयं भी भोजन करें। युगादि तिथियोंमें दान-पूजन आदि करनेसे कार्यिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और दाता अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय १०१)

सावित्री-ब्रतकथा एवं ब्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप सावित्री-ब्रतके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण खोले—महाराज ! सावित्री नामकी एक रुजुकन्याने बनमें जिस प्रकार वह ब्रत किया था, स्त्रियोंके कल्याणार्थ मैं उस ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राचीन कालमें मद्रदेश (पंजाब)में एक बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और प्रजापालनमें तत्पर अक्षयपति नामका राजा राज्य करता था, उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने सप्तवीक ब्रतद्वया सावित्रीकी आराधना की। कुछ कालके अनन्तर ब्रतके प्रभावसे ब्रह्माजीकी पत्नी सावित्रीने प्रसन्न हो गजाको बर दिया कि 'राजन् ! तुम्हें (मेरे

ही अंशसे) एक कन्या उत्पन्न होगी।' इतना कहकर सावित्री देवी अनन्तर्धान हो गयीं और कुछ दिन बाद गजाको एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। वह सावित्रीदेवीके बरसे प्राप्त हुई थी, इसलिये राजाने उसका नाम सावित्री ही रखा। धीर-धीर वह विवाहके योग्य हो गयी। सावित्रीने भी भृगुके उपदेशसे सावित्री-ब्रत किया।

एक दिन वह ब्रतके अनन्तर अपने पिताके पास गयीं और प्रणाम कर वहाँ बैठ गयीं। पिताने सावित्रीको विवाहयोग्य जानकर अमात्योंसे उसके विवाहके विषयमें मन्त्रणा की; पर उसके योग्य किसी श्रेष्ठ वरको न देखकर पिता अक्षयपति ने सावित्रीसे कहा—'पुत्र ! तुम वृद्धजनों तथा अमात्योंके साथ

जाकर स्वयं ही अपने अनुरूप कोई वर दैदूर लो।' सावित्री भी पिताकी आज्ञा स्वीकार कर मन्त्रियोंके साथ चल पड़ी। स्वत्य कालमें ही गजर्णियोंके आश्रमों, सभी तीर्थों और तपोवनोंमें धूमती हुई तथा बृद्ध ऋषियोंका अभिनन्दन करती हुई वह मन्त्रियोंसहित पुनः अपने पिताके पास लैट आयी। सावित्रीने देखा कि राजसभामें देवर्षि नारद बैठे हुए हैं। सावित्रीने देवर्षि नारद और पिताके प्रणामकर अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया—‘महाराज ! शाल्वदेशमें शुभसेन नामके एक धर्मात्मा राजा है। उनके सत्यवान् नामक पुत्रका मैंने वरण किया है।’ सावित्रीकी बात सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे—‘राजन् ! इसने ग्राल्य-स्वभाववश उचित निर्णय नहीं लिया। वयस्पि शुभसेनका पुत्र सभी गुणोंसे सम्पन्न है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि आजके ही दिन ठीक एक वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।’ देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर राजाने सावित्रीसे किसी अन्य वरको दैदूरनेके लिये कहा।

सावित्री बोली—‘राजाओंकी आज्ञा एक ही बार होती है। पण्डितजन एक ही बार बोलते हैं और कन्या भी एक ही बार दी जाती है—ये तीनों बातें बार-बार नहीं होतीं। सत्यवान् दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, निर्णुण हो या गुणवान्, मैंने तो उसका वरण कर ही लिया; अब मैं दूसरे पतिको कभी नहीं चुनूँगी। जो कहा जाता है, उसका पहले विचारपूर्वक मनमें निश्चय कर लिया जाता है और जो वचन कह दिया जाय, वही करना चाहिये। इसलिये मैंने जो मनमें निश्चय कर कहा है, मैं वही करूँगी।’ सावित्रीका ऐसा निश्चययुक्त वचन सुनकर नारदजीने कहा—‘राजन् ! आपकी कन्याको यही अभीष्ट है तो इस कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये। आपका यह दान-कर्म निर्विद्व सम्पन्न हो।’ इस तरह कहकर नारदमुनि स्वर्ग चले गये और राजाने भी शुभ मुहूर्तमें सावित्रीका सत्यवान्से विवाह कर दिया। सावित्री भी मनोवाञ्छित पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। दोनों अपने आश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे। परंतु नारदमुनिकी वाणी सावित्रीके हृदयमें स्फटकती रहती थी। जब वर्ष पूर्ण होनेको आया, तब सावित्रीने विचार

किया कि अब मेरे पतिकी मृत्युका समय समीप आ गया है। यह सोचकर सावित्रीने भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी द्वादशीसे तीन रात्रिका ब्रते ग्रहण कर लिया और वह भगवती सावित्रीका जप, ध्यान, पूजन करती रही। उसे यह निश्चय था कि आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी। सावित्रीने तीन दिन-रात नियमसे व्यतीत किये। चौथे दिन देवता-पितरोंको संतुष्ट कर उसने अपने ससुर और सासके चरणोंमें प्रणाम किया।

सत्यवान् बनसे काष्ठ लाया करता था। उस दिन भी वह काष्ठ लेनेके लिये जाने लगा। सावित्री भी उसके साथ जानेको उद्यत हो गयी। इसपर सत्यवानने सावित्रीसे कहा—‘बनमें जानेके लिये अपने सास-ससुरसे पूछ ले।’ वह पूछने गयी। पहले तो सास-ससुरने मना किया, किंतु सावित्रीके बार-बार आग्रह करनेपर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी। दोनों साथ-साथ बनमें गये। सत्यवानने वहाँ काष्ठ कटकर बोझ बौधा, परंतु उसी समय उसके मस्तकमें महान् वेदना उत्पन्न हुई। उसने सावित्रीसे कहा—‘प्रिये ! मेरे सिरमें बहुत व्यथा है, इसलिये थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।’ सावित्री अपने पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर बैठ गयी। इतनेमें ही यमराज वहाँ आ गये। सावित्रीने उहें देखकर प्रणाम किया और कहा—‘प्रभो ! आप देवता, दैत्य, गन्धर्व आदिमेंसे कौन है ? मेरे पास कहो आये हैं ?’

यमराजने कहा—सावित्री ! मैं सम्पूर्ण लोकोंका नियमन करनेवाला हूँ। मेरा नाम यम है। तुम्हारे पतिकी आयु समाप्त हो गयी है, परंतु तुम पतिव्रता हो, इसलिये मेरे दूत इसको न ले जा सके। अतः मैं स्वयं ही वहाँ आया हूँ। इतना कहकर यमराजने सत्यवान्के शरीरसे अकृत्यमात्रके पुरुषको खींच लिया और उसे लेकर अपने लोकको चल पड़े। सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। बहुत दूर जाकर यमराजने सावित्रीसे कहा—‘पतिव्रते ! अब तुम लैट जाओ। इस मार्गमें इतनी दूर कोई नहीं आ सकता।’

सावित्रीने कहा—महाराज ! पतिके साथ आते हुए मुझे न तो गलानि हो रही है और न कुछ श्रम ही हो रहा है।

१-सकृत्यत्यन्त राजान् सकृत्यत्यन्ति पवित्रः। सकृत् प्रदीयते कन्या श्रीप्येतानि सकृत्यत्यन्तः॥ (उत्तरपर्व १०२। २९)

२-यह ब्रत अन्य वर्षोंके अनुसार ज्योष्ट कृष्ण तथा द्युष्म द्वादशीसे पूर्णिमातक करनेकी परम्परा भी लोकमें प्रसिद्ध है।

मैं सुखपूर्वक चली आ रही हूँ। जिस प्रकार सज्जनोंकी गति संत हैं, वर्णाश्रमोंका आधार वेद है, शिष्योंका आधार गुरु और सभी प्राणियोंका आश्रय-स्थान पृथ्वी है, उसी प्रकार खियोंका एकमात्र आश्रय-स्थान उसका पति ही है अन्य कोई नहीं।

इस प्रकार सावित्रीके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंको सुनकर यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे—'भाभिनि ! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह माँग लो।' तब सावित्रीने विनयपूर्वक पाँच वर माँगी—(१) मेरे सासुरके नेत्र अच्छे हो जायें और उन्हें गम्य मिल जाय। (२) मेरे पिताके सौ पुत्र हो जायें। (३) मेरे भी सौ पुत्र हों। (४) मेरा पति दीर्घायु प्राप्त करे तथा (५) हमारी सदा धर्ममें दृढ़ श्रद्धा बनी रहे। धर्मराजने सावित्रीको ये सारे वर दे दिये और सत्यवान्को भी दे दिया। सावित्री प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिको साथ लेकर आश्रममें आ गयी। भाद्रपदकी पूर्णिमाको जो उसने सावित्री-ब्रत किया था, वह सब उसीका फल है।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-ब्रतकी विधि विस्तारपूर्वक बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! सौभाग्यकी इच्छावाली खोको भाद्रपद मासके शुक्र पक्षकी ऋयोदशीको पवित्र होकर तीन दिनके लिये सावित्री-ब्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये। यदि तीन दिन उपवास रहनेकी शक्ति न हो तो ऋयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अयाचित-ब्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। सौभाग्यकी क्रमनावाली नारी नदी, तड़ाग आदिमें नित्य-स्नान करे और पूर्णिमाको सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे।

यथाशक्ति मिट्टी, सोने या चौंडीकी ब्रह्मासहित सावित्रीकी (अध्याय १०२)

—८०३—

महाकार्तिकी-ब्रतके प्रसंगमे रानी कलिंगभद्राका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! पूर्वकालमें मध्य देशके वृष्टस्थल नामक स्थानमें महाराज दिलीपकी कलिंगभद्रा नामकी एक सर्वगुणसम्पन्ना महारानी थी। वह सदा ब्रह्मणोंको दान देती तथा देवार्चन करती रहती। एक समय उसने कार्तिक भासमें छः महीनेका कलिंग-ब्रतका

संकल्प लिया। वह प्रत्येक पारणमें नित्य पूजन, दान, ब्रह्मण-भोजन, हवन आदिमें तत्पर रहती। एक बार ब्रतमें जब किंचित् कालावशेष था, तब वह रात्रिमें अपने पतिके साथ विश्राम कर रही थी। उसी समय अचानक एक भयंकर सर्पने उसे डैंस लिया। फलस्वरूप उसके प्राण निकल गये और वह

१-सती सन्तो गतिनीया खोणा भर्ती सदा गति:। वेदो वर्णाश्रमणां च शिष्याणां च गतिरुः॥

मर्देश्वर जन्मना स्थानमस्ति महीतलम्। भर्तार पृथ मनुजस्तोणां नामः समाश्रयः॥ (उत्तरपर्व ३०२। १००-१०६)

जन्मान्तरमें बकरी बनी, परंतु ब्रतके प्रभावसे उसे अपने पूर्वजन्मकी सृति बनी हुई थी। उसने अपना कृतिका-ब्रत फिर ग्रहण किया। वह अपने यूथसे अलग होकर उपवास करने लगी।

एक बार कार्तिक मासमें विश्वी दूसरेके खेतमें जब वह चर रही थी, तब उस खेतका स्वामी उसे पकड़कर अपने घर ले आया। जातिस्मर अत्रिप्रियने उस बकरीको देखा और यह जान लिया कि यह गानी कलिंगभट्टा है। दयाकर उन्होंने उसे बन्धनसे मुक्त करा दिया। वहाँसे छूटकर उसने बेरके पते खाकर शीतल जल पिया और कृतिका-ब्रतका पारण किया। ऋषि अत्रि उसे योगज्ञानका उपदेश देकर अपने आश्रमके चले गये और वह योगेश्वरी अपने ब्रतमें पुनः तत्पर हो गयी तथा कुछ कालके अनन्तर उसने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। तदनन्तर वह गौतम ऋषिकी पली अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। उस समय उसका नाम योगलक्ष्मी हुआ। गौतममुनिने महर्षि शाष्ठिलक्ष्मीनिसे योगलक्ष्मीका विवाह कर दिया। वह भी शाष्ठिलके घरमें सरस्वती, स्वाहा, शची, अहम्यती, गौरी, रघी, गायत्री, महालक्ष्मी तथा महासतीकी भाँति सुशोभित हुई। वह देवता, पितर और अतिथियोंके सत्कारमें नित्य लगी रहती। ब्राह्मणोंके भोजन करती।

एक दिन महर्षि वहाँ आये और उन्होंने योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया और पूछा—‘महाभागे योगलक्ष्मि ! कृतिकाएँ कितनी हैं ?’ यह सुनकर महासती योगलक्ष्मीको भी पूर्ववृत्त स्मरण हो आया और उसने कहा—‘महायोगिन् ! कृतिकाएँ छः हैं !’ यह सुनकर दयालु अत्रिमुनिने पुनः उसे मन्त्र और कृतिका-ब्रतका उपदेश दिया, जिसके करनेसे उसने चिरकालतक संसारका सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! कृतिका-ब्रतकी क्या विधि है ? इसे आप बतायें।

भगवान् कहने लगे—महाराज ! कार्तिकी पूर्णिमाको कृतिका नक्षत्रमें बृहस्पति या सोमवार होनेपर

महाकार्तिकीका योग होता है। महाकार्तिकी तो बहुत वर्णोंमें और बड़े पृथ्वीसे प्राप्त होती है। इसलिये साधारण कार्तिकी पूर्णिमाको भी उपवास करे। कार्तिकी पूर्णिमाको प्रातः ही दन्तधावन आदि कर नक्षत्रतक अथवा उपवासका नियम ग्रहण करे। पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमित्य, शालग्राम, कुशार्वा, मूलस्थान, शकन्तुल, गोकर्ण, अर्बुद, अमरकाण्डक आदि किसी पवित्र तीर्थमें अथवा अपने घरमें ही ज्ञान करे। फिर देवता, ऋषि, पितर और अतिथिका पूजन कर हवन करे। सायंकालके समय धृत और दुष्टसे पूर्ण छः पात्रोंमें सुवर्ण, चाँदी, रत्न, नवनीत, अत्रकण तथा पिष्टसे छः कृतिकाओंकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन्हें रक्तसूक्ष्मे आवेषित कर सिंदूर, कुकुम, चन्दन, चमेलीके पूज्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन कर कृतिकाओंकी मूर्तियोंको ब्राह्मणको दान कर दे। दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सप्तर्षिदारा हृनलस्य बल्लभा

या ब्रह्मणा रक्षितयेति युत्ता :।

तुष्टा : कुमारस्य यथार्थमातरो

मवापि सुप्रीततरा भवन्तु ॥

(उत्तरपर्व १०३ । ३७)

ब्राह्मण भी मूर्ति ग्रहण करते समय इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करे—

शर्मदा : कामदा : सन्तु इमा नक्षत्रमातरः ।

कृतिका दुर्गासंसारात् तारयन्त्वावयोः कुलम् ॥

(उत्तरपर्व १०३ । ३९)

तदनन्तर ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर जाय और छः कदमतक यजमान उसके पीछे चले। इस प्रकार जो पुरुष कृतिका-ब्रत करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें बैठकर नक्षत्रलोकमें जाता है। जो रुदी इस ब्रतको करती है, वह भी अपने पतिसहित नक्षत्रलोकमें जाकर बहुत कालतक दिव्य भोगोंका उपभोग करती है।

(अध्याय १०३)

मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाब्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—एजन् ! फलगुनकी पूर्णिमासे संवत्सरपर्वत किया जानेवाला एक ब्रत है, जो

मनोरथपूर्णिमाके नामसे विद्यात है। इस ब्रतके करनेसे ब्रतीके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। ब्रतीको चाहिये कि वह

फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको रूान आदि कर लक्ष्मीसहित भगवान् जनार्दनका पूजन करे और चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जनार्दनका स्मरण करता रहे और पाखण्ड, पतित, नास्तिक, चाण्डाल आदिसे सम्बाधण न करे, जितेन्द्रिय रहे। ग्रन्थिके समय चन्द्रमामें नाशयण और लक्ष्मीकी भावगा कर अर्थ्य प्रदान करे। बादमें तैल एवं लवणहित भोजन करे। इसी प्रकार चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ—इन तीन महीनोंमें भी पूजन एवं अर्थ्य प्रदान कर ब्रती प्रथम पारणा करे। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन चार महीनोंकी पूर्णिमाको श्रीसहित भगवान् श्रीधरका पूजन कर चन्द्रमाको अर्थ्य प्रदान करे और पूर्ववत् दूसरी पारणा करे। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें भूतिसहित भगवान् के शक्ति पूजन कर चन्द्रमाको अर्थ्य प्रदान करे और तीसरी पारणा सम्पन्न करे। प्रत्येक पारणाके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। प्रथम पारणाके चार महीनोंमें पञ्चांश्य, दूसरी पारणाके चार महीनोंमें कुशोदक और तीसरी पारणामें सूर्यीकरणोंसे तस जलका प्राशन करे। ग्रन्थिके समय गीत-वाद्याद्वारा भगवान्का कीर्तन करे। प्रतिमास जलकृष्ण, जूता, छतरी, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और दक्षिणा ब्राह्मणको दान करे। देवताओंके स्वामी भगवान्की मार्गशीर्ष आदि वारह महीनोंमें क्रमशः केशव, नारायण, माथव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर तथा हरीकेश, राम, पद्मनाभ और दामोदर—इन नामोंका कीर्तन करनेवाला व्यक्ति दुर्गतिसे उद्धार पा जाता है। यदि प्रतिमास दान देनेमें समर्थ न हो तो व्यक्ति अन्तमें यथाशक्ति सुवर्णका चन्द्रविष्व बनाकर फल, वस्त्र आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस प्रकार ब्रत करनेवाले पुरुषको अनेक जन्मपर्यन्त इष्टका विद्योग नहीं होता। उसके सभी

मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह पुरुष नाशयणका स्मरण करता हुआ दिव्यलोक प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं अशोकपूर्णिमा-ब्रतका वर्णन करता हूँ। इस ब्रतको करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। फाल्गुनकी पूर्णिमाको अझोंमें मृतिका लगाकर नदी आदिमें रूान करे। मृतिकाकी एक बेटी बनाकर उसपर भगवान् भूधर और अशोका नामसे धरणीदेवीका पुण्य, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। पूजनके अनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—‘धरणीदेवि ! आप सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करनेवाली हैं। आपको जिस प्रकार भगवान् जनार्दनने रसातलसे लाकर प्रतिष्ठित करके शोकरहित किया है, उसी प्रकार आप मुझे भी सभी शोकोंसे मुक्त कर दें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। इस प्रकार प्रार्थना कर ग्रन्थिमें चन्द्रमाको अर्थ्य प्रदान करे। उस दिन उपवास रहे अथवा ग्रन्थिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। फाल्गुन आदि चार-चार मासमें एक-एक पारणा करे और प्रत्येक पारणाके अन्तमें विशेष पूजा और जागरण करे। प्रथम पारणामें धरणी, द्वितीयमें मेदिनी और तृतीयमें वसुन्धरा नामसे पूजन करे। व्यक्ति अन्तमें सवत्सा गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मणोंको दान करे। यह ब्रत पातालमें स्थित धरणीदेवीने किया था, तब भगवान्ने बाराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि ‘धरणी-देवि ! तुम्हारे इस ब्रतसे मैं परम संतुष्ट हूँ, जो कोई भी पुरुष-स्त्री भक्तिसे इस ब्रतको करते हुए मेरा पूजन करेंगे और यथाविधि पारणा करेंगे, वे जन्म-जन्ममें सब प्रकारके हृदयोंसे मुक्त हो जायेंगे और तुम्हारे समान ही कल्याणके भाजन हो जायेंगे।’ (अध्याय १०४-१०५)

—१८८३३०—

अनन्तब्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भाविका वृत्तान्त

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! भक्तिपूर्वक नाशयणकी आश्रमना ब्रतनेसे सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं, किंतु रुदी-पुरुषोंके लिये संतानहीन होनेसे अधिक कोई दुःख और शोक नहीं है, परंतु कुप्रता तो और भी महान् दुःखका कारण है। योग्य संतान सब सुखोंका हेतु है। जगत्में वे धन्य हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न, आरोग्य, बलवान्, धर्मज,

शास्त्रवेता, दीन-अनाथोंके आश्रय, भाग्यवान्, हृदयको आनन्द देनेवाले और दीर्घायु पुत्र प्राप्त करते हैं। प्रभो ! मैं ऐसा ब्रत सुनना चाहता हूँ कि जिसके करनेसे ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। हैह्यवंशमें माहिमती

(महेश्वर) नगरीमें कृतवीर्य नामका एक महान् राजा हुआ। उसकी एक हजार गणियोंमें प्रधान तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न शीलधना नामकी एक रानी थी। उसने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीसे पूजा। मैत्रेयीने उसको श्रेष्ठ अनन्तव्रतका उपदेश दिया और कहा—‘शीलधने! रुची या पुरुष जो कोई भी भगवान् जनार्दनकी आराधना करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। मार्गशीर्ष मासमें जिस दिन मृगशिरा नक्षत्र हो उस दिन खान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे अनन्त भगवान्के वाम चरणका पूजन करे और प्रार्थना कर एकाग्रचित हो बारबार प्रणाम कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। गत्रिके समय तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। इसी विधिसे पौय मासमें पुष्प नक्षत्रमें भगवान्के बायें कटिप्रदेशका पूजन करे। माघ मासमें मध्य नक्षत्रमें भगवान्की बार्यी भुजाका पूजन करे। फाल्गुनमें फाल्गुनी नक्षत्रमें बायें स्कन्धका पूजन करे। इन चार महीनोंमें गोमूत्रका प्राशन करे और सुवर्णसहित तिल ब्राह्मणको दान दे।

चैत्रमें चित्रा नक्षत्रमें भगवान्के दाहिने कन्धेका पूजन करे, वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें दाहिनी भुजाका पूजन करे, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें दाहिने कटिप्रदेशका पूजन करे। इसी प्रकार आषाढ़ मासमें आषाढ़ा नक्षत्रमें दाहिने पैरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें पञ्चगव्यका प्राशन करे। ब्राह्मणको सुवर्ण-दान दे और गत्रिको भोजन करे।

श्रावण मासमें श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुके दोनों चरणोंका पूजन करे। भाद्रपद मासमें उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें गुह्या-स्थानका पूजन करे। आश्विनमें अश्विनी नक्षत्रमें हृदयका पूजन करे और कार्तिक मासमें कृतिका नक्षत्रमें अनन्त-भगवान्के सिरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें घृतका प्राशन करे और घृत ही ब्राह्मणको दान दे।

मार्गशीर्ष आदि प्रथम चार मासोंमें घृतसे, द्वितीय चैत्र आदि चार मासोंमें शालिदधान्यसे और दूसीय श्रावण आदि चार मासोंमें अनन्तभगवान्की प्रीतिके लिये दुधसे हवन करे। हविष्याका भोजन करना सभी मासोंमें प्रशस्त माना गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें तीन पारणा कर वर्षके अनन्तमें सुवर्णकी अनन्तभगवान्की मूर्ति और चाँदीके हल-मूसल बनाये। बादमें मूर्तिको ताप्रणीठपर स्थापित कर दोनों ओर

हल, मूसल रखकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। नक्षत्र, देवता, मास, संवत्सर और नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमाका भी विधिपूर्वक पूजन करे। अनन्तर पुण्यवेत्ता, धर्मज्ञ, शान्तप्रिय ब्राह्मणका वस्त्र-आभूषण आदिसे पूजन कर यह सब सामग्री उसे अर्पण कर दे और ‘अनन्तः प्रीयताम्’ यह वाक्य कहे। पीछे अन्य ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदि देवकर संतुष्ट करे। इस विधिसे जो इस अनन्त-व्रतको सम्पन्न करता है, वह सभी अधीष्ठ फलोंको प्राप्त करता है। शीलधने! यदि तुम उत्तम पुत्रकी इच्छा रखती हो तो विधिपूर्वक श्रद्धासे इस अनन्तव्रतको करो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! इस प्रकार मैत्रेयीसे उपदेश प्राप्त कर शीलधना भक्तिपूर्वक व्रत करने लगी। व्रतके प्रभावसे भगवान् अनन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने उसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। पुत्रके जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। आनन्ददायक वायु प्रवहित होने लगी। देवगण दुन्दुभि जाने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी, सारे जगत् में मङ्गल होने लगा। गन्धर्व गाने लगे और अपराह्णे नृत्य करने लगी। सभी लोगोंका मन धर्ममें आसक्त हो गया। गजा कृतवीर्यनि अपने पुत्रका नाम अर्जुन रखा। कृतवीर्यका पुत्र होनेसे वही अर्जुन कर्तवीर्य कहलाया। कर्तवीर्यार्जुनने कठिन तप किया और विष्णुभगवान्के अवतार श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना की। भगवान् दत्तात्रेयने यह बर दिया कि ‘अर्जुन ! तुम कर्तवर्ती सप्ताद् होओगे। जो व्यक्ति साध्यकाल और प्रातः ‘नमोऽस्तु कार्तवीर्याय’ यह वाक्य उचारण करेगा, उसे प्रस्तुत्यभर तिल-दानका पुण्य प्राप्त होगा और जो तुम्हारा स्मरण करेगे, उन पुरुषोंका द्रव्य कभी नष्ट नहीं होगा।’ भगवान्से वर प्राप्त कर गजा कर्तवीर्य धर्मपूर्वक सप्तद्वीपा वसुमतीका पालन करने लगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ सम्पन्न किये और शक्तुओंपर विजय प्राप्त की। इस तरह गनी शीलधनाने अनन्तव्रतके प्रभावसे अति उत्तम पुत्र प्राप्त किया, पिताके पुजननित कोई भी दुःख नहीं हुआ। जो पुरुष अथवा रुची इस कार्तवीर्यके जन्मको श्रवण करते हैं, वे सात जन्मपर्यन्त संतानका दुःख प्राप्त नहीं करते। जो इस अनन्त-व्रतको भक्तिसे करता है, वह उत्तम संतान और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है।

मास-नक्षत्र-ब्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा

राजा युधिष्ठिरने कहा—प्रभो ! ऐश्वर्य आदिके प्राप्त न होनेसे इतना कष्ट नहीं होता, जितना प्राप्त होकर नष्ट हो जानेसे होता है। इसलिये आप ऐसा कोई ब्रत बतायें, जिसके करनेसे ऐश्वर्य-धृष्णु और इष्ट-वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुए सुखका फिर नाश हो जाता है। इसके लिये श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे बारह मासोंके बारह नक्षत्रोंमें भगवान् अच्युतकी विविध उपचारोंसे पूजा करें। इस नक्षत्र-ब्रतको प्रथम कार्तिक मासकी कृतिकामें करना चाहिये। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मासके मृगशिरा नक्षत्रमें, पौष मासके पुण्य नक्षत्रमें तथा माघ मासके मध्य नक्षत्रमें करना चाहिये। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें खिचड़ीका भोग लगाये और यही ब्राह्मणको भोजन भी कराये। फाल्गुन आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें संयाव (गोदिष्य) कर नैवेद्य लगाये और आषाढ़ आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें पायसका नैवेद्य लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन करे और भक्तिसे नारायणका अर्चन कर इस प्रकार प्रार्थना करे— नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं सम्पूर्णं पुण्यम् । ऐश्वर्यवित्तादि तथाऽक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥ यथाच्युतस्त्वं परतः परस्पात् स ब्रह्माभूतः परतः परात्मा । तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हरस्व पापं च तथाप्रमेय ॥

अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीषितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुत्वं पुरुषोत्तम ॥

(उत्तरपर्व १०७ । १२—१४)

‘अच्युत ! आपको बार-बार नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश हो जाय, पुण्यकी वृद्धि हो, मेरे ऐश्वर्य, वित आदि अक्षय हो तथा मेरी संतति कभी नष्ट न हो। जिस प्रकारसे आप परसे परे ब्रह्माभूत और उससे भी परे अच्युत परमात्मा हैं, उसी प्रकार आप मुझे अच्युत कर दें। अप्रमेय ! आप मेरे पापोंको नष्ट कर दें। पुरुषोत्तम ! अच्युत, अनन्त, गोविन्द अमेयात्मन् ! मेरी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों।’

अनन्तर गत्रिके समय भगवान्का प्रसाद मण्ण करे। वर्ष पूरा होनेपर जब भगवान् अच्युत जग जायें, तब धृतपूर्ण

ताम्रपात्र और दक्षिण ब्राह्मणको देकर ‘अच्युतः प्रीयताम्’ यह वाक्य कहे। इस प्रकार सात वर्षतक नक्षत्रब्रत करके सुवर्णकी अच्युतकी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे, और उसके सामने भगवान्की परम भक्त और पतित्रता साम्भरायणी ब्राह्मणीकी चाँदीकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन दोनोंकी गच्छ-पुण्यादि उपचारोंसे पूजाकर क्षमा-प्रार्थना करे और सब सामग्री ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधिसे जो श्रद्धापूर्वक ब्रत करता है और भगवान् अच्युतका पूजन करता है, उसके धन, संतति, ऐश्वर्य आदिका कभी क्षय नहीं होता। उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा अक्षय होनेके लिये इस मास-नक्षत्र-ब्रतका पालन करे।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने साम्भरायणीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करनेको कहा है, ये साम्भरायणी देवी कौन है ? आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! ऐसा सुना जाता है कि स्वर्णमें साम्भरायणी नामकी एक तपोधना कठिन ब्रातोंका आचरण करनेवाली प्रस्त्रात सिद्धा नारी थी, जो देवताओंकी भी शंकाओंका समाधान कर देती थी। एक समय देवराज इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे पूछो—‘भगवन् ! हमारे पहले जितने इन्द्र हो गये हैं, उनका क्या आचरण और चरित्र था, आप कृपाकर इसका वर्णन कीजिये ?’

देवगुरु बृहस्पति बोले—‘देवेन्द्र ! सब इन्द्रोंका वृत्तान्त तो मुझे नहीं मालूम, केवल अपने समयमें हुए इन्द्रोंके विषयमें मुझे जानकारी है।’ इन्द्रने कहा—‘गुरु ! आपके बिना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें ?’ बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे—‘पुरन्दर ! इस विषयको तपस्विनी धर्मज्ञा साम्भरायणी देवीसे ही पूछो।’ यह सुनकर बृहस्पतिको साथ लेकर देवराज इन्द्र साम्भरायणीके पास गये। साम्भरायणीने बड़े सत्कारसे उनको बैठाया और अर्वादिसे पूजन कर विनयपूर्वक आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर बृहस्पतिजी बोले—‘साम्भरायणि ! देवराज इन्द्रको प्राचीन वृत्तान्त सुननेका बड़ा कौतूहल है। यदि आप विगत इन्द्रोंका चरित्र जानती हों तो उसे बतायें।’

साम्प्रदायणी बोली—“देवगुरु ! जितने इन्ह हो चुके हैं, सबका वृत्तान्त मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने बहुत-से मनुओं, देवसूचियों और साम्प्रदायिकोंके देखा है। मनुपत्रोंको भी जानती हूँ और सब मन्वन्तरोंका चरित्र मुझे ज्ञात है। जो आप पूछें, वही मैं बताऊँगी। साम्प्रदायणीका यह वचन सुनकर देवराज इन्ह और देवगुरु बृहस्पति ने स्वायम्भूत, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाशुष आदि मनुओं, मन्वन्तरों और व्यतीत इन्द्रोंका वृत्तान्त उससे पूछा। साम्प्रदायणीने सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका यथावत् वर्णन किया। राजन् ! उसने एक अत्यन्त आकृत्यकी बात यह बतलायी कि पूर्वकालमें शंकुकर्ण नामक एक बड़ा प्रतापी दैत्य हुआ। वह लोकपालोंको जीतकर स्वर्गमें इन्द्रको जीतने आया और निर्भय हो इन्द्रके भवनमें प्रविष्ट हो गया। शंकुकर्णको देखकर इन्द्र भयभीत होकर हिंप गये और वह इन्द्रके आसनपर बैठ गया। उसी समय देवताओंके साथ विष्णु भी वहाँ आये। भगवान्‌को देखकर शंकुकर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने बड़े झेहसे भगवान्‌की आलिङ्गन किया। भगवान् उसकी नियतको समझ रहे थे, अतः उन्होंने भी उसका आलिङ्गन कर ऐसा निष्ठीडन किया कि उसके सब अस्थिपंजर चूर-चूर हो गये और वह घोर शब्द करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया। दैत्यको मग जानकर इन्द्र भी उपस्थित

हो गये और विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे।

साम्प्रदायणीने पूजनः कहा—देवराज ! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था।

इन्हने साम्प्रदायणीसे पूछा—देवि ! इतने प्राचीन वृत्तान्तको आप कैसे जानती हैं ?

साम्प्रदायणीने कहा—देवेन्द्र ! स्वर्गका कोई ऐसा वृत्तान्त नहीं है, जो मैं न जानती होऊँ।

इन्हने पूछा—धर्मजे ! आपने ऐसा कौन-सा सलकर्म किया है, जिसके प्रभावसे आपको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ ?

साम्प्रदायणी बोली—मैंने प्रतिमास मास-नक्षत्रोंमें सात वर्षपर्यन्त भगवान् अच्युतका विधिवत् पूजन और उपवास किया है। यह सब उसी पृथ्य-कर्मका फल है। जो पूर्ण अक्षय स्वर्गवास, इन्द्रपद, ऐश्वर्य, संतति आदिकी इच्छा करे, उसे अवश्य ही भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ भगवान् विष्णुकी आराधनासे प्राप्त होते हैं। इतना सुनकर देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र साम्प्रदायणीपर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भक्तिपूर्वक उसके द्वारा बताये गये मास-नक्षत्र-ब्रतका पालन करने लगे।

(अध्याय १०७)

वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-ब्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—यदुसत्तम ! पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम रूप किस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है ? आप सर्वाङ्गसुन्दर श्रेष्ठ रूपवत्री प्राप्तिका उत्तम बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! यही बात अरुन्धतीने वसिष्ठजीसे पूछी थी और महर्षि वसिष्ठने उनसे कहा था—‘प्रिये ! विष्णु भगवान्‌की बिना आराधना और पूजन किये उत्तम रूप प्राप्त नहीं हो सकता। जो पूर्ण अर्थवा रुपी उत्तम रूप, ऐश्वर्य और संतानकी अभिलाषा करे, उसे नक्षत्रपुरुषरूप भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।’ इसपर अरुन्धतीने नक्षत्रपुरुषब्रतका विधान पूछा। वसिष्ठजीने कहा—‘प्रिये ! वैत्र माससे लेकर भगवान्‌के पाद आदि अङ्गोंका उपवासपूर्वक पूजन करे। स्त्रानादिसे पवित्र होकर नक्षत्रपुरुषरूपी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनके पादसे

सिस्तकके अङ्गोंका इस विधिसे पूजन करे। मूल नक्षत्रमें दोनों पैर, रोहिणी नक्षत्रमें दोनों जंघा, अश्विनीमें दोनों घुटनों, आषाढ़में दोनों उरुओं, दोनों फलत्युनीमें गुहास्थान, कृतिकमें कटिप्रदेश, दोनों भाद्रपदाओंमें पार्श्वभाग और टखना, रेखतीमें दोनों कुक्षि, अनुराधामें वक्षःस्थल, धनिष्ठामें पीठ, विशालामें दोनों भुजाएँ, हस्तमें दोनों हाथ, पुनर्वसुमें अंगुली, आश्लेषामें नख, ज्येष्ठामें प्रीता, श्रवणमें कर्ण, पुष्यमें मुख, स्वासीमें दाँत, शतभिष्मामें मुल, मध्यमें नासिका, मृगशिष्मामें नेत्र, चित्रामें ललाट, भरणीमें सिर और आद्रीमें केशोंका पूजन करे। उपवासके दिन तैलाभ्यङ्ग न करे। नक्षत्रके देवताओं और नक्षत्रराज चन्द्रमाका भी प्रति नक्षत्रमें पूजन करे और विष्णु आह्वानको भोजन कराये। यदि ब्रतमें अशौच आदि हो जाय तो दूसरे नक्षत्रमें उपवास कर पूजन करे। इस प्रकार माघ

मासमें ब्रत पूर्ण हो जानेपर उद्घापन करे। अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका नक्षत्रपुरुष बनाकर उसे अलंकृत करे, एक उत्तम शश्यापर प्रतिमा स्थापित करे और ब्राह्मण-दम्पतिको शश्यापर बैठाकर वस्त्राभूषण आदिसे उनका पूजन कर सप्तधान्य, सवत्सा गौ, छतरी, जूता, घृतपात्र और दक्षिणासहित वह नक्षत्रपुरुषकी प्रतिमा उन्हें दान कर दे। श्रद्धापूर्वक इस ब्रतके करनेसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप, मनकी प्रसन्नता, आरोग्य, उत्तम संतान, मधुर वाणी और जन्म-जन्मान्तरतक अखण्ड ऐक्षर्य प्राप्त होता है और सभी पाप निवृत हो जाते हैं। इतनी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘महाराज ! इस प्रकार नक्षत्रपुरुष-ब्रतका विधान वसिंहजीने अरुचतीको बतलाया। वही मैंने आपको सुनाया। जो इस विधिसे नक्षत्ररूप भगवान्का पूजन करते हैं, वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं।’

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन् ! शिवभक्तोंके कल्याणके लिये आप शैवनक्षत्रपुरुष-ब्रतका विधान बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! शैवनक्षत्र-पुरुष-ब्रतके दिन भगवान् शंकरके अङ्गोंका पूजन और उपवास अथवा नक्षत्र करना चाहिये। फलनुग्रह मासके शुक्ल पक्षमें जब हस्त नक्षत्र हो, उस दिनसे शैवनक्षत्रपुरुष-ब्रतका नियम प्रहण करना चाहिये और यत्में भगवान् शिवका पूजन करना

भगवत्की प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-ब्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! यदि मनुष्य नक्षत्रपुरुष-ब्रतको प्रहण कर उसे न कर सके तो किस कर्मके द्वारा वह चीर्ण (कृत) माना जाता है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। आपके आग्रहसे मैं इसे बतला रहा हूँ। अनेक प्रकारके उपद्रव, मद, मोह या असावधानी आदिसे यदि ब्रत-भग्न हो जाये तो उनकी पूर्णताके लिये यह ब्रत करना चाहिये। इस ब्रतके करनेसे खण्डित-ब्रत पूर्ण फल देनेवाले हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। जिस देवी-देवताका ब्रत भग्न हो जाय, उसकी सुवर्ण अथवा चाँदीकी प्रतिमा बनाकर उस ब्रतके दिन ब्राह्मणको बुलाकर प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्फान कराये, बादमें जलपूर्ण कलशके ऊपर प्रतिमाको प्रतिष्ठितकर गम्भ, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य

चाहिये। हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें भगवान् शंकरके सत्ताईस नामोंसे उनके चरणसे लेकर सिरतककी क्रमशः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। यात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। प्रतिनक्षत्रमें सेरभर शालि-चावल और घृतपात्र ब्राह्मणको प्रदान करे। दो नक्षत्र एक दिन हो जायें तो दो अङ्गोंका दो नामोंसे एक ही दिन पूजन करे। इस प्रकार ब्रतकर पाण्यमें ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम शश्यापर स्थापित करे। बादमें सभी उपचारोंसे पूजनकर कपिला गौ, बर्णन, छत्र, चामर, दर्पण, जूता, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन आदिसहित वह प्रतिमा ब्राह्मणके निवेदित कर दे। बादमें प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे और शश्या, गौ आदि सब सामग्री ब्राह्मणके घर पहुँचा दे। महाराज ! दुश्शील, दम्भिक, कुतार्किक, निन्दक, लोभी आदिको यह ब्रत नहीं बताना चाहिये। शान्त-स्वभाव, सद्गुणी, शिवभक्त इस ब्रतके अधिकारी हैं। इस ब्रतके करनेसे महापातक भी निवृत हो जाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञा प्राप्त कर इस ब्रतको सम्पन्न करती है, उसे कभी इष्ट-वियोग नहीं होता। जो इस ब्रतके माहात्म्यको पढ़ता है अथवा श्रवण करता है उसके भी पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है।

(अध्याय १०८-१०९)

आदिसे उनका पूजन करे। अनन्तर देवताके उद्देश्यसे नाममन्त्र (ॐ अमृक देवाय नमः) द्वारा अर्थ्य प्रदान करे तथा फिर ब्रतकी पूर्णता एवं ब्रतभङ्ग-दोषकी निवृत्तिके लिये इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे और भगवान्की शरण प्रहण करे—

उपसन्नत्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताङ्गुले :
शरणं च प्रपत्रस्य कुरुव्याद्य दयां प्रभो ॥
परत्र भयधीतस्य भगवत्पद्मब्रतस्य च ।
कुरु प्रसादं सप्तर्णी ब्रतं सप्तर्णमस्तु मे ॥
तपश्चिद्रं ब्रतचिद्रं यच्चिद्रं भग्नके ब्रते ।
तव प्रसादाहेवेश सर्वपञ्चामस्तु नः ॥

(उत्तरपर्व ११० । १३—१५)

तात्पर्य यह है कि ‘प्रभो ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझपर

आप दया करें। किसी भी प्रकार से मेरे द्वारा किये गये ब्रत, तप इत्यादि कर्मोंमें जो कोई भी त्रुटि, अपराध एवं च्युति हो गयी हो, हे देवदेवेश ! आपके अनुग्रहसे वह सब दोष दूर हो जायें और मेरा ब्रत पूर्ण हो जाय। आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर दिक्षालोकों अर्थ प्रदान कर मूल्य देवताकी अङ्ग-पूजा करे और अन्तमें फिर प्रार्थना करे। ब्राह्मणका पूजन करे और ब्राह्मण भी ब्रतकी पूर्णताके लिये इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करे—

वाक्सम्पूर्णं मनः पूर्णं पूर्णं कायद्वतेन ते ।
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥
ब्राह्मणा यदाभावन्ते हानुमोदन्ति देवताः ।
सर्वदिवयत्या विप्रा नैतद्वचनमन्यथा ॥
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम् ।
सहस्रनेत्रः शक्तोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मिः ॥
ब्राह्मणानां तु वचनाद् ब्रह्महत्या प्रणायति ।
अस्मेष्टफलं साप्रं प्राप्यते नात्र संशयः ॥
व्याप्तवाल्पीकिवचनाद् ब्राह्मणवचनात् गर्वगौतम-
पराशरधीम्याहिरसवसिष्ठुनारदादिमुनिवचनात् सम्पूर्णं भवतु
ते ब्रतम् ॥

(उत्तरपर्व ११०। २३—२७)

—४४४—

वृन्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्रब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं वृन्ताक (बैगन) के त्यागकी विधि बता रहा हूँ। ब्रतीको चाहिये कि एक वर्ष, छ: मास अथवा तीन मास वृन्ताकका त्याग कर उद्यापन करे। उसके बाद संकल्पपूर्वक भरणी अथवा मध्या नक्षत्रमें उपवासकर एक स्थाण्डिल बनाकर उसपर अक्षत-पुष्पोंसे यमराजका तथा उनके परिकरोंका आवाहनकर गम्य, पुण्य, नैवेद्य आदि उपचारोंसे यम, कर्त्तु, नील, चित्रगुप्त, वैवस्त, मूल्य तथा परमेष्ठी—इन पृथक-पृथक् नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर अग्रिमस्थापन कर तिल और धीसे इन्हीं नाम-मन्त्रोंके द्वारा रुक्ष रुक्ष करे। तदनन्तर स्विष्टकृत् एवं प्रायश्चित्त होम करे। आभूषण, वस्त्र, छाता, जूता, काला कम्बल, काला बैल, काली गाय और दक्षिणाके साथ सोनेका बना हुआ वृन्ताक ब्राह्मणको दान कर दे और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराये। ऐसा करनेसे पौष्टिक-यज्ञका

यजमान भी ब्राह्मणको बिदा कर सब सामग्री उसके घर भेज दे। पीछे पञ्चयज्ञकर भोजन करे। इस सम्पूर्ण ब्रतको जो एक बार भी भक्तिसे करता है, वह स्थाण्डित-ब्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है और ब्रतभ्रमके पापसे मुक्त हो जाता है। इस ब्रतको जो करता है, वह धन, रूप, आरोग्य, कर्त्तिं आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त भूमिपर सुख भोगकर स्वर्ग प्राप्त करता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। महाराज ! प्रायश्चित्तरूप इस सम्पूर्ण ब्रतको प्रसन्न हो महर्षि गार्गीजे मुझे बताया था और बाल्यावस्थामें मैंने भी इसे किया था। इसलिये राजन् ! आप भी इस ब्रतको करें, जिससे जन्मान्तरोंमें भी किये स्थाण्डित ब्रत पूर्ण हो जायें।

राजन् ! इसी प्रकार एक अन्य पण्यस्त्री-ब्रत है, जो रविवारको हस्त, पुण्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आनेपर प्रारम्भ किया जाता है तथा उसमें विधिपूर्वक विष्णुस्वरूप कामदेवका पूजन किया जाता है, अन्तमें सभी उपकरणोंसे युक्त शश्या तथा विष्णुप्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दी जाती है। ब्रती लोकों चाहिये कि वह सदाचारके नियमोंका पालन करती रहे। इस ब्रतके करनेसे पण्यस्त्रीयों—जैसी अधम स्त्रियोंका भी उद्धार हो जाता है। (अध्याय ११०-१११)

फल प्राप्त होता है। साथ ही ब्रतीको सात जन्मतक यमका दर्शन नहीं करना पड़ता और वह दीर्घ समयतक स्वर्गमें समाप्त होकर निवास करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं ग्रह-नक्षत्र-ब्रतकी विधि बताता हूँ, जिसके करनेसे सभी क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मी, धृति, तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है। जिस रविवारको हस्त नक्षत्र हो उस दिन भगवान् सूर्यका पूजन कर नक्षत्र करना चाहिये। इस नक्षत्रको सात रविवारतक भक्तिपूर्वक करके अन्तमें भगवान् सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताम्रपत्रमें स्थापित करे। फिर उसे धीसे खान कराकर रक्त चन्दन, रक्त पुण्य, रक्त वस्त्र, धूप, दीप आदिसे पूजनकर लड्डुका भोग लगाये। जूता, छाता, दो लाल वस्त्र और दक्षिणाके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे। इस ब्रतको करनेसे आरोग्य, सम्पत्ति और संतानवी प्राप्ति होती है।

चित्रा नक्षत्रसे युक्त सोमवारसे आरम्भ कर सात सोमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें चन्द्रमाकी चाँदीकी प्रतिमा बनाकर, चाँदी अथवा काँसिके पात्रमें स्थापित कर खेत पुण्य, खेत वस्त्र आदिसे उनका पूजन करे। दध्योदनका भोग लगाकर जूता, छाता तथा दक्षिणासहित वह मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये, इससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे दूसरे सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं।

स्वाती नक्षत्रसे युक्त भौमवारसे आरम्भ कर सात भौमवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी भौमकी प्रतिमा बनाकर तापात्रमें स्थापित कर रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र आदिसे पूजनकर धीयुक्त कसाकरा भोग लगाकर सब सामग्री ब्राह्मणको दे। इसी प्रकार विशाखायुक्त बुधवारको बुधका पूजन कर उद्यापनमें स्वर्णमयी बुधकी प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनुशासा नक्षत्रसे युक्त बृहस्पतिवारके दिनसे सात बृहस्पतिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी देवगुरु बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर सुवर्णपात्रमें स्थापित करे तदनन्तर गन्ध, पीत पुण्य, पीत वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे उनकी पूजा

करके खाँड़का भोग लगाकर सब सामग्री एवं मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इसी प्रकार ज्येष्ठायुक्त शुक्रवारको ब्रतका आरम्भ कर सात शुक्रवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमा बनाकर चाँदी अथवा बाँसिके पात्रमें स्थापित कर खेत चन्दन, खेत वस्त्र आदिसे पूजन कर घी और पायसका भोग लगाये। सब पदार्थ एवं प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान करे।

इसी विधिसे मूल नक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ कर सात शनिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें शनि, राहु और केतुका पूजन करना चाहिये और तिल तथा घीसे प्रहोके नाम-मन्त्रोंसे हवन करके नवप्रहोकी समिधाओंसे प्रत्येक प्रहोके ब्रह्मसे एक सौ आठ अथवा अद्वैईस बार आहुति दे। शनैष्ट्र आदिकी प्रतिमा लौह अथवा सुवर्णकी बनाये। कृशग्रन्थका भोग लगाकर सब सामग्रीसहित वे प्रतिमाएँ ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे सभी प्रहोकी पीड़ा शान्त हो जाती है। इस ब्रतको विधिपूर्वक करनेसे कूर ग्रह भी सौम्य एवं अनुकूल हो जाते हैं और उसे शान्ति प्रदान करते हैं।

(अध्याय ११२-११३)

—४५४—

शनैश्चर-ब्रतके प्रसंगमें महामुनि पित्पलादका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं— गृहण! एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्धक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी रुग्नी तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दूभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका बृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहाँ कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नप्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौजूदीव्यवह आदि सब संस्कार कर पट-क्रम-

रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहाँ रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु गहड़पर सवार हो वहाँ पहुंचे। देवर्षि नारदके बचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्में दृढ़ भक्तिकी मौग की। भगवान् प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिका आशीर्वाद देकर वे अनर्थीन हो गये। भगवान्के उपदेशसे वह बालक महाशानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा— 'महाराज ! यह किस कर्मका फल है जो मुझे इतना कष्ट ठाना पड़ा। इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों ग्रहोदाय पीड़ित हो रहा हूँ? मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, ये कहाँ हैं। फिर भी मैं अल्पत बालक जी रहा हूँ। द्विजोत्तम ! सौभाग्यवश आपने

दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।' नारदजी यह वचन सुनकर बोले—'बालक ! शनैक्षरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी और आज यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्तीर्णित है। देखो, वह अभिमानी शनैक्षर ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।'

यह सुनकर बालक ब्रोधसे अधिके समान उद्दीप्त हो उठा। उसने उप्र दृष्टिसे देखकर शनैक्षरको आकाशसे भूमिपर गिरा दिया। शनैक्षर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्थि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैक्षरको देखकर अस्तवन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैक्षरकी दुर्गति सबको दिखायी।

ब्रह्माजीने बालकसे कहा—महाभाग ! तुमने पीपलके फल भक्षण कर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद^१ नाम उचित ही रखा है। तुम आजसे इसी नामसे संसारमें विल्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेंगे, अथवा 'पिप्पलाद' इस नामका स्मरण करेंगे, उन्हें सात जन्मतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैक्षरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो। क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। यहोंकी पीड़ासे कुट्कारा पानेके लिये नैवेद्य निवेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। यहोंका अनादर नहीं करना चाहिये। पूजित होनेपर ये शान्ति प्रदान करते हैं^२।

शनिकी ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्तिके लिये शनिवारको स्वयं तैलभ्यङ्क वरके ब्राह्मणोंको भी अभ्यङ्कके लिये तैल देना चाहिये। शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तैलयुक्त लौह-पात्रमें

रखकर एक वर्षतक प्रति शनिवारको पूजन करनेके बाद कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, कसार, तिल, भात आदिसे उनका पूजन कर काली गाय, काल्य कम्बल, तिलका तेल और दक्षिणासहित सब पदार्थ ब्राह्मणको प्रदान करना चाहिये। पूजन आदिमें शनिके इस मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

शं नो देवीरभिष्य आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि
स्ववन्तु नः ॥ (यजु० ३६ । १२)

गच्छ नष्ट हुए गजा नलब्दे शनिदेवने स्वप्रमें अपने एक प्रार्थना-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। उस स्तुतिसे शनिकी प्रार्थना करनी चाहिये। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

क्रोऽं नीलाङ्गनप्रस्त्रं । नीलवर्णसमरजयम् ।
छायामार्तण्डसम्पूर्तं नमस्यामि शनैक्षरम् ॥

नमोऽक्षपुत्राय शनैक्षराय

नीहारवणाङ्गुणमेष्वकाय ।

शुल्वा रहस्यं भवकामदक्षं

फलप्रदो मे भव मूर्यपुत्र ॥

नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः ।

शनैक्षराय कृष्णं शुद्धतुष्टिप्रदायिने ॥

य एधिनामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवान्यहम् ।

मदीयं तु भयं तस्य स्वप्रेऽपि न भविष्यति ॥

(उत्तरपर्व ११४ । ३९—४२)

जो भी व्यक्ति प्रत्येक शनिवारको एक वर्षतक इस ब्रतको करता है और इस विधिसे उद्यापन करता है, उसे कभी शनिकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमधामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्माजीके आशानुसार शनैक्षरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया। महामुनि पिप्पलादने शनिवारकी

१-यहीं यह कथा बहीं सुन्दर है। इसके पढ़नेसे शनिप्रहरकी पीड़ा भी शब्दन हो जाती है। ये महर्षि अर्थात् पैप्पलादसंहितामें द्रष्टा हैं। इनकी कथा प्रायः अनेक ब्रह्म-माहात्म्य एवं स्कन्द आदि पुण्यलोकमें मिलती है। पर अन्तर यह है कि अन्यत्र सर्वत्र इन्हें दधीर्णकृष्णिका पूर्ण बताया जाया है। मात्राके नाममें भी योद्धा अन्तर है, कहीं प्रातिथेयीका और कहीं सुवर्णका नाम मिलता है, जो पौत्रिके साथ सती हो गयी थीं। तब ये पीपलके द्वारा पालित हुए। सभी कथाएँ बहीं पुष्पप्रद एवं शनि-पीड़ाको शान्त करनेवाली हैं। अन्तर कल्पभेदका है, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

२-स्वरूपं शरीरं शुभासुभकलप्रदः। हतसाध्या ब्रह्मांते न भवन्ति कदाचन ॥

बलिहोमनमस्करौः। शान्तिं यच्छन्ति पूजिताः। अतोऽर्थमस्य दिवसे शानमप्यङ्गपूर्वकम् ॥ (उत्तरपर्व ११४ । ३९-४०)

इसी भावके द्वारेक याह्नवत्त्वय अद्विदि स्तौतियोंमें भी आये हैं।

इस प्रकार प्रार्थना की—

कोणस्यः पितृलो बभूः कृष्णो रौद्रोऽन्तको नमः ।

सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ॥

(उत्तरपर्व ११५ । ४७)

—४०-४१—

आदित्यवार नक्त-ब्रत तथा संक्रान्ति-ब्रतके उद्यापनकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूजा—भगवान् गोविन्द ! आप कोई ऐसा ब्रत बतलाइये, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, आरोग्यदायक और अनन्त फलप्रद हो ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! परब्रह्म विश्वाता जो परम सनातन धाम है, वह संसारमें सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र—इन तीनोंमें विभक्त होकर स्थित है । कुरुनन्दन ! उस परमात्माकी आराधना कर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ? इसलिये गविवारके दिन नक्तब्रत करना चाहिये । भगवान् सूर्यमें अनन्य भक्ति रखकर आदित्यवारको यह ब्रत करना चाहिये । ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजाकर सायंकाल रक्तचन्दनसे एक द्वादशदल कमलकी रचना करे और उसके द्वादश दलोंमें सूर्य, दिवाकर, विवस्वान्, भग, वरुण, महेन्द्र, आदित्य, शान्त, सूर्यके अध्य, यम, मार्तण्ड तथा रक्षिकी स्थापना करे और उनका पूजन कर तिल, रक्तचन्दन, फल तथा अक्षतसे युक्त अर्घ्य प्रदान करे । अनन्तर विसर्जन कर दे । गत्रिमें भगवान् भास्करका स्मरण करता हुआ तैलमहित भोजन करे । ब्रतके पूर्व दिन शनिवारको तैलाभ्यङ्क न करे । इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त ब्रत करके उद्यापन करे और यथाशक्ति गुहासे पूर्ण एक ताम्रप्रात्रमें स्वर्णकमल स्थापित करे तथा उसके ऊपर स्वर्णमयी भगवान् सूर्यकी द्विभुज प्रतिमा स्थापित करे, साथ ही एक सुवर्णमयी सवत्सा गौ भी स्थापित करे । इनका पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणको यह सब सामग्री निवेदित कर दे ।

इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष इस ब्रतको वर्षभर सम्पन्न कर विधिपूर्वक उद्यापन करते हैं, वे नीरोग, धर्मिक, धन-धान्य, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न हो जाते हैं और अनन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन् ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापनरूप अन्य ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका

जो व्यक्ति शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी शनिकी पीड़ा नहीं होती । (अध्याय ११४)

प्रदाना और परलोकमें अक्षय फलदायक है । सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिब्रतका आरम्भ करना चाहिये । इस ब्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (गत्रिमें शयन करे ।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दातुन करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्त्रान करना चाहिये । सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे । कर्णिकामें 'सूर्याय नमः', पूर्वदलपर 'आदित्याय नमः', अग्निकोणस्थित दलपर 'सप्तस्त्रियो नमः', दक्षिण दलपर 'ऋग्मण्डलाय नमः', नैऋत्यकोणवाले दलपर 'सवित्रे नमः', पश्चिमदलपर 'ब्रह्मणाय नमः', वायव्यकोण-स्थित दलपर 'सप्तसप्तये नमः', उत्तरदलपर 'मार्त्यङ्गाय नमः' और ईशनकोणवाले दलपर 'विश्वावे नमः'—इन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बार-बार अर्चना करे । तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और स्वाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और अर्घ्य प्रदान करना चाहिये । पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे धृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे । तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे (अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त ! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामावेद एवं यजुर्वेदके स्त्रामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है ।' इस विधिसे मनुष्यबने प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कर्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है ।)

एक वर्ष त्यतीत होनेपर धृतमिश्रित स्त्रीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभांति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं

रजसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे । इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा तांबिकी शेषनाशसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये । जो ऐसा करनेमें असमर्थ हों, वे आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है । जबतक इस मूल्यलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अस्तिल गच्छरसमूह उस व्रतीकी भलीभांति पूजा करते हैं ।



भद्राका चरित्र एवं उसके ब्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! लोकमें भद्रा विष्टि नामसे प्रसिद्ध है, वह कौन्सी है, कौन है, वह किसकी पुत्री है, उसका पूजन किस विधिसे किया जाता है ? कृपया आप बतानेका कष्ट करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भद्रा भगवान् सूर्यनाशयणकी कन्या है । यह भगवान् सूर्यकी पत्नी छायासे उत्पन्न है और शनैश्चरकी सांगी बहिन है । वह काले वर्ण, लम्बे केश, बड़े-बड़े दाँत और बहुत ही भयंकर रूपवाली है । जन्मते ही वह संसारका ग्रास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी और उसकों तथा मङ्गल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्को पीड़ा पहुँचाने लगी । उसके उच्चल्लुल स्वभावको देखकर भगवान् सूर्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह करनेका विचार किया । जब जिस-जिस भी देवता, असुर, कित्र आदिसे सूर्यनाशयणने विवाहका प्रस्ताव रखा, तब उस भयंकर कन्यासे कोई भी विवाह करनेको तैयार न हुआ । दुःखित हो सूर्यनाशयणने अपनी कन्याके विवाहके लिये मण्डप बनवाया, पर उसने मण्डप-तोरण आदि सबको उखाड़कर फेंक दिया और सभी लोगोंको कष्ट देने लगी । सूर्यनाशयणने सोचा कि इस दुष्टा, कुरुपा, स्वेच्छाचारिणी कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय । इसी समय प्रजाके दुःखको देखकर ब्रह्माजीने भी सूर्यके पास आकर उनकी कन्यादारा किये गये

पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीक्षर होता है । वह सुन्दर रूप और सुन्दर पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी बन्दना करते हैं । इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संकालिकी इस पुण्यमयी अस्तिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है । (अथाय ११५-११६)



दुष्कर्मोंको बतलाया । यह सुनकर सूर्यनाशयणने कहा—‘ब्रह्मन् ! आप ही तो इस संसारके कर्ता तथा भर्ता हैं, फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हैं । जो भी आप उचित समझे वही करें ।’ सूर्यनाशयणका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीने विष्टिको बुलाकर कहा—‘भद्रे ! वब, बालब, कौलव आदि करणोंके अन्तमें तुम निवास करो और जो व्यक्ति यात्रा, प्रवेश, माङ्गल्य कूल्य, खेती, व्यापार, उद्योग आदि कार्य तुम्हारे समयमें करे, उन्हींमें तुम विप्र करो । तीन दिनतक किसी प्रकारकी बाधा न ढालो । चौथे दिनके आधे भागमें देवता और असुर तुम्हारी पूजा करेंगे । जो तुम्हारा आदर न करे उनका कार्य तुम खस्त कर देना ।’ इस प्रकार विष्टिको उपदेश देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये, इधर विष्टि भी देवता, दैत्य, मनुष्य सब प्राणियोंको कष्ट देती हुई धूमने लगी । महाराज ! इस तरहसे भद्राकी उत्पत्ति हुई और वह अति दुष्ट प्रकृतिकी है, इसलिये माङ्गलिक कार्योंमें उसका अवश्य त्याग करना चाहिये ।

भद्रा पांच घड़ी मुखमें, दो घड़ी कण्ठमें, य्यारह घड़ी हृदयमें, चार घड़ी नाभिमें, पांच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित रहती है । जब भद्रा मुखमें रहती है तब कार्यका नाश होता है, कण्ठमें धनका नाश, हृदयमें प्राणका नाश, नाभिमें कलह, कटिमें अर्थभंश होता है पर पुच्छमें निश्चितरूपसे विजय एवं कार्य-सिद्धि हो जाती है ।

भद्राके बारह नाम हैं—(१) धन्या, (२) दधिमुखी, (३) भद्रा, (४) महामारी, (५) खरणना, (६) कालमात्रि, (७) महारुद्रा, (८) विष्टि, (९) कुलपुत्रिका, (१०) भैरवी, (११) महाकाली तथा (१२) असुरक्षयकरी।

इन बारह नामोंका प्रातःकाल उठकर जो स्मरण करता है, उसे किसी भी व्याधिका भय नहीं होता। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं। उसके कार्योंमें कोई विघ्न नहीं होता। युद्धमें तथा राजकुलमें वह विजय प्राप्त करता है^१ जो विधिपूर्वक नित्य विष्टिका पूजन करता है, निःसंदेह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं भद्राके व्रतकी विधि बता रहा हूँ—

राजन् ! जिस दिन भद्रा हो उस दिन उपवास करना चाहिये। यदि गतिके समय भद्रा हो तो दो दिनतक एकभुक्त व्रत करना चाहिये। एक प्रहरके बाद भद्रा हो तो तीन प्रहरतक उपवास करना चाहिये अथवा एकभुक्त रहना चाहिये। रुधी अथवा पुरुष व्रतके दिन सुगम्य आमलक लगाकर सर्वोषधि-युक्त जलसे शान करे अथवा नदी आदिपर जाकर विधिपूर्वक शान करे। देवता एवं पितरोंका तर्पण तथा पूजन कर कुशाकी भद्राकी मूर्ति बनाये और गम्य, पुण्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे

उसकी पूजा करे। भद्राके बारह नामोंसे एक सौ आठ बार हवन करनेके बाद तिल और पायस ब्राह्मणको भोजन करनाकर स्वयं भी मौन होकर तिलमिश्रित कृशणप्रका भोजन करना चाहिये। फिर पूजनके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थदायिनि ।

पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥

(उत्तरपर्व ११७ । ३९)

इस प्रकार सत्रह भद्रावत कर अन्तमें उद्घापन करे। लोहेकी पीठपर भद्राकी मूर्तिको स्थापित कर काला वस्त्र पहनाकर गम्य, पुण्य आदिसे पूजन कर प्रार्थना करे। लोहा, तैल, तिल, बछड़ासहित काली गाय, काला कम्बल और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो भी व्यक्ति भद्रावत और व्रतका उद्घापन करता है, उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता। भद्रावत करनेवाले व्यक्तिको प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा ग्रह आदि कष्ट नहीं देते। उसका इष्टसे वियोग नहीं होता और अन्तमें उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है^२। (अध्याय ११७)

महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्ध्य-दानकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! अब आप सभी पापोंके दूर करनेवाले अगस्त्यमुनिके चरित्र, अर्पणदानकी विधि और अगस्त्योदय-कालका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! एक बार देवक्षेषु मित्र और वरुण दोनों मन्दराचलपर कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्द्रने उर्वशी अप्यराको भेजा। उसे देखकर दोनों स्त्रीय हो उठे। अपने

मनके विकारको जानकर उन्होंने अपना तेज एक कुम्भमें स्थापित कर दिया। राजा निमिके शापसे उसी कुम्भसे प्रथम महर्षि वसिष्ठका अनन्तर दिव्य तपोधन महात्मा अगस्त्यका प्रादुर्भाव हुआ।

अगस्त्यमुनिका विवाह लोपामुद्रासे हुआ। अनन्तर विश्रोसे घिरे हुए अगस्त्यमुनि अपनी पत्नीके साथ रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त

इदि प्राणहरु झेया नाभ्यो तु कलहावहा। कल्यामर्यपरिप्रेशो विष्टिपुष्टे भूयो जयः ॥

(उत्तरपर्व ११७ । २३—२५)

१- धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरणना। कालमात्रिमहालदा विष्टि कुलमुनिका ॥
भैरवी च महाकाली असुरानां क्षयकरी। हृदरैय तु नामानि प्रातःस्त्याय यः पठेत् ॥

न च व्याधिपूर्वक् तस्य रोगी रोगात्ममुच्यते। ग्रहः सर्वेन्मूर्त्तिः सुर्वं च विज्ञादि जायते ॥

रण राजकुले धूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ (उत्तरपर्व ११७ । २७—३०)

२- भद्राके विषयमें ज्योतिष-प्रमोगमें विश्वामीरोंके वर्णन मिलता है, विश्वेषक मूर्त्ति-चिन्मामणिकी पीयूषधारा व्यास्यामें। पञ्चाङ्गोंसे यह व्यास्यक वस्तु है। यह प्रायः प्रस्त्रेक द्विलीय, तुरीय, सप्तीयी, अष्टीयी और द्वादशी-त्रयोदशीके लगी रहती है। इसका पूण्य समय प्रायः २४ घण्टेका होता है। इस अध्यायमें उसके रहस्यको ठीकसे समझानेका प्रयत्न किया गया है और उसकी जानिका भी उपाय बताया है।

कठोर तप करने लगे। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे, उसी समय बड़े ही दुराचारी और ब्राह्मणोंद्वारा किये जा रहे यज्ञोंका विध्वंस करनेवाले दो दैत्य जिनका नाम इत्यल और वातापि था, वहाँ उपस्थित हुए। ये दोनों बड़े ही मायावी थे। इन दोनोंका प्रतिदिनका कार्य यह था कि एक भाई मेष बनकर विविध प्रकारके भोजनोंका रूप धारण कर लेता और दूसरा भाई श्राद्धमें भोजन करने-हेतु ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर खुलता और भोजन करता। भोजन कर लेनेके तुरंत बाद ही इत्यल अपने भाईका नाम लेकर पुकारता। दैत्यकी पुकार सुनते ही उसका दूसरा भाई ब्राह्मणोंके पेटको चीरता हुआ बाहर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंने अनेक ब्राह्मणों तथा मुनियोंको मार डाला।

एक दिनकी बात है, इत्यलने भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंके साथ अगस्त्यमुनिको भोजनके लिये आमन्त्रित किया। भोजनके समय अगस्त्यमुनिने इत्यलके द्वारा बनाया गया भोजन सारा-का-सारा खा डाला, पर मुनि निर्विकार होकर शुद्ध हो गये थे। इत्यलने पूर्वीतिसे अपने भाई वातापिको पुकारकर कहा—‘भाई! अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मुनिके शरीरको चीरकर बाहर आ जाओ।’ इसपर अगस्त्यमुनिने कहा—‘अरे दुष्ट दैत्य! तुम्हारा भाई वातापि तो उदरमें ही भस्म होकर समाप्त हो गया, अब वह बाहर कहाँसे आयेगा। यह सुनकर इत्यल बहुत ही कुद्द हो उठा, परंतु अगस्त्यमुनिने उसको भी अपनी कुद्द दृष्टिसे जलाकर भस्म कर डाला। उन दोनों दैत्योंके मारे जानेपर दोष दैत्य भी मुनिके वैरको स्मरण करते हुए भयभीत होकर समुद्रमें जाकर छिप गये। वे रात्रिके समय समुद्रसे बाहर निकलकर मुनियोंका भक्षण करते, यज्ञपात्र फोड़ डालते और पुनः समुद्रमें जाकर छिप जाते। दैत्योंके इस प्रकारके उत्पातको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता आपसमें विचारकर महर्षि अगस्त्यजीके पास आकर बोले—‘ब्रह्माये! आप समुद्रके जलको सोख लीजिये।’ यह सुनकर अगस्त्यजीने अपनेमें आग्रेयी धारणाका अवधान कर समुद्रके जलका पान कर लिया। समुद्रके सूख जानेपर देवताओंने उन सभी दैत्योंका संहार कर डाला।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस संसारको निष्कण्टक कर

दिया। उसके बाद गङ्गाजीके जलसे समुद्र पुनः भर गया। तब देवता और दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मथानी तथा नागराज वासुकिको रसी बनाकर समुद्रका मन्थन किया। उस समय समुद्रसे चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, कौसुभमणि, ऐश्वर्य तथा अदि उत्तम-उत्तम रत्न निकले। समुद्रसे ही अति भयंकर कालकूट विष भी निकला, जिसके गन्धमात्रसे ही देवता और दैत्य सभी मूर्च्छित होने लगे। इस कालकूट विषका कुछ भाग भगवान् शंकरने पान कर लिया। जिससे वे नीलकण्ठ कहलाये, तब ब्रह्माजीने कहा कि ‘भगवान् शंकरके अतिरिक्त संसारमें ऐसा किसीमें सामर्थ्य नहीं है, जो इस शेष विषका पान करे, अतः देवगणो! आप सब दक्षिण दिशामें लंकके समीप निवास करनेवाले अगस्त्यमुनिके पास जायें, वे हमलोगोंके शरणदाता हैं। ब्रह्माजीकी आशा पाकर सभी देवता अगस्त्यमुनिके पास गये। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सबको भयभीत पाकर उन्हें यह आश्वासन दिया कि मैं उस विषको अपने तपोबलन्के प्रभावसे हिमालय पर्वतमें प्रविष्ट कर दूँगा। तब महर्षि अगस्त्यजीके तपोबलके प्रभावसे वही विष हिमालयके शिखरों, निकुंजों तथा वृक्षोंमें विसर गया और शेष बचे हुए विषको धतूर, अर्क आदि वृक्षोंमें उन्होंने बांट दिया। उसी हिमालय पर्वतके विषसे युक्त वायुको प्रभावसे प्राणियोंमें अनेक प्रकारके गोग उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियोंको कष्ट सहन करना पड़ता है। उस विषयुक्त वायुको प्रभाव वृक्षकी संक्रान्तिसे लेकर सिंह-संक्रान्तिक बना रहता है। बादमें उसका वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार कालकूट विषके विनाशकारी प्रभावसे अगस्त्यमुनिने समस्त प्राणियोंकी रक्षा की।

पूर्वकालमें प्रजाकी बहुत बढ़ दिया हुई। उस समय ब्रह्माजीने अपने शरीरसे मृत्युको उत्पन्न किया और मृत्युने प्रजाका भयंकर विनाश किया। एक दिन वह मृत्यु अगस्त्यमुनिके समीप भी आयी। अगस्त्यजीने क्रोधभरी दृष्टिसे मृत्युको तल्काल भस्म कर दिया। पुनः ब्रह्माजीको दूसरी व्याधिरूप मृत्युकी उत्पत्ति करनी पड़ी।

दण्डकारण्यमें चेत नामक एक गजा रहता था, स्वर्ग जानेपर भी वह प्रतिदिन क्षुधाके कारण अपने मांसको ही खाकर कष्ट भोग रहा था। एक दिन दुःखी हो रहाने अगस्त्यमुनिसे कहा—‘महाराज! सभी वस्तुओंका दान तो

मैंने किया है, परंतु अब्र और जलका दान मैं नहीं कर सकता और न मैंने श्राद्ध ही किया। इसलिये मुझे इस रूपमें प्रतिदिन अपना ही मांस खाना पड़ रहा है। प्रभो! आप दया करके कोई उपाय कीजिये, जिससे कि मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त हो।' राजाद्वारा इस प्रकार दीन वचन सुनकर अगस्त्यमुनि दयाद्वारे हो उठे और उन्होंने रालोद्वारा श्राद्ध कराया। श्राद्धके फलस्वरूप सहसा वह दिव्य देह धारणकर स्वर्गलोकमें दिव्य भोग भोगने लगा।

एक बार विन्याचल पर्वतके हृदयमें यह प्रश्न उठा कि सूर्यनारायण मेहर्यवर्तकी परिक्रमा तो करते हैं, पर मेरी नहीं करते। क्यों न मैं उनका मार्ग रोक दूँ। मनमें यह निष्ठा कर विन्यगिरि प्रतिदिन बढ़ने लगा। विन्याचलको अद्वृते हुए देखकर सभी देवता व्याकुल हो उठे और उन्होंने अगस्त्यमुनिके पास जाकर निवेदन किया—'प्रभो! आप कृपाकर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध करनेवाले उस विन्यगिरिको रोके और उसे स्थिर कर दें।' देवताओंका विनययुक्त वचन सुनकर अगस्त्यजीने विन्याचल पर्वतके पास पहुँचकर कहा—'पर्वतोत्तम! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ, तुम थोड़ा नीचे हो जाओ, तो उस पार चला जाऊँ।' मुनिकी आशासे विन्याचल नीचा हो गया। अगस्त्यमुनिने पर्वतको लाँचकर कहा—'जबतक मैं तीर्थयात्रासे वापस नहीं आ जाता, तबतक तुम इसी स्थितिमें रहना।' इतना कहकर अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाको चले गये और फिर वापस नहीं लैटे। आज भी आकाशमें दक्षिण दिशामें देवीव्यापान हो रहे हैं। और लोपामुद्राके साथ महर्षि अगस्त्यकी यह त्रिलोकी बन्दन करता है।

एक समयकी बात है, अपनी पत्नी लोपामुद्राकी इच्छापर अगस्त्यजीने कुबेरको बुलाकर आनन्दके सभी ऐश्वर्य महल, शश्या, वस्त्राभूषण आदि उन्हें उपलब्ध करा दिये और लोपामुद्राके साथ अगस्त्यजी बहुत समयतक आनन्दित होते रहे।

राजन्! इस प्रकार अगस्त्यमुनिके अनेक अद्भुत दिव्य चत्रित हैं। आप भी भगवान् अगस्त्यके लिये अर्थ प्रदान करें, इससे आपको महान् पुण्य प्राप्त होगा। उनके अर्थदानकी विधि इस प्रकार है—

जब कल्या गतिमें सूर्यके सात औंश (५। २२) शेष रहते हैं, उसी दिन महर्षि अगस्त्यका पूर्वमें उदय होता है, उसी समय उनके निमित्त अर्थ देना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि प्रातः शेत तिलोंसे खानकर शेत वस्त्र, शेत पुष्टोंकी माला आदिसे विधूषित होकर पञ्चरत्नसहित एक सुवर्ण कलश स्थापित करे। उसके ऊपर अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ और सप्तधान्यसहित धीका पात्र रखें। उसके ऊपर जटाधारी, हाथमें कमण्डल धारण किये हुए, शिव्योंके साथ अगस्त्यमुनिकी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् शेत चन्दन, चमेलीके पुण्य, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा करनेके बाद अर्थ देना चाहिये। खजूर, नारियल, कूम्बाघड, खीर, ककड़ी, ककड़ोटक, आरबेल, बीजपूर (बिजौर), बैगन, अनार, नारेंगी, केलज, कुशा, काशा, दूधकि अंकुर, नीलकमल तथा अंकुरित अब्र—यह सभी सामग्री एक बाँसके पात्रमें रखकर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँथिका अर्थपात्र नम्र हो सिरसे लगाकर प्रसन्न-चित्तसे जानुओंको पृथ्वीपर टेककर दक्षिणाभिमुख हो इन मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् अगस्त्यको अर्थ प्रदान करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमाल्लस्तसम्बव ।

मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

विन्ययुद्धक्षयकर मेघतोयविवापह ।

रत्नवल्लभ देवर्णे लंकावास नमोऽस्तु ते ॥

वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा ।

लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योज्सौ तस्मै नमो नमः ॥

येनोदितेन पापनि प्रलये यान्ति व्याघ्रयः ।

तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणः ॥

(उत्तरपर्व ११८। ६९—७२)

'देवर्ण! आपका वर्ण काशा-पुष्पके समान है, आप अग्नि और मरुतसे ठन्डूत हैं। मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोने! आपको नमस्कार है। आप वृष्टिमें अमृतका संचार करनेवाले हैं, आपने बहुते हुए विन्यगिरिको निवृत्त किया था और आप दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने वातापि राक्षसको भस्म कर दिया तथा समुद्रको सोख लिया, लोपामुद्राके पति भगवान् अगस्त्य! आपको बार-बार नमस्कार है। आपके उदय होनेपर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती

हैं, शिष्यों और पुत्रोंके साथ भगवन् ! आपको नमस्कार है ।'

इस प्रकार अर्थ्य प्रदान कर वह प्रतिमा विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणको दानमें दे दे ।

किसी एक फल अथवा धान्य आदिका एक वर्षतक त्याग करे । इस विधिसे यदि ब्राह्मण सात वर्षतक अर्थ्य दे तो चारों बेटोंका ज्ञाता और सभी शास्त्रोंका मर्मज्ञ हो जाता है । क्षत्रिय समस्त पृथ्वीको जीतकर राजा बनता है । वैश्य धन-धान्य तथा पशुओं एवं समृद्धिको प्राप्त करता है तथा शूद्र धन,

सम्मान, आरोग्य प्राप्त करता है और खिलोंको सौभाग्य, प्रद्युम्दि-बृद्धि तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है । विधवाके अनन्त पुत्रकी प्राप्ति होती है, कल्याणको श्रेष्ठ पति प्राप्त होता है तथा रोगी अगस्त्यमनुनिको अर्थ्य देकर रोगसे हुटकारा पा जाता है । जिस देशमें भगवान् अगस्त्यका इस विधिसे पूजन होता है और अर्थ्य दिया जाता है, वहाँ कभी दुर्मिल, अकाल आदिका भय नहीं होता । अगस्त्य प्राप्तिके आख्यानके सुननेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं । (अध्याय ११८)

—४४३३—

नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्थ देनेकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं नवोदित चन्द्रमाको अर्थ्य देनेकी विधि बता रहा हूँ । प्रतिमास शुक्र पक्षकी द्वितीयाको प्रदोषकालके समय भूमिपर गोवरका एक मण्डल बनाकर उसमें रोहिणीसहित चन्द्रमाकी प्रतिमाको स्थापित करके शेष चन्द्र, शेष पुष्य, अक्षत, धूप, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य, दही, शेष वस्तु तथा दूर्वाकुर आदिसे उनका पूजन करे और इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्थ्य प्रदान करे—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ।
आयायस्व स मे त्वेषं सोम्यराज नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व ११९ । ६)

जो व्यक्ति इस विधिसे चन्द्रमाको प्रतिमास अर्थ्य देता है, उसे पुत्र, पौत्र, धन, पशु, आरोग्य आदिकी प्राप्ति होती है तथा सौ वर्षतक सुख भोगकर अनन्तमें वह चन्द्रलोकको और फिर मोक्षको प्राप्त करता है ।

गजन् । शुक्रके दोषकी निवृत्तिके लिये यात्राके आरम्भमें, गमनकालमें और शुक्रोदयके समय शुक्रदेवकी पूजा अवश्य करनी चाहिये । शुक्रकी पूजन-विधिको मैं बता रहा हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें—

सुखर्ण, चाँदी अथवा काँस्यके पात्रमें मोतीयुक्त चाँदीकी

शुक्रकी मूर्तिको पुष्य तथा शेष वस्तुसे अलंकृतकर शेष चावलोपर स्थापित करे । बोडशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे शुक्रदेवकी पूजा करके इस मन्त्रसे उन्हें अर्थ्य प्रदान करे—

नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन ।
क्वये सर्वार्थसिद्धार्थं गृहणार्थं नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२० । ४)

तदनन्तर प्रणामपूर्वक मूर्तिको विसर्जित कर सवत्सा गौके साथ वह प्रतिमा तथा अन्य सभी सामग्री ब्राह्मणको दे दे । इस विधिसे शुक्रदेवकी पूजा करनेसे सभी मनःकामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और फसल अच्छी होती है ।

इसी प्रकार सुखर्ण आदिके पात्रमें सुखर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति स्थापित करे । प्रतिमाको सर्वप्रयुक्त जल तथा पञ्चगव्यसे ऊन कराकर पीत पुष्य तथा पीत वस्तुओंसे अलंकृत करे । अनन्तर विविध उपचारोंसे उनका पूजन कर अर्थ्य प्रदान कर घीसे हवन करे । सवत्सा गौके साथ वह बृहस्पतिकी मूर्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान कर दे । यात्राकाल, बृहस्पतिकी संकान्ति और उनके उदयके समय जो इनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं । शुक्र तथा बृहस्पतिक इस विधिसे पूजन करनेसे पूजकके घरमें उनका दोष नहीं होता । (अध्याय ११९-१२०)



१-इस ग्रन्थ उल्लेख मत्स्यपुराण अध्याय ६२ अस्तिमें तथा इनकी कथा, इनका अनेक आश्रयोंमें निकास और अगस्त्यार्थपर उल्लेख १. १७९ । ६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहदर्म अस्ति पुराणोंकमें अपार सामग्री भी पढ़ी है । हेमादि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इहें अपने व्रत-निबन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है ।

प्रकीर्ण ब्रत^१

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं अत्यन्त विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

गृह विविध प्रकीर्ण ब्रतोक्त्वं वर्णन कर रहा हूँ। जो ग्रातः स्थानकर अश्वस्थ वृक्षका पूजनकर ब्राह्मणोंको तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है, उसे कृत-अकृत किसी कार्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। यह पात्रब्रत सभी पापोंके दूर करनेवाला है। सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमा बनाकर उसे पीत वस्त्रादिसे अलंकृतकर पुण्य दिनमें ब्राह्मणको दान करना चाहिये। यह वाचस्पतिब्रत बल और चुदिप्रदायक है। एकभुक्त रहकर लक्षण, कटु, तिक्त, जीरक, मरिच, हींग और सोठसे युक्त पदार्थ तथा शिलाजीत—ये सात पदार्थ सात कुटुम्बी ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये, इस शिलाब्रतको करनेसे लक्ष्मीलोककी तथा वाक्पटुता प्राप्त होती है। नक्तब्रतकर गाय, वस्त्र और सुवर्णका सुदर्शनचक्र तथा त्रिशूल गृहस्थ ब्राह्मणको दानमें दे और उन्हें प्रणाम कर 'शिवकेशवां प्रीयताम्' यह वाक्य कहे। यह शिवकेशवब्रत महापातकोंको भी नष्ट कर देता है। एक वर्षतक एकभुक्त रहकर सुवर्णका बना हुआ बैल और उपस्करोंसहित तिलधेनु ब्राह्मणको दान करे। इस ब्रतको रुद्धब्रत कहते हैं। यह ब्रत सभी प्रकारके पाप एवं शोकमें दूर करता है और ब्रतीको शिवलोककी प्राप्ति करता है।

पञ्चमी तिथिके दिन सर्वोत्तमिश्रित जलसे स्थानकर गृहस्थाश्रमके सात उपस्करणे—घर, ऊखल, सूप, सिल, थाली, घड़ा तथा चूलहाका दान गृहस्थ ब्राह्मणको देना चाहिये। इसे गृहब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे सभी सुख प्राप्त होते हैं। इस ब्रतका उपदेश आत्रिमनिने अनसूयाको किया था।

सुवर्णका कमल तथा नीलकमल शर्करापात्रसहित शङ्खसे गृहस्थ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। यह नीलब्रत है। इस ब्रतको जो कोई भी व्यक्ति करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें तैलाभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये। अन्तमें पारणामें तिलके तेलसे भरा हुआ नया घड़ा ब्राह्मणको दे और भी तथा पायसयुक्त भोजन कराये, इस ब्रतको प्रीतिब्रत कहते हैं। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे

विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

चैत्र मासमें दही, दूध, घी और गुड़, खाँड़, ईखके द्वारा बने पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और बादमें दो ब्राह्मणोंकी पूजाकर दही, दूध तथा दो वस्त्र, रससे भरे पात्र आदि पदार्थ 'गौरी मे प्रीयताम्' कहकर ब्राह्मणको देना चाहिये। यह गौरीब्रत है। इस ब्रतको जो करता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है।

त्रियोदशीसे एक वर्षतक नक्तब्रत करनेके बाद पारणामें दो वस्त्रोंसहित सुवर्णका अशोक वृक्ष तथा ब्राह्मणको दक्षिणा देकर 'प्रह्लादः प्रीयताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। यह कामब्रत है। इस ब्रतको करनेसे सभी प्रकारके शोक दूर हो जाते हैं तथा विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार मासोंमें अपने नस नहीं काटने चाहिये और बैगनका भोजन भी नहीं करना चाहिये। अन्तमें कार्तिक पूर्णिमाके दिन भी और शहदसे भरे हुए घटके साथ सुवर्णका बैगन ब्राह्मणको दान दे। इसे शिवब्रत कहते हैं। शिवब्रत करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकको प्राप्त करता है। इसी प्रकार पूर्णिमाको एकभुक्तब्रत करनेके बाद चन्दनसे पूर्णिमाकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करे। अनन्तर दूध, दही, घी, शहद और खेत शक्करा—इन पाँच सामग्रियोंसे भरे हुए पाँच घड़े पाँच ब्राह्मणोंको दानमें दे। इस ब्रतको पञ्चमी तिथिके दिन समाप्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हेमन्त और शिशिर ऋतुमें ऊद्धूत पुष्पोंका त्यागकर फलगुनकी पूर्णिमाको यथाशक्ति सुवर्णके बने हुए तीन पुण्य ब्राह्मणको दान देकर 'शिवकेशवां प्रीयताम्' इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। इसे सौगम्यब्रत कहते हैं। इस ब्रतके करनेसे शिरप्रदेशसे सुगम्य उपत्र होती रहती है और ब्रतीको उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

फलगुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको नमक नहीं खाना चाहिये। जो व्यक्ति एक वर्षतक नियमपूर्वक इस सौभाग्यब्रतको करके अन्तमें सप्तलीक ब्राह्मणकी पूजा कर गृहके साथ गृहस्थके उपयोगी सामग्रियों तथा उत्तम शस्याका दान देकर 'भवानी प्रीयताम्' इस वाक्यको कहता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है। यह उत्तम सौभाग्यको प्रदान

१-मत्सपुण्यमें १०१ वें अध्याय तथा फलगुन, सृष्टिशङ्क, अध्याय २० में भी स्वत्व खेदके साथ इन ब्रतोंका वर्णन है।

करनेवाला है।

संध्या-समय एक वर्षतक मौनब्रत रखकर पारणाकर तथा भूतकुम्भ, दो वस्त्र और घण्टा ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसे सारस्वतब्रत कहते हैं। यह ब्रत विद्या और रूपको देनेवाला है। इस ब्रतको करनेसे सरस्वतीलोककी प्राप्ति होती है।

एक वर्षतक पञ्चमी तिथिके उपवास करनेके बाद सुवर्णकमल और श्रेष्ठ गौ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इसे लक्ष्मीब्रत कहते हैं। यह ब्रत कान्ति एवं सौभाग्यको प्रदान करता है। ब्रतीको जन्म-जन्ममें लक्ष्मीकी प्राप्ति और अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

जो रुची चैत्र माससे आरम्भ कर नियमसे (प्रातःकाल) एक वर्षतक जलधारा पान करे और (भगवान् सूर्यके निमित्त) जलधारा प्रदान करे और वर्षके अन्तमें भूतपूर्ण नवीन कलशका दान करे तो उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे धाराब्रत कहा गया है। यह सभी रोगोंका नाशक, कान्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक तथा सपलीके दर्पको नाश करनेवाला है।

गौरीसहित रुद्र, लक्ष्मीसहित विष्णु और राजीसहित भगवान् सूर्यकी मूर्तिको विधिपूर्वक स्थापित कर उनका पूजन करे, घण्टायुक्त गौ, दोहनी और दक्षिणाके साथ उस मूर्तिको ब्राह्मणको दान दे। इस ब्रतको देवब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे शरीर दिव्य हो जाता है।

शेत चन्दन, शेत पूष्य आदिसे शिवलिङ्ग और विष्णुकी मूर्तिका प्रतिदिन एक वर्षतक उपलेपन करनेके बाद जलसे भरे हुए घटके साथ सुन्दर गाय ब्राह्मणको दान दे। यह शुद्धब्रत है। यह ब्रत बहुत कल्पणाकारी है। इस ब्रतको करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है।

अधूत्य, सूर्यनाशवण और गङ्गाजीवन नित्य प्रणाम-पूर्वक पूजनकर नी वर्षतक एकभूतब्रत करे, अन्तमें सपलीकी ब्राह्मणकी पूजाकर तीन गाय और सुवर्णका वृक्ष ब्राह्मणको दान दे। इस ब्रतको कीर्तिब्रत कहते हैं। यह ब्रत ऐश्वर्य और कीर्तिको देनेवाला है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोद्घाट कमल बनाये, उसके ऊपर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गौरी तथा गणपतिको थीसे ज्ञान कराकर एक वर्षतक प्रतिदिन पूजन करनेके बाद सामवेदका गान करके अन्तमें

आठ अंगुलके सुवर्ण-कमलसहित उत्तम गाय ब्राह्मणको दान दे। इस ब्रतको सामव्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति शिवलोकको प्राप्त करता है।

नवमीको एकभूतब्रत कर अन्तमें कन्याओंको भोजन कराये तथा उन्हें कंचुकी, दो वस्त्र प्रदान करे एवं सुवर्णका सिंहासन भी ब्राह्मणको दे। इस ब्रतको बीरब्रत कहते हैं। जो रुची इस ब्रतको करती है, उसे अनेक जन्मोंतक सुन्दर रूप, अस्त्राण्ड सौभाग्य और सुखकी प्राप्ति होती रहती है। ब्रतीको शिवलोककी प्राप्ति होती है। अमावास्यासे जो एक वर्षपर्यन्त आढ़ करता है और श्रद्धापूर्वक पाँच पर्यावर्ती सवत्सा गौ, पीले वस्त्र तथा जलपूर्ण कलश दान करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्खजोका उद्धारकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यह पितृब्रत कहलाता है।

जो रुची एक वर्षतक ताम्बूलका त्यागकर अन्तमें सुवर्णके तीन ताम्बूल बनाकर उसमें चूनेकी जगह मोती रखकर तथा सुपारीके चूर्णके साथ गणेशको निवेदित कर ब्राह्मणको दान करती है, उसे कभी भी दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती, साथ ही मुखमें उत्तम सुगम्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यह पत्रब्रत है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़—इन चार मासोंमें अथवा एक मास अथवा एक पक्षपर्यन्त जलप्राप्त अयाचितब्रत करना चाहिये। अन्तमें जलपूर्ण कलश, अन्न, वस्त्र, शी, सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दे। इस ब्रतको वारिब्रत कहते हैं। वारिब्रतको करनेवाला व्यक्ति एक कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करनेके बाद पृथ्वीपर चक्रवर्ती रुजा होता है।

जो एक वर्षतक पञ्चमृतसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णुको ज्ञान कराकर अन्तमें गाय, शाहू और सुवर्ण ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत कालतक शिवलोकमें निवास करता है और राजाका पद प्राप्त करता है। यह वृत्तिब्रत कहलाता है। जो व्यक्ति सर्वथा मांसाहारका परित्याग कर अन्तमें सुवर्णका हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। इसे अहिंसाब्रत कहते हैं, यह सम्पूर्ण शान्तियोंके देनेवाला है। जो माघ मासमें प्रातःकाल ज्ञानकर अन्तमें ब्राह्मण-दम्पत्तिकी वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे पूजाकर उनको स्वादिष्ट भोजन कराता है,

वह आरोग्य और सौभाग्यको प्राप्त करता है और कल्पपर्यन्त सूर्यलोकमें निवास करता है। इस ब्रतको सूर्यब्रत कहते हैं।

जो आषाढ़ आदि चार मासोंमें प्रातःकाल खानकर कार्तिक पूर्णिमाके दिन शूतकुम्भ और गौ गृहस्थ ब्राह्मणको दान देकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन करता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यह वैष्णवब्रत कहलाता है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक मधु और घोका त्याग करके अन्तमें धी और गौ ब्राह्मणको दानकर धी और पायस ब्राह्मणोंके भोजन करता है, उसे शील और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस ब्रतको शीलब्रत कहते हैं। जो (नियतकालतक) प्रतिदिन संध्याके समय दीपदान करता है तथा अभक्ष्य पदार्थ एवं तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, सुवर्णके बने चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र दान करता है, वह महान् तेजस्वी होता है। यह कान्ति प्रदान करनेवाल व्रत दीपब्रत कहलाता है।

जो रुची एकभूक्त रहकर एक सप्ताहतक गन्ध, पुण्य, रक्त चन्दन आदिसे भागवती गौरीकी पूजा करती है, साथ ही प्रलेक दिन ब्रह्म-ब्रह्मसे कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथा काली—इन सात नामोंसे एक-एक सुखासिनी रुक्मिणी पुण्य, चन्दन, कुकुम, ताम्बूल तथा नारिकेल एवं अलंकारोंसे पूजनकर 'कुमुदा प्रीयताम्' इस प्रकारसे कहकर विसर्जन करती है तथा आठवें दिन उन्हीं पूजित सुखासिनी खियोंको निमन्त्रित कर उन्हें पट्टस भोजन आदिसे तृप्तकर वस्त्र, माला तथा आधूषण एवं दर्पण आदि प्रदान करती है, साथ ही एक ब्राह्मणकी भी पूजा करती है, उसे सुन्दर देह और सौभाग्य प्राप्त होता है, इसे सप्तसुन्दरकब्रत कहा जाता है। चैत्र मासमें सभी प्रकारके सुगचित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और अन्तमें सुगच्छब्रतसे पूर्ण एक सीपी, दो सफेद वस्त्र अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इस ब्रतको वरुणब्रत कहते हैं। इसको करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वरुणलोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें नमकका त्यागकर अन्तमें सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। यह कान्तिब्रत है। इस ब्रतको करनेसे कीर्ति और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति

होती है। जो तीन पलसे अधिक परिमाणका सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहंकाररूपी तिलकवादान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके धीसे अप्रिको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे एवं तीन दिनतक तिलकती रहे। फिर माला, वस्त्र तथा आधूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनमें तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे तो ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जीवसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम ब्रह्मब्रत है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है।

जो तीन दिनतक दुग्धका आहारकर सुवर्णसहित सवत्सा गौ तथा एक पलसे अधिक सुवर्णसे कल्पवृक्ष बनाकर चावलोंके डेरपर स्थापित कर उत्तम वस्त्र और पुष्पमालाओंसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे कल्पब्रत वर्गमें निवास-स्थान मिलता है, इसे कल्पब्रत कहते हैं। जो अयाचितव्रतकर सभी अलंकारोंसे अलंकृत एक श्रेष्ठ बछियाका व्यतीपात तथा ग्रहण, अयन-संक्रान्तिमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे परलोकगमनमें कोई कष्ट नहीं होता तथा उसका मार्ग सुखदायी होता है, इसे द्वारब्रत कहते हैं।

जो एक वर्षतक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है तथा अन्तमें ब्राह्मणको पयस्विनी गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे सुगचितब्रत कहते हैं। जो हेमन्त और दिशिर ऋतुमें ईधनका दान करता है और अन्तमें धी तथा गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह आरोग्य, शुद्धि, कान्ति तथा ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। यह वैश्वानरब्रत सभी पापोंका नाशक है। जो एकादशीको नक्तब्रतकर चैत्र मासके चित्रानक्षत्रमें सुवर्णका शंख और चक्र ब्राह्मणको दान करता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास कर पृथ्वीपर राजाका पद प्राप्त करता है। यह विष्णुब्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक पञ्चमीको दुग्धाहार कर अन्तमें दो गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। यह देवीब्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक सप्तमीके दिन नक्तब्रत कर अन्तमें पयस्विनी गाय ब्राह्मणको दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। इसे भानुब्रत कहते हैं। जो चतुर्थीको एक वर्षतक रात्रिमें भोजन करता है और अन्तमें आठ गौएं अग्निहोत्री ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी

तरहके विष दूर हो जाते हैं। इसे विनायकब्रत कहते हैं। जो चातुर्मास्यमें फलोंका स्वाग कर कर्त्तिकमें सुवर्णका फल, दो गी, दो खेत वस्त्र और घीसे पूर्ण घट दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसे फलब्रत कहते हैं।

एक वर्षतक सप्तमीको उपवास कर अन्तमें सुवर्णका कमल बनाकर और कांस्यकी दोहनीसहित सवत्सा गौ पौराणिक ब्राह्मणको दान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह सौरब्रत है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अन्तमें यथाशक्ति वस्त्रसहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणोंको दान करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह गोविन्दब्रत भगवान् गोविन्दके पदको प्राप्त करनेवाला है।

कर्तिक पूर्णिमाको वृषोत्सर्वाकर गतिमें भोजन करना चाहिये। इस ब्रतको वृषब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे गोलोककी प्राप्ति होती है। कृच्छ्र-प्रायश्चित्तके अन्तमें गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये। यह प्रायापत्यब्रत है। इससे पापशुद्धि होती है। जो एक वर्षतक चतुर्दशीको नत्तब्रत करके अन्तमें दो गायोंका दान करता है, वह शैव-पदको प्राप्त करता है। यह अप्याकब्रत है। सात गति उपवास कर ब्राह्मणको चृतपूर्ण घटका दान करे। इसे ब्रह्मब्रत कहते हैं, इससे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कर्तिक मासके शुक्र पक्षकी चतुर्दशीको उपवास कर गतिके समय पञ्चगव्य-पान करे अर्थात् कपिला गौका मूळ, कृष्णा गौका गोबर, खेत गौका दूध, लाल गौका दही तथा कबरी गौका घी लेकर मन्त्रोंसे कुशोदक मिलाकर भ्राशन करे। दूसरे दिन प्रातः खानकर देवता और पितरोंका तर्पण आदि करनेके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इसे ब्रह्मकृष्णब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे बाल्य, यौवन और बुद्धियोंमें किये गये सभी प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है। जो एक वर्षतक तृतीयाको विना पक्षाये अन्न, फल इत्यादिका भोजन करता है और अन्तमें सुन्दर गौ ब्राह्मणको दानमें देता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। इसे ब्रह्मब्रत कहते हैं।

एक वर्षतक ताम्बूल आदि मुखवासके पदार्थोंका स्वाग-कर अन्तमें ब्राह्मणको गायका दान करे। यह सुमुखब्रत है।

इससे कुबेरलोककी प्राप्ति होती है। यत्रिभर जलमें निवास कर प्रातःकाल जो गोदान करता है, उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। यह ब्रह्मब्रत कहलाता है। जो चान्द्रायणब्रत करनेके बाद सुवर्णका चन्द्रमा बनाकर ब्राह्मणको दान करता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह चन्द्रब्रत है।

ज्येष्ठ मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको पञ्चामि-सेवन करके सुवर्णसहित गौका ब्राह्मणको दान करे, यह रुद्रब्रत है। इससे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। जो एक वर्षतक तृतीयाको शिवालयमें उपलेपन करनेके बाद गोदान करता है वह सर्वगलोक प्राप्त करता है। यह भवानीब्रत है।

जो माघ मासकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें आर्द्र वस्त्रोंको धारण किये रहता है और उपवास कर ब्राह्मणको गौका दान करता है, वह कल्पभरतक स्वर्णमें निवास करता है। यह तापनब्रत कहलाता है। जो तीन गति उपवास कर फल्गुनकी पूर्णिमाको गृहदान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह धामब्रत है। पूर्णिमासीको उपवासकर तीनों संध्याओंमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। इस ब्रतको इन्द्रब्रत कहते हैं। इस ब्रतके प्रभावसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो शुक्र पक्षकी द्वितीयाको नमकसे भरे हुए कंसेके पात्रके साथ वस्त्र और दक्षिणा एक वर्षतक ब्राह्मणको देता है और अन्तमें शिवमन्दिरमें गोदान करता है, वह कल्पभरतक शिवलोकमें निवास करनेके बाद राजाओंका राजा होता है। इसे सोमब्रत कहते हैं। एक वर्षतक प्रत्येक प्रतिपदाको एक समय भोजन करनेके बाद कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। यह आप्नेब्रत है। इसके करनेसे अग्निलोककी प्राप्ति होती है।

जो माघ मासकी एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमीको एकभुक्त रहता है तथा वस्त्र, जूता, कंबल, चर्म आदि शीत निवारण करनेवाली वस्तुओंका दान करता है तथा चैत्रमें इन्हीं तिथियोंमें छाला, पंखा आदि उष्णनिवारक पदार्थोंका दान करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। यह सौख्यब्रत है। एक वर्षतक दशमी तिथिको एकभुक्तब्रत करके अन्तमें सुवर्णकी रुपी-रूप दस दिशाओंकी मूर्ति तिलोंकी राशिपर स्थापितकर गायसहित ब्राह्मणको दान करनेसे महापातक दूर हो जाते हैं। यह विश्वब्रत है। इसे करनेसे

ब्रह्माण्डको आधिपत्य मिलता है। जो शुक्र पक्षकी सप्तमी तिथिको नक्षत्रत करके सूर्यनाशयणका पूजनकर सप्तधान्य और लघ्न ब्राह्मणको दान देता है, वह अपने सात कुलोंका उद्घार करता है। यह धान्यब्रत है। एक मास उपवासकर जो ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इसे भीमब्रत कहते हैं।

जो तीस पलसे अधिक पर्वत और समुद्रेसहित स्वर्णकी पृथ्वी बनाकर तिलोंकी गशिपर रखकर कुन्तमी ब्राह्मणको दान करता है तथा दूध पीकर रहता है, वह सात कल्पतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह महीब्रत कहलाता है।

माघ अथवा चैत्र मासके शुक्र पक्षकी तृतीयाको गुड़का भक्षण करे तथा सभी उपस्कर्तोंसहित गुडधेनु ब्राह्मणको दान दे, उसे उमाब्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला गौरीलोकमें निवास करता है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अप्रका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थके साथ जलकर भड़ा दान करता है, वह कल्पपर्वत शिवलोकमें निवास करता है। इसे प्राप्तिब्रत कहते हैं। जो कार्तिकसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी तृतीयाको रात्रिमें गोमूर्चमें पकायी गयी लघसीका प्राशन करता है, वह गौरीलोकमें एक कल्पतक निवास करता है, अनन्तर पृथ्वीपर गुजा होता है। यह महान् कल्पाणकारी रुद्रब्रत है। जो पुरुष कन्यादान करता है अथवा करता है, वह अपने इष्टोंसे कुलोंसहित ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। कन्यादानसे बढ़कर कोई भी दान उत्तम नहीं है। इस दानको करनेसे अक्षय स्वर्णकी प्राप्ति होती है। यह कन्यादानब्रत है। तिलपिण्डका हाथी बनाकर दो लाल वस्त्र, अंकुश, चामर, माल आदिसे उसको सजाकर तथा ताप्रपात्रमें स्थापित करनेके बाद वस्त्राभूषण आदिसे पलीसहित ब्राह्मणका पूजन करके गलेसक जलमें स्थित होकर वह हाथी उनको दान कर दे। यह कान्तारात्रत है। इस व्रतको करनेसे जंगल आदिसे सम्बन्धित समस्त संकट और पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जो ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर 'प्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रम्' आदि मन्त्रोंसे इन्द्रदेवताका व्रत-पूजन तथा हवन करते हैं, वे प्रलयपर्वत इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। इसे पुरन्दरब्रत या इन्द्रब्रत कहते हैं। जो पश्चानीको दूधका आहार करके सुवर्णकी

नाग-प्रतिमा ब्राह्मणको देता है, उसे कभी सर्पका भय नहीं रहता। शुक्र पक्षकी अष्टमीको उपवास कर दो श्वेत वस्त्र और घटासे भूषित बैल ब्राह्मणको दान दे। इसे वृषद्वत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है तथा पुनः राजाका पद प्राप्त करता है। उत्तरायणके दिन एक सेर धीसे सूर्यनाशयणको खान करकर उत्तम घोड़ी ब्राह्मणको दे। इस व्रतको राजीव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाले व्यक्तिको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह पुत्र, भाई, स्त्री आदिसहित सूर्यलोकमें निवास करता है। जो नवमीको नक्षत्रत कर भगवती विष्णवासिनीकी पूजाकर पिञ्जरके साथ सुवर्णका शुक्र ब्राह्मणको प्रदान करता है, उसे उत्तम वाणी और अन्तमें अग्निलोककी प्राप्ति होती है। इसे आग्रेयब्रत कहते हैं।

विष्णुम् आदि सत्ताईस योगोंमें नक्षत्रत करके क्रमसे धी, तेल, फल, ईस, जौ, गेहूं, चना, सेम, शालि-चावल, नमक, दही, दूध, वस्त्र, सुवर्ण, कंबल, गाय, बैल, छतरी, जूता, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोहा, ताप्र, कांस्य और चाँदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यह योगब्रत है। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसको कभी अपने इष्टसे वियोग नहीं होता। जो कार्तिकी पूर्णिमासे आरम्भ कर आश्विनकी पूर्णिमातक बारह पूर्णिमाओंमें क्रमसे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृक्षिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह राशियोंकी स्वर्ण-प्रतिमाओंको वस्त्र, माल्य आदिसे अलंकृत एवं पूजितकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान करता है, उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंका शमन हो जाता है एवं सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे सोमलोककी प्राप्ति होती है। यह राशिब्रत कहलाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! मैंने इन विविध व्रतोंको बतलाया है, इन व्रतोंकी विधि श्रवण करने या पढ़ने-मात्रसे ही पातक, महापातक और उपरातक नष्ट हो जाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इन व्रतोंको भक्तिपूर्वक करेगा, उसे धन, सौख्य, संतान, स्वर्ण आदि कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा।

(अध्याय १२१)

माघ-स्नान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण थोले—महाराज ! कलियुगमें मनुष्योंको स्नान-कर्ममें शिथिलता रहती है, फिर भी माघ-स्नानका विशेष फल होनेसे इसकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। जिसके हाथ, पाँव, बाणी, मन अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे समन्वित हैं, उन्हें ही तीर्थ, स्नान-दान आदि पुण्य कर्मोंका शास्त्रमें निर्दिष्ट फल प्राप्त होता है। परंतु श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, संशयात्मा और हेतुवादी (कुतार्किक) इन पाँच व्यक्तियोंको शास्त्रोक्त तीर्थ-स्नान आदिका फल नहीं मिलता^१।

प्रयाग, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थमें अथवा चाहे जिस स्थानपर माघ-स्नान करना हो तो प्रातःकाल ही स्नान करना चाहिये। माघ मासमें प्रातः सूर्योदयसे पूर्व स्नान करनेसे सभी महापातक दूर हो जाते हैं और प्राजापत्य-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। उच्च जलसे स्नान, विना जानके मन्त्रका जप, श्रोत्रिय ब्राह्मणके विना श्राद्ध और सायंकालके समय भोजन व्यर्थ होता है। वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य—ये चार प्रकारके स्नान होते हैं। गायोंके रजसे वायव्य, मन्त्रोंसे ब्राह्म, समुद्र, नदी, तालाब इत्यादिके जलसे वारुण तथा वर्षाके जलसे स्नान करना दिव्य स्नान कहलाता है। इनमें वारुण स्नान विशिष्ट स्नान है। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थ, संन्यासी और बालक, तरुण, वृद्ध, खी तथा नपुंसक आदि सभी माघ मासमें तीर्थमें स्नान करनेसे उत्तम फल प्राप्त करते हैं। ब्राह्मण, श्रत्रिय और वैद्य मन्त्रपूर्वक स्नान करे और खी तथा शुद्धोंको मन्त्रहीन स्नान करना चाहिये। माघ मासमें जलका यह कहना है कि जो सूर्योदय होते ही मुश्कें स्नान करता है, उसके ब्रह्महत्या, सुरापान आदि बड़े-से-बड़े पाप भी हम तत्काल छोकर उसे सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र कर डालते हैं^२।

माघ-स्नानके ब्रत करनेवाले ब्रतीको चाहिये कि वह संन्यासीकी भाँति संयम-नियमसे रहे, दुष्टोंका साथ नहीं करे। इस प्रकारके नियमोंका दृढ़तासे पालन करनेसे सूर्य-चन्द्रके समान उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

पौष-फलत्युनके मध्य मकरके सूर्यमें तीस दिन प्रातः माघ-स्नान करना चाहिये। ये तीस दिन विशेष पुण्यप्रद हैं। माघके प्रथम दिन ही संकल्पपूर्वक माघ-स्नानका नियम ग्रहण करना चाहिये। स्नान करने जाते समय ब्रतीको विना वस्त्र ओढ़े जानेसे जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे उसे यात्रामें पग-पगपर अक्षमेघ यज्ञका फल प्राप्त होता है। तीर्थमें जाकर स्नानकर मस्तकपर मिठ्ठी लगाकर सूर्यको अर्घ्य देकर पितरोंका तर्पण करे। जलसे बाहर निकलकर इष्टदेवको प्रणामकर शंख-चक्रधारी पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमाधवका पूजन करे। अपनी सामर्थ्यकी अनुसार यदि हो सके तो प्रतिदिन हवन करे, एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य-ब्रत धारण करे और भूमिपर शयन करे। असमर्थ होनेपर जितना नियमका योजन हो सके उतना ही करे, परंतु प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये। तिलक का उबटन, तिलमिश्रित जलसे स्नान, तिलोंसे पितृ-तर्पण, तिलका हवन, तिलका दान और तिलसे बनी हुई सामग्रीका भोजन करनेसे किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता^३। तीर्थमें शीतके निवारण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिये। तैल और अैवलेका दान करना चाहिये। इस प्रकार एक माहतक स्नानकर अन्नमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर ब्राह्मणका पूजन करे और कंबल, मृगचर्म, वस्त्र, रक्त तथा अनेक प्रकारके पहननेवाले कपड़े, रजाई, जूता तथा जो भी शीतनिवारक वस्त्र हैं, उनका दान कर 'माधवः प्रीयताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। इस प्रकार माघ मासमें स्नान करनेवालेके अगम्यागमन, सुर्वार्णकी चोरी आदि गुप्त अथवा प्रकट जितने भी पातक हैं, सभी नष्ट

१-यस्य हस्तौ च पादौ च वाह्मनस्तु सुसंपत्तम्। विद्या तपष्ट कीर्तिः स तीर्थफलमनुभुते॥

अप्रह्यानः पवाना नास्तिकोऽच्छिक्षसंशयः। हेतुनिष्ठाप्तं पञ्चाते न तीर्थफलभागिनः॥ (उत्तरपर्व १२२। ३-४)

२-माघमासे रुद्धवायः किञ्चिदभ्युदिते रहे। ब्रह्मां या सुरां या कं कं तं तं पुनीमहे॥ (उत्तरपर्व १२२। १५)

३-तिलस्नायी तिलोदूर्ती तिलभोत्ता तिलोदृष्टी। तिलहेता च दाता च पूर्णिले नवसीदृष्टि॥ (उत्तरपर्व १२२। २७)

हो जाते हैं। माघ-ऋग्यी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामह, यृद्धमातामह आदि इकीस कुलोंसहित समस्त पितरों आदिका उद्धार कर और सभी आनन्दोंको प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको प्राप्त करता है । (अध्याय १२२)

स्थान और तर्पण-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—एजन् । स्थानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भावकी ही शुद्ध होती है, अतः शरीरकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्थान करनेका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्थान करना चाहिये। (किसी जलाशय या नदीका स्थान सुलभ हो तो और उत्तम है।) मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूल मन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूल मन्त्र है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निष्ठाकृत मन्त्रोद्घारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—'गङ्गे ! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता है, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि ! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक मेरे द्वारा किये गये समस्त पापोंसे मेरा प्राण करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे बायुदेवताने (गिनकर) कहा है। माता जाह्नवि ! वे सब-के-सब तीर्थ तुम्हारे जलमें स्थित हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगङ्गा, विश्वकर्मा, शिवा, अमृता, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोक-प्रसादिनी, क्षेत्रा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं । जहाँ स्थानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती है।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें

दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तकपर ढाले, फिर विधिपूर्वक मृतिकङ्को अभिमन्त्रित कर अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अस्त्रकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्धरे ।

मृतिके हर मे सर्वं यमया दुष्कृतं कृतम् ॥

द्युतासि वराहेण कृष्णेन शतवाहना ।

नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुब्रते ॥

(उत्तरपर्व १२३ । १२-१३)

'वसुन्धरे ! तुम्हारे कपर अक्ष और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृतिके ! मैंने जो द्वारे कर्म किये हों, उन सबोंको दूर कर दो। देवि ! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंके समस्त प्राणियोंमें प्राण संचार करनेवाली हो। सुब्रते ! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार मृतिका लगाकर पुः स्थान करे। फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चाहर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे। तत्पश्चात् 'देवता, यक्ष, नाग, गच्छर्व, श्रेष्ठ अप्सराओं, क्लूर सर्प, गरुड पक्षी, वृक्ष, जम्बक आदि असुर, विद्याधर, मेष, आकाशवाही जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ'—यह कहकर उन सबको जलाञ्जलि दें । देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको

१-माघ-स्थान-माहात्म्यके नामसे विधित्र पुण्योंके कई स्थानव अन्य हैं। जिनका सारभूत अंश इस अध्यायमें उद्धृत है।

२-विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता । पाहि नस्तेनसस्तस्मादप्यमरणनिकात् ॥

तिसः कोटिहेऽर्थकोटी च तीर्थानां वायुद्धवीत् । दिवि भूम्यतरिषो च तीनि ते सत्ति जाह्नवि ॥

नन्दिनीतेव ते नाम देवेषु नलिनीति च । क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकर्मा शिवामृता ॥

विद्याधर सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । क्षेत्रा तथा जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥ (उत्तरपर्व १२३ । ५—८)

३-देवा यक्षासत्या नागा गच्छर्वापरसां गणा । क्लूरः सर्पः सुपर्णाश तत्ये जम्बकवद्यः ॥

बायें कंधेपर ढाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। 'सनक, सनन्दन, सनातन, कशिल, आसुरि, बोदु और पञ्चशिख'—ये सभी मेरे लिये जलसे सदा तृप्त हो।' ऐसी भावना करके जल दे। इसी प्रकार मरीचि, अक्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रवेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखकर बायें घुटनेको पृथग्गीपर टेककर बैठे, फिर अग्रिष्ठात्, बर्हिषद्, हविष्मान्, ऊर्ध्वप, सुकवली, भौम, सोमप तथा आज्यप-संझक पितरोका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्र भावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका नाम-गोत्रका उत्तारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निष्ठाकृत मन्त्रका उत्तारण करे—

येऽवान्यवा वान्यवा वा येऽन्यजन्मनि वान्यवा: ।

ते तृप्तिमखिला यानु यश्चास्मतोऽभिवाङ्गति ॥

(उत्तरपर्व १२३ । २५)

जो लोग मेरे वान्यव न हों, जो मेरे वान्यव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे वान्यव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके सिया और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलवधी अभिलाला रखते हों, वे भी तृप्त-लाभ करे।' (ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल निराये।)

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन कर अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यत्रपूर्वक सूर्यदिवके नामोंका उत्तारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्तचन्दनमिश्रित

जलसे अर्थ्य दे। अर्थदानका मन्त्र इस प्रकार है—
नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुसस्ताय वै ॥
सहस्ररथमये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ।
नमस्ते सर्ववापुषे नमस्ते सर्वशक्तये ॥
जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ।
पद्माभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे ॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत ।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानासि सर्वदा ॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते ।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १२३ । २७—३१)

'हे भगवान् सूर्य ! आप विश्वरूप और भगवान् विष्णुके सखा हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् भगवन् ! सर्वरूपधारी आप परमेश्वरको बार-बार नमस्कार हैं। दिव्य चन्दनसे भूषित और संसारके स्वामी भगवन् ! आपको नमस्कार है। कुण्डल और अङ्गद आदि आधूषण धारण करनेवाले पद्माभ ! आपको नमस्कार है। भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोकोंके ईशा और सभी देवोंके द्वारा बन्दित हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सब पाप-पुण्यको भलीभांति जानते हैं। सत्यदेव ! आपको नमस्कार है। सर्वदेव ! आपको नमस्कार है। दिवाकर ! आपको नमस्कार है। प्रभाकर ! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार सूर्यदिवको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गां और सुवर्णका स्पर्श कर अपने घर जाय और वहाँ भगवान्की प्रतिमाका पूजन करे। (अध्याय १२३)

रुद्र-स्नानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब आप सभी दोषोंको शान्त करनेवाले रुद्र-स्नानके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! इस सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्यके पूछनेपर देवसेनापति भगवान् स्कन्दने जो

बताया था, उसे आप सुनें। जो मृतवत्सा (जिसके लड़के अल्प अवस्थामें मर जाते हों), वन्या, दुर्भगा, संतानहीन या केवल कन्या जनती हो, उस लोकोंको चाहिये कि वह रुद्र-स्नान करे। अष्टमी, चतुर्दशी अथवा रविवारके दिन नदीके तटपर या

विद्याधर	जलधारास्तैवाकाशगामिनः । निष्ठाधरात् ये जीवः पापकर्मस्तात् ये ॥
१-सनकः सनन्दनहीन	तैवामायानायैतद् दीपो लोके मया । । (उत्तरपर्व १२३ । १५—१७)
तृतीयका सनातनः । कपिलसुरिहीव सर्वे ते तृष्णिमहान् यदेवास्मृता सदा । (उत्तरपर्व १२३ । १८—१९)	वोदुः पञ्चशिखस्तथा ॥

महाननियोक्ते संगममें, दिवालयमें, गोषुमें अथवा अपने घरमें सुरोन्य ब्राह्मणद्वारा स्नानविधिका परिज्ञानकर स्नान करे। वह गोबरद्वारा उपलिप्त स्थानमें एक उत्तम मण्डप बनाकर उसके मध्यमें अष्टदल कमल बनाये। उसके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर भगवान् महादेवकी, उनके बाम तथा दक्षिण भागमें क्रमशः पार्वती एवं विनायककी और कमलके अष्टदलोंमें इन्द्रादि दिक्षियालोकी स्थापना करे। तदनन्तर गन्धादि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। मण्डपके चारों कोणोंमें कलश स्थापित करे। चारों दिशाओंमें भूत-बलि भी दे। मण्डपके अग्निकोणमें कुण्ड बनाकर नमक, सर्पप, धी और मधुसे 'मा नस्तोके तनये' (यजु० १६। १६) इत्यादि वैदिक मन्त्रसे हवन करे। आचार्य, ब्रह्मा एवं प्रह्लिदाके साथ जापक्रम भी वरण करे। एकादश रुद्रपाठ भी कराये। इस प्रकार दूसरे मण्डपका निर्माण कर उस ब्रतकर्त्ता रुद्रोंको मण्डपमें बैठाकर रुद्रपूजक आचार्य

उसे स्नान कराये। अर्क-पत्रके दोनोंमें जल लेकर रुद्रकादिशिनीका पाठ कर उस अधिमन्त्रित जलसे रुद्रोंका अभिषेक करे। अनन्तर सप्तमूर्तिकामित्रित जल, रुद्र-कलशोंके जल एवं इन्द्रादि दिक्षियालोके पूजित कलशोंके अधिमन्त्रित जलसे उसे स्नान कराये। इस प्रकार रुद्र-स्नान-विधि पूर्ण हो जानेपर स्वर्णमयी धेनु, प्रत्यक्ष धेनु तथा अन्य सामग्री आचार्यको दान करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्र, दक्षिणा देकर क्षमा-याचना करे। जो रुद्र इस विधिसे स्नान करती है, वह सौभाग्य-सुख प्राप्त करती है और पुत्रता होती है। उसके शरीरमें रहनेवाले सभी दोष ब्राह्मणोंकी आशासे, रुद्र-स्नान करनेसे दूर हो जाते हैं। पुत्र, लक्ष्मी तथा सुखकी इच्छा करनेवाली नारीको यह व्रत अवश्य करना चाहिये, इससे वह जीवितवत्सा हो जाती है।

(अध्याय १२४)

—४५४—

ग्रहण-स्नानका माहात्म्य और विधान^१

युधिष्ठिरने कहा — द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्णवेदविद्) भगवन्। सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जो विधि है, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले — राजन्! जिस पुरुषकी गशिपर ग्रहणका प्रावन (लगना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औपचार्यसहित स्नानका जो विधान है, उसे मैं बताला रहा हूँ। ऐसे मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर चार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध-माल्य आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औपचार्य आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्राहित चार कलशोंकी, उनमें सप्तमूर्तिकी भावना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमूर्तिका — हाथीसार, घुडसाल, वल्मीकि (ब्रह्मोट-दियाड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारके मिही लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगच्छ, मोती, गोरोचना, कमल, शङ्ख, पञ्चरत्न, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, राजदन्त (एक औपचार्य-विशेष), कुमुद (कुई) खस, गुण्डुल — यह सब डालकर उन

कलशोंपर देवताओंका आवाहन इस प्रकार करे — 'सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जलप्रद तीर्थ यजमानके पापोंको नष्ट करनेके लिये यहाँ पधारे।' इसके बाद प्रार्थना करे — 'जो देवताओंके स्नामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे वज्रधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीड़ाको दूर करे। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात जिह्वाओंसे युक्त और अतुल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न हुई मेरी पीड़ाका विनाश करे। जो समस्त प्राणियोंके कर्मकि साक्षी हैं तथा महिय जिनका बाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उद्धूत हुई मेरी पीड़ाको मिटायें। जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयाक्षिके सदृश भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्झृत देव मेरी ग्रहणजन्य पीड़ाको दूर करे। जो नागपाणी धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका बाहन है, वे जलाधीश्वर साक्षात् वरुणदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीड़ाको नष्ट करे। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय बाहन है, वे वायुदेव मेरी

१—यह अध्याय मल्लयुक्तके ६८ वें अध्यायमें इसी प्रकार भास है, लेकिन भविष्यपुराणक पाठ कुछ त्रुटिपूर्ण एवं अशुद्ध है, अतः उसे मूल करनेके लिये मल्लपुराणकी सहायता ली गयी है।

चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीड़ाका विनाश करें।

'जो (नव) निधियोकि^१ स्वामी तथा खड़ाग, विशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका लल्लट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या विशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीड़ाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जड़म प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्रजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर ब्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अधिष्ठेत करे। फिर शेष पृथ्वीकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमलदलपर अङ्कित करे फिर इत्यसुक्त उन कलशोंको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो

अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माझलिक कर्तव्य कर गोदान करे और उस (मनवद्वारा अङ्कित) पट्टको रानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे।

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्थान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीड़ा होती है और न उसके वस्तुजननोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उचारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पदाराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्थानकी विधि) को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

(अध्याय १२५)

मरणासन्न (मृत्युके पूर्व) प्राणीके कर्तव्य तथा ध्यानके चतुर्विधि भेद

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! गृहस्थ व्यक्तिको अपने अन्त समयमें क्या करना चाहिये^२? कृपाकर इस विधिको आप बतायें। मुझे यह सुननेकी बहुत ही अभिलाषा है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! जब मनुष्यको यह ज्ञात हो जाय कि उसका अन्त समीप आ गया है तो उसे गरुडध्वज भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। स्थान करके पवित्र हो शुद्ध शेष वस्त्र धारण कर अनेक प्रकारके पृथ्वीदि उपचारोंसे नागर्यणकी पूजा एवं सोत्रोद्वारा उनकी स्फुरित करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदिका दान करे और वस्त्र, पुत्र, मित्र, रसी, क्षेत्र, धन, धान्य तथा पशु आदिसे वित्तको हटाकर ममत्वका परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन अपने और पराये लोगोंके उपकार और

अपकारके विषयमें विचार न करे अर्थात् शान्त हो जाय। प्रयत्नपूर्वक सभी शुभ एवं अशुभ कर्मोंका परित्याग कर इन श्लोकोंका स्मरण करे—'मैंने समस्त भोगों एवं मित्रोंका परित्याग कर दिया, भोजन भी छोड़ दिया तथा अनुलेपन, माला, आधूषण, गीत, दान, आसन, हवन आदि क्रियाएँ, पदार्थ, नित्य-नैमित्तिक और काष्य सभी क्रियाओंका उत्सर्जन कर दिया है। आदृधर्मोंका भी मैंने परित्याग कर दिया है, आश्रमधर्म और वर्णधर्म भी मैंने छोड़ दिये हैं। जबतक मेरे हाथ-पैर चल रहे हैं, तबतक मैं स्वयं अपना कर्तव्य कर लूँगा, मुझसे सभी निर्भय रहें, कोई भी पाप कर्म न करे। आकाश, जल, पृथ्वी, विवर, बिल, पर्वत, पत्थरोंके मध्य, धान्यादि फसलों, वस्त्र, शयन तथा आसनों आदिमें जो कोई प्राणी

१-पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ ही प्रकट होनेवाली व्यत किलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कछुआ, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्ष—ये नौ निधियाण हैं।

२-इसी तरहकी बातें गहडपुराण, भागवत १। १९। ३७-३८ आदिमें महाराज परीक्षितद्वारा महर्षि शुक्रदेवजी आदिसे पूछी गयी हैं तथा मनुष्यके जीवनक्षय कब अन्त हो जाय, यह नहीं कहा जा सकता। अतः सदा ही ध्यानपूर्वक भगवान्का स्मरण-भजन करते रहना चाहिये, यही सबका साधन है।

अवस्थित हैं, वे मुझसे निर्भय होकर सुखी रहें। जगद्रु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेह कोई बधु नहीं। मेरे नीचे-ऊपर, दाहिने-बायि, मस्तक, हृदय, बाहुओं, नेत्रों तथा कानोंमें मित्र-रूपमें भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं।'

इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण कर निरन्तर वासुदेवके नामका कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अति समीप आ जाय, तब दक्षिणाग्र कुशा विछाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे तथा जगत्पति भगवान् विष्णुका इस प्रकार चिन्तन करे—

विष्णुं जिष्णुं हर्षीकेशं केशवं मधुसूदनम् ।
नारायणं नरं शौरि वासुदेवं जनार्दनम् ॥
बारहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥
पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम् ।
सर्वेश्वरेशं शुद्धमननं विश्वरूपिण्यम् ॥
चक्रिणि गदिनं शान्ते शहिनं गरुडाख्यजम् ।
किरीटकैसुभधरं प्रणाम्यहमव्ययम् ॥
अहमस्मि जगन्नाथं मयि वासं कुरु द्रुतम् ।
आवयोरन्तरं मासु समीराकाशयोरित्व ॥
अयं विष्णुर्यं शौरिर्यं कृष्णः पुरो मम ।
नीलेत्पलदलश्यामः पश्यप्रायतेक्षणः ॥
एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमयोक्षजम् ।
इत्यं जपेदेकमनाः स्वरन् सर्वेश्वरं हरिम् ॥

(उत्तरपर्व १२६ । १९—२५)

'भगवान् विष्णु, जिष्णु, हर्षीकेश, केशव, मधुसूदन, नारायण, नर, शौरि, वासुदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञपुरुष, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिंह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश, दामोदर, अधोक्षज,

सर्वेश्वरेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शान्त, शंखी, गरुडाख्यज, किरीटकैसुभधर तथा अव्यय परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जगन्नाथ ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें। बायु एवं आकाशकी तरह मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे। मैं नीले कमलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन भगवान् विष्णु अथवा शौरि अथवा भगवान् श्रीकृष्ण आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें।'

इन मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनका दर्शन करे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रका निरन्तर जप करता रहे। जो व्यक्ति प्रसन्नमुख, शंख, चक्र, गदा तथा पश्च धारण किये हुए, केगूर, कट्टक, कुण्डल, श्रीवत्स, पीताम्बर आदिसे विभूषित, नवीन मेघके समान श्यामस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान कर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो भगवान् अच्युतमें लीन हो जाता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन् ! अन्त समयकी जो यह विधि आपने बतायी, वह सास्थवित रहनेपर ही सम्भव है, परंतु अन्तसमयमें तरुण और नीरोगी पुरुषोंकी भी चित्तवृत्ति मोहग्रस्त हो जाती है, वृद्ध और रोगियोंकी तो बात ही क्या है। अतिवृद्ध और रोगग्रस्त व्यक्तिके लिये कुशाके आसनपर ध्यान करना तो असम्भव ही है। इसलिये प्रपो ! दूसरा भी कोई सुगम उपाय बतानेका कष्ट करे, जिससे साधन निष्कल न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यदि और कुछ करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राणका स्पाग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावका स्मरण

१-परित्यजाम्यह	भोगास्त्वजामि	सुखोऽप्यित्वान् । भोगं	हि	मयोस्तुष्टुमुस्तुष्टुमुलेष्यम् ॥
साध्यादिकं	गेयं	दानमासनमेव च । होमादयः	ये	ये च नित्यक्रमागतः ॥
नैपितिक्षस्या	वश्याः	श्राद्धर्माद्योन्मुक्ताः । त्वत्तत्त्वात्रमिक्ष	स्थैर्यं	वर्णधर्मसाधायोन्मुक्ताः ॥
पद्मों कर्माभ्यां	विहरन्	कुर्मणः कर्म चोदहन् । न पापं कर्त्यचित्यात्मा	प्राप्तिः	सन्तु निर्भयाः ॥
नभसि प्रीणिनो	ये च	ये जले ये च भूलेन् । क्षितीर्विवरणं	ये च	पापाणसम्पुटे ॥
धान्यादिषु	च	शयनेष्वाहेन्यु च । ते स्वयं तु विषुध्यन्ते दत्तं तेष्योऽभयं मयः ॥	ये च	
न मेऽस्ति व्याप्तयः	कर्मादिष्टु	मुक्ता जगद्रुम् । मित्रपक्षे च मे विष्णुरप्यहोर्व तथा पुनः ॥	ये च	
पार्श्वो मूर्धं	हृदये	बाहुभ्या चैव चक्षुः । श्रोत्रादिषु	सर्वेषु	मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥ (उत्तरपर्व १२६ । ९—११)

कर प्राण त्यागता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है। अतः सब प्रकरणसे निवृत्त होकर निरन्तर वासुदेवका चिन्तन करना चाहिये।

गणन्। अब आप भगवान्के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपोंको सुनें, जिनमें महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझसे कहा था—गच्छ, उपभोग, शयन, भोजन, बाहन, मणि, रूपी, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अल्पतम भोग रहता है तो यह गणजनित 'आद्य' ध्यान है।

यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी द्वेषपूर्ण वृत्ति हो और दया न आये तो इसे ही क्रोधजनित 'रौद्र' ध्यान कहा गया है। वेदाथकि चिन्तन,

इन्द्रियोंके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि ही धर्मपूर्ण सात्त्विक ('धर्म') ध्यान है। समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट किसीकी भी चिन्ता नहीं करना और आत्मस्थिर होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करना, परमात्मानिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्ल'-ध्यानका स्वरूप है। 'आद्य' ध्यानसे तिर्यक्-योनि तथा अधोगतिकी प्राप्ति होती है, 'रौद्र' ध्यानसे नरक प्राप्त होता है। 'धर्म' (सात्त्विक) ध्यानसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और 'शुक्ल'-ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे कल्याणकारी 'शुक्ल' ध्यानमें ही मन-चित्त सदा लगा रहे। (अध्याय १२६)

इष्टापूर्तीकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—गणन्। विधिपूर्वक वापी, कूप, तडाग, बावली, वृक्षोद्यान तथा देवमन्दिर आदिका निर्माण करनेवाले तथा इन कर्मोंमें सहयोगी—कर्मकार शिल्पी, सूत्रधार आदि सभी पुण्यकर्मा पुरुष अपने इष्टापूर्तीधर्मके प्रभावसे सूर्य एवं चन्द्रमाकी प्रभाके समान कर्मान्तमान् विमानमें बैठकर दिव्यलोकको प्राप्त करते हैं। जलवशय आदिकी खुटाईके समय जो जीव मर जाते हैं, उन्हें भी उत्तम गति प्राप्त होती है। गायके शरीरमें जितने भी रोमकूप हैं, उतने दिव्य वर्षतक तडाग आदिका निर्माण करनेवाला स्वर्गमें निवास करता है। यदि उसके पितर दुर्गतिको प्राप्त हुए हों तो उनका भी वह उद्धार कर देता है। पितृगण यह गाथा गाते हैं कि देखो ! हमारे कुलमें एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने जलाशयका निर्माणकर प्रतिष्ठा की। जिस तालबके जलको पीकर गौणे संतुष्ट हो जाती है, उस तालब बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है। तडाग, वापी, देवालय और सघन छायाचाले वृक्ष—ये चारों इस संसारसे उद्धार करते हैं।

जिस प्रकार पुत्रके देखनेसे माता-पिताके स्वरूपका ज्ञान होता है, उसी प्रकार जलवशय देखने और जल पीनेसे उसके कर्त्तिके शुभाशुभका ज्ञान होता है। इसलिये न्यायसे घनका उपार्जनकर तडाग आदि बनवाना चाहिये। धूप और गर्मीसे व्याकुल धर्मिक यदि तडागादिके समीप जलका पान करे और वृक्षोंकी घनी छायामें ढंडी हवाका सेवन करता हुआ विश्राम करे तो तडागादिकी प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति अपने मातृकुल और पितृकुलका उद्धार कर स्वयं भी सुख प्राप्त करता है। इष्टापूर्तीकर्म करनेवाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। इस लोकमें जो तडागादि बनवाता है, उसीका जन्म सफल है और उसीकी माता पुत्रिणी कहलाती है। वही अजर है, वही अमर है। जबतक तडाग आदि स्थित है और उसकी निर्मल कीर्तिका प्रचार-प्रसार होता रहता है, तबतक वह व्यक्ति स्वर्गवासका सुख प्राप्त करता है। जो व्यक्ति हंस आदि पक्षीको कमल और कुञ्जलय आदि पुष्पोंसे युक्त अपने तडागमें जल पीता हुआ देखता है और जिसके तालबमें घट, अङ्गालि, मुख तथा चंचु आदिसे अनेक जीव-जन्म जल पीते हैं, उसी व्यक्तिका जन्म

१-तिष्ठन् भुजन् स्वप्न् गच्छन्तवा यावक्तिसत्तः। उज्ज्वलिकाले गोविदं संसारस्तम्भये भवेत्॥
ये यं चापि स्मरन् भावं त्वजत्वन्ते कर्त्तेवरम्। तै तमेवैति वैत्तेष्यं सदा तद्वाप्तावितः॥

(उत्तरपर्व १२६। ३९—४०)

२-भविष्यपुण्यमें वह विषय तीन पक्षोंमें तीन बार आया है और वेदोंसे लेकर सृतियोंतथा अन्य पुण्योंमें भी बार-बार आया है। यह अल्पवैदी और बहिवैदीके नामसे विलयात है। इसमें जलवशय, वृक्ष, उद्यान आदि लगानेसे सर्वाधिक पुण्योंका लाभ बताया गया है। यहाँ इसका बोधा-संक्षेप कर दिया गया है। मात्र सारभूत जाते ही गयी है।

सफल है, उसकी कहाँतक प्रशंसा की जाय। जो तडाग आदि बनाकर उसके किनारे देवालय बनवाता है तथा उसमें देवप्रतिष्ठा करता है, उसके पुण्यका कहाँतक वर्णन किया जाय? देवालयकी ईट जबतक स्थग्न-स्थग्न न हो जाय, तबतक देवालय बनानेवाला व्यक्ति सर्वामें निवास करता है। कूप ऐसे स्थानपर बनवाना चाहिये, जहाँ बहुत-से जीव जल पी सके, कूपका जल स्वादिष्ट हो तो कूप बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है। जिसके बनाये हुए कूपका जल मनुष्य पीते हैं, वह सभी प्रकारका पुण्य प्राप्त कर लेता है, ऐसा मनुष्य सभी प्राणियोंका उपकार करता है। तडाग बनवाकर उसके तटपर वृक्षोंके बीच उत्तम देवालय बनवानेसे उस व्यक्तिकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रहती है और बहुत समयतक दिव्य भोग भोगकर वह चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी, कूप, तडाग, धर्मशाला आदि बनवाकर अन्नका दान करता है और जिसका वचन अति मधुर है, उसका नाम यमराज भी नहीं लेते।

वे वृक्ष धन्य हैं, जो फल, फूल, पत्र, मूल, बल्कल, छाल, लकड़ी और छायाद्वारा सबका उपकार करते हैं। वस्तुओंके चाहनेवालोंको वे कभी निराश नहीं करते। धर्म-अर्थसे रहित बहुतसे पुत्रोंसे तो मार्गमें लगाया गया एक ही वृक्ष श्रेष्ठ है, जिसकी छायामें पथिक विश्राम करते हैं। सघन छायावाले श्रेष्ठ वृक्ष अपनी छाया, परस्पर और छालके द्वारा प्राणियोंको, पुण्यके द्वारा देवताओंको और फलोंके द्वारा पितॄरोंको प्रसन्न करते हैं। पुत्र तो निष्क्रित नहीं है कि एक वर्षपर भी श्राद्ध करेगा या नहीं, परंतु वृक्ष तो प्रतिदिन अपने फल-मूल, पत्र आदिका दानकर वृक्ष लगानेवालेका श्राद्ध करते हैं। वह फल न तो अग्रिहोत्रादि कर्म करनेसे और न ही पुत्र उत्पन्न करनेसे प्राप्त होता है, जो फल मार्गमें छायादार वृक्षके लगानेसे प्राप्त होता है।

छायादार वृक्ष, पुण्य देनेवाले वृक्ष, फल देनेवाले वृक्ष तथा वृक्षवाटिका कुलीन स्त्रीकी भाँति अपने पितॄकुल तथा पतिकुल दोनों कुलोंको उसी प्रकार सुख देनेवाले होते हैं, जैसे लगाये गये वृक्ष आदि अपने लगानेवाले तथा रक्षा आदि करनेवाले दोनोंके कुलोंका उद्धार कर देते हैं। जो भी बगीचा आदि लगाता है, उसे अवश्य ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है और वह व्यक्ति नित्य गायत्रीजपका, नित्य दानका और नित्य यज्ञ करनेका फल पाता है। जो पुरुष एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली तथा एक-एक कैथ, बिल्ब और आमलक तथा पाँच आमके वृक्ष लगाता है, वह कभी नरकका मैंह नहीं देखता^१। जिसने जलशय न बनवाया हो और एक भी वृक्ष न लगाया हो, उसने संसारमें जन्म लेकर कौन-सा कर्त्त्व किया। वृक्षोंके समान कोई भी परोपकारी नहीं है। वृक्ष धूपमें खड़े रहकर दूसरोंको छाया प्रदान करते हैं तथा फल, पुण्य आदिसे सबका सत्कार करते हैं। मानवोंकी शुभ गति पुत्रोंके बिना नहीं होती—यह कथन तो उचित ही है, किन्तु यदि पुत्र कुप्रु हो गया तो वह अपने पिता के लिये कलंकस्वरूप तथा नरकका हेतु भी बन जाता है। इसलिये विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि विशिष्टक वृक्षारोपण करके उसका पालन-पोषण करे। इससे संसारमें न तो कलंक होता है और न निन्दा गति ही प्राप्त होती है, वल्कि कीर्ति, यश एवं अन्तमें शुभ गति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति भव्य देव-मन्दिर बनवाकर उसपे देवमूर्तियोंकी प्रतिमाओंको स्थापित करता है, मन्दिरमें अनुलेपन, देवताओंका अभिषेक, दीपदान तथा विविध उपचारोद्वारा उनकी अर्चा करता अथवा करवाता है, वह इस संसारमें गण्यत्री प्राप्त कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करता है तथा इस लोकमें कीर्ति एवं यशस्वी शरीरसे प्रतिष्ठित रहता है। (अध्याय १२७—१२९)

दीपदानकी महिमा-प्रसंगमें जातिस्मरा रानी ललिताका आख्यान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वह कौन-सा

अत्यन्त तेजोमय शरीरकी प्राप्ति होती है। इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! किसी समय

^१-अस्त्रयमें पिचुमन्दमें व्यग्रोधमें दश लिगितीकान्। कपित्यविलक्षणमन्त्रीत्यं च पञ्चाप्रयोगी नरके न पर्येत्॥

पिगल नामके एक तपस्वी मथुरामें आकर प्रवास कर रहे थे। उन तपस्वीसे देवी जाम्बवतीने भी यही प्रश्न किया था, उस विषयको आप सुने—पिगलमुनिने कहा था—‘देवि ! संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, वैधृति, व्यतिपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, विषुव, एकादशी, शुक्र पक्षकी चतुर्दशी, तिथिक्षय, सापमी तथा अष्टमी—इन पुण्य दिनोंमें ऊन कर, ब्रतपरायण खी अथवा पुरुषको अपने आँगनके मध्य घृत-कूप्य और जलता हुआ दीपक भूमिदेवको दान देना चाहिये। इससे प्रदीप एवं ओजस्वी शरीर प्राप्त होती है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! भूमिके देवता कौन है ? मेरे इस संशयको दूर करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! पूर्वकालमें सत्यगुणके आदिमें विशंकु नामका एक (सूर्यवंशी) राजा था, जो सशरीर स्वर्गको जाना चाहता था। पर महर्षि वसिष्ठने उसे चाप्पाल बना दिया, इससे विशंकु बहुत दुःखी हुआ और उसने विश्वमित्रजीसे समस्त वृत्तान्त कहा। इससे क्रुद्ध होकर विश्वमित्रने दूसरी सृष्टिकी रचना प्रारम्भ कर दी। उस सृष्टिमें सभी देवताओंके साथ-साथ विशंकुके लिये दूसरा स्वर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया और शूक्राटक (सिंघाड़), नारियल, कोद्रव, कूम्भाष्ट, ठैंट, भेड़ आदिका निर्माण किया और नये सप्तर्षि तथा देवताओंकी प्रतिमाका भी निर्माण कर दिया। उस समय इन्हने आकर इनकी प्रार्थना की और विश्वमित्रजीसे सृष्टि रोकनेका अनुरोध किया तथा दीपदान करनेकी सम्मति दी। जो प्रतिमाएँ इन्हेंनि बनायी थीं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवताओंका वास हुआ और वे ही इस संसारके प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये मर्त्यलोकमें प्रतिमाओंमें मूर्तिमान् रूपमें स्थित हुए और नैवेद्यादिको ग्रहण करते हैं तथा अपने भक्तोंपर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, वे ही भूमिदेव कहलाते हैं। राजन् ! इसीलिये उनके सम्मुख दीपदान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके लिये प्रदत्त दीपकी रक्तवस्त्रसे निर्मित वर्तिका ‘पूर्णवर्ति’ कहलाती है। इसी प्रकार शिवके लिये निर्मित शेष वस्त्रकी वर्तिका ‘ईश्वरवर्ति’, विष्णुके लिये निर्मित कुमुम रंगके वस्त्रसे निर्मित वर्तिका ‘सौभाग्यवर्ति’, दुर्गके लिये लक्ष्मीके रंगके समान रंगवाले वस्त्रसे निर्मित वर्तिका

‘पूर्णवर्तिका’ कहलाती है। ऐसे ही ब्रह्माके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘पद्मवर्ति’, नारोंके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘नागवर्ति’ तथा महोंके लिये प्रदत्त वर्तिका ‘ग्रहवर्ति’ कहलाती है। इन देवताओंके लिये ऐसे ही वर्तिकायुक्त दीपकका दान करना चाहिये। पहले देवताका पूजन करनेके बाद बड़े पात्रमें भी भक्त दीपदान करना चाहिये। इस विधिसे जो दीपदान करता है, वह सुन्दर तेजस्वी विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। जिस प्रकार दीप प्रकाशित होता है, उसी प्रकार दीपदान करनेवाल व्यक्ति भी प्रकाशित होता है। दीपके शिखाकी भाँति उसकी भी ऊर्जागति होती है। दीपक घृत या तेलके जलाने चाहिये, वसा, मज्जा आदि तरलप्रब्युक्तके नहीं। जलते हुए दीपको बुझाना नहीं चाहिये, न ही उस स्थानसे हटाना चाहिये। दीप बुझा देनेवाला करना होता है और दीपको चुप्पेनेवाला अंधा होता है। दीपक बुझाना निन्दनीय कर्म है।

राजन् ! आप दीपदानके माहात्म्यमें एक आख्यान सुने—विदर्भ देशमें वित्ररथ नामका एक राजा रहता था। उस राजाके अनेक पुत्र थे और एक कन्या थी, जिसका नाम था ललिता। वह सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त सुन्दर थी। राजा वित्ररथने धर्मका अनुसरण करनेवाले महाराज काशिराज चारधर्मके साथ ललिताका विवाह किया। चारधर्माकी यह प्रधान गणी तुर्हि। वह विष्णु-मन्दिरमें सहस्रों प्रलिलित दीपक प्रतिदिन जलाया करती थी। विशेषरूपसे आश्चिन्न-कार्तिकमें बड़े समारोहपूर्वक दीपदान करती थी। वह चौराहों, गलियों, मन्दिरों, पीपल्यके वृक्षके पास, गोशाला, पर्वतशिखर, नदीतटों तथा कुओंपर प्रतिदिन दीप-दान करती थी। एक बार उसकी सप्तलियोंने उससे पूछा—‘ललितो ! तुम दीपदानका फल हमें भी बतालाओ। तुम्हारी भक्ति देवताओंके पूजन आदिमें न होकर दीपदानमें इतनी अधिक क्षणों है ?’ यह सुनकर ललिताने कहा—‘सलियो ! तुमलोगोंसे मुझे कोई शिकायत नहीं है, न ही ईर्ष्या, इसलिये मैं तुमलोगोंसे दीपदानका फल कह रही हूँ। ब्रह्माजीने मनुष्योंके उद्धारके लिये साक्षात् पार्वतीजीको मद्रदेशमें श्रेष्ठ देविका नदीके रूपमें पृथ्वीपर अवतरित किया, वह पापोंका नाश करनेवाली है, उसमें एक बार भी खान करनेसे मनुष्य शिवजीका गण हो जाता

है। उस नदीमें जहाँ भगवान् विष्णुने नृसिंहरूपसे स्वयं स्नान किया था, उस स्थानको नृसिंहतीर्थ कहते हैं। नृसिंहतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

सौंबीर नामके एक राजा थे, जिसके पुरोहित थे मैत्रेय। गजाने देविकाके तटपर एक विष्णुमन्दिर बनवाया। उस मन्दिरमें मैत्रेयजी प्रतिदिन पूज्य, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन और दीपदान किया करते थे। वे एक दिन कार्तिकवी पूर्णिमाको वहाँ दीपदानका बहुत बड़ा उत्सव मना रहे थे। गत्रिके समय सभी लोगोंको नींद आ गयी। उस मन्दिरमें अपने पूर्वजन्ममें मूर्खिकरूपमें रहनेवाली मुझे दीपककी घृतवर्तिको खानेकी इच्छा हुई। उसी क्षण मुझे बिल्लीकी आवाज सुनायी दी। मैंने भयभीत होकर दीपककी बत्ती छोड़ दी और छिप गयी, वह दीपक बुझने नहीं पाया। मन्दिरमें पूर्वकृत् प्रकाश हो गया। कुछ काल बाद मेरी मृत्यु हो गयी, पुनः मैं विद्यमन्दिरमें वित्ररथ राजाकी राजकून्या हुई और

कशीशराज चारुधर्माकी मैं पटरानी हुई। सखियो ! कार्तिक मासमें विष्णुमन्दिरमें दीपदानका ऐसा सुन्दर फल होता है। चूंकि मैं मूर्खिका थी, मैंग दीपदानका कोई संकल्प नहीं था, फिर भी मुझसे अनायास जो मन्दिरमें भववश दीप प्रज्ञालित हुआ अथवा मैं दीपको नष्ट न कर सकी, उस समय बिना परिज्ञानके मुझसे जो दीपदानका पूण्यकर्म हुआ था, उसी पूण्य-कर्मके फलस्वरूप आज मैं श्रेष्ठ महाराजीके पदपर स्थित हूँ और मुझे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान है। इसी कारण मैं आज भी निरन्तर दीपदान करती रहती हूँ। मैं दीपदानके फलको भलीभांति जानती हूँ, इसलिये नित्य देवालयमें दीप जलाती हूँ।' ललिताका यह कथन सुनकर सभी सहेलियाँ भी दीपदान करने लगीं और बहुत समयतक गृह्य-सुख भोगकर सभी अपने पतिके साथ विष्णुलोकको चली गयीं। इस प्रकार जो भी पुरुष अथवा रुद्री दीप-दान करते हैं, वे उत्तम लेज प्राप्तकर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १३०)

वृषोत्सर्गकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! कार्तिक और माघकी पूर्णिमा, चैत्रकी पूर्णिमा तथा तृतीया और वैशाखकी पूर्णिमा एवं द्वादशीमें शुभ लक्षणोंसे सम्प्रत्र वृषभको चार गौओंके साथ छोड़नेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। इस वृषोत्सर्गकी विधिको गर्गचार्यने मुझसे इस प्रकार बतलाया है—सबसे पहले थोड़शमातृकाका पूजनकर मातृश्राद्ध तथा फिर आधुर्यिक श्राद्ध करना चाहिये। फिर एक कलश स्थापित कर उसपर रुद्रका पूजन करके घृतसे हवन करना चाहिये। उस सर्वाङ्गसुन्दर तरुण बछड़के वाम भागमें त्रिशूल और दक्षिण भागमें चक्रमुक चिह्न अंकितकर कुरुक्षम आदिसे अनुलिप्त करें, गलेमें पुण्यकी माला पहना दे। अनन्तर चार तरुण बछड़ाओंको भी भूषित कर उनके कानमें कहे कि 'आपके पतिस्वरूप इस पुष्ट एवं सुन्दर वृषको मैं विसर्जित कर रहा हूँ, आप इसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसन्न होंकर विहार करें।' पुनः उनको वस्त्रसे आच्छादितकर एवं स्वादिष्ट भोजनसे संतुष्ट कर देवालय, गोष्ठ अथवा नदी-संगम

आदि स्थानोंमें छोड़ना चाहिये। वे पुरुष धन्य हैं, जो स्वेच्छाचारी, गरजते हुए, कलुदान् तथा अहंकारसे पूर्ण वृष छोड़ते हैं। इस विधिसे जो वृषोत्सर्ग करता है, उसके दस पुस्त पहलेके और दस पुस्त आगेके भी पुरुष सद्गतिको प्राप्त करते हैं। यदि वृष नदीके जलमें प्रवेश करता है और उसके सींगसे या पैूँछसे जो जल उछलता है, उस तर्पणरूप जलसे वृषोत्सर्ग करनेवाले व्यक्तिके पितरोंको अश्यतृप्ति प्राप्त होती है। अपने सींगसे या खुरोंसे यदि वह मिट्टी खोदता है तो वृषोत्सर्ग करनेवालेके पितरोंके लिये वह सोटी भूमि जल भर जानेपर मधुकुलना बन जाती है। चार हजार हाथ लम्बे-चौड़े तड़ाग बनानेसे पितरोंको उतनी तृप्ति नहीं होती, जितनी तृप्ति एक वृष छोड़नेसे होती है। मधु और तिलको एक साथ मिलाकर पिण्डदान करनेसे पितरोंको जो तृप्ति नहीं होती, वह तृप्ति एक वृषोत्सर्ग करनेसे प्राप्त होती है। जो व्यक्ति अपने पितरोंके उद्घारके लिये वृष छोड़ता है, वह स्वयं भी स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १३१)

फाल्गुन-पूर्णिमोत्सव

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! फाल्गुनकी पूर्णिमाको ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगरमें उत्सव क्यों मनाया जाता है और गाँवों एवं नगरोंमें होली क्यों जलायी जाती है ? क्या कारण है कि बालक उस दिन घर-घर अनाप-शानाप शोर मचाते हैं ? अडाडा किसे कहते हैं, उसे शीतोष्णा क्यों कहा जाता है तथा किस देवताका पूजन किया जाता है ? आप कृपाकर यह बतानेका कष्ट करें ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ ! सत्ययुगमें रघु नामके एक शूखीर प्रियवादी सर्वगुणसम्पन्न दानी राजा थे । उन्होंने समस्त पृथ्वीको जीतकर सभी रुजाओंको अपने बशमें करके पुक्रकी भाँति प्रजाका लालन-पालन किया । उनके राज्यमें कभी दुर्भिक्षा नहीं हुआ और न किसीकी अकाल मृत्यु हुई । अधर्ममें किसीकी रुचि नहीं थी । पर एक दिन नगरके लोग राजद्वारपर सहस्रा एकत्र होकर 'त्राहि', 'प्राहि' पुकारने लगे । रुजाने इस तरह भयभीत लोगोंसे करण पूछा । उन लोगोंने कहा कि महाराज ! ढोङा नामकी एक राक्षसी प्रतिदिन हमारे बालकोंको कष्ट देती है और उसपर किसी मन्त्र-तन्त्र, ओषधि आदिका प्रभाव भी नहीं पड़ता, उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं हो पा रहा है । नगरवासियोंका यह वचन सुनकर विस्मित राजाने राज्यपुरोहित महर्षि वसिष्ठ मुनिसे उस राक्षसीके विषयमें पूछा । तब उन्होंने राजासे कहा—'राजन् ! माली नामका एक दैत्य है, उसीकी एक पुत्री है, जिसका नाम है ढोङा । उसने बहुत समयतक उग्र तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया । उन्होंने उससे वरदान माँगनेको कहा ।' इसपर ढोङाने यह वरदान माँगा कि 'प्रभो ! देवता, दैत्य, मनुष्य आदि मुझे न मार सकें तथा अस्त-शस्त्र आदिसे भी मेरा वध न हो, साथ ही दिनमें, यत्रिमें, शीतकाल, उष्णकाल तथा वर्षाकालमें, भीतर अथवा बाहर कहाँ भी मुझे किसीसे भय न हो ।' इसपर भगवान् शंकरने 'तथासु' कहकर यह भी कहा कि 'तुम्हें उन्मत्त बालकोंसे भय होगा ।' इस प्रकार वर देकर भगवान् शिव अपने धामको चले गये । वही ढोङा नामकी कामरूपिणी राक्षसी नित्य बालकोंको और प्रजाको पीड़ा देती है । 'अडाडा' मन्त्रका उत्तरण करनेपर वह ढोङा शान्त हो जाती है । इसलिये उसको अडाडा भी कहते हैं । यही उस

राक्षसी ढोङाका चरित्र है । अब मैं उससे पीछा छुड़ानेका उपाय बता रहा हूँ ।

राजन् ! आज फाल्गुन मासके शुक्र पक्षकी पूर्णिमा तिथिको सभी लोगोंको निडर होकर क्रीड़ा करनी चाहिये और नाचना, गाना तथा हँसना चाहिये । बालक लकड़ियोंके बने हुए तलवार लेकर बीर सैनिकोंकी भाँति हरपसे युद्धके लिये उत्सुक हो दौड़ते हुए निकल पड़ें और आनन्द मनायें । सूखी लकड़ी, उपले, सूखी पत्तियाँ आदि अधिक-से-अधिक एक स्थानपर इकट्ठाकर उस देरमें रक्षोंब्र मन्त्रोंसे अग्नि रुग्णाकर उसमें हवनकर हँसकर ताली बजाना चाहिये । उस जलते हुए देरकी तीन बार पारिक्रमा कर बच्चे, बुढ़े सभी आनन्ददायक विनोदपूर्ण बार्तालाप करें और प्रसन्न रहें । इस प्रकार रक्षामन्त्रोंसे, हवन करनेसे, कोलाहल करनेसे तथा बालकोंद्वारा तलवारके प्रहरके भयसे उस दृष्ट राक्षसीका निवारण हो जाता है ।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर राजा रघुने सम्पूर्ण राज्यमें लोगोंसे इसी प्रकार उत्सव करनेको कहा और स्वयं भी उसमें सहयोग किया, जिससे वह राक्षसी विनष्ट हो गयी । उसी दिनसे इस लोकमें ढोङाका उत्सव प्रसिद्ध हुआ और अडाडाकी परम्परा चली । ब्राह्मणोंद्वारा सभी दुष्टों और सभी योगोंको शान्त करनेवाला वसोर्धीर्णा-होम इस दिन किया जाता है, इसलिये इसको होलिका भी कहा जाता है । सब तिथियोंका सार एवं परम आनन्द देनेवाली यह फल्गुनकी पूर्णिमा तिथि है । इस दिन रात्रिको बालकोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये । गोबरसे लिपे-पुते घरके आँगनमें बहुतसे खड़हस्त बालक बुलाने चाहिये और घरमें रक्षित बालकोंको काष्ठिनिर्मित खड़से स्पर्श करना चाहिये । हँसना, गाना, बजाना, नाचना आदि करके उत्सवके बाद गुड़ और बड़िया पकवान देकर बालकोंको विसर्जित करना चाहिये । इस विधिसे ढोङाका दोष अवश्य शान्त हो जाता है ।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! दूसरे दिन चैत्र माससे बसन्त ऋतुका आगमन होता है, उस दिन क्या करना चाहिये ?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! होलीके दूसरे

दिन प्रतिपदामे प्रातःकाल उठकर आवश्यक नित्यक्रियासे निवृत हो पितरों और देवताओंके लिये तर्पण-पूजन करना चाहिये और सभी दोषोंकी शान्तिके लिये होलिकाकी विभूतिकी बन्दना कर उसे अपने शरीरमें लगाना चाहिये। घरके आगंनको गोबरसे लीपकर उसमें एक चौकोर मण्डल बनाये और उसे रंगीन अक्षतोंसे अलंकृत करे। उसपर एक पीठ रखे। पीठपर सुवर्णसहित पल्लवोंसे समन्वित कलश स्थापित करे। उसी पीठपर शेष चन्दन भी स्थापित करना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीको सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनकर दही, दूध, अक्षत, गन्ध, पुण्य, वसोर्धीया आदिसे उस

श्रीखण्डकी पूजा करनी चाहिये। फिर आप्रमंजरीसहित उस चन्दनका प्राशन करना चाहिये। इससे आपुकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा समस्त क्षमनाएँ, सफल होती हैं। भोजनके समय पहले दिनका पकवान थोड़ा-सा खाकर इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। इस विधिसे जो फलानुग्रहस्व मनाता है, उसके सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। आधि-व्याधि सभीका विनाश हो जाता है और वह पुत्र, पौत्र, धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है। यह परम पवित्र, विजयदायिनी पूर्णिमा सब विद्वानोंको दूर करनेवाली है तथा सब तिथियोंमें उत्तम है। (अध्याय १३२)

दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस संसारमें बहुतसे सुगन्धित पुण्य हैं, परंतु उनको छोड़कर दमनक (दैना) नामक पुण्य देवताओंको कहों चढ़ाया जाता है तथा दोलोत्सव और रथयात्रोत्सव मनानेकी क्या विधि है, इसका वर्णन करनेकी आप कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! मन्दराचल पर्वतपर दमनक नामका एक श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके दिव्य गन्धके प्रभावसे देवाङ्गनाएँ, विमुख हो गयीं और क्रृष्ण-मुनि भी जप, तप वेदाध्ययन आदिसे च्युत हो गये। इस प्रकार उसके गन्धसे सब लोग उन्मत्त हो गये। सभी शुभ क्रायों एवं मङ्गल-कायोंमें विनाशित हो गया। यह देखकर ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे दमनकसे बोले—‘दमनक ! मैंने तुम्हें संसार (के दोषों) के दमन (शान्त) करनेके लिये उत्पन्न किया है, किन्तु तुमने सम्पूर्ण संसारको उद्भेदित कर दिया है, तुम्हारा यह क्राम ठीक नहीं है। सज्जनोंका कहना है कि अतिशय सर्वत्र वर्ज्य है। इसलिये ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे लोगोंमें उद्देश न पैदा हो। एकला अपकार करनेवाला व्यक्ति अधम कहा जाता है, परंतु जो अनेकोंका अपकार करनेमें प्रवृत्त हो गया हो, उसके लिये क्या कहा जाय ? तुमने तो बहुतसे लोगोंको दुःख दिया है, इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति तुम्हरे

पुण्यको देवकार्य तथा पितृकार्यमें आजसे ग्रहण नहीं करेगा।’ ब्रह्माजीद्वारा दिये गये शापके सुनकर दमनकने कहा—‘महाराज ! मैंने द्वेषवश अथवा क्रोधवश किसीका अपकार नहीं किया है। आपने ही मुझे इतना सुगन्ध दिया है कि उसके प्रभावसे सभी लोग स्वयं उन्मत्त हो जाते हैं। इसमें मेरा क्या दोष है ? आपने ही मेरा ऐसा स्वभाव बनाया है। जिसकी जो प्रकृति होती है, उसे वह त्याग नहीं सकता; क्योंकि प्रकृति त्यागनेमें वह असमर्थ होता है।’ निरपराध होते हुए भी आपने मुझे शाप दिया है।’ दमनककी इस तर्कसंगत बातको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—‘दमनक ! तुम्हारा कथन ठीक है। मैंने तुम्हें शाप दिया है। उसका मुझे हार्दिक दुःख है। उसकी निवृत्तिके लिये मैं तुम्हे वरदान देता हूँ कि वसन्त-ऋतुमें तुम सभी देवताओंके मलकापर चढ़ायेगे। जो व्यक्ति भक्तिभावसे दमनक-पुण्य देवताओंपर चढ़ायेगा, उसे सदा सुख प्राप्त होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दमनक-चतुर्दशीके नामसे विख्यात होगी और उस दिन ब्रत-नियमके पालन करनेसे ग्रतीके सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और दमनक भी अपने गन्धसे त्रिभुवनको वासित करता हुआ शिवजीके निवास-स्थान मन्दराचलपर रहने लगा। उसी दिनसे लोकोंद्वारा दमनक-पूजा प्रसिद्ध हुई।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं

१-या यस्य जन्मोः प्रकृतिः शुभा वा वर्दि वेतुण। स तस्मात्प्रेव रमते दुर्ज्ञो दुर्ज्ञो तथा॥ (उत्तरपर्व १३३। १५)

२-अधि, मल्ल और शिवपुराणमें इसका अधिक विवरण से वर्णन है।

दोलोत्सवका वर्णन कर रहा है। किसी समय नन्दनवनमें दोलोत्सव हुआ। वसन्त ऋतुमें देवाङ्गनाएँ और देवता मिलकर दोला-क्रीड़ा करने लगे। नन्दनवनमें यह मनोहारी उत्सव देखकर भगवती पार्वतीजीने शंकरजीसे कहा—‘भगवन्! इस क्रीड़ाको आप देखें। आप मेरे लिये भी एक दोला बनवाइये, जिसपर मैं आपके साथ बैठकर दोला-क्रीड़ा कर सकूँ।’ पार्वतीजीके यह कहनेपर शिवजीने देवताओंको अपने पास बुलाकर दोला बनानेको कहा। देवताओंने शिवजीके कथनानुसार सुन्दर उत्तम इष्टापूर्तमय दो स्तम्भ गाढ़कर उत्सपर सत्यस्वरूप एक लकड़ीका पटण रखा और बासुकि नागकी रस्ती बनाकर उसके फणोंपर बैठनेके लिये रक्षाचित पीठकी रचना की। उस फणके ऊपर अत्यन्त मुदुल कपास और रेशमी वस्त्र बिछाकर दोलाकी शोभा बढ़ानेके लिये मोतियोंके गुच्छों और फूल-मालाओंसे उसे सजा दिया। इस प्रकार देवताओंने अति उत्तम दोला तैयार कर भगवान् शंकरको आदरपूर्वक प्रदान किया। अनन्तर भगवान् चन्द्रभूषण भगवती पार्वतीके साथ दोलापर बैठ गये। भगवान् शंकरके पार्वद दोला झुलाने लगे तथा जया और विजया दोनों सखियाँ चौब डुलाने लगीं। उस समय पार्वतीजीने बहुत ही मधुर स्वरमें गीत गाया, जिससे शिवजी आनन्दमग्न हो गये। गच्छर्य गीत गाने लगे, अपश्चात् नाचने लगीं और चारण विविध प्रकारके बाजे बजानेमें संलग्न हो गये। परंतु शिवजीके दोला-विहारसे सभी पर्वत कँपने लगे, समुद्रमें हलचल मच गया, प्रचण्ड पवन चलने लगा, सारा लोक त्रस्त हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्यको अति व्याकुल देखकर इन्द्रादि सभी देवणोंने सभीके पापोंका नाश करनेवाले शिवजीके पास आकर प्रणाम किया और प्रार्थना कर कहने लगे—‘नाथ! अब आप दोला-लीलासे निवृत हों, क्योंकि त्रैलोक्यको क्षेष्ठ प्राप्त हो रहा है।’ इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने दोलासे उत्तरकर कहा कि ‘आजसे वसन्त ऋतुमें जो व्यक्ति इस दोलोत्सवको करेगा तथा नैवेद्य अर्पित कर तत्तद देवताओंके मूल मन्त्रोंसे उन्हें दोलापर आरोहण करायेगा, करेगा, आनन्द मनायेगा और सुति-पाठ करेगा, वह सभी अभीष्टोंको प्राप्त करेगा।’

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महागज! अब मैं

रथयात्राका वर्णन करता हूँ।

एक बार चैत्र मासमें मलयपर देवताओंसे समावृत भगवान् शंकर शान्तभावसे विराजमान थे। इसी समय मृत्युलोकमें इधर-उधर घूमते हुए देवर्षि नारद ब्रह्मलोकसे भगवान् शंकरके पास आये। उन्होंने भगवान्को प्रणाम किया और आसनपर बैठ गये। सर्वज्ञ भगवान् शंकरने देवर्षि नारदसे पूछा—‘मुने! आपका आगमन कहासे हो रहा है?’ नारद बोले—‘देवदेव! मैं मृत्युलोकसे आ रहा हूँ। वहाँ कामदेवके मित्र वसन्त ऋतुने सारा संसार अपने वशमें कर लिया है। वहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित मलय पवन बहता है। वसन्त ऋतुके सहयोगी—कोकिल, आप्रमञ्जरी आदि सभी उसके कार्यमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें वसन्त ऋतु यह घोषणा कर रहा है कि इस संसारका ही नहीं, अपितु तीनों लोकोंका स्वामी एकमात्र कामदेव है। भगवन्! उसीके शासनमें सभी लोग उन्मत्तसे हो रहे हैं। चैत्र मासका यह विचित्र प्रभाव देखकर मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ।’ नारदजीका वचन सुनकर भगवान् शंकर गच्छर्य, अपश्च, मुनिगण और सभी देवताओंको साथ लेकर मृत्युलोकमें आये और उन्होंने देखा कि जैसा नारदजीने कहा था, वही स्थिति मृत्युलोकमें व्याप्त है। सब लोग उन्मत्त हो गये हैं। आनन्दमें मग्न हैं। शिवजी वसन्तकी शोभा देख ही रहे थे कि उनके साथ जो देवता आदि आये थे, वे भी आनन्दित हो गाने-बजाने लगे। वसन्तके प्रभावसे देवताओंको भी क्षुध्य देखकर शंकरने यह विचार किया कि यह तो बड़ा अनर्थ हो रहा है। इसके प्रतीकारका कोई-न-कोई उपाय करना ही चाहिये। जो अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके निवारणका उपाय नहीं करता, वह अवश्य ही विपत्तिमें पड़कर दुःखको प्राप्त करता है। अब मुझे इन सबकी उन्मादसे रक्षा करनी चाहिये और स्वामिभक्त वसन्त ऋतुका भी सम्मान रखना चाहिये। यह विचारकर शिवजीने वसन्त ऋतुको अपने पास बुलाकर कहा कि ‘वसन्त! तुम केवल चैत्र मासमें अपना प्रभाव प्रकट करो, चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें सभी जीवोंको और विशेष रूपसे देवताओंको सुख देनेवाले हो जाओ।’ अनन्तर देवताओंको स्वस्थिति किया और यह भी कहा कि ‘जो व्यक्ति वसन्त ऋतुमें रथयात्रोत्सव करेगा, वह इस संसारमें

दिव्य भोगोंको भोगनेवाला तथा नीरोग होगा।' इतना कहकर शिवजी सभी देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये। वसन्त ऋतु भी शिवजीके आशानुसार बनमें विहार करता हुआ अन्तर्धन हो गया। उसी दिनसे लोकमें रथयात्रोत्सवका प्रचार-प्रसार हुआ। जो देवताओंकी रथयात्रा करता है, उसके धन, पशु, पुत्र आदिकी वृद्धि होती है और अन्तमें वह सद्वितीको प्राप्त करता है।

राजन्! अब आप विशेष तिथियोंका वर्णन सुनें। तृतीयाको गौरी, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको लक्ष्मी अथवा सरस्वती, षष्ठीको रुद्रान्द, सप्तमीको सूर्य, अष्टमी और चतुर्दशीको शिव, नवमीको चण्डिका, दशमीको वेदव्यास आदि शान्तचित्र ऋषि-महर्षि, एकादशी तथा द्वादशीको भगवान् विष्णु, त्रयोदशीको कामदेव और पूर्णिमाको सभी देवताओंका अर्चन-पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंकी निर्दिष्ट तिथियोंमें ही दमनकोत्सव, दोलोत्सव और रथयात्रा आदि उत्सव करने चाहिये। इस प्रकार वसन्त ऋतुमें उत्सव करनेवाला व्यक्ति बहुत क्षमतक स्वर्गका सुख भोगकर पुनः चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! जब भगवान् शंकरने अपने नेत्रकी ज्वालासे कामदेवको भस्म कर डाला था, उस समय कामदेवकी पत्रियाँ गति और प्रीति दोनों गे-रोकर विलाप करने लगीं। इसपर पार्वतीजीके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी और वे शिवजीसे प्रार्थना करने लगीं—‘महाराज ! आप कृपाकर इस कामदेवको जीवनदान दें और शरीर प्रदान कर दें।’ यह सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने कहा—‘पार्वती ! यद्यपि अब यह मूर्तिमान् रूपमें जीवित नहीं हो सकता, परंतु चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको प्रतिवर्ष एक बार यह मनसे उत्पन्न होकर जीवित होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जो भी कामदेवका पूजन करेगा, वह वर्षभर सुखी रहेगा। इतना कहकर शिवजी कैलासपर

चले गये। राजन् ! इसकी विधिको सुनें—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको स्नान कर एक अशोकवृक्ष बनाकर उसके नीचे रुति, प्रीति और वसन्तसहित कामदेवकी प्रतिमाको सिंदूर और हल्दीसे बनाना चाहिये अथवा सुवर्णकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। मूर्ति ऐसी होनी चाहिये, जिसकी सेवामें विद्याधरियाँ हाथ जोड़े हों, अप्सराएँ जिसके चारों तरफ खड़ी हों, गम्भीर नृत्य कर रहे हों। इस प्रकार मध्याह्नके समय गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, ताम्बूल, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य आदि उपचारोंसे कामदेवकी तथा अपने पतिकी भी पूजा करे। जो इस प्रकार प्रतिवर्ष कामोत्सव करता है, वह सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, लक्ष्मी आदिको प्राप्त करता है। विष्णु, ब्रह्म तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, कामदेव, वसन्त और गम्भीर, असुर, राक्षस, सुर्पण, नाग, पर्वत आदि उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। उसको कभी शोक नहीं होता। जो रुदी वसन्त ऋतुमें रुति, प्रीति, वसन्त, मलयानिल आदि परिवारसहित कामदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करती है, वह सौभाग्य, रूप, पुत्र और सुखको प्राप्त करती है।

महाराज ! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासके प्रतिपद तिथिसे लेकर पूर्णिमातक भगवती भूतमाताका पूजनोत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके मनोविनोदपूर्ण एवं हास्यपूर्ण गीत, नाटक आदिका आयोजन करना चाहिये। नवमी अथवा एकादशीको दीपक जलाकर अतीव भक्तिपूर्वक भगवतीके सभीप ले जाने चाहिये।

इस प्रकार पूर्णिमातक प्रदोषके समय दीपमहोत्सव करना चाहिये और द्वादशीके दिन भूतमाताका विशेष उत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्सवोंसे भूतमाताका पूजन करनेवाले व्यक्ति सपरिवार प्रसन्न रहते हैं और उनके घरमें किसी प्रकारका विभ्र उत्पन्न नहीं होता। यह भूतमाता भगवती पार्वतीके अंशसे समुदृत है।

(अध्याय १३३—१३६)

नग्न निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण' के विशेषाङ्कुके रूपमें 'संक्षिप्त भविष्यपुण्याङ्कु' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। विशेषाङ्कुके रूपमें पुण्योंके संक्षिप्त अनुवादके प्रकाशनकी परम्परा 'कल्याण' में प्रारम्भसे ही चली आ रही है। पिछले कई दिनोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण' के विशेषाङ्कु-रूपमें 'भविष्यपुण्य'का प्रकाशन किया जाय। यह बात हमें भी अच्छी लगी; क्योंकि अठारह महापुण्योंके अन्तर्गत भविष्यपुण्य भी नवे महापुण्यमें परिणित है। साथ ही चतुर्वर्ग-चिन्तामणि, ब्रतार्क, दानसागर, ब्रतरत्नाकर, जयसिंहकल्पद्रुम आदि सभी प्राचीन निवृथ-ग्रन्थोंमें ब्रत, दान एवं धार्मिक अनुष्ठानके प्रकरणमें मूल इलेक्ट्रोका संदर्भ भी भविष्यपुण्यका ही प्रायः मिलता है। इन सब कारणोंसे इस पुण्यकी श्रेष्ठता और महत्व विशेष रूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्यजन इसकी विषयवस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। इसलिये स्वाभाविकरूपसे यह प्रेरणा हुई कि भविष्यपुण्यकी कथाकलुको जनता-जनर्दनके प्रकाशनमें लग्नेके लिये इस बार इसी महापुण्यका संक्षिप्त अनुवाद विशेषाङ्कुके रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें भविष्यपुण्य सौर-प्रधान ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठात्-देव भगवान् सूर्य हैं। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष देवता हैं। उनसे ही संसारके प्रकाश, ऊर्ध्वा, प्राणशक्ति, वृष्टि, अन्न और अन्य जीवनोपयोगी सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं, उनके बिना पूरा विश्व अन्धकाशमें विलीन होकर प्रलयको प्राप्त हो जायगा। सूर्योदयके बाद ही दिशाओं, नगर, पर्वत, ग्राम, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका विभाजन और उनकी पहचान स्पष्ट होती है, अन्यथा सारा जगत् दृष्टिविहीन और परिचयशून्य हो जाय। इस पुण्य तथा अन्य पुण्यों एवं वैदिक संहिताओंके अनुसार सूर्य ही वृक्ष, लता, गुल्म, पशु-पक्षी और देवता तथा मनुष्योंके प्राण हैं—'सूर्य आत्मा जगतस्तस्युच्चा।' इसलिये इनकी उपासनासे सभी प्रकाशकी सिद्धियाँ प्राप्त हों, आगु-आरोग्यकी प्राप्ति हो, तो इसमें क्या आकर्षण्य है? तीनों संध्याओंमें इहींकी उपासना की जाती है। भविष्यपुण्यमें कहा गया है कि संध्यामें दीर्घकालतक सूर्योपासना करके

ऋषि-मुनियोंने दीर्घ आगु प्राप्त की थी—'ऋषयो दीर्घ-संध्यत्वादीर्घमायुरवास्युः।' सम्पूर्ण ज्योतिशक्र और ज्योतिष-शास्त्रके छहड़ी-घंटे आदिके मूल निर्देशक सूर्य ही हैं। भगवान् सूर्यदिवकी महिमाका विस्तृत वर्णन इसी पुण्यमें उपलब्ध होता है। इसके ब्राह्मपर्वमें कई चमत्कारिक वर्णन प्राप्त होते हैं, जिन्हे बार-बार पढ़नेपर भी आकर्षण बना ही रहता है। इसी प्रकार मध्यमपर्वकी कर्मकाण्डीय सामग्री, प्रतिसर्गपर्वकी ऐतिहासिक सामग्री और भक्तोंके चरित्र बड़े भव्य और आकर्षक हैं। उत्तरपर्वके ब्रत-धर्म-दान, सदाचार तथा देवोपासना आदिके निर्देशक सभी अध्याय बार-बार मननीय और शिक्षाप्रद हैं।

आज भारतवासी अपनी सनातन संस्कृति और सनातन परम्परासे विचलित-सा होकर किंकर्तव्यविमूळ हो रहा है। वह अपने आदर्श संवेदधर्माद तथा सर्वभूतात्मवादके पवित्र सिद्धान्तको भूलकर एक देश-विशेषकी पार्थिव सीमामें अपनेको आवद्ध कर मोहित हो गया है और इसीको राष्ट्रियता और देशप्रेमके नामसे पुकारता है और उसी देश-विशेषकी केवल आर्थिक स्वतन्त्रताको ही 'स्वराज्य' मानकर उसकी प्राप्तिके प्रयत्नमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री मानने लगा है। मनुष्यका पुरुषार्थ-चतुष्टय—अर्थ, धर्म, क्रम तथा मोक्ष आज केवल दो—'अर्थ और क्रम' में ही सीमित हो गया है और वह अर्थ-क्रम ही मोक्षानुगमी और धर्मसम्पत्त न होनेसे आसुरी हो गया है। फलतः आजका मानव असुर मानव बनता जा रहा है। उसकी धर्मपर आस्था नहीं, भगवान्-पर विश्वास नहीं। मनमाना आचरण करनेमें ही उसे गौरकक्ष बोध होता है। सब ओर आज यही यथेच्छाचार और यही अधिकार तथा अर्थकी अपार लिप्सा एवं व्यक्तिगत स्वार्थकी पापमयी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। सभी प्रायः प्रमत्त हैं। क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये कूरता, निर्देशता, हिस्ता और हत्याका आश्रय आतंकवादके नामपर धड़ल्लेसे लिया जा रहा है। ऐसे नाजुक समयमें पुण्य-जैसे आध्यात्मिक ग्रन्थोंके प्रचार-प्रसार, पठन-पाठन और आलोड़नसे ही देशमें शान्तिमय वातावरण, सुसिधरता और सम्पादपर चलनेकी प्रवृत्ति जाग्रत् हो सकती है। पुण्योंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचारके साथ-साथ यज्ञ,

ब्रत, दान, तप, तीर्थसेवन, देवपूजन, आद्-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोंमें तथा पारस्परिक उत्तम व्यवहारमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लैकिक एवं पारलैकिक फलोंका वर्णन किया गया है। भविष्यपुराणमें भी इन सब विषयोंका तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य कई विषयोंका समावेश हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये 'भविष्यपुराण'के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमें लेखकरुपमें प्रस्तुत किया गया है। उसके अवलोकनसे भविष्यपुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

'भविष्यपुराण'के प्रकाशनका निर्णय जितनी सरलतासे हुआ, इसके सम्पादनमें उतनी ही कठिनाइयोंका भी अनुभव हुआ। भविष्यपुराण अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हुए भी मालूम पड़ता है इन दिनों विशेष-रूपसे उपेक्षित-सा रहा। 'वैकटेश्वर प्रेस'-से प्रकाशित एक ही मूल संस्करण इस पुराणका उपलब्ध हो सकता। अन्य प्रकाशित मूल प्रतियाँ भी इसीकी प्रतिलिपि मात्र थीं। इसके अतिरिक्त इस पुराणका कोई संस्करण तथा इस पुराणकी कोई टीका तथा किसी भी भाषामें कोई अनुवाद भी उपलब्ध नहीं हुआ। जिसके कारण मूल पाठ-भेद आदिका निर्णय करना कठिन था। जो संस्करण उपलब्ध हुए उनके मूल इलोकोंमें अशुद्धियाँ मिलनेसे अनुवाद आदिके कार्यमें भी विशेष कठिनाईका अनुभव हुआ।

इस वर्षसे 'कल्याण'के वर्षका प्रारम्भ तीन मास पूर्व जनवरीसे कर दिया गया है। हम यह चाहते थे कि 'कल्याण'के अङ्कु हम अपने पाठकोंको समयसे प्रेषित करें, परंतु इन अपरिहार्य विषय परिस्थितियोंके कारण अनुवाद-कार्य पूरा न होनेसे न चाहते हुए भी विलम्ब हो ही गया। इस विलम्बके कारण हमारे प्रिय पाठकोंको निश्चितरूपसे अधीर होना पड़ा होगा तथा कष्टका अनुभव भी हुआ होगा, जिसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके अतिरिक्त मेरे पास कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। भविष्यमें हमारा यह प्रयास अवश्य होगा कि समयसे

आपकी सेवामें 'कल्याण'के अङ्कु प्रस्तुत हों।

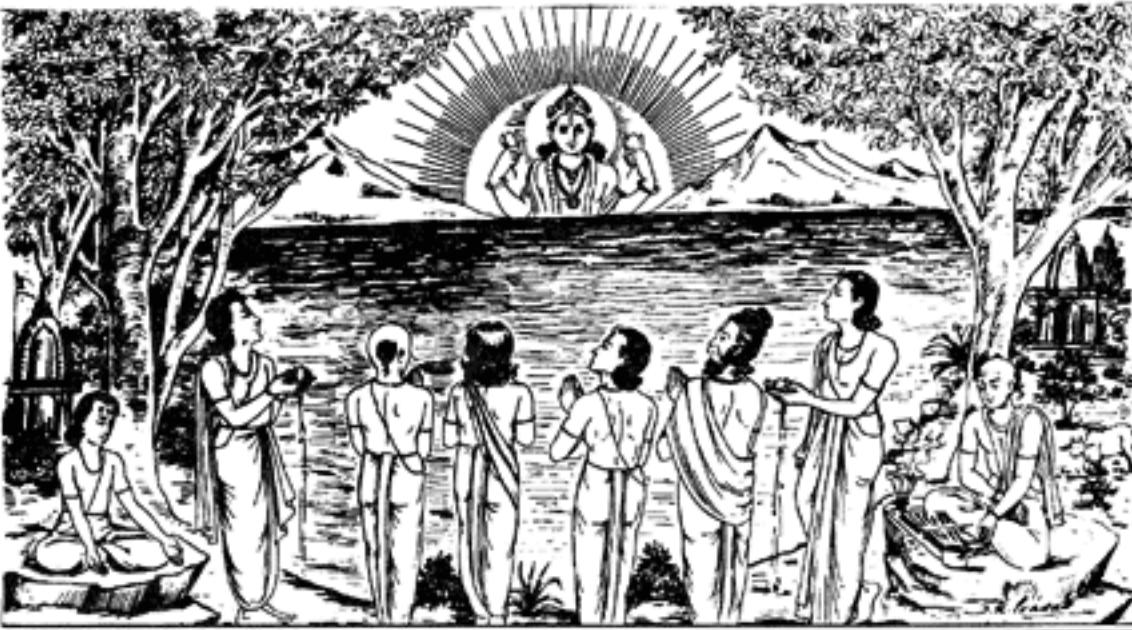
भविष्यपुराणके इस संक्षिप्त अनुवादका कलेक्टर विशेषाङ्ककी पृष्ठ-संख्यासे अधिक होनेके कारण तीन परिशिष्टाङ्कोंमें यह पूर्ण हो सकेगा। ये परिशिष्टाङ्कु पाठकोंकी सेवामें यथासमय प्रेषित होंगे। इस अङ्कुके सम्पादनमें जिन महानुभावोंने हमारी सहायता की है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं। अनुवादका कार्य पूज्यवर पं० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामीके द्वारा तथा उनके निरीक्षणमें सम्पन्न हुआ तथा पुराणके कुछ अंशोंका अनुवाद पं० श्रीमूलशंकरजी शास्त्रीके द्वारा सम्पन्न हुआ। हम इन दोनों महानुभावोंके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करते हैं। अनुवादके संशोधन आदि कार्योंमें वाराणसीके पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा अपने 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागके पं० श्रीजानकीनाथजी शमनि विशेष सहयोग प्रदान किया है। इनके प्रति भी हम हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। इस विशेषाङ्कके सम्पादन, प्रूफसंशोधन, चित्रनिर्माण, मुद्रण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्वको घटाना नहीं चाहते। इस बार भविष्यपुराणके सम्पादन-कार्यके क्रममें परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका विज्ञन-मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्वकी बात है। हमें आशा है, इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहाय पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी चुटियोंके लिये आप सबसे पुः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीबेदव्यासजीके चरणोंमें नमन करते हैं, जिनके कृपाप्रसादसे आज हम सभी जीवनका मार्गदर्शन कर लाभान्वित हैं—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कष्टिष्ठुः स्वभाग्मवेत् ॥

—राधेश्याम स्वेमका सम्पादक



कृष्णाय तुभ्यं नमः

एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते ।
अनुकम्प्य मां भवत्या गृहणार्थ्य दिवाकर ॥

संख्या २

पूर्ण संख्या ७८३

वर्ष द६ } गोरखपुर, सौर फाल्गुन, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, फरवरी १९९२ ई० {

कृष्णाय तुभ्यं नमः

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्दिभ्रते
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्य जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् भूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥

श्रीकृष्ण ! आपने मत्यरूप धारणकर प्रलभ्यसमुद्रमें ढूबे हुए वेदोंका उद्धार किया, समुद्र-मन्थनके समय महाकूर्म बनकर पृथ्वीमण्डलको पीठपर धारण किया, महावग्रहके रूपमें कारणार्णवमें ढूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंहके रूपमें हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंका विदारण किया, वामनके रूपमें राजा बलिको छला, परशुरामके रूपमें क्षत्रिय जातिका संहार किया, श्रीरामके रूपमें महाबली रावणपर विजय प्राप्त की, श्रीब्रह्मरामके रूपमें हलको शस्त्ररूपमें धारण किया, भगवान् बुद्ध-के रूपमें करुणाका विस्तार किया था तथा कल्त्विकके रूपमें म्लेच्छोंको मूर्च्छित करेंगे । इस प्रकार दशावतारके रूपमें प्रकट आपकी मैं बन्दना करता हूँ ।

श्रावणपूर्णिमाको रक्षाबन्धनकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें देवतासुर-संघाममें देवताओंद्वारा दानव पराजित हो गये। दुःखी होकर वे दैत्यराज बलिके साथ गुरु शुक्राचार्यजीके पास गये और अपनी पराजयका वृत्तान्त बतालाया। इसपर शुक्राचार्य बोले—‘दैत्यराज ! आपको विषाद नहीं करना चाहिये। दैववश कालकी गतिसे जय-पराजय तो होती ही रहती है। इस समय वर्षभरके लिये तुम देवराज इन्द्रके साथ संधि कर लो, क्योंकि इन्द्र-पत्नी शाचीने इन्द्रको रक्षा-सूत्र बांधकर अजेय बना दिया है। उसीके प्रभावसे दानवेन्द्र ! तुम इन्द्रसे परास्त हुए हो। एक वर्षतक प्रतीक्षा करो, उसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा। अपने गुरु शुक्राचार्यके वचनोंको सुनकर सभी दानव निश्चिन्त हो गये और समयकी प्रतीक्षा करने लगे। राजन् ! यह रक्षाबन्धनका विलक्षण प्रभाव है, इससे विजय, सुख, पुत्र, आरोग्य और धन प्राप्त होता है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! किस तिथिमें किस विधिसे रक्षाबन्धन करना चाहिये। इसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! श्रावण मासकी पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल उठकर शौच इत्यादि नित्य-क्रियासे निवृत होकर श्रुति-सूति-विधिसे रान कर देवताओं और पितरोंका निर्मल जलसे तर्पण करना चाहिये तथा उपार्कम-विधिसे वेदोक्त शुद्धियोंका तर्पण भी करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग

—अङ्गली—

महानवमी-(विजयादशमी)-ब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! महानवमी सब तिथियोंमें श्रेष्ठ है। सभी प्रकारके मङ्गल और भगवतीकी प्रसन्नताके लिये सब लोगोंको और विशेषकर राजाओंको महानवमीका उत्सव अवश्य मनाना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! इस महानवमी-ब्रतका आरम्भ कहसे हुआ ? वय यशोदाके गर्भसे प्रादुर्भूत होनेके समयसे महानवमी-ब्रतका प्रचलन हुआ अथवा इसके पूर्व सत्ययुग आदिमें भी यह महानवमी-ब्रत था ? इसे आप बतालानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! वह परमशक्ति सर्वव्यापिनी, भावगम्या, अनन्ता और आद्या आदि नामसे

देवताओंके उद्देश्यसे आढ़ करे। तदनन्तर अपराह्न-कालमें रक्षापोटलिका इस प्रकार बनाये—कपास अथवा रेशमके वस्त्रमें अक्षत, गौर सर्वष, सुवर्ण, सरसों, दूर्वा तथा चन्दन आदि पदार्थ रखकर उसे बाँधकर एक पोटलिका बना ले तथा उसे एक ताप्रापात्रमें रख ले और विधिपूर्वक उसको प्रतिष्ठित कर ले। आँगनको गोबरसे लीपकर एक चौकोर मण्डल बनाकर उसके ऊपर पीठ स्थापित करे और उसके ऊपर मन्त्रीसहित राजाको पुरोहितके साथ बैठना चाहिये। उस समय उपस्थित जन प्रसन्न-चित्त रहें। मङ्गल-ध्वनि करें। सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा सुवासिनी स्त्रियाँ अर्घ्यादिके द्वारा राजाकी अर्चना करें। अनन्तर पुरोहित उस प्रतिष्ठित रक्षापोटलीको इस मन्त्रका पाठ करते हुए राजाके दाहिने हाथमें बांधे—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।

तेन त्वामभिवद्वामि रक्षे मा चल मा चल ॥

(उत्तरपर्व १३७ । २०)

तत्प्रक्षात् राजाको चाहिये कि सुन्दर वस्त्र, भोजन और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें संतुष्ट करे। यह रक्षाबन्धन चारों वर्णोंको करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है, वह वर्षभर सुखी रहकर पुत्र-पौत्र और धनसे परिपूर्ण हो जाता है।

(अध्याय १३७)

विश्वविष्णुत है। उनका काली, सर्वमङ्गला, माया, कात्यायिनी, दुर्गा, चामुण्डा तथा शंकरप्रिया आदि अनेक नाम-रूपोंसे ध्यान और पूजन किया जाता है।

देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, यक्ष, किंत्र, नर आदि सभी अष्टमी तथा नवमीको उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। कन्याके सूर्यमें आश्चिन मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमीको यदि मूल नक्षत्र हो तो उसका नाम महानवमी है। यह महानवमी तिथि तीनों लोकोंमें अल्यन्त दुर्लभ है। आश्चिन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी और नवमीको जग्नाता भगवती श्रीअम्बिकाका पूजन करनेसे सभी शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो जाती है। यह तिथि पुण्य, पवित्रता, धर्म और सुखको देनेवाली है। इस दिन

मुष्टमालिनी चामुण्डाका पूजन अवश्य करना चाहिये। सभी कल्पों और मन्वन्तरोंमें देव, दैत्य आदि अनेक प्रकारके उपचारोंसे नवमी तिथिको भगवतीकी पूजा किया करते हैं और तीनों लोकोंमें अवतार लेकर भगवती मर्यादाका पालन करती रहती है। राजन्। यही परम्परा जगन्माता भगवती यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं और वे कंसके मस्तकपर पैर सखकर आकाशमें चली गयीं और फिर विन्ध्याचलमें स्थापित हुईं, तभीसे यह पूजा प्रवर्तित हुई।

भगवतीका यह उत्सव पहलेसे ही प्रसिद्ध था, परंतु सभी प्राणियोंके उपकारके लिये तथा सभी विष्णु-बाधाओंको शान्तिके लिये ही मैंने अपनी बहनके रूपमें भगवती विन्ध्यवासिनी देवीकी महिमाका विशेषरूपसे प्रचार किया। विन्ध्यवासिनी भगवतीके स्थानमें नव रात्रि, तीन रात्रि, एक रात्रि उपचास या अयाचितव्रत अथवा नक्षत्रत कर अनेक प्रकारके उपचारोंसे भगवतीकी आराधना करनी चाहिये। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर और घर-घरमें सभी लोगोंको ज्ञान कर प्रसन्नचित्त होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि सभीको भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विशेषकर राजाओंको तो यह पूजन अवश्य करना चाहिये।

विजयकी इच्छा रखनेवाले राजाओंको प्रतिपदासे अष्टमी-पर्यन्त लोहाभिहारिक कर्म (अख-शख-पूजन) करना चाहिये। सर्वप्रथम पूर्वोत्तर द्वालवाली भूमियों नौ अथवा सात हाथ लम्बा-चौड़ा, पताकाओंसे सुसज्जित एक मण्डप बनाना चाहिये। उसमें अग्रिकोणमें तीन मेखला और पीपलके समान योनिसे युक्त एक अति सुन्दर एक हाथके कुण्डकी रचना करनी चाहिये। राजाके चिह्न—छत्र, चामर, सिंहासन, अश्व, घजा, पताका आदि और सभी प्रकारके अख-शख, मण्डपमें लाकर रखें। उन सबका अधिवासन करें। इसके अनन्तर ब्राह्मणको चाहिये कि वह स्नानकर खेत वस्त्र धारणकर मण्डपादिकी पूजा करे और फिर औंकारपूर्वक राजचिह्नोंके निर्दिष्ट मन्त्रोद्घार घृतसे संयुक्त पायससे हवन-कर्म करे। पूर्वकालमें बहुत ही बलवान्, शक्तिशाली लोह नामका एक दैत्य पैदा हुआ था। उसको देवताओंने मारकर खण्ड-खण्ड कर पृथ्वीपर गिरा दिया। वही दैत्य आज लोहाके रूपमें दिखायी पड़ता है। उसीके अङ्गोंसे ही विभिन्न प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये उसी

समयसे लोहाभिहारिक कर्म राजाओंको विजय प्राप्त करनेमें सहायक सिद्ध हुआ, ऐसा क्राचियनें बतलाया है। हवनका बचा हुआ शेष पायस हाथी और घोड़ोंको खिलाकर उनको अलंकृत कर माझलिक घोष करते हुए रक्षकोंके साथ समारोहपूर्वक नगरमें शुभाना चाहिये। राजाओं भी प्रतिदिन खानकर पितरों और देवताओंकी पूजा करनेके बाद राजचिह्नोंकी भी भलीभांति पूजा करनी चाहिये। इससे राजाओंके विजय, कीर्ति, आशु, यश तथा बलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार लोहाभिहारिक कर्म करनेके अनन्तर अष्टमीके दिन पूर्वाह्नमें ज्ञान कर नियमपूर्वक सुवर्ण, चाँदी, पीपल, ताँबा, मृत्तिका, पावाण, काष्ठ आदिकी दुर्गाकी सुन्दर मूर्ति बनाकर उत्तम सुसज्जित स्थानके बीच सिंहासनके ऊपर स्थापित करें। कुंकुम, चन्दन, सिंदूर आदिसे उस मूर्तिको चर्चित कर कमल आदि पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे अनेक बाजे-गाजेके साथ उनका पूजन करना चाहिये। बन्दीजन सुन्ति करें। बहुतसे लोग छत्र-चामर आदि राजचिह्न लेकर चारों ओर खड़े होकर स्थित रहें। दीक्षायुक्त राजा पुरोहितके साथ विल्वपत्रोंसे भगवतीकी इस मन्त्रसे पूजा करें—

जयन्ती मङ्गलसा काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

अमृतोद्धवः श्रीनृक्षो महादेवीत्रियः सदा ।

विल्वपत्रं प्रवच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥

(उत्तरपर्व ११८। ८६-८७)

इस प्रकार पूजनकर उसी दिनसे द्रोणपुष्टी (गूमा) से पूजा करनी चाहिये। असुरोंके साथ युद्ध करनेसे जो क्षति भगवतीके शरीरके हुई उसकी पूर्ति द्रोणपुष्टीसे ही हुई। इसलिये द्रोणपुष्टी भगवतीको अल्पत श्रिय है। फिर शत्रुओंके वधके लिये खड़कों प्रणामकर सुमिक्ष, राज्य और अपने विजयकी प्राप्ति-हेतु भगवतीसे प्रार्थना करनी चाहिये और उनका ध्यान तथा इस सुन्तिका पाठ करना चाहिये—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसमिक्षके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

कुंकुमेन समालये चन्दनेन विलेपिते ।

विल्वपत्रकृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः ॥

(उत्तरपर्व १३८। ९३-९४)

इस प्रकार अष्टमीको सब प्रकारसे भगवतीका पूजन कर रात्रिको जागरण करना चाहिये और नृत्यादिक उत्सव करना चाहिये। प्रसन्नतापूर्वक रात्रिके बीत जानेपर नवमीको प्रातःकाल भगवतीकी बड़े समारोहके साथ विशेष पूजा करनी चाहिये। अपराह्न-समयमें रथके बीच भगवती दुर्गाकी प्रतिमाको स्थापित कर पूरे राज्य भरमें भ्रमण करना चाहिये। अपनी सेनासहित राजाको भी साथ रहना चाहिये।

सभी प्रकारके विद्वानोंकी निवृत्तिके लिये भूतशान्ति करनी

चाहिये। जिससे यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो। इस विधिसे जो राजा अथवा सामान्य व्यक्ति भगवतीकी यात्रा करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे छूटकर भगवतीके लोकको प्राप्त कर लेता है और उस व्यक्तिको शत्रु, चोर, ग्रह, विष आदिका भय नहीं होता। भगवतीके भक्त सदा नीरोग, सुखी और निर्झय हो जाते हैं। जो व्यक्ति भगवतीके उत्सव-विधिका श्रवण करता है या पढ़ता है, उसके भी सभी अमङ्गल दूर हो जाते हैं।

(अध्याय १३८)

—४५४—

इन्द्रध्वजोत्सवके प्रसंगमें उत्परिचर वसुका वृत्तान्त

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय ब्रह्मा आदि देवताओंने 'इन्द्रको विजय प्राप्त हो', इसलिये ध्वजयष्टिका निर्माण किया। ध्वजयष्टिको देवताओं, सिद्ध-विद्याभर तथा नाग आदिने मेरु पर्वतपर स्थापित कर सभी उपचारों—पुण्य, धूप तथा दीपादिसे उसकी पूजा की और अनेक प्रकारके आभूषण, छत्र, घण्टा, किंकिणी आदिसे उसे अलंकृत किया। उस ध्वजयष्टिको देखकर दैत्य त्रस्त हो गये और युद्धमें देवताओंने उन्हें पराजित कर स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। दैत्य पाताल लोकको चले गये। उसी दिनसे देवता उस इन्द्रयष्टिका पूजन और उत्सव करने लगे।

एक समय अपने महान् पुण्य-प्रतापके कारण राजा उत्परिचर वसु स्वर्णमें आये। उनका देवताओंने बहुत सम्मान किया। उनसे प्रसन्न होकर इन्द्रने वह ध्वज उन्हें दिया और वर देते हुए कहा कि पृथ्वीमें इस ध्वजकी आप पूजा करें, इससे आपके राज्यके सभी दोष दूर हो जायेंगे और जो भी राजा वर्षा-ऋतुमें (भाद्रपद शुक्ल द्वादशी) श्रवण नक्षत्रमें इसका पूजन करेगा, उसके राज्यमें क्षेम और सुभिक्ष बना रहेगा, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होगा, प्रजाएं प्रसन्न एवं नीरोग होंगी, सर्वत्र धार्मिक यज्ञ होंगे। राज्यमें प्रचुर धन-सम्पत्ति होगी। इन्द्रका यह वचन सुनकर राजा उत्परिचर वसु इन्द्र-ध्वजको लेकर अपने नगरमें चले आये और प्रतिवर्ष इन्द्र-ध्वजकी पूजा कर उत्सव मनाने लगे। इस ध्वजयष्टिको भी प्रत्यक्ष देवी माना गया है।

अब मैं इन्द्रध्वजके उत्सवकी विधि बता रहा हूँ। बीस हाथ लंबे, सुपुष्ट, उत्तम काष्ठकी एक यष्टि बनाकर उसे सुन्दर

रंग-विरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित करे। उसमें तेरह आभूषण लगवाये। पहला आभूषण पिटक चौकोर होता है, इसे 'लोकपाल पिटक' कहते हैं, दूसरा आभूषण लाल रेंगका वृत्ताकार होता है, इसी प्रकार अन्य देवसम्बन्धी पिटकोंका निर्माण कर तथा यष्टिमें बाँधकर कुशा, पुष्पमाला, घण्टा, चामर आदिसे सम्बन्धित उस ध्वजको स्थापित करे। अनन्तर हवन कराकर गुडसे सुक मिष्ठान और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। भोजनोपरान्त उन्हें दक्षिणा दे। उस ध्वजको धीरिसे खड़ाकर स्थापित कर दे। नौ दिन या सात दिनतक उत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके नृत्य, गायन, बादन कराते हुए मल्लयुद्ध आदि उत्सव भी कराने चाहिये। वस्त्राभूषण तथा स्वादिष्ट भोजनादिसे सभी लोगोंको संतुष्ट कर सम्मानित करना चाहिये। रात्रिको जागरण कर ध्वजकी भलीभांति रक्षा करनी चाहिये।

इन्द्रध्वजका पूजन, अर्चन तथा उत्सवादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। यदि एक वर्ष करनेके बाद दूसरे वर्ष किसी व्यवधानके कारण पूजनादि कार्य न हो सके तो पुनः बारह वर्ष बाद ही करना चाहिये। ध्वजके अङ्ग-भङ्ग होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। यदि ध्वजपर कौआ बैठ जाय तो दुर्धिक्ष पड़ता है, उलूक बैठे तो राजाकी मृत्यु हो जाती है। कपोत बैठे तो प्रजाका विनाश होता है। इसलिये सावधान होकर उसकी रक्षा करनी चाहिये और भक्तिपूर्वक इन्द्रध्वजका उत्थापनकर पूजन करना चाहिये। यदि प्रमादवश ध्वज गिर पड़े या टूट जाय तो सोने अथवा चाँदीका ध्वज बनाकर उसका उत्थापन और अर्चनकर शान्तिक-पैष्टिक

आदि कर्म सम्पन्न कराये। ब्राह्मणको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। इस विधिसे जो राजा इन्द्रधनुजकी यात्रा एवं पूजा करता है, उसके गण्डमें यथेष्ट बृह्णि होती है। मृत्यु और

अनेक प्रकारके ईति-भीति आदि दुयोगों, कठ्ठोका भय नहीं रहता तथा राजा शत्रुओंको पराजित कर चिर कालतक राज्य-सुख भोगकर अन्त समयमें इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय १३९)

दीपमालिकोत्सव

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर दानवराज बलिको छलकर इन्द्रको राज्यका भार सौंप दिया और राजा बलिको पाताल लोकमें स्थापित कर दिया। भगवान्ने बलिके यहाँ सदा रहना स्वीकार किया। कार्तिककी अमावास्याको यात्रिमें सारी पृथ्वीपर दैत्योंकी यथेष्ट चेष्टाएँ होती हैं।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! कौमुदीतिथिकी विधिको विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करें। उस दिन किस वस्तुका दान किया जाता है। किस देवताकी पूजा की जाती है तथा कौन-सी ब्रीडा करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको प्रभातके समय नरकके भयको दूर करनेके लिये स्नान अवश्य करना चाहिये। अपार्मार्ग (चिचिदा) के पत्र सिरके ऊपर मन्त्र पढ़ते हुए घुमायें। इसके बाद धर्मराजके नामों—यम, धर्मराज, मृत्यु, वैष्वस्तु, अनन्तक, काल तथा सर्वभूतक्षयका उच्चारण कर तर्पण करे। देवताओंकी पूजा करनेके बाद नरकसे बचनेके उद्देश्यसे दीप जलाये। प्रदोषके समय शिव, विष्णु, ब्रह्म आदिके मन्दिरोंमें, कोष्ठागार, चैत्य, सभामण्डप, नदीतट, महल, तड़ाग, उदान, वापी, मार्ग, हस्तिशाला तथा अश्वशाला आदि स्थानोंमें दीप प्रज्वलित करने चाहिये।

अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नानकर देवता और पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन-तर्पण आदि करे तथा पार्वती श्राद्ध करे। अनन्तर ब्राह्मणको दूध, दही, घृत और अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे और उन्हें संतुष्ट करे। अपशाङ्कालमें राजाद्वारा अपने राज्यमें यह घोषित करना चाहिये कि 'आज इस लोकमें बलिका शासन है। नगरके सभी

लोगोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने घरको स्वच्छ—साफ-सुधरा करके नाना प्रकारके रंग-बिरंगे तोरण-पताकाओं, पुष्पमालाओं तथा बंदनवारोंसे सजाना चाहिये। नगरके सभी लोगों अर्थात् नर-नारी, बाल-वृद्ध आदिको चाहिये कि सुन्दर उत्तम वस्त्र पहनकर कुंकुम, चन्दन आदिका लेप लगाकर ताम्बूलका भक्षण करते हुए आनन्दपूर्वक नृत्य-गीतादिकोंका आयोजन करें।' इस प्रकार अतीव उल्लाससे एवं प्रीतिपूर्वक इस दिन दीपोत्सव मनाना चाहिये। प्रदोषके समय दीपमाला प्रज्वलित कर अनेक प्रकारके दीप-वृक्ष खड़े करने चाहिये। उस समय राक्षस लोकमें विचारण करते हैं। उनके भयको दूर करनेके लिये ब्रेष्ट कन्याओंको दीप-वृक्षोंपर तण्डुल (धानका लावा) फेंकते हुए दीपकोंसे नीराजन करना चाहिये। दीपमालाओंके जलानेसे प्रदोष-वेळा दोषरहित हो जाती है और राक्षसादिका भय दूर हो जाता है। इस प्रकार अति शोभासम्पन्न नगरकी शोभा देखनेके उद्देश्यसे राजाको अपने भित्र, मन्त्री आदिके साथ अर्धरात्रिके समय धीरे-धीरे पैदल ही चलना चाहिये। राजकर्मचारी भी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये रहें। पूरे नगरकी रमणीयता देखकर राजाको यह मानना चाहिये कि राजा बलि मेरे ऊपर आज प्रसन्न हो गये होंगे। फिर राजा अपने महलमें बापस आ जाय।

आधी रात बीत जानेपर जब सब लोग निद्रामें हो, उस समय घरकी लियोंको चाहिये कि वे सूप बजाते हुए घरभरमें घूमती हुई आँगनतक आयें और इस प्रकार वे दण्डा—अलक्ष्मीका अपने घरसे निस्सारण करें। प्रातःकाल होते ही राजाको चाहिये कि वस्त्र, आभूषण आदि देकर ब्राह्मणों, सत्पुरुषोंको संतुष्ट करे और भोजन, ताम्बूल देकर मधुर वचनोंसे पण्डितोंका सल्कार करे तथा सामन्त, सिपाही और

१-मन्त्र इस प्रकार है—

हर पापमार्गं भ्राम्यमार्गं पुनः पुनः।

आपदं किलिंवं चापि ममपहर सर्वशः। अपार्मार्गं नमहेऽप्तु शरीरं मम शोधय॥ (उत्तरपर्व १४०। ९)

सेवक आदिको आभूषण, धन आदि देकर संतुष्ट करे तथा अनेक प्रकारके मल्लकीडा आदिका आयोजन करे। गजाको मध्याह्नके अनन्तर नगरके पूर्व दिशामें ऊचे स्थाप अथवा वृक्षोपर कुश और काशकी बनी मार्गपाली^५ बाँधकर उसकी पूजा करे। फिर हवन करे। अपनी प्रजाको भोजन देकर संतुष्ट करे। उस समय गजाको मार्गपालीकी आरती करनी चाहिये, यह आरती विजय प्रदान करती है। उसके बाद गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, गजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभी लोगोंको उस मार्गपालीके नीचेसे निकलना चाहिये। मार्गपालीको बाँधनेवाला अपने दोनों कुलांक उद्धार करता है। इसका लहून करनेवाले वर्षभर मुखी और नीरेंग रहते हैं। फिर भूमिपर पाँच रंगोंसे मण्डल लिखकर उसके मध्यमें प्रसन्नमुख, द्विभुज, कुण्डल धारण करनेवाले कूम्बाण्ड, बाण तथा मूर आदि दानवोंके साथ सर्वाभरणभूषित रानी विश्वावलीसहित गजा बलिकी मूर्तिकी स्थापना करे और कमल, कुमुद, कहार, तक कमल आदि पुष्पों तथा गन्ध, दीप, नैवेद्य, अक्षत और दीपकों तथा अनेक उपहारोंसे गजा बलिकी पूजा कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

बलिराज नमस्तु द्यं विरोचनसुत प्रभो ।
भूखिष्ठेऽस्त्रायते पर्जेयम् प्रतिगृह्णताम् ॥

(तात्पर्य २५७।५५)

इस प्रकार पूजन कर गतिको जागरणपूर्वक महोत्सव करना चाहिये । नगरके लोग अपने-अपने घरमें शायामै शेत

— 10 —

^४ शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन ।

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किया जाएगा?

तप्तुल बाँधकर राजा बलिको उसमें स्थापित कर फल-पुष्पादिसे पूजन करें और बलिके उद्देश्यसे दान करें, क्योंकि राजा बलिके लिये जो व्यक्ति दान देता है, उसका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर बलिसे पृथ्वीको प्राप्त किया और यह कार्तिकी अमावास्या तिथि राजा बलिको प्रदान की, उसी दिनसे यह कौमुदीका उत्सव प्रवृत्त हुआ है^१। यह तिथि सभी उपद्रव, सभी प्रकारके विष, शोक आदिको दूर करनेवाली है। धन, पुष्टि, सुख आदि प्रदान करती है। 'कु' यह पृथ्वीका वाचक शब्द है और 'मुदी'का अर्थ होता है प्रसन्नता। इसलिये पृथ्वीपर सबको हर्ष देनेके कारण इसका नाम कौमुदी पड़ा। जो राजा वर्षभरमें एक दिन राजा बलिका उत्सव करता है, उसके राज्यमें रोग, शत्रु, महामरी और दुर्भिकाका भय नहीं होता। सुपिष्ठ, आरोग्य और सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। इस कौमुदी लिथिको जो व्यक्ति जिस भावमें रहता है, उसे वर्षभर उसी भावकी प्राप्ति होती है। यदि व्यक्ति उस दिन रुदन कर रहा हो तो रुदन, हर्षित है तो हर्ष, दुःखी है तो दुःख, सुखी है तो सुख, भोगसे भोग, स्वस्थतासे स्वस्थता तथा दीन रहनेसे दीनताकी प्राप्ति होती है^२। इसलिये इस लिथिको हष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये। यह तिथि वैष्णवी भी है, दानवी भी है और पैकिकी भी है। दीपमालाके दिन जो व्यक्ति भक्तिसे राजा बलिका पूजन-अर्चन करता है, वह वर्षभर आनन्दपूर्वक सुखासे व्यतीत करता है और उसके सारे मनोरथ पर्ण हो जाते हैं। (अध्याय १४०)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! लक्ष्मीकी कामना-
बाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और
पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको प्रह्ययका समारम्भ करना
चाहिये। ऐसी सारांशी उत्तरानेका अन्यतरोन्तर उत्तरानेके प्रश्नान् प्रश्नों

१-मार्गपत्ती दरवाजेके पास बना हुआ स्थानगतद्वार है, जो कुश, काश, तृण आदि और आम तथा अशोकके पत्तेसे अलंकृत कर बनायी जाती

२-विष्णुना वसुधा लभ्या प्रीतेन वस्तये पुनः। उपकरणसे दत्तात्रासुराणां महोत्तमः ॥
ततः प्रभूति एवेन्द्र प्रसूत्वा कौमुदी पुनः। (उत्तरपर्व १४० । ५९-६०)

४-यह पाँच आवश्यकताएँ—निम्न, वैज्ञान, संगीताधिकारी, अधिकारीसंघ एवं शास्त्रिकलालम्बों प्रथम एवं पाँचवें शास्त्रिकलालम्बका समीक्षित रूप हैं।

एवं श्रुतियोद्भाग्य आदिष्ठ इस प्रहशशान्तिका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिर्योद्भाग्य बतलाये गये शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणद्वाग्य स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहों एवं प्रग्राघिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारके प्रहयज्ञ बतलाये हैं। पहला दस हजार आहुतियोंका अयुतहोम, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका लक्ष्मीहोम तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक कठोड़ आहुतियोंका कोटि-होम होता है। दस हजार आहुतियोंवाला प्रहयज्ञ नवप्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधि जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, प्रथम मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवक्षम्युष्णकी पूर्वोत्तर-दिशामें स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्सीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी प्रह कहे गये हैं। इन प्रहोंकी प्रतिमा क्रमशः ताँचा, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, चाँदी तथा लोहेसे बनानी चाहिये। श्वेत चावलोंद्वाग्य वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तर-कोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिण-पूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी प्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, सौवर्ण देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्याधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, साक्षी, लक्ष्मी तथा उमाको उनके पतिदेवताओंके साथ और अस्तिनीकुमारोंका भी व्याहुतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस

समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेत वर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीत वर्णका, शनि और राहुको कृष्ण वर्णका तथा केतुको धूप्र वर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो प्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगम्भित धूप दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अब्र (खीर) का, चन्द्रमाको धी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोक्षियाका, बुधको क्षीराष्ट्रिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको धी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजशैंगी नामक लताके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वाग्य पूजन करे।

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्रहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आम्रके पल्लवसे आच्छादित और दो खस्तोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पहुँचर ढाल दे और उसे पञ्चभङ्ग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आम्रके पल्लव) से युक्त कर दे। उसपर बरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। राजेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़शाल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम, कुण्ड और गोशालाकी मिट्टी लाकर उसे सर्वांगधिमिश्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' ऐसा कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् धी, जौ, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिंचिडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों प्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक प्रहके लिये मधु, धी और दही अथवा पायससे युक्त एक सौ आठ अथवा अद्वाईस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अँगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरोंह, शाखा और पतोंसे गहत

समिधाओंकी कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे। अनन्तर प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रहारा हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको 'आ कृष्णोन रजसा०' (यजु० ३३। ४३) —इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यको आहुति देनी चाहिये। पुनः 'इष्ट देवा०' (यजु० ९। ४०) इस मन्त्रसे चतुर्मासोंका आहुति दे। मंगलके लिये 'अग्निर्घृष्णा०' (यजु० १३। १४) इस मन्त्रसे आहुति दे। और देवगुरु बृहस्पतिके लिये 'बृहस्पते अति०' (यजु० २६। ३) ये मन्त्र माने गये हैं। शुक्रके लिये 'अश्रात्परि०' (यजु० १९। ७५) और शनैश्चरके लिये 'श्च नो देवीरधीष्य०' (यजु० ३६। १२) इस मन्त्रसे आहुति दे। राहुके लिये 'कथा नक्षित्र०' (यजु० २७। ३९) यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये 'केतुं कृष्णन्०' (यजु० २९। ३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें धी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् व्याहुतियोंका उच्चारण करके धीकी दस आहुतियाँ अग्रिमें ढाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करे।

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य सद्दै०' (ऋ० ४। ३। १, कृष्णयजु० तै० सं० १। ३। १४। १) इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि द्वा०' (वाजस० सं० ११। ५०) —इस मन्त्रसे, स्वामिकातिक्यके लिये 'स्यो ना०' इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं विष्णुः०' (यजु० ५। १५) इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीश्चानम०' (वाजस० २५। १८) इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिदेवताय०' —इस मन्त्रसे आहुति ढाले। इसी प्रकार यमके लिये 'आबं गौः०' (यजु० ३। ६) इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये 'ब्रह्मजज्ञानम०' (यजु० १३। ३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे०' (ऋक्षस० १। १२। १) यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये 'उद्गुतमं वरुणपाशम०' (ऋक्षस० १। २४। १५) यह मन्त्र कहा गया है। येदोंमें पृथ्वीके लिये

'पृथिव्यन्तरिक्षम०'—इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०' (वाजस० सं० ३१। १) यह मन्त्र कहा गया है।

हवन समाप्त हो जानेपर चार ब्राह्मण अभियेक-मन्त्रोद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका अभियेक करे और ऐसा कहें—'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता आपका अभियेक करें। जगदीश्वर वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्यण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये सभी आपको विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, ऐश्वर्यशाली यम, निर्विति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिवमालगण—ये सभी आपकी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेष्ठा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शान्ति, पुष्टि, क्वान्ति, तुष्टि—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पलियाँ हैं, आकर आपको अभिषिक्त करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक आपको अभिषिक्त करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, गौ, देवमाताएँ, देवपलियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अरु, सभी शर्व, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये आपको अभिषिक्त करें।'

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोद्वारा सर्वायधि एवं सम्पूर्ण सुगच्छित पदार्थोंसे युक्त जलसे झान करा दिये जानेके पश्चात् सपलीक यजमान शेष वस्त्र धारण करके शेष चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त चित्तवाले ऋत्विकोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देवर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलबाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ी पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये शेष रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेके दानका विधान है। यजमानको ये सर्वां दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देना चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके

आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गैरें अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। पर सर्वत्र मनोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेवाला विधान है।

दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—‘कपिले ! तुम गैहिणीरूप हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शहू ! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण ! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय दीज और अनन्त पुण्यके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीले वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो ! उसको दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अच्छ ! तुम अस्त्ररूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी ! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, कृष्ण (गोविन्द) नामवाली और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह ! चैंकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह-कर्म हल एवं अख आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग ! चैंकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ ! चैंकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी कल्याण प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशव तथा शिवकी शश्या कभी शून्य नहीं रहती, बल्कि लक्ष्मी तथा पार्वतीसे सदा सुशोभित रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शश्या जप्त-जप्तमें सुखसे सम्पन्न रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्न-दान करनेसे वे देवता मुझे शान्ति प्रदान करें। सभी दान भूमिदानकी सोलहर्षी कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो।’ इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुण्यमाला फरवरी १५—

और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजन् ! अब आप भक्तिपूर्वक ग्रहोंके स्वरूपोंको सुनें— (चित्र-प्रतिमादि विधानोंमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विहाजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कानि कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रसियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अक्षयुक्त हैं तथा उनके आभूषण भी श्वेत वर्णके हैं। धरणीनन्दन मंगलकी चार भुजाएँ हैं। वे अपने चारों हाथोंमें खड़, ढाल, गदा तथा वरद-मुद्रा धारण किये हैं, उनके शरीरकी कानि कलेके पुण्य-सरीखी है। वे लाल रंगकी पुण्यमाला और वस्त्र धारण करते हैं। ब्रुध पीले रंगकी पुण्यमाला और वस्त्र धारण करते हैं। पीत चन्दनसे अनुलिप्त हैं। वे दिव्य सोनेके रथपर विहाजमान हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु ब्रह्मसंति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी होनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शैनेश्वरकी शरीर-कानि इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, विशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। गहुका मुख सिंहके समान भूषित है। उनके हाथोंमें तलवार, कवच, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नीले रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा) में ऐसे ही यह प्रशस्त माने गये हैं। केन्तु बहुतेर हैं। उन सबकी दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूपवर्णकी हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंके किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी कैचाई अपने हाथके प्रमाणसे एक सी आठ अङ्गुल (साढ़े चार हाथ) की होनी चाहिये।

हे पाण्डुनन्दन ! यह मैंने आपको नवप्राहोंका स्वरूप बतलाया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमा बनाकर इनकी पूजा करे। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उस

बुद्धिमानको चाहिये कि उस ग्रहकी यत्नपूर्वक भलीभांति पूजा करके तत्प्रकाशत् शेष प्रहोकी भी अर्चना करे, क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये, क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्बिन्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोवाले यज्ञकी विधि बतला रहा हूँ, सुनिये।

विद्वानेनि सम्पूर्ण कथमनाओंकी सिद्धिके लिये लक्ष्यहोमका विधान किया है, क्योंकि यह पितरोंको परम त्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर बालू बना देना चाहिये।

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड^१ तैयार कराये। परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्ष्यहोमको अवृत्तहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्न-पूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पादित करना चाहिये। लक्ष्यहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन भेदलाओंसे युक्त होता है। देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो तीन परिधियोंसे युक्त हो।

इनमें पहली परिधि दो अनुकूल ऊँची शेष दो एक-एक अनुकूल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानेनि इन सबकी चौड़ाई दो अनुकूलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अनुकूल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भांति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। राजेन्द्र ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराहमुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुड़की भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'गरुड ! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके बाहन और नित्य विषरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।'

तत्प्रकाशत् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके प्रकाशत् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्रिके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धाराकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीमें, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, सुख बनवाकर उसे दो खंभोंपर रखकर उसके द्वारा अग्रिके ऊपर सम्पर्क प्रकारसे घीकी धारा गिराये। उस समय अग्रिसूक (ऋ० सं० १। १), विष्णुसूक (वाजसं० ५। १-२२), रुद्रसूक (वही १६) और इन्दु (सोम) सूक्त (ऋ० १। ९१) पाठ करना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका गान करना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान रान कर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्तिलिङ्गोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्त स्वभाववाले दो ही ऋत्तिलिङ्गोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फैसना चाहिये।

इसी प्रकार लक्ष्यहोममें अपने सामर्थकि अनुकूल मत्सर-रहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्तिलिङ्गोंको नियुक्त करना चाहिये। पाण्डवश्रेष्ठ ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कड़े,

१-'कलश' अग्रिसूक्ताङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

कुष्ठल और अंगूठी आदि सभी वस्तुएँ लक्ष्मोममें नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समुद्रिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये, क्योंकि अन्न-दानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विज्को और दक्षिणारहित यज्ञ यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शाश्वत नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्ष्मोम नहीं करना चाहिये, क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकरक हो जाता है। खल्प सम्बतिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे, अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रबलपूर्वक अर्चना करे, बहुतेके चक्करमें न पढ़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर

लक्ष्मोम करना चाहिये, क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कर्मनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुदगणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्यमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कर्मनासे इस लक्ष्मोमको विधिपूर्वक सम्पत्ति करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो ही ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुरार्थीको पुरुषकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भावार्थी सुन्दर पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, गज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा गज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस वसुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुर मात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्क्रमभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

(अध्याय १४१)

कोटिहोमका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! प्राचीन कलमें प्रतिष्ठान (पैठण) नामक नगरमें संवरण नामके एक महान् भाग्यशाली राजा थे। वे सभी शास्त्रोंमें निपुण, ब्रह्मतत्त्वके जाता, पितृभक्त तथा देव-ब्राह्मणके उपासक थे।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र महायोगी सनक राजा संवरणके पास आये। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको आसन देकर प्रणाम किया तथा अर्थ, पाद्य आदिसे उनका सत्कारकर अपना गन्ध और स्वयंको भी उनके लिये समर्पित किया। मुनिने भी राजाद्वारा किये गये अभिवादन और सत्कारको स्वीकर किया। उसके बाद ब्रह्मिसनकने अनेक राजाओं, महाराजाओंके चरित और इतिहास-पुण्य आदिकी कथाएँ उन्हें सुनायी। राजा कथा सुनकर आल्पविधार हो उठे। इसी अवसरपर राजा संवरणने जगत्के प्राणियोंके हितकी दृष्टिसे सनकजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—
‘देवर्णे ! मूरक्ष्य, उपलवृष्टि, ग्रहयुद्ध, अनावृष्टि, राज्योपद्रव आदि उत्पातोंकी शान्तिके लिये कोई उपाय बतानेकी कृपा करें, जिससे कि धन-धान्यकी वृद्धि, आरोग्य, सुख और स्वर्णकी

प्राप्ति हो।’ राजा संवरणकी प्रार्थनाको सुनकर सनकजीने कहा—‘राजन् ! सभी कार्योंकी सिद्धि करनेवाले शान्तिप्रद कोटिहोमकी विधि बता रहा हूँ, जिसके करनेसे ब्रह्महत्यादि पातक कूट जाते हैं। सभी उत्पात शान्त हो जाते हैं। साथ ही आरोग्य एवं सुखकी भी प्राप्ति होती है। इसका विधान इस प्रकार है—

सबसे पहले शुद्ध मुहूर्त देखकर देवालय, नदीके तटपर, वनमें अथवा घरमें कोटिहोम करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणक वरण कर गन्ध, अक्षत, पुण्य, माला, वस्त्र, आपूरण आदिसे उनका पूजनकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं नो गतिः पिता माता स्वं गतिस्त्वं परायणः ।

त्वद्वसादेन विप्रवेण सर्वे मे स्यान्पनोगतम् ॥

आपहृष्टोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुतमम् ॥

कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम् ॥

(उत्तरपर्व १४२ । १३-१८)

‘विप्रश्रेष्ठ ! आप ही हमलोगोंके माता-पिता हैं, आप ही

हमारे आश्रय हैं और आप ही गति हैं। आपके अनुग्रहसे हमारे सभी मनोरथ परिपूर्ण हो जायें। आपत्तिसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये तथा सार्वकामिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये आप कोटिहोम नामक उत्तम यज्ञ करा दें।'

आचार्यको भी श्रेष्ठ यस्त्र आदिसे अलंकृत होकर बिहान् ब्राह्मणोंके साथ पुण्याहवाचन करना चाहिये। पूर्व और उत्तरकी ओर ढालयुक्त समतल भूमिपर बने हुए मण्डपको ब्राह्मण सूत्र-द्वारा धैर दें। मण्डपका प्रमाण इस प्रकार है—एक सौ हाथ विस्तारका मण्डप उत्तम, पचास हाथका मध्यम तथा पच्चीस हाथका मण्डप निकृष्ट है, किन्तु शालि और सामध्यके अनुसार ही मण्डप बनाकर उसके बीचमें आठ हाथ संघा-चौड़ा, तीन मेखलासे युक्त, बारह अंगुलके विस्तारयुक्त योनिसहित एक चौरस कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके पूर्व दिशामें चार हाथ लंबी-चौड़ी लेदी बनाये, जो एक हाथ ऊँची हो। उसमें सभी देवताओंको स्थापित करे। मण्डपकी भूमिको गोबर-मिट्टीसे अच्छी तरह लीपकर पञ्चपल्लवोंसे सुसज्जित जलपूर्ण ऊँटह कलशोंको स्थापित करना चाहिये। मण्डपके ऊपर वितान और तोरण लगाने चाहिये। सब सामग्री एकत्रित कर पुण्याहवाचन, स्वस्त्रियाचन, जयशब्दपूर्वक शुद्ध दिनसे पुरोहितको हवन प्रारम्भ करना चाहिये। मण्डपके पूर्वमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, पक्षिममें रुद्र, उत्तरमें वसु, ईशानमें ग्रह, अग्निकोणमें मरुत् और शेष दिशाओंमें लोकपालोंकी (वेदियोंपर) स्थापना करे। गन्ध, अक्षत, पुण्य, धूप, दीप, वैदेष आदिसे वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंद्वारा सबका अलग-अलग पूजन और प्रार्थना करे।

इसके पश्चात् वेदपाठी ब्राह्मणोंसहित विधानपूर्वक कुण्डका संस्कार करे। कुण्डमें अग्नि प्रज्वलितकर उस अग्निका नाम धृतार्चिष रखे। विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, गृहमय, जितेन्द्रिय, स्वकर्मनिष्ठ शुद्ध और ज्ञानशक्तिसम्पन्न एक सौ ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे अथवा जिस संख्यामें उत्तम ब्राह्मण उपलब्ध हों, उनका ही वरण करना चाहिये। इसके बाद पञ्चमुख अग्निका ध्यान करना चाहिये। नामसहित उनकी सात जिह्वाओंकी पूजा करनी चाहिये। धुआंयुक्त अग्निमें हवन करना व्यर्थ होता है। इसलिये प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना चाहिये।

ऋग्वेदी ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदीको उत्तराभिमुख, सामवेदीको पश्चिमाभिमुख और अथर्ववेदी ब्राह्मणके दक्षिणाभिमुख बैठकर आधार और आन्यभागकी आहुतियाँ देनी चाहिये। पहले ब्रह्माका स्थापन कर इस कर्मको आरम्भ करना चाहिये। आदिमें 'प्रणव' लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण कर व्याहुतियोंसे हवन करना चाहिये। बी, काला तिल तथा जौ मिलाकर पलाशकी समिश्राओंसे कोटिहोम करना चाहिये। एक हजार आहुति पूर्ण होनेपर पूर्णाहुति करनी चाहिये। पुनः उसी प्रकार हवन करना चाहिये। इस विधिसे कोटिहोम करना चाहिये। इसमें दस हजार बार पूर्णाहुतियाँ दी जाती हैं। इसमें सभी ब्राह्मणों और यजमानको करम, क्रोध आदि दोषोंसे दूर रहना चाहिये।

कोटिहोमकी विधिको सुनकर राजा संवरणने कहा कि महर्ये ! इस कोटिहोममें बहुत अधिक समय लगेगा, इतने दिनतक संयमसे रहना बहुत ही कठिन कार्य है। इसलिये कृपाकर आप कोटिहोमकी संक्षिप्त विधि बतानेका कष्ट करे, जिससे कर्म समयमें यह निर्विघ पूर्ण हो जाय।

राजा के इस प्रकारके वचनको सुनकर सनक मुनिने कहा—'शजन ! कोटिहोम चार प्रकारका होता है—शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख। समयानुसार इन चारोंमेंसे जो भी होम हो सके वही करना चाहिये। एक हाथ प्रमाणवाले उत्तम एक सौ कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर एक-एक ब्राह्मणको अथवा समय कर्म रहनेपर प्रत्येक कुण्डपर दस-दस ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे। एक कुण्डमें अग्निका संस्कार कर उसी अग्निके अन्य कुण्डोंमें भी प्रज्वलित करना चाहिये। इस विधिद्वारा जो हवन किया जाता है, उससे एक ही कोटिहोम होता है, जो शतमुख होम कहलाता है। यदि समयका अभाव न हो तो दस कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर बीस-बीस ब्राह्मण हवनके लिये नियुक्त करने चाहिये। यह दशमुख नामक कोटिहोम है। यदि महीने-दो-महीनेका समय हो तो दो कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर पचास-पचास ब्राह्मणोंको हवनके लिये आमन्त्रित करना चाहिये। यह द्विमुख कोटिहोम है। अधिक-से-अधिक समय हो तो एक कुण्डमें अग्नि-स्थापन कर उत्तम कुलोत्पन्न वेदवेता सदाचारी ब्राह्मणोंसे हवन करना चाहिये। इस हवनमें ब्राह्मणोंकी संख्याका कोई

नियम नहीं और समयकी सीमा भी निश्चित नहीं है। यह एकमुख कोटिहोम स्वेच्छायज्ञ कहलाता है। इस स्वेच्छायज्ञमें बहुत समय लगता है और बीचमें अनेक प्रकारके विष्ण भी उत्पन्न हो जाते हैं। घन और शरीरकी स्थिरताका कुछ भी भरोसा नहीं है। इसलिये संक्षेपसे ही यज्ञ करना चाहिये।

यज्ञ सम्पन्न कर अच्छी प्रकारसे महोत्सव मनाना चाहिये। सभी ब्राह्मणोंको कटक, कुण्डल, बख्त, दक्षिणा, एक सौ गाय, एक सौ खोड़े और स्वर्ण आदि प्रदान करना चाहिये तथा पुरोहितकी पूजा करनी चाहिये। दीनों, अन्यों तथा कृपणों

आदिको भोजन देकर अन्तमें कलशोंके जलसे अवधृथ स्नान करे और ब्राह्मण यज्ञमानका अभिषेक करे। इस विधिसे जो रुजा या व्यक्ति कोटिहोम करता है, वह आरोग्य, पुत्र, राज्यवृद्धि, ऐश्वर्य, घन-धान्य प्राप्त कर सभी प्रकारसे संतुष्ट रहता है तथा उसके ग्रहपीड़ा भी नहीं भोगनी पड़ती। राज्यमें अनावृष्टि, उत्पात, महामारी, दुर्खिक्ष आदि कभी नहीं होते। सभी तपहके पाप और ग्रहोंकी पीड़ियोंके दूर करनेवाला शान्तिदायक यह कोटिहोम है, इसको करनेवाला व्यक्ति इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १४२)

—THREE—

महाशान्ति-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं आराधना करके क्रियाका आरम्भ करना चाहिये। भगवान् शंकरद्वारा कही गयी महाशान्तिका विधान बतलाता है, यह रुजाओंके लिये कल्याणकारी है तथा भयंकर विद्वोंको दूर करनेवाली है। इस महाशान्तिको रुजाके अधिषेक, यज्ञा तथा दुःखपके समय, दुर्निमित्तमें, ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें, विजली और उल्काके गिरनेपर, जन्म-नक्षत्रमें केतुके उदय होनेपर, पृथ्वी-कम्पन और प्रसूतिकालमें, भूलगपटानामें, मिथुन संततिके उत्पत्तिकालमें, राज्यके छत्र अथवा ध्वजके अपने स्थानसे पतनके समय, काक, उलूक और कबूतरके घरमें प्रवेश करनेपर, क्रूर ग्रहकी दृष्टि पड़नेपर या जन्मके समय क्रूर ग्रहोंके योग होनेपर, लग्नकुण्डलीमें द्वादश, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें बृहस्पति, शनि, सूर्य एवं मंगलके स्थित होनेपर तथा युद्धके समय, बख्त, आयुध, मणि, केश, गौ, अश्वके विनाशके समय, रात्रिमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़नेपर, घरके तुला-भंगके समय तथा सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिके समयमें यह महाशान्ति प्रशस्त मानी गयी है। इसके करनेसे सभी दुर्निमित शान्त हो जाते हैं। पाण्डव ! उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा शीलसम्पन्न वैदिक ब्राह्मणोंसे इस महाशान्तिको करना चाहिये। विशेषरूपसे अर्थव्येद, यजुर्वेद, तथा ऋष्यवेदके ज्ञाता, पवित्र ज्ञानसम्पत्र, जप-होमपरायण और अनेक कृच्छ्रादि व्रतोंके द्वारा शुद्ध व्यक्ति इसमें प्रशस्त माने गये हैं। प्रथम भगवान्की

दस या बारह हाथका एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसके मध्यमें चार हाथकी बेटी बनाये और आग्रेय दिशामें एक हाथ प्रमाणवाला एक सुन्दर कुण्ड बनवाये और वह कुण्ड तीन भेखलाओंसे युक्त तथा योनिसे विभूषित होना चाहिये। मण्डपके चन्दन, माला, तोरण आदिसे अलंकृत कर गोबरसे लीपना चाहिये। मण्डपमें बेटीके ऊपर आग्रेयादि कोणोंमें क्रमशः चार और बीचमें पौच्छाँ कलश स्थापित करना चाहिये। कलशोंके पञ्चपल्लवों, सर्वांगधि, पञ्चरत्न, रोचना, चन्दन, सप्तमूर्तिका, धान्य तथा पुण्य तीर्थके जल, नारिकेल आदिसे भलीभांति स्थापित करना चाहिये। ब्रह्मकूर्च-विधानसे पञ्चगव्यका निर्माण करे। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे कलशोंको अभिमन्त्रित कर उनका पूजन करे। मध्य कुम्भको रुद्रकुम्भ कहा जाता है।

इसके बाद स्वसिवाचन करना चाहिये। अनन्त अग्रिकार्य सम्पन्न करे। 'अग्नि दूरै' (यजु०२२। १७) इस मन्त्रके द्वारा कुण्डमें अग्नि स्थापित करे। 'हिरण्यगर्भः' (यजु० १३। ४) इस मन्त्रसे ब्रह्मासनको स्थापित करे। अग्नि-पूजनके अनन्तर आज्ञ (घृत) का संस्कार करे, अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञीय द्रव्योंको यथावत् स्थापित करना चाहिये। इसके बाद पुरुषसूक्त (यजु०३१। १-१६) का पाठ करते हुए

१-वर्तमान समयके लिये यह विषय अल्पत उपयोगी है। सम्पत्र, धर्मात्मा तथा रुजानीतिहोमोंके इसका आश्रय लेकर विष्णु-कल्याण करना चाहिये। आजकल विष्णुओं अनेक दैवी और सामाजिक उपद्रव व्याप्त हैं। कोटिहोमपर कोटिलक्राहोमालक-पद्मति आदि अनेक प्रथा प्रवर्तित हैं किन्तु यह प्रकारण भी उपयोगी है।

चरुका निर्माण करे। उसके सिद्ध होनेके बाद पृथ्वीपर स्थापित करे। इसके पश्चात् शामीकी अठारह तथा पलाशकी सात समिधाओंको अग्नि प्रज्ञालित करनेके लिये कुण्डमें डाले। आठार और आन्य-भाग-संज्ञक हवन करनेके बाद 'जातवेदसे' (ऋ० १। १९। १) इस प्रचारके द्वारा धीकी सात आहुतियाँ प्रदान करे। पुनः 'जातवेदसे' इस मन्त्रसे स्थालीयाकद्रव्यका हवन करे। 'तरत् स मन्त्री' (ऋ०९। ५८। १-४) इस सूक्तसे चार बार हवन करे। इसके बाद 'यमाय सोमं' (ऋ० १०। १४। १३) इस मन्त्रसे 'स्वाहा' शब्दका प्रयोगकर सात आहुतियाँ दे। तदनन्तर 'इदं विश्वार्थिं' (यजु०५। १५) इस मन्त्रसे सात बार आहुति दे। फिर २७ नष्टज्ञोंके लिये २७ आहुतियाँ दे। अनन्तर 'यत्कर्मणा' इसके द्वारा हवन करनेके बाद स्विष्टकृत् हवन करे। तदनन्तर घृतसहित तिलसे प्रह्लोम करे। इसके बाद प्रायश्चित्त-निर्मितक हवन करके होम-कर्मको समाप्त करे। तदनन्तर श्रेष्ठ द्विज यजमानके दुर्विनिमित्तकी शान्तिके लिये पांच कलशोंके जलसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम अभिषेक करे। 'सहस्राक्षेण' (ऋ० १०। १६१। ३) इस मन्त्रसे प्रथम-

कलशके जलसे, 'शतायुषा' द्वारा द्वितीय कलशके जलसे, 'समजोषा' (ऋ० ३। ४७। २) इस मन्त्रसे तृतीय कलशके जलसे, 'विश्वानि देवो' (ऋ०५। ८२। ५) इस मन्त्रसे चतुर्थ कलशके जलसे तथा 'ब्रह्मस्तु' इस मन्त्रसे पञ्चम कलशके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद 'नमोस्तु सर्वभूतेभ्यः' इस मन्त्रसे दिशाओंके बलि-नैवेद्य प्रदान करे।

यजमानके स्नान करनेके समय ब्राह्मणगण शान्तिका पाठ करें। चारों ओर शान्ति-जलसे जलकी धारा गिराये। अन्नमें पुण्याहावाचनपूर्वक शान्तिकर्मको सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूमि, रस्ता, वर्ष, शाय्या, आसन एवं दक्षिणा दे। दीन, अनाथ, विशिष्ट श्रोत्रियोंको भी भोजन आदि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयुकी बढ़ि और शाशुपर तत्क्षण विजय प्राप्त होती है तथा पुत्र-लाभ होता है। जैसे शस्त्रोंका प्रहार कवचसे हट जाता है, वैसे ही दैवी विनाश भी इस शान्तिकर्मसे दूर हो जाते हैं। अहिंसक, इन्द्रियसंयमी, धर्मसे धन अर्जित करनेवाला, दया और दक्षिणासे युक्त व्यक्तिके लिये सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं।

(अध्याय १४३)

विनायक-शान्ति^१

महाराज युधिष्ठिरने कहा—देवेश ! विभो ! अब आप विनायक-शान्तिकी विधि मुझे बतायें, जिसके करनेसे सभी मानव समस्त आपत्तियोंसे मुक्त हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! विनायकके प्रिय श्रेष्ठ शान्तिका मैं वर्णन करता हूँ। इसके आचरणसे सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं। यह विनायक-शान्ति सम्पूर्ण विज्ञोंको दूर करनेके लिये की जाती है। स्वप्रमें जलमें अवगाहन करना, मुण्डित सिरों तथा गेरुआ वस्त्रको देखना, मस्तकसहित शव, विना किसी कारणके ही दुःखी होना, कार्यमें असफल हो जाना इत्यादि विनायकद्वारा गृहीत होनेपर ही दिखायी देते हैं। विनायकद्वारा गृहीत हो जानेपर राजपुत्र राज्यको प्राप्त नहीं कर सकता, कुमारी पति नहीं प्राप्त कर सकती, गर्भिणी पुत्रको

और श्रोत्रिय आचार्यत्वको प्राप्त नहीं कर पाता। विद्यार्थी पढ़ नहीं पाता, व्यापारी व्यापारमें लाभ नहीं पाता और कृपक कृषिकार्यमें सफल नहीं होता।

इसलिये इन विज्ञोंको दूर करनेके लिये पुण्य दिनमें ऋषन-कार्य करना चाहिये। पीले सरसोंकी खली, घृत और सुगन्धित कुंकुमका उबटन लगाकर स्नान कर पवित्र हो जाय। ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। विधिपूर्वक कलश-स्थापन करे और ब्राह्मण अभिमन्त्रित जलके द्वारा यजमानका अभिषेक करे और इस प्रकार कहे—

सहस्रांशं शतधारमूर्खिणं वर्वनं कृतम् ।
तेन त्वामपिविज्ञामि पावामान्यः पुनर्नु ते ॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो ब्रह्मस्पतिः ।

१-अहिंसकस्य दानस्य धर्मार्जित धनस्य च। दयादाक्षिण्य युक्तस्य सर्वे सानुप्रस्था ग्रहाः ॥ (१४३-४५)

२-यह प्रकरण वाङ्मयलक्ष्य अदि शब्दः अधिकारा स्मृतियोंमें और पुण्योंमें भी इसी प्रकार प्राप्त होता है।

भगमिन्द्रसु वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥
यते केशेषु दौधार्थं सीमने वच्च पूर्णिनि ।
ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तद्ब्रह्मन् ते सदा ॥

(उत्तरपर्व १४४ । १२—२४)

—यैं तुम्हें अधिकृत कर रहा हैं, पावमानी ऋचाओंकी अधिष्ठात्रदेवता तुम्हें पवित्र करे । महाराजा वरुण, भगवान् सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण अपना-अपना तेज तुम्हें आधान करें । तुम्हारे केशों, सीमन्त, मस्तक, ललाट, कानों एवं आँखोंमें जो भी दौधार्थ है, उसको ये अप् देवता नष्ट करे ।

अनन्तर कुशाको दक्षिण हाथमें ग्रहण कर सरसोंके तेलसे हवन करे । मिति, सम्प्रित, साल, कशलकंटक, कूम्भाष्ठ तथा राजपुत्रके अन्तमें स्वाहा समन्वित कर हवन करे ।

चतुष्पथपर कुश विछाकर सूपमें इनके निमित बलि-नैवेद्य अर्पण करे । खिले हुए फूल तथा दूर्वासे अर्घ्य दे । मण्डलमें अर्घ्य प्रदानकर विनायककी माता अम्बिकाकी पूजा करे और यह प्रार्थना करे—मातः ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र तथा धन प्रदान करे और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें । अनन्तर सफेद वस्त्र, सफेद माला और खेत चन्दन धारणकर ब्राह्मणको भोजन कराये और गुरुको दो वस्त्र प्रदान करे । इस प्रकार ग्रहोंकी और विनायककी विधिपूर्वक पूजा करनेसे सम्पूर्ण कर्मकि फलकी प्राप्ति होती है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है । भगवान् सूर्य, कालिकाय एवं महागणपतिकी पूजा करके मनुष्य सभी सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है ।

(अध्याय १४४)

नक्षत्रार्चन-विधि (रोगावलिचक्र)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! एक बार कौशिकमुनि अग्रिहोत्र करनेके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए थे । उसी समय महर्षि गणनि उनसे पूछा—‘ब्रह्मन् ! बंदीगृहमें निरुद्ध हो अथवा विश्वम परिस्थितियोंमें अवरुद्ध, दस्यु, शत्रु अथवा हिंस पशुओंसे विधि हो तथा व्याधियोंसे पीड़ित तो ऐसे व्यक्तिकी कैसे मुक्ति हो सकती है । इसे आप मुझे बतलायें ।’

कौशिक मुनि बोले—गर्भाधानके समय, जन्म-नक्षत्रमें, मूल्यु-सम्बन्धी ज्ञान होनेपर जिसको रोग-व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उसे कष्ट तो होता ही है, उसकी मूल्यु भी सम्भाव्य है । यदि कृतिका नक्षत्रमें कोई व्याधि होती है तो वह पीड़ा नै राततक बनी रहती है । रोहिणीमें तीन राततक, मृगशिरामें पाँच राततक और यदि आष्टमिं रोग उत्पन्न हो तो वह व्याधि प्राण-वियोगिनी हो जाती है । पुर्वसु और पुष्य नक्षत्रमें सात रात, आश्लेषामें नौ रात, मध्यामें बीस दिन, पूर्वाकालगुनीमें दो मास, उत्तराकालगुनीमें तीन पक्ष (४५ दिन), हस्तमें स्वत्पक्षालिक पीड़ा, चित्रामें आधे मास, स्वातीमें दो मास, विशाखामें बीस दिन, अनुराधामें दस दिन, ज्येष्ठामें आधे मास

और मूलमें मूल्यु हो जाती है । पूर्वाखाढ़ामें पंद्रह दिन, उत्तराखाढ़ामें बीस दिन, श्रवणमें दो मास, धनिष्ठामें आधा मास, शतभिष्ठमें दस दिन, पूर्वाभाद्रपदमें नौ दिन, उत्तराभाद्रपदमें पंद्रह दिन, रेतीमें द-

था अश्विनीमें एक दिन-गत कष्ट होता है ।

मुने ! कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंमें व्याधि उत्पन्न होनेपर मनुष्यके प्राणतक भी चले जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । इसकी विशेष जानकारीके लिये ज्योतिशियोंसे भी परामर्श करना चाहिये ।

रोगके प्रारम्भिक नक्षत्रका ज्ञान हो जानेपर उस नक्षत्रके अधिदेवताके निमित निर्दिष्ट द्रव्योद्धारा हवन करनेसे रोग-व्याधिकी शान्ति हो जाती है । व्याधि नक्षत्रके किस चरणमें उत्पन्न हुई है, इसका ठीक पता लगाकर आपत्तिजनक स्थितियोंमें व्याधिसे मुक्ति के लिये उस नक्षत्रके स्वामीके मन्त्रोंसे अभिष्ट समिधाद्वारा हवन करना चाहिये । अश्विनी नक्षत्रमें क्षीरी (दूधवाले—बट, पीपल, खिरनी आदि) वृक्षोंकी समिधासे अश्विनीकुमारीके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये । भरणी

१-रूप देहि यशो देहि यशो भगं भावति देहि मे । पुत्रन् देहि भगं देहि सर्वकर्मांश देहि मे ॥ (१४४ । २१)

२-ज्योतिर्निवन्ध आदि ज्यौतिल-घन्योंके अनुसार आर्द्ध, आश्लेषा, पूष्य, स्वती, ज्येष्ठा, पूर्वाखाढ़ा और पूर्व भा. में मूल्यु भय होता है जो बीमारी स्थिर हो जाती है । अतः इसको निमित्तके स्थिरे तत्त्व, मन्त्र आदिक ब्रह्महवन करना चाहिये ।

'यमदैवत यमाय स्वाहा' इस मन्त्रसे धी, मधु और तिलसे हृष्ण करना चाहिये। इसी प्रकार कृतिकामे भी अग्रिके मन्त्रोंसे हृष्ण करना चाहिये। रोहिणीमें प्रजापतिके मन्त्रसे, मृगशिरामें धीसे, पुनर्वसुमें दितिदेवीके लिये दूध और धी-मिश्रित आहुति प्रदान करनी चाहिये। पुण्यमें ब्रह्मस्तिके मन्त्रोंसे धी और दूधद्वारा, आशलेषाके देवता सर्प हैं, अतः बड़के दूध और धीसे मिश्रित आहुति देनी चाहिये। इसी प्रकार स्वाती, मूल

आदि सभी नक्षत्रोंमें धी-मिश्रित आहुति देनी चाहिये।

मुने ! ब्रह्माजीने यह बतलाया है कि विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रद्वारा भी प्रायः एक सहस्र (१,०००) घृतकी आहुतियाँ देनेपर सम्पूर्ण ज्वरों एवं व्याधियोंका सद्यः उपशमन हो सकता है। क्योंकि गायत्रीका अर्थ ही है कि गान, हवन, पूजनद्वारा त्राण करनेवाली।

(अध्याय १४५)

अपराधशतशमन-ब्रत

महर्षि वसिष्ठजीने राजा इक्षवाकुसे कहा—राजन् !
अब आपके एक ब्रत बतला रहा है, जिससे महाफलकी प्राप्ति होती है और सैकड़ों दोष—पापोंका शमन हो जाता है।

राजा इक्षवाकुने पूछा—ब्रह्मन् ! मुख्यरूपसे सौ अपराध या दोष-पाप कौन हैं और वह ब्रत कौन-सा है, जिसके अनुष्ठानमात्रसे उनकी शान्ति हो जाती है। इस ब्रतमें किस देवताकी पूजा होती है और किस समय यह ब्रत किया जाता है, आप बतलानेकी कृपा करें।

महर्षि वसिष्ठ बोले—महाबाहो ! अपराधशतशमन-ब्रतको सुनो, जिसका अनुष्ठान करनेमात्रसे मनुष्यको सभी प्रकरणकी कामनाएँ और मुक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कृत-अकृत सभी गुरुतर पाप रुद्धिकी गशिके समान जलकर भस्म हो जाते हैं। राजन् ! अब आप इन अपराधोंके नाम और लक्षणको सुनें—अनाश्रित्य—चारों आश्रमोंसे बाहर रहकर स्वच्छन्द नासिक-वृत्ति अपनाना, अनग्रिता—अग्रिहोत्र, हृष्ण आदि सभी कायोंका परित्याग, ब्रतहीनता—कोई भी सत्य, ब्रह्मचर्य और एकादशी आदि ब्रतोंका पालन न करना, अदातृत्व—कभी भी कुछ भी अन्न, धन या आशीर्वाद आदि न देना, अशौच, निर्दयता, लोभ, क्षमाशूद्यता, जनपीड़ा, प्रपञ्चमें पड़ना, अमङ्गल, ब्रतभङ्ग, नासिकता, वेदनिन्दा, कठोरता, असत्यता, हिंसा, चोरी, इन्द्रिय-परायणता, मनको बशमें न रखना, ब्रोथ, ईर्ष्या, द्रेष, दम्भ, शाढ़ता, धूर्तता, कटुभाषण, प्रमाद, रुदी, पुत्र, माता आदिका पालन न करना, अपूज्यकी पूजा करना, आदुका त्याग, जप न करना, बलिवैश्वदेव तथा पञ्चवज्रका त्याग, संध्या, तर्पण, हृष्ण आदि नित्यकर्मोंका परित्याग, अग्रिका बुझाना, ऋतुकालके बिना ही रुदी-सम्पर्क, पर्व आदिमें रुदी-

सहवास, चुगली, दूसरेकी रुदीके साथ गमन, वेश्यागमिता, अपात्रको दान देना, अल्पदान, अन्त्यजसङ्क, माता-पिताकी सेवा न करना, सबसे झगड़ा करना, पुण्य और स्मृतियोंका अनादर करना, अभक्ष्य-भक्षण, स्वामि-द्वारा, बिना विचारे कार्य करना, कृषि-कार्य करना, भार्यासंग्रह, मनपर विजय न प्राप्त करना, विद्याकी विस्मृति, शास्त्रका त्याग करना, ब्रह्म लेकर वापस न करना, विक्रकर्म करना, सदा कामनाओंका दास होना, भार्या, पुत्र एवं कन्या आदिका विक्रय करना, पशु-मैथुन, इन्धनार्थ वृक्ष काटना, बिलोंमें पानी आदि डालना, तड़ागादिके जलको दूषित करना, विद्याका विक्रय, स्ववृत्तिका परित्याग, याचना, कुमित्रता, रुदी-वध, गो-वध, मित्र-वध, भूण-हत्या, पौरोहित्य, दूसरेका अन्न और शूद्रके अन्नको ब्रह्म करना, शूद्रका अग्रिकर्म सम्पत्र करना, विधिविहीन कर्मका निष्पादन, कुपूरता, विद्वान् होनेपर याचना करना, याचालता, प्रतिप्रह लेना, श्रौत-संस्कारहीनता, आर्त व्यक्तिका दुःख दूर न करना, ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी, गुरुपतीगमन तथा पातकियोंके साथ सम्बन्ध स्थापित करना—ये अपराध हैं। अन्य तत्त्ववेत्ताओंने भी विधिपूर्वक अपराधोंको कहा है।

अनन्ध ! भगवान् सत्येशकी पूजा करनेसे तत्क्षण सभी प्रकारके अपराध नष्ट हो जाते हैं। मुनव्योद्वारा ब्रत और पूजन करनेसे भगवान् स्वयं उसके बशमें हो जाते हैं। ये जगत्पाति भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ सत्यरूपी घजके ऊपर स्थित रहते हैं। इनके पूर्वमें वामदेव, दक्षिणमें नृसिंह भगवान्, पश्चिममें भगवान् कपिल, उत्तरमें वराह तथा ऊर्ध्वमें अच्युत स्थित रहते हैं। इन्हें ही ब्रह्मपञ्चक जानना चाहिये। ये सत्येश हैं, इन्हेंकी सदैव पूजा करनी चाहिये। ये सत्येश

भगवान् पद्म, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शंख तथा सुदर्शन चक्र धारण किये रहते हैं। उनके चरणकमलके अंग्रभागसे पवित्र गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी आठ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उमीलनी, वंजुली, विसृशा और विवर्धन। वे भगवान् हरि शुक्लाम्बरधारी, सौम्य, प्रसन्नमुख, सभी आभरणोंसे युक्त, शोभायमान और भुक्ति-मुक्तिप्रदाता हैं।

राजन्! उनकी जिस विधिसे प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये, उसे आप सुनें। मार्गशीर्ष आदि बारह मासोंमें द्वादशी, अमावास्या अथवा अष्टमीके दिन शुक्ल या कृष्ण पक्षका विचार किये बिना शुद्ध होकर उपवासपूर्वक ब्रत करना चाहिये। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें जनार्दनकी पूजा करनेका संकल्प लेना चाहिये। इस प्रकार नियम ग्रहण करके दन्तशाखनपूर्वक तडाग, पुष्कर अथवा घरपर ही खानकर नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। एक पल सुखणाके माससे लक्ष्मीसहित सत्येशकी प्रतिमा बनवाये जो अष्टशक्तियोंसे समन्वित पदासनपर स्थित हो। दुर्घटे पूरित कुम्भपर स्थित सुवर्ण-पदाके ऊपर उस प्रतिमाको स्थापित करे। उस पदाकी कर्णिकाओंपर देवाधिदेवकी आठ शक्तियोंकी पूजा करे। अनन्तर भगवान् सत्येश (विष्णु) और सत्या (लक्ष्मी) की विधिवत् विविध पाद्यादि उपचारोंसे पूजा करे। अनन्तर इस

प्रकार प्रार्थना करे—

कृष्ण कृष्ण प्रभो राम राम कृष्ण विभो हो।

त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव॥

पूजा चेयं मया दत्ता पितामह जगदुरो।

गृहण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १४६। ४८-५९)

अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको दान देकर ब्रतका समाप्तन करना चाहिये। इस ब्रतको दोनों पक्षोंमें करे और वर्ष पूरा होनेपर उद्यापन करे। ब्राह्मणसे प्रार्थना करे कि हे ब्राह्मण देवता! मेरे सभी पाप दूर हो जायें। ब्राह्मण कहें—‘आपके सभी पाप एवं दुःख दूर हो जायें।’ तदनन्तर ब्राह्मणको वह मूर्ति समर्पित कर समाप्तन करना चाहिये।

राजन्! ब्रह्माजीने कहा है कि इस ब्रतको करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। जो फल सभी वेदोंके अध्ययनसे और सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे प्राप्त होता है, उससे कोटिगुना फल इस ब्रतके आचरणसे होता है और ब्रतीको इस लोकमें धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, मित्र तथा सुखकी प्राप्ति होती है। ब्रतको करनेवाले व्यक्तिको विद्या और आरोग्यकी भी प्राप्ति होती है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। जो इसको पढ़ता अथवा सुनता है, उसके भी सभी पाप दूर हो जाते हैं। (आध्याय १४६)

काञ्चनपुरीब्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! एक बार विष्णुके उत्पत्ति, पालन और संहारकारक अक्षर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु क्षेत्रद्वीपमें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय जगन्माता लक्ष्मीने उनके चरणोंमें पञ्चाङ्ग प्रणाम कर उनसे पूजा—‘भगवन् ! आप भक्तोंपर अनुकम्मा करनेवाले हैं। महाभाग ! मुझपर भी दया करके आप कोई ऐसा रूप-सौभाग्यदायक सर्वोत्तम ब्रत बतलायें, जिसके आचरणसे समस्त तीर्थ आदि पुण्य कर्मोंका फल प्राप्त हो जाय !’

भगवान् विष्णु बोले—देवि ! जिस प्रकार आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम, वर्णोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, देवताओंमें विष्णु (मैं) तथा विद्योंमें तुम (लक्ष्मी) श्रेष्ठ हो, उसी प्रकार ब्रतोंमें काञ्चनपुरी ब्रत उत्तम है। इस ब्रतका पहले

भगवती पार्वतीने भगवान् शंखकरके साथ अनुष्ठान किया था। सीताजीने भी भगवान् श्रीरामके साथ इसी ब्रतका पालन कर अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया था। दमयन्तीके वियोगमें राजा नलने भी इस ब्रतको किया था। बनवासी पाण्डुवोंने भी द्रौपदीके साथ इस ब्रतका आचरण किया और सभी कर्णोंमें मुक्त होकर साम्राज्य-लाभ किया। भद्रे ! यह ब्रत स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। रम्भा, मेनका, इन्द्रजी (शत्रु) सत्यभामा, शार्णिली, अरुण्यती, उर्वशी तथा देवदत्ता आदि श्रेष्ठ लियोंने इस ब्रतका आचरण करके सौभाग्य, सुख और अपने मनोरथ प्राप्त किये थे। पातालमें नागकन्याओंने और गायत्री, सरस्वती एवं सावित्री आदि उत्तम देवियों तथा अन्य नारियोंने सभी कामनाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे इस ब्रतका

अनुष्ठान किया था । यह व्रत सभी प्रकारके दुःखोंका नाशक, प्रीतिवर्धक तथा व्रतोंमें उत्तम है, इसलिये इस व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ । इसके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले, तौल-मापमें कमी करनेवाले, कन्या बेचनेवाले, गौ बेचनेवाले, अगम्यागमनमें लिप्त, मांसभक्षी, जारजपुत्रके यहाँ भोजन करनेवाले, भूमिका हरण करनेवाले आदि पापकर्मी भी पापोंसे निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं । इसकी विधि इस प्रकार है—

देवि ! यह काञ्छनपुरी-व्रत किसी महीनेमें शुक्र या कृष्ण पश्चकी तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावास्या तथा अहूमीको उपवासपूर्वक किया जा सकता है । व्रती इस दिन काञ्छनपुरी बनवाकर दान करे । वह पूर्वाह्नमें नदी आदिके शुद्ध निर्मल जलमें खान करे । पहले मन्त्रपूर्वक पवित्र मृतिका ग्रहणकर उसे शारीरमें लगाये फिर जलमें गोते लगाये । इस विधिसे खान कर शुद्धात्मा ब्रती अपने घर आये और उस दिन किसी पाखण्डी, विधर्मी, धूर्त, शठ आदिसे वार्तालाप न करे । अपना हाथ-पैर धोकर पवित्र हो आचमन करे । एक उत्तम जलसे भए स्वर्णयुक्त शंख लेकर उस जलको द्वादशाक्षर-मन्त्रसे अधिमन्त्रित कर 'हरि' इस मन्त्रका जप कर जल पी ले । शमीवृक्षसे चार स्तम्भोंसे युक्त एक वेदी बनाये जो चार हाथ प्रमाणकी हो । वेदीको पुष्टमाला, वितान, दिव्य धूप आदिसे अधिवासित और अलंकृत कर ले । वेदीके मध्यमें एक पद्मकी रचना करे । मण्डलके बीचमें सुन्दर एक भद्रपीठका निर्माण कराये । भद्रपीठके ऊपर सुन्दर आसनपर लक्ष्मीके साथ भगवान् जनार्दनकी स्थापना करे । मण्डलके अप्र भागमें जलपूर्ण कलशकी स्थापना कर उसमें क्षीरसागरकी कल्पना करे । कलशपर चार पल, दो पल अथवा एक पलकी काञ्छन-पुरीकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर स्थापित करे । उसके आगे कदली-स्तम्भ और तोरण लगाये । फिर ब्राह्मणोद्वारा उसकी प्रतिष्ठा कराये ।

उस पुरीके मध्यमें विष्णुसहित लक्ष्मीकी सुवर्णमय प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये । पञ्चमूतसे देवेश नाशयण तथा लक्ष्मीको खान कराकर मन्त्रोक्त उच्चारण करते हुए चन्दन, पुण्य आदि उपचारोद्वारा उनका पूजन करना चाहिये । इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा भी यथाक्रमसे करनी चाहिये ।

विष्णुनिवारणके लिये गणपति तथा नवप्रहोक्त्र पूजन कर हवन करना चाहिये । तत्पक्षात् पायस, सोहाल, फेनी, मोटक आदिका नैवेद्य अर्पणकर देश-कालके अनुसार फल भी अर्पण करना चाहिये । दस दिशाओंमें दस धूतपूरित दीपक प्रज्वलित करे । पुष्टमाला, चन्दन आदि भी चढ़ाये, साथ ही विष्णुसुतवराज, पुष्टमूक आदिका पाठ करे । सोलह सप्तलीक ब्राह्मणोंमें लक्ष्मी-विष्णुकी भावना कर पूजा करे । अन्तमें पूजित सभी पदार्थ उन्हें निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'ब्राह्मण देवता ! भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हो जायें ।' शत्र्या-दान तथा गो-दान भी करे । जो काञ्छनपुरी आदिकी प्रतिमा पूजित की गयी है, उसे व्रती देख न सके, इसलिये वस्त्रसे आच्छादितकर अपने नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर दीपके साथ मण्डपमें ले आये और आचार्य कहे—'आप सभी कामनाओंको देनेवाली एवं दुःख-दीर्घायिको दूर करनेवाली इस रमणीय काञ्छनपुरीका दर्शन करें ।'

अनन्तर व्रती नेत्रके वस्त्रको खोलकर गुरुके सम्मुख पुष्टाङ्गलि देकर उस शुभ पुरीका दर्शन करे । तदनन्तर चार्दी, तांबे अथवा किसी शाखमें पञ्चल, गङ्गाजल, फल, सरसों, अक्षत, रोचना तथा दहीमिक्रित अर्घ्य बनाकर भगवान् विष्णुको प्रदान करे और प्रार्थना करे—'सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीनाशयण ! आप इस सुवर्णपुरीके प्रदान करनेसे मनोवाञ्छित फल पूर्ण करें । नाशयण ! लक्ष्मीकान्त ! जगत्राथ ! आप इस अर्घ्यके महण करें, आपको नमस्कार है ।'

इस प्रकार महातेजस्वी भगवान् विष्णुको अर्घ्य देकर भक्तिपूर्वक देवी लक्ष्मीको भी अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और कहना चाहिये कि 'देवि ! आप ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पार्वती एवं भगवान् कालिकेयसे पूजित हैं । धर्मकी कामनासे मेरे द्वारा भी आप पूजित हैं, आप मुझे सौभाग्य, पुत्र, धन, पौत्र प्रदान करें । देवि ! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यके ग्रहण कर मुझे सुख प्रदान करें ।' इस प्रकार व्रतको पूर्णकर महोत्सव मनाये एवं गत्रिमें जागरण करे । निद्रागहित होकर जागरण करनेसे सौ यशोंका फल प्राप्त होता है । प्रातःकाल निर्मल जलसे खानकर पितर और देवताओंकी पूजाकर सप्तलीक ब्राह्मणोंको वस्त्र देकर भोजन कराये और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर क्षमा-याचना

करे। दीन, अंधेर, बधिर, पंगु आदि सबको संतुष्ट करे। अनन्तर पारणा करे। तदनन्तर मधुर पायसयुक्त व्यञ्जनोंसे मित्र और आन्धवोंके साथ भोजन करे। ऐसा करनेसे ब्रती ब्रह्मलोकको प्राप्त कर ब्रह्माके साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है।

अनन्तर छुट्टोक, उसके बाद विष्णुलोकको प्राप्त करता है। देवि ! कब्ज्ञपुरी नामक यह ब्रत पूर्वसमयमें तुमने भी किया था, उसी पुण्यके प्रभावसे ब्रैलोक्यपूजित मुझे स्वामीके रूपमें तुमने प्राप्त किया है। (अध्याय १४७)

कन्यादान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! जो विवाह करने योग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मणियसे सुयोग्य बरको प्रदान करता है, वह सात पूर्व और सात आगे आनेवाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी मनुष्योंको भी इस कन्या-दानके पुण्यसे तार देता है, इसमें संदेह नहीं। जो प्राजापत्य-विधिके द्वारा कन्या-दान करता है, वह दक्षप्रजापतिके लोकको प्राप्त करता है। वह अपना उद्धार कर अपार पुण्य प्राप्त करता है तथा अनन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो पृथ्वी, गौ, अश्व, गजका दान हीन वर्जको करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। शुल्क लेकर कन्याका दान करनेवाला घोर नरक प्राप्त करता है और हजारों वर्षोंतक अपवित्र लाला-भक्षण करता हुआ नरकमें जीवनयापन करता है। इसलिये सर्वाणि कन्या सर्वर्णको ही प्रदान करनी चाहिये। ब्राह्मणके बालक अथवा किसी अनाथको जो चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारोंसे संस्कृत करता है, वह अस्तमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। अनाथ कन्याका विवाह करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है। पूर्वजोंने कहा है कि जो

कन्यादानके साथ प्रदीप शुद्ध स्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्यादानका फल प्राप्त करता है। कन्याकी पूजासे विष्णुकी पूजाके समान पुण्य होता है।

महाराज ! पृथ्वीपर ब्राह्मण ही देवता है, स्वर्गमें ब्राह्मण ही देवता है। इतना ही नहीं तीनों लोकोंमें ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंमें यह शक्ति है कि वे मन्त्र-बलके प्रभावसे देवताको अदेवता और अदेवताको देवता बना देते हैं। इसलिये महाभाग ! ब्राह्मणकी सदा पूजा करनी चाहिये। देवगण ब्राह्मणसे ही पूर्वमें उत्पन्न हुए ऐसा स्मृतियोंका कथन है। सम्पूर्ण जगत् ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है। इसलिये ब्राह्मण पूज्यतम है। देवगण, पितृगण, ऋषिगण जिसके मुख्यसे भोजन करते हैं, उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? धर्मज्ञ ! ब्राह्मणोंका कल्याणकरनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जब प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मण संतुष्ट होकर बोलते हैं तो यह समझना चाहिये कि परोक्षमें देवताओंकी ही यह वाणी है। उसीसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, अतः सदा ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये। (अध्याय १४८—१५०)

दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने पुराणोंके विषयोंको सुना। ब्रतोंको भी मैंने विस्तारपूर्वक सुना, संसारकी असारताको भी मैंने समझा, अब मैं दानके माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ। दान किस समय, किसको, किस विधिसे देना चाहिये, यह सब बतानेकी कृपा करें। मेरी समझसे दानसे बढ़कर अन्य कोई पुण्य कार्य नहीं है, क्योंकि धनियोंका धन चोरोंद्वारा चुराया जा सकता है अथवा राजाद्वारा छिनवाया जा सकता है, अतः धन रहनेपर

दान अवश्य करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मूल्यके उपरान्त धन आदि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, परंतु ब्राह्मणको दिया गया दान परलोकमें पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। हष्ट, पुष्ट, बलवान् शारीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक ग्राससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान करों नहीं दिया जाता है।

इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा ? धर्म, अर्थ तथा कामके विषयमें सचेष्ट होकर जिसने प्रयत्न नहीं किया, उसका जीवन लोहारकी धौकीकी भौति व्यर्थ ही चलता है। जिस व्यक्तिने न दान दिया, न हवन किया, तीर्थ-स्थानोंमें प्राण नहीं त्यागा, सुवर्ण, अन्न-वस्त्र तथा जल आदिसे ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं किया, वही व्यक्ति जन्म-जन्ममें अन्न, वस्त्रहित, रोगसे ग्रसित, हाथमें कपाल लेकर दर-दर भटकता हुआ याचना करता रहता है। अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विषयतायाँ ही हैं। उपभोगसे और दानसे धनका नाश नहीं होता, केवल पूर्व-पुण्यके क्षेत्र होनेसे ही धनका नाश होता है। मरणोपरान्त धनपर अपना स्वामित्व नहीं रह जाता, इसलिये अपने हाथसे ही सुपात्रोंको धनका दान कर लेना चाहिये। राजन् ! दान देनेके अनेक रूप हैं, इस विषयमें व्यास, वाल्मीकि, मनु आदि महापुरुषोंने पहले ही बतलाया है कि पूर्वजन्ममें किये गये व्रत, दान एवं देवपूजन आदि पुण्यकर्म ही दूसरे जन्ममें फलीभूत होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! भगवान् विष्णु, शिव एवं ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके लिये जो दान जिस विधिसे देना चाहिये आप उस विधिका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! गौ, भूमि और सरस्वती—ये तीन दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ और मुख्य हैं। ये अतिदान कहे गये हैं। गायोंके दुहने, पृथ्वीको जोतकर अन्न उपजाने तथा विद्याके पढ़ने-पढ़ानेसे सात कुलोंका उद्धार होता है। अब मैं दान देने योग्य गौके लक्षणों और गोदानकी विधि बता रहा हूँ—महाराज ! सुपृष्ठ, सुन्दर, सवत्सा, पर्यन्तिनी

और न्यायपूर्वक अर्जित धनसे प्राप्त गौ श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। वृद्धा, रोगिणी, वन्ध्या, अङ्गूहीन, मृतवत्सा, दुश्शीला और दुष्प्रहित तथा अन्यायपूर्वक प्राप्त गौका कभी दान नहीं करना चाहिये। राजन् ! किसी पुण्य दिनमें स्नानकर पितरोंका तर्पण कर भगवान् शिव और विष्णुका घी और दुष्प्रसे अधिषेक करनेके बाद सोनेकी सांगयुक्त, रौप्य खुरवाली, कांस्यके दोहन-पात्रसहित सवत्सा गौका पुण्य आदिसे भलीभौति पूजन करना चाहिये, उसे वस्त्र तथा माला आदिसे अलंकृत कर ले। गौको पूर्व या उत्तराभिमुख खड़ा करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको गौका दान करना चाहिये और प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

गावो यमाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥

गावो मे हृदये सन्तु गावां मध्ये वसाम्यहम् ।

(उत्तरपर्व १५१। २९-३०)

गायकी पूँछ पकड़कर, हाथीका सूँड, घोड़ेका कान तथा दासीके सिरका स्पर्श कर और मूगचर्मकी पूँछ पकड़कर दान करना चाहिये। जब ब्राह्मण गाय लेकर जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे आठ-दस कदमतक जाना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति गोदान करता है, उसे सभी प्रकारके आभीष्ट फल प्राप्त होते हैं और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। सात जन्मोंमें किये गये पापका उसी क्षण नाश हो जाता है। राजन् ! यह विधि दक्षप्रजापतिके लिये भगवान् विष्णुने कही है। गोदान करनेवाला चतुर्दश इन्द्रोंके समयतक स्वर्गमें निवास करता है। यह गोदान सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इससे बड़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। गोदान ही एक ऐसा दान है, जो जन्म-जन्मान्तरतक फल देता रहता है।' (अध्याय १५१)

तिलधेनु-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं भगवान् वाराहके द्वारा कहे गये तिलधेनु-दानकी विधि बता

रहा हूँ। जिससे दाता ब्रह्महत्यादि महापातकों तथा सभी उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्गमें निवास करता है।

१-मासकर्त्त्वमपि प्राप्यवर्धिष्यः किं न दीयते। इच्छानुसूप्तो विभवः कर्त्तु कर्त्तव्य भविष्यति ॥ (उत्तरपर्व १५१। ६)

२-आवासशतलवस्त्रं प्राणेभ्योप्रिपि गतीयतः। गतिरेकत्वं वित्तस्य दानमन्या विपक्षः ॥ (उत्तरपर्व १५१। ११)

दाने भोगो नाशकिलो गतयो भवति धनव्यः। यो न ददति न भुञ्जे तस्य तृष्ण्या गतिर्भवति ॥ (सुभाषितरावली)

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुनर्वत मति सोइ पावरी ॥ (गमचरितमानस, उत्तरपाठ)

३-ब्रीण्याद्युतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । (उत्तरपर्व १५१। १८)

पहले पृथ्वीको गोबरसे लीपकर उसपर काला मृगचर्म तथा उसके चारों ओर कुश बिला ले । तदनन्तर उसपर गायकी आकृतिके रूपमें तिलकी गणि फैला ले अर्थात् तिलमयी धेनु बना ले । सफेद, कृष्ण, भूरे तथा गोमूकवर्णके तिलोंसे धेनुकी रचना करनी चाहिये । चार आङ्ककके मानकी गाय और एक द्वीप तिलसे बछड़ेका निर्माण करे । गायके खुरके पास चाँदी, सींगके पास स्वर्ण, जिह्वाके पास शक्कर, मुखके पास गुड़, गलकम्बलके पास कम्बल, पैरके स्थानमें ईख, पीठके स्थानपर तीँबा और नेत्रोंके लिये मुक्ता रखनी चाहिये । इसी प्रकार कहनके स्थानपर पीफलके पत्ते, दाँतेके स्थानपर फल, पूँछके स्थानपर माला और सानोंके स्थानपर मक्खन रखे । सिरके स्थानपर सफेद वस्त्र, रोमोंके स्थानपर सफेद सरसों रखा दे । सुन्दर फलों तथा मणि-मुक्ताओंसे उस तिलमयी कल्पित धेनुको सुसज्जित करे । कांस्यकी दोहनी भी समीपमें रखा दे । किसी पुण्य पवित्र दिन उस धेनुका पूजन इत्यादि कर ब्राह्मणको दान कर दे और इस मन्त्रको पढ़ते हुए प्रार्थनापूर्वक प्रदक्षिणा करे—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या वै देवेष्वदसिक्ता ।
धेनुस्तेष्ण सा देवी मम पापं छ्योहतु ॥

(उत्तरपर्व १५२ । १५)

दक्षिणासहित गाय ब्राह्मणको दे दे । इस विधिसे जो तिलधेनुका दान करता है, वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है ।

जो व्यक्ति इस दानका अनुमोदन कर प्रसन्नचित होकर प्रशंसा करते हैं तथा विधिपूर्वक जो ब्राह्मण दान ग्रहण करते हैं वे भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं । प्रशान्त, सुशील, वेदव्रतपरायण ब्राह्मणके लिये तिलधेनुका दान करनेवाले

व्यक्तिको अपने कृत-अकृतका शोक नहीं करना पड़ता । तिलधेनु-दान करनेवाले व्यक्तिको तीन दिन अथवा एक दिन तिलका ही भोजन करना चाहिये । दान करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके अंदर पवित्रता आ जाती है । तिलका भक्षण करना चान्द्रायणव्रतसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है । बाल्य, युवा अथवा बुद्धावस्थामें मन, वचन तथा कर्मसे जो पाप हुआ हो अथवा अभक्ष्य-भक्षण, अगम्यागमन, अपेयपान इत्यादि जो पश्चक, महापातक और उपपातक किये गये हों, वे सब तिलधेनुके दानसे दूर हो जाते हैं । पवित्र गङ्गा आदि नदियोंमें थूकने तथा नग्न रूपान करनेसे जो पाप होता है, वह भी नष्ट हो जाता है । तिलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति यमलोकके मार्गकी भयंकर यातनाओंका अतिक्रमणकर सुवर्णके विमानमें बैठकर उत्तम लोकमें चला जाता है । राजन् ! नैमित्यारण्यमें कथा-प्रसंगके समय मुनियोंनि यह विधि सुनायी और नारदजीने मुझे इस विधिका उपदेश किया, वही तिलधेनु-दानकी विधि मैंनि आपसे कही है । तिलधेनुका दान करना पवित्र, पुण्य और माङ्गल्यप्रद तथा कार्तिकर्धक है । श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको इस माहात्म्यका श्रवण करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है । गौ, घर, शाय्या और कन्या एक व्यक्तिको ही देनी चाहिये, क्योंकि विभाजनसे दोनोंको अधोगतिकी प्राप्ति होती है और विक्रय करनेसे सात कुल दुर्गतिको प्राप्त करते हैं । इस दानके प्रभावसे दान करनेवाला उत्तम विमानमें बैठकर साक्षात् विष्णुभगवान्के समीप पहुँच जाता है । माघ अथवा कार्तिककी पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, अयन-संक्रान्ति, विषुव-योग, व्यतीपात-योग, वैशाख अथवा मार्गशीर्षीकी पूर्णिमा और गजच्छाया-योगमें तिलधेनुका दान प्रशस्त माना गया है । (अध्याय १५२)

जलधेनु-दानके प्रसंगमे महर्षि मुद्रूलका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं जलधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे देवाखिदेव भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं । उत्तम जलसे पूर्ण एक कलश स्थापित करे, उसमें पञ्चरत्न, धन्य, दूर्वा, पञ्चपत्तल, कुष्ठसंज्ञक ओषधि, खश, जटामांसी, मुण, प्रियंगु और आँखला छोड़े । फिर उसे दो श्वेत वस्त्रों, यजोपवीत और पुष्पमालाओंसे

अलंकृत करे । कुशके आसनपर कलशको रखकर उसके आस-पास जूता, छाता आदि तथा चारों दिशाओंमें चाँदीके चार पात्रोंमें तिल, दही, घृत तथा मधु भरकर रखे । कलशमें सबत्सा धेनुकी कल्पना कर उसे गोमयसे उपलिप्त कर दे । पूँछके स्थानपर माला लटका दे । समीपमें दोहनपात्र भी रखे ले । इसके बाद सब उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी यथाशक्ति

पूजाकर उस कलशमें जलधेनुकी अभिमन्त्रणा करे और इस प्रकार कहे—

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहाव्या च विभावसोः ।

सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरुपेण साऽऽनु मे ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ८)

'जो गौमाता भगवान् विष्णुके वक्षः स्थलमें लक्ष्मीके रूपमें निवास करती है और अग्रिदेवकी पली स्वाहा तथा चन्द्रमा, सूर्य एवं इन्द्रकी शक्ति-रूपमें प्रतिष्ठित हैं वे मेरे लिये इस जलरूपी कलशमें अधिष्ठित हों।'

इस मन्त्रसे कलशमें धेनुको प्रतिष्ठित कर बत्स-समन्वित उस जलधेनुका तथा जलशायी भगवान् अच्युत गोविन्दका भलीभावि पूजन करे। तदनन्तर वीतराग और शान्तचित्त होकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये उस कलशस्थित जलधेनुका ब्राह्मणको दान कर दे और इस प्रकार कहे—

शेषपर्यकृशयनः श्रीमान् शार्ङ्गविभूषितः ।

जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ११)

'शेषनागरूपी शश्यापर शयन करनेवाले, शार्ङ्गधनुषसे विभूषित, जलशायी, जगद्योनि ! श्रीसम्पत्र भगवान् केशव ! आप (इस दानरूपी कर्मसे) मुझपर प्रसन्न हों।'

दान करनेके बाद उस दिन गोव्रत करना चाहिये। इस विधिसे जलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके आनन्दको प्राप्त करता है तथा उसे सार्वकालिक अनुलूल शान्ति प्राप्त होती है एवं सभी मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

गजन् ! इस विषयमें एक आख्यान सुना जाता है जो इस प्रकार है—किसी समय जातिस्मर महात्मा मुद्रल ऋषि भ्रमण करते हुए यमलोकमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा

कि पापी जीव अनेक प्रकारके कुम्भीपाक आदि दारण नरकमें कष्ट भोग रहे हैं और यमराजके अति भयकर दूत उन्हें अनेक प्रकारके दुःख दे रहे हैं। मुद्रलमुनिको देखकर नरकके जीवोंको पीड़ा शान्त हो गयी और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा वे सुखका अनुभव करने लगे। जीवोंको सुखी देखकर मुनिको बहुत आश्र्य हुआ, उसपर उन्होंने यमराजसे इसका कारण पूछा। यमराजने कहा—'मुने ! आपको देखकर नरकके जीवोंको जो प्रसन्नता हुई है, उसका कारण यह है कि आपने तीन जन्मोंमें विधिवत् जलधेनुका दान किया है, उसीके प्रभावसे आपका दर्शन सबको आहूदित कर रहा है। जो आपका दर्शन करेंगे, आपका ध्यान करेंगे, आपकी चर्चा सुनेंगे अथवा आप जिन्हें देखेंगे, स्मरण करेंगे उनको भी सुख-शान्ति और आनन्द होगा। जलधेनुका दान करनेवालेको हजारों जन्मोंतक कोई जलेश नहीं होता। इससे अधिक प्रसन्नतादायक अन्य कोई कर्म नहीं है। मुने ! अब आप मेरे द्वारा अर्थ, पाद्य आदि स्वीकार कर अपने धामको जाइये। जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय प्रहण किया है, वे मेरे द्वारा नियमन करने योग्य नहीं हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णका पूजन-ब्रत करता है, नित्य उनका ध्यान करता है, उनके कृष्ण, अच्युत, अनन्त, वासुदेव आदि नामोंका निरन्तर उच्चारण करता है, वह इस लोकमें नहीं आता। जो 'अच्युतः प्रीयताम्' ऐसा कहकर दान देता है, वह मेरे लोकमें नहीं आता। वे भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं और हम सभी उनके आज्ञाकारी हैं। मैं लोकोंका संयमन करता हूँ और मेरा संयमन भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं।' यमराजका यह वचन सुनकर अग्नि, शाख आदिसे पीड़ित सब नरकके जीव भगवान्की सुति करते हुए उनके पवित्र नामोंका स्मरण करने लगे। भगवान् विष्णुका स्मरण करते ही उस पुण्यकर्मके

२-कृष्णसु पूर्णिते यैसु ये कृष्णार्थमुदोपितः । यैष नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते महिषयोपगः ॥

नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भवत्त्वित्विर्विष न ते महिषयोपगः ॥

दाने ददिष्ट्वैर्वेत्यमच्युतः श्रीपत्निमिति । अद्वापुःसरीर्विष न ते महिषयोपगः ॥

स एव नामः सर्वस्य तत्त्वियोगकर्ता वयम् । जनसंयमनक्षाहमस्तसंपमनो त्वः ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ३०—३३)

ऐसे ही 'हरिगुरुवश्वरोऽस्मि न खतन्तः, प्रभवति संक्षमे ममति विष्णुः' आदि प्रायः पंद्रह इतेक विष्णुपुराणके यमनीतामें हैं, जो प्रायः प्रतिदिन पठनीय हैं।

प्रभावसे नरककी अप्रि शीतल हो गयी। यमराजके सभी अख-शख प्रभावशून्य हो गये, अभकार दूर हो गया। सर्वत्र प्रकाश छा गया। यमदूत मूर्च्छित हो गये। शीतल-मन्द-सुग्रीवित यायु बहने लगी। मधुर ध्वनियाँ होने लगीं। पूय और रुधिरकी निधियोंमें उत्तम गङ्गाजल प्रवाहित होने लगा। सभी जीव दुःखसे छूटकर उत्तम वस्त्र, आभूषण, माला आदिसे विभूषित हो गये तथा तीनों पापोंसे मुक्त हो गये। यह अद्भुत दृश्य देखकर धर्मराज उन निष्पाप नारकीय जीवोंका पाद्यादिसे अर्चन करने लगे और इसे भगवान् विष्णुकी महिमा समझकर उनको बार-बार प्रणाम करने लगे।

यमराज इस प्रकार सूति कर ही रहे थे कि उनके देखते-ही-देखते नरकके सभी जीव दिव्य विमानोंमें बैठकर स्थानमें चले गये। मुद्रल ऋषि भी यह सब चरित्र देखकर अपने धार्ममें चले आये और भगवान् विष्णुका प्रभाव तथा जलधेनु-दानके माहात्म्यका बार-बार स्मरण करते हुए कहने लगे—

अहो ! भगवान् विष्णुकी माया बड़ी विचित्र और कठिन है, जिससे मोहित होकर प्राणी परमेश्वरको नहीं पहचान पाता। इसी कारण जीव कीट, जूँ, पतङ्ग, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करते हैं और अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते। यह आश्चर्य है कि मायासे मोहित व्यक्ति अपना हित नहीं पहचान पाता। विष्णुभगवान्की माया यद्यपि बड़ी ही विचित्र है, परंतु भगवान्का आश्रय प्रहण करनेपर

व्यक्ति उस मायाको दूर कर लेता है। जो व्यक्ति मानव-जन्म पाकर भी भगवान्की आराधना नहीं करता, उसका मनुष्यके रूपमें जन्म लेना ही व्यर्थ है। ऐसा कौन अभागा व्यक्ति होगा, जो भगवान्की आराधना नहीं करेगा, जबकि भक्तिपूर्वक थोड़ी-सी भी आराधना की जाय तो भगवान् विष्णु इस लोक तथा परलोकमें उसका कल्याण कर देते हैं। भगवान्को धन, वस्त्र, आभूषण आदि कुछ भी नहीं चाहिये। उन्हें तो मात्र हृदयकी भक्ति एवं शुद्ध प्रेम चाहिये^१। इसलिये जीव ! तुम भगवान्से दूर क्यों रहते हो ! हजारों जन्मोंके बाद इस कर्मभूमिमें दुर्लभ मानव-रूपमें जन्म लेकर जो व्यक्ति श्रीविष्णुकी आराधना और जलधेनुका दान नहीं करता, उस व्यक्तिका यह जन्म ही व्यर्थ है। वह व्यक्ति मायाके जालमें पड़ा रहता है। मुद्रल ऋषिने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा कि 'मनुष्यो ! मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ कि आपलोगोंको दोनों लोकोंमें कल्याण प्राप्त करनेके लिये श्रीविष्णुभगवान्की आराधना और जलधेनुका दान करना चाहिये। नरककी यातना अति दुःखदायिनी है, इसे मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। विचार करनेपर यह सत्य ही मालूम पड़ता है कि उस दुःखसे बचनेके लिये भगवान् विष्णुमें अपने मनको लगाना चाहिये, यही श्रेयस्कर उपाय है^२।'

(अध्याय १५३)

घृतधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं घृतधेनुदान और घृतधेनु-निर्माणकी विधि बता रहा हूँ, इसे आप प्रेमपूर्वक सुनें। गायके धीसे भेरे हुए कलशोंको गायकी आकृतिमें बनाकर उन्हें गच्छ, पुष्ट आदिसे अलंकृत कर खेत वस्त्रसे भलीभांति हँक दे और दोहन-स्थानपर कांसकी दोहनी रख दे। पैरोंकी जगहपर ईखके ढंडे, सुरकी जगहपर चाँदी, आँखेंके स्थानपर सोना, सींगोंके स्थानपर अगरुकाष्ठ, दोनों

बगलमें सप्तशान्त्य, गलकम्बलके स्थानपर ऊनी वस्त्र, नासिकाके स्थानपर तुरुलकदेशीय कपूर, स्तनोंके स्थानपर फल, जिह्वाके स्थानपर शर्करा, मुखके स्थानपर दूधमिश्रित गुड़, पैंचांकी जगहपर रेशमी वस्त्र तथा रोओंकी जगहपर सफेद (गौर) सरसों और पीठकी जगह ताप्रापात्र स्थापित करे। इस प्रकारसे घृतधेनुकी रचना करे। इसी प्रकार घृतधेनुके पास ही घृतधेनु-वस्त्रकी भी कल्पना करे। तदनन्तर विधिपूर्वक घृत-

१-यो न वित्तिर्विभौर्वं यासेऽर्क्ष भूष्णैः। तुष्णेऽहं यदेव कलामीश्च न पूज्येत्॥ (उत्तरपर्व १५३। ६५)

२-पर्याप्ति मुद्रलप्रोक्त मुद्रलपुण्ड्र भाभी उपपुण्योंमें बड़ा है और इनसे भर्तीनिष्ठा एवं भक्तिकी विशिष्ट कथा महाभास्तुके सकुप्रस्तीय मुद्रलोपाखानमें भी अतीव अप्राप्यक है। धर्मकी उपेक्षाके कारण मुद्रलपुण्ड्र अब प्राप्त-सुप्त-सा हो रहा है। ऐसे ही गणेशायुग भी सुप्त-सा हो रहा है। समर्थ व्यक्तियोंके इन दोनोंके प्रकाशित करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

धेनुकी प्रतिष्ठाकर भलीभाँति पूजन करे और इस प्रकार कहे—

आन्यं तेजः समुहिष्टमाज्यं पापहरं परम् ।

आन्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥

स्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल ।

सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भागिनि ॥

(उत्तरपर्व १५४। ८-९)

‘धृतके तेजौवर्धक तथा पापापहारी बतलाया गया है । देवताओंका आहार धृत ही है, सभी कुछ धृतमें ही प्रतिष्ठित है, इसलिये धृतमयी देवि ! तुम मेरे द्वारा धृतकुण्डोंमें कल्पित की गयी हो, मेरे पापोंको नष्टकर मुझे आनन्द प्रदान करो ।’

ऐसा कहकर दक्षिणासहित धृतधेनुका दान ब्राह्मणको दे दे और कहे कि ब्राह्मणदेवता ! मेरा उपकार करनेके लिये आप इस आन्यमयी धेनुको प्रहण करे । उस दिन धृतका ही आहार करना चाहिये । इसी विधिसे नवनीत (मक्खन) धेनुका धान करना चाहिये । धृतधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति उस लोकमें निवास करता है, जहाँ भी और दूधकी नदियाँ बहती हैं । वह व्यक्ति अपने सात पीढ़ीके लोगोंका भी उद्धार कर देता है । ये फल तो सकाम दान देनेवाले व्यक्तियोंके हैं, किंतु जो व्यक्ति निष्कामभावसे धृतधेनुका दान करता है, वह निष्कल्पप होकर परम पदको प्राप्त करता है । धृत सर्वदिवमय है, इसलिये धृतके दानसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं । (अध्याय १५४)

लवणधेनुदान-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आप इस प्रकारके दानकी विधिका वर्णन करे, जिसे करनेसे सभी दानोंका फल प्राप्त हो जाय एवं सभी पापोंका नाश हो जाय और सभी मनोरथ सिद्ध हो जायें तथा व्यक्ति शुद्ध हो जाय ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! सभी दानोंमें लवणधेनुका दान उत्तम है । इससे ब्रह्महत्या, गोहत्या, पितृहत्या, गुरुपलीगमन, विश्वासायात, कूरता आदि अनेक प्रकारके पापोंका आचरण करनेवाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है । वह धन, धान्य, पुत्र, पौत्र एवं सुख प्राप्त कर दीर्घायु होकर इस संसारके सुखके भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है । अब मैं इस लवणधेनुदानकी विधिको बता रहा हूँ—

भूमिको गोबरसे लौपकर उसके ऊपर कुश बिला दे तथा उसके ऊपर मेषका चर्म बिला दे । उसपर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे । चाहे कोई मनुष्य धनी हो या गरीब प्रायः एक आड़क अर्थात् चार सेर लवण रखकर उसमें धेनुकी कल्पना करनी चाहिये । सुवर्णमणित चन्दनकाष्ठके सींग, चौंदीके खुर, ईखुके पैर, फलोंके स्तन, शर्कराकी जिल्हा, चन्दनकी नासिका, सीपोंके कान, मोतियोंकी औंखोंकी कल्पना कर उसके कपोलमें सत्तुपिण्ड, मुखमें जौ, दोनों पाञ्चोंमें तिल और गेहूँ—इस प्रकार सातधान्य उस लवणधेनुके अङ्गोंमें स्थापित

करे । इसी प्रकार ताङ्से पीठ, गुडपिण्डसे अपान-देश, कम्बलसे पूँछका, अंगूरसे चार स्तनोंका, मधुर फलों पर्यं मधुसे योनि-देशकी रचना करनी चाहिये । इस प्रकार उपयुक्त सामग्रियोंसे लवण-धेनुकी रचनाकर सेरभर नमकके मानसे उसके वत्सकी कल्पना करे । धेनु तथा बछड़को वस्त्र-आभूषण आदिसे अलंकृत करे । तदनन्तर स्वयं ऊन कर देवताओं और ब्राह्मणकी पूजा करे । सी-पुङ्के साथ गायकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदिवताः ।
सर्वदिवमये देवि लवणाञ्चये नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व १५५। १८)

‘लवणमें सभी रस निहित हैं । सभी देवताओंका निवास लवणमें रहता है, इसलिये सर्वदिवमयी लवणधेनु ! आपको मेरा नमस्कार है ।’

अनन्तर दक्षिणाके साथ वह धेनु ब्राह्मणको समर्पित कर दे । राजन् ! लवणधेनुका दान करनेसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिकल्पना और सभी ज़ों तथा दानोंका भी फल प्राप्त हो जाता है । इस विधिसे जो व्यक्ति रसमयी लवणधेनुका दान करता है, उसे सौभाग्य, सुख, आरोग्य, सम्पत्ति, धन-धान्यकी प्राप्ति होती है तथा वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है ।

(अध्याय १५५)

सुवर्णधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सुवर्णधेनुदानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। पचास पल (प्रायः तीन किलो), पचीस पल अथवा चितनी भी सामर्थ्य हो उस मानमें शुद्ध सुवर्णसे रत्नजटित सुन्दर कपिला सुवर्णधेनुकी रचना करनी चाहिये। उसके चतुर्थीसे उसका वत्स बनाये। गलेमें चाँदीकी घंटी लगाये, रेशमी बख्त ओढ़ाये, इसी प्रकार हीरेके दाँत, वैदूर्यका गलकम्बल, तांबिके सींग, मोतीकी आँखें और मौगेकी जीभ बनाये। कृष्णमृगचर्मके ऊपर एक प्रस्थ गुड़ रखकर उसके

ऊपर सुवर्णधेनुको स्थापित करे। अनेक प्रकारके फलयुक्त आठ कलश, अठारह प्रकारके धान्य, छाता, जूता, आसन, घोजन-सामग्री, तांबिका दोहनपात्र, दीपक, लवण, शर्कना आदि स्थापित करे। तदनन्तर स्तान कर सुवर्णधेनुकी प्रदक्षिणा कर उसकी भलीभाँति पूजा करे। पूजनके अनन्तर प्रार्थनापूर्वक उस सुवर्णधेनुको दक्षिणा तथा सभी उपस्करणेके साथ ब्रह्मणको दान करे।

राजन् ! गौके जिस अङ्गमें जो देवता, मनु एवं तीर्थ

(अध्याय १५६)

रत्नधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन् ! अब मैं गोलोक प्राप्त करनेवाले अत्युत्तम रत्नधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ। किसी पुण्य दिनमें भूमिको पवित्र गोवरसे लीपकर उसमें धेनुकी कल्पना करे। पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म विछाकर उसपर एक द्रोण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक संकल्पसहित रत्नमयी धेनु स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्ष्यासी पद्मरागमणि तथा चरणोंमें पुष्पराग स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक, उसकी दोनों आँखोंमें सौ मोती, दोनों भौंहोंपर सौ मैंगा और दोनों कानोंकी जगह दो सींगें

निवास करते हैं वे इस प्रकार हैं—नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा, जिहामें सरस्वती, दाँतोंमें मरुदण, कानोंमें अश्विनीकुमार, सींगोंके अग्रभागमें रुद्र और ब्रह्मा, कन्कुदमें गवर्ध और अपसराएँ, कुक्षिमें चारों समुद्र, योनिमें गङ्गा, रोमकूपोंमें ऋषिगण, अपानदेशमें पृथ्वी, ओतोंमें नाग, अस्थियोंमें पर्वत, पैरोंमें चतुर्विधि पुरुषार्थ, हुकारोंमें चारों वेद, कण्ठमें रुद्र, पृष्ठभागमें मेरु और समस्त शरीरमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस प्रकार यह सुवर्णधेनु सर्वदेवमयी और परम पवित्र है।

जो व्यक्ति सुवर्णधेनुका दान करता है, वह मानो सभी प्रकारके दान कर लेता है। इस कर्मभूमिमें यह दान बहुत दुर्लभ है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक काञ्जनधेनुका दान करना चाहिये। इससे संसारसे उड़ार हो जाता है और कीर्ति तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और अन्तमें उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

लगाये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये। सिरकी जगह सौ हीरोंके स्थापित करना चाहिये। कण्ठ और नेत्र-पलककोमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्वस्थानोंमें सौ वैदूर्य (बिल्लौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगम्भिक (माणिक-लाल) मणि रखना चाहिये। खुरोंके स्वर्णमय, पैूँछको मुक्ता (मोतियों) की लड़ियोंसे युक्त कर तथा दोनों नाकोंकी सूर्यकञ्जन तथा चन्द्रकञ्जन मणियोंसे रखना कर कर्पूर और चन्दनसे चार्चित करें। रोमोंको केसर और नाभिको चाँदीसे बनवाये। गुदामें सौ लाल मणियोंको लगाना चाहिये।

१-नेत्रोः सूर्यशीती जिहामो तु सरस्वती। दोनों महते देवाः कर्मयोक्त तथास्तिवै॥

नक्षत्रमणी सद्य चाल्या देवी रुद्रपितामही। गन्धर्वायासरहीव कन्कुदेवी प्रतिष्ठिता।

कुम्ही समुद्रावत्सरो योनै त्रिपथगमिती॥

ऋषयो रोमकूपेषु अपने चमुषा रिता। अनेषु नाग विशेषः पर्विताक्षमित्यु रिता॥

धर्मकर्मार्थमोहासु चलेषु परिसंचिताः। हुक्करे च चारुवेदः कल्पे रुद्रः प्रतिष्ठितः॥

पृष्ठभागे स्थिते मेहरिष्यः सर्वज्ञारीगः। एवं सर्वमयी देवी चक्रवी विश्वरूपिणी॥ (उत्तरपर्व १५६। १६—२०)

२-इन्हे बहुमूल्य रत्नोंका दान करनेके उल्लेखसे लोभ, शूर्ता या असम्भवनाकी कल्पनाकर चकित नहीं होना चाहिये, क्योंकि पूर्ण

अन्य रत्नोंको संधिभागोपर लगाना चाहिये। जीभको शक्करसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको धीसे बनाना चाहिये। दही-दूध प्रत्यक्ष ही रखें। पैचूके अप्रभागपर चमर तथा स्तनोंके पास तांबिकी दोहनी रखनी चाहिये।

इसी प्रकार गौके चतुर्थीशसे बछड़ा बनाना चाहिये। इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे। उस समय गुदधेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—‘देवि ! चौकि रुद्र, इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु—ये सभी तुम्हें देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हारे ही शरीरमें व्याप्त हैं,

अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा शीघ्र ही उद्धार करो।’ इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद गौकी पूजा तथा पठिकमा कर भक्तिपूर्वक साष्टङ्ग प्रणाम करके उस रत्नधेनुका दान ब्राह्मणको दक्षिणाके साथ करे, अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे। इस प्रकार सम्पूर्ण विधियोंके जानेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह शिवलोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम) को प्राप्त करता है तथा पुनः बहुत समयके बाद इस पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है और उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १५७)

उभयमुखी धेनु-दानका माहात्म्य

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो ! उभयमुखी अर्थात् प्रसवके समयमें गौका दान किस प्रकार करना चाहिये और उसके दानका क्या फल है। इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! उभयमुखी गौ-दानका संयोग बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। जबतक बछड़ेके पैर प्रसवके समय भीतर हों और केवल सिर बाहर दिखलायी दे उस समय वह गौ मानो साक्षात् सत्ताद्वीपवती पृथ्वी है^१। ऐसी उभयमुखी गौके दानके फलका वर्णन शक्य नहीं। यज्ञ और दान करनेसे जो फल प्राप्त नहीं होता, वह

फल केवल उभयमुखी-धेनुके दानसे ही प्राप्त हो जाता है और दाताका उद्धार हो जाता है। सींगोंके स्वर्णसे, खुरोंके चांदीसे तथा पैचूको मोतीकी मालाओंसे अलंकृतकर जो उभयमुखी धेनुका दान करता है, वह गौ और बछड़ेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही हजार वर्षतक स्वर्णमें पूजित होता है तथा अपने पितरोंका उद्धार कर देता है। जो व्यक्ति सुर्खणसहित उभयमुखी धेनुका दान करता है, उसके लिये गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाता है। दुर्बल, अङ्गहीन गौ और दक्षिणासे गहित दान नहीं करना चाहिये। (अध्याय १५८)

गोसहस्रदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन ! आप गोसहस्र-दानका विधान बतायें। यह किस समय किस विधिसे किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रजेश्वर ! गौएं सम्पूर्ण संसारमें पवित्र हैं और गौएं ही उत्तम आश्रयस्थान हैं। संसारकी आजीविकाके लिये ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि की है। तीनों लोकोंके हितकी कामनासे गौकों सृष्टि प्रथम की गयी है। इनके मूत्र और पुरीषसे देवमन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं औरेंके लिये तो कहना ही क्या^२ ! गौएं काम्य यज्ञोंकी मूलाधार हैं,

इनमें सभी देवताओंका निवास है। गोमध्यमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास है। ब्राह्मण और गौ—दोनों एक ही कुलके दो रूप हैं। एकमें मन्त्र अधिष्ठित हैं और एकमें हविष्य-पटार्थ। इन्हीं गौओंके पुत्रोंके द्वाश सारे संसार और देवताओंका भरण-पोषण होता है। राजन् ! आप ऐसी विशिष्ट गुणमयी गौके दानका विधान सुनें। एकमात्र सर्वगुण तथा सर्वलक्षण-सम्पन्न गौका दान करनेपर समस्त कुरुत्व तर जाता है, फिर यदि अधिक गौएं दानमें दी जायें तो उनके माहात्म्यके विषयमें क्या कहा जाय ?

पर्माणुरण, देवाण्डन और ईमानदारी तथा परस्पर उपकारकी भावनासे भारत ऐसा ही समृद्ध था कि कोई वस्तु दाम लेकर नहीं बेची जाती थी। इस बातको ‘कल्पाना’के ‘हिन्दू संस्कृति-अद्भुत’ से लेकर १९६८ के कई साधारण अङ्गोंमें बार-बार प्रमाणोदाय सिद्ध किया गया है।

१-अन्य पुण्योंमें भी इसका महत्व आया है और इसकी पठिकमासे सप्ताहीपवती पृथ्वीकी पठिकमात्र पुण्य जलस्त्राव गया है।

२-यासों मृतपुरीषण देवताकथनविषयि। शुचिनि समजावन्ति कि भूतमधिक ततः॥ (उत्तरपर्व १५९। ३)

प्राचीन कालमें महाराज नहुय और महामति यथातिने भी सहस्रों गौओंका दान किया था, जिसके प्रभावसे वे ब्रह्मस्थानको प्राप्त हो गये। पुत्रकी कामनासे देवी अदितिने भी गङ्गाजीके तटपर अपार गोदान किया था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने तीनों लोकोंके स्वामी नारायण (भगवान् वामन—उपेन्द्र) को पुत्ररूपमें प्राप्त किया।

राजन् ! ऐसा सुना जाता है कि पितृगण इस प्रकारकी गाथा गाते हैं—कथा मेरे कुलमें ऐसा कोई पुण्यात्मा पुत्र होगा, जो सहस्रों गौओंका दान करेगा, जिसके पुण्यकर्मसे हम सब परमसिद्धिको प्राप्त कर सकेंगे, अथवा हमारे कुलमें सहस्रों गोदान करनेवाली कोई दुहिता (कन्या) होगी जो अपने पुण्यकर्मके आधारपर मेरे लिये मोक्षकी सीढ़ी तैयार कर देगी ।

राजन् ! अब मैं शास्त्रोक्त सार्वकामिक गोसहस्रदानरूप यज्ञकी विधि बता रहा हूँ। दाता किसी तीर्थस्थान अथवा गोष्ठया अपने घरपर ही दस या बारह हाथका लंबा-चौड़ा एक सुन्दर मण्डप बनवाये। उसमें तोरण लगाये जायें। उसके चारों दिशाओंमें चार दरवाजे लगाये जायें। मण्डपके मध्यमें चार हाथकी एक सुन्दर बेदी बनाये। इस बेदीके पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)में एक हाथके प्रमाणकी ग्रहबेदीका निर्माण करे। ग्रहयज्ञके विधानसे उसपर क्रमसे ग्रहोंकी स्थापना करे। सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी अर्चना करनी चाहिये। यज्ञके लिये ऋत्विजोंका वरण, पुनः बेदीके पूर्वोत्तर-भागमें एक शिवकुण्डका निर्माण कर द्वार-प्रदेशमें फलत्वोंसे सुशोभित दो-दो कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और उनमें पञ्चल डाल देना चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। तुलापुरुषदानके समान इसमें भी लोकपालोंके निमित्त बलि-नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। सहस्रों गौओंमेंसे सकृत्ता दस गौओंको अलग कर उन्हें वर्ष और माला आदिसे खूब अलंकृत कर ले। इन दसों

गौओंके मध्य जाकर विधिपूर्वक सबकी पूजा करे। इनके गलेमें सोनेकी घंटी, तांबेके दोहनपात्र, खुरोंमें चाँदी और मस्तकको सुर्वाण-तिलकसे अलंकृत कर सींगोंमें भी सोना लगा दे। गोमाताके चतुर्दिंक चमर ढुलाना चाहिये। इसी प्रसंगमें मुनियोंने सुर्वाणमय नन्दिकेश्वर (वृषभ) को लकणके ऊपर रखकर अथवा प्रत्यक्ष वृषभके भी दानका विधान बताया है। इस प्रकार दस-दस गौके क्रमसे गोसहस्र या गोशत दान करना चाहिये। यदि संख्यामें सम्पूर्ण गौएं उपलब्ध न हो सके तो दस गौओंकी पूजाकर शेष गौओंकी परिकल्पना कर उनका दान करना चाहिये ।

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गौत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ बेद्ध ब्राह्मणोंद्वारा सर्वाधिग्रन्थित जलसे रूान कराया हुआ यजमान अङ्गुलिमें पुष्प लेकर इस प्रकार उच्चारण करे—‘विश्वमूर्तिस्वरूप विश्वमाताओंको नमस्कर है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणीरूप गौओंको बारंबार प्रणाम है। गौओंके अङ्गुलिमें इक्षीसों भूक्षन तथा ज्ञाहादि देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूपाः मातारै मेरी रक्षा करें। गौएं मेरे अप्रभागमें रहें, गौएं मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएं नित्य मेरे चारों ओर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करें ।’ चूँकि तुम्हीं वृषभरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके बाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो !’ इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियोंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरके गुरुको दान कर दे तथा उन दसों गौमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गौ प्रत्येक ऋत्विजको समर्पित कर दे। तत्प्रकाशत् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएं देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतोंको नहीं देनी चाहिये, क्योंकि वह दोषप्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक

१-दुहिता वा कुले कवचद् गोसहस्रप्रदायिनी । सोफनः सुणिर्दितो भविष्यति न संशयः ॥ (उत्तरपर्व १५९ । १४)

२-भविष्यसुराणमें बार-बार गौओंकी अपार महिमा और गोसहस्र-दान आदिसे विभिन्न निर्देश यही सूचित करता है कि भारत गो-भक्त देश वा और यहाँ दूस-दहोकी सबमुख नदियाँ बहती थीं। कृष्णके ब्रजमें गो-चारणकी कथा और बहावीं अङ्गुली गो-सम्पत्तिकी कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज जो भारत कंगाल-सा बन गया है तथा राजदान, सुर्वाणभूमि सहस्र गोदान आदिसे बहते कल्पना-से लगती होती हैं।

३-वाजसने ८ । ४१ आदिमें बार-बार रोहिणीरूपा गौओंको कामयेनु एवं सुर्विरूपा कहा गया है। रोहिणी गौ प्रायः लाल वर्णकी होती है।

४-गायो ममाप्रतः सन्तु गायो मे सन्तु पृष्ठतः । गायो मे सर्वतः सन्तु गायो मध्ये वसान्नहम् ॥ (उत्तरपर्व १५९ । ३३)

गौणे देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने।

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन व्रह्मचर्य-ब्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त

होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घटियोंसे सुशोधित सूक्ष्मीके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ होकर सभी लोकपालोंके लोकोंमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस गोसाहस्र-दानसे पुरुष अपने इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। गोदानमें गौ, पात्र, काल एवं विधिका विशेषरूपसे विचार करना चाहिये। (अध्याय १५९)

वृथभदानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! आपकी अमृतमयी वाणीसे मुझे तुम्हि नहीं हो रही है, मेरे हृदयमें एक कौतूहल है। तीनों लोकोंमें यह प्रसिद्धि है कि गौओंका स्वामी—गोपति (वृथभ) गोविन्दस्वरूप है, अतः प्रभो! ऐसे महनीय वृथभ-दानका फल बतानेकी कृपा करे।

भगवान् श्रीकृष्ण खोले—राजन्! सुनिये, यह वृथभ-दान पवित्रोंमें पवित्रतम और दानोंमें सबसे उत्तम दान है। एक स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट वृथभके दानका फल दस धेनुओंके दानसे अधिक है। हृष्ट-पुष्ट, युवा, सुन्दर, सुशील, रूपवान् और काकुदमान् एक ही शुभ लक्षणसम्पन्न वृथभके दानसे उस दान करनेवाले व्यक्तिके सभी कुलोंका उद्धार हो जाता है। पुण्यपवित्रके दिन वृथभकी पूँछमें चाँदी लगाकर तथा भलीभांति उसे अलंकृत कर दे, तदनन्तर दक्षिणाके साथ उस वृथभका दान ब्राह्मणको देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

धर्मस्वयं वृथस्त्वेण जगदानन्दकारकः।

अष्टमूर्त्तिष्ठानमतः पाहि सनातनं ॥

(उल्लपर्व १६०। १)

इस विधिसे वृथभ-दान करनेवाले व्यक्तिके सात जन्म पहलेके किये गये समस्त पाप इसके प्रभावसे उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें वह व्यक्ति वृथभयुक्त कामचारी दिव्य विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें चला जाता है। महीपते! उस वृथके शरीरमें जितने रोम हैं, उनमें हजार वर्षतक वह गोलोकमें पूजित होता है, इसके बाद गोलोकसे अवतीर्ण होकर इस लोकमें उत्तम कुलीन ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वह व्यक्ति यज्ञ करनेवाला, महान् तेजस्वी और सभी ब्राह्मणोंद्वारा पूजित होता है। महाराज! आपने जो यह पूछा कि यह उत्तम वृथदान किसे करना चाहिये, उसके विषयमें मैं बतला रहा हूँ। जो ब्राह्मण शान्तचित्, जितेन्द्रिय, बेदवेता, अहिंसक और प्रतिग्रहसे डरनेवाला, मनुष्योंका उद्धार करनेमें समर्थ तथा गृहस्थ हो। उसे दृढ़, पुष्ट, बलवान्, भार-वहन करनेमें समर्थ और सब गुणोंसे युक्त उत्तम वृथ प्रदान करना चाहिये। इस प्रकारसे एक वृथभका दान दस धेनु-दानसे भी अधिक फलप्रद है।

(अध्याय १६०)

कपिलादानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जगतपते! अब आप कपिला-दानका माहात्म्य बतालानेकी कृपा करें, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाल पर्यंत पुण्यप्रद है।

भगवान् श्रीकृष्ण खोले—महामते! इस सम्बन्धमें प्राचीन कालमें विनाशकने भगवान् वाराह एवं धरणीदेवीके जिस संवादको मुझे बताया था उसे आप सुनें। धरणीदेवीके पूँछनेपर भगवान् वाराहने कहा कि 'भद्रे! कपिला गौके दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा यह परम पवित्र है। पूर्वकालमें ब्रह्मजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकज कर यज्ञोंमें

अप्रिहोत्रकी सम्पत्तिके लिये कपिला गौकी रचना की थी। कपिला गौ पवित्रोंको पवित्र करनेवाली, मङ्गलोंका मङ्गल तथा परम पूज्यमयी है। तप इसीका रूप है, ब्रतोंमें यह उत्तम ब्रत, दानोंमें उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पूर्णीमे गुप्त रूपसे या प्रकट रूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं सम्पूर्ण लोकोंमें द्विजातियोंद्वारा सार्यकाल और प्रातःकाल अप्रिहोत्र आदि हवनकी जो भी त्रियाएँ हैं, वे सभी कपिला गायके धृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। भाविनि! कपिलाके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल

उठकर उसके गले एवं मस्तकके गिरे हुए जलको श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता है, वह पवित्र हो जाता है और उसी क्षण उसके पाप भस्म हो जाते हैं। प्रातःकाल उठकर जिसने कपिल गौकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली। वसुन्धरे। कपिल गौकी एक प्रदक्षिणा करनेपर भी दस जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पवित्र ब्रतके आचरण करनेवाले पुरुषको कपिला गौके मूर्त्रसे खान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानो गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें खान कर चुका। भक्तिपूर्वक एक बार कपिलाके गोमूर्त्रसे खान करनेपर मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। एक हजार गौके दानका फल एक कपिला गौके दानके समान है। गौओंकी यत्रपूर्वक रक्षा करनी चाहिये। गौके दूध-दही, घृत, गोमूर्त्र, गोमय आदिको अपवित्र नहीं करना चाहिये। गौओंके शरीरको सुजलाना और उनकी सेवा करना परम श्रेष्ठ धर्म भाना गया है। गौके भय एवं रोगकी स्थितिमें उसकी भलीभांति सेवा करनी चाहिये। जो गौओंके चरनेके लिये हरी-भरी गोचरभूमिका दान करता है, वह दिव्य स्वर्गवासका फल प्राप्त करता है। साक्षात् ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बताये हैं। इस कपिल गौका जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान करता है वह अपसरओंसे अलंकृत दिव्य विमानपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्ग जाता है। सोनेके समान रंगवाली कपिला प्रथम श्रेणीकी है और गौर पिङ्कलवर्णवाली द्वितीय श्रेणीकी। तीसरी लाल-पीले नेत्रवाली, चौथी अधिके समान नेत्रवाली, पांचवीं जुहूके समान वर्णवाली, छठी छीके समान पिङ्कलवर्णवाली, सातवीं उजली-पीली, आठवीं दुग्धवर्णके समान पीली, नवीं पाटलवर्णवाली तथा दसवीं पीले पूँछवाली^१। ये सभी कपिलाएँ संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं, इसमें संशय नहीं। जो शूद्र होकर कपिलाका दान लेता है और उसका दूध पीता है, वह पतित होकर चंडाल हो जाता है और अन्तमें नरकमें जाता है। इसलिये किसी ब्राह्मणेतरको कपिलाका दान नहीं लेना चाहिये। श्रोत्रिय, धनहीन, सदाचारी तथा अग्रिहोत्री ब्राह्मणको एक कपिला गौका दान करनेसे दाता सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।

गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुख योनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहें, अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुन्धरे! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूर्जित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्याएँ होती हैं। सोनेसे सोंग तथा चाँदीसे खुरको सम्पन्न करके कपिला गौका दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर जल लेकर शुद्र वाणीमें ब्राह्मणसे संकल्प पढ़वाये। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रसे किरी तथा पर्वतों, जनों एवं रक्षोंसे परिषुर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वी-दानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् विष्णुके परम धारमें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोधाती अथवा गर्भपात करनेवाला, दूसरोंको ठगनेवाला, वैदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका निन्दक और सत्कर्ममें दोषदृष्टि रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किन्तु ऐसा घोर पापी भी बहुतसे सुखवौंसे युक्त उभयमुखी कपिलाके दानसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। दाताको चाहिये कि उस दिन खीरका भोजन करे, अथवा दूधके ही सहारे रहे।

जो इस प्रकार उभयमुखी कपिला गौका दान करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर समाहितचित्तसे तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—‘गोदान-विधान’को पढ़ता है, उसके वर्षभरके किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके शोकिसे धूलके समूह। जो पुरुष शाद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्तरमें दिव्य संलग्न भर जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े

१—कपिलाके भेदों एवं उनकी अपार धृहिमाका वर्णन महाभारतके वैज्ञानिकर्मपर्वमें हुआ है, जो असामेयिक पर्वका अन्तिम भाग है। पाणिनि-व्याकरण (५। २। १७) के गणपाठके अनुसार कवि अर्थात् वन्दके समान वर्णवाली गायको कपिल कहते हैं।

प्रेमसे ग्रहण करते हैं। जो अमावास्याको ब्राह्मणोंके सम्मुख इसका पाठ करता है, उसके पितर सौ वर्षके लिये तृष्ण हो जाते

हैं। जो पुरुष मन लगाकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसके सौ वर्षके पाप नष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १६१)

—अंतः—

महिषी एवं मेषी-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—हजन्! अब मैं पापनाशक, पुण्यप्रद तथा आयु और सुखप्रदायक महिषीके दानकी विधि बता रहा हूँ। सूर्य-चन्द्रग्रहण, कर्त्तिक-पूर्णिमा, अयनसंक्रान्ति, शुक्र पक्षकी चतुर्दशी आदि पर्व-दिनोंमें अथवा जब भी सामर्थ्य हो, उसी समय सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके लिये महिषी-दान करना चाहिये। शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अलंकृत महिषी उत्तम विद्वान् ब्राह्मणको देनी चाहिये। दान देनेके समय इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ।

महिषीदानमाहात्म्यान् सासु ये सर्वकामदा ॥

धर्मराजस्य साहाय्ये यस्य पुत्रः प्रतिष्ठिः ।

महिषासुरस्य जननी या सासु वरदा यम् ॥

(उत्तरपर्व १६२। ९-१०)

'जो इन्द्रादि लोकपालोंकी कल्याणकारिणी राजमहिषी है और धर्मराजकी सहायता करनेके लिये जिसका पुत्र (महिष) उनका बाह्य बना हुआ है तथा जो महिषासुरकी जननी है, वह मेरे लिये वरदायिनी हो। इस महिषी-दानसे मेरी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जायें।'

प्रदक्षिणाके पक्षात् पृष्ठ-भागसे महिषीका दान करना चाहिये। वस्त्र, आभूषण और दक्षिणाके साथ महिषी

ब्राह्मणको देकर विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति महिषीका दान करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

महाराज ! इसी प्रकार मेषी-दान भी सभी पापोंको दूर करनेवाला है। एक सुवर्णमयी मेषीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम भूषण, रेशमी वस्त्र, चन्दन, पुण्यमाला आदिसे अलंकृतकर अथवा प्रत्यक्ष मेषीको अलंकृतकर उसका दान करना चाहिये। ग्रहण, विषुवयोग, अयनसंक्रान्ति आदि पवित्र दिनोंमें, दुःखप्रद देखनेपर, अमावास्यामें अथवा जब भी श्राद्ध हो तब इसका दान करना चाहिये। दानके समय शिव-पार्वती, ब्रह्मा-गायत्री, लक्ष्मी-नारायण तथा रति-क्षमदेवकी पूजा करनी चाहिये, साथ ही लोकपालों और ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके बाद मेषीकी प्रतिमाको तिलके कलशपर स्थापित कर उसके सामने नमक रखकर विधिपूर्वक पूजन करे और गृहस्थ ब्राह्मणको उसका दान कर दे। इस दानके प्रभावसे निःसंतानको पुत्र और निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस दानकी विधिको सुनता है, वह भी अहोरात्रमें किये गये पापोंसे छूट जाता है।

(अध्याय १६२-१६३)

भूमिदानकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले भूमिदानकी विधि बतला रहा हूँ। जो अग्रिहोत्री, दरिद्र-कुटुम्बी तथा वैदिक ब्राह्मणको दक्षिणासाहित भूमिका दान करता है, वह बहुत समयतक ऐक्षर्यका भोगकर अन्तर्गत दिव्य विमानमें बैठकर विष्णुलोकको जाता है। जबतक उसके द्वारा प्रदत्त भूमिपर अंकुर उपजते रहते हैं, तबतक भूमिदाता विष्णुलोकमें पूजित होता है। भूमिदानके अतिरिक्त और कोई भी दान विशिष्ट नहीं माना गया है। पुरुषर्थी ! अन्य दान कालक्रमसे क्षीण हो जाते हैं, परंतु भूमिदानका पुण्य क्षीण नहीं होता। जो व्यक्ति सर्वसम्पन्न

भूमिका दान करता है, वह जबतक भगवान् सूर्य रहेंगे, तबतक सूर्यलोकमें वह पूजित होता रहेगा। धन-धान्य, सुवर्ण, रत्न, आभूषण आदि सब दान करनेका फल भूमिदान करनेवाला प्राप्त कर लेता है। जिसने भूमिदान किया, उसने मानो समुद्र, नदी, पर्वत, सम-विषम स्थल, गन्ध, रस, क्षीरयुक्त ओषधि, पुष्प, फल, कमल, उत्पल आदि सब कुछ दान कर दिया। दक्षिणासे युक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भूमिदान करनेसे प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर पुत्रः उससे वापस नहीं लेना चाहिये। सर्वसम्पन्न भूमिका दान करनेवाले व्यक्तिके पितर

प्रलयपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। अपनी आजीविकाके निमित्त जो पाप पुरुषसे होता है, वे सारे पाप गोचर्म-मात्र^१ भूमिके दान करनेसे दूर हो जाते हैं। एक हजार स्वर्ण मुद्राके दानसे जो फल बतलाया गया है, वही फल गोचर्म-प्रमाणमें भूमिका दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। नगेत्रम् ! हजारों कपिल गौओंके दान करनेके समान पुण्य गोचर्म-मात्र भूमि देनेसे प्राप्त होता है। सगर आदि अनेक राजाओंने भूमिका उपयोग किया है, परंतु अपने-अपने आधिपत्यमें जिसने भी भूमिका दान किया, सभीको उसका फल प्राप्त हुआ। यमदूत, मृत्युदण्ड, असिषत्रबन, वरणके घोर पाश और रीरवादि अनेक नरक और उनकी दाहण यातनाएँ भूमिदान करनेवालेके समीप नहीं आतीं। चित्रगुप्त, मृत्यु, काल, यम आदि सब भूमिदाताकी पूजा करते हैं। राजन् ! भगवान् रुद्र, प्रजापति, इन्द्रादि देवता और अमुरगण भूमिका दान करनेवालेकी पूजा करते हैं, स्वयं मैं भी उसकी अतीव प्रसन्नतासे पूजा करता हूँ। जिस भाँति माता अपनी संतानका और गौ जैसे अपने वत्सका दूध आदिके द्वारा पालन करती है, उसी प्रकार रसमयी भूमि भी भूमि देनेवालेकी रक्षा और पालन-पोषण करती है। जिस

प्रकार जलके सेवनसे बीज अंकुरित होते हैं, उसी प्रकार भूमिदानसे सब मनोरथ अंकुरित होकर सफल सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही उनके प्रकाशसे अन्यकर दूर हो जाता है, उसी प्रकार भूमिके दानसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

भूमिको दान देकर वापस लेनेवालेको यमदूत वारुण पाशोंसे बाँधकर पूय तथा शोणितसे भरे कुछोंमें डालते हैं। अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरे व्यक्तिके द्वारा दी गयी भूमिका जो व्यक्ति अपहरण करता है, वह प्रलयपर्यन्त नरकाप्रियमें जलता रहता है। दानमें प्राप्त भूमिके हरण हो जानेपर दुःखित व्यक्तिके रोने-कल्पनेसे जितने अशुचिन्दु गिरते हैं, उन्हें हजार वर्षतक भूमिका हरण करनेवाला नरकमें कष्ट भोगता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर जो व्यक्ति पुनः उस भूमिका हरण करता है, उसे उस्ता लटकव कर कुम्भीपाक नरकमें पकाया जाता है। दिव्य हजार वर्षके बाद वह व्यक्ति कुम्भीपाकसे निकलकर इस भूमिपर जन्म लेता है और सात जन्मतक अनेक प्रकारके कष्टोंको भोगता रहता है। इसलिये भूमिका हरण नहीं करना चाहिये। (अध्याय १६४)

सुवर्णरचित् भूदानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! भूमिका दान तो क्षत्रिय ही कर सकते हैं, क्योंकि क्षत्रिय ही भूमिका उपार्जन करनेमें, उसका दान करनेमें और उसके पालन करनेमें समर्थ होते हैं और लेगोंसे न तो भूमिका दान हो सकता है, न ही उसका पालन ही हो सकता है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये जो भूमिदानके समकक्ष हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! यदि भूमिका दान सम्भव न हो तो सुवर्णके द्वारा भूमण्डलकी आकृति बनाकर और नदी-पर्वतोंके रेखाक्रित कर उसे ही दान कर देना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त हो जाता है। अब मैं इसकी विधि बता रहा हूँ।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, विषुवयोग, मुगादि तिथियों तथा अयनसंक्रान्ति आदि पुण्य समयोंमें पापक्षय और यशक्षय प्राप्तिके लिये इस दानको करना चाहिये। अन्य भी प्रशस्त

समयोंमें जब धन एकत्र हो जाय, इस दानको किया जा सकता है। एक सौ पलमें लेकर कम-के-कम पाँच पलतक अर्थात् अपनी सामग्र्यके अनुसार सुवर्णकी जम्बूदीपके आकारमें पृथ्वीकी प्रतिमा बनानी चाहिये। जिसके मध्यमें मेह पर्वत तथा यथास्थान अन्य पर्वत अङ्कित हों। वह पृथ्वी सत्यसम्पन्न तथा लोकपालोंसे रक्षित, ब्रह्मा, शंकर आदि देवताओंसे सुशोभित तथा सभी रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत हो। बाईस हाथ लंबा-चौड़ा तोरणयुक्त चार द्वारोंवाला एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें चार हाथकी बेदी बनानी चाहिये। ईशानकोणमें बेदीपर देवताओंका स्थापन करे और अग्निकोणमें कुण्ड बनाये। पताका-नीरण आदिसे मण्डपको सजा ले। अनन्तर पञ्चलोकपाल और नवग्रहोंका पोङ्शोपचार पूजन करनेके बाद ब्राह्मणोंसे हवन करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग वेदध्यनि करते हुए तथा मङ्गलघोषपूर्वक भेरी, शङ्ख इत्यादि वाह्योंकी ध्वनिके साथ

उस सुवर्णमयी पृथ्वीकी प्रतिमाको मण्डपमें लकड़ तिल बिछी हुई बेटीपर स्थापित करे । तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अंगों, लवण्यादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये । उसे रेशमी चैटोखा, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनद्वारा अलंकृत करना चाहिये । इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सारा कर्म सम्पन्न कर स्वयं खेत वस्त्र और पुण्यमाला धारणकर, खेत वर्णके आभूषणोंसे विभूषित हो अङ्गलिमें पुण्य लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उचारण करे—

नमस्ते सर्वदिवानां त्वमेव भवनं यतः ।
धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥
वसु धारयसे यस्मात् सर्वसौख्यप्रदैयकम् ।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भवादलम् ॥
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेदास्पादन्तं तवाच्छले ।
अनन्तायै नमस्तुप्यं पाहि संसारकर्मामात् ॥
त्वमेव लक्ष्मीगोकिन्दे शिवे गौरीति संस्थिता ।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥
बुद्धिर्वृहस्पतौ स्वयाता भेदा मुनिषु संस्थिता ।
विष्णु व्याघ्र्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वस्थरा मता ॥
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही ।
एतापिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥

(उत्तरपर्व १६५ । २१—२६)

'वसुन्धरे । चैकि तुम्हाँ सभी देवताओं तथा सम्पूर्ण

जीवनिकश्यकी भवनभूता तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो । तुम्हें नमस्कार है । चैकि तुम सभी प्रकारके सुख प्रदाता वसुओंको धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा नाम वसुन्धरा है, तुम संसार-भवसे मेरी रक्षा करो । अचले ! चैकि ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये तुम अनन्त हो, तुम्हें प्रणाम है । तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो । तुम्हाँ विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, चन्द्रमामें ज्योत्स्ना, रुद्रमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्ध और मुनियोंमें मेधा-रूपमें स्थित हो । चैकि तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विश्वस्थरा कही जाती हो । धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुधा तथा मही—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं । देवि ! तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो ।'

इस प्रकार उचारणकर पृथ्वीकी मूर्ति ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे । उस पृथ्वीका आधा अथवा चौथाई भाग गुरुको समर्पित करे । जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्याणमयी पृथ्वीकी सुवर्णमूर्तिका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैष्णव पटको प्राप्त होता है तथा क्षुद्र धन्तिकाओं (धूंधरू) से सुशोभित एवं सूक्ष्मके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और पुण्य कीण होनेपर इस संसारमें आकर वह धार्मिक चक्रवर्ती रुजा होता है ।

(अध्याय १६५)

हलपंक्तिदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सर्व-पापनाशक तथा सर्वसौख्यप्रद हलपंक्ति-दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिससे सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त हो जाता है । एक हलके लिये चार बैलोंकी आवश्यकता होती है और दस हलोंकी एक पंक्ति होती है । साथूकी लकड़ीसे दस हल बनवाकर उन्हें सुवर्ण-पट्ट और रलोंसे मढ़कर अलंकृत कर ले । वस्त्र, स्वर्ण, पुण्य तथा चन्दन आदिसे मण्डित तरुण, सुन्दर, हष्ट-पुष्ट, उत्तम वृष उन हलोंमें जोतने चाहिये । बैलोंके कंधोंपर जुआ भी रखें, साथमें कील लगा हुआ अंकुश आदि उपकरण भी रहने चाहिये । पर्वकलमें हलपंक्तिके साथ

संस्यसम्पन्न बड़ा ग्राम, छोटा ग्राम अथवा सौ निवर्तन (सौ बीघा) अथवा पचास निवर्तन भूमि देनी चाहिये । इसका दान विशेषरूपसे कर्तिकी, वैशाखी, अयनसंक्रान्ति, जन्मनक्षत्र, ग्रहण, विषुवयोगमें करे । वेदवेत्ता, सदाचारी, सम्पूर्णज्ञ, अलंकृत दस ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे । दस हाथ प्रमाणवाला एक मण्डप बनाकर उसमें पूर्व दिशामें एक हाथ प्रमाणवाले दो अथवा एक कुण्ड बनवाये । निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे प्रलाशकी समिधा, धी, काला तिल और खीरसे व्याहारियों, पर्जन्यसूक्त, आदित्यसूक्त और रुद्रमन्त्रोंसे हवन कराये । तदनन्तर यजमान ऊन कर शुक्ल वस्त्र आदिसे अलंकृत हो सप्तशान्यके ऊपर

हलपंक्तिको स्थापित करे और उसमें बैलोंको जोते। उस समय विविध प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंको बजाना चाहिये और ब्राह्मणवार्ग वेद-पाठ करें। यजमान दानके समय पुष्टाङ्गलि प्रहण कर इन मन्त्रोंको पढ़े—

यस्माद् देवगणाः सर्वे हने तिष्ठन्ति सर्वदा ।

युपस्कन्धे संनिहितास्माद्गतिः शिवेऽस्तु मे ॥

यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नाहिन्ति योऽश्रीम् ।

दानान्वन्यानि मे भक्तिर्थमें चासु दृष्टु सदा ॥

(उत्तरपर्व १६६। १६-१७)

‘चूंकि बैलके केषेपर स्थित हलमें सभी देवगण सदा स्थित रहते हैं, अतः भगवान् शंकरमें मेरी भक्ति हो। अन्य समस्त दान भूमिदानकी सोलाहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।’ इसके बाद भूमि और हल उन ब्राह्मणोंको दे दे। इस प्रकार जो व्यक्ति हलपंक्तिका दान-

करता है, वह अपने इक्षीस कुलोंसहित स्वर्ग जाता है। सात जन्मतक उस व्यक्तिको निर्धनता, दुर्भाग्य, व्याधि आदि दुःख नहीं भोगने पड़ते और वह पृथ्वीका अधिपति होता है। युधिष्ठिर ! दान करते समय जो भक्तिपूर्वक इस दानकर्मका दर्शन करता है, वह भी जन्मभर किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस दानको महाराज दिलीप, ययाति, शिवि, निमि, भरत आदि सभी श्रेष्ठ राजार्थियोंने किया, जिसके प्रभावसे वे राजा आज भी स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। इसलिये भक्तिपूर्वक सभी खी-पुरुषोंको यह दान करना चाहिये। यदि दस हलपंक्तिका दान करनेमें समर्थ न हो तो पाँच, चार अथवा एक ही हलका दान करे। हल-पंक्तिका दान करनेवाले हलसे जितनी मिट्टी उठती है और बैलोंके शरीरमें जितने भी रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक शिवलोकमें निवासकर अन्तमें पृथ्वीपर श्रेष्ठ राजा होते हैं। (अध्याय १६६)

आपाक-दानके प्रसंगमे राजा हृष्ववाहनकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! कृपाकर आप ऐसा कोई दान बतायें, जिससे मनुष्य धन, पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न हो सके।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं इस सम्बन्धमें एक इतिहास कह रहा हूँ, आप श्रद्धापूर्वक सुनिये। किसी समय चन्द्रवंशमें हृष्ववाहन नामका एक राजा हुआ था। उसके राज्यमें न कोई उपद्रव होता था और न कोई उत्सक्त शत्रु ही था। सभी नीरोग रहते थे। वह बड़ा प्रतापी, स्वस्थ, बली और शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला था। परंतु पूर्वजन्मके अशुभ कर्मके प्रभावसे उसके पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं था जो राज्यको सुचारूपसे चला सके तथा उसे कोई पुत्र, मित्र या सहायक बन्धु-बान्धव भी न था। उसे कभी समयसे भोजन आदि भी नहीं मिल पाता था। इस कारण वह राजा सदा चिन्तित रहता था।

एक बार उसके यहाँ पिप्पलाद मुनि पधरे। राजाकी पटरानी शुभावतीने मुनिकी श्रद्धापूर्वक पाद्य, अर्थ आदिसे पूजा की और आसनपर उन्हें बैठाकर निवेदन किया कि ‘मुनीश्वर ! यह निष्कर्षक राज्य तो हमें मिला है, परंतु मन्त्री, मित्र, पुत्र आदि हमें क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसका कारण

बतानेकी कृपा करें।’ राजीका बचन सुनकर पिप्पलाद मुनिने कहा कि—‘देवि ! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फल ही अगले जन्ममें प्राप्त होते हैं, यह कर्मभूमि है, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिस पदार्थका पूर्वजन्ममें मनुष्यने सम्पादन नहीं किया है, उसे शत्रु, मित्र, बान्धव, राजा आदि कोई भी नहीं दे सकते। पूर्वजन्ममें तुमने राज्यका दान किया था, वह तुम्हें प्राप्त हो गया, परंतु तुमलोगोंने मित्र, भूत्य आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा, अतः इस जन्ममें ये सब कैसे प्राप्त होंगे ?’

इसपर राजी शुभावती बोली—महाराज ! पूर्वजन्ममें जो हुआ वह तो बीत गया, अब इस समय आप ऐसा कोई ब्रत, दान, उपवास, मन्त्र अथवा सिद्धयोग बतानेकी कृपा करें, जिससे मुझे पुत्र, धन, मित्र, भूत्य इत्यादि प्राप्त हो सके। राजीका बचन सुनकर पिप्पलाद मुनि बोले—‘भद्रे ! एक आपाक नामका महादान है, जो सभी सम्पत्तियोंका प्रदायक है। श्रद्धापूर्वक कोई भी आपाकका दान करता है तो उसे महान् लाभ होता है। इसलिये तुम श्रद्धासे आपाकदान करो।’ मुनिके कथनानुसार राजी शुभावतीने आपाकदान किया। फलतः उसे पुत्र, मित्र, धन और भूत्य प्राप्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं उस आपाक-दानकी विधि बता रहा हूं, आप श्रद्धापूर्वक सुनें। चुदिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ग्रह और ताराबलका विचारकर शुभ मुहूर्तमें अगर, चन्दन, धूप, पुण्य, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य आदिसे भार्गव (कुम्हार) का ऐसा सम्मान करे, जिससे वह संतुष्ट हो और उससे निवेदन करे कि महाभाग ! आप विश्वकर्मास्वरूप हैं। आप मेरे लिये सुन्दर छोटे-बड़े मिट्टीके घड़े, स्थाली, कसोर, कलश आदि पात्रोंका निर्माण करे। भार्गव भी उन पात्रोंको बनाये। तदनन्तर विधिपूर्वक एक आर्कि—भट्टी लगाये। अनन्तर उन एक हजार मिट्टीके पात्रोंको आर्किमें स्थापित कर सायंकालके समय उसमें अग्रि प्रज्वलित करे और रात्रिको जागरणकर बाद्य, गीत, नृत्य आदिकी व्यवस्थाकर उत्सव मनाये। सुप्रभात होते ही यजमान आर्किकी अग्रिको शान्तकर पात्रोंको बाहर निकाल ले। अनन्तर ऊनकर खेत वस्त्र पहनकर उनमेंसे सोलह पात्रोंको सामने स्थापित करे। रक्तवस्त्रसे उन्हें आच्छादितकर पुष्पमालाओंसे उसका अर्चन करे और ब्राह्मणोंद्वारा स्वास्तिवाचन आदि कराकर भार्गवका भी पूजन करे। ये पात्र माणिक्य, सोने, चाँदी अथवा मिट्टीतकके हो सकते हैं। सौभाग्यवती रुद्रियोंकी पूजाकर भाष्टोकी

प्रदक्षिणा करनी चाहिये और इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए उन पात्रोंका दान करना चाहिये—

आपाक ब्रह्मरूपोऽसि भाष्टानीमानि जन्तवः ।

प्रदानात् ते प्रजापुष्टिः स्वर्गाशास्तु ममाक्षयः ॥

भाष्टरूपाणि यान्यत्र कस्तितानि मया किल ।

भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥

(उत्तरपर्व १६७। ३२-३३)

‘आपाक (आर्कि) ! आप ब्रह्मरूप हैं और ये सभी भाष्ट प्राणीरूप हैं। आपके दान करनेसे मुझे प्रजाओंसे पुष्टि प्राप्त हो, अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो। मैंने जितने पात्र निर्माण कराये हैं, ये सभी सत्पात्रके रूपमें मेरे समक्ष प्रस्तुत रहें।

जिसकी इच्छा जिस पात्रको लेनेकी हो उसे वह स्वयं ही ले ले, रोके नहीं। इस विधिसे जो पुण्य अथवा स्त्री इस आपाक-दानको करते हैं, उससे तीन जन्मतक विश्वकर्मा संतुष्ट रहते हैं और पुत्र, मित्र, भूत्य, घर आदि सभी पदार्थ मिल जाते हैं। जो स्त्री इस दानको भक्तिपूर्वक करती है, वह सौभाग्यशाली पतिके साथ पुत्र-पौत्रादि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर लेती है और अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गको जाती है। नरेश्वर ! यह आपाक-दान भूमिदानके समान ही है। (अध्याय १६७)

गृहदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आप सभी शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, अतः आप गृहदानकी विधि और महिमा बतानानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! गार्हस्यधर्मसे बदलकर कोई धर्म नहीं और असत्यसे बदलकर कोई आप नहीं है। ब्राह्मणसे बदलकर कोई पूज्य नहीं और गृहदानसे बदलकर कोई दान नहीं है। धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा, गौ, भूत्य आदिसे परिपूर्ण घर स्वर्गसे भी अधिक सुख देनेवाला है। जिस प्रकार सभी प्राणी-माताके आश्रयसे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम भी गृहस्य-आश्रमपर ही आधृत हैं। अपने घर रात्रिको पैर फैलाकर सोनेमें जो सुख है, वह सुख स्वर्गमें भी नहीं। अपने घरमें शाकका भोजन करना भी उत्तम सुख है, इसलिये महाराज ! सुन्दर घर बनवाकर ब्राह्मणको देना चाहिये। जो व्यक्ति शैव, वैष्णव, योगी, दीन, अनाथ,

अप्यागत आदिके लिये गृह, धर्मशाला बनाता है, उस व्यक्तिको सभी ब्रत और सभी प्रकारके दान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पैके ईंटसे सुदृढ़, ऊँचा, शुभ्रवर्ण, जाली, झरोखा, स्तम्भ, कपाट आदिसे युक्त, जलाशय और पुण्य-वाटिकासे भूषित, उत्तम आँगनसे सुशोभित सुन्दर घर बनाना चाहिये। गृह कक्षाएँ पीठोंके समान ऊँचा एवं बरामदोंसे सुसज्जित होना चाहिये। उसे कई मंजिलों तथा गलियों आदिसे समन्वित होना चाहिये। लोहा, सोना, चाँदी, ताँचा, लकड़ी, मृतिका आदिके पात्र, वस्त्र, चर्म, बल्कल, तृण, पाण्डाण, पात्र, रत्न, आभूषण, गाय, भैंस, घोड़ा, बैल, सभी प्रकारके धान्य, धी, तेल, गुड़, तिल, चावल, ईख, भौंग, गेहूं, सरसों, मटर, अरह, चना, उड़द, नमक, खजूर, द्राक्षा, जीर, धनिया, चूलहा, चक्की, छलनी, ऊखल, मूसल, सूप, हाँड़ी, मथानी, झाङू तथा जलकुम्भ आदि ये सब गृहस्यके

उपकरण है, इनको घरमें स्थापित करनेके बाद शुभ मुहूर्तमें कुलीन एवं शीलसम्पन्न, वेदशास्त्रके जाननेवाले, गृहस्थघर्में चपालन करनेवाले, जितेन्द्रिय सपलीक ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्र, गन्ध, आधूषण, पुष्पमाला आदिसे उनका पूजन कर शान्तिकर्मके लिये उनको नियुक्त करना चाहिये। घरके आँगनमें एक मेखलासहित कुण्डका निर्माण करनाचाहिये। ब्राह्मणोंद्वारा तुष्टि-पृष्ठि प्रदान करनेवाला ग्रहयाग करे। ब्राह्मण रक्षोभ्रसूक्त पढ़नेके बाद वासु-पूजाकर सभी दिशाओंमें भूतबलि दे। इसके बाद यज्ञमान पुण्य पवित्र घोषके साथ ब्राह्मणोंको दानके निमित्त बनाये गये उन घरोंमें प्रवेश कराये और वहाँ शाय्याओंपर उन सपलीक ब्राह्मणोंको बिठलाये। जिस घरको पूर्वमें ही जिस ब्राह्मणके लिये नियत किया गया है उसे 'इदं गृहं गृहाण' 'इस गृहको ग्रहण करे' ऐसा कहकर

प्रदान करे। ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहें और 'क्लोऽद्यात्' (यजु० ७।४८) इस मन्त्रका पाठ करें। यदि सामर्थ्य हो तो एक-एक घर ब्राह्मणोंको दे अथवा एक ही घर बनवाकर एक सत्पात्र ब्राह्मणको देना चाहिये। राजन्! शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेवाली तृणमयी कुटी ब्राह्मणोंको देनेपर भी जब सभी क्षमामाओंकी पूर्ति हो जाती है और स्वर्ग प्राप्त होता है तो फिर उत्तम घर दान देनेके फलका वर्णन कहाँतक किया जा सकता है! गाय, भूमि, सुवर्ण आदिके दान और अनेक प्रकारके यम-नियमोंका पालन गृहदानके सोलहवें भागकी भी वरावरी नहीं कर सकते। जो व्यक्ति सभी सामग्रियोंसहित सुदृढ़ और सुन्दर घर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १६८)

अन्नदानकी महिमाके प्रसंगमें राजा श्रेत और एक वैश्यकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! किसी समय मुनियोंने अन्नदानका जो माहात्म्य कहा था, उसे मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। अनन्य ! आप अन्नदान करें, जिससे तत्काल संतुष्टि प्राप्त होती है। बनमें श्रीरामचन्द्रजीने दुःखी होकर लक्षणसे कहा था—‘लक्षण ! सम्पूर्ण पृथ्वी अन्नसे परिपूर्ण है, फिर भी हमलोगोंको अन्न नहीं मिल रहा है, इससे यही जान पड़ता है कि हमलोगोंने पूर्वजन्मोंमें ब्राह्मणोंको कभी अन्नका भोजन नहीं कराया।’ मनुष्य जिस कर्मरूपी बीजको बोता है, जैसा कर्म करता है, वह उसीका फल पाता है। संसारमें यह ठीक ही कहा जाता है कि यिन्हाँ दिये कुछ नहीं मिलता। भोजन-योग्य जिस अन्नका दान किया जाता है, वह अन्न दान परम श्रेयस्कर है। भारत ! भोज्य पदार्थमें बहुतसे पदार्थ हैं, किन्तु अन्नका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ दान है। सत्यसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, संतोषसे बढ़ा कोई सुख नहीं और अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। यान, अनुलेपन और वस्त्रालंकरणोंसे मनुष्योंको वैसी तृप्ति नहीं होती, जैसी भोजनसे होती है। इस विवरणमें एक इतिहास है—

राजन् ! बहुत पहले एक श्रेत नामके चक्रवर्ती राजा हुए हैं, उन्होंने अनेक यज्ञ किये और अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त

की। अनेक प्रकारका दान दिये और धर्मपूर्वक ग्रन्थपर शासन किया। राजाने अनेक प्रकारके उत्तम भोग भोगकर अन्नमें रुद्धका परित्याग कर बनमें जाकर तपस्या की। अन्तमें वे दिव्य विमानमें आरुङ्ग होकर स्वर्ग गये। वहाँ विद्याधर, किन्नर आदिके साथ विहार करने लगे। अपसराएँ उनकी सेवामें रहती थीं। गम्भीर उन्हें गीत सुनाकर रिक्षाते, इन्द्र भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजाको दिव्य वस्त्र, आधूषण, पुष्पमाला आदि पहननेको तो मिलता था, परंतु भोजनके समय विमानमें बैठकर भूलोकमें आकर अपने पूर्व-शारीरके मांसको प्रतिदिन खाना पड़ता था। प्रतिदिन मांसका भोजन करनेके बाद भी पूर्वजन्मके कर्मके कारण उस पूर्वशारीरका मांस घटता नहीं था। इस प्रकार प्रतिदिन मांस-भक्षणसे व्याकुल होकर राजाने ब्रह्माजीसे कहा—‘ब्रह्म ! आपके अनुग्रहसे मुझे स्वर्गका सुख प्राप्त हुआ है, सभी देवता मेंग आदर करते हैं। सभी सामग्री उपभोगके लिये प्राप्त होती रहती है, परंतु सभी भोगोंके रहते हुए भी यह पापियों क्षुधा कभी शान्त नहीं होती, मुझे सदा सताती रहती है। इसी कारण मुझे अपने पूर्व-शारीरके मांसको प्रतिदिन खानेके लिये भूलोकमें जाना पड़ता है और इसमें मुझे बड़ी घृणा होती है। मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया

है, जिससे मुझे उत्तम भोजन नहीं मिलता। आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतायें जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय।

ब्रह्माजी बोले—गजन्! आपने अनेक प्रकारके दान दिये हैं, बहुत-से यज्ञ किये हैं और गुरुजनोंको भी संतुष्ट किया है, परंतु ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन नहीं करता। अन्नदान न करनेसे ही आज आपकी यह दशा हो रही है। अन्नसे बढ़कर कोई संजीवनी नहीं। अन्नको ही अमृत जाना चाहिये। इसलिये अब आप पृथ्वीपर जाकर वेदशास्त्र जानेवाले कुलीन ब्राह्मणोंको भोजन करायें। उससे आपका यह दुःख दूर हो जायगा।

ब्रह्माजीका वचन सुनकर राजा श्रेत्रने पृथ्वीपर आकर महर्षि अगस्त्यजीको परमभक्तिसे भोजन कराया और अपने गलेकी दिव्य एकावली (माला^१) को दक्षिणाके रूपमें समर्पित किया। अगस्त्यजीको भोजन करते ही राजा श्रेत्र संतुष्ट हो गये और सभी देवता वहाँ आकर अंतीव आदरपूर्वक राजाको विमानमें बैठाकर स्वर्गलोक चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने जब गुवणका वध कर दिया, तब वह एकावली अगस्त्यजीने श्रीगमचन्द्रजीको दे दी। यह अन्नदानका ही माहात्म्य है।

मेरा वचन सत्य है कि प्राणियोंके लिये अन्नसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। अन्न जीवोंका प्राण है। अन्न ही तेज, बल और सुख है। इसलिये अन्नदाता प्राणदाता है। भूखा व्यक्ति जिस दूसरे व्यक्तिके घर आशा करके जाता है और वहाँसे संतुष्ट होकर आता है तो भोजन देनेवाला व्यक्ति धन्य हो जाता है, उसके समान पुण्यकर्मा और कौन होगा? दीक्षा-प्राप्त खातक, कपिला गौ, यादिक, राजा, पिक्षु तथा महोदधि—ये सब दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। इसलिये घरपर आये भूखे व्यक्तिको जो भोजन न दे सके उसका गृहस्थाश्रम व्यर्थ है। अन्नके बिना कोई अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। मनुष्योंका दुष्कृत अर्थात् किया हुआ दूषित कर्म अन्नमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये जो ऐसे व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अन्न देनेवालेके दुष्कृतका ही भक्षण करता है। इसके विपरीत अमृतमय पवित्र परात्रका भोजन करनेवाले व्यक्तिका एक महानेत्र किया हुआ पुण्य

अन्नदाताको प्राप्त हो जाता है। जिस अन्नके दानका इतना महत्व है, उसका दान क्यों नहीं करते? (अर्थात् थोड़ा-बहुत अवश्य करो, करना चाहिये।) जो व्यक्ति ब्राह्मण-अतिथि आदिको भोजन आदि करने तथा भिक्षा देनेके पूर्व ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह केवल पाप ही भक्षण करता है। जिस व्यक्तिने दस हजार या एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया है, उससे मानो ब्रह्मलोकमें अपना स्थान बना लिया।

प्राचीन कालमें वाराणसीमें देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धनेश्वर नामका एक वैश्य रहता था। उसकी दुकानमें एक स्थानपर एक सर्पिणीने अंडा दिया और वह उस अंडेको छोड़कर कहीं अन्यत्र चली गयी। वैश्यने अंडेको देखा और उसपर दयाकर उसकी रक्षा करने लगा। कुछ समय बाद अंडेको फोड़कर कृष्ण सर्पका बच्चा बाहर निकला। उस सर्पके बच्चेको वैश्य प्रतिदिन दूध मिलाता था। वह सर्प भी वैश्यके पैरोंपर लोटता, उसके अङ्गोंको चाटता और पूरे घरमें निर्भय हो भूमता रहता। वैश्य भी भलीभांति सर्पकी रक्षा करता। थोड़े ही समयमें वह भव्यकर सर्प हो गया। किसी समयकी बात है, वह धनेश्वर गङ्गा-खान करनेके लिये गया था और उसका पुत्र दुकानपर बैठकर सामान बेच रहा था। उसी समय वह सर्प उस लड़केके पैरोंके बीचसे निकला, जिससे वह लड़का डर गया और उसने सर्पको ढंडेसे मारा। चोट लगते ही सर्प उछलकर वैश्यपुत्रके सिरपर बैठ गया और ब्रोधित होकर कहने लगा—‘मूर्ख! मैं तुम्हारे पिताकी शरणमें हूँ और तुम्हारे पिताने ही मेरा पालन-पोषण किया है, इसलिये मैं तुम्हारा भी भला ही चाहता था, परंतु तुमने मुझे अकारण ही प्रताड़ित किया है, इसलिये अब मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।’ सर्पके इस प्रकार कहनेके साथ ही वैश्यके घरमें दुःखी हो सब रोने लगे।

उसी समय अच्युत, गोविन्द, अनन्त आदि भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ खान कर वह धनेश्वर भी घर आ गया। पुत्रकी बैसी स्थिति देखकर उसने सर्पसे कहा—‘पत्रग! तुम मेरे पुत्रके मस्तकपर फण फैलाये क्यों बैठे हो? यह ठीक ही कहा गया है कि मूर्ख मित्र और हीन

१-महाराज श्रेत्रकी कथा कई स्थानोंपर है, किन्तु वास्तीकीय रामायण उत्तरकालके ७३ तथा ७४ सर्गोंमें कही रख शैली और मध्य पद्मबहिर्लिपेमें वर्णित हुई है। वहाँ एकावली मालाकी जगह केवूँ अदि दिव्य अभूतपूर्णी बात निर्दिष्ट है।

जातिमें उत्पत्र प्राणीके साथ सम्बन्ध करना अपने हाथसे जलता हुआ अंगारा उठाना है'।' वणिकूकी बात सुनकर सौंपने कहा—'धनेश्वर ! तुम्हारे पुत्रने मुझे निरपराध ही मारा है, इसलिये तुम्हारे सामने ही मैं इसका प्राण ले रहा हूँ, जिससे अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा काम न करे।' यह सुनकर धनेश्वरने कहा—'सर्प ! जो उपकार, भक्ति तथा खेल आदिके भूलकर अपने गुस्सेसे भटक जाय अर्थात् अपने कर्तव्यमार्गको छोड़ दे, उसे कौन रोक सकता है, परंतु क्षमात्र तुम इस बालकको छोड़ दो, देश न करो, जिससे मैं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपना और्ध्वदैहिक कर्म अपने हाथसे कर सकूँ, व्यक्तिका बादमें मेरे पास कोई पुत्र नहीं रहेगा।' सर्पने इस बातको स्वीकार कर लिया।^१

तदनन्तर वैश्यने वेदवेता और जितेन्द्रिय एक हजार ब्राह्मणों तथा संन्यासियों आदिको धी, यायससहित मधुर स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनसे संतुष्ट हो ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—

वणिकपुत्र चिरं जीव नश्यन्तु तत्र शश्रवः ।

अभीष्टफलसंसिद्धिरसु ते ब्राह्मणाश्या ॥

(उत्तरपर्व १६९। ६३)

'वणिकपुत्र ! ब्राह्मणोंकी आशासे तुम चिरंजीवी होओ, तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट हो जायें और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ऐसा कहकर ब्राह्मणोंने अक्षत और पुष्प वैश्यपुत्रके मस्तकपर छोड़े। ब्राह्मणोंकी वान्यत्रसे ताड़ित होकर वह सर्प

मस्तकसे गिरा और मर गया। सर्पको मरा हुआ देखकर धनेश्वरको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा कि मैंने इस सर्पको पुकारी भाँति पाला था और आज यह मेरे ही दोषसे मर गया। यह बड़ा ही अनुचित हुआ। उपकार करनेवालेमें जो साधुता रखता है, उसकी साधुतामें कौन-सी विशेषता रहती है ? अर्थात् वह प्रशंसाके योग्य नहीं है, किंतु जो अपकारियोंमें साधुता रखता है, उसकी साधुता ही सराहनीय है^२।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे पञ्चात्तप करते हुए दुःखी होकर वैश्यने न तो उस दिन भोजन किया, न ही यत्रिमें सो सका। प्रातःकाल होते ही गङ्गामें रुग्न कर देवता-पितरोंका पूजन-तर्पण आदिकर घर आया और पुनः एक हजार ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके उत्तम व्याङ्गानोंका भोजन कराकर संतुष्ट किया। इसपर ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—'धनेश्वर ! हमलोग तुमसे बहुत ही संतुष्ट हैं, इसलिये तुम वर माँगो।' यह सुनकर उसने वर माँगा कि 'यह मृत सर्प पुनः जीवित हो जाय।' वैश्यके यह कहनेपर ब्राह्मणोंने अधिमानित जल सर्पके ऊपर छिड़का। जलके छंटि पड़ते ही वह सर्प जीवित हो गया। यह देखकर धनेश्वर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और नगरके सोग धनेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

महाराज ! यह सहस्र-ब्राह्मण-भोजन (अप्रदान) का संक्षेपसे मैंने माहात्म्य वर्णन किया। जो व्यक्ति ब्राह्मणोंको और अध्यागतोंको अब देता है, वह बहुत दिनतक संसार-सुखको भोगकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १६९)



स्थालीदानकी महिमामें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! आपके द्वारा अप्रदानके माहात्म्यको सुनकर मुझे भी एक बात स्परण आ रही है। जिसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। जिस समय दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदिने शूद्रकीडामें छलसे हमारे राज्यको छीन लिया और हमलोग द्रौपदीके साथ बल्कल वर्ष तथा मृग-चर्म धारणा कर बनको

जा रहे थे, उस समय नगरके लोग और सदाचारी ब्राह्मण खेलसे हमारे साथ चलने लगे। उन्हें देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं यह सोचने लगा कि जो व्यक्ति ब्राह्मण, मित्र, भूत्य आदिका पोषण करता है, उसीका जीवन सफल है। अपना पेट तो मनुष्य, जीव, जन्तु, पशु, पक्षी सभी भर लेते हैं। अध्यागत, सुहृद्गां और कुनूम्बको छोड़कर जो व्यक्ति

१-मूर्ति मित्र सम्बन्ध हीनजातिजनों हि यः। यः करोत्प्रसुधोऽङ्गान् स रहस्येन कर्वति ॥ (उत्तरपर्व १६९। ५६)

२-उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तत्त्वे को गुणः। अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्विश्वसते ॥ (उत्तरपर्व १६९। ६७)

केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीवित लेते हुए भी मेरे हुएके समान है। यही सोचकर मैंने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आपलोग इकालज्ञ और ज्ञान-विज्ञानमें पारंगत हैं और मेरे लोहके वशीभूत होकर ही आये हैं। अब कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये जिससे कि भाई, बन्धु, मित्र, भूत्यसहित आपलोगोंके लिये भी भोजन आदिकृष्णन्थ हो सके, क्योंकि इस निर्जन वनमें हमें बारह वर्ष बिताना है। मेरे इस प्रकारके वचनको सुनकर मैत्रेय मुनिने मुझसे कहा कि कौनलोय ! एक प्राचीन वृत्तान्त मैंने दिव्य दृष्टिसे देखा है, जिसे मैं कह रहा हूँ, आप ध्यानसे सुनें।

किसी समय एक तपोवनमें कोई दुर्भागा, दण्डिया, ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी निवास कर रही थी। वह इस दशामें भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंका पूजन किया करती। उसकी शम-दमसे परिपूर्ण श्रद्धाको देखकर एक दिन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उससे कहा—‘सुनते ! हमलोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई वर माँगो।’ तब ब्राह्मणीने कहा—‘महाराज ! किसी व्रत अथवा दानकी ऐसी विधि बतानेकी कृपा कीजिये, जिसके करनेसे मैं पतिकी प्रिय, पुत्रवती, सौभाष्यवती, धनाढ़य तथा लोकमें प्रशंसाके योग्य हो जाऊँ।’

आहाणीक यह वचन सुनकर वसिष्ठजीने कहा कि आहण ! मैं तुम्हे सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले स्थालीदानकी विधि बता रहा हूँ। पाँच सौ पल, दो सौ पचास पल अथवा एक सौ पचीस पल तीव्रिका पात्र बनाये अथवा सामर्थ्य न हो तो मिट्टीकी उत्तम हाँड़ी बना ले। वह गहरी और सुदृढ़ हो। उसे भूंग तथा चावलसे बने पदार्थसे भरकर चन्दनसे चर्चित कर एक मण्डलके मध्यमें स्थापित कर ले तथा उसके समीप सब प्रकार शाक, जलपात्र, धोक्का पात्र रखे और पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र आदिसे उसका पूजन करे।

ज्वलन्नज्वलनपार्षुस्थैस्तपतुलैः सजलैरपि ।
न भवेद्गोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठीं विना ॥
त्वं सिद्धिः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छनाम् ।
अतस्त्वं प्रणपाप्याश मत्यं करु वचो मम ॥

ज्ञातिक्षम्युसुहृदगो विप्रे प्रेष्यजने तथा ।
अभुक्तवति नाश्रीयात् तथा भव वरप्रदा ॥

इसका भाव यह है कि समीप ही प्रज्वलित अग्नि हो, चावल हो तथा जल भी हो, किंतु यदि स्थाली (बटलोई) न हो तो भोजन नहीं पकाया जा सकता। स्थाली ! तुम सिद्धि चाहनेवालोंके लिये सिद्धि तथा पुष्टि चाहनेवालोंके लिये पुष्टि-स्वरूप हो । मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ । मेरी बातोंसे सत्य करो । मेरे शतिर्वर्ग, सुहडर्ग, बधुवर्ग तथा भूत्यर्ग आदि जबतक भोजन न कर लें, तबतक तुम्हें-से भोजन घटे नहीं—ऐसा वर प्रदान करो ।

यह मन्त्र पढ़कर वह पात्र द्विजश्रेष्ठको दान कर दे । यह दान रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, एकादशी अथवा तृतीयाको करना चाहिये । यसिसहजीका यह उपदेश मानकर वह ब्राह्मणी नित्य ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित स्थालीपात्र देने लगी । पार्थ ! उसी पुण्यके प्रभावसे जन्मान्तरमें वही ब्राह्मणी द्वौपदी-रूपमें तुम्हारी भार्या हुई है और दान देनेमें द्वौपदीका हाथ कभी शून्य नहीं रहेगा; क्योंकि यह द्वौपदी, सती, शची, स्वाहा, सावित्री, धू, अरुण्यती तथा लक्ष्मीके रूपमें जाहीं रह रही हो, वहाँ फिर कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है । इतना कहकर मैत्रेय मुनिने कहा कि महायज युश्मित्र ! यह द्वौपदी अपनी स्थालीसे अब दे तो सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर सकती है, फिर इन थोड़ेसे ब्राह्मणोंके घोजन आदिके विषयमें आप क्यों चिनित होने हैं ?

मैत्रेयजीका ऐसा वचन सुनकर भगवन् ! हमलोगोंने भी वैसा ही किया और सभी परिजनोंके साथ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन कराने लगे । प्रभो ! अब्रदानके प्रसंगसे यह स्थालीदानकी विधि मैंने कही, इसलिये आप मेरी धृष्टिको क्षमा करें । जो व्यक्ति सुन्दर ताप्तकी स्थाली बनाकर चावलोंसे उसे भरकर पर्व-दिनमें इस विधिसे ब्राह्मणको देता है, उसके घर सुहृद, सम्बन्धी, बान्धव, मित्र, भूत्य और अतिथि नित्य भोजन करें तो भी भोजनकी कमी नहीं होती ।

卷之二

गीताप्रेससे प्रकाशित कल्याणके पुनर्मुद्रित पुराण-साहित्य

महाभारत-सटीक, सचिव, सजिल्द, छ: खण्डोंमें सेट [कोड नं० 728]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कृष्णतीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन है। यह ग्रन्थ संक्षिप्त महाभारत (केवल भाषा) (कोड नं० 39, 511), सचिव, सजिल्द सेटके रूपमें (दो खण्डोंमें) भी उपलब्ध है।

संक्षिप्त पश्चपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 44]—इसमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंके विशद वर्णन, एकादशी माहात्म्य, शालग्रामका स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीबृक्षकी महिमा, भगवत्त्राम-कीर्तन आदिकी विस्तृत वर्चा है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क सचिव, सजिल्द [कोड नं० 279]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव पार्वती-विवाह, कुमार कात्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श-चरित्रोंका भी विस्तृत वर्णन है।

संक्षिप्त श्रीमद्बीभागवत सचिव, सजिल्द [कोड नं० 1133]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व-महिमा आदिके तत्त्विक विवेचनसहित भगवतीकी मनोरम सीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। इसके अतिरिक्त इसमें देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

संक्षिप्त शिवपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 789]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला आदिके रोचक वर्णनसे युक्त है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैतर्णपुराणाङ्क सचिव, सजिल्द [कोड नं० 631]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-श्रीराधाकी, सर्वप्रधानताके साथ श्रीकृष्णकी गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है।

श्रीमद्ब्रागवत सचिव, सजिल्द दो खण्डोंमें सेट [कोड नं० 26, 27]—इस महापुराणमें साधन-भक्ति, मिदा-भक्ति, मर्यादा-मार्ग, पुष्टि-मार्ग, अनुग्रहमार्ग आदिका सुन्दर समन्वय है। इस ग्रन्थका मूल-अंग्रेजी अनुवाद दो खण्डोंमें (कोड नं० 56, 57), भागवत सुधासागर (कोड नं० 28), शुक-सुधा-सागर (कोड नं० 252) सम्पूर्ण भाषानुवाद, मूल-भोटा टाइप (ग्रन्थाकार) तथा मूल-मङ्गला संस्करण भी उपलब्ध है।

महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 38]—इस ग्रन्थमें भगवान् श्रीकृष्णकी अगणित रसमयी कथाओंके साथ संतानगोपाल-मन्त्र, अनुष्ठान-विधि तथा अनेक शिक्षाप्रद कथाओंका अनुपम संग्रह है।

सं० ब्रह्मपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 1111]—इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, पृथुका पावन चरित्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका वर्णन, श्रीकृष्णचरित्र, कल्यानजीवी मार्कंडेय मुनिका चरित्र तथा तीर्थोंके वर्णनमें अनेक आख्यानोंका अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। ब्रह्मका विस्तृत विवेचन होनेके कारण यह ब्रह्मपुराण कहा जाता है।

सं० मार्कंडेयपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 539]—इस पुराणमें दुर्गासप्तशतीकी कथा एवं चण्डी देवीका माहात्म्य, हरिक्षन्द्रकी कथा, मदालसा-चरित्र, अत्रि-अनुसूयाकी कथा, धर्मका स्वरूप, दत्तात्रेय-चरित्र आदि अनेक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन है।

सं० नारदपुराण सचिव, सजिल्द [कोड नं० 1183]—इसमें सदाचार-महिमा, वर्जनश्रम-धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके साथ अनेक भक्तिपरक आख्यानोंका बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। इसमें पुराणके पौर्णों लक्षणोंका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है।

श्रीविष्णुपुराण सचिव, सजिल्द (हिन्दी-अनुवाद) भोटा टाइप [कोड नं० 1364]—यह वैष्णव-भक्तिका मूलाधार है। इसमें सृष्टिवर्णनके साथ, मन्त्रनार, वेदकी शाखाओंका विवेचन, आद्व-निरूपण, सूर्य-चन्द्रवंशके राजाओंके उपाख्यान, कलिधर्म-निरूपण, प्रलय-वर्णन तथा भगवान् वासुदेवके चरित्रका वर्णन तथा भक्ति, ज्ञान एवं उपासनाके साथ अनेक आख्यानोंका सुन्दर विवेचन किया गया है।

श्रीविष्णुपुराण-सानुवाद, सचिव, सजिल्द (कोड नं० 48) प्रकाशनमें पहलेसे ही उपलब्ध है।

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित ‘कल्याण’ के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

1184 श्रीकृष्णाङ्क	(कल्याणवर्ष १)	631 सं० ब्रह्मवैतर्तपुराणाङ्क	(कल्याणवर्ष ३०)
749 ईश्वराङ्क	(" " ५)	1135 भगवत्ताम-महिमा और	
635 शिवाङ्क	(" " ८)	प्रार्थना-अङ्क	(" " ३१)
41 शक्ति-अङ्क	(" " ९)	572 परलोक और पुनर्जन्माङ्क	(" " ४३)
616 योगाङ्क	(" " १०)	517 श्रीगणगंगाहिता-अङ्क	(" " ४४)
627 संत-अङ्क	(" " १२)	1113 नरसिंहपुराणम्	(" " ४५)
604 साधनाङ्क	(" " १५)	657 श्रीगणेश-अङ्क	(" " ४६)
1104 भगवत्ताङ्क	(" " १६)	42 श्रीहनुमान-अङ्क	(" " ४७)
39 सं० महाभारत	(" " १७)	791 सूर्याङ्क	(" " ५३)
511 (दो खण्डोंमें)		584 सं० भविष्यपुराणाङ्क	(" " ६६)
1002 सं० बालमीकिरामायणाङ्क	(" " १८)	586 शिवोपासनाङ्क	(" " ६७)
44 सं० पश्चपुराण	(" " १९)	628 श्रीरामभक्ति-अङ्क	(" " ६८)
539 सं० मारकण्डेयपुराण	(" " २१)	653 योसेवा-अङ्क	(" " ६९)
1111 सं० ब्रह्मपुराण	(" " २१)	448 भगवत्तीला-अङ्क	(" " ७२)
43 जाति-अङ्क	(" " २२)	1044 वेदकथाङ्क	(" " ७३)
659 उपनिषद्-अङ्क	(" " २३)	1189 सं० गहडपुराणाङ्क	(" " ७४)
518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	(" " २४)		
279 सं० स्कन्दपुराणाङ्क	(" " २५)		
40 भक्तचरिताङ्क	(" " २६)		
573 बालक-अङ्क	(" " २७)		
1183 सं० नारदपुराण	(" " २८)		
48 श्री श्रीविष्णुपुराण (हिन्दी-अनुवादसहित)	(" " २८)		
667 संतकाणी-अङ्क	(" " २९)		
587 सत्कथा-अङ्क	(" " ३०)		
636 तीर्थाङ्क	(" " ३१)		
660 भक्ति-अङ्क	(" " ३२)		
1133 सं० श्रीपाठेवीभाष्यक (बेल हिन्दी)	(" " ३४)		
574 सं० योगवर्षिष्ठ-अङ्क	(" " ३५)		
789 सं० शिवपुराण	(" " ३६)		

उपनिषद्

इशादि नौ उपनिषद्, अन्यथा, हिन्दी-ब्यालमासहित
ब्रह्मदारण्यकोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
छान्दोग्योपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
ईशावास्योपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
केनोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
कठोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
माण्डूक्योपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
मुण्डकोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
प्रश्नोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
तैतिरीयोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
ऐतरेयोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित
श्वेताश्वत्रोपनिषद्, सानुवाद, रांकरभाष्यसहित